नाटक समयसार अक्षरशः प्रवचन

भाग-६

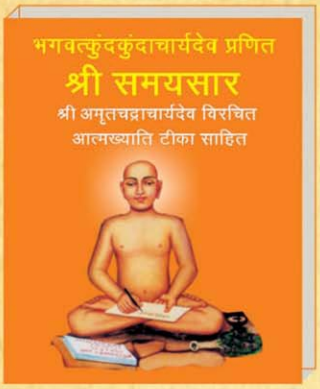

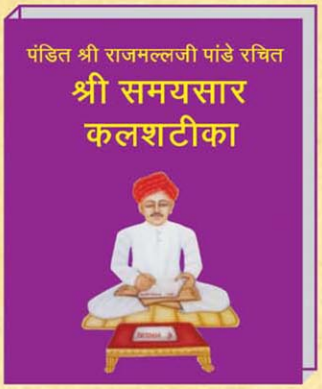

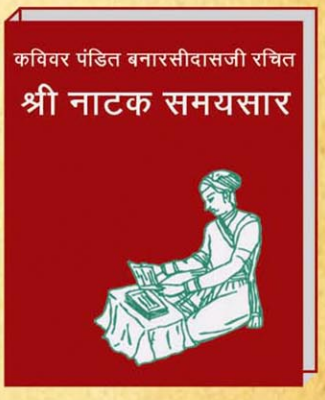

-:प्रकाशक:-
श्री कुंदकुंद-कहान दिगंबर
जैन मुमुक्षु मंडल ट्रस्ट
पार्ला-सांताक्रुझ , मुंबई

ॐ

परमात्मने नमः

नाटक समयसार प्रवचन

(भाग-6)

अध्यात्म प्रेमी कविवर पण्डित बनारसीदासजी कृत
नाटक समयसार ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
शब्दशः प्रवचन साध्य-साधक द्वार, पद 23 से 56;
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद 1 से 115;
ग्रंथ समाप्ति और अंतिम प्रशस्ति, पद 1 से 40
प्रवचन क्रमांक 167 से 200

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2080	2550	2024

—: प्रकाशन :—

आषाढ़ माह की अष्टाह्निका महापर्व

दिनांक, 14 जुलाई 2024

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावायभावायः सर्व भावान्तरच्छिदे॥

सदेह विदेह जाकर महाविदेहक्षेत्र में विराजमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमदेवाधिदेवश्री सीमन्धर भगवान की दिव्य देशना का अपूर्व संचय करनेवाले, भरतक्षेत्र में सीमन्धर लघुनन्दन, ज्ञानसाम्राज्य के सम्राट, भरतक्षेत्र के कलिकाल सर्वज्ञ, शुद्धात्मा में निरन्तर केली करनेवाले हालते-चालते सिद्ध-सम भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् 49 के वर्ष में हुए हैं।

भगवान महावीर से प्रवाहित ज्ञान में आचार्यों की परम्परा से श्री गुणधर आचार्य को ज्ञानप्रवाद पूर्व के दसवें पूर्व अधिकार के तीसरे प्राभृत का ज्ञान था। तत्पश्चात् के आचार्यों ने अनुक्रम से सिद्धान्त रचे और परम्परा से वह ज्ञान भगवान कुन्दकुन्द आचार्य को प्राप्त हुआ।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वि.सं. 49 में सदेह महाविदेह में आठ दिन गये थे, उन्होंने श्री सीमन्धर भगवान के श्रीमुख से प्रवाहित श्रुतामृतरूपी ज्ञानसरिता का तथा श्रुतकेवलियों के साथ हुई आध्यात्मिक सूक्ष्मचर्चा का अमूल्य खजाना हृदयगत करके भरतक्षेत्र में आकर पंच परमागम आदि आध्यात्मिक शास्त्रों की रचना की। उनमें का एक श्री समयसारजी द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट अध्यात्म शास्त्र है। जिसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने 415 मार्मिक गाथाओं की रचना की है। यह शास्त्र सूक्ष्म दृष्टिप्रधान ग्रन्थाधिराज है, जो भवरहित अशरीरी होने का शास्त्र है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के बाद लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् अध्यात्म के अनाहत प्रवाह की परिपाटी में इस अध्यात्म के अमूल्य खजाने के गहरे हार्द को स्वानुभवगत कर श्री कुन्दकुन्ददेव के ज्ञान हृदय को खोलनवाले, सिद्धपद साधक, मुनिवर सम्पदा को आत्मसात करके निज स्वरूप साधना के अलौकिक अनुभव से श्री समयसार शास्त्र की 415 गाथाओं की टीका करने का सौभाग्य श्री अमृतचन्द्र आचार्यदेव को प्राप्त हुआ। उन्होंने 'आत्मख्याति' नामक टीका की रचना की। तदुपरान्त उन गाथाओं पर 278 मार्मिक कलश तथा परिशिष्ट की रचना की। यह टीका वाँचते हुए परमार्थतत्त्व के मधुर रसास्वादी धर्मजिज्ञासुओं के हृदय में निःसन्देह आत्मा की अपूर्व महिमा आती है, क्योंकि आचार्यदेव ने इसमें परम हितोपदेशक, सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकर भगवन्तों का हार्द खोलकर अध्यात्मतत्त्व के निधान ठसाठस भर दिये हैं। अध्यात्मतत्त्व के हार्द को सर्वांग प्रकाशित करनेवाली यह 'आत्मख्याति' जैसी सुन्दर टीका अभी तक दूसरी किसी जैन अध्यात्मग्रन्थ की लिखी हुई नहीं है।

श्री समयसार कलश पर अध्यात्मरसिक पण्डित श्री राजमलजी पाण्डे ने टीका लिखी है, जो वि.सं. सत्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। वह उन्होंने राजस्थान के ढूंढार प्रदेश में बोली जानेवाली प्राचीन ढूंढारी भाषा में लिखी है। सामान्यबुद्धि के जिज्ञासु जीव भी सरलता से समझ सकें, इस प्रकार विस्तार से स्पष्टतापूर्वक और जोरदार शैली से स्पष्ट किया है। टीका में स्थान-स्थान पर निर्विकल्प सहज

स्वानुभव का अतिशय महत्त्व बतलाया है और उसकी प्राप्ति करने के लिये प्रेरणा दी है। वे कविवर श्री बनारसीदासजी से थोड़े से वर्ष पहले ही हो गये हों, ऐसा विद्वानों का मानना है।

श्री समयसार कलश की विद्वान् पण्डित राजमलजी ने टीका की और उसके आधार से विद्वान् पण्डित कविवर श्री बनारसीदासजी ने 'नाटक समयसार' की रचना की है। यह ग्रन्थ अध्यात्म का एक उज्ज्वल रत्न है।

पण्डित बनारसीदासजी का जन्म वि.सं. 1943 के माघ महीने में मध्य भारत में रोहतकपुर के पास बिहोली गाँव में हुआ था। उनका कुल श्रीमाण था और गोत्र बिहोलिया था। विद्वान कविवर श्री बनारसीदासजी ने पण्डित राजमलजी रचित 'समयसार कलश' के आधार से 'नाटक समयसार' की रचना की है। उसमें मंगलाचरण तथा उत्थानिका के 51 पद, जीवद्वार के 35 पद्य, अजीवद्वार के 14, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार के 36, पुण्य-पाप एकत्व द्वार—16, आस्रव द्वार—15, संवर द्वार—11, निर्जरा द्वार—61, बन्ध द्वार—58, मोक्ष द्वार—53, सर्वविशुद्धिद्वार—137, स्याद्वाद द्वार—21+1, साध्यसाधक द्वार—56, चौदह गुणस्थानाधिकार—115, ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति के 40 पद की रचना की गयी है।

वर्तमान इस काल में मोक्षमार्ग प्राय: लुप्त हुआ था। मिथ्यात्व का घोर अन्धकार छाया हुआ था। जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त मृतप्राय: हुए थे। परमागम मौजूद होने पर भी उनके गूढ़ रहस्यों को समझानेवाला कोई नहीं था। ऐसे में जैनशासन के नभमण्डल में एक महाप्रतापी वीर पुरुष, अध्यात्ममूर्ति, अध्यात्मयुगसृष्टा, आत्मज्ञसन्त, अध्यात्म युगपुरुष, निष्कारण करुणाशील, भवोदधि तारणहार, भावि तीर्थाधिराज परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का उदय हुआ।

भारत की भव्य वसुन्धरा, वह सन्तरत्न पकने की पवित्र भूमि है। उसमें सौराष्ट्र का नाम अग्रगण्य है। अर्वाचीनयुग में अध्यात्मप्रधान जैन गगनमण्डल में चमकते नक्षत्र सम समीप समयज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्म युगसृष्टा आत्मज्ञ सन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पवित्रात्मा बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूति धर्मप्रकाशक साधक महात्माओं की जगत को भेंट देकर, सौराष्ट्र की धरती पुण्यभूमि बनी है। तथा सोनगढ़ में एक ही रात्रि में सम्यग्दर्शन प्राप्त कर श्री निहालचन्द सोगानीजी ने सोनगढ़ से अपनी मोक्षयात्रा शुरु की है।

परम देवाधिदेव चरमतीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा पुन: प्रवाहित और गुरु परम्परा द्वारा सम्प्राप्त जिस परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 'परमागम समयसार' इत्यादि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है, उस पुनीत प्रवाह के अमृत का पान करके, अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्मसाक्षात्कार पाकर, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरात, समग्र भारतवर्ष तथा विदेश में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन

प्रसारित कर वर्तमान सदी के विषमय भौतिकयुग में दु:खी जीवों का उद्धार किया है, वे जिनशासन प्रभावक, करुणामूर्ति परमोपकारी परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म सुधारस मंगलमय पवित्रता, पुरुषार्थ से धधकता ध्येयनिष्ठ सहज वैराग्य नितरता उत्तम बालब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्गदर्शक सदुपदेशों और दूसरे अनेकानेक उपकारों का वर्णन चाहे जितना संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी बहुत पृष्ठ भर जायें, ऐसा है।

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने 45-45 वर्षों तक अलौकिक प्रवचनों और तत्त्वचर्चाओं द्वारा मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया। उन्होंने 15 शास्त्रों पर सम्पूर्ण तथा अन्य सात शास्त्रों पर अमुक प्रवचन तथा अमुक शास्त्रों पर बहुत बार प्रवचन किये हैं। लगभग 9400 घण्टे के प्रवचन टेप और सी.डी. में संग्रहित किये गये हैं।

यदि अक्षरश: प्रवचन की पुस्तक बनायी जाये तो उसका बहुत लाभ मुमुक्षुओं को होगा। प्रवचन में आये हुए सन्दर्भ को शान्तचित्त से विशेष घोलन कर सके। न समझ में आये हुए सन्दर्भ पूछ सके, तथा किस अपेक्षा से और न्याय पूज्य गुरुदेव निकालकर देते हैं, उसका अवलोकन भी कर सके इत्यादि। अलग-अलग मण्डलों तथा व्यक्तियों की भावना थी कि सभी शास्त्रों के अक्षरश: प्रवचन प्रकाशित हों तो मुमुक्षुओं को बहुत लाभ का कारण होगा।

हमारे पार्ला मण्डल के ट्रस्टियों के समक्ष मुमुक्षुओं ने अनुरोध करने पर उन्होंने सहर्ष स्वीकारता पूर्वक अनुमोदना दी और पार्ला मण्डल ने श्री नाटक समयसार पर अक्षरश: प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय किया और तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यवाही श्री पंकजभाई प्राणभाई कामदार को सौंपी गयी। जिससे मुमुक्षुओं से प्रवचन लिखाना, उन्हें जाँचना, कम्पोज कराना, दो बार प्रूफ रीडिंग और भाषा दृष्टि से चैक कराना तथा प्रकाशित कराना इत्यादि गतिविधियाँ सम्मिलित हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी लाभ प्राप्त करे, इस भावना से और हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज की विशेष माँग को दृष्टिगोचर करते हुए प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद और सी.डी. प्रवचन से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ में नाटक समयसार साध्य-साधक द्वार, पद 23 से 56; चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद 1 से 115; ग्रंथ समाप्ति और अंतिम प्रशस्ति, पद 1 से 40, के कुल 34 प्रवचन संग्रहित हैं।

सभी आत्मार्थी मुमुक्षुजन प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का भरपूर लाभ प्राप्त करें, इस पवित्र भावना के साथ विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ला, मुम्बई

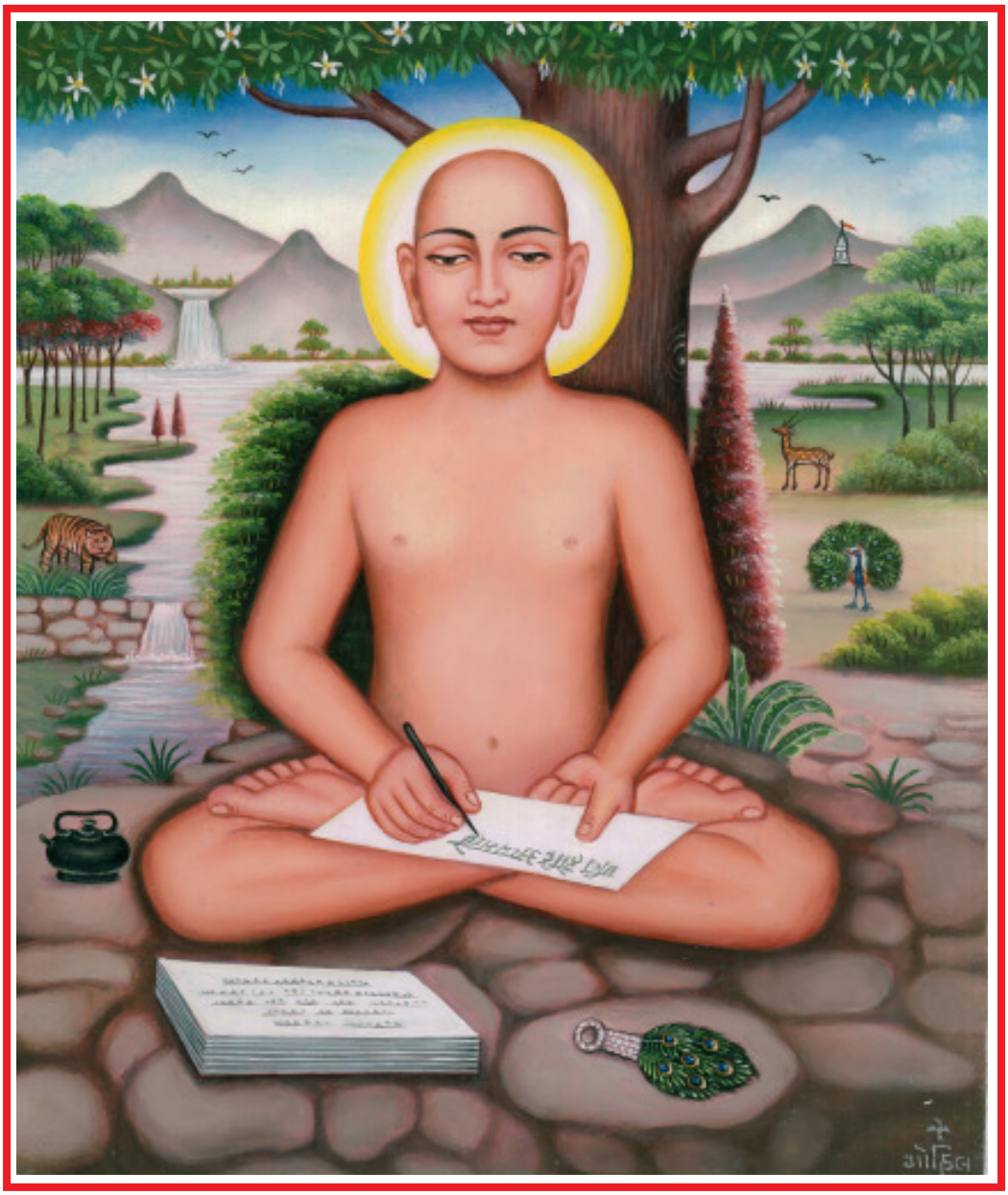

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह

अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की

देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और

मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन,

और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	अधिकार तथा पद नम्बर	पृष्ठ नं.
१६७.	**साध्य-साधक द्वार,** पद—२३ से २६	००१
१६८.	साध्य-साधक द्वार, पद—२७ से २९	०१९
१६९.	साध्य-साधक द्वार, पद—३० से ३५	०३६
१७०.	साध्य-साधक द्वार, पद—३६-३७	०५५
१७१.	साध्य-साधक द्वार, पद—३८ से ४१	०७६
१७२.	साध्य-साधक द्वार, पद—४२ से ४३	०९४
१७३.	साध्य-साधक द्वार, पद—४४ से ४६	१११
१७४.	साध्य-साधक द्वार, पद—४७ से ४९	१३१
१७५.	साध्य-साधक द्वार, पद—५० से ५१	१५०
१७६.	साध्य-साधक द्वार, पद—५१ से ५४	१६८
१७७.	साध्य-साधक द्वार, पद—५५-५६	१८९
१७८.	**साध्य-साधक द्वार** सार	२०७
१७९.	**चतुर्दश गुणस्थान अधिकार** पद—१, २, ३	२२४
१८०.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—३ से ७	२४४
१८१.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—८ से १३	२६४
१८२.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—१४ से २४	२८३
१८३.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—२५ से ३०	३१०
१८४.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—३१ से ३५	३२८
१८५.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—३६ से ४१	३४५
१८६.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—५० से ५३	३६७
१८७.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—५४	३८५
१८८.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—५५, ५६, ५७	४०४
१८९.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—५८ से ६४	४२३
१९०.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—६५ से ७२	४४३
१९१.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—७३ से ८१	४६६
१९२.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—८४ से ८९	४९०
१९३.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—९० से ९४	५१०
१९४.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—९५ से १०७	५२९
१९५.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—१०८ से ११४	५५५
१९६.	चतुर्दश गुणस्थान अधिकार पद—११५ तथा सार	५७६
१९७.	**ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति** पद—१ से ११	५९५
१९८.	ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति पद—१२, १३, १४	६१९
१९९.	ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति पद—१५ से ३१	६३८
२००.	ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति पद—३१ से ४०	६६५

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

नाटक समयसार प्रवचन

(भाग - 6)

कविवर पण्डित बनारसीदासजी कृत **नाटक समयसार** पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
अक्षरशः प्रवचन

(१२)
साध्य-साधक द्वार

प्रवचन नं. १६७, आसोज शुक्ल २, मंगलवार, दिनांक २१-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद २३ से २६

समयसार नाटक है, साध्य-साधक अधिकार। साध्य अर्थात् क्या? सिद्धपद को साध्य कहते हैं अथवा अरिहन्तपद। है न? वह साध्य करनेयोग्य है। साधन से वह साध्य (अर्थात्) प्रगट करनेयोग्य है, इसलिए उसे साध्य कहते हैं। और साधक (अर्थात्) मोक्ष का मार्ग। जो आत्मा वस्तु परमानन्द और ज्ञान की मूर्ति है, उसके अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा—वीतरागी परिणति प्रगट करना, वह साधक है। वह मोक्ष का साधक है। उसमें यह पाँच प्रकार के जीव का वर्णन है। अधिकार तो यह है। पाँच प्रकार में पाँचवाँ बोल अभी आता है। २३, २३। एक पहले आ गया कि जिसकी कर्मकलंकरहित दशा वह सिद्ध भगवान, वह भी एक जीव। जीव की पाँच जाति, पाँच प्रकार।

सिद्ध भगवान.... अशरीरी कर्मकलंकरहित पूर्ण आनन्द की दशा की प्राप्ति, उसका नाम सिद्धभगवान अथवा अरिहन्त, वह साध्य है। और दूसरी बात थी न चूंघा जीव की। चूंघा अर्थात् चूसे। धर्मात्मा उसे आत्मा की बात करे कि भाई! तू चार गति में भटकता है चौरासी के अवतार में (भटकता है), कहीं वहाँ जन्म-मरण के दु:ख के अतिरिक्त कहीं सुख है नहीं। उसे आत्मा की बात करने से, जैसे बालक माता का स्तन चूसता है दूध को (चूसता है), उसी प्रकार यह पात्र जीव साधक है, वह आत्मधर्म की बात चूसे। आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, शान्ति का सागर आत्मा है, स्वच्छता से परिपूर्ण भरपूर है। ऐसा उसे कथन करने से उसमें से बात के भाव का रस चूसे, वह दूसरे नम्बर के जीव कहे।

तीसरे नम्बर के मन्द कषायवाले। कषाय की मन्दता हो, सत्य बात सुनने में रुचि हो, परन्तु कुछ समझे नहीं। उसे यहाँ (सूंघा जीव कहा जाता है)। हृदय की दुष्टता न हो तथा सत् श्रवण में जिसकी प्रीति हो। सच्चा तत्त्व आत्मा को सुनने की प्रीति हो। कषाय की मन्दता हो, राग की मन्दता। पुण्य बाँधे, परन्तु है मूर्ख मिथ्यादृष्टि। उसे आत्मा पुण्य के भाव से भिन्न है, यह बात उसे रुचती नहीं। साध्य, साधक, कषाय मन्द—तीन हुए। चौथे अशुभभाववाले। जिन्हें सत्य बात रुचती नहीं, आगम की अध्यात्म बात का प्रेम नहीं। विकथा सुनने का जिसे प्रेम। समझ में आया? वह ऊंघा है। ऊंघा है। यह 'घ' है न सर्वत्र 'घ'। यह भी एक मूर्ख है। और पाँचवें की बात अपने चलती है। चार की बात हो गयी। पाँचवें की बात चलती है। **घूंघा जीवों का....** लक्षण।

★ ★ ★

काव्य - २३

घूंघा जीव का लक्षण (दोहा)

जाकै वचन श्रवन नहीं, नहि मन सुरति विराम।
जड़तासौं जड़वत भयौ, घूंघा ताकौ नाम।।२३।।

शब्दार्थ:–सुरति=स्मृति। विराम=अव्रती।

अर्थ:–वचन रहित अर्थात् एकेन्द्रिय, श्रवण रहित अर्थात् द्वि, त्रि, चतुरिन्द्रिय, मनरहित अर्थात् असंज्ञी पंचेन्द्रिय और अव्रती अज्ञानी जीव जो ज्ञानावरणीय कर्म के तीव्र उदय से जड़ हो रहा है, वह घूंघा है।।२३।।

काव्य-२३ पर प्रवचन

जाकै वचन श्रवन नहीं, नहि मन सुरति विराम।
जड़तासौं जड़वत भयौ, घूंघा ताकौ नाम॥२३॥

कहते हैं कि ऐसे जीव जगत में हैं कि जिन्हें वचन नहीं। एकेन्द्रिय, यह वनस्पति, पृथ्वी, अग्नि, वायु—यह एकेन्द्रिय जीव को वचन नहीं। वे बेचारे अधर्म में पड़े हैं। अन्धाधुन्ध। एकेन्द्रिय जीव—अनन्त निगोद, आलू, शक्करकन्द अनन्त जीव। आहाहा! कहते हैं कि वे श्रवण-वचन रहित हैं। दूसरे श्रवण रहित, जिन्हें कान नहीं। द्वि, त्रि, चतुरिन्द्रिय। ईयळ, कीड़ा-मकोड़ा ऐसे जीवों को कान नहीं, उन्हें यहाँ श्रवणरहित मूर्ख जीव गिना है। बेचारे अधर्म में पड़े हैं। आहाहा! समझ में आया? **नहि मन सुरति...** जिन्हें मन नहीं। मनरहित असंज्ञी प्राणी। पानी में जैसे मछली हो, मेंढ़क हो, वे सब मनरहित प्राणी हैं। वे असंज्ञी हैं, मन नहीं। वे भी मूर्ख हैं, ज्ञानावरणीय का जोर (होने से) अज्ञानी हैं। उन्हें धर्म समझने की पात्रता भी नहीं। श्रवण नहीं वहाँ पात्रता कहाँ से होगी? आहाहा! ऐसे अवतार भी अनन्त बार किये। वह असंज्ञी है।

और **विराम...** अव्रती है। विराम का अर्थ किया है इसमें। विराम का अर्थ अव्रती। अव्रती, जिसे राग का राग और (राग और) आत्मस्वभाव की एकताबुद्धि है।

आहाहा! समझ में आया? ऐसे अव्रती अज्ञानी। यह आत्मा आनन्दस्वरूप, उसमें विकल्प जो राग दया-दान-व्रत-भक्ति आदि, ऐसे राग के साथ जिसे एकताबुद्धि है। उस राग से मुझे लाभ होगा, राग मेरा स्वरूप है—ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि अव्रती हैं। चन्दुभाई! गजब! आहाहा! समझ में आया? फिर भले बड़े सेठिया करोड़ोंपति-अरबोंपति हो, स्वर्ग के जीव हों, राजा-महाराजा हो। परन्तु जिसे यह आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द निर्मलानन्द सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है। सहज आनन्द जिसमें पड़ा है। ऐसे आनन्दस्वभाव के साथ जिसे पुण्यपरिणाम अर्थात् रागभाव की एकताबुद्धि है, ऐसे मिथ्यादृष्टि अव्रती वे पाँचवें बोल में डाले। एकेन्द्रिय के साथ डाले। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और मिथ्यादृष्टि अव्रती उसमें डाले। आहाहा! ऐसे जीव की जाति पाँच प्रकार की जगत में है।

अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं। **उपर्युक्त पाँच प्रकार के जीवों का विशेष वर्णन।** विशेष स्पष्टता।

★ ★ ★

काव्य - २४

उपर्युक्त पाँच प्रकार के जीवों का विशेष वर्णन (चौपाई)

डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ।
सूंघा ऊंघा मूरख दोऊ।।
घूंघा घोर विकल संसारी।
चूंघा जीव मोख अधिकारी।।२४।।

अर्थः-डूंघा जीव को सब कोई सिद्ध करते हैं, सूंघा ऊंघा दोनों मूर्ख हैं, घूंघा घोर संसारी है और चूंघा जीव मोक्ष का पात्र है।।२४।।

काव्य-२४ पर प्रवचन

डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ।
सूंघा ऊंघा मूरख दोऊ॥
घूंघा घोर विकल संसारी।
चूंघा जीव मोख अधिकारी॥२४॥

डूंघा सिद्ध कहै... सिद्ध भगवान परमात्मा को डूंघा जीव कहा जाता है। जिन्हें पूर्णानन्द की पूर्ण प्राप्ति हो गयी है, जिन्हें कृतकृत्य दशा प्रगट हो गयी है। अशरीरी सिद्ध परमात्मा 'णमो सिद्धाणं' उस जीव को यहाँ डूंघा (कहते हैं)। उनकी भाषा प्रयोग की है। अपने हिन्दी में कहीं चलती नहीं होगी ऐसी कोई भाषा। उन्होंने मिलाया है, मिलाया है। और शब्द का अर्थ भी नहीं होता हो, वह तो अभी। **डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ।** क्या कहा?

मुमुक्षु : घ और ध दो एक ही प्रकार।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह 'घ' है। यह घूंघा जीव। यह घूंघा है। घूंधा नहीं, घूंघा।

डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ, सूंघा ऊंघा मूरख दोऊ। जिसे श्रवण प्रीति है, हृदय में दुष्टता नहीं, परन्तु आत्मा क्या चीज़ है (ऐसा) अपनी कीमत का भान नहीं, उसे यहाँ मूर्ख कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? फिर भले वह डॉक्टर का और वकील का और सब पढ़ा हो, पाँच-पाँच हजार का दैनिक लेता हो एक दिन का। परन्तु जिसे यह भगवान आत्मा तीर्थंकर परमात्मा ने कहा, ऐसा आत्मा जिसे खबर नहीं, समझ में आया? उसे आनन्द का रस क्या है, उसकी खबर नहीं। इस जगत के रस में रचा हुआ है। आहाहा! वह मूर्ख कहा जाता है। चन्दुभाई! बड़ा मूर्ख होगा यह?

यह रामजीभाई पहले तो बड़े कहलाते थे। ऐसी छाप पड़ती थी। दो सौ रुपये का बड़ा मेहनताना लेते थे। यह कोई एक व्यक्ति कहता था, नहीं? अहमदाबाद में, नहीं? कनुभाई!

मुमुक्षु : ....अहमदाबाद के वकील थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह कहता था। ऐई कनुभाई! अहमदाबाद का एक, नहीं? यहाँ आ गये हैं वकील। तब कहते थे कि रामजीभाई का भाई युग था न। वे भले न माने, परन्तु लोगों में इस प्रकार चलता था।

मुमुक्षु : वकीलों में बड़ी छाप।

पूज्य गुरुदेवश्री : वकीलों में बड़ी छाप। तीस वर्ष पहले दो सौ रुपये लेते थे चार घण्टे या पाँच घण्टे के। एक घण्टे सलाह लेने आवे, चालीस रुपये। यह रामजीभाई। एक ही मिनिट हो और दूसरे चालीस। वकील कुछ उगाही करने जाये घर में? परन्तु यह सब ज्ञान मूर्ख का है। आहाहा! ऐई!

यह हमारे हिम्मतभाई पास गये उस अक्षर में कुछ, किसमें? गणित में। गणित में, लो! ऐई! कुछ मिला था न उन्हें। छह सौ रुपये क्या कुछ, नहीं? कितने? छह सौ न? यह सुना था। मैंने छह सौ कहा। सुना था। सुना हो इतना सुना हो। छह सौ रुपये स्कॉलरशिप मिले। लो, वह ज्ञान कैसा होगा? आहाहा! उसमें कारखाना के चतुर यह सब होते हैं न? होशियार रंग में। देखो न, हमारे भूपत है न हमारे यहाँ मुम्बई। भूपेन्द्र डाईंग एण्ड प्रिन्टिंग वर्क्स। भूपेन्द्र का पिता था न हेमचन्द, नहीं? खेतवाडी में, नहीं? सब मूर्ख के जाम, हों! भान कुछ नहीं होता। यह दिन की पाँच-पाँच हजार की आमदनी। अनूपचन्दभाई! अपने भूपेन्द्र नहीं खेतवाडी में?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, चुन्नीलाल निकल गया। उसका ...दूसरा लगाया था न? कहाँ रहे? हमारे यह भाई था न हेमचन्द। कुछ बुद्धि का ठिकाना नहीं, परन्तु पुण्य के कारण पाँच-पाँच हजार की दिन की आमदनी। वे सब होशियार कहलाते होंगे? यहाँ उसे मूर्ख कहते हैं। ऐ मगनभाई!

मुमुक्षु : इसका थर्मामीटर अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो। कहते हैं, जिसे आत्मा के आनन्द के रस को चूसना नहीं आता। आहाहा! और जो जगत के राग और द्वेष के रस को चूसता है, बड़ा मूर्ख है। मूलचन्दभाई! यह अमेरिका की बड़ी परीक्षा देकर आवे, दस-दस हजार का वेतन महीने तो कहलाता है।

मुमुक्षु : वह लौकिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक? ऐई! महीने का दस हजार का वेतन। अमेरिका से उतरे तो मानो क्या वह आया बड़ा। आहाहा! एक व्यक्ति कहता था भाई एक गाँव में। नाम नहीं देते। कि हमारी कन्या बड़ी हो गयी, परन्तु अमेरिका का उतरा हुआ हो तो ही उसे कन्या देना और पचास हजार देना। ठीक। अमेरिका से पढ़कर आया हो परदेश में से। यह तो गाँव में बसते हों, उसकी बात है, हों! और वे अपने मुमुक्षु हैं। परन्तु कहे, परदेश से पढ़कर जो आया हो, तो कन्या और पचास हजार दूसरे, दोनों दूँ। ....उसे इसकी कीमत वापस, कहा। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्तर निजस्वरूप का अन्तर ज्ञान और कीमत नहीं और जगत के पठन की कीमत है, उसे यहाँ मूर्ख कहा गया है। धीरुभाई! बाहर में तो बड़ी मोटरें घूमती हों। लाख-लाख की, क्या मोटर का नाम?

मुमुक्षु : इम्पाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : इम्पाला। अपने कुछ एक लाख की आती है, मोटर लाख की कुछ। लाल और बैठा हो तो मानो, ओहोहो! बड़ा भिखारी।

मुमुक्षु : मोटर लेकर साथ में घूमता हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ममत के साथ। वह भिखारी कहलाये, हों! ऐसे कुछ माँगे न लाओ... लाओ... लाओ... लाओ। वह भिखारी कहलाता है। आत्मा में आनन्द की बादशाही पड़ी है, उसकी जिसे खबर नहीं, उसकी जिसे रुचि नहीं, वह सब रंक भिखारी मूर्ख है। कहो, कैसे होगा इसमें? नागरभाई! कैसे होगा यह? नामा लिखना आवे, लो। ५००-५०० का वेतन, हजार-हजार का वेतन। और मोती के दाने जैसे अक्षर पड़े और नामा। ओहोहो! क्या होशियार! कहते हैं कि बड़ा मूर्ख है। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा शान्त और आनन्द का रसकन्द प्रभु की जिसे रुचि और जिसे रस का अनुभव नहीं। समझ में आया? वे सब सेठिया बड़े मूर्ख हैं, कहते हैं। आहाहा! पाटनीजी! देखो!

सूंघा... वह सूंघो, भाई! सुनने का... है, परन्तु कषाय मन्द है। **ऊंघा** वह चौथा

है। **मूरख दोऊ...** दोनों को मूर्ख ठहराया है। वह पहले में आया था न! **जो गुरु के वचन प्रेमपूर्वक सुनता है और हृदय में दुष्टता नहीं है, भद्र है, पर आत्मस्वरूप को नहीं पहिचानता।** वह मन्दकषायी भी मूर्ख। चन्दुभाई! आहाहा! गजब यह। **घूंघा घोर विकल संसारी।** आया था न यह। **जाकौ विकथा हित लगै, आगम अंग अनिष्ट सो ऊंघा विषयी विकल।** अकेले विषय शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के रसिया। विषय के रसिया ऐसे घोर अज्ञानी, उन्हें घूंघा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

चूंघा जीव मोख अधिकारी.... लो। यह चूसनेवाला। **चूंघा...** सत्य बात परमात्मा आत्मा का स्वरूप, वह आत्मा से परमात्मा ऐसा जो स्वरूप, उसकी बात सुनते हुए जिसे रस आवे और वह अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु को चूसे अर्थात् अनुभव करे, वह मोक्ष का अधिकारी है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से डाला, देखो! धर्मी और मोक्ष का अधिकारी उसे कहते हैं कि जो आत्मा आनन्दमूर्ति, उस आनन्द को जिसे अनुभव करना आता है। आहाहा! समझ में आया? राग और द्वेष का अनुभव छोड़कर परमात्मा स्वयं ही सिद्धस्वरूप अन्दर शक्तिरूप तत्त्व है, उसे जो अनुभव में आनन्द का रस लेना आवे, वह मोक्ष का अधिकारी। इस प्रकार डाला, देखो भाई! यह उसके साधक में इस प्रकार से डाला। कोई दया-दान और व्रत पाले, इसलिए साधक है, चूंघा है—ऐसा नहीं। आहाहा!

सिद्ध भगवान को पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हो गयी, वह तो पहले नम्बर में आये। यह दूसरे नम्बर में अधिकारी यह। धर्म के अधिकारी, मोक्ष के अधिकारी उसे कहते हैं कि जो आत्मा शान्त और अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप का अन्दर में जाकर ऐसे चूसना अर्थात् अनुभव करना आवे। आहाहा! समझ में आया? वह तो मोक्ष का अधिकारी है। यह आनन्द का अनुभव करना आवे, वह मोक्ष का अधिकारी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! किस प्रकार डाला है, देखो! अकेले पुण्य और पाप के राग के भाव अनुभव करे, उसे यहाँ मूर्ख में डाला है। चेतनजी! शब्द भले अपने आधार से न आवे, उसका कुछ नहीं। उसका भाव यह है। आहाहा!

कहते हैं कि साधक अथवा मोक्ष का अधिकारी अथवा धर्मरूप से हुआ, धर्म जिसे प्रगट हुआ है। अर्थात् कि आत्मा आनन्द का धाम प्रभु, वह पुण्य-पाप के विकल्प के दुःख से रहित वह आत्मा है। आहाहा! ऐसा आत्मा अतीन्द्रिय स्वभाव से भरपूर

तत्त्व, उसे आत्मा मानकर जो आनन्द को अनुभव करे, आहाहा! उसे धर्मी कहते हैं। पूजा, पाठ, व्रत, नियम और तपस्या करता हो, कहते हैं कि वह तो राग की क्रिया है। राग के रस में नाचा है, वह मूर्ख है, ऐसा कहा उसे तो। आहाहा! समझ में आया? दुनिया से अलग प्रकार का माप है यह। आहाहा! जो कोई बाहर का त्यागी हो, पंच महाव्रत पाले, वह राग का भाग है। उस राग को जो अनुभव करता है, उसे यहाँ मूर्ख में डाला है। आहाहा! समझ में आया? और जो आत्मा ज्ञान चैतन्यस्वरूपी प्रभु, उसमें पुण्य और पाप के विकल्प राग नहीं, उसमें तो आनन्द और शान्ति भरी है। ऐसे आनन्द और शान्ति को अन्तर्मुख होकर अनुभव करता है, उसे यहाँ धर्म का अधिकारी अथवा मोक्ष का अधिकारी कहा है। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : साधक की व्याख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत अच्छी है। चूंघा की व्याख्या। **चूंघा जीव मोख अधिकारी।**

अपनी चीज़ भगवान आत्मा वस्तु अविनाशी अनादि-अनन्त है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द अनादि-अनन्त अविनाशी पड़ा है। ऐसे आनन्द के ऊपर दृष्टि करके बाहर के सुख की-दुःख की कल्पना अज्ञानियों की है, उसे छोड़कर, वह आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द को वेदन करे, अनुभव करे, स्वाद ले, वह जीव का आनन्दस्वभाव, उसे चूसे। आहाहा! यह कुल्फी नहीं चूसते लड़के? कुल्फी... कुल्फी... यह गर्मी की ऋतु में बहुत चूसे। ऐसी आड़ी हो और फिर कोई ऐसी... और एक यह पत्रे में आती है ऐसा... करके। वह आता है। उसे कुल्फी ही कहे न? भरुच में देखी थी। चद्दर के वे होते हैं न, उसमें डाले। गोला में डाले। वे वहाँ इतने-इतने आते थे। यह तो पालेज से माल लेने भरुच जाते न, वह गर्मी में देखा हो वहाँ। पीया भी हो कभी। यह तो बात है (संवत्) १९६४-६५ की। संवत् १९६४-६५। पालेज से दुकान का माल लेने भरुच जाते, तब वह कुल्फी देखते। अब वह तो धूल का चूसना, मूर्ख का चूसना है। आहाहा! उसमें जिसे स्वाद आता है, वह तो मूर्ख जीव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह स्त्री के विषय का रमना और पाँच-पचास हजार के बँगले में रहे, ऐसा श्रीखंड-पूड़ी और अरबी के (भजिये) खाकर नींद लेना। हम सुखी हैं। कहते हैं कि बड़ा मूर्ख दुःखी है। समझ में आया? आहाहा! 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन

दुखिया।' जिसने आत्मा के आनन्द को अनुभव किया, जो आत्मा अतीन्द्रियमूर्ति प्रभु को जिसने अन्तर में अन्तर की चीज़ को जिसने जाना, बाहर की चीज़ के जानने का जिसने अभिमान छोड़ दिया, ऐसा भगवान आत्मा को जो जानकर अनुभव करे, वह आनन्द के रस को चूसता है। चूंघा है न, चूंघा। वह यह न चूसे तो पुण्य और पाप के राग को चूसे अनादि से। वह बड़ा मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? यह बड़ा लगे बड़ा गृहस्थ अरबोंपति और करोड़पति। उद्योगपति। हाँ, और उसमें यह। उसके माँ-बाप कुछ छोड़ नहीं गये थे। वह बाहुबल से उद्योगपति से २५-५० लाख इकट्ठे किये। ऐसी बातें आवे वह लेख में। मूर्ख महिमा करे और वह मूर्ख स्वयं प्रसन्न हो। आहाहा!

भाई! तुझे आत्मा क्या चीज़ है और उसकी कीमत करना चाहिए, वह कीमत तो की नहीं। और जिसमें कुछ माल नहीं, उसकी कीमत करके पड़ा है। समझ में आया? हमको सुन्दर शरीर मिला है, हम बड़े जोरदार वक्ता हैं, लक्ष्मीवाले हैं, बँगला है, स्त्री ऐसे अच्छी मिली है, लड़का आज्ञाकारी है और अच्छी जगह लड़के का विवाह हुआ है। अब अच्छा किसे कहना, सुन न! समझ में आया? जिसे ऐसे परपदार्थ का प्रेम और रस का रस है, वे सब मूर्ख कहे गये हैं यहाँ। अरे, अरे गजब व्याख्या ऐसी! ऐई! धीरुभाई! ऐसी व्याख्या! अब इनके पिता थे वहाँ करोड़पति कहलाते थे। फिर ऐसे हुआ, और ऐसा हुआ... यह फूलचन्द तंबोली कहलाये, ले। हाँक बजती हो ऐसे। सब चले गये। ....ऐसे चला ही करे। धूल भी नहीं, कहते हैं, यहाँ। ऐई भोगीभाई! क्या है यह? भोगीभाई बहुत करते हैं धड़ाधड़। व्यापार... व्यापार। शिवलालभाई, मूलजीभाई और भीमजीभाई तीनों आये हैं। आहाहा!

अरे भाई! प्रभु! तू कौन? तेरा व्यापार कौनसा? तेरा व्यापार तो भगवान आनन्दमूर्ति में एकाग्र होकर अनुभव करना, वह तेरा व्यापार। आहाहा! गजब भाई! पर के व्यापार में राग और द्वेष और उस राग-द्वेष के रसिक-रसीले, हम ऐसे व्यापारी, हम ऐसे होशियार, ऐसा कारखाना हम चलाते हैं करोड़ों के, फलाना के... शिवलालभाई! क्या होगा यह तुम्हारा ऐसा? ऐसा जगत अन्ध होगा? आहाहा! भाई! तेरा आनन्दरस तेरे पास है। जैसे मधपूड़ा (छत्ता) में अकेला शहद भरा है (परन्तु) मक्खियों को खाना

आया नहीं। इकट्ठा करके रहे और वाघरी-बाघरी धुँआ करे और उड़ गयी। आता है न? 'मक्खियों ने शहद किया, न खाया न दान दिया, लूटनेवाले ने लूट लिया, ऐ पामर प्राणी।' आहाहा! बनारसीदास ने भी पाँच प्रकार का डाला है। ठीक डाला। आहाहा!

भगवान! तेरा आनन्दरस चूसना न आवे और पुण्य और पाप के राग के रस का रसीला प्रभु! तू तो दुर्गति और नरक-निगोद का साधनेवाला है। आहाहा! यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं है, सत् शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का सागर है। उसकी जिसने दृष्टि की, उसे जिसने महत्ता दी और राग और एक समय की पर्याय की महत्ता जिसने छोड़ी। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो एक ठीक कुछ खाने का हो, दूधपाक व्यवस्थित हुआ हो, अरबी के (भजिया) व्यवस्थित हुए हों या क्या तुम्हारे कुछ वे खमण ढोकला, और आराम से ऐसे खाकर बैठा हो। अरे प्रभु! यह वह कहीं तेरी खुराक? आहाहा! और उस खुराक की ओर का राग, वह भी तेरा खुराक? आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों जड़।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! तेरा खुराक तो आनन्द का। वह हंस मोती चरता है। वह हंस अनाज नहीं खाता। समझ में आया? मानसरोवर का हंस, उसका चारा मोती का होता है। उसे अनाज का चारा नहीं होता, वह ज्वार नहीं खाता। आहाहा!

भगवान! तू तो आनन्द का चारा करनेवाला आत्मा। यह राग का चारा करना, वह प्रभु! तेरी चीज़ नहीं। समझ में आया? ....ऐसा तो बाबा हो तो खबर पड़े, नहीं? बाबा ही है, सुन न! देह, वाणी, मन, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब कहाँ तेरे थे और तुझमें घुस गये हैं? और वे तेरे होकर कहाँ रहे हैं? वे तो उनके होकर रहे हैं। आहाहा! यह मूर्ख बीच में मानता है कि मेरे हैं। उठाईगीर है। किसी की चीज़ उठाता है अपने में। समझ में आया? और अपनी चीज़ जो अन्दर आनन्द और ज्ञान से भरपूर पदार्थ, उठाईगीर उसे छोड़ देता है। उसे उठाओ, इसे नहीं। आहाहा! भारी धर्म की व्याख्या भाई ऐसी! आहाहा! यह तो उसकी दया करना, प्रौषध करना, पर्यूषण में आठ अपवास करना। न हो तो एक अपवास करना। संवत्सरी का अन्तिम नकोरडो अपवास। हो गया। एक अपवास किया, हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! मर जा न सूखकर ऐसे अपवास करके।

परन्तु यह आत्मा अन्दर चिदानन्दप्रभु आनन्द का नाथ, उसे विश्वास में लेकर अनुभव न करे, तब तक सब रण में शोर मचाने जैसा है। वह तेरी आवाज कोई नहीं सुनेगा और तेरा रोना बन्द नहीं होगा। आहाहा! करवट बदल, कहते हैं। भाई! **चूंघा जीव मोख अधिकारी...** अपने इसकी व्याख्या की थोड़ी। आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जिसकी दशा में आत्मा का आनन्दस्वभाव धर्म प्रगट हुआ है। समझ में आया? ऐसे धर्म करें, दया पालन करें और व्रत पालन किये और अपवास कर डाले, सब विकल्प राग है। यहाँ तो **चूंघा जीव मोख अधिकारी...** एक शब्द में तो बहुत डाला है। आहाहा! भगवान सिद्ध तो कर्मरहित। परन्तु मोक्ष के अधिकारी, यह आत्मा के स्वभाव के अनुभव करनेवाले, उन्हें यहाँ के अधिकारी कहते हैं। आहाहा! तब कहते हैं कि अनुभव में सिद्ध न हो, तब तक तो राग-द्वेष हो न? कहे, नहीं। राग-द्वेष की धारा कर्मधारा में गयी। धर्मधारा में ऐसा नहीं होता। आहाहा! **जीव मोख अधिकारी,** लो।

चूंघा जीव का वर्णन। इसकी व्याख्या करते हैं अब।

★ ★ ★

काव्य - २५

चूंघा जीव का वर्णन (दोहा)

चूंघा साधक मोखकौ, करै दोष दुख नास।
लहै मोख संतोषसौं, वरनौं लच्छन तास।।२५।।

अर्थः-चूंघा जीव मोक्ष का साधक है, दोष और दुःखों का नाशक है, सन्तोष से परिपूर्ण रहता है, उसके गुण वर्णन करता हूँ।।२५।।

काव्य-२५ पर प्रवचन

चूंघा साधक मोखकौ, करै दोष दुख नास।
लहै मोख संतोषसौं, वरनौं लच्छन तास॥२५॥

साधक की व्याख्या—चूंघा जीव की। साधक-साध्य द्वार है न। आहाहा! **चूंघा जीव मोक्ष का साधक है।** यह परम पवित्र दशा ऐसी आत्मा की मोक्ष दशा, उसके साधक चूंघा है। क्यों? कि दोष और दुःख के नाशक हैं। राग-द्वेष—दुःख और दोष, इनका तो नाश करनेवाला है, रक्षक नहीं। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष के—धर्म के साधनेवाले वे जीव कैसे होते हैं कि जो दोष और दुःख का तो नाश करते हैं, व्यय कराते हैं। पुण्य और पाप के विकल्प व्यवहाररत्नत्रय राग, आहाहा! वह दुःख और दोष का तो वह नाशक है। धर्मी उसका रक्षक नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब धर्म की अलग जाति! यहाँ तो आठ वर्ष की लड़की और पाँच अपवास किये या पाँच पंचरंगी सामायिक की, ओहोहो! क्या परन्तु? जाओ उसे दो। धूल दो। पाँच पैसा या रुपया दस। दोनों प्रसन्न हो जाये। वह कहे, धर्म किया और धर्म करनेवाले को हमने अनुमोदन किया। हम कर नहीं सकते, परन्तु अब करते हों उन्हें हम कुछ सहायक तो होवें न! धूल भी नहीं तेरे अपवास में, सुन न! ऐई जादवजीभाई! गजब बात ऐसी कठोर! ऐसी बात तो सुनने को मुश्किल पड़े। कहते हैं कि धर्म का अधिकारी उसे कहते हैं कि जितने पुण्य और पाप के भाव, वह दोष और दुःख जानकर उनका नाश करता है।

लहै मोख संतोष। सन्तोष से परिपूर्ण रहता है,... लो। ज्ञाता-दृष्टा रहकर, सन्तोष वेदकर, **वरनौं लच्छन।** उसका लक्षण वर्णन करता हूँ, कहते हैं। उसे सन्तोषी कहते हैं। लक्ष्मी थोड़ी रखना, फलाना, वह नहीं। आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम को जो अनुभव करे, उसे सन्तोषी कहते हैं। और वह वस्तु परिपूर्ण को वेदता है। इस अपेक्षा से उसे स्वयं परिपूर्ण कहते हैं। आहाहा! अता-पता हाथ न आवे इसमें। क्या करना इसमें क्या? उसमें सूझ पड़े कि अपवास करना, सामायिक करना, प्रौषध करना, रात्रिभोजन छोड़ना, कन्दमूल नहीं खाना। अब वह तो सब पर की—जड़ की क्रिया, सुन न! उसमें और तेरा भाव कदाचित् हो तो शुभ है, वह जड़ है, ले। अचेतन है। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा... वह तो **सन्तोष से परिपूर्ण रहता है,...** धर्मी। परिपूर्ण अपना स्वभाव जिसने अनुभव में लिया, परिपूर्ण (दृष्टि) में आवे। अधूरी दशा है या नहीं, वह तो पर्यायदृष्टि में आवे। समझ में आया? मैं तो परिपूर्ण हूँ। सम्यग्दृष्टि धर्मी वह अपने आत्मा को परिपूर्ण मानता है। समझ में आया? **उसके गुण वर्णन करता हूँ।** लो। उसके

गुण का वर्णन करते हैं। वह धर्मी साधक समकिती से लेकर बारहवें गुणस्थान तक साधक कहा जाता है। उसका वर्णन करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - २६

(दोहा)

कृपा प्रसम संवेग दम, अस्तिभाव वैराग्य।
ये लच्छन जाके हियै, सप्त व्यसनकौ त्याग।।२६।।

शब्दार्थ:-कृपा=दया। प्रसम (प्रशम)=कषायों की मन्दता। संवेग=संसार से भयभीत। दम=इन्द्रियों का दमन। अस्तिभाव (आस्तिक्य)=जिन वचनों पर श्रद्धा। वैराग्य=संसार से विरक्ति।

अर्थ:-दया, प्रशम, संवेग, इन्द्रिय दमन, आस्तिक्य, वैराग्य और सप्त व्यसन का त्याग ये चूंघा अर्थात् साधक जीव के चिह्न हैं।।२६।।

काव्य-२६ पर प्रवचन

कृपा प्रसम संवेग दम, अस्तिभाव वैराग्य।
ये लच्छन जाके हियै, सप्त व्यसनकौ त्याग॥२६॥

दया, जिसे—आत्मा को रागरहित दशा प्रगट हुई है, (वह) आत्मा की दया। समझ में आया? अरे! तूने तेरी दया की नहीं कभी, हों! मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा? यहाँ से छूटने के पश्चात् गौशाला नहीं वहाँ। मौसीबा नहीं बैठी है कि चल भाई भानेज। आहाहा! समझ में आया? जिसे दया होती है। जिसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय—जो पर में प्रेम था अर्थात् मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय थी। वह जिसने टाला है आत्मा के भान द्वारा, उसे आत्मा की दया प्रगट हुई है। संसार

का उद्धार करके मोक्ष लेना है, ऐसी दया प्रगट हुई है। पर की दया कौन कर सकता है? बीस वर्ष का जवान मरता हो ऐसा। क्षय लागू पड़ा हो। मुम्बई का पानी लागू पड़ा हो। अब वहाँ कम लगते हैं, हों! पहले बहुत लगता था। मुम्बई का पानी लगता था। ऐई, मूलचन्दभाई! अभी कुछ कम सुनते हैं।

मुमुक्षु : अब हवाफेर....

पूज्य गुरुदेवश्री : हवाफेर। पहले मुम्बई का पानी बहुत लगता था। व्यक्ति जाये नौकरी करने। वर्ष-दो वर्ष-पाँच वर्ष हो, वहाँ पीला एकदम पीला हो जाये। ऐसा था।

हमारे भाई थे न। बड़े भाई को मुम्बई का पानी लगा। हमारे बड़े भाई थे न दीपचन्दभाई। (संवत्) १९५७ में गुजर गये, ५७ में। मुम्बई का पानी लगा। बहुत रूपवान थे। जवान, २८ वर्ष की उम्र। आठ वर्ष का विवाह। बीस वर्ष में विवाह किया था। आठ वर्ष (का विवाह)। २८ या २७ (उम्र) और मेरी उम्र तब ११ (वर्ष) थी। उम्र ११ (वर्ष की) थी। ऐसे पलंग में पड़े थे। ऐ...ई बड़ा मुख, शरीर रूपवान। मुम्बई का पानी लगा वहाँ ऐसा... हो गया। उनके ऊपर कुछ देते फिर सेबफल का मुरब्बा। भाई, आता है न? सेबफल का मुरब्बा आता है। इतनी बरणी आती है, नहीं? तब यह सब देखा था। बरणी भरकर रखते। मुम्बई से आया सेब। सेब का पाक आता है, नहीं? तैयार मुरब्बा आता है। फिर ऐसे पानीवाले को खिलावे। खिलावे, वह रहे नहीं। वह तो मर गये। आहाहा! पानी लगा है, कहते हैं। आवे कुछ पानी... परन्तु यह तो अज्ञान का पानी लगा है इसे। इसे क्षय लगा है। आहाहा! समझ में आया?

यह परदेश में जाये उसे पानी लगे; उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप को छोड़कर पुण्य और पाप (रूप) परदेश—परभाव में जाये, उसे क्षय लागू पड़ता है। आहाहा! अन्तर का क्षय, हों! शरीर भले अच्छा दिखाई दे। अन्तर में उसका कलेजा सड़ गया हो। आहाहा! राग और द्वेष, पुण्य और पाप, संकल्प-विकल्प से... परन्तु उसे धर्मी जिसे तो... ओहोहो! मेरी चीज़ शुद्ध आनन्द को रखने के लिये जिसे निर्मल परिणति प्रगट हुई है। उसे धर्मी और मोक्ष का साधक (कहते हैं)। **प्रसम**—कषायों की मन्दता, लो। यह प्रशम जरा, अकेली मन्दता नहीं। अनन्तानुबन्धी आदि गयी है, उतना उपशमरस प्रगट हुआ है, शान्ति... अन्तर में भगवान आत्मा अकषाय शान्ति का रस

पड़ा हुआ है। उसमें एकाग्र होने से, राग और द्वेष दुःखरूप जानकर छोड़कर भगवान आत्मा में एकाग्र हो, उसे शान्ति प्रगट होती है। अन्तर की शान्ति उसे विश्राम प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? अब प्रत्येक की व्याख्या अलग।

संवेग... खोटे का सब खोटा ही होता है। **संवेग—संसार से भयभीत....** आहाहा! धर्मी तो संसार से हटता है। हटा है। संसार अर्थात्? पुण्य-पाप में लाभ और वह मेरा धर्म, ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह संसार। स्त्री-पुत्र, वह संसार नहीं, वह तो परचीज़ है। वहाँ कहाँ तेरा संसार था? संसार अर्थात् स्वरूप में से संसरण कर—हटकर मिथ्यात्वभाव में आया, उसे संसार कहा जाता है। वह जिसे नाश हुआ है और जिसे शान्ति प्रगट हुई है, और संसार से तो (डर लगा है)। आहाहा! आता है न 'चौगति दुःख से डरी', नहीं? चार गति के दुःख से जिसे डर लगा है। वह स्वर्ग के भी सुख को दुःख मानता है। उससे भयभीत है। आहाहा! अरे! कहीं स्वर्ग का भी पद मिल जाये (वह) दुःख है। धर्मी को स्वर्ग के सुख में दुःख भासित होता है। आहाहा! यहाँ तो अभी यह पाँच-पच्चीस हजार-लाख-दो लाख-पाँच लाख हों, दस लाख हों और यह सुखी है। समझ में आया? पैसे टके से सुखी है, ऐसा कहते हैं या नहीं? उसके पास हाम, दाम और ठाम है। किसका? भटकने का। आहाहा! कठिन बात ऐसी! ऐसा वीतराग का मार्ग होगा? ऐसा जैनधर्म होगा ऐसा? आहाहा!

जिसने अन्दर पुण्य और पाप के भाव का नाश किया है। वह मुझमें नहीं, मुझमें तो शान्ति है। ऐसा जो संसार से भयभीत हुआ है। अरेरे! भव मिले (वह) दुःख है। जन्म, वह कलंक है। आत्मा अनन्त आनन्द का नाथ, उसे अवतार कलंक है, कहते हैं। आता है न यह क्या? (जन्म) कलंक शर्मजनक।

मुमुक्षु : जग में जनम कलंक सम...

पूज्य गुरुदेवश्री : शर्मजनक कलंक। आहाहा! अरे! अतीन्द्रिय भगवान का चमड़ी में आना, आहाहा! गधा मर गया हो, उसका जो चमड़ा सड़ा हुआ, उसमें एक सेर चने के आटे में चार सेर घी पिलाकर मैसूर बनाया हो, उस मैसूर को दुर्गन्धित चमड़े के उसमें लपेटे। इसी प्रकार यह भगवान अमृत के सागर (को) मुर्दे—इस सड़े हुए मुर्दे रजकण धूल है, उसमें लपेटा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

पूरे जगत से, विकल्प से लेकर पूरा जगत उससे धर्मी उदास है। आहाहा! भले गृहस्थाश्रम में हो, परन्तु वह गृहस्थाश्रम में अर्थात् क्या? राग का भाग, वह गृहस्थाश्रम है। राग से मुक्त है आत्मा। आहाहा! उसे संसार से भय है। वह पुण्य के भाव से भी डरता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे, यह वह ऐसा धर्म कैसा होगा? अपने तो ऐसा सुनते थे कि अपवास करना और पर्यूषण में ऐसा करना और वैसा करना। मन्दिरवाले को आँगी रचना, मूर्ति को ऐसा डालना, इत्र चोपड़कर ऐसा चोपड़ना, चाँदी के फूल ऐसे डालना। जय महाराज! वहाँ कहाँ तेरा भगवान है कि भगवान तुझे दे? तेरा भगवान तो यहाँ पड़ा बैठा है। समझ में आया? आहाहा!

एक बार वहाँ पालियाद में चातुर्मास था न ७५। तब गये थे न। उसका क्या कहलाता है? महन्त। उसका पिता था। हाँ। उसने कहा था, महाराज मेरे यहाँ चरण करे। बड़ा है न, जमीन बड़ी। क्या कहलाती है वह? जगह... जगह। गये थे न अभी। उसका पिता था। परन्तु उसे इतना इतना। उपाश्रय वापस बतलाया उसने, हों। महाराज! यह उपाश्रय। कहा, इस उपाश्रय में चातुर्मास किया है हमने (संवत्) १९७५ में। वह ओणंद से गये थे न यह बोटाद से पालियाद। फिर वहाँ ७५ में चातुर्मास था न बोटाद-पालियाद। यह उपाश्रय साथ में ही है उसका। परन्तु तब उसका पिता ऐसे बैठा था और ऐसे सुनते थे। ऐसे बरामदे में उसके उपाश्रय में। कितने ही लोग आये होंगे इसलिए वहाँ उसका मन्दिर हो न मन्दिर, दर्शन करने जाये। तब कहे, परन्तु वहाँ कहाँ ठाकुर है? ठाकुर तो यहाँ है। स्वयं ठाकुर है, ऐसा बोले। ठाकुर वहाँ कहाँ है मन्दिर में? ठाकुर तो यहाँ बैठा। यहाँ तो आओ पहले, ऐसा। उसे वह कहे, पिराणुं मिला है न। *पिराणा के पुत्र सही न, ऐसा। बात दूसरी सच्ची एक न्याय से कि ठाकुर, यह आत्मा ठाकुर है। वहाँ मन्दिर में ठाकुर है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, जिसे संवेग है। संसार से भयभीत है, वह धर्मी कहलाता है। उसे दम—इन्द्रियों का दमन है। अतीन्द्रिय आनन्द में इन्द्रिय के आनन्द का जिसे रस नहीं।

* पिराणा—गुजरात का एक मुस्लिम पंथ है।

हो भाव, रस नहीं। इन्द्रिय के विषय का रस उसे नहीं। क्योंकि भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसका जिसे रस प्रगट हुआ है, उसे इन्द्रिय के रस में रस नहीं। समझ में आया? समकिती ऐसे ९६ हजार स्त्रियों को भोगे, ऐसा कहे, दिखाई दे। नहीं, वह तो आनन्द को भोगता है। आहाहा! यह वह कोई बात! चेष्टा सब हो परन्तु वह तो जड़ की और पर की (चेष्टा है)। कहते हैं, जिसे इन्द्रिय का दमन.... यह **इन्द्रिये जिणित्ता** आता है। जो **जो इंदिये जिणित्ता।** पाँच इन्द्रिय और खण्ड-खण्ड (ज्ञान) और उसका विषय, उसकी दृष्टि छूटकर अतीन्द्रिय हुआ है। अतीन्द्रिय आत्मा का अनुभव हुआ है, उसे इन्द्रिय का दमन होता है, आस्तिकता होती है। चाहे जैसी सूक्ष्म बात और सूक्ष्म भाव हो, आस्था है। एक शरीर में अनन्त निगोद के जीव। एक निगोद आलू, शक्करकन्द का राई जितना टुकड़ा, उसमें असंख्य तो शरीर। एक शरीर में अनन्त सिद्ध से अनन्तगुणे जीव, ऐसा सुनकर भी उसे आस्था है। बराबर है। समझ में आया? आहाहा!

एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, वह केवली। समय एक और काल तीन। आस्था है। बराबर वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? उसे कोई शंका-सन्देह धर्मी को नहीं होता। क्योंकि सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, स्वयं मैं आत्मा सर्वज्ञस्वभावी ऐसा जहाँ ऐसा अनुभव में आया तो वह सर्वज्ञ होने की ऐसी आस्था है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात भाई ऐसी! ऐसी बातें जैनधर्म की होंगी यह? अन्यत्र यह बात कहीं है ही नहीं। आहाहा! (जैन में) जन्मे उन्हें खबर नहीं। यह यहाँ कहते हैं। आस्तिक है। वैराग्य है। वैराग्य... पूरी दुनिया से हट गया है और सप्त व्यसन का त्याग है। धर्मी को सप्त व्यसन नहीं होते। समझ में आया? ऐसे साधकजीव के चिह्न हैं। उन सात व्यसनों की व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १६८, आसोज शुक्ल ३, बुधवार, दिनांक २२-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद २७ से २९

....की व्याख्या है। सप्त व्यसन के नाम हैं, लो। साधकजीव को सप्त व्यसन नहीं होते। धर्म का साधक जो होता है सम्यग्दृष्टि (कि) जिसे आत्मा का आनन्द रुचा है और पर में कहीं सुख है, यह बात—मिथ्यात्व का नाश किया है, उसे धर्मी और साधक कहते हैं। बाकी संसार के सुख जिसे रुचे हैं और उसका साधन करता है, उसका साध्य तो नरक और निगोद है। नरक और निगोद को साध रहा है। अरे, अरे! समझ में आया? जिसे आत्मा वस्तु है पदार्थ चैतन्य भगवान... इन्द्रियाँ, वे कहीं आत्मा नहीं। यह शरीर भी आत्मा नहीं, तथा अन्दर पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह भी आत्मा नहीं। जो आत्मा नहीं, उससे वह ज्ञात हो, ऐसा वह नहीं। बराबर है? अर्थात् कि जो आत्मा नहीं, उससे धर्म हो, ऐसा नहीं है।

आत्मा तो आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, ऐसा उसका 'मैं'पना जिसे कहते हैं... आस्तिकता आयी थी न अन्दर। आस्था—सत्ता की श्रद्धा। तो आत्मा तो आनन्द और ज्ञान की सत्तावाला तत्त्व है। उसकी जिसे श्रद्धा हो, उसे स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन होता है। उसे ऐसे जुआ आदि के सात दोष नहीं होते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सात व्यसन—द्रव्य और भाव, दो प्रकार के वर्णन करेंगे। जिसे धर्म प्रगट हुआ है और धर्म में, जिसे आत्मा में आनन्द है, ऐसा स्वाद आया है, आहाहा! ऐसे आनन्द के स्वादिया जीव को जगत के किसी पदार्थ में सुख है, यह होता नहीं। इसलिए उसे यह सात व्यसन नहीं होते। समझ में आया? सात व्यसन के नाम।

★ ★ ★

काव्य - २७

सप्त व्यसन के नाम (चौपाई)

जूवा आमिष मदिरा दारी।
आखेटक चोरी परनारी।।
एई सात विसन दुखदाई।
दुरित मूल दुरगतिके भाई।।२७।।

शब्दार्थ:–आमिष=मांस। मदिरा=शराब। दारी=वेश्या। आखेटक=शिकार। परनारी =पराई स्त्री। दुरित=पाप। मूल=जड़।

अर्थ:–जुवा खेलना, मांस खाना, शराब पीना, वेश्या सेवन, शिकार करना, चोरी और परस्त्री सेवन। ये सातों व्यसन दु:खदायक हैं, पाप की जड़ हैं और कुगति में ले जानेवाले हैं।।२७।।

काव्य-२७ पर प्रवचन

जूवा आमिष मदिरा दारी।
आखेटक चोरी परनारी॥
एई सात विसन दुखदाई।
दुरित मूल दुरगतिके भाई॥२७॥

जिसे जुआ खेलना नहीं होता। जिसे आत्मा की दृष्टि है और आत्मा का साधन जिसे करना है, सिद्धपद की प्राप्ति के लिये—मुक्ति के लिये भगवान आत्मा की ओर के भाववाली दशा है, उसे यह जुआ हो नहीं सकता। जुआ का भाव उसे होता नहीं। माँस खाना, यह मछलियाँ और माँस को खाये, वह धर्मी नहीं, अधर्मी है। माँस खाना, वह धर्मी को नहीं होता। जिसे आत्मा का साधन करके निज परमात्मपद की प्राप्ति करनी है, उसे माँस खाना हो नहीं सकता। समझ में आया? आहाहा! **मदिरा।** उसे शराब नहीं होती। मदिरा मति को भ्रम करने का निमित्त है। धर्मी जो सुख का साधन साधता है, उसे मदिरापान नहीं हो सकता। समझ में आया?

वेश्यागमन। **दारी** है न **दारी।** उसे वेश्यागमन नहीं होता। उसे शिकार नहीं होता। **आखेटक...** शिकार का भाव और वह शिकारी होता नहीं। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द का साधन करना है। दु:ख का साधन करना हो, उसे वह सब हो। आहाहा! समझ में आया? आत्मा की शान्ति जो है अन्दर में, वह जिसे प्राप्त करनी है, ऐसे जीव की दृष्टि तो आनन्द और शान्ति के ऊपर होती है, इससे उसे मदिरा पीने का भाव नहीं हो सकता। शिकार। वेश्यासेवन। है न? **आखेटक।**

चोरी। चोरी और परस्त्रीसेवन नहीं होता। चोरी नहीं होती चोरी। किसी के धाड़ा पाड़ने का, यह बात उसे नहीं होती। और परस्त्रीसेवन नहीं होता। परस्त्री का गमन समकिती (को नहीं होता)। यद्यपि वह तो लोक के अच्छे सज्जन को भी नहीं होता। परन्तु जिसे आत्मा की शान्ति—आनन्द प्रगट करना है, ऐसे आनन्द के रसिया को परस्त्री नहीं हो सकती। **एई सात विसन दुखदाई...** दु:ख के दातार हैं। नरक और निगोद, चार गति में भटकने का साधन है। यह व्यसन में तो स्वर्ग आदि तो होते नहीं, नरक और निगोद का साधन है। आहाहा! **दुरित।** दु:खदायी है। दुरित अर्थात् वह पाप की जड़ है। **दुरित मूल दुरगतिके भाई... और कुगति में ले जानेवाले हैं।** आहाहा! ऐसे भाववाले तो नरक में दौड़कर दुर्गति में जानेवाले हैं। समझ में आया? अब इसके भाव। **व्यसनों के द्रव्य और भावभेद।**

★ ★ ★

काव्य - २८

व्यसनों के द्रव्य और भाव भेद (दोहा)

दरवित ये सातौं विसन, दुराचार दुखधाम।
भावित अंतर कलपना, मृषा मोह परिनाम।।२८।।

अर्थ:–ये सातों जो शरीर से सेवन किये जाते हैं, वे दुराचाररूप द्रव्य–व्यसन हैं, और झूठे मोहपरिणाम की अन्तरंग कल्पना, सो भाव–व्यसन हैं। द्रव्य और भाव दोनों ही दु:खों के घर हैं।।२८।।

काव्य-२८ पर प्रवचन

दरवित ये सातौं विसन, दुराचार दुखधाम।
भावित अंतर कलपना, मृषा मोह परिनाम॥२८॥

यह सात व्यसन **दरवित** अर्थात् **जो शरीर से सेवन किये जाते हैं, वे दुराचाररूप द्रव्य-व्यसन हैं। भावित अंतर कलपना....** वह बाहर की बात है। अब **झूठे मोहपरिणाम की अन्तरंग कल्पना।** मिथ्यात्वभाव की मोहकल्पना, वह भावव्यसन है। भावव्यसन से अनादि से आदतन हो गया है। उस व्यसन का धर्म (के) साधकजीव को त्याग होता है। भाषा बैठे न! **दरवित ये सातौं विसन, दुराचार दुखधाम।** शारीरिक बात है। और यह अन्तर कल्पना है मिथ्यात्व। **भावित अंतर कलपना, मृषा मोह परिनाम।** झूठे मिथ्यात्व के परिणाम हैं। **सप्त भाव व्यसनों का स्वरूप।**

★ ★ ★

काव्य - २९

सप्त भाव व्यसनों का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

अशुभमैं हारि शुभजीति यहै दूत कर्म,
देहकी मगनताई यहै मांस भखिवौ।
मोहकी गहलसौं अजान यहै सुरापान,
कुमतिकी रीति गनिकाकौ रस चखिवौ।।
निरदै ह्वै प्रानघात करवौ यहै सिकार,
परनारी संग परबुद्धिकौ परखिवौ।
प्यारसौं पराई सौंज गहिवेकी चाह चोरी,
एई सातौं विसन बिडारैं ब्रह्म लखिवौ।।२९।।

शब्दार्थ:-दूत (द्यूत)=जुआ। गहल=मूर्च्छा। अजान=अचेत। सुरा=शराब।

पान=पीना। गनिका=वेश्या। सौंज=वस्तु। बिडारैं=विदारण करें।

अर्थः–अशुभ कर्म के उदय में हार और शुभ कर्म के उदय में विजय मानना, यह भाव जुआ है, शरीर में लीन होना, यह भाव मांस–भक्षण है, मिथ्यात्व से मूर्च्छित होकर स्वरूप को भूलना, यह भाव मद्यपान है, कुबुद्धि के मार्ग पर चलना, यह भाव वेश्या सेवन है, कठोर परिणाम रखकर प्राणों का घात करना, यह भाव शिकार है, देहादि परवस्तु में आत्मबुद्धि रखना, सो भाव परस्त्री संग है, अनुरागपूर्वक परपदार्थों के ग्रहण करने की अभिलाषा करना, सो भाव चोरी है। ये ही सातों भाव व्यसन आत्मज्ञान से विदारण करते हैं अर्थात् आत्मज्ञान नहीं होने देते।।२९।।

काव्य-२९ पर प्रवचन

अशुभमैं हारि शुभजीति यहै दूत कर्म,
देहकी मगनताई यहै मांस भखिवौ।
मोहकी गहलसौं अजान यहै सुरापान,
कुमतिकी रीति गनिकाकौ रस चखिवौ॥
निरदै ह्वै प्रानघात करवौ यहै सिकार,
परनारी संग परबुद्धिकौ परखिवौ।
प्यारसौं पराई सौंज गहिवेकी चाह चोरी,
एई सातौं विसन बिडारैं ब्रह्म लखिवौ॥२९॥

ब्रह्म अर्थात् आत्मा। पूर्णानन्द का स्वरूप, वह ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें आनन्द है। आनन्दस्वरूप ऐसा भगवान, उसे जानने में यह सब विघ्नवाले भावव्यसन होते हैं, वह आत्मा को जान नहीं सकता। समझ में आया? उसे धर्म नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। **अशुभमैं हारि....** (यह पद) बनारसीदास ने खास डाला है। यह पाप का उदय हो और प्रतिकूलता आवे, उसे वह हार माने, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अशुभ में हार माने। **अशुभ कर्म के उदय में हार।** आहाहा! हार गये भाई। नहीं खाने का, नहीं पीने का और प्रतिकूलता रोग ऐसे अशुभ के उदय में आत्मा हार गया, ऐसा जो माने, वह जुआ है। भाव जुआ है। कहो, भीखाभाई! यह गजब! अशुभ में हार माने।

निर्धनता, बाँझपन, शरीर में रोगपना, व्यापार-धन्धा चले नहीं, खाने-पीने के साधनों में संकट लगे, उसे ऐसा लगे कि अरेरे! भव हार गये। वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह जुआ खेलनेवाला है। जुआ—खेल करता है वह....। जुआ खेलता है। समझ में आया?

और **शुभ जीति...** और पुण्य के उदय से शरीर अच्छा, लक्ष्मी अच्छी और अनुकूलता बाहर की सामग्री, पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ पूँजी (हो) तो अपने जीते, ऐसा माननेवाले भावजुआ खेलनेवाले हैं। वे मिथ्यादृष्टि हैं, उन्हें धर्म नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा! हमारे तो सब सुविधा है, भाई! सब सुविधा। कुटुम्ब-कबीला, पैसा, हाम-दाम-ठाम, मकान, पैसा, इज्जत। यह कारखाना हमारे ऐसे लगे हैं कि उसमें से ऐ..इ महीने में दस हजार-बीस हजार आमदनी आया ही करे।

मुमुक्षु : चलते हों, वह स्वीकार न करे कि चलते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या चले? धूल चले उसमें उसे क्या? पुण्य के उदय से (प्राप्त) अनुकूल सामग्री, वह मेरी है और उसमें मुझे मजा आता है, वह जुआ खेलनेवाला है। ऐई मूलचन्दभाई! भाव जुआ खेलनेवाला है। आहाहा! शुभ, भाव जो है शुभ, वह भी पुण्य है। वह भी उसे अपना माननेवाला जुआ खेलनेवाला है और उसमें से यह अनुकूलता मिले, इसलिए हम सुविधावाले हैं, ऐसा (माननेवाला), वह जुआ खेलनेवाले हैं। अरे, गजब यह! कठिन काम, नहीं?

कहते हैं कि अरे! उसमें जीता गया तू पर के कारण। समझ में आया? उसमें तूने जीत मानी, मूढ़ है। आहा! आबाल-गोपाल हमारे सब है। भरा घर है। भरा घर न? तू तो खाली है न? समझ में आया? जादवजीभाई! पुत्र अच्छा, पुत्रियाँ अच्छी, बहू अच्छी मिले। और पुत्रियों को यहाँ अच्छा खान-आहार आदि, उसमें हम जीते। जीते और सामने पड़े। वह मूढ़ है, कहते हैं। ऐई मलूकचन्दभाई! है इसमें यह? है? **शुभजीति यहै दूत कर्म,....** लो। शुभकर्म के उदय में विजय मानना। हम तो मिल मालिक, हमको तो देवगति अच्छी मिली। ऐसे शुभ में जो हार गये हैं, कहते हैं। जीत मानते हैं, वे हार गये हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! अभी हम अनुकूल में हैं। ऐसा मानते हैं न? धन्धा-पानी में लड़के भी ऐसे पके हैं कि सब धन्धे चढ़ गये व्यवस्थित। एक-एक से बढ़कर।

और व्यवस्थित धन्धे में चढ़ गये। अपने अब कुछ चिन्ता रही नहीं। वे सब लड़के पाँच-पाँच हजार महीने में कमावे। मूर्ख हो, कहते हैं। आहाहा! पूरी दुनिया मूर्ख है। ऐई चन्दुभाई! क्या होगा यह ऐसा! बनारसीदास कहते हैं कि वे तो जुआ खेलनेवाले हैं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि मोह में जीते गये हैं वे। बाहर से अनुकूलता को अपनी जीत माननेवाले मिथ्यात्व में जीते गये हैं। आहाहा!

आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप है, उसकी वृद्धि होकर शुद्धि हो, वह उसकी जीत है। समझ में आया? **शुभ कर्म के उदय में विजय मानना यह भावजुआ है।** आहाहा! घुस गये हैं मिथ्यात्व में, ऐसा कहते हैं। लड़के अच्छे हुए न सब, अब हम फाव्या में हैं अभी। अमेरिका से लड़का आया न। चन्दुभाई! शान्तिभाई भलीभाँति कमाते हैं। अपने अब निश्चिन्तता से खाओ-पीओ यहाँ। तुम्हारे तो नहीं परन्तु वह तुम्हारा मणिभाई था न (वह) खाखरी करता, नहीं? वह क्या करता है? उस घी में। परन्तु अभी पशुओं का तो डॉक्टर न! यहाँ जब रहते तब यहाँ भी करते थे। भाई! भाखरी गेहूँ की तली हुई। घी में तली हुई पूरी-पूरी। वह और दूध खाये। बस ऐई! पोची-पोची। वह आटा गेहूँ का कठोर बाँधकर तेल-बेल डाला हो अन्दर मोण व्यवस्थित। फिर उसकी इतनी-इतनी बनाते थे वे।

मुमुक्षु : तेल नहीं डाले, घी डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : घी डालते होंगे, ऐसे घी डालते होंगे। मोण में घी। वह कुछ करते थे। अपने को कहाँ (खबर है)? यहाँ तो आहार लेने जायें, वह एक-दो दे। हाँ, एक-दो ऐसी अन्दर से नरम। तेल में भी नरम होता होगा यह। वह रोटी में मोण डालते हैं न तेल, नहीं? तेल का मोण डालते हैं। प्रायः तेल का ही मोण आवे। घी का होगा। परन्तु वह भाखरी खाते थे। खबर है न तुमको तो। वे और इकट्ठे रहते न पहले। कहते हैं कि उसमें अनुकूलता है, उसमें जीत मानना, वह जुआ है, बापू! आहाहा!

कहा था न एक बार। दृष्टान्त नहीं दिया था? विसाश्रीमाली बनिया वसा, जामनगर में। वह प्रतिदिन चूरमा के लड्डू खाये। प्रतिदिन। दूसरा आहार ही नहीं। रोटी-रोटला कोई आहार ही नहीं। उपाश्रय के पास रहते थे। है जामनगर का यहाँ कोई? वे वसा... वसा कहलाते। विसाश्रीमाली। चूरमा का लड्डू प्रतिदिन। रोटी-रोटला दूसरी चीज़ ही

नहीं। उसमें इकलौता पुत्र जवान मर गया। जलाकर आये। इकलौता। रोवे... रोवे। जलाकर आये। हमको खबर नहीं... उपाश्रय के बहुत थे। जलाकर आये। आँसू की धारा से रोवे। घर में चूरमा बनाया लोगों ने। ऐई मूलचन्दभाई!

सगे-सम्बन्धियों ने इकट्ठे होकर चूरमा बनाया। भाई! तुम दूसरा नहीं खा सकोगे और रोटी-रोटला खाओगे तो इस पुत्र के पीछे तुम जाओगे वापस, हों! परन्तु पचता ही नहीं। उसे वह खुराक ही नहीं थी रोटी-रोटला की। चूरमा और उड़द की दाल हो या न हो, खबर नहीं। परन्तु मूल तो उसके साथ उड़द की दाल मिले। चूरमा के साथ उड़द की दाल हो न, व्यवस्थित एकरस। परन्तु चूरमा ही खाता। इकलौता पुत्र (गुजर गया)। सदड़ी समझते हैं? उड़द... उड़द। उड़द की दाल होती है न, ऐसे छाछ डालकर ऐसे। दाल और छाछ दोनों एक साथ एकरस हो जायें। ऐसे अलग-अलग हो जाये, वह एकरस नहीं कहलाती। यह तो व्यवस्थित रस ऐसा हो जाये। चूरमा और वह। परन्तु एक व्यक्ति तो ऐसा था। चूरमा लड्डू हो दो-तीन और घी डाले सेर। ऐसे थे। समझ में आया? ऐसे के ऐसे लोग और माने कि अपने मजा है अपने।

कहते हैं कि सुविधा में जीता, जीत मानी वह जुआ खेलनेवाला है, कहते हैं। उसने लड्डू खाये हों वापस। आँख में से आँसू बहते जायें। इकलौता जवान पुत्र। जलाकर आये। रोटी बनाओ, कहे भाई। अरे भाई! तुमको नहीं पचेगी, हों! बाजरा का रोटला घी डालकर बनाओगे तो भी नहीं पचेगा। वे चूरमा के लड्डू। ऐसे पड़े आँसुओं की धारा। है रस चूरमा का? इसी प्रकार ज्ञानी को जगत की सुविधा का रस है ही नहीं अन्दर में। वह चूरमा के लड्डू जैसी सब सुविधा व्यवस्थित हो बाहर में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? धर्मी को बाहर की सुविधा में रस होता ही नहीं। उसे तो आत्मा के आनन्द का रस है। वह बाहर की सुविधा में धर्मी भोगता दिखायी दे, परन्तु वह आँसू गिराता हुआ और लड्डू खाये, ऐसा है। अज्ञानी को उसमें रस आ जाता है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि जुआ खेलनेवाले हैं। गजब बातें भाई यह! व्यसन की व्याख्या ऐसी गजब अलग प्रकार की यह।

यहै दूत कर्म, देहकी मगनताई.... आहाहा! क्या कहते हैं? यह शरीर माँस-हड्डियाँ है। यह उसकी एकताबुद्धि (में) मग्न, वे माँस के खानेवाले हैं। आहाहा! देह

में जिसकी एकताबुद्धि, मग्नता, प्रीति और रुचि है, वे माँस के खानेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! देह मिट्टी-जड़-धूल की मग्नता, वह तो मिथ्यात्वभाव है। उसे, आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप है, उसकी मग्नता तो है नहीं। अरे, गजब डाला! बहुत सरस। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! यह देह-मिट्टी, यह तो किसी के जड़ जूठन है। ऐसे शरीर तो अनन्त बार साथ में आ गये। उसमें एकता।

श्रीमद् ने कहा न यह। 'सकल जगत है ऐंठवत् अथवा स्वप्न समान। यह कुछ जो ज्ञानी दशा, बाकी वाचा ज्ञान।' समझ में आया? आहाहा! अरे! धर्म वह किसे कहते हैं? भाई! और सुख के पंथ की पद्धति कोई अलौकिक है। धर्म की दशा कहो या सुख के पंथ की (पद्धति) कहो। यह सब दुःख के पंथ हैं। शरीर मिट्टी-जड़, उसमें मग्नता—एकताबुद्धि, वह माँस खानेवाले हैं। आहाहा! ऐसे माँस न खाते हों। माँस सज्जन खाये? मुनि हो वह खाये? तथापि देह की एकताबुद्धि, वही माँस खाना है, कहते हैं। वह बड़ा व्यसन है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु है। अरे! उसकी जिसे रुचि और प्रेम नहीं और देह में अकेला प्रेम और मग्नता है, (वह) माँस खानेवाले, भाव से माँस खानेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया?

मोहकी गहलसौं अजान यहै सुरापान,... मिथ्यात्व से मूर्च्छित होकर.... राग-द्वेष में मिथ्यात्व से मूर्च्छित हो गया है, वह मदिरा पीता है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप... वह आनन्द का रसिया आनन्द को स्वादता है, उसका नाम धर्म है। आहाहा! अज्ञानी मोह की गहल—मिथ्यात्व से मूर्च्छित हो गया है। पुण्य में धर्म है, पाप में मजा है—इत्यादि विपरीत मान्यता में घिर गया है, मूर्च्छित है। **स्वरूप को भूलना यह भाव मद्यपान है।** धर्मदासजी! गजब बात यह! वह भावमदिरा दुर्गति को देनेवाली है। चार गति के दुःख को देनेवाली है। धर्म के साधक को वह भाव होता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा धर्म... धर्म... बातें करे, हम धर्म करते हैं। क्या बापू! तुझे अभी धर्म किसे कहना, इसकी खबर नहीं। कैसे धर्म होता है और किस प्रकार से होता है और उस धर्म के भाव किसे कितने होते हैं और किस भाव का उसे त्याग होता है, इसकी खबर बिना धर्म कहाँ से होता होगा? मूलचन्दभाई! ऐसा धर्म है। आहाहा!

कहते हैं, **मोहकी गहलसौं....** मिथ्यात्व से पागल हो गया है। आहाहा! भ्रमणा

के कारण जहाँ-तहाँ हम सुखी हैं। पैसे-टके से, स्त्री, पुत्र, आहाहा! इज्जत सब व्यवस्थित। मिथ्यात्व की भ्रान्ति में अपने को अज्ञान है, स्वरूप का भान नहीं। ऐसे अज्ञानी पर में मूर्च्छित होते हुए भावमदिरा को पीये हुए हैं। भावमदिरा पीनेवाले हैं। समझ में आया? ....धर्म गजब कहे, ऐसा महँगा! वह तो खा-पीकर लहर करे (उसमें) मग्नता और फिर अपने धर्म ऐसा है, ऐसा सच्चा मानना। आहाहा! ऐसा नहीं, भाई! जिसे आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द मैं... मैं (ऐसा) जिसमें हो रहा है। 'मैं' ऐसा जिसमें हो रहा है ऐसा 'मैं' वह तो आनन्द और ज्ञान का सागर है। वह राग मैं, शरीर मैं, वह उसमें नहीं। समझ में आया? 'मैं' जो है उसका धर्म साधन निर्मल और वीतरागी पर्याय होता है। 'मैं'... वह राग को मैंपना माननेवाले, पुण्य को मैंपना माननेवाले, वे तो मदिरा पीनेवाले हैं। मदिरा पी है, कहते हैं। आहाहा!

यह बनारसीदास पहले व्यभिचारी (शृंगारी कवि) थे। इस (शास्त्र के) करनेवाले। जवान अवस्था। इकलौता पुत्र उनके पिता को। व्यभिचारी। और व्यभिचार की पुस्तकें बनायीं हुई। हाँ, कवि थे, पहले व्यभिचारी थे, उसमें उन्हें धर्म का भान हुआ। ओहोहो! सत्समागम हुआ। भान हुआ अन्दर। अरे रे, हम तो राग और विकल्प के पुण्य-पाप से भिन्न हैं। राग और पुण्य में हम नहीं, तो फिर राग और पुण्य के फल जो यह बाहर की धूल सुख-सुविधा में तो आत्मा है ही नहीं। आहाहा! ऐसा भान होने पर व्यभिचार की पुस्तकें (जो) बनायी हुई थी, उन्हें गोमती में डाल दिया। गोमती कहाँ आयी?

मुमुक्षु : लखनऊ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : लखनऊ। वहाँ रहते होंगे आगरा में। आहाहा! गोमती नदी है। आगरा के किनारे है कुछ?

मुमुक्षु : लखनऊ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लखनऊ। वहाँ रहते होंगे, ऐसा। वहाँ से गोमती निकली होगी।

है न अपने पास पुस्तक। बैठे थे उस नाव में पुस्तक लेकर। नाव में से नीचे नदी में डाली। व्यभिचार की बनायी हुई पुस्तकें डाल दीं। धर्म का रंग चढ़ा। आत्मा रागरहित,

पुण्यरहित, पापरहित, बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता रहित अर्थात् कि बाहर के ज्ञेय से भी रहित। अन्दर का ज्ञेय—पुण्य और पाप, आहाहा! उससे रहित (और) आनन्द और ज्ञान से सहित, ऐसा जहाँ भान हुआ, पुस्तकें डाल दीं। लड़के व्यभिचार के रास्ते चढ़ेंगे। फिर यह बनाया। धर्म समझने के पश्चात् यह बनाया है। समझ में आया? कि व्यसनी थे सही न। यह भावव्यसन का स्वरूप वर्णन किया है ऐसा। जवान व्यक्ति थे अन्दर। खाने के-पीने के क्या कहलाते हैं वे? हिन्दुस्तान की भाषा कुछ कहलाये। परस्त्री के व्यभिचारी थे। परन्तु जहाँ समझ में आता है और भान होता है, तब फिर वह परस्त्री का व्यभिचारपना वहाँ रहता नहीं। आहाहा! कहते हैं, **मिथ्यात्व से मूर्छित...** भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा को भूलकर पर में मूर्च्छा करना राग आदि में, वह भाव-मदिरा है। वह मदिरा पीनेवाला है। उसे धर्म नहीं हो सकता। आहाहा!

कुमतिकी रीति गनिकाकौ रस चखिवौ। कहो, समझ में आया? **कुबुद्धि के मार्ग पर चलना...** कुयुक्ति और कुतर्क। उसके कुमति के रास्ते चलना, वह परनारी का सेवन है। वह वेश्या का सेवन है। **कुबुद्धि के मार्ग पर चलना, यह भाववेश्यासेवन है।** आहाहा! वह भव है नहीं, परभव किसने देखा? आत्मा और तीनों काल ऐसा है, ऐसी कुबुद्धि-कुतर्क, वह कुबुद्धिवाला वेश्या का सेवन करनेवाला है। कुबुद्धि स्वयं वेश्या जैसी है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह संसार की चतुराई, पढ़े-गुने की बड़ी होशियारी हो, वह सब कुबुद्धि है। उस कुबुद्धि में एकाग्रता, वह वेश्या का सेवन है। गजब बात! समझ में आया? **गनिकाकौ रस चखिवौ।** वेश्या।

निरदै ह्वै प्रानघात करवौ यहै सिकार,... अरेरे! भगवान आत्मा को भूलकर, निर्दय परिणाम से प्राण को घात करना, उसका नाम शिकार है। वह शिकार करता है, कहते हैं। आहाहा! **कठोर परिणाम रखकर प्राणों का घात करना, यह भावशिकार है।** भावशिकारी को धर्म नहीं हो सकता। आहाहा! गजब! ऐसा स्पष्ट बिना इसे समझ में नहीं आता। इसलिए स्पष्ट करते हैं। समयसार नाटक लिया था उसमें से... आहाहा!

परनारी संग परबुद्धिकौ परखिवौ... देहादि परवस्तु में आत्मबुद्धि रखना। देह में, राग में, शरीर में, वाणी में, मन में, पैसे में आत्मबुद्धि रखना, वह परस्त्री का संग है। वह परस्त्री का सेवन करनेवाला है। परपदार्थ को मेरा मानना, वह परस्त्री का सेवन

करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? **परनारी संग परबुद्धिकौ परखिवौ।**

प्यारसौं पराई सौंज... आहाहा! वह अनुरागपूर्वक परपदार्थ का ग्रहण करना। शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी की एकताबुद्धि से ग्रहण करना, वह चोरी है। वह किसी की चीज़ है, उसे ग्रहण—लेना उसका नाम चोर है। आहाहा! समझ में आया? प्रेम की एकताबुद्धि से परपदार्थ को ग्रहण करना, पकड़ना, लेना, वह तो चोर है, कहते हैं। बड़ा चोर है। आहाहा! समझ में आया? सर्वविशुद्धि में आता है। **अनुरागपूर्वक परपदार्थों के ग्रहण करने की अभिलाषा।** प्रेम से—रस से परवस्तु को पकड़ना और लेना, उसका नाम भावचोरी है। समकिती को वह हो नहीं सकती और वह हो, वहाँ समकित होता नहीं। समझ में आया? भावचोरी आ गया, लो।

चाह चोरी... एई सातौं विसन बिडारैं ब्रह्म लखिवौ। यह सात प्रकार के व्यसन। व्यसन का अर्थ दुःख होता है। यह सात प्रकार के भाव, वे दुःखरूप। उनके प्रेमवाले को, आत्मा ब्रह्मानन्दस्वरूप है, उसे जानने में वे विघ्न करनेवाले हैं। **बिडारैं ब्रह्म लखिवौ।** है न? आहाहा! **ये ही सातों भावव्यसन आत्मज्ञान को विदारण करते हैं।** पर की एकताबुद्धि के यह सब प्रकार वर्णन किये हैं। समझ में आया? **ये ही सातों भावव्यसन आत्मज्ञान को विदारण करते हैं अर्थात् आत्मज्ञान नहीं होने देते।** यह सात भावव्यसन आत्मा का धर्म—समकित धर्म होने नहीं देते। बहुत सरस बात आयी। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मूल तो आत्मा के अतिरिक्त राग से लेकर परचीज़ में एकताबुद्धि, वह सब (व्यसन) है। माँस खाना, मदिरा पीना, परस्त्रीलम्पट, चोरी, शिकार, सब वह है, ऐसा कहना है। गिरधरभाई! आहाहा! अरेरे! देखो, क्षण में चले जानेवाले हैं। भाई का पुत्र मर गया न, गिरधरभाई के भाई का। चौदह वर्ष का पुत्र। यहाँ आये थे। कान्तिभाई का। कान्तिभाई पहले गुजर गये। लो, वे बड़े कार्यवाहक थे। भतीजा मर गया तो कुछ कर सके नहीं। इस प्रकार तो होता है परन्तु कुछ रख सके नहीं। कीर्तिवाला व्यक्ति है, वह गिरधरभाई, लो।

बेचारा चौदह वर्ष का, नहीं? आठ दिन रहा होगा। कहो, रग टूट गयी। रग टूट गयी न?

मुमुक्षु : हाँ, हेमरेज हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेमरेज हो गया। चौदह वर्ष का। आठ दिन असाध्य। अरेरे! यह असाध्य तो अनादि का है। राग और विकार को अपना माननेवाला, उसे आत्मा का साध्यपना नहीं। वह साध्यवाला नहीं तो असाध्य है। आहाहा! यह शरीर को बाहर से असाध्य होता है। चन्दुभाई! आहाहा! अरे! निजानन्द प्रभु! सहजानन्द की मूर्ति आत्मा की जिसे दृष्टि और स्वीकार नहीं, वे सब असाध्य हैं। साध्य ऐसा जो आत्मा, उसके लिये असाध्य हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह सात भावव्यसन **बिडारैं ब्रह्म लखिवौ...** ब्रह्मानन्द आत्मा को जानने में वे विघ्न करनेवाले हैं, घातक हैं। आहाहा! सात भावव्यसन आत्मज्ञान और आत्मधर्म होने नहीं देते। ऐसी बात है। समझ में आया? करोड़ोंपति, अरबोंपति ऐसा हो पैसेवाला, मग्न-लीन हो। दुनिया ऐसा कहे कि ओहोहो! सुखी है। परन्तु वह भावव्यसन के सेवन करनेवाले हैं। व्यसन का अर्थ ही दुःख होता है। व्यसन की व्याख्या दुःख। व्यसन अर्थात् दुःख, ऐसा अर्थ है। दुःख के व्यसन में चढ़ गया है। आहाहा!

आनन्द की जो दशा भगवान आत्मा निजानन्द भगवान के रास्ते नहीं, वह पररास्ते चढ़ गया, वह दुःख के पंथ में है। आहाहा! यह तो सादा है। यह तो सब दवा है। समझ में आये ऐसा है। आहाहा! मुद्दे की बात है। यहाँ तो कहते हैं कि हीराभाई में एकत्वबुद्धि—मग्नता हो, वह माँस खाना, ऐसा लेना है। मदिरा पी है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह एक को सातों लागू पड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का अच्छा पका और ऐसा हुआ तो अपने को लाभ है या नहीं? अरेरे! किसका पुत्र? किसका बाप? आहाहा!

'किसका पुत्र और किसका बछड़ा, किसके माई और बाप, अन्त काल में जाना अकेला, साथ में पुण्य अरु पाप।' किसके थे धूल के? मुफ्त का....। चोर है, (ऐसा) नहीं कहा? परचीज जो है, उसके कारण से आयी और उसके कारण से टिकी है, उसमें टिकी है। उसके बदले मेरे हैं और मेरे कारण से टिके हैं, (ऐसा मानता है), चोर है। चोरी कहलाये। समझ में आया? अब क्या करना परन्तु इसमें? गजब यह तो कठिन

काम आया। उसे पहले समझना तो पड़ेगा या नहीं? कि यह धूल चीज़ है। धीरुभाई! आहाहा! अरे! राग आदि पुण्य का भाव, वह मेरा, ऐसा माननेवाला भी चोर है। किसी की चीज़ को अपने में खताता है, वह चोर है। किसी की लक्ष्मी, घर की लक्ष्मी में खतावे, (वह) गुनहगार है। इसी प्रकार जगत के पुण्य के परिणाम, पाप के परिणाम, वह सब जगत पर है। आहाहा! अपने में होनेवाले पुण्य-पाप, हों! वह पुण्य-पाप और उसके फलरूप से परवस्तु जगत की, जगत में जगत की चीज़ है। भगवान आत्मा उस जगत को मेरा मानता है, वही माँस खाना, वही जुआ, वही चोरी और वही वेश्यागमन, वही परनारी (सेवन है)। अहाहा! कठिन बात की। आहाहा!

अपना भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान से भरपूर, पूर्ण पवित्रता और शुद्ध स्वच्छता का धाम, उसे अपना न मानकर, जो उसमें नहीं... आहाहा! समझ में आया? एक प्रश्न अभी आया है। क्या कहलाता है? ऐसा कि भाई! अभी तक तो ऐसा ही हम समझते थे कि शरीर आदि पर्याय मेरी, ऐसा माने तो (मिथ्यादृष्टि)। और यह कहाँ से आया कि एक समय की पर्याय को ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि। ऐसा प्रश्न है। आहाहा! वहाँ स्पष्टीकरण तो अच्छा दिया है भाई हितैषी ने। एक समय की पर्याय एक समय टिकती है और पूरा टिकता तत्त्व उसे मानना कि जो पर्याय एक समय की वह द्रव्य से एक होती ही नहीं। अब सब चलता है न यह तो। राग का भाव, वह तो आत्मा का होता ही नहीं, वह तो विभाव है। उसे अपना मानना, वह सात व्यसन में से प्रत्येक व्यसन उसे लागू पड़ता है। आहाहा! पण्डितजी!

वहाँ उसमें ऐसा कि भाई! हम पर्यायबुद्धि में तो ऐसा अभी तक समझते थे कि शरीर से हम सुखी हैं, दुःखी हैं, मूर्ख हैं, पण्डित हैं, फलाना हैं। ऐसा आता है न? तो उसे पर्यायबुद्धि कहना। यह और कहाँ से कहा?

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय को और कहाँ...?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और कहाँ से निकाला तुमने? ऐई चन्दुभाई! प्रश्न उठा, प्रश्न। तब कहे, भाई! एक समय की पर्याय—अवस्था जो है न, वह उसके अंश में है। वह अंशी त्रिकाल में नहीं। तथापि उसे त्रिकाल में है, ऐसा मानना, वह पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! पर्याय में एकत्व, वहाँ एकत्वपना, पर्याय में एकत्वपना है।

द्रव्य में एकत्वपना छूट गया वहाँ उसे। आहाहा! समझ में आया?

नित्यानन्द प्रभु, जिसका स्वभाव नित्य शुद्ध ऐसी जो चीज़ आत्मा, उसमें राग और द्वेष के विकल्प भिन्न हैं उससे। शरीर, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार तो कहीं भिन्न रह गये। आहाहा! उन भिन्न को अपने मानना, वही मिथ्यात्व और चोरी है। उसमें तो जरा ऐसी बात ले गये। परन्तु जवाब ठीक दिया है। कि भाई! एक समय की जो दशा है, वह दशा द्रव्यरूप कभी होती नहीं। तथापि उसे अपने द्रव्य में मानना अर्थात् कि पर्याय में एकत्वबुद्धि होना, वही मिथ्यात्वभाव है। कायम तत्त्व रहनेवाला ऐसा चिद्घन। आहाहा! अरे! बात कान में पड़े नहीं बेचारे को। सब बाहर के चतुर और समझदार संसार के।

मुमुक्षु : एकड़ा की खबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकड़ा की खबर नहीं। सच्ची बात है। धर्म कैसे प्राप्त हो और धर्म प्राप्त करनेवाले की कैसी दृष्टि होती है और अधर्म की दृष्टि का क्या स्वरूप है? आहाहा! करो सामायिक और करो प्रौषध और करो प्रतिक्रमण, करो अपवास, तुम्हारे धर्म होगा। मूढ़ है, कहते हैं। सुन न अब!

मैंने आहार छोड़ा, ऐसा माननेवाला आहार और आत्मा एकरूप (मानता है वह) चोरी करनेवाला है। आहाहा! गजब बात! अमरचन्दभाई! आहाहा! मैंने आहार छोड़ा है, आज मेरे अपवास है। कब आहार के रजकण तुझमें थे कि तूने छोड़े? अर्थात् आहार के रजकणों का मैं स्वामी हूँ कि जिससे मैं छोड़ सकता हूँ। आहाहा! यह मान्यता मिथ्यादृष्टि का महाशल्य है। इसकी खबर नहीं होती और अपवास किया है, निर्जरा हो गयी है अब। निर्जरा हुई तेरे काल की। काल गया। एक समय का काल गया अब। कठिन काम, भाई! अरे! धर्म, वह किसे कहते हैं? भाई! धर्म का मुख बड़ा है और धर्म का फल भी बड़ा है। आहाहा!

जिसके फल 'अनन्त अनन्त समाधि सुख में अनन्त अनन्त दर्शन, ज्ञान सहित' ऐसी दशा और ऐसी दशा की प्राप्ति, उसके कारण तो बड़े ही होंगे न! समझ में आया? उसे ऐसे (बाह्य) कारणों से धर्म होगा, तो इसका अर्थ कि ऐसे कारण से मुझे मुक्ति होगी।

मुमुक्षु : कैसे बने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो सातों में डालना। दूसरे को घात करता हूँ, ऐसे निर्दय परिणाम, वह मेरे परिणाम हैं, ऐसी एकत्वबुद्धि, वह शिकारी जीव है। अपने स्वभाव का उसने शिकार किया। बनारसीदास जैसों ने गृहस्थाश्रम में रहकर ऐसी बात की है। उसमें क्या है ? द्रव्यदृष्टि हो, पाँचवें में हो, छठवें में हो, केवली हो, तत्त्व की बात तो एकसमान ही होती है। कुछ अन्तर नहीं। यह तो स्थिरता के अंश में अन्तर होता है। दो गुण भिन्न हैं, इसलिए (अन्तर होता है)। समझ में आया ?

सातौं विसन बिडारैं ब्रह्म लखिवौ.... आत्मज्ञान होने को नाश करनेवाले हैं सात। समझ में आया ? यह पुण्य परिणाम, उसमें एकत्वबुद्धि करना, उससे अपने को लाभ होता है, ऐसा माननेवाले ने दोनों को एकत्व किया। अपना निर्मल शुद्धस्वभाव ध्रुव और पुण्यपरिणाम विभाव भिन्न। उनसे मुझे लाभ होगा, वह तो मदिरा पिये हुए है, कहते हैं। मिथ्यात्व की गहल—पागल है। गजब ! यह तो देव-गुरु-शास्त्र निमित्त पर ? उनसे मुझे लाभ होगा। भारी कठिन काम परन्तु, हों !

मुमुक्षु : देव-शास्त्र-गुरु न हो तो समझे किससे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ऐसा आत्मा ऐसा न हो तो समझण नहीं होती।

मुमुक्षु : स्वयं न हो तो नहीं होती...., दूसरे को करनेवाला कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं ऐसा आनन्द और ज्ञानस्वभाव न हो तो उसे ज्ञान होगा नहीं। बस यह। हीराभाई ! अब हीराभाई ऐसा न माने ऐसा... आहाहा !

भाई ! तू कौन है ? कहाँ है ? यह पर में तू है या पर के कारण से तेरापना तुझमें प्रगटे ? आहाहा ! यहाँ तो एक समय की पर्याय में द्रव्य नहीं। तो उस पर्याय के आश्रय से द्रव्य प्रगटे ?

मुमुक्षु : ऐसा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! कठिन बात, बापू ! सम्यग्दर्शन और उसका विषय अलौकिक बात है। वह कहीं बात करने जैसी चीज़ नहीं। अन्दर चीज़ में परिणमने जैसी चीज़ है। समझ में आया ? तब पूछा था न दिल्ली में, नहीं ? विद्यानन्दजी ने यह

प्रश्न उठाया। '**जीवादि सद्दहणं सम्मत्तं।**' मानो एक यह जीवादि (का) श्रद्धान करना, वह समकित, ऐसा। १५५ (गाथा) पुण्य-पाप (अधिकार, समयसार) की। '**जीवादि सद्दहणं समकित।**' यह क्या कहते हैं? ऐसा कहे। सबको बाहर निकालकर एकान्त में पूछा।

यह कहते हैं कि '**जीवादि सद्दहणं**' का अर्थ, वह ज्ञानस्वरूप भगवान, ज्ञान का परिणमन होना और राग का परिणमन छूट जाना, इसका नाम समकित है। है न अन्दर वापस। पुण्य-पाप (अधिकार)। १५५ (गाथा)। दिल्ली में (प्रश्न हुआ था)। लोगों को यह बात... अभी तो हिन्दुस्तान में हा... हो... चली है। आहाहा! ऐसा मुनि और ऐसे... एक बात की वहाँ लाख रुपये हुए। भगवान के २५०० वें (निर्वाण) वर्ष के समय एक पुस्तक लाख रुपये की बनाना है। एक पुस्तक बनाना है, ऐसी बड़ी अच्छी। ऐसा कहा, वहाँ पन्द्रह मिनिट में लाख रुपये। लो, कितना काम हुआ। परन्तु उसके कारण से आत्मा का क्या हुआ? आहाहा!

लाख तो जड़ है और देने का विकल्प आया, वह जड़-अचेतन पुण्य है। उसमें भगवान के नाम की महिमा कहाँ आयी वहाँ? भारी कठिन काम! ऐई! जिसमें तेरा स्वभाव है और जिसमें तू है, उससे तेरा कल्याण होगा। समझ में आया? भगवान महावीर और उनकी वाणी से भी कल्याण नहीं होगा। उसमें वह तू नहीं और वह तुझमें नहीं। आहाहा! देवीलालजी! परन्तु भारी कठिन! साधारण सज्जन लोगों को ऐसा लगे कि यह उन सोनगढ़िया की बात... परन्तु सोनगढ़ की है या यह शास्त्र की है? आहाहा!

तीन लोक के नाथ.... '**केवली पण्णंत्तो धम्मो**' यह है। ऐसा बोला करे, '**केवली पण्णंत्तं धम्मं सरणं।**' ऐई नागरभाई! मांगलिक में आता है या नहीं मांगलिक में? हाँक रखे गाड़ियाँ। अर्थ की खबर नहीं होती। भाव की खबर नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, जो कोई, शुभभाव से भी मैं जीता हूँ, मेरी जीत है अभी और बाहर की सुविधा में बढ़ा, इसलिए मेरी हूंफ में बढ़ गया हूँ, ऐसा माननेवाला जुआ खेलनेवाला पाप का पापी है। कहो, समझ में आया इसमें? यह सातों भावव्यसन और द्रव्यव्यसन सब ही **बिडारैं ब्रह्म लखिवौ...** भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु ब्रह्म अर्थात् आनन्दमूर्ति को जानने में उसे वह विघ्न करनेवाले हैं। यह हो, वहाँ आत्मा का ज्ञान होगा नहीं और आत्मा का ज्ञान हो, उसे यह भाव होते नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १६९, आसोज शुक्ल ४, गुरुवार, दिनांक २३-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ३० से ३५

साध्य-साधक द्वार। ३०.. ३०.. ३०।

★ ★ ★

काव्य - ३०

साधक जीव का पुरुषार्थ (दोहा)

विसन भाव जामैं नहीं, पौरुष अगम अपार।
किये प्रगट घट सिंधुमैं, चौदह रतन उदार।।३०।।

शब्दार्थ:-सिंधु=समुद्र। उदार=महान।

अर्थ:-जिसके चित्त में भाव-व्यसनों का लेश भी नहीं रहता है, वह अतुल्य और अपरम्पार पुरुषार्थ का धारक हृदयरूप समुद्र में चौदह महारत्न प्रगट करता है।।३०।।

काव्य-३० पर प्रवचन

विसन भाव जामैं नहीं, पौरुष अगम अपार।
किये प्रगट घट सिंधुमैं, चौदह रतन उदार॥३०॥

उदार महारतन। कहीं इसकी महिमा नहीं १४ रत्न की। ... उदार नहीं। उदार का अर्थ महारत्न वहाँ है, जाननेयोग्य। कहते हैं कि धर्मी जो हो साधक... आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसका जिसे साधकपना प्रगट हुआ है, उसे ज्ञान के मंथन में चौदह रत्न जानने में आते हैं। उसमें कितने ही हेय हैं और कितने ही उपादेय साधन हैं। **पौरुष अगम अपार।** आहाहा! देखो, आत्मा के पूर्ण आनन्दस्वरूप में सम्यग्दर्शन प्रगट करना,

वह अगम अपार पुरुष है, पुरुषार्थ। समझ में आया? एक तो अगम्य और अपार। आहाहा! **जिसके चित्त में भाव-व्यसनों का लेश भी नहीं रहता है।** सात व्यसन कहे न? धर्मी जीव को पुण्य के राग से लेकर सब पूरा संसार स्वरूप, उसकी जिसे एकताबुद्धि न हो, उसे साधक कहते हैं। समझ में आया? सात भावव्यसन न हो। और **वह अतुल्य और अपरम्पार पुरुषार्थ का धारक।** यह पुरुषार्थ है। संसार का कमाना और खाना और पीने का जो विकल्प, वह तो उल्टा—विपरीत पुरुषार्थ है। आत्मा की ओर के भाव और झुकाव से सम्यग्दर्शन आदि प्रगट करना, वह अगम अपार पुरुषार्थ है। समझ में आया? **और अपरम्पार पुरुषार्थ का धारक हृदयरूप समुद्र में चौदह महारत्न प्रगट करता है।** ज्ञान के मंथन में, राग और विकल्प से भिन्न ऐसी ज्ञान की मंथनक्रिया में ऐसे चौदह भाव जिसे प्रगट होते हैं, यह बात करते हैं, देखो! चौदह भावरत्न।

★ ★ ★

काव्य - ३१

चौदह भावरत्न (सवैया इकतीसा)

लक्ष्मी सुबुद्धि अनुभूति कउस्तुभ मनि,
वैराग कलपवृच्छ संख सुवचन है।
ऐरावत उद्दिम प्रतीति रंभा उदै विष,
कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद धन है।।
ध्यान चाप प्रेमरीति मदिरा विवेक वैद्य,
सुद्धभाव चन्द्रमा तुरंगरूप मन है।
चौदह रतन ये प्रगट होंहि जहां तहां,
ग्यानके उदोत घट सिंधुकौ मथन है।।३१।।

शब्दार्थ:–सुधा=अमृत। प्रमोद=आनंद। चाप=धनुष। तुरंग=घोड़ा।

अर्थ:–जहाँ ज्ञान के प्रकाश में चित्तरूप समुद्र का मंथन किया जाता है, वहाँ

सुबुद्धिरूप लक्ष्मी, अनुभूतिरूप कौस्तुभमणि, वैराग्यरूप कल्पवृक्ष, सत्यवचनरूप शंख, ऐरावत हाथीरूप उद्यम, श्रद्धारूप रम्भा, उदयरूप विष, निर्जरारूप कामधेनु, आनन्दरूप अमृत, ध्यानरूप धनुष, प्रेमरूप मदिरा, विवेकरूप वैद्य, शुभभावरूप चन्द्रमा और मनरूप घोड़ा ऐसे चौदह रत्न प्रगट होते हैं।।३१।।

काव्य-३१ पर प्रवचन

लक्ष्मी सुबुद्धि अनुभूति कउस्तुभ मनि,
वैराग कलपवृच्छ संख सुवचन है।
ऐरावत उद्दिम प्रतीति रंभा उदै विष,
कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद धन है॥
ध्यान चाप प्रेमरीति मदिरा विवेक वैद्य,
सुद्धभाव चन्द्रमा तुरंगरूप मन है।
चौदह रतन ये प्रगट होंहि जहां तहां,
ग्यानके उदोत घट सिंधुकौ मथन है॥३१॥

चक्रवर्ती को चौदह रत्न होते हैं। समझ में आया? छह खण्ड का साधक चाहे तो समकिती हो चक्रवर्ती या मिथ्यादृष्टि, परन्तु उसे चौदह रत्न होते हैं। एक-एक रत्न के एक हजार देव सेवा करनेवाले (ऐसे) चौदह हजार देव और दो हजार शरीर के रक्षक—सोलह हजार देव होते हैं। इसी प्रकार आत्मा चक्रवर्ती अपने स्वरूप को जिसने साधा है... वह छह खण्ड साधता है, यह अखण्ड साधता है। समझ में आया? आठ वर्ष की बालिका हो या मेंढ़क—देडको हो या सातवें नरक का नारकी हो। परन्तु जो सम्यग्दृष्टि अपरम्पार जिसका पुरुषार्थ स्वरूप के साधने के लिये हैं, आहाहा! समझ में आया? उसे यह चौदह रत्न—कितने ही छोड़नेयोग्य और कितने ही आदरनेयोग्य उन सबका भान उसे होता है, ऐसा कहते हैं। छोड़नेयोग्य भी रत्न कहलाये न, ऐई! संसार के ख्याल में नहीं आया था (वह अब) ख्याल में आया, ऐसा कहते हैं।

सुद्धभाव चन्द्रमा तुरंगरूप मन है। चौदह रतन ये प्रगट होंहि जहां तहां, ग्यानके

उदोत घट सिंधुकौ मथन है... चौदह रत्न प्रगट होते हैं, लो। है न? **सुबुद्धिरूप लक्ष्मी....** उसे सुबुद्धिरूपी लक्ष्मी प्रगट होती है। कुबुद्धि का नाश होकर सुबुद्धि प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **अनुभूतिरूप कौस्तुभमणि....** आत्मा का अनुभव। धर्मी जीव को आत्मा के आनन्द का अनुभव—अनुभूति कौस्तुभमणि है। बहुत ऊँची चीज़ कहलाती है। समझ में आया? श्रीकृष्ण वासुदेव ने जब देह छोड़ी, तब उनकी अँगुली में कौस्तुम्भमणि थी। वासुदेव थे न तीन खण्ड के धनी। समकिती थे, ज्ञानी थे। धर्मात्मा। देह छूटने के समय... जंगल में देह छूटी। उनका भाई था, उसने बाण मारा। बलदेव पानी लेने गये थे। ....भाई! श्री कृष्ण ने पुकार किया। बाण लगा.... बहुत जंगल में अन्दर थे। बलदेव पानी लेने गये थे।

कौन है निरपराधी को मारनेवाला? ऐसी कृष्ण ने आवाज की। वहाँ भाई आया। अरर्र! प्रभु! तुम कौन? यहाँ? भाई! तू यहाँ से चला जा। नहीं तो अभी बलदेव आयेंगे और मारेंगे। तुझे नहीं पहिचानते कोई, इसलिए यह कौस्तुभमणि ले जा, कौस्तुभमणि। यह अनुभूति। आहाहा! यह डाला है, देखो! अनुभूतिरूप कौस्तुभमणि। परन्तु वेश सब भील का था। राजा के पुत्र थे। उनकी बड़ी माँ के पुत्र थे वासुदेव। उनको पहिचाने कौन इसलिए... कौस्तुभ... वासुदेव के पास होती है... पाण्डवों के पास गये जरतकुमार। कौस्तुभ अर्थात् अनुभूति। आहाहा!

मुमुक्षु : ....समकित कब होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ....समकित लेकर गये हैं परन्तु थोड़ा काल... अभी समकिती हैं। अभी समकिती हैं। क्षयोपशम समकित। वह तो अल्प काल में... वहाँ से निकलकर समकित लेकर निकलेंगे। तीर्थंकरगोत्र बाँधा। अल्पकाल में... तीसरे (नरक में) गये। क्षयोपशम (समकित) लेकर गये। बीच में जरा गिर गया थोड़े समय के लिए एक अन्तर्मुहूर्त।

यहाँ कहते हैं, अनुभूति वह कौस्तुभमणि है। आहाहा! वह कौस्तुभमणि चक्रवर्ती और वासुदेव के पास होती है। इसी प्रकार यह धर्मात्मा के पास ऐसी कौस्तुभमणि होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा रागरहित ऐसी आनन्द की अनुभूति। स्वभाव की पूर्णता की ओर की एकाग्रता के अनुभव में आनन्द का स्वाद और ज्ञान की निर्मलता,

वह साधकजीव को होती है। समझ में आया? **वैराग्यरूप कल्पवृक्ष,** लो। वैराग्यरूपी कल्पवृक्ष। वह आदरणीय है। कुबुद्धि लक्ष्मी को त्यागनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सुबुद्धि प्रगट हुई है परन्तु वह अस्थिर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनुभूति, वह आदरणीय है। वैराग्यरूपी कल्पवृक्ष, वह आदरणीय है। वैराग्य... परवस्तु से धर्मी अत्यन्त उदास है। पर में अपनापन कहीं नहीं है। परन्तु राग आदि से लेकर मुझमें नास्ति है, ऐसा वैराग्य होता है। आहाहा! देखो, यह धर्मी का लक्षण।

सत्यवचनरूप शंख.... वह हेय है। सत्य बोलना, वह भी उसका विकल्प है और वचन-वाणी सब हेय है। समझ में आया? ऐसे रत्न जानता है, ऐसी कहते हैं यह बात। आहाहा! बहुत वक्ता हो तो वह आदरणीय है, ऐसा नहीं, कहते हैं। वाणी और वाणी का विलास छोड़नेयोग्य है। **ऐरावत हाथीरूप उद्यम,...** लो। वह आदरणीय है। **ऐरावत हाथीरूप उद्यम,...** आहाहा! सौधर्म इन्द्र भगवान के जन्मकल्याणक आदि में आवे। ऐरावत हाथी, लाख (योजन का विस्तार) उसे होता है। लाख उसका, लाख योजन। उसके एक सौ आठ सूँड़ हो और एक-एक सूँड़ में अप्सरायें नृत्य करती हों। ऐसे ऐरावत हाथी को लेकर भगवान के उसमें (जन्मकल्याणक में) आता है। ऐसा यह ऐरावत हाथी। उद्यम... उद्यम। कहते हैं कि धर्मी का पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख जाग उठा है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे में राग आदि में पुरुषार्थ हल्का है। जिसने आत्मा शुद्ध चैतन्य के जागृतभाव को उद्यम से जगाया, उस उद्यम को ऐरावत हाथी की उपमा है। आहाहा!

श्रद्धारूप रम्भा,... लो। यह आदरणीय है। पूर्ण स्वरूप आत्मा का, उसकी जो श्रद्धा—समकित, वह आदरणीय है। **उदयरूप विष...** समकिती धर्मी जीव को साधकपने में जो कुछ राग और पुण्य-पाप का उदय ज्ञात हो, उसे वह जहररूप मानता है। अरे, गजब! समझ में आया? आत्मा अमृत का सागर परमात्मा की जिसने अनुभूति और प्रयास से साधन किया है, उसे राग का उदय जहर दिखता है। उसे कहा रतन, हों! जानने में नहीं आया था, वह जानने में आया न! समझ में आया? ....रत्न, स्त्रीरत्न। सब रत्न, हों! ऐसा यह उदय रत्न, यह जहर है। आहाहा! समझ में आया? **निर्जरारूप कामधेनु।** तथापि हेय। अशुद्धता का नाश हो और शुद्धता की पर्याय उत्पन्न हो, उसे

कामधेनु कहते हैं। तथापि अस्थिर है, इसलिए छोड़नेयोग्य है, ऐसा। समझ में आया? कहो, निर्जरा छोड़नेयोग्य है। उदय तो जहर है, परन्तु निर्जरा भी छोड़नेयोग्य है, ऐसा कहा। आहाहा! अकेला भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, वही आदरणीय और उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव आदरणीय है। अभेद.....

आनन्दरूप अमृत, लो। सुधा। यह अमृत आदरणीय है। आनन्दरूप अमृत। आहाहा! भगवान ने राग और आत्मा दोनों भिन्न किये। स्वयं भगवान आत्मा, हों! तब अमृत... अमृत प्रगट हुआ। साधकजीव को आनन्दस्वरूप आत्मा, वह आनन्द की दशा प्रगट हुई, वह आदरणीय है।

मुमुक्षु : अकामनिर्जरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकामनिर्जरा की बात नहीं। वह निर्जरा यह और यह सब। पर्याय है न अस्थिरता। अकेला अकाम, वह नहीं। वह यहाँ आनन्द तो अमृत है और सुखरूप है। उपादेय है। **ध्यानरूप धनुष्य,** लो। वह ध्यानरूपी धनुष। धनु... धनु। है न? वह भी हेय है। यह तो अपने उपादान-निमित्त में आता है न! ४७ दोहों में आता है। ....सब उसमें अन्दर ध्यान करना, वह हेय। अरे, छोड़ न ध्यान और ध्याता और क्या यह विकल्प और ध्येय? आहाहा! (**मुमुक्षु :** छोड़ ध्यान की धारणा।)

प्रेमरूप मदिरा। मदिरा पी है। पर का प्रेमी है। ऐसा उसे भान हो गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **विवेकरूप वैद्य,** लो। विवेक... विवेक। किसमें आया? नहीं, परन्तु नाम कहाँ आया? **संख विष धनु सुरा।** वैद्य... वैद्य। वैद्य... वैद्य। वैद्य आया। यह त्याज्य। है न? **वैद्य धेनु हय हेय।** बाद के (पद) में आयेगा। यह ३३ में आता है, देखो! वैद्य... वैद्य। विवेकरूपी वैद्य, वह छोड़नेयोग्य है। भेदज्ञान है न। **शुद्धभावरूप चन्द्रमा।** देखो, पुण्य-पाप के विकल्प जहर हैं। भगवान अमृतस्वरूप का साधन करके शुद्धभाव प्रगट किया, वह चन्द्रमा है। आहाहा!

मनरूप घोड़ा... वह छोड़नेयोग्य है। उसमें और इसका ऐसा अर्थ किया है। सप्तमुखी घोड़ा। सप्तमुखी घोड़ा। सात मुख। ...आता है। सात घोड़ा हो। ऊपर हो न सात घोड़ा। सूर्य को, नहीं? सूर्य को होते हैं न। सात सब ऐसे सात घोड़ा होते हैं। इसी प्रकार यह सप्तमुखी घोड़ा कहा है इसे रूपचन्दजी ने। यह चौदह रत्न प्रगट बसे। चौदह

का भान, ऐसा रत्न का अर्थ किया। चौदह का भान—उसमें उपादेय और छोड़नेयोग्य। आठा हैं छोड़नेयोग्य और छह हैं वे आदरनेयोग्य हैं। यह नयी बात बनारसीदास ने रखी है। अब नीचे है, देखो। **चौदह रत्नों में कौन हेय और कौन उपादेय है।**

★ ★ ★

काव्य - ३२-३४

चौदह रत्नों में कौन हेय और कौन उपादेय है। (दोहा)

किये अवस्थामैं[१] प्रगट, चौदह रतन रसाल।
कछु त्यागै कछु संग्रहै, विधिनिषेधकी चाल।।३२।।

रमा संख विष धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय।
मनि रंभा गज कल्पतरु, सुधा सोम आदेय।।३३।।

इह विधि जो परभाव विष, वमै रमै निजरूप।
सो साधक सिवपंथकौ, चिद वेदक चिद्रूप।।३४।।

शब्दार्थ:–संग्रहै=ग्रहण करे। विधि=ग्रहण करना। निषेध=छोड़ना। रमा=लक्ष्मी। धनु=धनुष। सुरा=शराब। धेनु=गाय। हय=घोड़ा। रंभा=अप्सरा। सोम=चन्द्रमा। आदेय= ग्रहण करनेयोग्य। वमै=छोड़े।

अर्थ:–साधकदशा में जो चौदह रत्न प्रगट किये, उन्हें ज्ञानी जीव विधि–निषेध की रीति पर कुछ त्याग करता है और कुछ ग्रहण करता है।।३२।। अर्थात् सुबुद्धिरूप लक्ष्मी, सत्यवचनरूप[२] शंख, उदयरूप विष, ध्यानरूप धनुष्य, प्रेमरूप मदिरा, विवेकरूप धन्वन्तरि, निर्जरारूप कामधेनु और मनरूप घोड़ा ये आठ अस्थिर हैं, इसलिए त्यागनेयोग्य हैं तथा अनुभूतिरूप मणि, प्रतीतिरूप रम्भा, उद्यमरूप हाथी, वैराग्यरूप कल्पवृक्ष, आनन्दरूप अमृत, शुद्धभावरूप चन्द्रमा, ये छह रत्न उपादेय हैं।।३३।। इस प्रकार जो परभावरूप विष–विकार त्याग करके निज स्वरूप में मग्न होता है, वह निज स्वरूप का भोक्ता चैतन्य आत्मा का मोक्षमार्ग का साधक[३] है।।३४।।

१. साधक दशा। २. सत्यवचन भी हेय है, जैनमत में तो मौन ही की सराहना है।
३. सात भाव–व्यसनों और चौदह रत्नों की कविता पण्डित बनारसीदासजी ने स्वतन्त्र रची है।

काव्य-३२-३४ पर प्रवचन

किये अवस्थामैं प्रगट। साधक अवस्था उसे कहते हैं। आहाहा! देखो तो सही। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द की सम्पदा आदि शक्तियों का जिसने स्वीकार करके अन्दर सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, वह साधकदशा में चौदह रत्न प्रगट किये। **उन्हें ज्ञानी जीव विधि-निषेध की रीति पर कुछ त्याग करता है और कुछ ग्रहण करता है। प्रगट चौदह रतन रसाल....** रसाल का अर्थ 'है', ऐसा। रसवाला हैं, ऐसा कुछ है। वरना यहाँ तो जहर को... है, ऐसा कुछ। समझ में आया? **कछु त्यागै कछु संग्रहै....** चौदह में से आठ को त्यागे और छह को आदरे। **विधि निषेध की चाल।** अस्ति की विधि और नास्ति का निषेध। पर की नास्ति ऐसे विधिनिषेध में चौदह रत्न।

रमा, आया था न। ....श्रद्धारूपी रमा। रंभा... रंभा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं पहला यह तो। रमा आया न रमा। रमा—लक्ष्मी, ऐसा नहीं? आहाहा! रमा... रमा... सुबुद्धिरूपी लक्ष्मी, ऐसा न? वह छोड़नेयोग्य है। **शंख।** यह सत्यवचनरूपी शंख। यह जैनदर्शन में उसे मौनपने की सराहना है। बोलने की सराहना और अनुमोदना नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...छोड़ना। वह तो वीतराग है, उन्हें कहाँ बोलने का विकल्प है? यह तो निश्चयनय की बात है। उसे तो विकल्प है कहाँ? विकल्प है अर्थात् बोलना है, उसका त्याग है, ऐसी बात है। कहाँ तक बोले जो वाणी में हो ध्वनि निकले। ...यहाँ तो विकल्प है, वह बोलना है, वह छोड़नेयोग्य है। आहाहा! अन्दर लिखा है, देखो नीचे। **सत्यवचन भी हेय है, जैनमत में तो मौन ही की सराहना है।** तो फिर कोई बोलेगा नहीं, यह पढ़ेगा नहीं। बोलता कौन है? यह तो बोले वह दूसरा। जड़ की बात—भाषा है बोलने में, वह कहीं आत्मा बोलता नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग! रंभा और शंख कहा।

जहर। उदय जहर। **धनु... धनु।** धनुष्य—ध्यान। ध्यान है न। ध्यानरूपी धनुष्य छोड़नेयोग्य है। **सुरा**—मदिरापान, लो। प्रेमरूपी मदिरा। यह पर का प्रेम छोड़नेयोग्य है। राग का प्रेम आदि वह छोड़नेयोग्य है। हाँ, व्यवहाररत्नत्रय का प्रेम छोड़नेयोग्य है। आहाहा! और फिर सुरा। मदिरा अर्थात् सुरा लिखा है। फिर वैद्य। यह विवेकरूपी वैद्य। भेद करना न! विकल्प से भिन्न ऐसा विवेक—भेदज्ञान, वह छोड़नेयोग्य है। **धेनु।** वह निर्जरारूपी गाय—कामधेनु, वह छोड़नेयोग्य है। अब घोड़ा, मनरूपी घोड़ा। वह छोड़नेयोग्य है, लो। आठ छोड़नेयोग्य। ऐसे मणि। देखो, आया। अनुभूतिरूपी कौस्तुभमणि। अनुभूति से भिन्न आता है न, समयसार में २९ बोल की (गाथा ५० से ५५) आती है न! वह अनुभूति से भिन्न अर्थात् अनुभूति इस अपेक्षा से आदरणीय कही है। अनुभूति। आहाहा! यह मणि, कौस्तुभमणि।

रंभा, लो। रंभा... रंभा। वह श्रद्धारूपी रंभा, वह आदरणीय है। गज—हाथी। उद्यम। आत्मा के पुरुषार्थ से जागृति ऐसा जो हाथी, वह आदरणीय है। स्वभावसन्मुख का पुरुषार्थ, वह आदरणीय है। आहाहा! कल्पतरु—कल्पवृक्ष। वैराग्यरूपी कल्पवृक्ष। वैराग्य, वह आदरणीय है। सुधा-अमृत। आनन्दरूपी अमृत, वह आदरणीय है। और सोम-चन्द्र। सोम अर्थात् चन्द्र। शुद्धभावरूपी चन्द्र। सोम... सोम। रवि को सूर्य कहते हैं और सोम को चन्द्र। यह है न सात दिन। रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि। सोम अर्थात् चन्द्र इन्द्र है। शुद्धभावरूपी चन्द्र आदरणीय है। आहाहा! इतनी स्पष्टता कितनी की है, लो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, तब पर्याय में आवे। पर्याय जो होती है, वह आदरणीय है, ऐसा। समझ में आया? यह अपेक्षा से कहा न! अपेक्षा से वह साधन है।

इह विधि जो परभाव विष.... लो! इस प्रकार परभाव विकल्प जो है, वह जहर समान है। वमे, उसे वमे और रमे। विकल्प को वमे और स्वरूप में रमे। समझ में आया? यह तो तब कहा मणिभाई ने। .....वह आदिसरवाळा नहीं थे क्षुल्लक? यहाँ आते थे। वे कहते, 'स्व में बस, पर से खस।' दो है। स्व में बस और पर से खस, लो, अस्ति-नास्ति। समझ में आया? **इह विधि जो परभाव विष वमै रमै....** राग आदि को छोड़े और स्वरूप में रमे। आया न दो। **निजरूप...** अपने आनन्दस्वरूप में रमना, वह

चीज़ है एक यह। **सो साधक सिवपंथकौ....** वह जीव शिवपंथ का साधक है। शिव अर्थात् मोक्ष। आहाहा! यह समझे नहीं और वह जबलपुर में यह विवाद आया था न, शिवपुरी शिव की रानी भगवान ने विवाह किया। तब कहे, हमारे शिव की रानी? ऐसे के ऐसे उल्टे। जबलपुर में हुआ था न! शिवरमणी वरे। शिवरमणी वरे। अरे, हमारे शंकर की स्त्री? यह .... जैन में गप्प मारे हैं। मारो, तूफान करो। आहाहा! कुछ खबर नहीं होती। यह तो शिव अर्थात् कल्याणमूर्ति परमात्मदशा, ऐसा पंथ।

साधक सिवपंथकौ, चिद् वेदक चिद्रूप.... लो। और क्या करके? **निज रमै। वह निज स्वरूप का भोक्ता चैतन्य आत्मा का मोक्षमार्ग का साधक है,....** लो। **चिद् वेदक।** यह आनन्द का वेदन करनेवाला। आहाहा! **चिद् वेदक चिद्रूप...** ऐसा है। साधक धर्मी उसे कहते हैं कि शिवपंथ को साधे। मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उस स्वभाव सन्मुख के साधन को साधे। **चिद्रूप चिद् वेदक...** वह ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा ज्ञान का ही वेदन और अनुभव करनेवाला। समझ में आया? **चिद वेदक** अर्थात् मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों को चिद् कहते हैं—ज्ञान की दशा कहते हैं। वह राग की दशा नहीं, इसलिए चिद्। **चिद्रूप चिद वेदक,** ऐसा। निजस्वरूप का भोक्ता वेदक, ऐसा। चैतन्य आत्मा मोक्षमार्ग का साधक कहा जाता है। ....सब नयी बातें लगे।

मोक्षमार्ग के साधक जीवों की अवस्था। जिसे यह अभ्यास न हो, उसे तो ऐसा लगे कि यह सब कैसा है? ऐ शिवलालभाई! तुम्हारे भीमजीभाई को तो वह... हास्य किया था मेरे ऊपर तुरन्त ही। अभ्यास न हो न तो यह क्या होगा? ऐसा जैनधर्म होगा? यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति करनी हो, और जिसे इनिद्रय दुःख का नाश करना हो, उसका यह मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? मेंढ़क होता है, वह भी इतने शरीर में साधक हो सकता है। खाने को मिले नहीं, पानी की बूँद हो नहीं। वहाँ बावड़ी में पानी आदि हो। लो, ऐसे भी मेंढ़क होते हैं। श्रावक होकर सचेत पानी का त्याग हो, लो। ऐई! कौन कर दे उसे अचेत? अब कहीं ऐसे पानी हो स्पष्ट कादव से नितरा हुआ.... आदि हो।

★ ★ ★

काव्य - ३५

मोक्षमार्ग के साधक जीवों की अवस्था (कवित्त)

ग्यान द्रिष्टि जिन्हके घट अंतर,
निरखैं दरब सुगुन परजाइ।
जिन्हकैं सहजरूप दिन दिन प्रति,
स्यादवाद साधन अधिकाइ।।
जे केवलि प्रनीत मारग मुख,
चितैं चरन राखै ठहराइ।
ते प्रवीन करि खीन मोहमल,
अविचल होहिं परमपद पाइ।।३५।।

शब्दार्थ:–निरखैं=देखें। प्रनीत (प्रणीत)=रचित।

अर्थ:–जिनके अन्तरंग में ज्ञानदृष्टि द्रव्य, गुण और पर्यायों का अवलोकन करती है, जो स्वयमेव ही दिन पर दिन स्याद्वाद के द्वारा अपना स्वरूप अधिक–अधिक जानते हैं, जो केवली कथित धर्ममार्ग में श्रद्धा करके उसके अनुसार आचरण करते हैं, वे ज्ञानी मनुष्य मोहकर्म का मल नष्ट करते हैं और परमपद को प्राप्त करके स्थिर होते हैं।।३५।।

काव्य-३५ पर प्रवचन

ग्यान द्रिष्टि जिन्हके घट अंतर,
निरखैं दरब सुगुन परजाइ।
जिन्हकैं सहजरूप दिन दिन प्रति,
स्यादवाद साधन अधिकाइ॥
जे केवलि प्रनीत मारग मुख,
***केवलीपण्णत्तो धर्म।**

चितैं चरन राखै ठहराइ।
ते प्रवीन करि खीन मोहमल,
अविचल होहिं परमपद पाइ॥३५॥

मोक्षमार्ग के साधक जीवों की स्थिति वर्णन करते हैं। यह इतने पैसेवाला हो और इतना दान देनेवाला हो, ऐसा इसमें नहीं कहा। समझ में आया? **ग्यान द्रिष्टि जिन्हके घट अंतर,...** अन्तर में आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसी जिसे दृष्टि होती है, उस धर्मी को मोक्ष का साधक कहा जाता है। आहाहा! गजब! बनारसीदास ने यह सब बनाया है। **निरखैं दरब सुगुन परजाइ।** लो। एक इस श्लोक में आता है। नीचे है न! उसमें से आया है कलश-कलश।

नैकान्तसङ्गतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो
ज्ञानीभवन्ति जिननीतिमलङ्घयन्तः।।२।।

यह श्लोक में है। कलश है अमृतचन्द्र आचार्य का, लो। अभी तक स्वयं बात की और अब अमृतचन्द्र आचार्य के कलश का उल्लेख करते हैं। मोक्षमार्ग के साधक जीव **निरखैं दरब सुगुन परजाइ।** धर्मी जीव अपना आत्मा त्रिकाली पवित्र को देखता है, उसके ज्ञान-आनन्द आदि गुण को जानता है और उसकी निर्मल दशा—अवस्था को भी जानता है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों को जाने, ऐसा कहते हैं। है न? **निरखैं दरब सुगुन परजाइ।** द्रव्य-गुण-पर्याय के नाम भी आये न हो अभी तो। शब्द भी अभी (न आवें)। प्रवीणभाई! इनकार करते हैं, लो। ऐई भीमजीभाई! द्रव्य अर्थात् पैसा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यदृष्टि है न यहाँ। द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि। पैसेवाले वे सम्यग्दृष्टि, ऐसा होगा?

मुमुक्षु : ऐसा नहीं होता प्रभु! आत्मारूपी धनवाले को....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो द्रव्य अर्थात् आत्मा। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु एकरूप द्रव्य को यहाँ द्रव्य कहा जाता है। ऐसे द्रव्य को धर्मी जानता है। यह द्रव्य। यह द्रव्य-वस्तु। और उसमें रहे हुए गुणों को जानता है। गुणीरूप से द्रव्य और गुणरूपी से गुण। **सुगुन परजाइ...** अपनी निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को वह जानता है, कहते हैं। निरखता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है न? **स्वयमेव वस्तु।**

जिन्हकैं सहजरूप दिन दिन प्रति,... यह आया। '**स्वयमेव वस्तु तत्त्वव्यवस्थिति-मिति प्रविलोकयन्तः स्याद्वादशुद्धिमधिकाम।' जिन्हकैं सहजरूप दिन दिन प्रति,...** ऐसा पैसा कमावे और फिर नहीं कहते? धन कमावे और ढेर हो, शरीर कमावे और पेट भरे। यह बातें लोग करें। यहाँ तो अकेला शरीर हो, पैसा न हो, वह कितना कमाये? खाने-पीने का हो और ऊपर से दो-चार रुपये बढ़ते होंगे वे कुछ। धन मिला जहाँ लाख-डेढ़ लाख का, वह ढ़ेर हो। इसी प्रकार यह आत्मा सहजरूप दिन-प्रतिदिन धन मिला अन्दर लक्ष्मी, उसमें दिन-प्रतिदिन शुद्धि बढ़ती जाये। आहाहा! समझ में आया? पैसा मिले उसमें भारी, आहाहा! दो लाख की आमदनी—पैदाश। उसमें फिर पचास हजार बढ़े। ढाई लाख की आमदनी। दूसरे वर्ष में और तीन लाख की। धूल की लाख बढ़े, वहाँ प्रसन्न हो जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो, उसे बताना तो पड़े न?

मुमुक्षु : कितनों को मीठी लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठी लगे अज्ञानी को। ऐई! आहाहा! करोड़ पैसा अर्थात् जड़ और उसका पति, वह जड़। जड़ का पति वह जड़ होता है। मलूकचन्दभाई! तुम्हारा न्यालभाई बहुत पैसेवाला कहलाता है न?

माने कि हम सब पैसेवाले हैं, स्त्री-पुत्रवाले हैं। वह जड़ का पति होता है जड़ का, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। उसकी दृष्टि में विवेक नहीं। वह चीज़ ही मेरी नहीं। आहाहा! मेरी चीज तो मेरे पास है। आहाहा! दिन-प्रतिदिन उस स्वभाव का साधन बढ़ता जाता है, ऐसा कहते हैं। देखो, यह लक्ष्मी क्षण-क्षण में बढ़ती जाती है। आहाहा!

जिनके अन्तरंग में ज्ञानदृष्टि द्रव्य, गुण और पर्यायों का अवलोकन करती है, जो स्वयमेव ही दिन पर दिन स्याद्वाद के द्वारा अपना स्वरूप अधिक अधिक जानते हैं। अपेक्षा से जो ज्ञान है, उसे विशेष जानकर जानना—ज्ञान होता है। अनेक अपेक्षा का ज्ञान ज्ञानी को बढ़ता जाता है। **स्वयमेव ही दिन पर दिन स्याद्वाद के द्वारा....** अपेक्षा से कथन। आहाहा!

आज एक पत्र आया है। कहाँ गये चेतनजी? तुमने लिखा होगा न, उसका जवाब आया है। ऐसा कहे, अभी तो जयसेनाचार्य का मुझे उपकार है और अमृतचन्द्राचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य का टोडरमल ने जाना है या नहीं, यह मैं मानता नहीं। टोडरमल और भैया भगवतीदास। क्योंकि निमित्त अकिंचित्कर है, यह आचार्यों ने कहा नहीं। और इन लोगों ने कहा हो तो कहीं हमको मान्य नहीं। ठीक। ऐसा उन भाई का लेख आया।

मुमुक्षु : न माने तो उनके पास रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पत्र लिखकर स्वयं चतुर होकर बनाया है। पंचाचार में बात है। आज पत्र आया है। नहीं? उपासना किसी का... तुम्हारा पत्र मिला, ऐसा करके। तुमने लिखा होगा। किसी का उपकार मुझे है ही नहीं। मुझे तो एक जयसेनाचार्य का उपकार है कि जिसमें व्यवहारमोक्षमार्ग—निश्चयमोक्षमार्ग का कथन स्पष्ट है, ऐसा करके (लिखा) है। ऐसे के ऐसे ठिकाना भी नहीं होता। मूर्खता भरी सब बात। वे चेतनजी के गुरु थे। विकासचन्दजी। आहाहा!

भैया भगवतीदास ने उन उपादान-(निमित्त के दोहे) में लिखा न, निमित्त कुछ नहीं करता। इसलिए वे ऐसा कहे, यह अमृतचन्द्र आचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य को जाना है या नहीं उन्होंने, यह मैं मानता नहीं। जयसेनाचार्य ने जाना है। वहाँ जयसेनाचार्य में दोनों का कथन आता है न भाई! निमित्त और उपादान का। वह उन्हें पसन्द आ गया है।

मुमुक्षु : ऐसा निमित्त कुछ कायम बैठा है? निमित्त तो होता ही है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। होता ही है। वह तो ज्ञान कराने को यह चीज़ बताते हैं।

मुमुक्षु : होता ही है। उपादान का सिद्ध कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत पत्र लिखे हैं तीन-चार। शिक्षा देते हैं। बहुत अच्छी...

तुम अब तुम्हारी गलती समझो। तुमको कहते होंगे या मुझे कहते हैं, कुछ खबर नहीं उसमें कुछ बहुत। पत्र है, पढ़ना, पढ़ना। इन्हें दो तो सही। उसका उत्तर है इनके प्रति।

मुमुक्षु : इनके प्रति आया तो इन्हें ही कहे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। मेरे प्रति आया है।

श्रीमान कानजीभाई, ऐसा लिखा था। ऐसे तीन-चार पत्र आये।

मुमुक्षु : इन्होंने ३-४ पत्र लिखे होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी तो यह बात है। चेतनजी ने लिखे होंगे तीन-चार। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ भान? उसका कुछ नहीं। दो-चार बार पत्र... ऐसा कोई भाव आ गया। उसे दे दो सब। उसके पत्र का उत्तर है। शिक्षा करते हैं। जयसेनाचार्य के साहित्य का अभ्यास करो तो तुम्हारी गलती है, वह निकल जायेगी। ऐसे के ऐसे। जयसेनाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य को उसमें अन्तर होगा कुछ?

मुमुक्षु : अरिहन्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरिहन्त का उपदेश... नहीं। अपने-अपने कारण से वह सब दशा हुई है। आहाहा! वह कब वस्तु को समझे? अब पर की बात तो नहीं, यहाँ तो व्यवहार के विकल्प से भी निश्चय नहीं होता। यह चौथे से है। चौथे में व्यवहारमोक्षमार्ग अकेला होता है। ऐसा कि निश्चय नहीं होता, ऐसा।

मुमुक्षु : व्यवहारमोक्षमार्ग कैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार (वह) मोक्षमार्ग कहाँ था? बन्धमार्ग है। आहाहा! और लिखा, पूरा पत्र लिखा....

यहाँ तो जिसे धर्मदशा अन्तर की प्रगट हुई है, वह राग और निमित्त के अवलम्बन बिना प्रगट हुई है। चैतन्यमूर्ति भगवान के आश्रय से प्रगट होती है। आहाहा! अवलम्बन कैसा पर का? निश्चयरत्नत्रय में व्यवहार की अपेक्षा कैसी? हो भले। परन्तु उसकी

अपेक्षा से निश्चय प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! कितनों को पढ़ने में अभिमान होता है। हमने बहुत पढ़ा है। खोटा जहर निकाला पढ़कर। अभी अपने ऐसा कि हम ऐसे भगवान के दृष्टान्त देंगे। कोई-कोई आचार्य के दृष्टान्त देंगे। आचार्य ने ऐसा कहा है। व्यवहार मोक्षमार्ग भी कहा है। व्यवहार मोक्षमार्ग... और टोडरमल ने तो कहा कि व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं। यह मान्य नहीं।

यहाँ कहते हैं, जिसे सहज भगवान आत्मा, चन्द्रमा की जैसे दूज उगी, वह सहजरूप से तीज और चौथ, वह बढ़ती जाती है, इसी प्रकार जिसे सहजरूप दिन-प्रतिदिन स्याद्वाद साधन अपेक्षा का साधन बढ़ता जाता है। आहाहा! **स्यादवाद साधन अधिकाइ...** ऐसा है न? **स्याद्वाद के द्वारा अपना स्वरूप अधिक अधिक जानते हैं।** अनेक स्याद्वाद का अन्दर (ज्ञान है कि) अपनेरूप से है और पररूप से नहीं। उसकी धर्मी को स्पष्टता विशेष होती जाती है, ऐसा कहते हैं। अपने से आत्मा का धर्म होता है, राग और निमित्त से नहीं होता, ऐसी स्याद्वाद की अधिकता बढ़ती जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह क्या ऐसा लोगों को समझने की दरकार है ही नहीं। कमाने लगो न अब कुछ धर्म..... अपवास।

अन्धेरे में भी गुड़ मीठा। अन्धेरे में गुड़ मीठा लगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुड़। छाणुं-छाणुं। छाणा होता है न! गोबर का छाणा नहीं होता है?

मुमुक्षु : हाँ, चूरा उसे गुड़ कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे गुड़ कहा जाता है। चूरा करे न। अग्नि, चूल्हे में डाले न। अग्नि जलाने से पहले करे। उसमें अग्नि रखे, पोचा हो तो। लकड़ी पूरी उसमें अग्नि कहाँ रखी जाये? छाणां का चूरा करके, चूल्हे में डाले, फिर उसमें दियासलाई ऐसे लगाये तो पकड़े दियासलाई। पोची चीज़ हो जाये। चूल्हे में उसमें से आग हो। इसी प्रकार यहाँ स्याद्वाद से भडका विशेष नरम होता जाता है, ऐसा कहते हैं। जहाँ देखो वहाँ स्व से है और पर से नहीं। एक गुण अपने से है और परगुण से नहीं। एक समय की

पर्याय स्व से है और पर से नहीं। विकार भी अपने से है और निमित्त के उदय से नहीं। आहाहा! ऐसा जो स्याद्वाद का स्वरूप... **स्यादवाद साधन अधिकाइ...** वह उसका साधन बढ़ता जाता है। अधिक-अधिक जानते हैं, लो।

जे केवलि प्रनीत मारग मुख,.... जो केवली कथित धर्ममार्ग में श्रद्धा करके उसके अनुसार आचरण करते हैं.... लो। भगवान ने—परमात्मा तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा कहा, ऐसा आत्मा अनुभव करके **चितैं चरन राखै ठहराइ....** यह सम्यग्दर्शन सहित स्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न चारित्र का (प्रयत्न) उसे होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसमें आत्मा का भान—सम्यक् हुआ। वह सम्यक्त्व के पश्चात् उसमें स्थिर होना, वह चारित्र हुआ। आहाहा! देखो, चारित्र की तो यह व्याख्या है। पश्चात् महाव्रत और फलाना और ढींकणा, वह नहीं। **चितैं चरन राखै ठहराइ....** स्वरूप में एकाग्रता का चारित्र स्थिरता—अन्दर स्थिर हो। आनन्द में स्थिर हो, वह चारित्र है। आहाहा! उसमें एक भाई ने प्रश्न किया है। उन हितैषी में। हितैषी को क्या कहा जाता है? सन्मति संदेश। दिल्ली। कि समकिती वह पूज्य है या नहीं? ऐसा प्रश्न किया है। उसमें से आया है भाई। पूछा उसका जवाब कहते हैं छहढाला का। '(चरित्रमोह) उदयवश लेश न संयम, पै सुरनाथ जजै है।' यह विवाद उठा है न सब। अव्रती समकिती पूजनीय नहीं। अरे, वह तो साधुपद समान पूजनीय नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया?

छहढाला में आता है न। चारित्र (मोह) के उदयवश लेश न संयम। लेश संयम नहीं। अमरचन्दभाई! आता है न यह? 'पै सुरनाथ जजै है।' तथापि इन्द्र भी समकिती की प्रशंसा करते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो 'जजै' का अर्थ पूजे, पूजा करे, ऐसा आवे। आहाहा! धन्य अवतार, भाई! इस सम्यग्दर्शन ने यह अनन्त संसार तोड़ दिया है। एकाध-दो भव आड़े हों, वह भव तो ज्ञान में ज्ञेयरूप से रह गये हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पूजा तो गुण की ही होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण की पूजा है न! राग की पूजा कहाँ है? गुणी को वन्दन करते हैं, यह वे पंचमहाव्रत के विकल्प न? अन्दर शुद्ध की सम्यग्दर्शन होकर चारित्र वीतराग, उसे वन्दन है। वह है, वह तो हेय है जाननेयोग्य। आहाहा!

परन्तु यह जवाब सच्चा दिया। सन्मति संदेश। ऐसे प्रश्न बहुत किये हैं, परन्तु

जवाब नहीं दिया। यह दिया। बनारसीदास वन्दन करते हैं (ऐसा) आता है न! 'करे कर जोड़ी बनारसी वंदन।' यह पहला दृष्टान्त दिया। यह दिया। यह है, यह देखो! परन्तु यह बहुत स्पष्ट लिया। लेश न संयम, ऐसा। आत्मज्ञान है, चारित्र नहीं। चारित्रमोह के वश हुआ स्वयं विकार में है, परन्तु वह अवस्था की अस्थिरता है। वस्तु की दृष्टि में वह अस्थिरता आती नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। ऐसी बात है। दोनों पण्डित के व्याख्यान हैं। ऐसा आता है। नारकी में शील है। ऐसा आता है वापस वहाँ अष्टपाहुड़ में। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। नारकी में शील है। समकित है, उसके साथ अनन्तानुबन्धी का अभाव और स्थिरता, ऐसा शील वहाँ भी है। शील है और उस शील के प्रभाव से वहाँ से निकलकर यह तीर्थंकर होनेवाले हैं। ऐसा पाठ है। शील का प्रभाव कहा। पहले नरक में गये, वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। ऐसा नारकी में भी भाव है।

यहाँ तो **केवलि प्रनीत मारग मुख, चितैं चरन राखै ठहराइ... स्याद्वाद के द्वारा अपना स्वरूप अधिक अधिक जानते हैं, जो केवली कथित धर्ममार्ग में श्रद्धा करके उसके अनुसार आचरण करते हैं।** उसके अनुसार आचरण। **ते प्रवीन करि खीन मोहमल,...** लो। **वे ज्ञानी मनुष्य मोहकर्म का मल नष्ट करते हैं।** आत्मा के अन्दर में एकाग्रता द्वारा मोह का नाश करके... उसका यथार्थ क्या है, उसे जानना तो पड़े या नहीं इसे? कि यह उसकी पद्धति और यह उसका मार्ग है। **ते प्रवीन करि खीन मोहमल,...** यह आता है या नहीं तुम्हारे? ....हाँ। उसने यह प्रश्न किया था कि यह चारित्र का दोष होता है, उसे—समकिती को वन्दन करनेयोग्य है या नहीं?

वह तो यह बताया न, छहढाला में कहा है यही विषय। वाँचन करते हैं। भगवती आराधना। वह आता है न, अव्रती पूजनीय नहीं और द्रव्यलिंगी पूजनीय है। अष्टपाहुड़ में। इस बात को सब सामने रखते हैं। वह कान्तिलाल, नहीं? मुम्बईवाला कान्तिलाल... वाला। हाँ, मलाडवाला। वह कहता है, नहीं, ऐसा है। अब यहाँ कहते हैं, देखो, चारित्रमोह के कारण से वश हो गया हुआ आत्मा है। है भान, तथापि वह भी इन्द्रों से पूज्यमान, पूज्यमान है। आहाहा! समझ में आया? दर्शनपाहुड़ में है न सब बात? वहाँ दर्शन की बहुत व्याख्या है। ....आदरणीय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सूझे ? .... है न। इन्द्र समकिती है, क्षायिक समकिती है। दर्शनपाहुड़ है। आधार देते हैं न.....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। वह भी पूज्य है पाँचवाँवाला। वह एकता प्रमाण....

ते प्रवीन करि खीन मोहमल,... लो। यह उसका ज्ञान करके ज्ञानी मनुष्य मोहकर्म का मल नष्ट करते हैं। **और परमपद को प्राप्त करके स्थिर होते हैं,....** लो, मूल पाठ। **अविचल होहिं परमपद पाइ।** आहाहा! दूज उगी, वह पूर्णिमा होती है, प्रकाश बढ़ता जाता है। उसी प्रकार जिसे आत्मज्ञान और आत्मभान हुआ, वह क्रम-क्रम से आगे बढ़ता जाता है। अविचल—स्थिर होकर मोह का नाश करता है, परमपद को पाता है। परमपद अर्थात् मोक्ष, लो। अब तीसरा कलश। नहीं ? उसका लगता है यह। किया है, शून्य किया है। तीसरे कलश में तो किया है उसमें।

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां,
भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः।
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा,
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ।।३।।

आहाहा! शुद्ध अनुभव से मोक्ष, लो। यह आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुभव करना, वह मुक्ति का कारण है। बीच में व्यवहार, राग और विकल्प आवे, वह मुक्ति का कारण नहीं। पवित्रता के कारण से पवित्रता पूर्ण प्रगटे या अपवित्रता के कारण से पवित्रता प्रगटे ? **शुद्ध अनुभव से मोक्ष और मिथ्यात्व से संसार है।** लो! विपरीत श्रद्धा से संसार। **'दंसणभट्ठाभट्ठा दंसणभट्ठस्य णत्थि णिव्वाणं'** ऐसा लिखा है। **'सिज्झंति चरियभट्ठा....** चारित्रभ्रष्ट हो तो भी मुक्ति होगी। उसके ख्याल में है कि यह दोष है। समझ में आया ? परन्तु दर्शनभ्रष्ट, जिसे वस्तु का भान ही नहीं। वह तो दर्शनभट्ठा भट्ठा। वह दर्शन से भ्रष्ट, ज्ञान से भ्रष्ट और चारित्र से भ्रष्ट—तीनों से भ्रष्ट है। आहाहा! श्रद्धा की क्या कीमत है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व, वह संसार और अनुभव, वह मोक्ष। यह फिर विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७०, आसोज शुक्ल ५, शुक्रवार, दिनांक २४-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ३६-३७

३६। श्लोक बोल लिया गया है। ३५ के बाद ३६ है न। **शुद्ध अनुभव से मोक्ष और मिथ्यात्व से संसार है।** क्या कहते हैं? है वीरचन्दभाई? उस ओर वहाँ। यह सब सूक्ष्म नयी बात है अभी उसमें, परन्तु अब सुनने में तो...

मुमुक्षु : ....नहीं समझ में आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह नरम व्यक्ति है न! यह बुद्धिवाले हैं न, कुछ पकड़े थोड़ा, क्या यह कुछ कहते हैं। सब चले सही न! कहते हैं कि **शुद्ध अनुभव से मोक्ष....** यह शब्द है अब। अब उसकी व्याख्या। ऐसे तो कुछ समझ में नहीं आता। यह शुद्ध अनुभव से मोक्ष अर्थात् क्या? अर्थात् कि यह आत्मा जो अन्दर सत् शाश्वत् और अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड शुद्ध है। उसमें जो यह पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह विकार है। यह शरीर, वाणी, मन तो यह तो जड़ है, यह तो अजीव है। इसलिए तो भिन्न चीज़ है। परन्तु पुण्य और पाप के भाव शुभ-अशुभ हों, उनसे यह चीज़ आत्मा भिन्न है और उसमें रहे हुए सब गुण शुद्ध हैं। ज्ञान शुद्ध... शुद्ध अर्थात् पवित्र पूर्ण। आनन्द शुद्ध, शान्ति वह चारित्र, वीतरागता शुद्ध। सब शुद्ध है। उसका स्वभाव। उसका अनुभव।

ऐसे शुद्ध स्वभाव का वर्तमान दशा में, ऐसे शुद्ध स्वभाव को अनुसरकर, त्रिकाली शुद्ध वस्तु को अनुसरकर, अनुभव अर्थात् होना। उसे अनुसरकर वीतरागदशा होना, उसका नाम अनुभव, वह मोक्ष का कारण है। कहो, समझ में आया? शुद्ध अनुभव से मोक्ष। मोक्ष अर्थात् परम सिद्ध भगवान। 'णमो सिद्धाणं' आता है न! पाँच पद तो आते हैं या नहीं, भाई, जयसुखभाई? 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं...' यह परदेश में घूमते हों। न हो वह भूल जाये, लो। कहो, समझ में आया? 'णमो अरिहंताणं' आता है न पहला पद। दूसरा 'णमो सिद्धाणं।' अरिहन्त को तो चार कर्म बाकी होते हैं, परन्तु अन्दर केवलज्ञान आदि प्रगट हुआ हो। समझ में आया? सिद्ध भगवान को तो, शरीररहित अकेला आत्मा रहे, उसे सिद्ध परमात्मा कहते हैं। 'णमो सिद्धाणं।' उस सिद्ध की प्राप्ति

आत्मा को कैसे हो ? कि शुद्ध अनुभव से होती है। यह अन्दर दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम से मुक्ति नहीं होती।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट करे, तब ही सब हो न! वस्तु की स्थिति, उसकी मर्यादा जैसी जितनी हो, उतना स्पष्ट हो तो समझ में आवे न! यह तो बिना भान के तो कूटा जाता है सब अनादि से।

यहाँ तो शुद्ध आत्मा... जिसे पूर्ण पवित्रतारूपी सिद्धदशा—मोक्ष चाहिए हो, उसे वह त्रिकाली द्रव्यस्वभाव आनन्दमय है, उसे अनुसरकर अनुभव करना। वह अनुभव, वह मोक्ष का कारण है।

मुमुक्षु : मोक्ष अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, मोक्ष, यह एक सिद्धदशा।

मुमुक्षु : सुख कब ? हमारे सुख चाहिए है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सुख है। मोक्षदशा में पूर्ण सुख है। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द है और संसारदशा में राग और द्वेष जितना है, उतना दुःख है। आहाहा! आत्मा तो सच्चिदानन्दस्वरूप ही है। सत् शाश्वत् अकृत्रिम—अरचित सत् शाश्वत् वस्तु है। उसमें सिद्ध अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् सुख से भरपूर पदार्थ है। ऐसे सुखसहित ऐसा भगवान का अनुभव करके... उसका अनुभव होने पर वर्तमान में भी आनन्द की दशा का वेदन आता है। आहाहा! वह आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, वह पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का कारण है। यह तो न्याय से तो कहा जाता है परन्तु अब .... कभी दरकार ही नहीं की ऐसी। यह संसार की होलियाँ सुलगीं। जहाँ-तहाँ पड़ा उसमें—चौरासी में। भट्टी—अग्नि है। समझ में आया ?

कहते हैं, शुद्धअनुभव। अनु अर्थात्.... यह पवित्र भगवान का स्वभाव त्रिकाल, उसे अनु अर्थात् उसे अनुसरकर, (भव अर्थात्) होना अर्थात् निर्मल शुद्ध के आनन्द का वेदन करना। वह मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का वह उपाय है। कहो, जेठाभाई! उसमें तो सीधी-सादी बात है। समझ में आया ? और **मिथ्यात्व से संसार है।** अब

उसकी व्याख्या। मिथ्यात्व अर्थात्? यह शरीर, वाणी, मन मेरे; इसके नहीं उसे मेरे (हैं ऐसा) मानना। उसमें पुण्य और पाप के राग होते हैं, वह इसका स्वरूप नहीं, तथापि उन्हें मेरा मानना, यह मिथ्याश्रद्धा—झूठी श्रद्धा, यह संसार का कारण है। अरे, अरे!

मुमुक्षु : संसार अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भटकना। चार गति में भटकना। यह कीड़ा और कौआ और कुत्ते के भव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ या नहीं पहले अब? क्या हो यहाँ? सब दुःखी हैं। यह सब अरबोंपति, करोड़ोंपति कहलाये, यह पैसे के पीछे वृत्ति उठती है, वह सब दुःखी हैं। उस पैसे को अनुसरकर होता राग, वह सब दुःख है। व्याख्या भी अलग प्रकार की। क्यों कान्तिभाई! क्या होगा यह?

मुमुक्षु : ....खाने को न मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! खाने को न मिले, उसके कारण आत्मा को क्या है? यह मुझे खाने का नहीं, मैं दीन हूँ—ऐसी मान्यता, वह दुःख है। आहाहा! समझ में आया? और मैं सधन हूँ, परिवारवाला हूँ। जो इसमें नहीं, उस चीज़वाला हूँ, ऐसी जो मान्यता, वह स्वयं दुःखरूप है। इसके नहीं और इसके माने हैं, वह झूठा—असत्य है। वह असत्य है, वह मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व है, वह दुःख है। न्याय से तो समझ में आये ऐसा है। अब उसमें कहाँ सादी भाषा में कुछ बड़े भंगभेद सीखना पड़े, ऐसा नहीं। चन्दुभाई! कैसे होगा यह? ....गजब! एक लाईन में दोनों समझाये तो ऐसे समझा सकते हैं।

कि **मिथ्यात्व से संसार है।** संसार अर्थात् चार गति में भटकने का भाव, वह मिथ्यात्व है और वही संसार है। 'संसरण इति संसारः' अर्थात् संसार अर्थात्? कोई स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, वह जीव को संसार नहीं। जीव में नहीं इसलिए वह संसार नहीं। उसका संसार, पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु स्वयं वहाँ से हटकर राग-द्वेष के, पुण्य-पाप के भाव, वे मेरे हैं—ऐसी मान्यता, वह संसार है। समझ में आया? अरे, अरे! संसार के

एल.एल.बी. की डिग्रियाँ लगायी हों और बी.ए.। होना हो तो ... मेहनत करके मर जाये बेचारा। पढ़कर। यह उसे समझना (सरल)। उसके घर की चीज़ है। रात्रि जागरण तो करे नहीं परन्तु यों ही दिन का समय हो तो ही उसे समझने की दरकार करे नहीं और वह तो रात्रि जागरण करके पढ़े।

मुमुक्षु : उसमें लाभ देखता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं लाभ। मुफ्त का....

मुमुक्षु : इसमें लाभ दिखाओ तो यह करें।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वकालात करते थे। यह कहा न भाई दोपहर में।

मुमुक्षु : अभी वह वकालात ही करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीस वर्ष पहले कोर्ट में पाँच घण्टे जाये, २०० रुपये लेते थे। फिर छोड़ दिया। वह तो धूल थी। ममता लेते थे। वहाँ दूसरा क्या लेते थे? ममता लेते थे। पुत्र है न, वहाँ है न तुम्हारे मुम्बई में। ऐसो में। आठ हजार मासिक वेतन।

मुमुक्षु : परन्तु आप तो इनकार करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह लोगों में ऐसा कहा जाता है न कि यह रामजीभाई का पुत्र सुमन, वह अमेरिका में पढ़ने गया था। यह कहे कि कष्ट में मरने गया है, ऐसा कहते थे। ऐई भीखाभाई! वह पढ़ने गया। कितने खर्च किये, कितने हजारों। कौन जाने उसकी खबर नहीं, परन्तु बहुत खर्च किये होंगे उसमें। परन्तु वह कष्ट में मरने गया है वह वहाँ, यह तब ऐसा कहते थे। परन्तु अब अभी आठ-आठ हजार का वेतन लावे, वह कष्ट में मरने गया था उसका है न वेतन या नहीं? धूल भी नहीं। आहाहा!

यह तो ममता है। और पूर्व का पुण्य हो, उसका ऐसा फल दिखता है। परन्तु उसमें उसे—आत्मा को क्या? स्वयं तो लक्ष्मी से भिन्न और दूर चीज़ है। उस लक्ष्मी से मुझे ठीक है, ऐसा परद्रव्य से ठीक है, यही झूठा भाव, यह मिथ्यात्वभाव, यह दुःख है। समझ में आया? मिथ्यात्व, वह संसार है, देखो! आहाहा! स्त्री-पुत्र संसार नहीं। वह तो परचीज़ है। वह कहाँ आत्मा में घुस गयी थी? उसमें पर मेरे, मैं उनका और पुण्य-पाप की वृत्तियाँ—विभाव—विकार, स्वभाव से विरुद्ध भाव हो, वह मेरा—ऐसा मिथ्यात्वभाव,

वह संसार है। वह दु:ख में डुबकी मार रहा है। आहाहा! मूलचन्दभाई! यह कहते हैं अब, देखो! यह तो मात्र उपोद्घात किया है। अब इसका पद है।

★ ★ ★

काव्य - ३६

शुद्ध अनुभव से मोक्ष और मिथ्यात्व से संसार (सवैया इकतीसा)

चाकसौ फिरत जाकौ संसार निकट आयौ,
पायौ जिन सम्यक मिथ्यात नास करिकै।
निरदुंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन,
कीनी मोखकारन अवस्था ध्यान धरिकै।।
सो ही सुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयौ,
गयौ ताकौ करम भरम रोग गरिकै।
मिथ्यामती अपनौ सरूप न पिछानै तातैं,
डोलै जगजालमैं अनंत काल भरिकै।।३६।।

शब्दार्थ:-चाक=चक्र। निरदुंद (निरद्वंद)=दुविधा रहित। गरिकै (गलिके)=गलकर नष्ट हुआ। पिछानै=पहिचाने।

अर्थ:-चाक के समान घूमते-घूमते जिसके संसार का अन्त निकट आ गया और जिसने मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, जिसने राग-द्वेष छोड़कर मनरूप भूमि को शुद्ध किया है और ध्यान के द्वारा अपने को मोक्ष के योग्य बनाया है, वही शुद्ध अनुभव का अभ्यास करनेवाला अविचल पद पाता है, और उसके कर्म नष्ट हो जाते हैं व अज्ञानरूपी रोग हट जाता है, परन्तु मिथ्यादृष्टि अपने स्वरूप को नहीं पहिचानते इससे वे अनन्त कालपर्यन्त जगत के जाल में भटकते हैं और जन्म-मरण के चक्कर लगाते हैं।।३६।।

काव्य-३६ पर प्रवचन

चाकसौ फिरत जाकौ संसार निकट आयौ,
पायौ जिन सम्यक मिथ्यात नास करिकै।
निरदुंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन,
कीनी मोखकारन अवस्था ध्यान धरिकै॥
सो ही सुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयौ,
गयौ ताकौ करम भरम भोग गरिकै।
मिथ्यामती अपनौ सरूप न पिछानै तातैं,
डोलै जगजालमैं अनंत काल भरिकै॥३६॥

यह समयसार नाटक तो हिन्दी है। अब इसका अर्थ। **चाकसौ फिरत जाकौ...** चक्र होता है न उसका—कुम्हार का। बर्तन बनाने का, नहीं? कुम्हार का चाक... चाक... चाक। उसमें बर्तन बने न! इसी प्रकार यह संसाररूपी मिथ्यात्व का चक्र है। यह चौरासी के अवतार में अनादि से चाक के ऊपर भ्रमता है। ईयळ, कीड़ी, कौवा, कुत्ता ऐसे भव अपनी जात को जाने बिना, अपनी चीज़ की कीमत किये बिना, पर की चीज़ की कीमत—महत्ता देकर अनादि से **चाकसौ फिरत...** अब उसे **संसार निकट आयौ,...** (परिभ्रमण) करते-करते संसार का अन्त आने का काल आया, ऐसा कहते हैं। परिभ्रमण करते हुए जिसे अर्धपुद्गल (परावर्तन) आदि संसार रह गया हो अब। संसार अर्थात् परिभ्रमण का रुकना—नजदीक हो गया अब। रुकना।

पायौ जिन सम्यक... लो! वह सम्यग्दर्शन पाता है। अर्थात् आत्मा अतीन्द्रिय सुखसम्पन्न प्रभु सत् वस्तु का उसे अनुभव होता है कि यह तो आत्मा परम आनन्द और शुद्ध का पिण्ड प्रभु है। ऐसा सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व का नाश होकर, पुण्य में सुख है, पाप में मजा है, संयोग में मुझे सुविधा है, इसलिए मैं सुखी हूँ—ऐसा जो मिथ्यात्व—अज्ञान—असत्यभाव, उसे सत्स्वरूप ऐसा भगवान आत्मा अन्तर्मुख होकर अनुभव करने से मिथ्यात्व का नाश होता है। असत्य का नाश होकर सत्य वस्तु है, उसकी उसे प्रतीति—अनुभव होता है। आहाहा! समझ में आया?

चाकसौ फिरत जाकौ संसार निकट आयौ, पायौ जिन सम्यक... अर्थात् जिसने। जिसने—**जिन सम्यक...** ओहो! यह आत्मवस्तु! उसमें बसी हुई शक्तियाँ—अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय वीतरागता—इन सब शक्तियों का पिण्ड, वह मैं। ऐसा अपना जो अविश्वास अनादि से था, ऐसे स्वरूप का जिसे अन्दर विश्वास आया और उसका अनुभव हुआ, उसे सम्यग्दृष्टि—सच्ची दृष्टिवन्त—जैसा सत्य है, वैसी दृष्टिवन्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यक्त्व कैसे प्राप्त हो, वह पद्धति भी साथ में बतायी। समझ में आया? राग, विकल्प, पुण्य-पाप की वृत्ति और उसके बन्धरूप से कर्म और उसके फलरूप से संयोग—तीनों चीज़ों में मैं हूँ और मेरी है, वह असत्यभाव—झूठा भाव —मिथ्यात्वभाव—संसारभाव है। उसमें—वस्तु में वह मानता है, (परन्तु) उसमें वह नहीं, तथापि वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ, ऐसा मानता है, वह मिथ्यात्वभाव दुःख का दायक संसारभाव है। वह अब गुलाँट खाता है।

अरे! मैं तो आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति हूँ। चैतन्यब्रह्म सहजानन्द मेरी चीज़ ही सहज स्वाभाविक आनन्द की मूर्ति है। ऐसा है, ऐसा अन्दर विश्वास आकर वेदन हो, उसे सम्यग्दर्शन—सच्चा दर्शन—सत्यदर्शन—सत् के परम सत्य का स्वीकाररूपी दृष्टि, उसे सम्यग्दृष्टि धर्मी कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें धर्म की। वह तो कहे, जीवदया मण्डली निकालो, मन्दिर बँधाओ, मन्दिर बँधाओ। धूल भी बनाया (नहीं)। वह जड़ की, पर की चीज़ बनावे कौन? इस अँगुली के रजकण भी यह चलते हैं, वह आत्मा के कारण से नहीं। क्योंकि वह तत्त्व भिन्न और भगवान (आत्मा) भिन्न तत्त्व है। भिन्न तत्त्व से भिन्न तत्त्व का कार्य हो, यह तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? यह दुनिया में अभी तो झपाझप चलती है। देखो न, यह कारखाने और बड़े... वस्तु ही ऐसी है। स्वयं आत्मा अर्थात् क्या? कोई वस्तु हो, उसकी शक्ति होगी या नहीं वस्तु में? अफीम है तो उसका कड़वाहट का स्वभाव, मिश्री है तो मीठा स्वभाव, नींबू है तो खट्टा स्वभाव, कलई है तो सफेद स्वभाव। तो आत्मा है तो स्वभाव क्या परन्तु?

मुमुक्षु : स्वभाव का क्या काम है? धर्म की बात करो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वहाँ भान बिना धर्म कहाँ से होता था इसे? मेरा स्व-भाव त्रिकाली ज्ञान और आनन्द, वह मेरा स्वभाव है। समझ में आया?

सम्यक पायौ... ऐसी दृष्टि अन्तर से पावे और मिथ्यात्व का नाश कर ले। यह भ्रमणा जो है, उसका नाश करके... नाश हो जाती है, परन्तु कथन तो ऐसा ही आवे न! पूर्ण परमात्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु, उस वस्तु की शक्तियाँ पवित्र और अनन्त हैं। ऐसा अन्तर में एकरूप अभेद वस्तु की दृष्टि करना, उसका अनुभव करना, उसे यहाँ सम्यक् दृष्टि, जैसा सत्स्वरूप है, वैसी दृष्टि हुई, इसलिए उसने मिथ्यात्व का नाश किया। समझ में आया? अब ऐसा धर्म कुछ मूल होगा? कन्दमूल नहीं खाना। ऐई! अब वह तो परचीज़ है। खाये कौन और पीवे कौन? हाँ। परन्तु है, वह चीज़ है। आहाहा! मन्दिर बनाना, यात्रा करना शत्रुंजय की। अब वह शत्रुंजय तो परचीज़ है। उसकी यात्रा करने का भाव हो तो वह शुभभाव पुण्य होता है। पुण्य, धर्म नहीं है।

धर्म, वह तो आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति सत्स्वरूप का अवलम्बन लेकर जो प्रतीति और ज्ञान हो, उसे धर्म—मोक्ष के कारण की दशा कही जाती है। अरे, अरे! यह वह किस प्रकार का धर्म? यह सर्वत्र तो चलता है तो दूसरे प्रकार का। परदेश में तो धमाल-धड़ाका देते हों ऐसे। ऐसा करे, ऐसा करे। वे कल थे न यह तुम्हारे समधी? कहाँ गये, नहीं आये चन्द्रकान्त? उनके समधी आये हैं। उनका पुत्र है न, कहीं है परदेश में। चन्द्रकान्त गुजराती। उसका पिता यहाँ है। परदेश बहुत घूमा।

मुमुक्षु : फ्रेंकफर्ट में।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं होगा। फेलफट हो गये हैं सब। फेल हो गये हैं। आत्मा के भान बिना अन्दर यह फेल हो गये हैं। वह ऐसा कहता था। कल आहार था न आहार। तब कहे, महाराज! अफ्रीका में ऐसा और ढींकणा में ऐसा है। अपने उसे बात करें कि हम आलू नहीं खाते। कहे, क्यों? उसमें जीव है। हें? उसे ऐसा हो जाये। अब कहा, उसमें कुछ माल नहीं। साधारण बात है। वह ऐसा कहता था। वह परदेश में घूम आये हैं न! भाई, परदेश में घूम आनेवाले बहुत हमको मिले हैं। कहा, हम भले परदेश में गये नहीं बाहर में।

भाई थे न, नहीं अपने? वहाँ नैरोबी में थे न भाई? यह मनसुख ताराचन्द नैरोबी। यह करोड़पति। मोटा करोड़ रुपये। मनसुख ताराचन्द। यह अपने आँख के ऑपरेशन के समय उपस्थित थे न। लींमडी के थे। नैरोबी में १५-२० लाख की मशीन है। यहाँ

करोड़, यहाँ मुम्बई में हैं। उनके पुत्र करोड़पति करोड़े बड़े ऊँचे। स्वयं यहाँ बहुत बार आते थे, महीना-महीना, पन्द्रह-पन्द्रह दिन आँख के लिये। मोतिया उतारने। यहाँ सोते। वह ध्यान रखने रात्रि में आवे। यहाँ सोते थे। करोड़पति। व्यक्ति बहुत सादा। बहुत सादा दिखे। वह वहाँ नैरोबी में रहते। सब बातें हमसे करते थे वहाँ की। परन्तु क्या उसे? धूल भी नहीं वहाँ, कहा।

नैरोबी-अफ्रीका में है न! मर गये वहाँ जाकर। बहुत कहा था कि यहाँ तुम निवृत्ति लेकर आये हो। अब तो करो। वहाँ मर गये। नरम व्यक्ति बेचारा। बहुत नरम था। यह सुना हुआ नहीं इसलिए... रात्रिभोजन न करे, एक महीने के चार उपवास करे। गृहस्थ थे, हों! प्रतिदिन सामायिक (करे)। यह बाहर की मानी हुई सम्प्रदाय की दृष्टि। तत्त्व तो कहाँ था? मैंने कहा, ऐसे सब आकर हमको तो परदेश की बहुत बातें की हैं, इसलिए हमको कुछ नया नहीं लगता। आहाहा! वहाँ तो ऐसा होता है। कोई चीज़ रास्ते में पड़ी हो तो कोई उठावे नहीं। जो आवे व्यक्ति, वह हाथ भी न लगावे और वह (जिसकी) हो वही ले जाये। दूसरा उठावे नहीं। ऐसा और ऐसा... अब धूल में छोड़ जाये। वह रूपवान चमड़ा देखे न रूपवान, सफेद और टोपा में आवे बड़ा। अब बुद्धि के बारदान हों सब। आहाहा!

धर्म किसे कहना, उसका भान नहीं होता। अब जिसमें आत्मा को सुख हो, उसकी पद्धति की खबर नहीं होती और यह दुःख हो, उसकी पद्धति की खबर अर्थात् बुद्धि किसे कहना उसे? परन्तु लोगों के साधारण चमड़ी और इसके लाल आदि उसके। सफेद चमड़ी और यह.... होवे तो घोके चमड़ी जैसा हो वह तो। खबर है? पहिचानते हो? गोरा, जिसे सफेद लगे वह चमड़ी, यह घो जैसा हो। घो, घो होता है न अपने यहाँ। सर्दी बहुत न वहाँ, इसलिए यह चमड़ी बहुत कठोर हो ऐसी। कोमल न हो उसकी। हाँ, हाँ, हमको तो सब खबर है न एक-एक बात की। लगे रूपवान। परन्तु सर्दी बहुत न, तो यह चमड़ी, घो की चमड़ी नहीं? घो... घो नहीं आती? ऐसी चमड़ी उसकी गोरा (अंग्रेज) की। परन्तु यह हमारे साधारण को वह गोरा देखकर (हो), ओहोहो! अब वहाँ का हो ढेड हल्का, वह यहाँ आकर बड़ा साहेब हो जाये।

यहाँ कहते हैं कि यह आत्मा... आहाहा! जिसने निज साहेबी अन्दर की जिसने

देखी और मानी, वह बड़ा धर्म का साहेबा है। आहाहा! समझ में आया? **पायौ जिन सम्यक मिथ्यात नास करिकै।** असत्यपना है, उसका नाश किया। पुण्य से लाभ होता है, पुण्य से सुख होता है, पाप में मजा है—ऐसी जो असत्य—झूठी दुःखरूप मान्यता, उसे आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसा सत्स्वरूप का अनुभव करके, प्रतीति करके जिसने मिथ्यात्व का नाश किया है, और सम्यग्दर्शन की अवस्था जिसने उत्पन्न की है। आहाहा! कठिन भाई!

निरदुंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन,... आहाहा! **जिसने मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, जिसने राग-द्वेष छोड़कर मनरूप भूमि को शुद्ध किया है,....** देखो! आहाहा! शुभ-अशुभ जो भाव है पुण्य-पाप, उनसे रहित आत्मा के स्वरूप का भान किया, उसके परिणाम शुद्ध हुए। वे शुद्ध हुए। **निरदुंद मनसा...** मन में द्वंद्व रहा नहीं। पुण्य और पाप दो ठीक और अठीक, यह दृष्टि टल गयी। पुण्य, वह ठीक और पाप, वह अठीक—ऐसी द्वंद्वदशा, धर्म पाते हुए—आत्मा की सत्य की दृष्टि होने पर, राग—पुण्य ठीक और पाप अठीक, यह द्वंद्वदशा नाश हो जाती है। समझ में आया?

तुम्हारे यह पैसावाले की कुर्सी पहले पड़े, लो। और गरीब व्यक्ति ऐसे बुद्धिवाला अच्छा, एक-दो भव में मोक्ष जानेवाला (हो)....

मुमुक्षु : उसी भव में मोक्ष जानेवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस भव में मोक्ष जानेवाला हो तो भी पूछे नहीं कोई। उसको खम्मा। आओ सेठ। वापस पाँच-दस हजार, बीस हजार, पचास हजार लेना हो। वह धर्म के नाम से सेठिया दे। गरीब क्या दे?

मुमुक्षु : कौन दे और कौन ले?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह..... धूल में अब तेरे।

यहाँ तो कहते हैं कि लक्ष्मी आत्मा की अपनी अपने में है। उसका अनुभव करने से उसका भाव शुद्ध होता है। उसे पुण्य-पाप के दो भाग में पुण्य ठीक और पाप अठीक, ऐसा रहता नहीं। दोनों से पृथक् पड़ जाता है। आहाहा! पर से पृथक् तो है, परन्तु पुण्य और पाप के शुभ-अशुभ दो भाव, उनसे आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति का

भान होने से दोपने के राग से वह भिन्न रह जाता है। उसे सच्ची दृष्टिवन्त धर्मी कहा जाता है। अरे, अरे! यह धर्म है।

निरदुंद मनसा सुभूमि... मन की भूमि जिसने शुद्ध की है। **साधि लीनी जिन,—** जिसने साध ली है। आहाहा! **कीनी मोखकारन अवस्था ध्यान धरिकै।** जिसने आत्मा शुद्ध परमानन्दमूर्ति का जो मोक्ष का कारण, ऐसी दशा ध्यान धरकर प्रगट की है। फिर से। **कीनी मोखकारन अवस्था ध्यान धरिकै।** अन्दर भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य की एकाग्रता—ध्यान करके जिसने मोक्ष के कारण की दशा प्रगट की है। अरे, अरे! समझ में आया? यह तो तीर्थंकर का आत्मा का विचार चलता था। (चक्रवर्ती को) पाँचवें गुणस्थान में ९६ हजार स्त्री हो, तथापि देव आदर करे! यह हमारे भाई का—प्रदीप का प्रश्न था। पाँचवें गुणस्थान में। परन्तु उसने आत्मा अन्दर में आनन्दमूर्ति का अनुभव किया है। आहाहा! ९६ हजार स्त्रियाँ होने पर भी कहीं सुखबुद्धि मानता नहीं। उसका विकल्प आवे, वह काला नाग जैसा ज्ञानी को दिखता है। यह वह बात! समझ में आया?

जिसने आत्मा के स्वभाव में एकाग्रता करके मोक्ष के कारण की दशा प्रगट की, उसे आत्मा में सुख भासित होता है। उसे पुण्य-पाप के विकल्प में और उसके बाहर के सामग्री के ढ़ेर में कहीं सुख भासित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि सुख—आनन्द, वह तो आत्मा में है। ऐसा जहाँ भान हुआ, तो असत्—पर में जो सुख है, यह बुद्धि तो नाश हो गयी। समझ में आया? समझ में आया या नहीं इसमें? यह हीराभाई ठीक है और वह सब सुख का नाश हो जाये, ऐसा कहते हैं। परन्तु यह संगति भी हीराभाई जैसा लड़का कैसा पका इन्हें। भाई, भाई करके ऐसा....

मुमुक्षु : अरे प्रभु! उसमें मुझे क्या लेना-देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : लेना-देना नहीं? कहते हैं, किसके पुत्र? परन्तु थे कब इसे? आहाहा! यह भटकता आत्मा कहीं से आया, तुम भटकते कहीं से आये। थे कब कि हो जाये?

मुमुक्षु : इकट्ठे तो हो गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं इकट्ठे नहीं। दोनों भिन्न-भिन्न हैं। दोनों इकट्ठे हो जायें तो

जहाँ हीराभाई होते हैं, वहाँ भीखाभाई रहे और भीखाभाई हो वहाँ हीराभाई रहे, इकट्ठे हो गये हों तो। वह भटकता हो वहाँ और यह भटकता हो यहाँ। आहाहा!

कहते हैं, **कीनी मोखकारन अवस्था ध्यान धरिकै।** ऐसा कहा है, हों! कि राग से होता है और पुण्य से होता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन की दशा—सम्यग्ज्ञान की दशा—मोक्षकारणरूप अवस्था, वह आत्मा का ध्यान करके होती है। राग और पुण्य की क्रिया करने से होती है, ऐसा है नहीं। संक्षिप्त शब्द में बहुत भाव भरे हैं। आहाहा! अरेरे! चौरासी में भटकता-रुलता... उसे आत्मा का तत्त्व जहाँ हाथ आता है अन्तर अनुभव से, कहते हैं कि उसकी दशा अपने त्रिकाली स्वभाव की एकाग्रता से ही प्रगट हुई है। वह व्यवहार के क्रियाकाण्ड बहुत किये, इसलिए प्रगट हुई है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! आज लेख आया है उन स्थानकवासी का। भाई! पहली व्यवहारभूमिका चुस्त चाहिए, फिर निश्चय प्राप्त होता है। सब लगे हैं....। अभी व्यवहार किसे कहना, उसका भान नहीं होता। यहाँ बड़ा लेख है।

और एक व्यक्ति की बड़ी शंका है, उसका स्पष्टीकरण दिया है। वह कुछ ठीक दिया है। कोई क्या इन्द्रलाल शास्त्री है कोई। स्थानकवासी होगा। ऐसा कहे, यदि सर्वज्ञ को स्वीकार करने जायें तो पुरुषार्थ करना रहता नहीं। इसलिए सर्वज्ञ को मानना छोड़ दो तो पुरुषार्थ है।....गजब किया है न कुछ! ऐई! उसके सामने बहुत जोर आता नहीं। भाई! सर्वज्ञ को छोड़ देने में, उनकी मान्यता छोड़े तो ऐसा कि पुरुषार्थ कर सकते हैं, ऐसा है? सर्वज्ञ एक समय में, तीन काल-तीन लोक जानते हैं, वह नियत कारण है, ऐसा लिखा है भाई वहाँ, हों! किसी ने लिखा है। इतना कुछ ठीक लिखा है। परन्तु नियत कारण के साथ पुरुषार्थ तो है। पुरुषार्थ साथ में है। क्योंकि सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवली तीर्थंकर एक समय में तीन काल जाने, ऐसा जो ज्ञान का स्वभाव ऐसा एक समय की दशा का है, ऐसे भाव की प्रतीति (हो), उसे मैं ही आत्मा सर्वज्ञस्वभावी हूँ, ऐसे स्वसन्मुख हुए बिना सर्वज्ञ की प्रतीति ऐसे पुरुषार्थ की जागृति बिना होती ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी सर्वज्ञ की एक समय की दशा, ऐसी अनन्त दशा आयी कहाँ से? आयी कहाँ से? आत्मा वस्तु भगवान सर्वज्ञस्वभावी, तीन काल-तीन लोक को जानने का

(एक) पर्याय का स्वभाव है तो उसके द्रव्य के स्वभाव की क्या बात करना! ऐसे द्रव्यस्वभाव के पुरुषार्थ की जागृति बिना सर्वज्ञ हैं, उनकी प्रतीति सच्ची नहीं हो सकती। समझ में आया? सभी प्रश्न आये हैं। कौन जाने .... हिल गये हैं सब अन्दर से। कि सर्वज्ञ को मानने जायेंगे तो भगवान देखे वैसा होगा। फिर अपने पुरुषार्थ कहाँ रहा? अब तुझे पूरे जैनशाासन के सर्वज्ञ को उड़ाना है? तुझे उड़ा अब, सुन न! क्या करना चाहता है तू बड़ा पण्डित?

उसने जरा दृष्टान्त दिया है कि यह... समझ में आया? कुछ दीमक का दृष्टान्त दिया है। शास्त्र में शब्द के ऊपर दीमक फिरे, दीमक... उधई नहीं होती यह?

मुमुक्षु : जीवांत, दीमक।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजराती में दीमक हो। पहले नौ पुस्तकें पढ़े हैं, ऐसा कहते थे। भाई कहते थे, नहीं? वे ऐसा कहे, तुम .... दीमक भाषा कहते हैं। वह दीमक होती है न बारीक-बारीक सफेद। बहुत धूप हो न तो मर जाये। बड़ी ऐसी सफेद इतनी दीमक हो। तो यह दीमक, क्या कहलाती है?

मुमुक्षु : दीमक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दीमक यहाँ अक्षर ऊपर फिरे तो दीमक को ज्ञान होगा? इसी प्रकार शास्त्र के बड़े पोथे ऊपर फिरे, ज्ञान होगा?

मुमुक्षु : बिल्कुल नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अज्ञानी, आत्मा ऊपर आये बिना यह पर के ऊपर अकेला फिरे, वह तो दीमक जैसा है। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय—सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक जाने। ज्ञान का स्वभाव ऐसा ही स्वभाव होता है। ऐसे स्वभाव की प्रतीति, ऐसे सर्वज्ञस्वभावी ध्रुव स्वभावी की दृष्टि हुए बिना, यह सर्वज्ञ की सच्ची प्रतीति आती नहीं। उसमें पुरुषार्थ भरा हुआ ही है। परन्तु जरा सूक्ष्म बात है। यही कहते हैं। **कीनी मोखकारन अवस्था ध्यान धरिकै।** सर्वज्ञस्वभाव मेरा त्रिकाल है, उसका ध्यान करके जिसने मोक्ष के कारण की दशा प्रगट की है। समझ में आया?

अरे, ऐसी सब सूक्ष्म बातें! अटपटा जैसा लगे अनजाने को तो, नहीं? अटपटावाला बोले, गुजराती को कुछ समझ न पड़े। शास्त्रीय शब्द नहीं और उसका अभ्यास नहीं कि यह क्या है यह? आहाहा! अपने यह कच्छी बहुत बोले तो ऐसा लगे, यह क्या बोले। ऐसे यह मारवाड़ी भाषा देखी? बहुत मारवाड़ी हो न पुरानी। .... वह... वह... तू... तू... किया करे। मानो क्या कहते हैं अपने को कुछ समझ में नहीं आती। बहुत ऐसी भाषा हो न बरीक, वास्तविक मारवाड़ी हं। अठे-कठे और फलाना, ढींकणा किया करे। अपने को क्या कुछ अठे-कठे (में कुछ नहीं जानते)। ऐसे अपनी गुजराती भाषा उन्हें ऐसी लगे। है या नहीं? उसे बेचारे को खबर न हो न! ऐसी यह वीतराग की मोक्ष के लिये भाषा, वह अनजाने जीव को तो अटपटा जैसा लगे। आहाहा!

भाई! तेरा स्वरूप जो है, उसका तुझे अजानपना वर्तता है, प्रभु! आहाहा! तेरा निधान, तेरा निधान वस्तु में अनन्त आनन्द आदि पड़ा हुआ है। जिसे सुख प्राप्त करना, वह सुख कहाँ से आयेगा? भाई! तुझे खबर नहीं। ज्ञान पूर्ण प्राप्त करना, वह ज्ञान कहाँ से आयेगा? वह अन्दर पूर्ण ज्ञान है, भाई! आहाहा! वह पूर्ण ज्ञान वस्तु में एकाग्र होकर ध्यान करके—उसका ध्यान करके, अनादि से राग-पुण्य-पाप, निमित्त का ध्यान करता था, वह तो संसार है। आहाहा! वह भटकने के पंथ में पड़े हैं वे तो। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ अन्दर वस्तु है। उसमें अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि शक्तियाँ बसी हुई—रही हुई हैं। उसका जो ध्यान करे, उसे जो आदर करे, उसके सन्मुख हो, उसे मोक्ष के कारण की दशा प्रगट होती है। उसे धर्म कहा जाता है। ऐसा धर्म! कोई पाँच-पचास हजार-लाख-दो लाख दे देवें, लो न धर्म होता हो तो। दो करोड़वाले—पाँच करोड़वाले को क्या, दस लाख दे देवें, जाओ।

परन्तु दस लाख तेरे कब थे? वह तो जड़ है। तेरी लक्ष्मी अन्दर है, वह कहीं दी जाती है किसी को? वह तो शाश्वत पड़ी है अन्दर। वह लेनेवाला ले, माननेवाला माने। समझ में आया? लेनेवाला ले अर्थात्? उसकी दशा में यह स्वरूप ऐसा है, ऐसी जहाँ प्रतीति हो तो उसने लिया पूरे आत्मा को। आहाहा! अभी गृहस्थाश्रम में भले वह जीव हो। समझ में आया? परन्तु ऐसा भान हुआ जीव राग को और किसी चीज़ को अपनी मानता नहीं। चक्रवर्ती तीर्थंकर हो, कहा न! आहाहा!

प्रश्न तो ऐसा उठा कि तीर्थंकर चक्रवर्ती होते हैं। १६वें, १७वें, १८वें। चौबीस तीर्थंकर हैं न! शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ। तो उन्हें तो ९६ हजार स्त्रियाँ होती हैं पद्मिनी जैसी। ऐसे पुण्य लेकर आये होते हैं। और वह विवाह करते हैं वापस बड़ी उम्र में, आठ वर्ष में तो बारह व्रत आवे। पाँचवें गुणस्थान में विवाह करे और तो भी उनकी सामग्री देव लेकर दे। उस पाँचवें देवलोक के हैं न वे भाई, लोकान्तिक (देव), वे न आवे। वह तो जब त्याग करनेवाले हों, तब ही आते हैं। दीक्षा लेनेवाले हों, तब वे आते हैं। क्यों स्वयं ब्रह्मचारी देव हैं न! देखो न, एक शैली जगत की रचना की, बहुत प्रकार। उससे पहले दूसरे देव आते हैं। समझ में आया?

वह जीव ही ऐसा है कि उसके पास ऐसा ही पुण्य होता है कि ऐसा भोग साधन होने पर भी दृष्टि में निर्भोग है। आहाहा! अरे! मेरे अतीन्द्रिय आनन्द के भोग के समक्ष, अरेरे! यह राग का भोग तो जहर है। काले नाग की तरह फण देखे.... आहाहा! ऐसे धर्मात्मा को देव लाकर वस्त्र और पात्र किये हैं। ओहोहो! गजब बात है! यह तो आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा और अनुभव हुआ, उसकी यह कीमत है। आहाहा! अब यह तो दूसरे हों, परन्तु यह तो तीर्थंकर का जीव। चक्रवर्ती का हो तो भी उसे देव इस प्रमाण करते हैं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसका जिसे अन्तर अनुभव है और यह आत्मा ही उस जाति का हो कि जिसे देव आकर... 'देव उपनित्य' ऐसा शब्द है। आहाहा!

सो ही सुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयौ,... भगवान अविनाशी तत्त्व प्रभु, उसका अनुभव करनेवाला **सुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयौ,...** अब चार गति में भटकने का उसे रहता नहीं। आहाहा! यह अध्यात्म की बात है, इसलिए सूक्ष्म है सूक्ष्म। नये को सूक्ष्म लगे। जयचन्दभाई! यह तो अध्यात्म की अन्तर की (बात)। वहाँ तो कमाना, खाना, यह सब हो-हा। शहरों में बहुत घूमे न, इसलिए पंचरंगी दिखाई दे सब वहाँ। अरबोंपति दिखाई दे सब। अमेरिका में अब तो कितने बड़े-बड़े बँगले। ओहोहो! उस गोवा मैं एक व्यक्ति अपना है न बनिया। चालीस लाख का बँगला है। शान्तिलाल खुशाल। गोवा में दशाश्रीमाली बनिया है अपना। लो, उसमें तो मजा मानते होंगे, नहीं? चालीस लाख का बँगला। बँगला चालीस लाख का मकान। पैसा तो अरबों रुपये उसके

पास है, अरबों रुपये। शान्तिलाल खुशाल। दुनिया पागल है, पागल है। ऐसों को सुखी कहना (अर्थात्) पागल के अस्पताल में पागल, पागल की महिमा करे। नेमचन्दभाई!

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! **सुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयौ,...** भाई! ऐसा कहा यहाँ। पहला जो राग और पुण्य और पर को (अपना) मानता था, तब नाशवान था वह जीव। आहाहा! ऐ चन्दुभाई! आहाहा! नित्य वस्तु आदि-अन्तरहित मेरा तत्त्व, ऐसा जो अन्तर्मुख होकर भान हुआ, वह तो अविनाशी हुआ।

मुमुक्षु : पर्याय में रहकर?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अविनाशी। द्रव्य तो है, परन्तु यह भान हुआ तब यह अविनाशी है, ऐसा अविनाशी पर्याय में भान हुआ। आहाहा! मैं राग नहीं, पुण्य नहीं कहीं।

एक व्यक्ति का और पत्र आया है छिन्दवाड़ा से। तुम कुछ व्रत तो लो। अब ऐसे तुम बुद्धिवाले और कुछ... लो। अब व्रत (अर्थात्) यह बाहर से ले, वह व्रत कहलाते होंगे? वे कहते होंगे कि हम... छिन्दवाड़ा के, नहीं?

मुमुक्षु : आपका भला चाहते होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत, वह कहीं ऐसे व्रत-ब्रत लिये जाते हैं? अन्दर में शान्ति की वृद्धि दिखाई दे कि हो उसे व्रत के विकल्प हो। आहाहा! अमरचन्दभाई! परन्तु क्या होगा? जगत की चीज़ में क्या है... है छिन्दवाड़ा के।

छिन्दवाड़ा में अपना बड़ा मण्डल है। बड़ा है, नहीं? यह गये थे न! परन्तु अभी आयी थी न महिलायें। महिलाओं का झुण्ड छिन्दवाड़ा में यहाँ का वह है और एक उसमें होशियार जवान कोई ऐसी। वह सब पैसा इकट्ठा करे। महिलाओं-महिलाओं में से पैसा इकट्ठा करे, आदमी को बुलावे नहीं। धर्मादा करके कुछ बड़ा स्वाध्यायमन्दिर खड़ा किया है। छिन्दवाड़ा है। कहाँ आया वह?

मुमुक्षु : नागपुर के पास।

पूज्य गुरुदेवश्री : नागपुर के पास। हाँ, अभी आयी थी थोड़ी २५-३० महिलायें। सबको बहुत रस। वहाँ का कोई है। बात ऐसी भाई! यह पत्र आया था। परन्तु व्रत किसे

कहना, बापू? व्रत वह अन्दर दो कषाय (चौकड़ी) का अभाव हो, पुरुषार्थ से हो वह, तब उसे व्रत के विकल्प आते हैं, उसे व्यवहारव्रत कहा जाता है। भाई! यह बात कहीं सूक्ष्म है। ऐसे यह बाहर से ले लिये, इसलिए अन्दर दशा हो जाये, ऐसा स्वरूप नहीं है। भाई! उसे खबर नहीं। आहाहा!

सो ही सुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयौ,... बनारसीदास का देखो। **गयौ ताकौ करम भरम भोग गरिकै।** आहाहा! **गरिकै** अर्थात् गलकर। ऐसे धर्मात्मा आत्मा पूर्णानन्द प्रभु का अन्तर में भान होकर श्रद्धा होने से, अनुभव होकर श्रद्धा हुई, वह जीव अविनाशी है ऐसा अविनाशी रहा। अब चार गति में भटकने का मुझे है नहीं। ऐसा हो जाये उस सम्यक्त्व में, ऐसा कहते हैं। **गयौ ताकौ करम....** उसे कर्म-भ्रम होता नहीं। **भरम भोग गरिकै।** कर्म और भ्रमणा दोनों का रोग तो गल जाये, कहते हैं। आहाहा! जहाँ सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का स्वरूप जहाँ प्रतीति में, अनुभव में हाथ आ गया। बस समाप्त, उसे करम-भ्रम का रोग गल जाता है। समझ में आया? गजब किया। उसे निर्जरा होती है, ऐसा कहते हैं भाई! गल जाता है अर्थात् उसे निर्जरा हुई, ऐसा कहते हैं। यह अपवास करके बैठे और भान न हो आत्मा का और निर्जरा तप की हो जाये। धूल भी नहीं होती। समझ में आया?

मिथ्यामती अपनौ सरूप न पिछानै तातैं,... अब उल्टा लेते हैं। मिथ्या अर्थात् झूठी मति। **अपनौ स्वरूप...** त्रिकाली ज्ञान का पुंज प्रभु आनन्द की कातली नित्यानन्द प्रभु, ऐसे स्वरूप को मिथ्याबुद्धिवाले जानते नहीं। **न पिछानै तातैं, डोलै जगजालमैं....** वह अविनाशी कहा था ऊपर। उसके सामने यह डोले कहा है। आहाहा! आत्मा परमानन्दमूर्ति, रागरहित चीज़ निर्विकल्प प्रभु का जिसे भान नहीं, प्रतीति नहीं, पहिचान नहीं, वह मिथ्यामति **डोलै जगजालमैं....** यह चौरासी के जाल में भटका करता है। आहाहा! समझ में आया?

अनंतकाल भरिकै... भाषा देखो! अनन्त काल। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? कहा, राजुल के ऊपर नजर गयी, आज नहीं आयी। सुशीलभाई को बतायी या नहीं? नहीं बतायी? अब किसी दिन आये हैं, यह देखे, कहा यहाँ। परन्तु नहीं आयी। स्कूल गयी होगी। स्कूल.... यह स्कूल में गयी है। वह जातिस्मरण नहीं हुआ लड़की

को ? पूर्वभव का। यहाँ जूनागढ़ की लुहार की पुत्री, उसमें से अपने यहाँ आयी। यह उसके पिता के पिता हैं, यह वजुभाई। इनके पुत्र की पुत्री है। सामने मकान में रहती है। अभी स्कूल गयी है। यह तो परभव है, वहाँ से (दूसरा) भव आता है, ऐसा निर्णय होता है, ऐसा है यह। अकेला यही भव है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसे तो अनन्त भव (किये)। यहाँ कहते हैं न, देखो न! **जगजालमैं अनंत काल भरिकै।** अनन्त काल से चार गति में भटकेगा अज्ञानी। जिसकी बुद्धि मिथ्यात्व है, वह अपने स्वरूप को जानता नहीं। आहाहा! **आत्मअनुभव का परिणाम।** है न बाद में। यह चौथा कलश। नीचे है न ?

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां,
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री–
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः।।२६७।।

★ ★ ★

काव्य - ३७

आात्म–अनुभव का परिणाम (सवैया इकतीसा)

जे जीव दरबरूप तथा परजायरूप,
दोऊ नै प्रवांन वस्तु सुद्धता गहतु हैं।
जे असुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा,
विषैसौं विमुख ह्वै विरागता बहतु हैं।।
जे जे ग्राह्यभाव त्यागभाव दोऊ भावनिकौं,
अनुभौ अभ्यास विषै एकता करतु हैं।
तेई ग्यान क्रियाके आराधक सहज मोख,
मारगके साधक अबाधक महतु हैं।।३७।।

अर्थः–जिन जीवों ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों के द्वारा पदार्थ का स्वरूप समझकर आत्मा की शुद्धता ग्रहण की है, जो अशुद्ध भावों के सर्वथा त्यागी हैं, इन्द्रिय–विषयों से पराङ्मुख होकर वीतरागी हुए हैं, जिन्होंने अनुभव के अभ्यास में उपादेय और हेय दोनों प्रकार के भावों को एकसा जाना है, वे ही जीव ज्ञानक्रिया के उपासक हैं, मोक्षमार्ग के साधक हैं, कर्मबाधा रहित हैं और महान हैं।।३७।।

काव्य-३७ पर प्रवचन

संस्कृत है। आत्म अनुभव का परिणाम। क्या कहते हैं? जिसे अनादि से राग और द्वेष और विकार का अनुभव है, वह संसारी, मिथ्यादृष्टि, मूढ़ है। जिसे यह आत्मा पूर्ण आनन्द का नाथ है, ऐसा स्वरूप का भान हुआ, उसे उसका परिणाम क्या होगा? कहते हैं। कि **जे जीव दरबरूप तथा परजायरूप, दोऊ नै प्रवांन वस्तु सुद्धता गहतु हैं।** त्रिकाली भगवान आत्मा शुद्ध है, ऐसा उसे ज्ञान होता है और वर्तमान अवस्था पलटती है, उसका भी उसे ज्ञान होता है। वस्तुरूप से द्रव्य नित्य है, परन्तु अवस्था—परिणाम बदलते हैं। विचार बदलते हैं न! वह बदलती है, वह पर्याय है। जैसे सोना सोनारूप से कायम है। सोना। और उसमें से कड़ा, अँगूठी, जेवर भिन्न-भिन्न होते हैं, वह अवस्था है। सोना सोनारूप कायम रहकर वह अवस्थायें बदले। इसी प्रकार आत्मा, आत्मा के अविनाशी स्वभाव से कायम रहकर उसकी दशाओं में—अवस्थाओं में बदलाव होता है। अरे! समझ में आया?

पानी पानीरूप से कायम रहकर पानी की तरंगें अवस्थाएँ बदला करती हैं, उसी प्रकार भगवान आत्मा कायम नित्यपना रखकर उसकी दशाओं में परिवर्तन होता है। यह तो समझ में आये ऐसी भाषा है। बहुत सादी भाषा है। बात है ऊँची। वह तुम्हारा प्रोफेसर बोले न वहाँ एक घण्टे में तुम्हारे गला में आवे। जो वह सुने और भाग जाये बाद में... प्रोफेसर हो न वहाँ। यहाँ ऐसा नहीं है। यह तो सादी भाषा। ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसा है। यह ख्याल में आ जाता है कि ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें सुनने को मिले, वह भाग्यशाली कहलाता है। ऐसा परम सत्य परमात्मा का। आहाहा!

जे जीव दरबरूप... द्रव्य अर्थात् वस्तु। स्वयं त्रिकाल है, उसका भी ज्ञान धर्मात्मा को होता है। और **परजायरूप**—वर्तमान अवस्था। मिथ्यात्व का नाश होकर समकित हुआ। समकित का पलटा खाती अवस्था, चारित्र और आगे केवलज्ञान होगा। ऐसी पर्याय का भी उसे ज्ञान हुआ। **दोऊ नै प्रवांन...** दोनों नय के अंशों का विषय सत्य है। त्रिकाल भी सत्य है और अवस्था भी सत्य है। समझ में आया? **दोऊ नै** अर्थात् दो नय। नय अर्थात् ज्ञान। ज्ञान के अंश दो—एक त्रिकाली ध्रुव को जाने और एक अवस्था को जाने। दोनों नय सत्य हैं। कूटस्थ ही आत्मा है, ऐसा नहीं। कूटस्थ हो तो कार्य हो नहीं। कार्य होता है, वह दशा में होता है। ध्रुव, वह कूटस्थ है और जिसका बदलाव होता है, वह पर्याय है। समझ में आया? अरे यह! अनअभ्यासी को (कठिन) चीज़ लगे मानो। दोनों नय प्रमाण हैं, ऐसा कहते हैं।

उसमें **वस्तु सुद्धता गहतु हैं।** दोनों नय को जाने, तथापि त्रिकाली शुद्ध को ही वह अनुभव करता है। गहै—उसे ही पकड़ता है, ऐसा कहते हैं। **जिन जीवों के द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों के द्वारा पदार्थ का स्वरूप समझकर आत्मा की शुद्धता ग्रहण की है,....** देखो! आत्मा त्रिकाल नित्य भी है और अवस्था बदलती भी है। दोनों प्रमाणज्ञान में लेकर शुद्धता पकड़ी है। आहाहा! **जे असुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा,....** देखो! आहाहा! आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव और वर्तमान बदलती पर्याय—अवस्था, दोनों को जानता है परन्तु शुद्ध को पकड़ता है। अशुद्ध जो भाव... यह ग्रहता है और यह छोड़ता है, ऐसा कहते हैं। यह पुण्य और पाप के भाव, वे अशुद्ध हैं। उन्हें **त्यागी भये...** उनका सर्वथा त्यागी है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया?

धर्मी होने पर धर्मात्मा को त्रिकाली द्रव्य-वस्तु है, उसका भी ज्ञान है और वह ज्ञान पलटा खाता है अवस्था में, वह भी उसे भान है। ऐसा भान होने पर भी त्रिकाली शुद्ध को अनुभव करता है। शुद्ध त्रिकाली शुद्ध पर उसका जोर है और अशुद्ध का त्यागी है। विकल्प उठे, उसका त्याग है अर्थात् वस्तु के शुद्धता के अनुभव में अशुद्धता की उत्पत्ति नहीं होती। आहाहा! पुण्य और पाप का भाव दोनों अशुद्ध हैं और क्षणिक हैं। और त्रिकाली भाव शुद्ध आत्मा पवित्र शुद्ध है। दोनों का ज्ञान होने पर भी शुद्ध को ग्रहता

और अशुद्धता को छोड़ता है। इसका नाम धर्म और धर्मी कहा जाता है। समझ में आया? अशुद्धता को जानता तो है, ऐसा कहते हैं। जानकर छोड़ता है।

जे असुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा,... आहाहा! कथंचित पुण्यपरिणाम आदरणीय है, छोड़नेयोग्य नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा! धर्मी जीव को अपने आनन्द के निधान की लक्ष्मी का भान हुआ, इसलिए वह आनन्द को वेदता और आनन्द को ग्रहण करता है। और अशुद्धता को छोड़ता है अर्थात् कि अशुद्धता उसे उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! **विषैसौं विमुख ह्वै विरागता बहतु हैं।** धर्मी को विषय की वासना से तो वैराग्य है। वासना हो, परन्तु अन्दर से वैराग्य है। आहाहा! समझ में आया? **विषैसौं विमुख ह्वै विरागता बहतु हैं।** यह वैराग्यपने को वहे—परिणमता है। वह रागरूप परिणमता (नहीं)। परिणमता नहीं अर्थात् राग की अवस्थारूप होता नहीं।

जे जे ग्राह्यभाव त्यागभाव दोऊ भावनिकौं, अनुभौ अभ्यास विषै एकता करतु हैं। शुद्ध आनन्द, वह ग्रहणयोग्य है और अशुद्धता छोड़नेयोग्य है। दोनों को एक-सा जानता है अर्थात् दोनों को जानता है, ऐसा। उसका (स्वरूप) है, ऐसा जानता है। आहाहा! जैसा स्वरूप जो त्रिकाल ध्रुव का शुद्ध ग्रहे, उसे जाने और अशुद्धता छोड़े, उसे भी जानता है। जानने में दोनों वस्तु है। **तेई ग्यान क्रियाके आराधक सहज मोख,...** देखो, यह क्रिया आयी। यह आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होना और राग की क्रिया का उसमें अभाव होना, यह **'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष।' सहज मोख मारगके साधक अबाधक महतु हैं।** उसे विघ्न करनेवाला कोई है नहीं। कर्म बाधा है नहीं। भगवान आत्मा अपनी पूँजी अनन्त आनन्द आदि की प्रतीति जहाँ हाथ आयी, उसे कोई बाधा करनेवाला है नहीं। अपनी पूर्णदशा को प्राप्त करेगा, उसका नाम मुक्ति के साधक कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७१, आसोज शुक्ल ६, शनिवार, दिनांक २५-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ३८ से ४१

समयसार नाटक। साधक, मोक्ष की पर्याय का साधक किसे कहना, यह बात चलती है। संसार चौरासी के अवतार का कारण जो मिथ्यात्व है, उसका साधक मिथ्यादृष्टि, वह संसार को साधता है। जिसे आत्मा की पूर्ण आनन्द की पर्यायरूप सिद्ध की सिद्धि, उसकी जिस द्वारा प्राप्ति हो, उसे उपाय अथवा साधक कहते हैं। यह साधक की व्याख्या है। वे लोग ऐसा कहते हैं न कि ज्ञान और क्रिया दो हो तो मुक्ति—मोक्ष होता है। अब कौन सी क्रिया और कैसा ज्ञान, यह बात इस श्लोक में आती है। ज्ञान और क्रिया दो चाहिए। बात सच्ची, परन्तु कौनसी क्रिया और कौनसा ज्ञान? आहाहा! **ज्ञान-क्रिया का स्वरूप।**

★ ★ ★

काव्य - ३८

ज्ञनक्रिया का स्वरूप (दोहा)

विनसि अनादि असुद्धता, होइ सुद्धता पोख।
ता परनतिको बुध कहैं, ग्यान क्रियासौं मोख।।३८।।

शब्दार्थ:-विनसि=नष्ट होकर। पोख=पुष्ट। परनति=चाल।

अर्थ:-ज्ञानी लोग कहते हैं कि अनादि काल की अशुद्धता के नष्ट होने और शुद्धता के पुष्ट होने की परिणति ज्ञानक्रिया है ओर उसी से मोक्ष होता है।।३८।।

काव्य-३८ पर प्रवचन

विनसि अनादि असुद्धता, होइ सुद्धता पोख।
ता परनतिको बुध कहैं, ग्यान क्रियासौं मोख।।३८।।

देखो! सर्वज्ञ भगवान अथवा अज्ञानी, वह ज्ञान और उस क्रिया को मोक्ष कहते हैं कि **विनसि अनादि असुद्धता,....** राग-द्वेष की अशुद्धता टले, वह क्रिया। अशुभभाव टले और शुभ हो, वह क्रिया, वह नहीं। है? देखो। **विनसि अनादि असुद्धता,....** अनादि (से) जो राग और पुण्य को अपने मानता था, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, ऐसी जो अशुद्धता, वह स्वभाव का ज्ञान करके अशुद्धता का नाश हुआ। और **होइ सुद्धता पोख....** जिसमें वीतरागी निर्मल दशा का पोषण हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

ज्ञानी लोग कहते हैं कि अनादि काल की अशुद्धता के नष्ट होने और शुद्धता के पुष्ट होने की परिणति... वस्तु जो त्रिकाल शुद्ध और पवित्र ज्ञायकभाव, उसकी अनुभूति होना, उसका अनुभव होना, उसे शुद्धता का पोषण कहा जाता है। वह शुद्धता का पोषण और अशुद्धता का नास्तिभाव, उसे यहाँ धर्म का साधक कहा जाता है। आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई! यह क्रिया, राग और पुण्य की क्रिया इसमें नहीं आयी। व्यवहार हो, परन्तु वह कहीं साधक का स्वरूप नहीं। वह तो बाधक बीच में विघ्न है। आहाहा! क्रिया उसे कहते हैं कि जो आत्मा ज्ञानस्वभाव वस्तु है, उसके स्वभाव के सन्मुख होकर ज्ञान और राग की दशा का अभाव। यह वस्तु के स्वरूप का ज्ञान और राग की क्रिया का अभाव, वह क्रिया। यह '**ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष।**' आहाहा! समझ में आया? कहो, पण्डितजी! इसमें व्यवहार कहाँ आया? दया-दान और व्रत का व्यवहार तो आया नहीं इसमें?

मुमुक्षु : व्यवहार तो बाधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाधक है?

(संवत्) १९९० के वर्ष में चोटीला थे। ९०, ९०। सदर में आया था न भाई चातुर्मास। ९०। ९० के वर्ष। १९९०।

मुमुक्षु : ३५ वर्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतने वर्ष। तो वहाँ स्थानकवासी साधु गुलाबचन्दजी थे। रतनचन्दजी शतावधानी के गुरु चोटीला में थे। उसमें हम उतरे। उसमें ही थे न तब तो। फिर व्याख्यान दिया। बहुत लोग... स्वयं बेचारे सुनने आये। सुनो तो सही कि यह क्या

कहते हैं यह? सुना। बाहर व्याख्यान दिया। उपाश्रय में तो लोग समाये नहीं। यह दोपहर में बात होने पर चर्चा हुई। भाई! यह ज्ञान और क्रिया—दोनों मोक्ष का कारण कहते हैं न? उनकी ५५ वर्ष की दीक्षा। ५५। बड़ी उम्र थी। गुलाबचन्दजी थे। रतनचन्दजी के गुरु। फिर तो बहुत वर्ष में गुजर गये। ७५-८० वर्ष की दीक्षा। बड़ी उम्र में....

उन्हें (ऐसा) कि ऐसा कैसे? मैंने कहा, कौनसा ज्ञान और क्रिया? कहे, यह ज्ञान करना शास्त्र का और यह महाव्रत और राग की क्रिया करना। ऐसा हम तो मानते हैं अभी तक। उपाश्रय में। मुँहपत्ती सहित थे न उस समय। कहा, ऐसा नहीं है। उनके शिष्य तो बड़े शतावधानी थे। स्थानकवासी में लींबड़ी सम्प्रदाय में। तब? यह आत्मा का ज्ञान—आत्मा कौन है, उसका ज्ञान; कैसा है, उसका ज्ञान। और राग का अभाव—अशुद्धता का अभाव, वह क्रिया है, कहा। अरे! बात तो कहे सच्ची लगती है, हों! भाई! ऐसा कहा। बात तो सच्ची लगती है परन्तु ऐसे अर्थ कहाँ से हो? सब (दूसरे अर्थ) करते हैं उसमें से.... ... मूलचन्दभाई! क्योंकि जहाँ आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य, उसके जहाँ सन्मुख हुआ तो विभाव का उतना अभाव हुआ। वहाँ शुद्धता की पुष्टि और विभाव का अभाव। वह शुद्धता की पुष्टि, वह ज्ञान और विभाव का अभाव, वह क्रिया। इस ज्ञान-क्रिया से मुक्ति है। मूलचन्दभाई! तब क्या अभी तक यह माँडा सब? देखो, है अन्दर?

विनसि अनादि असुद्धता,.... ३८ (पद)। यह अभी बड़ा झगड़ा है, इसका यह स्पष्टीकरण है। आहाहा! सबको विवाद। कहाँ गये दामोदरभाई आये हैं? नहीं आये। दामनगरवाले। अहमदाबादवाले। नहीं तो सवेरे तो होते हैं। वह कहे, औदायिक बात हुई। यह उसके साथ बात हुई। यह वे अमरचन्दजी आते हैं न! अमरचन्द, नहीं? वळा पाटियारपरवाळा। पाटियापर, क्या कहलाता है? .... हमारे तो .... उमराला के पास और पाटियापर (पालेज) के पास। वह पालेज के पास। ... वहाँ एक पाटियापर है। जसदण और .... के बीच। यहाँ पछड़ी गाँव के सात मील आगे है। यह उसे वहाँ मिले होंगे अभी। वे कहते थे अभी। जंगल गये न साथ-साथ। कहे, यह पहली क्रिया सब यह क्रिया करना, वह साधन है और उससे फिर निश्चय धर्म होता है।

मुमुक्षु : कितने वर्ष की अवधि में होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अवधि, अवधि कुछ नहीं। आहाहा! दामोदर कहे, भाई! यह बात तुमको बैठती नहीं। ऐसा है नहीं। समझ में आया? कहाँ गये कहाँ दामोदर? पालीताणा? सवेरे अपने दिशा को गये न, तब साथ में थे। उन्होंने कहा, यह क्रिया और ऐसा कुछ... कहा, सब दुनिया पूरी कहती है। मार्ग यह है, जादवजीभाई!

यह आत्मा वस्तु है। है या नहीं? यह आनन्द और ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। उसका ज्ञान करना। उसका ज्ञान अन्दर सन्मुख होकर स्वसंवेदन होना। और जब यह स्व हुआ अर्थात् अशुद्धता का नाश होगा। अस्तिरूप से पूर्ण आत्मा का ज्ञान हुआ, अशुद्धता का नाश हुआ, वह क्रिया है। है उसमें? यह लोगों को भारी कठिन पड़ता है। यह हमारे साधन है। महाव्रत लिये, नग्न हुए, साधु हुए, वह साधन है, क्रिया है।

मुमुक्षु : ग्रहण-त्याग सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ग्रहण-त्याग सच्चा। ठीक अब तो ठिकाने आते हैं अब। परन्तु उसका कुछ नहीं। छोर अच्छा उसका सब अच्छा। भूतकाल को याद करना नहीं। आहाहा! भाई! वस्तु तो यह है, उसे पहले श्रद्धा में तो ले। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, वह तो है। अब वह ज्ञान की क्रिया जो एकाग्र होकर होती है, उसमें राग का अभाव होकर ज्ञान की एकाग्रता को यहाँ क्रिया कहा जाता है। यह मार्ग है। बनारसीदास ने ऐसा कहा न, नहीं? उपादान-निमित्त में, नहीं? दोनों चार... शिव चार... वहाँ आता है न? .... नहीं? कहाँ गया? है उसमें? दोहा, दोहा। ४७ दोहा में आता है न। उपादान-निमित्त। उसमें है?

मुमुक्षु : ज्ञाननयन और क्रियाचरन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह **ज्ञाननयन क्रियाचरन दोऊ सिवमगधार।** वह इस प्रकार ही कहा है बनारसीदास ने। बस यही है। उन्होंने वह उपादान-निमित्त में डाला अलग और इन्होंने यह बनाया है, यह कलशटीका में से। यह कलशटीका में से। समझ में आया? योगसार में आता है या नहीं? यह सज्झाय का बीसवाँ। योगसार में यह कहते हैं। उसमें योगसार नहीं? ... छहढाला। योगसार नहीं? योगसार में आता है। योगसार। अपने यह सज्झाय चलती है न, यह योगसार की। वहाँ उसके उपादान दोहे साथ में

इकट्ठे आते हैं। ४७ और ७ = ५४। और यह १०८। ऐसी वहाँ सज्झाय चलती है न!.....

अनादिकाल की अशुद्धता नष्ट हो। मलिनता का परिणाम नाश हो, वह क्रिया। देखो, यह बनारसीदास का है। वहाँ एक आया था न, 'गुरु उपेदश निमित्त बिन उपादान बलहीन, ज्यों नर दूजे पाव बिन चलवे को आधीन।' दो पैर बिना कोई एक पैर से चला जाता है? यद्यपि एक पैरवाला व्यक्ति होता है। ५६ उस अन्तर्द्वीप में। एक पैर और एक टाँगवाला। ५६ अन्तर्द्वीप में आता है शास्त्र में। यह ३० अकर्मभूमि के और ५६ ये। ९६ है न। यह एक टाँगवाले, मानो बाघ जैसा मुख, कुत्ता जैसा, बन्दर जैसा मुख उसमें। हाँ। गूँगे होते हैं। कान बड़े। ऐसे बड़े कान कि एक कान नीचे बिछाये और एक कान सिर पर ओढ़े, इतने बड़े लम्बे कान। हाँ, यह ५६ अन्तर्द्वीप है। सिद्धान्त में है न! त्रिलोकसार में है। आज जरा देखा था। मुझे तो वह देखना था। उस स्थल का। परन्तु उसमें नहीं निकला। पुस्तक में नहीं निकला।

एक उसमें से निकला कि पहले नरक में छह काल में से छठवाँ काल जैसा काल है। ऐसा एक निकला उसमें। और स्वर्ग में पहले काल जैसा काल है। इतना यह दोपहर में पढ़ा। महाविदेह में चौथे काल जैसा काल है। आरा नहीं। आरा नहीं, परन्तु चौथे आरा जैसा काल। पहले नरक में अन्तिम छठवें आरा जैसा काल और स्वर्ग में पहले आरा जैसा काल, ऐसा पाठ है। क्या कहा?

मुमुक्षु : पहले आरा जैसा स्वर्ग में।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वर्ग में काल, ऐसा। पहला आरा नहीं, उसके जैसा। और नरक में अन्तिम छठवाँ आरा जैसा काल।

मुमुक्षु : सभी नरकों में?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें। सातों ही नरक। सातों नरक। सब स्वर्ग। दो द्वार हैं। त्रिलोकसार में है।

यहाँ तो कहते हैं, 'हो जाने था एक ही उपादान सो काज। टके सहाय पौन बिन पानी मांही जहाज।' पवन न हो तो अकेला पानी में जहाज चले (नहीं)। दो चाहिए। तब उत्तर देते हैं कि **ज्ञाननयन क्रियाचरन दोऊ सिवमगधार।** यह जो अभी चलता है

वह। वस्तु भगवान आत्मा का अन्तर ज्ञान और राग बिना की स्थिरता, वह क्रिया **दोऊ सिवमगधार।** दोनों मोक्ष का मार्ग है, ऐसा। बनारसीदास ने यह उपादान-निमित्त में डाला है। यह साधक में डाला। **उपादान निश्चय जहां तहां निमित्त व्यवहार...** लो। कहते हैं कि ज्ञान का स्वरूप आत्मा का अन्तर में भान हुआ, और राग का अभाव वह ज्ञानक्रिया, वह निश्चय। और उसके प्रमाण में वहाँ राग की मन्दता आदि का भाव हो, वह निमित्त। तो यह ज्ञान (और) क्रिया। यह दो, इनसे मुक्ति होती है। निमित्त से नहीं होती। **उपादान निश्चय जहां तहां निमित्त व्यवहार,...** ऐसा कहते हैं।

चैतन्यस्वरूप की शुद्धता सन्मुख होकर जो निर्मलता प्रगटे और रागरहित स्थिरता हो, वह ज्ञान और क्रिया। उसका नाम मुक्ति का मार्ग। ऐसा जहाँ निश्चय हो, वहाँ भूमिका (के) प्रमाण में राग की मन्दता का निमित्तपना होता है। है न? उपादान निश्चय जहाँ-तहाँ... अर्थात् तीनों डाले। ज्ञान, क्रिया और निमित्त, यह भी डाला। समझ में आया? निमित्त, वह व्यवहार, परन्तु वह निमित्त मुक्ति का कारण नहीं। ऐसा है। इसलिए कहा न! **ज्ञाननयन क्रियाचरन दोऊ सिवमगधार, उपादान निश्चय जहां तहां निमित्त व्यवहार...** इसकी—राग की क्रिया है, वह निश्चय में नहीं डाली। राग के अभाव की स्थिरता, वह क्रिया, वह मुक्ति का कारण। और राग बाकी रहा, वह निमित्त में डाला। वह बन्ध का कारण, वह मुक्ति का कारण नहीं, ऐसा सिद्ध किया है। बनारसीदास। अपने चलता है न स्वाध्याय। ऐसे तो गृहस्थाश्रम में स्पष्टीकरण कर गये हैं बनारसीदास। समझ में आया? यह भी बनारसीदास का है। यह बनारसीदास का है। यह उनका है। समयसार नाटक उनका है न, तो शब्द वह के वही आये।

विनसि अनादि असुद्धता.... धर्मी को तो अन्दर अशुद्धता तो नाश हो गयी है, कहते हैं। यह थोड़ी बाकी रही, परन्तु यह उसके अभाव में वर्तती है। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् से किसी भाई ने कृष्ण का प्रश्न किया था। कृष्ण का। श्रीकृष्ण कहाँ हैं? तब जवाब दिया कि श्रीकृष्ण आत्मा में हैं। वस्तु ऐसी ही है। स्थान है, वह तो परक्षेत्र है और दुःख का विकल्प है, वह भी परवस्तु है। उसमें ज्ञानी है ही नहीं। समझ में आया? धर्मी जीव तो अपना आनन्द और ज्ञानस्वभाव, रागरहित भाव में है। व्यवहार का निमित्त जो राग है, उसमें वे हैं ही नहीं। आहाहा! स्पष्ट बात बहुत निर्मल, परन्तु अब

गृहस्थ को आग्रह है न, इसलिए उसे बैठने नहीं देता। उसे माहात्म्य नहीं आता। यह प्रभु बड़ा महा, उसका ज्ञान अर्थात् राग का उसमें अभाव। वह ज्ञानक्रिया, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

तब उन्होंने स्वीकार किया, हों! भाई गुलाबचन्दजी ने (स्वीकार किया)। तब तो स्थानकवासी में पाट पर बैठते थे। दो बातें चली थीं। एक (बात)। शास्त्र में मूर्ति है या नहीं? कहा, मूर्ति है। कहे, यह बात तो सच्ची है। मूर्ति है। शिष्य जो शास्त्र पढ़ेंगे तो हमको गुरु नहीं मानेंगे, ऐसा बोले थे। क्या करे इसमें? रहने का उन स्थानकवासी में। शास्त्र में प्रतिमा है। ३२ सूत्र में मूर्ति और मूर्तिपूजा है, कहा। तब कहे, यह तो मुझे भी शंका है। वह मूल तो शिष्य पढ़ेंगे न। शिष्य तो होशियार थे न रतनचन्दजी। शतावधानी पण्डित थे। यह शिष्यों को शंका पड़ेगी कि यह तो शास्त्र में ऐसा है और यह लोग ऐसा दूसरा बोलते हैं। तो हमारी जिन्दगी शंका में गयी, ऐसा वे बोलते थे। जेठाभाई! उसमें शुभभाव निमित्तरूप से होता है, परन्तु वह मुक्ति का करण नहीं। तथापि वह होता है। वह न हो, ऐसा माने तो भी मिथ्यादृष्टि है और उसे मुक्ति के कारण में खतौनी करे तो भी मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया?

ता परनतिको बुध कहैं,... परिणति की व्याख्या की—चाल। साधक अवस्था कही है न! आत्मा की चाल। आत्मा मोक्ष की ओर चलता है, ऐसा। आत्मा पूर्ण आनन्द की दशा की ओर गमन करता है। उपाय है सही न! साधक है न! चलता है न वह। एक पंथ चले, तब पंथ में पूरा हो न उसे, ऐसा। इसलिए आत्मा अपने निजस्वरूप आनन्द और ज्ञान में चलता है, वह गति करता है, परिणमता है। अशुद्धता अभाव और शुद्धता की अस्ति, उसकी चाल में साधक जीव है। कहो, समझ में आया? वह उसके मार्ग में है। आहाहा! अरे! उसके स्वभाव में उसका मुक्ति का मार्ग स्वभाव की दशा से होता है। क्योंकि मुक्त स्वभाव पूर्ण स्वभाव है। तो पूर्ण स्वभाव का कारण भी स्वभाव की दशा ही होता है। विभावदशा पूर्ण का कारण होगी? मूल बात तो बहुत सीधी और सरल है। देवीलालजी! यह तो दो और दो = चार जैसा है। अब उसमें कहीं... आहाहा! भले दूसरा ज्ञान थोड़ा हो, परन्तु उसे इस दृष्टि में तो बैठना चाहिए न अन्दर अनुभव में। समझ में आया?

अशुद्धता का अभाव। अपने एक कलश में अशुद्धता का अभाव डाला है। समयसार में। यह '**ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष**' है न भाई! यह है न अन्दर में। '**ज्ञानक्रियानय-परस्परतीव्रमैत्री**' इसका अर्थ पण्डित जयचन्दजी ने शुभ विकल्प डाला है वहाँ। समझ में आया? उसकी अपेक्षा यह स्पष्ट है। और उसमें यह बनारसीदास का जो श्लोक है, उसमें तो बहुत स्पष्ट है। कि आत्मा अपना शुद्ध स्वभाव, उसका ज्ञान और राग का अभाव, यह **सिवमग** की क्रिया। शिवमार्ग—मोक्षमार्ग की वह क्रिया और वह उसकी चाल। उसका चलना उसमें है। उसका चलना राग में और निमित्त में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ता परनतिको बुध कहैं,... ज्ञानी धर्मात्मा तो ऐसी चाल हो, जिसमें शुद्धता की दृष्टि और अशुद्धता का अभाव, ऐसी जो चाल हो, परिणति हो, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। **ग्यान क्रियासौं मोख।** लो। यह ज्ञान और क्रिया से मुक्ति। इसमें तो सादी भाषा है। समझ में आया? इसमें कोई बहुत संस्कृत-व्याकरण पढ़ा हो और भंग-भेद बहुत आते हों संस्कृत के और व्याकरण के तो समझे, ऐसी यह कुछ बात नहीं। इसमें संस्कृत व्याकरण की भाषा भी कहाँ है और उसका ज्ञान, उस संस्कृत भाषा की ओर का ज्ञान, वह वस्तु में कहाँ है? आहाहा! यह साधक की व्याख्या। धर्म का धरनेवाला और मोक्ष का साधक ऐसा होता है। **ग्यान क्रियासौं मोख...** लो। **परनति** का अर्थ चाल किया है। **परनति। परनति। सम्यक्त्व से क्रमशः ज्ञान की पूर्णता होती है,** लो। ३९-४०।

★ ★ ★

काव्य - ३९-४०

सम्यक्त्व से क्रमशः ज्ञान की पूर्णता होती है (दोहा)

जगी सुद्ध समकित कला, बगी मोख मग जोइ।
वहै करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ।।३९।।

जाके घट ऐसी दसा, साधक ताकौ नाम।
जैसै जो दीपक धरै, सो उजियारौ धाम।।४०।।

शब्दार्थ:-बगी=चली।

अर्थ:-सम्यग्दर्शन की जो किरण प्रकाशित होती है और मोक्ष के मार्ग में चलती है, वह धीरे-धीरे कर्मों का नाश करती हुई परमात्मा बनती है।।३९।। जिसके चित्त में ऐसी सम्यग्दर्शन की किरण का उदय हुआ है, उसी का नाम साधक है, जैसे कि जिस घर में दीपक जलाया जाता है, उसी घर में उजेला होता है।।४०।।

काव्य-३९-४० पर प्रवचन

जगी सुद्ध समकित कला, बगी मोख मग जोइ।
वहै करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ॥३९॥

जाके घट ऐसी दसा, साधक ताकौ नाम।
जैसै जो दीपक धरै, सो उजियारौ धाम॥४०॥

अरे! सादी भाषा में कितना डाला! **जगी सुद्ध समकित कला,....** सम्यग्दर्शन की किरण प्रकाशित हुई। आहाहा! निर्विकल्प चैतन्य पूर्ण स्वरूप का निर्विकल्प पर्याय से भान हुआ, वह समकित की किरण उगी। समझ में आया? आहाहा! **जगी सुद्ध समकित कला,....** जगी शुद्ध समकित की कला अर्थात् पर्याय। कला है न यह। अब आयेगा। नियमसार में श्लोक में अब आयेगा। श्लोक-कलश आयेगा, उसमें आयेगा। 'ज्ञानकला'। पहले एक श्लोक आ गया है। परन्तु इसमें भी आयेगा और समयसार में है। तीन जगह कलश में।

जगी सुद्ध समकित कला,.... यह साधन। साधक का यह साधन। वस्तु भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य की अन्तर में दृष्टि और एकरूपता की एकाग्रता, उसे समकित कहा जाता है। राग में एकाग्रता, उसे मिथ्यात्व कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? दुनिया को तो ऐसा हो-हा बाहर का चाहिए है न! लोग अधिक आयें। उसका हो जाये अभिमान कि, आहाहा... अपने इतने-इतने माननेवाले। किसे माने और कौन करे? भाई! तुझे तेरा मानना है। आहाहा! पर को कहाँ माने और कौन माने? अपना भगवान अनन्त-अनन्त गुण की राशि—पिण्ड प्रभु को मानना, वह तूने तुझे माना। और भगवान

ने ज्ञान में भी तुझे माना कि तेरी मान्यता सच्ची है। तूने जो माना, वह बात सच्ची है। आहाहा!

बगी मोख मग जोइ। मोक्ष के मार्ग की ओर अब गति चली। आहाहा! बग्घी कहते हैं न गाड़ी को, घोड़ागाड़ी को। हाँ, वह बग्गी कहते हैं बग्घी। यह हिन्दी भाषा। बग्घी (अर्थात्) चली। **सुद्ध समकित कला,...** भगवान आत्मा पुण्य-पाप और शरीररहित चीज़ है। एक समय की पर्याय को अन्तर में झुकाने से वह पर्यायरहित चीज़ ऐसी जो समकित कला जगी और **चली मोख मग जोइ... मोक्ष के मार्ग में चलती है...** परिणति। **वहै करम चूरन करै....** वह आनन्द की परिणति—निर्मलदशा, समकित की दशा, सम्यग्ज्ञान, वह **करम चूरन करै**—वह कर्म का नाश करे। क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रत आदि विकल्प तो बन्ध को करे। समझ में आया? **वहै करम चूरन करै....** यह व्यवहार समझाना तो कैसे समझावे? कर्म तो जड़ है। उन्हें कहाँ चूर्ण करना है? अशुद्धता का नाश भी कहा करना है? यहाँ तो शुद्धता में आया तो अशुद्धता का नाश हो गया। बात तो संक्षिप्त है, परन्तु अब उपदेश की शैली और पद्धति तो जैसी हो, वैसी आवे। बात ऐसे भी समझायी है।

क्रम क्रम पूरन होइ.... आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की जो ज्ञानदशा जगी और श्रद्धाकला जगी, वह क्रम-क्रम से मोक्ष की ओर चली। चली गति। वह क्रम-क्रम से केवलज्ञान को पायेगा, ऐसा कहते हैं। **क्रम क्रम पूरन होइ....** वह वीतरागता जो प्रगट हुई, वह क्रम-क्रम से पूर्णता को प्राप्त होगा। बीच में राग है, वह पूर्णता को पायेगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? उसके क्रम में हो तो यह क्रम हो। यह सम्यग्दर्शन की कला प्रगटी—पूर्णानन्द की प्रतीति अनुभव और **बगी मोख मग जोइ....** मोक्ष के पंथ के कारण में यह पंथ कारण है, उस ओर वह अन्दर गति की। **वहै करम चूरन करै....** वह कर्म की निर्जरा करे, ऐसा कहते हैं। पूर्व का जो हो उसे निर्जरा करे अब, ऐसा कहते हैं।

क्रम क्रम पूरन होइ.... क्रम-क्रम से परमात्मा बनता है। आत्मा की कला सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, वह कला बढ़कर पूर्णता को पाती है। कहो, ऐसा मार्ग! परन्तु लोगों को रुचता नहीं। उसके घर के स्वभाव का माहात्म्य है इसमें। परन्तु इसमें माहात्म्य नहीं लगता। उस व्यवहार का माहात्म्य (इसको) घुस गया है न अनादि से।

और उसमें तुझे दु:ख होगा। वर्तमान दु:ख है और दु:ख के फलरूप से दु:ख है। आहाहा! भाई! तेरा स्वभाव तो अनाकुल आनन्द निज तत्त्व है। उसका ज्ञान और श्रद्धा और एकाग्रता, वह समकित और ज्ञान है। यह एकाग्रता में राग के अभाव का भाव, वह क्रिया है। आहाहा! यह ज्ञान और राग के अभाव की क्रिया **क्रम क्रम पूरन होइ....** दूज उगे, वह पूर्णिमा होगी। दूज उगी पहले। कहते हैं, आगे थोड़े व्रत लो और यह लो। परन्तु व्रत वह कहीं बाहर के होंगे या अन्दर की कोई दशा है? आहाहा! कहो, पण्डितजी!

यहाँ तो यह स्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता बढ़ते-बढ़ते पूर्णता को पावे। बीच में भले वह विकल्प भूमिका प्रमाण आवे, वह तो निमित्त में—पर में गया। जैसे निमित्त कुछ करता नहीं, उसी प्रकार व्यवहार कुछ मोक्ष के मार्ग को करता नहीं। आहाहा! समझ में आया? निमित्त बाहर का, उसे निमित्त कहते हैं और व्यवहार भी निमित्त है। हुआ न! आ गया न अपने अभी। निश्चय जहाँ हो, वहाँ निमित्त व्यवहार (होता है)। उस लाईन में सब समाहित कर दिया बनारसीदास ने। तीन बातें डाली दीं। सब बहुत है उसमें। अब उसे भी उड़ाते हैं लोग। भगवान! परन्तु तुझे बैठती नहीं। तेरे घर का माहात्म्य कहते हैं, वह तुझे बैठता नहीं और घर से बाहर निकला हुआ माहात्म्य उड़ा दे तो कहे, नहीं, नहीं, यह नहीं।

मुमुक्षु : .... दृष्टान्त दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दिया है न! ....में ऐसा कहाँ है? ढींकणा कहाँ है? अब यह तो दृष्टान्त दिया, सुन न!

एक चक्रसौ रथ चलै, रविकौ यही स्वभाव.... इसकी भूल निकाली।

मुमुक्षु : ऐसा कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है? बनारसीदास की भूल निकाली भाई ने—रतनचन्दजी ने। वह तो अन्यमति का दृष्टान्त है। वहाँ कहाँ एक चक्र है? चीज़ साबित करने के लिये यह दृष्टान्त है। इस दृष्टान्त को तुझे सिद्ध करना है? आहाहा! देव के... वह कहा नहीं भक्तामर में? उनके गुरु ऐसे होते हैं बृहस्पति, लो। है? यह तो दृष्टान्त दिया है।

आहाहा! भक्तामर में है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन, वह संवर प्रगट हुआ और उसके कारण से अशुद्धता का अभाव, उसके साथ निर्जरा हो गयी। ज्ञान और वैराग्य, दो प्रगट हुए। ज्ञान स्वरूप का और वैराग्य, वह राग का अभाव। निर्जरा अधिकार में आता है। धर्मी को ज्ञान और वैराग्य की दो शक्तियाँ साथ ही होती हैं। राग से उदास, वह वैराग्य और स्वभाव की अस्ति का भान, वह ज्ञान। यह दो है। अरे! भव निकलने का (अभाव का) पंथ है न, प्रभु! तुझे न बैठे यह बात, भाई! सत्य का विरोध होता है। भगवान भूलता है। भगवान भुलायेगा। शर्त में चढ़ गया।

जाके घट ऐसी दसा,.... देखो! जिसके घट में ऐसी आत्मस्वभाव सन्मुख की दृष्टि और राग के अभाव की क्रिया, ऐसी जिसके घट में आत्मदशा (होती है), **साधक ताकौ नाम....** लो। यहाँ ऐसा कहते हैं। इसका नाम साधक। दया करे और व्रत पालन करे और पूजा करे तो साधक, ऐसा यहाँ नहीं कहा। समझ में आया? अपना पवित्र स्वभाव, उस ओर का झुकाव, राग की ओर का झुकाव अभावरूप हो गया। आहाहा! राग की ओर का झुकाव, उसमें मिथ्यात्वभाव था, स्वभावभाव का अभाव था। ऐसे बात गुलाँट खाती है। साधक में पूर्णानन्द आत्मा का स्वीकार और राग का अभाव। यह **साधक ताकौ नाम....** लो। इसे साधक कहते हैं। 'लाख बात की बात निश्चय उर आनो।' आहाहा! 'तोडी सकल जग द्वंद फंद...' भाई! तेरे घर की बातें हैं, हों! मीठा महरामण है न, प्रभु! आहाहा! उसे जहर द्वारा और खार द्वारा उसकी प्रशंसा करना.....

मुमुक्षु : नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वह कहे, परन्तु यह करना पड़े या नहीं व्यवहार? हाँ भाई! करना पड़े ऐसा भी कहा जाता है, ले न सुन न! यह परिणमता है इसलिए। परन्तु यह वस्तु कोई मुक्ति का कारण नहीं, यह बन्ध के पंथ में गति जाती है वहाँ। आहाहा! ऐसा प्रत्यक्ष परम सत्य, उसका भी जहाँ अन्तर में से विरोध आवे। भाई! क्या होगा? यह पंथ मोक्ष को पानेयोग्य है, ऐसा कहते हैं।

जैसे जो दीपक धरै.... जिस घर में दीपक रखा जाये, **उजियारो धाम....** वहाँ उजाला हो। उस घर में **उजियारो** हो। जहाँ दीपक रखे घर में, वहाँ उजाला। इसी प्रकार आत्मा सम्यग्दर्शन और ज्ञान और राग का अभाव—ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान का

उजाला—भान यथार्थ हो गया कि राग, वह मेरी चीज़ नहीं, यह वस्तु मेरी चीज़, ऐसा उजाला—प्रकाश हो गया अन्दर से। समझ में आया? है न? **उजियारो धाम...** धाम का अर्थ घर किया। घर में दीपक प्रगट हुआ, उजाला हो गया। आहाहा! ऐसा पूर्णानन्द का नाथ आत्मा, उसका सम्यग्दर्शन, अनुभव हुआ, उसके अन्तर में उजाला हो गया। राग को जाने, पर्याय को जाने, गुण को जाने, द्रव्य को जाने। जानना... जानना... जानना। उजाला हो गया, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सम्यक्त्व की महिमा। पाँचवाँ कलश। नीचे है न।

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः,
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।

सुप्रभात बहुत बार बोलते थे। वहाँ (समयसार में) केवलज्ञान (ऐसा अर्थ) लिया है। यहाँ समकित को सुप्रभात (कहा) यहाँ तो। उजाला हो गया न!

आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूप–
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा।।५।।

★ ★ ★

काव्य - ४१

सम्यक्त्व की महिमा (सवैया इकतीसा)

जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयौ,
भयौ परगास सुद्ध समकित भानकौ।
जाकी मोहनिद्रा घटी ममता पलक फटी,
जान्यौ जिन मरम अवाची भगवानकौ।।
जाकौ ग्यान तेज बग्यौ उद्दिम उदार जग्यौ,
लगौ सुख पोख समरस सुधा पानकौ।
ताही सुविचच्छनकौ संसार निकट आयौ,
पायौ तिन मारग सुगम निरवानकौ।।४१।।

शब्दार्थ:–अवाची=वचनातीत। बग्यौ=बढ़ा।

अर्थ:–जिसके हृदय में मिथ्यात्व का अन्धकार नष्ट होने से शुद्ध सम्यग्दर्शन का सूर्य प्रकाशित हुआ, जिसकी मोहनिद्रा हट गई और ममता की पलकें उघड़ पड़ीं, जिसने वचनातीत अपने परमेश्वर का स्वरूप पहिचान लिया, जिसके ज्ञान का तेज प्रकाशित हुआ, जो महान उद्यम में सावधान हुआ, जो साम्यभाव का अमृतरस पान करके पुष्ट हुआ, उसी ज्ञानी के संसार का अन्त समीप आया है और उसने ही सुगम मार्ग पाया है।।४१।।

काव्य-४१ पर प्रवचन

जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयौ,... राग में सुखबुद्धि थी, ऐसा अन्धकार गया। आत्मा में सुख है, ऐसा प्रकाश हुआ। **जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयौ, भयौ परगास सुद्ध समकित भानकौ।** समकितरूपी सूर्य उगा। समझ में आया? यह वे भजन में भी नहीं गातीं महिलाएँ? गाती हैं न कुछ। 'सोना समो रे सूरज उग्यो।' इसी प्रकार यह समकितरूपी सोना, उसका सूरज प्रकाशित हुआ। आहाहा! भगवान चैतन्यबिम्ब का जहाँ भान (हुआ), वह सूर्य प्रकाशित हुआ, कहते हैं। **समकित भानकौ।** उसे सुप्रभात कहा। वह मिथ्यात्व गया और समकित हुआ, उसे प्रभात उगा। सुप्रभात। आहाहा! जो प्रभात हुआ वह हुआ, पूरे दिन पूरा होनेवाला है। आहाहा! संसार का सुप्रभात उगने पर शाम को अन्धकार हो जाता है। यह तो सुप्रभात आगे जाकर केवलज्ञान हो जायेगा, ऐसा कहते हैं।

जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयौ,.... परन्तु यह मिथ्यात्व किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और नाश किस प्रकार हो? अपने देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, बस अपने मिथ्यात्व का नाश है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को मानना, नव तत्त्व को नहीं मानना, उसका नाम मिथ्यात्व। अपने मानते हैं अब, ऐसा अज्ञानी कहता है। ऐसा नहीं है। आत्मा को पूर्णानन्दरूप से न स्वीकार करके पुण्य और पाप के रागवाला स्वीकारना और एक पर्याय जितना स्वीकारना, वह मिथ्यात्व का अन्धकार है। **भयौ परगास सुद्ध**

समकित भानकौ। भान कहा न सूर्य। समकितरूपी सूर्य उगा। आहाहा! **जाकी मोहनिद्रा घटी....** मोहरूपी निद्रा घट गयी। आहाहा! राग में एकता होकर सो रहा था, वह मोह की निद्रा घट गयी। यह सम्यग्दर्शन—आत्मा का भान—अनुभव होकर जो प्रतीति प्रगट हुई, कहते हैं, उसकी मोहनिद्रा घट गयी। आहाहा! एकान्त पर में सावधान था, वह स्व में सावधान हुआ। मोहनिद्रा हटी। समझ में आया?

एक वे कहते भाई। कहा था न वहाँ। एक क्षुल्लक.... आदिसागर आते थे। क्षुल्लक एक बार आये थे। ....बेचारे बुद्धि कम थी। क्षुल्लक थे परन्तु वे संक्षिप्त कहते थे यहाँ का सुनने के बाद। वे कहे 'स्व में बस, पर से खस, यह अति संक्षिप्त। स्व में बस, पर से खस, यह अति संक्षिप्त।' पण्डितजी! यह तुम्हारी भाषा में आता है। हिन्दी आती है या नहीं? स्व में बस, पर से खस-हट। यह तुम्हारी भाषा कुछ। यह अति संक्षिप्त। यह बारह अंग का सार, कहे। तब संक्षिप्त में कहना हो तो यह है, कहे।

यह भिलोडा के भाई आये थे न। वहाँ बड़ा पुराना मन्दिर है। भिलोडा में बहुत पुराना मन्दिर। यह केसरिया जैसा मन्दिर है। केसरियाजी है न मन्दिर, ऐसा ही मन्दिर हू-ब-हू एक ही प्रकार। .... गये थे तब आये थे, वहाँ रहे थे भाई। भक्ति की थी भिलोडा में। बहुत पुराना मन्दिर है। केसरिया का मन्दिर जैसा ही मन्दिर है। आये थे न अभी भाई। उनका नाम क्या था? डाह्याभाई। उन्हें श्रीमद् का बहुत वाँचन है। वे कहते थे कि आदिसागर ऐसा कहते थे। हम बहुत नहीं जानते हैं कि महाराज कहते हैं क्या। स्व में बस, पर से खस, जाओ। राग से खस और स्वभाव में आ जा। यह अति संक्षिप्त। यह अति संक्षिप्त, दोनों साथ में आवे न। वह साथ में आया। बस, खस और टच। ...शब्द भी थोड़े। भाव बड़ा। आहाहा!

कहते हैं, अपने में जहाँ आया स्ववस्तु में, समकित भान प्रगट हुआ। **जाकी मोहनिद्रा घटी...** पर में सावधानपना घट गया, ऐसा कहते हैं। **ममता पलक फटी,.... ममता की पलकें उघड़ पड़ीं।** अर्थात् ममता की पलक नाश हो गयी। निर्मम हो गया, पर का स्वामी रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **घटी ममता पलक फटी,** आहाहा! देखो है न अन्दर। **जिसकी मोहनिद्रा हट गई और ममता की पलकें उघड़ पड़ीं।** पलक खुल्ला हो गया। नाश हो गया उसकी ममता का। **जान्यौ जिन मरम अवाची भगवानकौ।**

आहाहा! यह जाना अन्दर, कहते हैं। **जिन—** जिसका **मरम अवाची भगवान....** अवाची—वाणी से पार, विकल्प से पार—ऐसा भगवान सम्यग्दर्शन और ज्ञान में जाना निजमर्म—जिसने अपना मर्म जाना। अरे! मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ। राग आदि मुझमें है नहीं। आहाहा! राग, वह पलटती (दशा) आवे और जावे, आवे और जावे। वह चीज़ रहनेवाली कहाँ है कायम की? एक समय की पर्याय जाये और आये। वह त्रिकाल रहनेवाली कहाँ है यह? त्रिकाली को जाना, वह पर्याय हुई निर्मल। **मरम अवाची भगवानकौ।** लो। **जिसने वचनातीत अपने परमेश्वर का स्वरूप पहिचान लिया।** वचनातीत—वचन से दूर ऐसे परमेश्वर का स्वरूप पहिचान लिया।

जाकौ ग्यान तेज बग्यौ—बढ़ा। जिसका ज्ञानतेज बढ़ा। वह चैतन्य के भान का तेज बढ़ा, ऐसा कहते हैं। उसे पकड़ने का ज्ञान, अनुभव का ज्ञान उसे बढ़ा। आहाहा! **तेज बग्यौ.... जाकौ ग्यान तेज बग्यौ। बग्यौ...** है न, वध्या—वध्युं। **उद्दिम उदार जग्यौ,...** देखो, राग में उद्यमी नहीं कहा यहाँ। **उद्दिम उदार जग्यौ,... जो महान उद्यम में सावधान हुआ।** भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव की ओर सावधान हुआ। जो राग में सावधान अनादि से था, यहाँ स्वभाव में सावधान हुआ, यह पुरुषार्थ। लो, आया या नहीं पुरुषार्थ इसमें? भाई! भगवान ने जाना, उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा—यह विवाद उठता है सर्वत्र। स्थानकवासी में यह उठा, मन्दिरमार्गी में तो कोई हिलते-डुलते नहीं, दिगम्बर में विवाद उठा।

यह सर्वज्ञ तीन काल का जानते हैं, यह बात छोड़ दो तो पुरुषार्थ से काम होगा। ऐसा अब एकदम! परन्तु तीन काल का ज्ञान है, बापू! ऐसा कौन है? ऐसा कौन? एक समय की पर्याय। ऐसी एक समय की पर्यायवाला कौन? कि अनन्त गुण का पिण्ड, वह पर्यायवाला। तो ऐसे अनन्त गुण की शक्ति-ऊपर प्रतीति हुई, तब उसे सर्वज्ञ की प्रतीति हुई। पुरुषार्थ हुआ उसमें भी। आहाहा! ज्ञान की एक समय की पर्याय में तीन काल जाने, ऐसा माहात्म्य, वह कब आवे उसे? भाई! उसे अन्तर ज्ञानस्वभाव ही आत्मा है, ऐसी अन्तर्मुख होकर प्रतीति हो। एक समय की पर्याय नहीं परन्तु यह तो त्रिकाली अकेला स्वभाव का पिण्ड ही है। ज्ञाता-दृष्टा का पिण्ड है, ऐसी प्रतीति हुई, वही अनन्त पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ (अर्थात्) कूदना है बाहर में? समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कैसी, देखो न!

कहते हैं कि **जाकौ ग्यान तेज बग्यौ उद्दिम उदार जग्यौ,....** वह अन्तर्मुख होने का पुरुषार्थ जागृत हुआ, उसे उद्यम उदार हुआ। **लगौ सुख पोख...** उस सुख के पोषण के लिये वह जागृत हो गया। **समरस सुधा पानकौ....** समताभाव के अमृत को स्वादने में बढ़ गया आगे, ऐसा कहते हैं। **जो साम्यभाव का अमृतरस पान करके पुष्ट हुआ।** अपना साम्य—समताभाव त्रिकाल का आश्रय करके जो सुधारस समता प्रगट हुई, पुष्ट हुआ। आहाहा! **ताही सुविचच्छनकौ संसार निकट आयौ,...** ऐसे विचिक्षण धर्मी जीव को संसार निकट आया। एकाध-दो भव में जिसका अन्त है, ऐसा वह हुआ, ऐसा कहते हैं। **संसार निकट आयौ,...** समझ में आया? **ताही सुविचच्छन**—ज्ञानी, उसे संसार का अन्त समीप आया।

पायौ तिन मारग सुगम निरवानकौ। यह मार्ग सुगम, मोक्ष का सुगम मार्ग पाया। लो, **उसने ही सुगम मार्ग पाया है।** सुगम है। विकल्प, वह तो सब विषममार्ग है। आहाहा! यह तो उसमें 'है' उसे प्रगट करके मार्ग प्रगट हुआ। सुगम मार्ग है, कहते हैं। आहाहा! **पायौ तिन मारग**—वह मार्ग पाया। **सुगम निरवानकौ।** लो। सुगम मार्ग पाया। **निरवानकौ** कहा है न। इसका अर्थ नहीं आया। सुगम मार्ग पाया, ऐसा आया। यह नहीं।

मुमुक्षु : मोक्ष कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु उसमें सुगम मार्ग पाया, ऐसा लिखा है। सुगम मार्ग पाया। परन्तु निर्वाण का मार्ग, ऐसी है न भाषा। पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का सुगम मार्ग पाया, ऐसा कहते हैं। मार्ग ही यह है। निर्वाण का अर्थ नहीं। समझ में आया? '**आनन्द सुस्थितसदास्खलित एकरूप।**' लो। '**स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा**' चलित नहीं ऐसी ज्ञानधारा अर्चि प्रगट हो गयी। उसने पूर्णता की प्राप्ति की। आहाहा! यह ज्ञानकला द्वारा अनुभव द्वारा उसने मोक्ष को प्राप्त किया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **सम्यग्ज्ञान की महिमा।** छठवाँ कलश।

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे,
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति।
किं बन्धमोक्षपथपातिभिरन्यभावै-
र्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः।।६।।

आहाहा! गाना तो देखो! **जाकै हिरदैमैं स्याद्वाद साधना करत...** जिसके हृदय में **स्याद्वाद के अभ्यास से जिसके अन्तःकरण में शुद्ध आत्मा का अनुभव प्रगट हुआ,...** लो। स्व शुद्धपने है और अशुद्धपने नहीं, इसका नाम स्याद्वाद। आहाहा! **जाकै हिरदैमैं स्याद्वाद साधना करत, सुद्ध आतमाकौ अनुभौ प्रगट भयौ है....** शुद्ध परमानन्द आत्मा जैसा है—जैसा है, वैसा पर्याय में प्रगट भासित हुआ है। **सुद्ध आतमाकौ अनुभौ प्रगट भयौ है....** प्रगट हुआ। **जाकै संकलप विकलपके विकार मिटि....** संकल्प और विकल्प, उसका विकार मिटकर..... यहाँ तो अस्थिरता का (राग) है संकल्प-विकल्प के अर्थ में यहाँ सब।

सदाकाल एकीभाव रस परनियौ है... धर्मी तो अकेला आत्मा के आनन्दरस से परिणमा है। यह महाव्रत आदि विकल्प दुःखरूप से वह परिणमा ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ऐसा है इस प्रकार से। आहाहा! व्यवहार से तो विरक्त है धर्मी। वह रक्तरूप कैसे परिणमे? आहाहा! गजब बात है आत्मा की! अन्दर गम पड़े नहीं न, इसलिए फिर कुछ दूसरा रास्ता खोजने लगा, परन्तु रास्ता हाथ आया नहीं। आहाहा! मार्ग रह गया कहीं और चलने लगा कहीं। **और सदैव ज्ञानभावरूप हुआ....** ज्ञानभावरूप—**एकीभाव,** ऐसा। रागरूप और ज्ञानभाव—दो रूप नहीं। **सदाकाल एकीभाव परिनयो है....** आहाहा! एक आत्मा का पवित्र स्वभाव, ऐसी उसकी पवित्रता की परिणति का एक स्वभावरूप हुआ। विभावरूप धर्मी होता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है वहाँ.... फिर विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७२, आसोज शुक्ल ७, रविवार, दिनांक २६-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ४२ से ४३

काव्य - ४२

सम्यग्ज्ञान की महिमा (सवैया इकतीसा)

जाके हिरदैमैं स्याद्वाद साधन करत,
सुद्ध आतमाकौ अनुभौ प्रगट भयौ।
जाके संकलप विकलपके विकार मिटि,
सदाकाल एकीभाव रस परिनयौ है।।
जिन बंध विधि परिहार मोख अंगीकार,
ऐसौ सुविचार पच्छ सोऊ छांड़ि दयौ है।
ताकौ ग्यान महिमा उदोत दिन दिन प्रति,
सोही भवसागर उलंघि पार गयौ है।।४२।।

शब्दार्थ:-परिनयौ=हुआ। परिहार=नष्ट। अंगीकार=स्वीकार। पार=तट।

अर्थ:-स्याद्वाद के अभ्यास से जिसके अन्त:करण में शुद्ध आत्मा का अनुभव प्रगट हुआ, जिसके संकल्प-विकल्प के विकार नष्ट हो गये और सदैव ज्ञानभावरूप हुआ, जिसने बन्धविधि का परिहार और मोक्ष अंगीकार का सद्विचार भी छोड़ दिया, जिसके ज्ञान की महिमा दिन पर दिन प्रकाशित हुई, वह ही संसार-सागर से पार होकर उसके किनारे पर पहुँचा है।।४२।।

काव्य-४२ पर प्रवचन

यह समयसार नाटक। ४२वाँ पद है। क्या कहते हैं? सम्यग्ज्ञान की महिमा। आत्मा का ज्ञान होना, आत्मा के ज्ञान की अलौकिक महिमा है, कहते हैं। शास्त्र आदि दूसरे लौकिक ज्ञान की यहाँ बात नहीं। आत्मा का ज्ञान। भगवान के मुख में से चार बार दिव्यध्वनि आती है। मध्यरात्रि... चार-चार बार। और ऐसा कहा जाता है कि वह सुनने

से ज्ञान होता है। ....गजब! ऐसा व्यवहार बीच में आता है। भगवान के मुख में से भी चार-चार घड़ी... वापस वह कहीं आधे घण्टे-घण्टे, ऐसा नहीं, चार घड़ी। सवेरे दिव्यध्वनि, दोपहर में, शाम को और रात्रि में। जेठाभाई! अरे! यह गजब बात जैनदर्शन यह! ऐई! ऐसा होता है। सुनने का विकल्प और भक्ति का भाव होता है। भगवान को तो विकल्प बिना कथन आते हैं। वाणी का प्रपात, मधुर ध्वनि और मीठा समुद्र लगता हो, ऐसी वाणी आवे। समझ में आया? एक व्यवहारु, अन्तर में क्या चीज़ है, ऐसा जानने का व्यवहारिक ज्ञान ऐसा आवे। समझ में आया? और वह अन्तर ज्ञान होने पर, उसका निमित्तपना और निमित्त से विकल्प जो था स्वयं से और उससे ज्ञान जो होता था, उसका भी अभाव होकर स्व के आश्रय से ज्ञान होता है। समझ में आया? उसे व्यवहार की पद्धति में 'सुनकर हुआ' ऐसा कहा जाता है।

ऐसा जो ज्ञान **जाकै हिरदैमैं स्याद्वाद साधना करत,...** ऐसा कहा। आत्मा आत्मारूप से है; वह आत्मा परवस्तु और देव-गुरु-शास्त्ररूप से भी नहीं। आहाहा! आत्मा आत्मारूप से ज्ञान अपने से होता है, वह वाणी से भी ज्ञान होता नहीं। ऐसा स्याद्वाद साधन करते... आहाहा! वजुभाई! ऐसा मार्ग है। स्याद्वाद अर्थात् स्वयं से है, पर से नहीं। ऐसा अपना ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, एक-एक स्वभाव अपने से है और पर से नहीं। ऐसे एक-एक गुण अपने से है और परगुण से नहीं। ऐसे एक-एक पर्याय—अवस्था अपने से अस्ति है और पर से नहीं। आहाहा! ऐसा स्याद्वाद जिसके हृदय में साधना होकर प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं।

सुद्ध आतमाकौ अनुभौ प्रगट भयौ है। लो, यह उसका स्याद्वाद में से यह। आहाहा! आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान के अस्तिपने का अस्ति—सत्तावाला तत्त्व, ऐसा जहाँ अन्तर्दृष्टि में आया, तब कहते हैं कि शुद्ध आत्मा का अनुभव है। मैं पवित्र हूँ, शुद्ध हूँ, ऐसा जहाँ विकल्प भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? **सुद्ध आतमाकौ अनुभौ प्रगट भयौ....** भगवान स्वयं.... पर से मैं हूँ, ऐसी जो मान्यता थी, वह गयी। मेरा स्वरूप—वस्तु, उसकी शक्तियाँ और उसकी दशा पर से नहीं। ऐसा अन्तर में साधन होने पर शुद्ध आत्मा का अनुभव प्रगट हुआ। आत्मा पूर्ण आनन्द, उसमें दुःख भी नहीं, राग भी नहीं, शरीर भी नहीं—ऐसा जो नास्तिपना और स्व के आनन्द का अस्तिपना,

आहाहा! ऐसा स्याद्वाद का अपेक्षा से साधन होने पर अनुभव प्रगट हुआ, कहते हैं।

जाकै संकलप विकलपके विकार मिटि.... परसन्मुख के लक्ष्यवाले संकल्प और विकल्प अस्थिरता सम्बन्धी हैं, वह भी जिसमें नहीं। **जाकै संकलप विकलपके विकार मिटि....** पुण्य-पाप के विकल्प और संकल्प स्वरूप में नहीं, ऐसा अनुभव होने पर धर्मी जीव का ज्ञान संकल्प-विकल्परहित हो जाता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? उसे यहाँ धर्म का साधक कहते हैं अथवा पूर्णानन्द की प्राप्ति का साधक कहते हैं। समझ में आया?

सदाकाल एकीभाव रस परिनयौ है.... चाहे तो संकल्प-विकल्प हो, तथापि उससे रहित शुद्ध चैतन्य की सत्तावाला तत्त्व, उसमें वह नहीं, ऐसा अनुभव होने से सदाकाल एकभाव रस परिणमा है। आहाहा! ज्ञायकभाव के परिणमनरूप दशा जिसकी एकरूप है, उसे राग और व्यवहार का साधन नहीं। समझ में आया? आहाहा! **सदैव ज्ञानभावरूप हुआ,....** लो। ऐसा। यह ज्ञान अर्थात् आत्मा। आत्मा के स्वभाव की दृष्टि अनुभव होने से एकरूप ज्ञान प्रगट हुआ। वह ज्ञान की निर्मल दशा उसमें रही, राग आदि उसमें है नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन होने से साधकपना इस प्रकार से होता है। आहाहा! समझ में आया? गजब! देखो न अभी कहा, चौथे काल में—अच्छे काल में भी असंख्य अरब वर्ष तक धर्म नहीं, कहो। उसमें लिखा है दूसरी जगह। श्रोता भी नहीं थे, वक्ता भी नहीं थे। दो में से एक हो तो (दूसरा) हो न। ऐसा लिखा है। आहाहा! ऐसी चीज़ दुर्लभ, तथापि सहज ही अपनी चीज़ है वह। समझ में आया?

यह नजर में निधान को लेने से, कहते हैं कि ज्ञानी का परिणमन एकरूप ही है। पुण्य-पाप का परिणमन ज्ञानी को है ही नहीं। आहाहा! देखो! पुण्य-पाप के विकल्प से रहित दृष्टि हो गयी है। वह पर्याय, उनसे रहित हो गयी है। समझ में आया? **सदाकाल एकीभाव रस परिनयौ है....** इसका अर्थ—चैतन्य आनन्दरस प्रभु का भान होने से जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान का ही परिणमन अकेला रहा है अब। ज्ञान के साथ समकित आदि वह सब ज्ञान का परिणमन है। राग और व्यवहार का परिणमन साधकजीव को—ज्ञानी को नहीं है। समझ में आया? यहाँ तक तो कल आया था। कल यहाँ तक आया था।

जिन बंध विधि परिहार मोख अंगीकार, ऐसौ सुविचार पच्छ सोऊ छांड़ि दयौ है.... आहाहा! भगवान आत्मा राग से बँधा हुआ है। स्वभाव... परिहार... वह बन्ध विधि परिहार, वह भी त्याग है जहाँ। आहाहा! राग में अटका हुआ हूँ, ऐसा जो बन्धभाव धर्मी को त्याग हो जाता है। अरे! शुद्ध भगवान आनन्द और अबद्धस्वरूप का जहाँ भान होने पर, कहते हैं कि **बंध विधि परिहार...** और **मोख अंगीकार।** यह दोनों का विकल्प पक्ष छूट गया है। आहाहा! समझ में आया? बन्ध का त्याग और मुक्ति का ग्रहण, ऐसा विकल्प साधक (दशा) में धर्मी को नहीं है। आहाहा! लोगों को लगे कि यह तो केवली की बात है।

मुमुक्षु : केवली बनने की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनने की बात है, यह बात है।

कहते हैं, भाई! तू अज्ञान से दुःखी है। चाहे तो साधन चक्रवर्ती के हों या इन्द्र के हों या अरबोंपति सेठिया के हों, परन्तु तू अज्ञान से दुःखी है। समझ में आया? और ज्ञान से सुखी हुआ जाता है। दूसरा कोई उपाय नहीं।

मुमुक्षु : पैसा मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा की तो बात पहले कही। धूल में कहाँ था ज्ञान? आहाहा! अज्ञान, वह दुःख है। कहा था न वहाँ जेल में। राजकोट। वहाँ आगे थे न सब कैदी। एक बार कहे, हमें सुनना है। तो गये थे। उसमें लिखा हुआ है उसमें—जेलखाना में। 'अज्ञान, वह दुःख है।' राजकोट। कैदियों ने एक बार माँग की थी कि हमें महाराज का सुनना है। महाराज की बहुत महिमा की जाती है। परन्तु यह तो विषय सूक्ष्म विषय है। आहाहा! उसमें लिखा हुआ है अवश्य जेल में। जेल में तो बड़े अक्षरों में लिखा हुआ है। भाषा सब नयी। कहा, यह क्या कहा है? अज्ञान, वह दुःख है। जेल का दुःख है और गुनाह करता है, वह गुनाह क्या चीज़ है? वह विकार है और विकार और अविकारी—दोनों का भेदज्ञान नहीं, इससे अज्ञान, वह दुःख है। यह बात है।

यहाँ कहा न कि अज्ञान टलकर... जहाँ स्याद्वाद स्वरूप में दूसरी चीज़ ही नहीं। अरे! त्रिकाली वस्तु में एक समय की पर्याय नहीं, उसका नाम स्याद्वाद। आहाहा! ऐसा

अन्तर्मुख से जो कुछ ज्ञान हुआ, वह ज्ञान एकरूप परिणमता रहा। जेठाभाई! गजब बात आयी। साधक होने पर भी बाधकरूप से परिणमता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बाधक का भाव जो राग आदि है... वह ज्ञान में राग नहीं और राग का ज्ञान है। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग का ज्ञाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है कि यह राग है। परन्तु राग ज्ञान में, वह पर्याय में नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वीतरागमार्ग है, भाई! वीतरागमार्ग अर्थात् तेरा मार्ग। तू वीतरागस्वरूप ही है। 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा!

शान्ति के स्वभाव से भरपूर सागर परमात्मा तू है। उसमें अशान्ति और निमित्त का अभाव है। ऐसा भान होने पर आत्मा का स्वभाव एकरूप ही परिणमता है। सुख और ज्ञान के परिणमनरूप ही उसका परिणमन है, ऐसा कहते हैं। मूलचन्दभाई! ऐसा धर्म है ऐसा गजब! यह तो हो-हा करके, अरे! बेचारे को भटकाया स्वयं अपने को, कहो। आहाहा! ऐसा स्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा ने वाणी द्वारा कहा और समझनेवाले यह समझ गये उसमें से। आहाहा! मेरा भगवान मेरा प्रभु तो परिपूर्ण गुण से और आनन्द से परिपूर्ण है। मेरे सुख के लिये बाहर गर्दन करने की जरूरत नहीं। अन्दर में देखने से अन्दर को देखने से अकेला ज्ञान का परिणमन ही रह गया है, कहते हैं। समझ में आया?

ऐसौ सुविचार.... ऐसो विचार क्या है? वह विकल्प है न! परन्तु बन्ध का परिहार और मोक्ष का अंगीकार—ऐसा सुविचार, उसका पक्ष त्याग दिया है। यह सब कर्म से बँधा हुआ है, यह बात पहले स्वीकार करे, फिर चर्चा हो। आहाहा! अरे, भाई! यह राग में अटका हुआ है, वह भावबन्ध है। परन्तु जहाँ स्वरूप यह है और उसमें राग नहीं, ऐसा भान होने पर वह तो अबद्धस्वरूप ही दृष्टि में आया। और परिणाम भी, अबद्ध के परिणाम में बन्ध के परिणाम का ज्ञान हो, परन्तु बन्ध के परिणाम अबन्ध परिणाम में न हो। आहाहा! समझ में आया? यह तो बहुत निवृत्ति लेकर गहरे उतरे तो समझ में आये, ऐसा है। शिवलालभाई! वह धन्धा बड़ा करना हो न, उसमें सब यह

नहीं उसमें। ऐई, अनूपचन्दभाई! यह तो अभी क्या कहते हैं, उसे समझने के लिये अन्दर कितनी निवृत्ति चाहिए!

कहते हैं कि यदि तुझे धर्म का साधक होना हो अर्थात् मोक्ष का साधक होना हो, साधना है मोक्ष, ऐसा यदि होना हो तो उसे, मेरे स्वरूप में तो अबन्धपना अकेला त्रिकाल है। राग आदि का बन्धपना और निमित्त का सम्बन्ध, वह वस्तु में है ही नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा की धर्मदृष्टि होने से साधक का परिणमन शुद्ध ही बहता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अर्थात् बन्ध और मोक्ष का विकल्प उसमें नहीं और शुद्ध परिणमन ही अकेला रहा है। आहाहा! क्योंकि द्रव्य और गुण शुद्ध है और अशुद्धता का उनमें अभाव है। ऐसा जहाँ अस्तिरूप से ज्ञान में पूर्ण शुद्ध हूँ आया, वहाँ अशुद्धपना उसमें नहीं, यह परिणमन हो गया। आहाहा! राजमलजी कहाँ गये? ऐसा मार्ग है। बालक हो आठ वर्ष का या मेंढ़क हो तो भी धर्म प्राप्त करने पर ऐसी दशा होती है। कहो, हिम्मतभाई! आहाहा! कहीं बात से वड़ा नहीं होते, ऐसा नहीं यह। वड़ा में तो आटा चाहिए, तेल चाहिए, (बनाना) आना चाहिए। वड़ा, वड़ा होता है न। लोग कहे न, बातों से वड़ा नहीं होता। उसमें तेल चाहिए, आटा चाहिए उड़द का और वह भी वापस बनाना आना चाहिए। नहीं तो लोंदा होगा। आहाहा! ऐसी यह बातें, विकल्प से यह लाभ नहीं मिलता, कहते हैं।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर, वह दुःखरूप कभी हुआ ही नहीं। संसार की दशा को वह स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! यह वह वीर्य में इतनी स्वीकृति अर्थात् कितना वीर्य है वह! समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यदल राग के उदयभाव को भी कभी वस्तु ने स्पर्शा ही नहीं। वह तो अबद्धस्पृष्ट चैतन्य भगवान है। ऐसी जहाँ दृष्टि और अनुभव हुआ, उस साधक को राग की परिणमन दशा रहती है, कहते हैं। क्योंकि वस्तु में राग नहीं। वस्तु निर्मल अरागी भगवान स्वयं परमात्मस्वरूप है। उसे साधने से तो पर्याय में अकेली निर्मलता ही होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! ऐसा मार्ग जीवता जागता है। ऐसे मार्ग को छोड़कर दूसरे प्रकार से मार्ग पायेगा, वह सुखी होगा,

(ऐसा नहीं)। भाई! यह अभी जरा पुण्य का उदय हो और वीर्य, वह कुछ पर में लगा हो तो उसे ऐसा लगे कि हम कुछ धर्म करते हैं। कुछ ठीक करते हैं। बापू! ठीक का पंथ तो बहुत अलग प्रकार का है। ठीक में ठीकरा काम नहीं आता। आहाहा! पुण्य के परिणाम विकल्प तो ठीकरा हैं। उन्हें छोड़कर भगवान आत्मा दृष्टि में—श्रद्धा में और ज्ञान में पूर्ण प्रभु है, यह लिया, कहते हैं कि वहाँ बन्ध और मोक्ष के विकल्प से भी पक्ष छूट गया है। आहाहा!

ताकौ ग्यान महिमा उदोत दिन दिन प्रति... धर्मात्मा का ज्ञान... महिमा अलौकिक जिसकी महिमा है। ओहोहो! राग होने पर भी राग को स्पर्शे नहीं। यह वह ज्ञान की महिमा तो देखो! कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो भगवान, उसकी **महिमा उदोत दिन दिन प्रति...** आहाहा! उसका प्रकाश चैतन्य का दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है। समझ में आया? आहाहा! यह कहीं कायर का काम नहीं यह। ऐसा (कि) दुनिया क्या कहेगी और ऐसा हम मानेंगे और ऐसा कहेंगे बाहर में तो दुनिया पक्ष नहीं करेगी, विपक्ष में आ जायेगी। अब पक्ष कहाँ? यहाँ विकल्प का—मोक्ष का पक्ष भी छोड़ना है अब, वहाँ अब तुझे किसका पक्ष करना है? आहाहा!

मोक्ष अंगीकार करनेयोग्य है, ऐसा जो विकल्प, वह पक्ष छोड़। आहाहा! क्योंकि वस्तुदृष्टि के विषय में बन्ध और मोक्ष—दोनों पर्याय ही जहाँ नहीं। फिर उसका पक्ष तो छूट गया है अन्दर में से। आहाहा! समझ में आया? कठिन है। महँगा है परन्तु इसकी जाति का। इसके बिना कुछ छाप पड़े, ऐसी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : असल वस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह असल वस्तु है। अब सेठिया ठिकाने पड़ते हैं अब सब। आहाहा! भाई! तू तीन लोक का नाथ है, प्रभु! तुझे दीनता नहीं होती, नाथ! आहाहा! तुझे दीनता नहीं होती। यह प्रभुता और दीनता का तो विरोध है। आहाहा! समझ में आया? धर्मी जीव को अपनी प्रभुता भासित होती है। उसे दीनता दिखती नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। प्रभुता का ही परिणमन है, कहते हैं। दीनता का नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा... बापू! समझ में आया?

सोही भवसागर उलंघि पार गयौ है.... आहाहा! कहते हैं कि जिसकी ज्ञानमहिमा

राग के अभावस्वभावरूप परिणमन हुआ, ऐसा जो ज्ञान और आत्मा की दशा दिन-प्रतिदिन शुद्धता बढ़ती जाये। **सोही भवसागर...** अरेरे! चौरासी के अवतार में गोते खाता... कहते हैं, वह संसारसागर को पार होकर किनारे पर पहुँच गया। बस, किनारे पहुँच गया है। एक कदम उठाकर रखे अन्दर, वहाँ केवलज्ञान। आहाहा! अरे भगवान! ऐसी बात सुनकर, निश्चय है और ऐसा है और वैसा है—ऐसा करके भगवान! तू तेरे सत् का अनादर करता है, हों! दूसरे की बात यहाँ है नहीं, भाई! समझ में आया? व्यवहार तो उसमें नहीं, परन्तु दीनता नहीं। आहाहा! वह तो प्रभुता की परिणति से बढ़ता जाता है। आहाहा! और वह संसार **भवसागर उलंघि पार गयौ है....** उसे ऐसा विश्वास अन्दर हो जाता है। बस। जहाँ उदय मुझमें नहीं, वहाँ वह संसार कहाँ आया? आहाहा! समझ में आया? संसार पार गया है। **किनारे पर पहुँचा है,...** लो। **अनुभव में नयपक्ष नहीं।** यह सातवाँ श्लोक है।

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा,
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्ड्यमानः।
तस्मादखण्डमनिराकृतखण्डमेक-
मेकान्तशान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि।।७।।

आहाहा! सन्तों की ध्वनि उठती है न अन्दर से कितना!

★ ★ ★

काव्य - ४३

अनुभव में नय पक्ष नहीं है (सवैया इकतीसा)

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप,
अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहियै।
दीसै एक नैकी प्रतिपच्छी न अपर दूजी,
नैकौ न दिखाइ वाद विवादमैं रहियै।।

थिरता न होइ विकलपकी तरंगनिमैं,
चंचलता बढ़ै अनुभौ दसा न लहियै।
तातैं जीव अचल अबाधित अखंड एक,
ऐसौ पद साधिकै समाधि सुख गहियै।।४३।।

शब्दार्थ:-थिर=स्थिर। अथिर=चंचल। प्रतिपच्छी=विपरीत। अपर=और। थिरता =शान्ति। समाधि=अनुभव।

अर्थ:-जीवपदार्थ नय की अपेक्षा से अस्ति-नास्ति, एक-अनेक, थिर-अथिर, आदि अनेकरूप कहा गया है। यदि एक नय से विपरीत दूसरा नय न दिखाया जाये तो विपरीत दिखने लगती है और वादानुवाद उपस्थित होता है। ऐसी दशा में अर्थात् नय के विकल्पजाल में पड़ने से चित्त को विश्राम नहीं होता और चंचलता बढ़ने से अनुभव टिक नहीं सकता, इसलिए जीवपदार्थ को अचल, अबाधित, अखंडित और एक साधकर अनुभव का आनन्द लेना चाहिए।

भावार्थ:-एक नय पदार्थ को अस्तिरूप कहत है तो दूसरा नय उसी पदार्थ को नास्तिरूप कहता है, एक नय उसे एकरूप कहता है तो दूसरा नय उसे अनेक कहता है, एक नय नित्य कहता है तो दूसरा नय उसे अनित्य कहता है, एक नय शुद्ध कहता है तो दूसरा नय उसे अशुद्ध कहता है, एक नय ज्ञानी कहता है तो दूसरा उसे अज्ञानी कहता है, एक नय सबन्ध कहता है तो दूसरा नय उसे अबन्ध कहता है। ऐसे परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों की अपेक्षा से पदार्थ अनेकरूप कहा जाता है। जब प्रथम नय कहा गया और उसका विरोधी न दिखाया जावे तो विवाद खड़ा होता है और नयों के भेद बढ़ने से अनेक विकल्प उपजते हैं, जिससे चित्त में चंचलता बढ़ने के कारण अनुभव नष्ट हो जाता है, इसलिए प्रथम अवस्था में तो नयों का जानना आवश्यक है, फिर उनके द्वारा पदार्थ का वास्तविक स्वरूप निर्णय करने के अनन्तर एक शुद्ध बुद्ध आत्मा ही उपादेय है।।४३।।

काव्य-४३ पर प्रवचन

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप,
अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहियै।
दीसै एक नैकी प्रतिपच्छी न अपर दूजी,
नैकौ न दिखाइ वाद विवादमैं रहियै॥
थिरता न होइ विकलपकी तरंगनिमैं,
चंचलता बढ़ै अनुभौ दसा न लहियै।
तातैं जीव अचल अबाधित अखंड एक,
ऐसौ पद साधिकै समाधि सुख गहियै॥४३॥

अस्ति और नास्ति। है न? **जीवपदार्थ नय की अपेक्षा से अस्ति-नास्ति है।** स्व-रूप से है और पर-रूप से नहीं। यह दो नय हो गये दो। एक ही नय कहे तो दूसरा वाद-विवाद खड़ा रहे। 'है ही'। है ही, वह नहीं ही। पर-रूप से नहीं ही। आहाहा! 'है, वह नहीं।' यह गजब बात कही, भाई! **अस्तिरूप नासति अनेक एक....** एकरूप भी है और अनेकरूप भी है। वस्तु से देखो तो एक है, गुण-पर्याय से अनेक है। एक ही नय को कहे तो दूसरा नय का विवाद खड़ा रहे सामने। आहाहा! **थिररूप अथिर...** स्थिर है, ऐसा कहो, वहाँ अस्थिरपना परिणमन में है, उसका विवाद खड़ा रहेगा। अस्थिर कहे तो स्थिर बिम्ब चीज़ है, इस बात को विघ्न आयेगा, कहते हैं।

इत्यादि नानारूप जीव कहियै... इत्यादि अनेकरूप भगवान आत्मा में यह सब नयों का रूप है। परन्तु उसका जो विकल्प है कि ऐसा है और वैसा, वह वस्तु में नहीं। समझ में आया? ऐसी धर्म की बातें गजब, भाई! उसमें कहीं कन्दमूल नहीं खाना और निगोद की दया पालना और (ऐसा नहीं आया)।

मुमुक्षु : अपनी दया पालने की बात आयी वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवानभाई! यह सब प्रौषध कब करना... पहले तो भड़कते थे। अब धीरे-धीरे... आहाहा! भाई! तुझमें एक कहने से अनेकपना सामने है, यह बात

खड़ी रहेगी खड़ी, और अनेक कहने से एकपने है, यह बात भी खड़ी रहेगी खड़ी। वह सब विकल्प है। समझ में आया?

दीसै एक नैकी प्रतिपच्छी न अपर दूजी,.... एक नय के प्रतिपक्ष दूसरी अस्ति कहने से नास्तिपना खड़ा है। 'नहीं ही' कहने से 'है' ऐसा अस्तिपना खड़ा है। समझ में आया? एक बार नहीं कहा था? तुम्हारे चन्द्रकान्त पण्डित। क्या जड़ जगत में है या नहीं? माने तो है और न माने तो नहीं, ऐसा जैन कहते हैं। वह अस्ति-नास्ति आता है न। ऐसे बेचारा नरम था। मर गया छोटी उम्र में। जवान अवस्था। विवाह किया था। मर गया बेचारा। ऐसे व्यक्ति कोमल-नरम। हमारे साथ बात करते न। क्योंकि वहाँ कोई था नहीं उस ओर में। हम वहाँ थे न हीराभाई के मकान में। वे लोग निकले, आवे तो प्रेम बतावे। परन्तु यह वस्तु जैन के वाडावालों को समझ में न आये तो अन्य को तो कहाँ बैठे? आहाहा!

कहते हैं कि **दीसै एक नैकी प्रतिपच्छी न अपर दूजी,... यदि एक नय से विपरीत दूसरा नय न दिखाया जाय,....** ऐसा। **न अपर दूजी नैकौ न दिखाइ वाद विवादमैं रहियै...** ऐसा कहते हैं। दूसरा नय नहीं बतावे तो वापस वाद-विवाद हो। व्यवहार है या नहीं? भाई! है, व्यवहार है। व्यवहार निश्चय में है या नहीं? कहे, जरा भी नहीं। आहाहा! अरे! इसमें क्या किया जाये इसमें? निश्चय एक ही धर्म है या व्यवहार धर्म दूसरा उपचारिक है? आहाहा! वह तो कथन में दूसरी चीज़ है। परन्तु वह साधकरूप से है और स्वभाव को मदद करता है, ऐसा नहीं। क्योंकि वरना अस्ति-नास्तिपना नहीं रहता। आहाहा! अब ऐसा धर्म मार्ग! बापू! यह आठ वर्ष के बालक भी ऐसा साध सकते हैं। क्योंकि वह स्वभाव है, उसमें कृत्रिमता तो लाना नहीं। जैसा है, वैसा अन्दर अनुभव में सिद्ध करना है। आहाहा! अर्थात् उसमें कोई किसी को लक्ष्मी और शरीर निरोगी हो और ऐसे साधन हों तो ऐसा हो, ऐसा है? जहाँ विकल्प का, शुभ का साधन हो तो यह धर्म समझ में आये, ऐसी वस्तु है नहीं, कहते हैं। अपनेरूप से है और राग आदि और पररूप से नहीं, ऐसा तो उसका स्वभाव है। भीखाभाई! अनेकान्त-अनेकान्त, ऐसा कहे—ऐसा नहीं चलता। यह भी हो और यह भी हो। आहाहा! जिसे दृष्टि में, भगवान ध्रुव नित्यानन्द अबद्धस्वरूप ऐसा दृष्टि में आया तो उसके परिणमन में

अशुद्धता नहीं। ऐसा यदि न कहे तो शुद्धता ही अकेली है? कहे, हाँ। अशुद्धता है? कहे, नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

एक नय दिखाये तो वाद विवादमैं रहियै.... स्थिरता न हो, स्थिरता हो सकती नहीं। क्योंकि लोगों को समझाने में रुकना पड़ता है। और वहाँ उसे यह दूसरा नय न बतावे तो उसे (सच्चा समझ में नहीं आता)। भगवान का मार्ग तो दो नय का है। यह दो नय का भले है। पर्याय, पर्यायरूप से है एक नय से, द्रव्य द्रव्यरूप से है एक नय से, ऐसा। ऐसे दो नय। परन्तु इससे पर्याय पर्यायरूप से है, इसलिए उसके आश्रय से धर्म होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? द्रव्य द्रव्यरूप से है भगवान चैतन्यद्रव्य। ज्ञानस्वभाव... ज्ञानस्वभाव ध्रुवरूप से है, ऐसा अकेला कहे तो दूसरे नय में पर्याय नहीं, यह विवाद खड़ा रहता है।, तो भाई! कहते हैं कि पर्याय है। परन्तु ऐसे दो नय के वाद में खड़ा रहे तो विकल्प उठेंगे और अनुभव हो नहीं सकेगा। आहाहा! समझ में आया? अरे! जहाँ इसे जाना है, वहाँ इस राग का स्पर्श भी नहीं न अन्दर। एक नय का कथन करने से दूसरा नय सामने माँगेगा, परन्तु दो नय में खड़ा रहे तो विकल्प होंगे, कहते हैं। समझ में आया? अरे, अरे! राग होगा।

थिरता न होइ विकलपकी तरंगनिमैं,.... नित्य है तो अनित्य का पक्ष खड़ा रहेगा सामने वापस। क्योंकि नित्य है, यह निर्णय कौन करता है? अनित्य निर्णय करता है। समझ में आया? अथवा मैं एक नित्य हूँ... नित्य हूँ... नित्य हूँ। किसमें नित्य हूँ—ऐसा ज्ञात होता है? ध्रुव में ज्ञात होता है? ज्ञात होने का तो अनित्य में ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? और यह अनित्यनय की पर्याय ऐसा कहती है कि मैं ध्रुव हूँ। स्वयं पर्याय ऐसा नहीं कहती कि मैं अध्रुव हूँ। मैं ध्रुव हूँ सामने। तो उस पर्याय ने विषय करके पर्यायार्थिकनय का ज्ञान यथार्थ होता है। समझ में आया? आहाहा! नित्यानन्द हूँ। नित्य आनन्द हूँ। कूटस्थ हूँ। परन्तु यह जाना किसने? कूटस्थ जानता है? नित्य जानता है? जानने की पर्याय तो अनित्य है। उस अनित्य में नित्य का निर्णय होता है। आहाहा! समझ में आया?

थिरता न होइ विकलपकी तरंगनिमैं, चंचलता बढ़ै.... आहाहा! यह भी है और यह भी है। हम तो ध्रुव हैं, ऐसा जो कहे, वह कौन कहता है? परन्तु जानता है कौन?

कहे तो वाणी। हम तो त्रिकाली अबद्धस्पृष्ट हैं, ध्रुव हैं, सामान्य हैं। भाई! हम तो सामान्य एकरूप हैं। किसमें? किसमें यह तुझे ज्ञात होता है? विशेष में ज्ञात होता है यह। मूलचन्दभाई! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है। लोगों ने जैनदर्शन को नोंच डाला है। वह कहीं नोंचा नहीं जाता, परन्तु उसकी कल्पना में (उल्टा बैठा है)। अरे, मार्ग तो बापू ऐसा! आहाहा!

चाहे जैसा जोर करने अथवा बात करने जाये कि हम तो परिपूर्ण सामान्य अबद्धस्पृष्ट निश्चय... आते हैं न सब बोल। अबद्धस्पृष्ट, सामान्य, नियत, अविशेष। यह है सही भले, परन्तु वह किसमें ज्ञात होता है? बदलती दशा में ज्ञात होता है या एकरूप रहे उसमें ज्ञात होता है? बापू! यह बात आयेगी। पर्याय है, यह बात आयेगी। परन्तु उसका विकल्प करेगा तो अन्दर अनुभव नहीं हो सकेगा। आहाहा! समझ में आया? यदि मैं पर्याय न मानूँ तो बस निश्चयाभासी (हो जायेगा)। यह भी विकल्प है। न माने क्या? शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! प्रभु को प्रभुता पर्याय में प्राप्त करने के लिये प्रभु की यह आज्ञा है। समझ में आया?

चंचलता बढ़ै अनुभौ दसा न लहियै... नित्य और अनित्य, शुद्ध और अशुद्ध, एक और अनेक, स्थिर और अस्थिर—सब आया न! ऐसे दो भेद में खड़ा रहेगा तो विकल्प होंगे; अनुभव होगा नहीं। अनुभव तो विकल्पातीत है। आहाहा! ऐसा कहकर यह कहते हैं कि पर्याय में ऐसे विचार रहा करे, तब तो विकल्प रहेंगे। भले ध्रुव हूँ और पर्याय उसका निर्णय करती है—ऐसे दो प्रकार का विचार भी विकल्प रहेंगे। आहाहा! क्या वीतरागमार्ग का प्रवाह! समझ में आया? शान्ति हूँ, शान्ति हूँ। सुखरूप हूँ, सुखरूप हूँ। त्रिकाल शुद्ध हूँ। भाई! त्रिकाल शुद्ध है, ऐसी जानने की पर्याय को माँगेगा लोक में और तुझे भी अन्दर होना चाहिए कि यह त्रिकाल ऐसा है, वह उसकी उस पर्याय से जानना हुआ। परन्तु दो भेद के विकल्प में अटकेगा तो अनुभव नहीं होगा। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे तब तो कहे न उसे।

वह महिलायें गाती हैं। वे पैसे पड़ाने में 'नाणां मळशे पण टाणां नहीं मळे', (धन मिलेगा परन्तु अवसर नहीं मिलेगा)। ऐसा। ऐसा गाये न, महिलायें ऐसा गायें न। यह पैसा-बैसा उगाहना हो न तब ऐसा गाये। अपने तो यहाँ कहाँ लेना है, परन्तु श्वेताम्बर में बहुत गाये। दिगम्बर में भी कितने ही कहे, ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। लिखाओ। हाँ, साधु कहे। धन मिलेगा, अवसर नहीं मिलेगा। हाँ, भाषण करे ऐसे। ऐई शान्तिभाई! ऐसा ही है?

मुमुक्षु : धन मिलेगा, अवसर नहीं मिलेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यहाँ तो कहे, धन भी नहीं और अवसर भी नहीं। तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : चढ़ता भाव रखो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चढ़ते भाव रखो। चन्दा होता हो न। कितने लिखाना भाई? तुम्हारे प्रमाण में कम है। अधिक बोलो। ऐसी सिरपच्ची। कहो। आहाहा!

यहाँ तो तुझमें है जो दो प्रकार, उसके एक पक्ष में खड़ा रहकर विकल्प करेगा तो दूसरा पक्ष छूट जायेगा, लक्ष्य में नहीं रहेगा। और उसकी अस्ति जहाँ सिद्ध करने जायेगा, वहाँ द्रव्य के अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहेगा। इससे विकल्प रहेगा, ऐसा कहते हैं। जहाँ हूँ, वहाँ हूँ और जैसा हूँ, वहाँ हूँ—ऐसा भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....अवस्था है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अवस्था तो ऐसी ही है, परन्तु वाणी में क्या आता है, कहते हैं। वाणी में ऐसा कहे कि मैं नित्य हूँ। तो वह कहे, नित्य हूँ, तुझे कहाँ से खबर? पर्याय बिना नित्य है कहाँ से हुआ? इस ओर फिर तो पर्याय है। पर्याय में क्या निर्णय किया तूने? पर्याय में निर्णय किया नित्य का। तो पर्याय ने अपना निर्णय नहीं किया? उसमें ज्ञान में आ गया, भाई! नित्य हूँ, ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ तो पर्याय में ज्ञान हुआ, वह पर्याय का ज्ञान भी आ गया। जेठाभाई! ऐसा मार्ग गजब परन्तु, भाई! आहाहा! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। उसमें भगवान ने कुछ कहा है, इसलिए ऐसा है, ऐसा है? जैसा था, वैसा कहा और कहा, वैसा है। आहाहा!

चंचलता बढ़ै अनुभौ दसा न लहियै.... नय के विकल्पजाल में पड़ने से चित्त को विश्राम नहीं होता और चंचलता बढ़ने से अनुभव टिक नहीं सकता। तातैं जीव अचल अबाधित अखंड एक.... यह तो दृष्टि में लेने के विषय की बात करते हैं। ऐसे तो और अखण्ड और अबाधित हूँ तो, खण्ड और चलितवाला है—बाधितवाला है, ऐसा दूसरा नय खड़ा है। परन्तु दोनों नयों का विकल्प तोड़कर अनुभव में अचल ऐसी चीज़, अबाधित अर्थात् उसे कुछ विघ्न ही नहीं। उसमें विकल्प का विरोधपक्ष है ही नहीं। अबाधित चैतन्य भगवान! आहाहा! यह वह कहीं वस्तु हाथ में आना (कठिन है)। ऐसा का ऐसा बोल जाना वाणी में, वह अलग बात है, कहते हैं। उसके विश्वास में आकर अनुभव करना (कि) यही ऐसा है। समझ में आया?

अबाधित, अचल, अखण्ड, एक वस्तु का अनुभव कर। अनुभव है पर्याय, परन्तु अनुभव करता है द्रव्य का, ऐसा कहा जाता है। वरना अनुभव है पर्याय का पर्याय में, द्रव्य का अनुभव नहीं। समझ में आया? अनुभव द्रव्य का नहीं होता, द्रव्य तो ध्रुव है। अनुभव होता है पर्याय में—अवस्था में। परन्तु ऐसे द्रव्य के सन्मुख देखकर जो अनुभव होता है, वह द्रव्य का अनुभव कहा जाता है। समझ में आया? गजब धर्म भाई ऐसा! वह तो भाई! गुरु की भक्ति करो, कल्याण हो जायेगा, जाओ। विनय करो विनय। भगवान की भक्ति ऐसी लगाओ, ऐसी लगाओ कि भूल जाओ अपने को भी। तुझे भूलकर की, यह क्या होगा? आहाहा!

वे कहते थे—एक शिवलालभाई। वकील, नहीं भाई? राजकोट। कि ... सुनने जायें वहाँ दया की व्याख्या आवे तो ऐसी आवे कि अपने अब दया ही पालना।

मुमुक्षु : जीवराजभाई के व्यक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐई! जीवराजभाई कहाँ गये? वह तुम्हारा मामा था न, उस बेचारे को बहुत प्रेम। वापस दम चढ़ता था दम। फिर एक बार कहते (संवत्) १९९९ में। ९९ में चातुर्मास था न। कहे, सुनने जायें (तो) अहिंसा की व्याख्या आवे, ओहोहो! अपने अहिंसा ही करो तब। दान की व्याख्या आवे, दान ही दो शक्ति अनुसार। सत्य की बात आवे तो सत्य बोलना हरिश्चन्द्र की भाँति। अब उसमें, कहे, पता लगता नहीं। ब्रह्मचर्य की व्याख्या आवे, बराबर ब्रह्मचर्य पालना। एक उसमें ही उतरो। परन्तु

वापस उसका योगफल कहाँ बँधता है ? यह हाथ आता नहीं, कहे। उसका सब विकल्प और दया और फलाना-फलाना छोड़। एक-एक भाग को छोड़। यहाँ तो अखण्डानन्द प्रभु एकरूप और अखण्ड, **ऐसौ पद साधिकै....** वह साधना है। आहाहा! समझ में आया ?

यह कैसी आवे दया की बात (कि) दया जैसा कोई धर्म नहीं। सत्य जैसा कोई जगत में स्वरूप नहीं। ब्रह्मचर्य जैसा कोई जगत में धर्म नहीं। अपरिग्रह निवृत्तस्वरूप है अपरिग्रह। जितना परिग्रह छूटे, उतना धर्म हो। छोड़ो बापू! लो। अपवास करना, ऊनोदरी करना, ऐसा करना। यह सबकी व्याख्या आवे तो ऐसी आवे। अब यह अपवास करना या ऊनोदर करना ? अपवास करने से और ऐसा आवे, खाना और फिर उसे खाने का कम करना, वह बड़ी तपस्या कहलाये। ऐसा बोले। उसे यह महिमा करे हरखचन्द महाराज। और विनय। मर जाना चाहिए विनय के लिये। धर्म का मूल है। परन्तु अब क्या करना ? समझ में आया ? भाई! यह सब बातें हैं, वह विकल्प की बातें हैं। समझ में आया ? जहाँ भक्ति आवे देव की, प्रतिमा की साक्षात्... ऐसी प्रतिमा। देव ऐसे भक्ति करे और भक्ति के स्तोत्र बहे। भाई! चलो अपने भक्ति करें तब। परन्तु उसमें से क्या निकाला है ? यह भक्ति... ऐई पण्डितजी! पर की भक्ति और पर—दोनों का जिसके आत्मस्वभाव में अभाव है। आहाहा! वह नहीं हो तो सदा ही भक्ति का विकल्प रहा ही करे, उसके स्वभाव में। है ही नहीं उसमें वह। आहाहा!

ऐसौ पद साधिकै समाधि सुख गहियै.... अर्थ में है यह सब। **जीवपदार्थ नय की अपेक्षा से अस्ति-नास्ति, एक-अनेक, थिर-अथिर, आदि अनेकरूप कहा गया है। यदि एक नय से विपरीत दूसरा नय न दिखाया जाये तो विपरीतता दिखने लगती है और वादानुवाद उपस्थित होता है। ऐसी दशा में अर्थात् नय के विकल्पजाल में पड़ने से चित्त को विश्राम नहीं होता और चंचलता बढ़ने से अनुभव टिक नहीं सकता।** अनुभव में तो, मैं ऐसा हूँ या नहीं, ऐसा विकल्प नहीं। आहाहा! **इसलिए जीवपदार्थ को अचल, अबाधित, अखण्डित और एक साधकर,....** लो, वापस आया। और तुम एक पक्ष को ना करते और फिर एक पक्ष को साधना, (ऐसा कहते हो)। परन्तु वही वस्तु है। एकरूप है और साधती है, वह पर्याय उसमें आ गयी। समझ में आया ? आहाहा!

भावार्थः— **एक नय पदार्थ को अस्तिरूप कहता है तो दूसरा नय उसी पदार्थ को नास्तिरूप कहता है, एक नय उसे एकरूप कहता है तो दूसरा नय उसे अनेक कहता है, एक नय नित्य कहता है तो दूसरा नय उसे अनित्य कहता है।** पर्याय की अपेक्षा से। **एक नय शुद्ध कहता है तो दूसरा नय उसे अशुद्ध कहता है,...** पर्याय में। **एक नय ज्ञानी कहता है तो दूसरा उसे अज्ञानी कहता है, एक नय सबंध कहता है...** सम्बन्ध है पर के साथ निमित्त-नैमित्तिक। दूसरा नय कहे, वस्तु में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया? ज्ञानी कहता है। दूसरा अज्ञानी कहता है। **ऐसे परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों की अपेक्षा से पदार्थ अनेकरूप कहा जाता है। जब प्रथम नय कहा गया और उसका विरोधी न दिखाया जावे तो विवाद खड़ा होता है।** अकेला द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य कर-करके फिर यह पर्याय कहाँ गयी तेरी? यह विवाद खड़ा होता है। हो गया। समझ में आया? द्रव्य कहने से, वस्तु है ऐसा कहने से ही वह जाननेवाली पर्याय आ गयी। समझ में आया? और उस पर्याय का ज्ञान भी द्रव्य का ज्ञान हो, तब ही यथार्थ पर्याय का ज्ञान होता है।

नयों के भेद बढ़ने से अनेक विकल्प उपजते हैं, जिससे चित्त में चंचलता बढ़ने के कारण अनुभव नष्ट हो जाता है, इसलिए प्रथम अवस्था में तो नयों का जानना आवश्यक है। लो। देखो, आया पहला। और इनकार करे, परन्तु जैसी चीज़ है, ऐसा पहले सिद्ध तो करना पड़े न निश्चित। **फिर उनके द्वारा पदार्थ का वास्तविक स्वरूप निर्णय करने के अनन्तर....** वास्तविक निर्णय करके फिर करना क्या? **एक शुद्ध बुद्ध आत्मा ही उपादेय है।** उसका अनुभव करना, ऐसा कहते हैं। उसमें हाँ किया कि नय नहीं। परन्तु उसमें पहले समझना तो पड़ेगा न! नित्य क्या है, अनित्य क्या है, एक किस अपेक्षा से कहते हैं, अनेक किस अपेक्षा से कहते हैं—यह जानकर अखण्ड अभेद का अनुभव करना। यह जानने का सार है। आत्मा यह अखण्ड अभेद है, वह उपादेय है। बाकी सब छोड़नेयोग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७३, आसोज शुक्ल ८, सोमवार, दिनांक २७-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ४४ से ४६

समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार। **आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अखण्डित है।** यह व्याख्या है। दृष्टान्त देकर बात सिद्ध करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ४४

आत्मा द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अखंडित है (सवैया इकतीसा)

जैसैं एक पाकौ आंबफल ताके चार अंस,
रस जाली गुठली छीलक जब मानियै।
यौंतौ न बनै पै ऐसे बनै जैसै वहै फल,
रूप रस गंध फास अखंड प्रमानियै।।
तैसै एक जीवकौ दरव खेत काल भाव,
अंस भेद करि भिन्न भिन्न न बखानियै।
दर्वरूप खेतरूप कालरूप भावरूप,
चारौंरूप अलख अखंड सत्ता मानियै।।४४।।

शब्दार्थ:-आंबफल=आम। फास=स्पर्श। अखंड=अभिन्न। अलख=आत्मा।

अर्थ:-कोई यह समझे कि जिस प्रकार पके हुए आम के फल में रस, जाली, गुठली, छिलका ऐसे चार अंश हैं, वैसे ही पदार्थ में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये चार अंश हैं, सो ऐसा नहीं है। इस प्रकार है कि जैसे आम का फल है और उसके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण उससे अभिन्न हैं, उसी प्रकार जीव पदार्थ के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उससे अभिन्न हैं और आत्मसत्ता अपने स्वचतुष्टय से सदा अखण्डित है।

भावार्थ:-यदि कोई चाहे कि अग्नि से उष्णता पृथक् की जावे अर्थात् कोई तो

अपने पास में अग्नि रक्खे और दूसरे के पास उष्णता सौंपे तो नहीं हो सकती, इसी प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को पदार्थ से अभिन्न जानना चाहिए।।४४।।

काव्य-४४ पर प्रवचन

जैसैं एक पाकौ आंबफल ताके चार अंस,
रस जाली गुठली छीलक जब मानियै।
यौंतौ न बनै पै ऐसे बनै जैसै वहै फल,
रूप रस गंध फास अखंड प्रमानियै॥
तैसै एक जीवकौ दरव खेत काल भाव,
अंस भेद करि भिन्न भिन्न न बखानियै।
दर्वरूप खेतरूप कालरूप भावरूप,
चारौंरूप अलख अखंड सत्ता मानियै॥४४॥

क्या कहते हैं ? कोई ऐसा समझे कि एक आम है, आम—आम्रफल। उसके चार अंश हैं आम के। कौन से चार ? एक रस आम का, एक जाली... जाली, एक गुठली और एक छिलका ऊपर की छाल—यह आम के चार भाग। उसी प्रकार आत्मा में चार (भाग) नहीं, कहते हैं। समझ में आया ? नीचे है न ?

न द्रव्येण खण्डयामि, न क्षेत्रेण खण्डयामि, न कालेन खण्डयामि, न भावेन खण्डयामि; सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रो भावोऽस्मि।

इसका अर्थ है यह। कहते हैं कि आम है आंबा-अंब। उसका एक रस भाग, एक छिलका—छाल... छाल, एक जाली अन्दर होती है न और एक गुठली। ऐसे चार भाग करके आम, ऐसा नहीं। समझ में आया ? **यौंतौ न बनै**—ऐसा नहीं होता। परन्तु **बनै जैसै वहै फल....** रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। आम का रंग कहो तो भी सर्वत्र व्यापक है, रस कहो तो भी व्यापक है, गन्ध कहो तो भी व्यापक और स्पर्श कहो तो भी व्यापक। वे चार तो भिन्न प्रकार ही हैं। आम में चार भाग, ऐसे आम नहीं होता। समझ में आया ? परन्तु पूरे आम में रंग, गन्ध, रस और स्पर्श, इन चार चीज़ का एकरूप, वह

आम है। उसमें से रस अलग निकाल डाले, गन्ध अलग निकाल डाले और आम रहे, ऐसा बने? समझ में आया?

एक जीवकौ.... अब दृष्टान्त (से) सिद्धान्त। एक आत्मा अन्दर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, ऐसे **अंस भेद करि भिन्न भिन्न न बखानियै....** ऐसा भिन्न-भिन्न न बखानिये कि आत्मा का द्रव्य अलग है, क्षेत्र अलग है, काल अलग है और भाव अलग है—ऐसा नहीं। समझ में आया? **दर्वरूप खेतरूप कालरूप भावरूप, चारौंरूप अलख अखंड सत्ता मानियै।** वस्तु जो है, वह द्रव्यरूप से भी वह, क्षेत्ररूप से भी असंख्यप्रदेशी वह, काल से भी त्रिकाली वह और भाव से भी वह। उसमें एक कभी बोल अलग पड़े और आत्मा रहे, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

जैसे आम का फल है और उसके स्पर्श, रस, गन्ध उससे अभिन्न हैं,.... आम के रंग, गन्ध, रस, स्पर्श से भिन्न नहीं, एकरूप है। इसी प्रकार आत्मा द्रव्यरूप... द्रव्य भी वह का वह चीज़, गुण-पर्याय का पिण्ड वह द्रव्य; क्षेत्र, असंख्यप्रदेश। वह वस्तु, एक की एक है। और द्रव्य भिन्न और क्षेत्र भिन्न—ऐसा है? काल भी भिन्न, ऐसा है? या उसका काल का रहनापना और त्रिकाली और भिन्न चीज़ है? वह त्रिकाली रहना, उसका काल, वह भी अभिन्न है। और उसे भाव गिने ज्ञान-दर्शन-आनन्द तो उस रूप ही है। भाव अलग चीज़ है, क्षेत्र अलग चीज़ है, द्रव्य अलग चीज़ है, काल अलग चीज़ है—ऐसा नहीं। कहो, बराबर है? एकरूप है। चार नाम भिन्न-भिन्न बतलाये हैं, परन्तु चार का रूप तो एक ही है। जैसे आम में—केरी में चार वे गिने—रस, जाली, गुठली, छिलका, ऐसा नहीं। समझ में आया?

अब स्पर्श को एक ओर रखो और अकेला रस रखो आम में। ऐसा रहे? इसी प्रकार आत्मा में ज्ञान एक ओर रखो और क्षेत्र अलग रखो, ऐसे द्रव्य को भिन्न रखो और गुण को भिन्न रखो। सब एक की एक चीज़ है। भिन्न किसे रखे? समझ में आया? चार के भेद करके विकल्प उठाना, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग का तो आश्रय करनेयोग्य नहीं, निमित्त का आश्रय करनेयोग्य नहीं, परन्तु एक आत्मा के चार भाग करके भेदरूप का आश्रय करनेयोग्य नहीं, क्योंकि चार भेद हैं ही नहीं। आहाहा! कहो, अब उसमें चीज़ तो इस प्रकार से है। वे कहे, नहीं तो व्यवहार-

भेद है या नहीं? भेद है, इसका अर्थ क्या कि, भेद एक प्रकार है। कहीं वस्तु में भेद अलग चीज़ है और अभेद अलग चीज़ है, ऐसा कहीं है? उसका ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि भाव, वह भिन्न चीज़ है और उसका काल, क्षेत्र, द्रव्य, भिन्न है (ऐसा नहीं है)।

चारौंरूप अलख.... विकल्प और इन्द्रियों से जाना न जाये, ऐसा जो भगवान आत्मा चाररूप अखण्ड है। एकरूप अखण्ड सत्ता मानिये। दो सत्ता और तीन सत्ता और चार सत्ता, उसमें नहीं। द्रव्य की सत्ता है, वही क्षेत्र की सत्ता है; क्षेत्र की सत्ता, वही काल की और काल की सत्ता, वही भाव की है। कहो, समझ में आया? जिस प्रकार यह पंसारी को वहाँ पंसारीपने में नहीं होता? एक में जीरा, एक में धनिया, एक में (दूसरी वस्तु)। नोखा नोखा खाना हो न, उसी प्रकार यहाँ अन्दर चार खाने होंगे? एक द्रव्य होगा और दूसरा क्षेत्र और तीसरा काल तथा चौथा भाव? उसमें भिन्न-भिन्न हो। एक में धनिया हो, एक में जीरा हो, एक में सुपारी हो, एक में बादाम हो। खाना अलग है ही नहीं। जहाँ गुण है, वहाँ ही आत्मा है, और आत्मा द्रव्य है और द्रव्य है, वहाँ गुण है। गुण है, वहाँ क्षेत्र है और क्षेत्र है, वहाँ त्रिकाली तत्त्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : काल में फिर से यह तत्त्व लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल। यह सब काल में त्रिकाली तत्त्व। समझ में आया? त्रिकाली को स्वकाल कहा है न! एक समय की पर्याय, वह तो भेदकाल है। तू तो अभेद है। आहाहा!

मुमुक्षु : भेदाभेद को भी अभेद माने तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदाभेद अर्थात् क्या परन्तु?

मुमुक्षु : स्वरूप भेदाभेद?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूपभेद क्या है? द्रव्य का स्वरूप है, वह क्षेत्र का स्वरूप है, वह काल का स्वरूप है और वह भाव का स्वरूप है। नामभेद है। वस्तुभेद नहीं। नामभेद से भेद किये, वस्तु में भेद कहाँ है? समझ में आया इसमें? यह आत्मा द्रव्य, यह गुण-पर्याय का पिण्ड और क्षेत्र—उसका स्वरूप अलग है? नाम अलग हैं। वस्तु अलग-अलग नहीं।

मुमुक्षु : नामभेद से भेद है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नामभेद से भेद का अर्थ क्या? वह तो कथन है।

मुमुक्षु : इतना व्यवहार लागू पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार लागू पड़ता नहीं उसे। समझ में आया? ऐसा है। बात सच्ची है। अभेद वस्तु में भेद अलग चीज़ है वहाँ? गुण और काल भिन्न चीज़ है? आहाहा!

यह एक ही सत्ता है चारों की। बस नाम अलग हैं, वह तो एक पहिचानने के लिये समझाये हैं। यही कहा न! **चारौंरूप अलख अखंड...** है। अखण्ड सत्ता है। द्रव्य सत्ता—द्रव्य का अस्तित्व, क्षेत्र का अस्तित्व और काल का तथा भाव का अस्तित्व—ऐसा चार का अस्तित्व चाररूप से नहीं। चार का अस्तित्व एकरूप सत्ता है। अरे, अरे! भारी सूक्ष्म ऐसा! द्रव्यानुयोग में तत्त्व ही ऐसा है कि लोगों को उसमें से व्यवहार अभूतार्थ और निमित्त अकिंचित्कर सिद्ध करना भारी कठिन पड़े। व्यवहार अभूतार्थ है, परन्तु व्यवहार आये बिना रहता है? उसके बिना चलता है? ऐसा कहते हैं। कहो अब। व्यवहार बिना ही चला है अन्दर, सुन न!

मुमुक्षु : निश्चयव्यवहार बिना चलता नहीं, इसका अर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह सोनगढ़ का निकला, इसलिए फिर कुछ अपने (दूसरा निकालना)।

मुमुक्षु : भान पड़ा, उससे पहले ऐसा मानते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मानते थे न यह तो। आहाहा!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का करे। तब करे अर्थात् क्या? कहते हैं। निमित्त उसरूप से परिणमता नहीं। निमित्त उसरूप से परिणमता नहीं, वह परद्रव्य का अकर्ता है, ऐसा कहना है। ले, ठीक।

मुमुक्षु : तो किस प्रकार करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर तो सके, ऐसा कहे। परन्तु निमित्त उसरूप से परिणमता नहीं, इसलिए कर्ता नहीं, ऐसा।

मुमुक्षु : तो वह किस प्रकार से कर्ता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रकार से कर्ता है। यह वह कर्ता है। निमित्त बिना कार्य होता नहीं, इसलिए अकिंचित्कर नहीं। निमित्त बिना दोनों एकसाथ काम चलते हैं।

मुमुक्षु : दोनों में चले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों साथ में। इसके दृष्टान्त कहे नहीं अपने ? दृष्टान्त भी है कहीं। दृष्टान्त है, ऐसा, हों! दोनों बिना कार्य होता नहीं। यह दृष्टान्त ही मारे... विद्वान सही न वे लोग। ऐसा दिया है। .... इसलिए विद्वान के दृष्टान्त सही यहाँ। इसके बिना चलता नहीं अर्थात् कि दो हो तो ही कार्य होता है।

यहाँ तो चारों वस्तु एक समय में अपने से है। और उसका समय का काल लो, तो भी उस समय में स्वय से है और निमित्त, निमित्त से है। उसमें निमित्त है, इसलिए काल—पर्याय स्वकाल है, ऐसा है ? परकाल की तो यहाँ नास्ति है। ऐसे निमित्त की नास्ति हुई उसमें। परन्तु निमित्त बिना होता नहीं न ? ऐसा (वह) कहे। दो-एक जगह दृष्टान्त डाला है। ऐसा अन्दर दृष्टान्त है एक अन्दर। चिह्न, चिह्न किया होगा। ऐसा बैठाया दृष्टान्त कि देखो, यह दो के बिना होता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, **जीव पदार्थ के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उससे अभिन्न हैं और आत्मसत्ता अपने स्वचतुष्टय से सदा अखण्डित है।** स्वचतुष्टय (कहने से) चार भाग नहीं, परन्तु अखण्डित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**न द्रव्येण खण्डयामि**' है न! द्रव्य से खण्ड—पृथक् न कर, क्षेत्र से पृथक् न कर, काल से नहीं और भाव से नहीं। वह तो विशुद्ध... विशुद्ध एक '**ज्ञानमात्रौ भावोऽस्मि**'। मैं तो एकरूप ज्ञानमात्र... भाषा देखो। भाव... अकेला। परन्तु उस ज्ञान में सब आ जाता है। '**एको ज्ञानमात्रौ भावोऽस्मि**', लो। अब आठवाँ कलश। आठवाँ कलश है न नीचे।

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ।।८।।

ज्ञान और ज्ञेय का स्वरूप

★ ★ ★

काव्य - ४५

ज्ञान और ज्ञेय का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

कोऊ ग्यानवान कहै ग्यान तौ हमारौ रूप,
ज्ञेय षट दर्व सो हमारौ रूप नाहीं है।
एक नै प्रवांन ऐसे दूजी अब कहूं जैसै,
सरस्वती अक्खर अरथ एक ठाहीं है।।
तैसै ग्याता मेरौ नाम ग्यान चेतना विराम,
ज्ञेयरूप सकति अनंत मुझ पांही है।
आ कारन वचनके भेद भेद कहै कोऊ,
ग्याता ग्यान ज्ञेयकौ विलास सत्ता मांही है।।४५।।

अर्थ:–कोई ज्ञानी कहता है कि ज्ञान मेरा रूप है और ज्ञेय षट् द्रव्य मेरा स्वरूप नहीं है। इस पर श्रीगुरु सम्बोधन करते हैं कि एक नय अर्थात् व्यवहारनय से तुम्हारा कहना सत्य है, और दूसरा निश्चयनय मैं कहता हूँ, वह इस प्रकार है कि जैसे विद्या अक्षर और अर्थ एक ही स्थान पर हैं, भिन्न नहीं हैं। उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा का नाम है, और ज्ञान [१]चेतना का प्रकार है तथा वह ज्ञान ज्ञेयरूप परिणमन करता है, सो ज्ञेयरूप परिणमन करने की अनन्त शक्ति आत्मा में ही है, इसलिए वचन के भेद से भले ही भेद कहो, परन्तु निश्चय से ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय का विलास एक आत्मसत्ता में ही है।।४५।।

काव्य-४५ पर प्रवचन

कोऊ ग्यानवान कहै ग्यान तौ हमारौ रूप,
ज्ञेय षट दर्व सो हमारौ रूप नाहीं है।
एक नै प्रवांन ऐसे दूजी अब कहूं जैसै,
सरस्वती अक्खर अरथ एक ठाहीं है॥

१. चेतना दो प्रकार की है – ज्ञानचेतना और दर्शनचेतना।

तैसै ग्याता मेरौ नाम ग्यान चेतना विराम,
ज्ञेयरूप सकति अनंत मुझ मांही है।
आ कारन वचनके भेद भेद कहै कोऊ,
ग्याता ग्यान ज्ञेयकौ विलास सत्ता मांही है॥४५॥

वचन के भेद से भेद हो, वस्तु में भेद है नहीं। क्या कहते हैं? **कोऊ ग्यानवान....** ऐसा कहे कि ज्ञान—जानना वह मेरा स्वरूप है। **ज्ञेय षट दर्व सो हमारौ रूप नाहीं...** वह परज्ञेय हमारा रूप नहीं। समझ में आया? परन्तु यहाँ निश्चय से तो उसका जो ज्ञान—षट्द्रव्य का जो ज्ञान, वही अपना ज्ञेय है। समझ में आया? **ज्ञेय षट दर्व सो हमारौ रूप नाहीं...** षट्द्रव्य, वह हमारा रूप नहीं, ज्ञेय, वह हमारा रूप नहीं, ऐसा। वह व्यवहार से बराबर है। **एक नै प्रवांन ऐसे दूजी अब कहूं जैसै, सरस्वती अक्खर अरथ एक ठाहीं है...** अक्षर लिखा हुआ हो, उसे शब्दविद्या भी कहते हैं, उसे अक्षर भी कहते हैं। और उसमें उसका अर्थ है, वह भी उसमें है। तीनों ही एक जगह है। समझ में आया? सरस्वती एक शब्द है, इसलिए सरस्वती अक्षर हुआ। वह विद्या का नाम है। और उसका अर्थ जो है कि विद्या ऐसा अर्थ—भाव। वह विद्या तो अक्षर-शब्द हुआ। उसका भाव भी विद्या, उसमें भरी हुई रही है। यह तीन कहीं भिन्न नहीं हैं।

तैसै ग्याता मेरौ नाम... जाननेवाला मैं। **ग्यान चेतना विराम,...** लो। है न अन्दर। **इस पर श्रीगुरु सम्बोधन करते हैं कि एक नय अर्थात् व्यवहारनय से तुम्हारा कहना सत्य है, और दूसरा निश्चयनय मैं कहता हूँ, वह इस प्रकार है कि जैसे विद्या, अक्षर और अर्थ एक ही स्थान पर हैं, भिन्न नहीं हैं। उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा का नाम है और ज्ञान चेतना का प्रकार है।** ज्ञान और दर्शन—चेतना के प्रकार दोनों। परन्तु वह की वह चीज़ हुई वह तो। ज्ञाता, उसकी चेतना—ज्ञान और दर्शन, वह की वह चीज़ है। **तथा वह ज्ञान ज्ञेयरूप परिणमन करता है....** ज्ञान, जो परज्ञेय है, उसरूप से अपनी ज्ञान की पर्याय परिणमती है। वे तीनों ज्ञेय हैं। उसका द्रव्य-गुण और पर्याय स्वयं तीनों ज्ञेय हैं। स्वयं ज्ञेय हैं, ऐसा कहते हैं। छह द्रव्य को जाननेरूप परिणमित दशा को ज्ञान जानता है। वह ज्ञेय मेरा है। समझ में आया?

ज्ञान की पर्याय में षट्द्रव्य को जाननेरूप परिणमना, वह तो अपने भावरूप

होना। उस पररूप होकर जानता नहीं। षट्द्रव्य को जाननेवाला षट्द्रव्य के रूप में होकर जानता नहीं। उसके सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने ज्ञानरूप होकर जानता है। इसलिए स्वयं ज्ञेय हो गया। समझ में आया? स्वयं ज्ञान, स्वयं ज्ञाता और स्वयं ज्ञेय। अरे! अन्तिम श्लोक है न, यह एकदम अभेद (वर्णन करते हैं)। उसमें चार निकाल दिये। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सब अभिन्न है। ऐसे अब तीन लिये। तीनों अभिन्न हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

तथा वह ज्ञान ज्ञेयरूप परिणमन करता है.... क्या कहा? जो ज्ञान है... जैसा परज्ञेय है और स्वयं भी ज्ञेय है, उसरूप ज्ञान परिणमता है, वह ज्ञेय है। आहाहा! ज्ञान में जानने का भाव षट्द्रव्य के जाननेरूप परिणमा, वह तो ज्ञान का अपना भाव है। वह षट्द्रव्यरूप हुआ नहीं। वह ज्ञानरूप होकर ज्ञेय को जाने, इसलिए स्वयं अपने को ज्ञेय को जाने, ऐसा। स्वयं ज्ञेय है न! आहाहा! भारी सूक्ष्म ऐसा! **ज्ञेयरूप सकति अनंत मुझ मांही है।** ज्ञान एक शक्ति (और) ज्ञाता अनन्त शक्तिवाला है। उसमें यह ज्ञेयरूप ज्ञेय को जानना, ऐसा अपना निजस्वभाव है, वह ज्ञेय है। आहाहा! जिसमें तन्मय होकर अपना ज्ञान परिणमन हुआ है, वह उसका ज्ञेय है। परज्ञेय तो भिन्न रहा है। यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि ज्ञातास्वरूप भी वह एक ही स्वयं है और उसका ज्ञानगुण जो स्वभाव है, वह भी स्वयं ही है। और उसके ज्ञान में छह द्रव्य को जानने की जो अपनी शक्ति है, वह स्वयं अपनी पर्यायरूप परिणमता है। वह उसका वास्तव में तो ज्ञेय है। अर्थात् राग से लेकर पूरी दुनिया परज्ञेय है। परन्तु उस परज्ञेय को जानने की पर्याय स्वज्ञेय है। समझ में आया?

दर्पण सामने की चीज़रूप परिणमता है, ऐसा कहना वह तो व्यवहार है। सामने की चीज़ कहाँ वहाँ आयी है? सामने की चीज़ का जो स्वरूप है, उसरूप अपनी पर्यायरूप दर्पण परिणमा है। आहाहा! समझ में आया? वह षट्द्रव्य पर्याय में आ गये, ऐसा कहते हैं। अपनी ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य इतना है कि छह द्रव्य को जाननेरूप परिणमना, वह तो ज्ञान की पर्याय की शक्ति—स्वभाव है। इसलिए स्वयं ही ज्ञेय हो गया। स्वयं ज्ञेय, स्वयं ज्ञान, स्वयं ज्ञाता। आहाहा! ऐसा सब समझाकर क्या करना

होगा ? भाई ! तू अभेद है। यह परज्ञेय है, वह तो वचन का भेद है। यह बाद में आयेगा।

स्वपरप्रकाशक सकति हमारी.... स्व-पर को प्रकाशित करे, वह तो अपनी शक्ति अपनी अपने में अपने कारण से है। छह द्रव्य के कारण से नहीं। षट्द्रव्य है, इसलिए उन्हें जानने के पर्याय का परिणमन पराधीन और पर के कारण से है, ऐसा नहीं। आहाहा ! ज्ञान की पर्याय परिणमती है छह द्रव्य को जानने(रूप), वह तो ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य है, इस प्रकार से ज्ञान परिणमा है। इसलिए वास्तव में तो स्वज्ञेय हो गया। परज्ञेय नहीं। आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म क्या करे ? भाई ! तू ज्ञान, तू ज्ञाता और ज्ञेय— ऐसे तीन भेद, (तथापि) तू एकरूप है। उसमें दूसरा है नहीं। पूरा आत्मा ज्ञेय हो गया, उसका गुण ज्ञेय हो गया और पर्याय ज्ञेय; एक अभिन्न हो गया। आहाहा ! अन्तर्मुख होने के लिये यह अभेदता की बात है। समझ में आया ?

इसने अनन्त बार बाहर देखने के, भेद देखने के लिये मेहनत बहुत की, परन्तु अभेद हाथ नहीं आया। जहाँ देखना चाहिए—एकरूप है, उसके ऊपर इसने नजर नहीं की। आहाहा ! समझ में आया ? पर को जानना, यह तो अनन्त बार किया है। उसमें स्व-आप कहाँ आया ? उसमें स्वयं पर्याय कहाँ आयी, गुण भी कहाँ आया और द्रव्य भी कहाँ आया ? समझ में आया ? वह पर्याय, गुण और द्रव्य तीनों एकरूप हैं, ऐसा जो त्रिकाली तत्त्व, उसका आश्रय करने से उसे धर्म-समकित होता है। यह और ज्ञेय पर और ज्ञाता मैं—ऐसा भेद करना, वह भी उसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा तो लिखा है। प्रवचनसार में नहीं आता ? ज्ञान और ज्ञेय की प्रतीति का नाम समकित है, लो। आता है या नहीं ? उसका नाम सम्यग्दर्शन। ज्ञान और ज्ञेय का ज्ञान, वह सब बात ऐसे व्यवहार से कही है। स्वयं ज्ञेय भी स्वयं। एक ही चीज़ मैं हूँ, बस। दुनिया में कोई दूसरी चीज़ ही नहीं। मेरे कारण से—मेरी अपेक्षा से कोई चीज़ जगत में है, ऐसा है ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

ग्याता ग्यान ज्ञेयकौ विलास सत्ता मांही है। देखो ! अपनी सत्ता में ज्ञेय, अपनी सत्ता में ज्ञान और अपनी सत्ता में ज्ञाता। उसमें ऐसा कहा है, देखो न ! **चारौं अलख अखंड सत्ता मानियै....** एकरूप सत्ता मानिये, अन्तिम शब्द ऐसा था। आहाहा ! समझ में

आया? पर को देखने का प्रयत्न तो अनन्त बार किया है। पर का देखना, वह वास्तविक वस्तुस्वरूप नहीं। स्वयं पर को जाने एक समय में। अपने परिणमन में षट्द्रव्य का परिणमन आ जाता है षट्द्रव्य का। वह अपना है। वह आत्मज्ञ पर्याय है, आत्मदर्शी पर्याय है। परदर्शी और परज्ञेय की नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत बढ़िया बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बढ़िया बात है? वीतरागमार्ग ऐसा है, भाई। यह तो सर्वज्ञ ने जाना हुआ—देखा हुआ तत्त्व यह है, ऐसा है। ऐसा है और यह है। आहाहा!

चार भाग एकरूप। यह ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान एकरूप। परन्तु दूसरा ज्ञेय और मैं यह ज्ञान, ऐसा भेद नहीं। आहाहा! अरे! इसकी जाति को देखने... इसके सामर्थ्य की शक्ति—ज्ञेयरूप होने की, ज्ञानरूप होने की और ज्ञातारूप रहने की। आहाहा! भेद नहीं। अब ज्ञाता मैं और ज्ञेय पर। मैं स्वयं ही ज्ञेय और मैं स्वयं ही ज्ञाता और मैं स्वयं ज्ञान। समझ में आया? और जगत में परद्रव्य की अस्ति है, इसलिए उसे जाननेरूप ज्ञान परिणमा है, ऐसा है? अपनी ज्ञान की सत्ता अपने से परिणमी है और इतनी उसकी सामर्थ्य है। आहाहा! छह द्रव्य, अनन्त सिद्ध, अनन्त केवली या लाखों केवली इत्यादि, अनन्त निगोद के जीव, अनन्तगुणे परमाणु—इन सबको (जाननेरूप से) स्वज्ञेय में अपनी पर्यायरूप परिणमना, यह उसका स्वभाव है। आहाहा!

अभी तो अनन्त-अनन्त जीव अनन्त, उससे अनन्तगुणे परमाणु, उससे अनन्तगुणे त्रिकाल (के) समय, उससे अनन्तगुणे आकाशप्रदेश—इसका बैठना (भारी कठिन)। अभी यह परज्ञेय है, यह भी बैठते नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि वह तो है वह है। इतने सब जो ज्ञेय हैं और उन आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुणे गुण हैं। इतने सब जो ज्ञेय हैं, उन ज्ञेय को जानने की पर्याय जो है शक्तिरूप अपनी, वह अपने में सब आ गया ज्ञेय। स्वयं ज्ञेय हो गया है। समझ में आया? इसका अर्थ कि स्वयं द्रव्य में जाता है, इसलिए उसमें तीनों ही अभेद हैं। कोई भिन्न नहीं। स्वज्ञान में शक्ति एक समय में षट्द्रव्य को जानने की पर्याय का भाव अपना, अपना होकर ज्ञेय, ऐसी अनन्त-अनन्त ज्ञेयपर्याय द्रव्य में रही है—ज्ञाता में रही है। समझ में आया? ऐसे ज्ञाता को ज्ञान ज्ञेयरूप

से बनावे... समझ में आया? ऐसी भारी सूक्ष्म बात, भाई!

इसकी अपेक्षा तो यह दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, लोगों को यह बहुत (सरल) लगता है। पुण्य सर्वथा हेय नहीं। सब उसमें आ गया। पुण्य सर्वथा हेय नहीं। वह तो शुद्ध उपयोग की अपेक्षा से हेय है, परन्तु अशुद्ध की अपेक्षा से उपादेय है। है न उसमें?

मुमुक्षु : वह संसार हुआ। उपादेय कहाँ से हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब भाषण किये। भाई थे ..... में। मुन्नालाल, नहीं? गोरेया न? .... गोरेया। ऐसा है .... उसे। ..... सब बाद में तो सुने, न बैठे तो भी। समाज के साथ रहना और समाज से भिन्न पड़ना.... अब समाज किसका?

उसमें एक दृष्टान्त दिया है। वह बाजावाला था। बाजा बजाता था सब भिन्न-भिन्न प्रकार का। (कोई) वीणा, कोई कुछ। एक व्यक्ति आया। वह बाजा का बजानेवाला था। बाजा मिला नहीं। सब बाजा बँट गये थे। फिर क्या किया? कि एक पाट थी। पाट का पाया निकाला। वह क्या बजाने लगे न सब, तो पाया के साथ (आवाज करने लगा)। आवाज हो न आवाज। तो वह बाजा... बाजावालों को सबको बक्षीस दी राजा ने सबको। .... बोलता जाय। यह आया। (राजा) कहे, तेरा बाजा ला। किसकी बक्षीस दूँ तुझे? मेरा बाजा यह। परन्तु यह कब बजे? यह सबका बाजा है। सब बजावे तब साथ में बजे ऐसा यह है। यह निमित्त-उपादान का दृष्टान्त दिया। यह बाजा अकेला नहीं बजता। सब बजे, तब साथ में इसका बजे, ऐसा यह बाजा है। इसी प्रकार दो निमित्त-उपादान इकट्ठे हों तो कार्य हो। अकेला यह कार्य नहीं होता। ऐई! ऐसे दृष्टान्त दें।

यहाँ तो कहते हैं कि निश्चय से विकार भी एक से होता है। वह भी सब डाला है। निमित्त से यह यहाँ.... यह डाला है। कहे, नहीं। निमित्त बिना (होवे) तो स्वभाव हो जाये।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य बाहर गये थे.....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ कुछ.... वह तो व्यवहार से निमित्त है। निश्चय से

तो अपनी एक-एक समय की एक पर्याय जिसे कोई निमित्त की, पूर्व की, बाद की, द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं। ऐसा वह सत् का स्वरूप है। पूरा सत् का चौसला (बर्फी) जम गया है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा की एक समय की पर्याय में... यह छद्मस्थ काल में भी राग है, उसके सम्बन्धी का ज्ञान उस राग के कारण से नहीं। राग को देखने से पर को देखना है, ऐसा नहीं। वह राग सम्बन्धी का (और) अपने सम्बन्धी का अपने से हुआ ज्ञान, ऐसा पर्याय का धर्म है, ऐसी अनन्त पर्याय का धर्म द्रव्य है। समझ में आया? ऐसे अपने द्रव्य को देखने से स्व-पर की पर्याय का परिणमन स्वतः पर की अपेक्षा रखे बिना हो जाता है। आहाहा! सब प्रश्न चर्चित हैं उसमें। कितने ही कहते हैं, सब स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र है, किसने इनकार किया? परन्तु इसके बिना होगा नहीं, ऐसा उसका स्वभाव है। लो, ठीक। अकेला बाजा बजता नहीं। ऐई वजुभाई!

मुमुक्षु : अकेला ही बाजा बजे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! अकेली पर्याय.... अकेली पर्याय समय-समय की अकेली खड़ी होती है। उसे किसी की अपेक्षा है नहीं। अरे! द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, इतना आया सामान्य की अपेक्षा से... आहाहा! ऐसा सत् है, भाई! यह मानेगा, तब तुझे सत्यता प्रगट होगी। सम्यक् सत् अर्थात् यह सम्यक्। इसके बिना सम्यक् सत्यता हाथ नहीं आयेगी। आहाहा! समझ में आया?

एक दृष्टान्त दिया है। एक था कछुआ। पानी से बाहर निकला। बहुत कछुए रहते थे। वह बाहर निकला। वहाँ पक्षी आकर ऐसे चोंच मारे, वहाँ उसके सामने देखे, उसकी ओर मारे, वहाँ उसके सामने देखे। परन्तु अब अन्दर जा न दो-चार फीट गहरा, कोई पक्षी तुझे नहीं मारेगा। और वे ... हुए। ऐसे एक ओर ऐसा जायेगा तो शुभ होगा और ऐसा जायेगा तो अशुभ होगा। परन्तु गहरे जा अन्दर में, तुझे कोई अवरोधक नहीं होगा। .... ऐसा आवे तो कहाँ मेल कहाँ.... ?

मुमुक्षु : परन्तु पर में कौन अवरोधक?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा कि बाहर जाये तो शुभभाव होंगे, ऐसा। बहिर्बुद्धि

करेगा तो शुभ होगा। ऐसा करे तो बहिर्बुद्धि में अशुभ होगा। दोनों भाग से दोनों में घात होगा। परन्तु गहरे जा तो वहाँ शुभाशुभ परिणाम तुझे अवरोधक ही नहीं, होंगे ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह पर्याय का आश्रय ले तो किस प्रकार जा सके? यह निमित्त तो कहीं रह गया अब। आहाहा! उसका अर्थ यह कि वहाँ राग की उत्पत्ति होगी, या तो शुभ या अशुभ। वस्तु का आश्रय लेते ही वीतरागता उत्पन्न होगी। यह वस्तु का त्रिकाली परम सत् है। यह माने उसे उसकी सुलटाई कहलाये। समझ में आया?

सो ज्ञेयरूप परिणमन करने की अनन्त शक्ति आत्मा में ही है, इसलिए वचन के भेद से भले ही भेद कहो, परन्तु निश्चय से ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का विलास एक आत्मसत्ता में ही है,.... ऐसा। यह पर की सत्ता के कारण यहाँ ज्ञान का ज्ञेयपना परिणमा है ज्ञान में, ऐसा नहीं। आहाहा! ज्ञानगुण, उसकी पर्याय, वह अपने कारण से परिणमे, ऐसी सत्ता का उसका सामर्थ्य है। वह ज्ञेय भी स्वयं, तीनों होकर, हों! ज्ञान भी स्वयं और ज्ञाता भी स्वयं। निश्चय से ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का विलास... यह सूक्ष्म पड़े न, इसलिए फिर वह शुभभाव और यह क्रिया और यह सब सरल पड़े। क्यों जेठाभाई! यह आगे कहेंगे, हों! यह ४६। **स्वपर प्रकासक सकति हमारी....** परप्रकाशक शक्ति है, परन्तु हमारी शक्ति से पर प्रकाशता है, पर के कारण से नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ४६

(चौपाई)

स्वपर प्रकासक सकति हमारी।
तातैं वचन भेद भ्रम भारी।
ज्ञेय दशा दुविधा परगासी।
निजरूपा पररूपा भासी।।४६।।

अर्थ:–आत्मा की ज्ञानशक्ति अपना स्वरूप जानती है और अपने सिवाय अन्य पदार्थों को भी जानती है, इससे ज्ञान और ज्ञेय का वचन–भेद मूर्खों को बड़ा भ्रम उत्पन्न करता है। ज्ञेय अवस्था दो प्रकार की है – एक तो स्वज्ञेय और दूसरी परज्ञेय।।४६।।

काव्य-४६ पर प्रवचन

स्वपर प्रकासक सकति हमारी।
तातैं वचन भेद भ्रम भारी।
ज्ञेय दशा दुविधा परगासी।
निजरूपा पररूपा भासी।।४६।।

आत्मा की ज्ञानशक्ति अपना स्वरूप जानती है और अपने सिवाय अन्य पदार्थों को भी जानती है। यह शक्ति का स्वभाव है। समझ में आया? पर है, इसलिए यहाँ जानने की शक्ति का परिणमन है, ऐसा नहीं। उसकी सत्ता का ऐसा सामर्थ्य है कि स्वज्ञेयरूप से परिणमना और पर का प्रकाशक होना, वह भी स्वज्ञेय है। सूक्ष्म बहुत। मूलचन्दभाई! वहाँ सब चला ऐसा सम्प्रदाय में। ऐसा लगे, सोनगढ़ एकान्त करता है, एकान्त करता है। ऐसा सब याद करे बेचारे एकान्त में। याद करे, परन्तु बात सच्ची, बापू! बात ऐसी है न जरा, इसलिए न पकड़ में आये उसे—बेचारे को। उसे न पकड़ में आये (इसलिए) यह क्या कहते हैं...? ऐई! वापस और कहे, वीतराग की वाणी से ज्ञान होता नहीं। वह भी अकिंचित्कर निमित्त है। ज्ञान हुआ परलक्ष्यी, वह भी निमित्त

से होता नहीं। तो पहले क्यों नहीं हुआ? कहो, मूलचन्दभाई! ऐसे मुम्बई बैठे थे तो यह ज्ञान था? यहाँ सुने तब यहाँ ज्ञान होता है न? परन्तु ऐसा है नहीं। उसका ज्ञान उससे होता है। कठिन बात, भाई!

तब वे कहते थे एक केशवलाल... केशवभाई, नहीं? वढ़वाण के। केशवलाल आये थे न अभी, नहीं? दामनगर के... और वह सोनी हरगोविन्द। किसी ने ऐसा कहा कि तुम तो निमित्त से होता है, ऐसा मानते नहीं। तो वहाँ क्या करने जाते हो? वे कहे, निमित्त से होता नहीं, यह दृढ़ करने वहाँ जाते हैं। यह केशुभाई कहते थे। वहाँ किसलिए जाते हो? निमित्त से तो मानते नहीं। वह निमित्त से होता है, ऐसे कहनेवाले से छूटकर निमित्त से नहीं होता, ऐसा दृढ़ करने वहाँ जाते हैं, कहे। उसने ऐसा जवाब दिया।

मुमुक्षु : सच्चा जवाब।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा? सच्चा जवाब न? वह व्यापारी था। पण्डित नहीं था तुम्हारे जैसा। अनाज का व्यापारी है। तथापि बहुत... चर्चा करता.... भाई! तुम जाते हो। यह बात सच्ची है, इस बात को दृढ़ करने को जाते हैं। निमित्त से होता है, ऐसी बात कहनेवाले तो बहुत हैं। जवाब बराबर है या नहीं? वह कहीं वकील नहीं, कहीं पण्डित नहीं। केशवभाई अभी आये थे, नहीं?

यहाँ कहते हैं, **आत्मा की ज्ञानशक्ति अपना स्वरूप जानती है,....** देखो! अपना स्वरूप जानती है, यह ज्ञेय हुआ। अपना स्वरूप ज्ञान जानती है, यह ज्ञेय हो गया अपना। **अपने सिवाय अन्य पदार्थों को भी जानती है।** यह परप्रकाशक, वह व्यवहार हो गया। **इससे ज्ञान और ज्ञेय का वचन-भेद मूर्खों को बड़ा भ्रम उत्पन्न करता है। तातैं वचन भेद भ्रम भारी....** है न? भ्रम है न, भ्रमणा। ऐसा होगा? यह ज्ञेय है तो ज्ञान होता है। समझ में आया?

और यह प्रश्न बहुत चला था (संवत्) १९८३ में। दामनगर। वीरजीभाई और सेठिया के बीच। सेठ कहे कि यह लोकालोक ज्ञेय है, तो यहाँ ज्ञान होता है। वह न हो तो होगा? चर्चा चली ८३ में। संवत् १९८३। १७ और २७ = ४४ (वर्ष हुए)। बहुत

चर्चा चली थी। फिर मेरे पास आये। चर्चा उन दोनों को चली थी। यह वस्तु है तो यहाँ है, ऐसा है? ऐसा किसने कहा? वह है तो उससे है। यहाँ होता है, वह अपने से होता है। वहाँ से क्या होता था? ज्ञान ज्ञेय प्रमाण, (ऐसा) कहा है। ज्ञेय प्रमाण कहा, परन्तु ज्ञेय है, इसलिए ज्ञान का प्रमाण है। ज्ञान ऐसा सच्चा उसके कारण से हुआ है? उसकी अस्ति से यहाँ ज्ञान की अस्ति की दशा हो जाती है? उसकी अस्ति से इसकी दशा हुई है? बराबर है? अमरचन्दभाई! यह कितने वर्ष पहले की बातें हैं? ४४ वर्ष हुए। ऐसी चर्चा ठेठ से चलते ही आते हैं विवाद। कर्म के और यह पर के।

भाई! तुझमें सत्ता सामर्थ्य, स्व और पर को जानने का सामर्थ्य अकेला तेरा है। तेरी सत्ता का वह सामर्थ्य है। पर की सत्ता है, इसलिए जानने का तुझमें सामर्थ्य है, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह शरीर है, ऐसा ज्ञान में आया—ज्ञात हुआ। दृष्टान्त। समझ में आया? इसलिए ज्ञान में ज्ञात हुआ, वह यह शरीर है, इसलिए ज्ञान में ज्ञात हुआ? उसके कारण से ज्ञात हुआ? वह तो ज्ञान की पर्याय का इतना स्व-परप्रकाशक अपना सामर्थ्य है। इसलिए यह पर ज्ञात होता है, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो स्वयं जानता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सामर्थ्य का ज्ञान कराया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह परज्ञेय के सामर्थ्य के कारण तेरा ज्ञान ज्ञेयरूप होता है, ऐसा नहीं। तेरा ज्ञान तुझे ज्ञात होनेयोग्य होता है, वह तेरी शक्ति स्वयं की स्वयं के कारण से है। आहाहा! भारी सूक्ष्म ऐसा। साधारण बेचारे पढ़े न हो उन्हें तो (ऐसा लगे कि) यह क्या कहते हैं? यह क्या कहते होंगे? और पढ़े हों पुस्तकें थोड़ी बहुत थोड़ी... आहाहा! उसका दरबार अलग है। चैतन्य का दरबार अलग है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्व को जानना हो तो स्वयं को जाने और पर को जानना हो तो पर को जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर को जानना, वह अपने कारण से। यहाँ तो आगे तो यह कहते हैं कि स्वयं अपने को जाने, ऐसा भेद भी कहाँ है उसमें? समझ में आया?

ज्ञायक ज्ञायक को जाने। आता है न? परन्तु ऐसा भेद क्या? 'मैं ज्ञायक'। यह तो

है, परन्तु जानता है। ज्ञायक को जाने ऐसा हो तो भेद हो गया। पर को जानने की बात भी कहाँ? ऐसा सत् महाप्रभु है न! चैतन्य की अस्ति ऐसे स्वभाववाला महाप्रभु है और एक ही मैं हूँ। बाकी कोई चीज़ मेरी अपेक्षा से है ही नहीं। केवली, सिद्ध (आदि) पंच परमेष्ठी भी मेरी अपेक्षा से है नहीं। आहाहा! मैं एक ही दुनिया में हूँ, बस। समझ में आया? ऐई! जीव अपूर्ण नहीं। परिपूर्ण—पूर्ण लोकालोक उसे जानने का एक समय की पर्याय का स्वभाव है। यह जानना, यह मैं पूरा हूँ। इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ मुझमें है ही नहीं। वह मेरी अपेक्षा से दूसरी चीज़ ही नहीं। उसकी अपेक्षा से हो। समझ में आया? आहाहा! और मेरी अपेक्षा से नहीं और उसकी अपेक्षा से है, यह भी उसमें कहाँ है? विकल्प का भेद भी उसमें नहीं। आहाहा!

स्वपर प्रकासक सकति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारी... आहाहा! भगवान का दरबार अपना इतना है कि छह द्रव्य तो उसके ज्ञान की पर्याय के सामर्थ्य के अनन्तवें भाग में ज्ञात हो जाते हैं। उसे जानना, यह बात नहीं यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया? भगवान ज्ञान की एक समय की पर्याय इतनी और वह पर्याय पूरे द्रव्य को जाने अपने को कि जिसमें ऐसी अनन्त-अनन्त (शक्ति कि) छह द्रव्य से भी अनन्तगुणा काल और द्रव्य हो तो भी जानने का जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव को हद और मर्यादा नहीं होती। ऐसी जो उसकी ताकत, ऐसी अनन्त ताकत लेकर पड़ा हुआ शक्तिवाला ज्ञातातत्त्व है। समझ में आया? अर्थात् क्या कहा?

एक समय की पर्याय में षट्द्रव्य तीन काल, तीन लोक असंख्यप्रदेश, अनन्त प्रदेश, अनन्तगुणे अनन्तगुणे इतना जानने का परिणमन की सामर्थ्य अपने कारण से अपनी सत्ता से है। अब ऐसी ऐसी अनन्त सामर्थ्य द्रव्य में पड़ी है। और इतना-इतना ही मैं हूँ। बाकी दुनिया में दूसरी चीज़ है नहीं। यह मैं हूँ और दूसरी चीज़ नहीं, ऐसा उसमें अवकाश नहीं, ऐसा कहते हैं। जादवजीभाई! ऐसा सूक्ष्म है। वहाँ तो प्रौषध करना और प्रतिक्रमण करना, ऐसा था तुम्हारे वहाँ कलकत्ता। परन्तु यह सेठिया वहाँ थे न सेठिया सब। प्रमुख। महिलाओं में महिला प्रमुख। सेठिया में यह जादवजीभाई। कलकत्ता। सब बाहर की बातें करे। आहाहा!

भाई! तू कौन है? प्रभु! तू तुझसे अनन्त-अनन्तगुणे जीव और अनन्त-अनन्तगुणे परमाणु, अनन्त-अनन्त गुणा काल और अनन्त-अनन्तगुणे आकाश के (प्रदेश और उससे) अनन्तगुणे भाव—शक्ति, वह गुण की शक्ति की जो हानि-(वृद्धि) है, वह भी जीव की एक समय की पर्याय सबको जाने।—ऐसा जो ज्ञेय होकर परिणमे, ऐसी अनन्त पर्यायें उसके गुण में हैं। ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का तत्त्व, उसे जानने की तेरी पर्याय, उसकी (-ज्ञेय की) सत्ता है, इसलिए नहीं। आहाहा! समझ में आया? वापस सामने अनन्त हैं। अनन्त-अनन्त गुण हैं, अनन्त-अनन्त शक्तियाँ हैं, अस्ति है, भाई! यह अस्तित्व उसके कारण से है और उसे अस्ति में भी एक-एक जीव की पर्याय में षट्द्रव्य और तीन काल जानने की एक समय की पर्याय स्वयं के कारण से है। यह वह है इसलिए, ऐसा नहीं। ऐसी एक पर्याय में अनन्तगुणा भाग खाली रह जाता है। इससे अनन्तगुणे होवे तो जानता, इतना तो भाग एक पर्याय का है। आहाहा!

और ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड प्रभु गुण है और ऐसे अनन्तगुण का एकरूप, वह द्रव्य है। कितना ज्ञेय हो गया इसे। वह ज्ञेय नहीं रहा, यह ज्ञेय रहा। समझ में आया? .... ऐसी धर्मकथा! बापू! तू ईश्वर है, भाई! तेरे लिये दूसरा ईश्वर होगा नहीं। समझ में आया? ईश्वर का ईश्वर कोई होगा? ईश्वर का ईश्वर हो तो वह ईश्वर रहता नहीं। आहाहा! तुझे ज्ञेय होने का तेरा स्वभाव है। तेरा तुझे ज्ञेय होने का तेरा स्वभाव है। पर को ज्ञेय करना, वह वास्तव में तेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तो फिर ज्ञेय क्या और ध्येय क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब वह का वह है, ऐसा .... बात। ऐसी बात का स्पष्टीकरण, कहने का आशय यहाँ है। देखना हो तो तुझे और जाननेवाला भी तू और जाननेवाला स्वभाव भी तू। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय.... ध्यान-ध्याता-ध्येय।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्येय। वहाँ विकल्प ही नहीं। आता है न छहढाला में? ध्यान-ध्याता-ध्येय का विकल्प निकल जाये। महाप्रभु में ऐसे मलिन भाव कहाँ से हो? भाई! अकेले प्रकाश के पुंज में... अकेले प्रकाश में... चैतन्यप्रकाश का पुंज हो, दुनिया

के प्रकाश परमाणु के या मुक्तिशिला के स्फटिक रत्न के, वह नहीं। यह तो अकेला चैतन्य का प्रकाश, उसका पुंज ऐसा तेरा तत्त्व, कहते हैं कि वह तेरा ज्ञेय है। परज्ञेय वास्तव में निश्चय से (नहीं)। आहाहा! जिसमें तन्मय होकर रहता नहीं, वह ज्ञेय उसका कैसे हो? जिसमें तन्मय होकर रहे, वह उसका ज्ञेय है। समझ में आया? यह परमेश्वर का उपहार होता है। ऐसा भगवान है भाई! तुझे। परमेश्वर.... अभी कहा न, 'वह तो प्रभु ने ही दिया।' आता है न यहाँ। 'वर्तु चरणाधीन।' 'क्या प्रभु चरण निकट धरुं, आत्मा से सब हीन।' यह भगवान दिया। दिया का अर्थ, जैसा है वैसा बतलाया, ऐसा। आहाहा! वह दे तो क्या... परन्तु यह तो यों ही.... दे-ले कौन? दे और ले कौन? कहो, भीखाभाई! आहाहा!

ज्ञेय दशा दुविधा परगासी.... वचन के भेद के कारण भ्रमियो को—भ्रमणावालों को, परज्ञेय जानता है, ऐसा उसे लगता है। ऐसा कहते हैं। **ज्ञेय दशा दुविधा परगासी, निजरूपा पररूपा भासी... ज्ञेय अवस्था दो प्रकार की है एक स्वज्ञेय और दूसरी परज्ञेय।** स्वज्ञेय, वही उसका ज्ञेय है, ऐसा कहते हैं। परज्ञेय को उसका ज्ञेय कहना, वह तो व्यवहार है। आहाहा! गजब बात है। अभी तो वह राग आवे, उससे लाभ माने, व्यवहार के कारण यह होता है.... यह तो वह हो तो भी ज्ञान न हो। उसके सम्बन्धी का वह हो तो भी ज्ञान न हो। उसका—ज्ञान का अपनी अस्ति में इतना भरा हुआ है, उसमें से ज्ञान होता है। वह उसका ज्ञेय है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्वज्ञेय और फिर परज्ञेय। फिर उसका अनुवाद। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७४, आसोज शुक्ल ९, मंगलवार, दिनांक २८-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ४७ से ४९

समयसार नाटक। ४७ वाँ बोल (काव्य) है। साधक और साध्य द्वार।

★ ★ ★

काव्य - ४७

(दोहा)

निजरूपा आतम सकति, पररूपा पर वस्त।
जिन लखि लीनौं पेंच यह, तिन लखि लियौ समस्त।।४७।।

अर्थः–स्वज्ञेय आत्मा है और परज्ञेय आत्मा के सिवाय जगत के सब पदार्थ हैं, जिसने यह स्वज्ञेय और परज्ञेय की उलझन समझ ली है–उसने सब कुछ ही जान लिया समझो।।४७।।

काव्य-४७ पर प्रवचन

निजरूपा आतम सकति, पररूपा पर वस्त।
जिन लखि लीनौं पेंच यह, तिन लखि लियौ समस्त।।४७।।

लो, बहुत संक्षिप्त यहाँ आया। वह .... सिद्ध करते हुए उसमें थोड़ा सा आया। आचार्यों के वचन हैं, यह वचन ... उसमें से एक शब्द फेरफार न हो। बड़ी चर्चा राजवार्तिक... एक-एक शब्द उनका ऐसा ही होता है, दूसरा शब्द होता नहीं। अकेला देखना, ऐसा नहीं, सम्यक् देखना, सम्यक् श्रद्धना, ऐसा। अकेला जानना, ऐसा नहीं, सम्यक् जानना। अकेला चारित्र नहीं, सम्यक् चारित्र। और सम्यक्ज्ञान तीनों स्तम्भ हैं। शब्द ऐसा नहीं चाहिए। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **निजरूपा आतम सकति....** भगवान आत्मा स्वयं ही आत्मशक्ति

ज्ञेय है। और **पररूपा पर वस्त।** परज्ञेय परवस्तु है। क्योंकि वास्तव में परवस्तु को जानने से पर में व्याप्य-व्यापक नहीं होता, इसलिए परज्ञेय व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? और स्वयं आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में तन्मय है, व्याप्य-व्यापक है। व्यापक द्रव्य और अपनी पर्याय में व्याप्य—यह आत्मशक्ति, यह वास्तव में ज्ञेय है। परज्ञेय तो व्यवहार है। क्योंकि पर को जानने से कहीं पर में तन्मय नहीं होता और तन्मय होता नहीं, वह सब व्यवहार है वह तो। समझ में आया? पर को जानने की जो पर्याय है अपनी, वही तन्मय में है, अपने में है। इसलिए वास्तव में तो वह अपना द्रव्य-गुण-पर्याय तीन, वही ज्ञेय है। समझ में आया? जैसे राग में व्याप्ता नहीं, ऐसा वास्तव में परज्ञेय में आत्मा की पर्याय व्यापती नहीं। आहाहा! संक्षिप्त में बहुत कहा है न!

निजरूपा आतम सकति.... भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण के सागर का भरपूर और उसकी जो परिणति अर्थात् पर्याय, वह पर को जाने और स्व को जाने, वह तो अपना रूप है। पर को जानना, वह पर का रूप नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! स्वयं ही भगवान स्व-परप्रकाशक की शक्ति से भरपूर पदार्थ है। इसलिए उसकी पर्याय में भी स्व और पर का जो जानना, ऐसा कहना... पर को जानना, यह कहना वह तो व्यवहार है। आहाहा! स्व का और पर सम्बन्धी का अपना ज्ञान है पर्याय में, वही वास्तव में ज्ञेय है। समझ में आया? जिसमें व्यापक होकर व्यापे, वह उसकी चीज़। परन्तु स्वयं व्यापक होकर राग में या परद्रव्य में व्यापता नहीं। आहाहा! अपना अस्तित्व अपने में है। अपना अस्तित्व—मौजूदगी, उसकी सत्ता स्वज्ञेय की, वह पर की सत्ता में व्यापकर जानता है, ऐसा नहीं। भाई! परवस्तु परज्ञेय है, अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया?

स्वयं अपने स्वभाव को—द्रव्य को और पर्याय में षट्द्रव्य का जानपनेरूप अपना अस्तित्व जो परिणमा, वह स्वज्ञेय है। आहाहा! अब ऐसी बात स्वज्ञेय-परज्ञेय बेचारे समझे क्या साधारण लोग? इसकी अपेक्षा तो सामायिक और प्रौषध—प्रतिक्रमण करे, यात्रा कर आवे, एक चैत्य सम्मेदशिखर की। एक बार वन्दे कोई... आता है न! अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : नरक पशु गति न होई।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें एक गति न हो, उसमें क्या एक भव में? बाद में होगी। आहाहा! समझ में आया? अपने को पर गति ही नहीं और गति के भाव का ज्ञान, वह भी अपना है। आहाहा! समझ में आया? गति और गति का भाव, वह सब वास्तव में परज्ञेय है। उसे जानने सम्बन्धी का अपना ज्ञान, वह अपने अस्तित्व में है, वह उसका स्वज्ञेय है, ऐसा जिसने जाना.... आहाहा!

निजरूपा आतम सकति पररूपा... निजरूप आत्मशक्ति, पर वस्तु.... परवस्तु, वह पररूप है। **स्वज्ञेय आत्मा है और परज्ञेय आत्मा के सिवाय जगत के सब पदार्थ हैं, परज्ञेय हैं, जिसने यह स्वज्ञेय और परज्ञेय की उलझन समझ ली है,....** हल हो गया वहाँ, कहते हैं। समझ में आया? पर का जानना ही आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो स्व का जानना, उसमें आया। आहाहा! समझ में आया? अपने अस्तित्व में है जितना, वह उसका स्वज्ञेय और अपने अस्तित्व में नहीं—ऐसा पर, वह परज्ञेय। आहाहा!

कहते हैं कि जिसने, स्वज्ञेय, वह आत्मा। उसका द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों स्वज्ञेय, बस। और **पररूपा पर वस्त, जिन लखि लीनौं पेंच....** जिसने यह पेच समझ लिया, समझ हो गयी, **उसने सब कुछ ही जान लिया,...** लो। उसने सब जाना। आहाहा! समझ में आया? यही वस्तु है। वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, ऐसा कहते हैं। राग का ज्ञान और शास्त्र (आदि) परसम्बन्धी का ज्ञान, वह सब परज्ञेय है। साधक की यहाँ बात है न! यह साधक में सिद्ध करना है। समझ में आया?

ऐसा आत्मस्वभाव त्रिकाल ज्ञायक, अनन्त गुण और अपने पर्याय में स्व-पर का जो ज्ञान का अस्तित्व, वह स्व का अस्तित्व है, वह स्वज्ञेय है। बाकी सर्वज्ञ परमात्मा पंचपरमेष्ठी, वे सब परज्ञेय हैं। परज्ञेय को जानने से ज्ञानपर्याय कहीं पर में व्यापती नहीं, पसरती नहीं, परिणमती नहीं, पररूप होती नहीं। अपने रूप में, अपनी जाति में, अपने अस्तित्व में जानते हुए स्व-पर का परिणमना होता है, वह स्वज्ञेय है। आहाहा! यह ज्ञेय-ज्ञान की बात में इतनी गम्भीरता! यह तो वे कहे, राग से निश्चय होता है, व्यवहार से निश्चय होता है। पर से—निमित्त से यहाँ होता है।

यहाँ तो कहते हैं, वस्तु जो आत्मा, चैतन्य का अस्तित्व शाश्वत् और उसकी

शक्तियाँ, वे शाश्वत् और उसकी पर्याय में स्व-पर का जानना, ऐसा स्वयं व्यापकर रहता है। उसे स्वज्ञेय कहते हैं। समझ में आया? पर, रागादि और पर का जानना, वह सब साधक को पररूप ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जिसने जान लिया। **लखि** अर्थात् जानना। **पेच—** यह कला। यह कला जिसने जान ली, उसने सब जाना। आहाहा! समझ में आया?

परज्ञेय की उलझन समझ ली.... स्वज्ञेय और परज्ञेय। स्व और पर का विवेक होकर स्वज्ञेय-परज्ञेय का ख्याल आ गया, **उसने सब कुछ ही जान लिया।** सब जाना उसने बारह अंग का ज्ञान। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान भी परज्ञेय है। विकल्परूप है न! भेदरूप है। आहाहा! अपना भगवान आत्मा अपने अन्तरस्वभाव का अवलम्बन लेकर जो स्व-पर का प्रकाशक पर्याय स्वज्ञेयरूप व्यापकर हुई, वह स्व-स्वरूप। वह स्वज्ञेय। सूक्ष्म तो है। यह तो अन्तिम गाथायें हैं न! ठेठ तक अन्दर ले गये हैं। आहाहा! विवाद किसका करे भाई! इसके अस्तित्व में जितना है, वह स्वज्ञेय और इसके अस्तित्व में जो नहीं, वह परज्ञेय। ऐसा जिसने जाना, उसने सब जान लिया। कहो, समझ में आया? आहाहा! **स्याद्वाद में जीव का स्वरूप।** अकेला श्लोक। नौ, नौ।

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं,
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः,
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत्।।९।।

इसका यह पद है। **स्याद्वाद में जीव का स्वरूप।**

★ ★ ★

काव्य - ४८

स्याद्वाद में जीव का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

करम अवस्थामैं असुद्धसौ विलोकियत,
करम कलंकसौं रहित सुद्ध अंग है।
उभै नै प्रवांन समकाल सुद्धासुद्ध रूप,
ऐसौ परजाइ धारी जीव नाना रंग है।।
एक ही समैमैं त्रिधारूप पै तथापि याकी,
अखंडित चेतना सकति सरवंग है।
यहै स्याद्वाद याकौ भेद स्यादवादी जानै,
मूरख न मानै जाकौ हियौ दृगभंग है।।४८।।

शब्दार्थ:–अवस्था=दशा। विलोकियत=दिखता है। उभै (उभय)=दो। नै=नय। परजाइ धारी=शरीर सहित, संसारी। रंग=धर्म। त्रिधा=तीन। दृगभंग=अन्धा।

अर्थ:–यदि जीव की कर्मसहित अवस्था पर दृष्टि दी जावे तो वह व्यवहारनय से अशुद्ध दिखता है, यदि निश्चयनय से कर्म–मलरहित अवस्था विचारी जावे तो वह निर्दोष है, और यदि ये दोनों नय एक साथ सोचे जावें तो शुद्धाशुद्धरूप जाना जाता है। इस प्रकार संसारी जीव की विचित्र गति है। यद्यपि वह एक क्षण में शुद्ध, अशुद्ध और शुद्धाशुद्ध ऐसे तीनरूप हैं तो भी इन तीनों रूपों में वह अखण्ड चैतन्यशक्ति से सर्वांग सम्पन्न है। यही स्याद्वाद है, इस स्याद्वाद के मर्म को स्याद्वादी ही जानते हैं, जो मूर्ख हृदय के अन्धे हैं, वे इस मतलब को नहीं समझते।।४८।।

काव्य-४८ पर प्रवचन

करम अवस्थामैं असुद्धसौ विलोकियत,
करम कलंकसौं रहित सुद्ध अंग है।
उभै नै प्रवांन समकाल सुद्धासुद्ध रूप,
ऐसौ परजाइ धारी जीव नाना रंग है॥

एक ही समैमैं त्रिधारूप पै तथापि याकी,
अखंडित चेतना सकति सरवंग है।
यहै स्याद्वाद याकौ भेद स्यादवादी जानै,
मूरख न मानै जाकौ हियौ दृगभंग है॥४८॥

समझना... समझना अकेला आता है इसमें। क्योंकि वह समझण का पिण्ड ही है। उसमें दूसरा कुछ है ही नहीं। तो वही आवे न! दूसरा क्या आवे? समझ में आया? **करम अवस्थामैं असुद्धसौ विलोकियत,...** ऐसे देखें तो निमित्त की अपेक्षा से जहाँ लक्ष्य जाता है तो उसमें अशुद्धता होती है। तो अशुद्धता भी उसकी पर्याय में है। उसके अस्तित्व में है, इतना सिद्ध करना है न! समझ में आया? देखो न, कहाँ देखते हैं? **करम अवस्थामैं असुद्धसौ विलोकियत,...** अशुद्धता कर्म के संग से उसमें दिखती है। बस इतनी बात। एक ही नय से। **करम कलंकसौं रहित सुद्ध अंग है।** नीचे लिखा है, देखो। **यदि जीव की कर्म सहित अवस्था पर दृष्टि दी जावे तो वह व्यवहारनय से अशुद्ध दिखता है, यदि निश्चयनय से कर्म-मलरहित अवस्था विचारी जावे तो वह निर्दोष है।** यह यहाँ अवस्था की बात है, त्रिकाली की नहीं। क्या कहते हैं? कर्म के निमित्त के संग का विचार करे तो उसे अशुद्धता दिखती है और अशुद्धतारहित की पर्याय देखे साधक तो शुद्ध दिखता है। पर्याय, हों! समझ में आया? साधक की व्याख्या है न!

भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति का जहाँ अन्तर में मुख होकर भान हुआ, कहते हैं कि उसमें दशायें एकसाथ तीन दिखती है। एक अशुद्ध भी दिखती है, पर्याय शुद्ध भी दिखती है और शुद्ध-अशुद्ध दोनों एक साथ भी दिखती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय स्वभाव। यहाँ तो पर्याय की बात चलती है। त्रिकाल तो पिण्ड मक्खन है पूरा। है न देखो! **उभै नै प्रवांन समकाल सुद्धासुद्ध रूप, ऐसौ परजाइ धारी....** ऐसा है न! क्या कहते हैं? शुद्ध द्रव्य, ऐसा यहाँ अभी नहीं लेना। एक ओर देखे तो पर्याय में अशुद्धता, उसका और उसका उस ओर का भाग देखे तो शुद्ध पर्याय। एक साथ शुद्ध-अशुद्ध देखे तो प्रमाण से दोनों है। उसी और उसी की बात है यहाँ। बाहर

की बात यहाँ नहीं। समझ में आया? उसके अस्तित्व की पर्याय के अस्तित्व में—सत्ता में अशुद्धता भी संग से दिखती है और इस ओर देखे तो संगरहित निर्मल पर्याय भी ज्ञात होती है। आहाहा! और एकसाथ शुद्ध-अशुद्ध पर्याय दोनों भी ज्ञात होती हैं। यह तीन हुए। अब यह चौथा।

ऐसौ परजाइ धारी जीव नाना रंग है। पर्याय का धारक इस प्रकार से अनेक रंगरूप से पर्याय में ज्ञात होता है। आहाहा! उसे जानना... जानना तो आत्मा को जानना है न! समझ में आया? और उसकी पर्याय में तीन प्रकार हैं, वह भी जाने और तीनों काल उस पर्याय में अखण्ड चैतन्यद्रव्य है, वह भी जाने। समझ में आया? विषय ऐसा सूक्ष्म पड़े न लोगों को, फिर सभा रंजन करने और....

मुमुक्षु : स्वयं को ही न आता हो, उसमें क्या करे? अपने को आना चाहिए न....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह थोड़ा सा ऐसा रखा है भाई ने कुछ भाषण में। इन्दौरवाला... जरा रखा है .... और साधु अभी बाहर में। वह और एकाध बात है थोड़ी सी उसमें। यह पुस्तक, नहीं कुछ?

मुमुक्षु : सत्ता.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह सही कुछ। मार्ग तो यह आत्मा का है, उसे साधना चाहिए धर्मी को। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा को प्रसन्न और आनन्दित करना है। पर को प्रसन्न करना, वह कुछ बात है नहीं। परन्तु लोग मानते हैं न यह सब तो... आहाहा! सभा प्रसन्न हो, अपने कुछ समझाया कहलाये और वे समझे कहलाये, प्रभावना हुई कहलाये। नहीं, देवीलालजी! आहाहा! भाई! तुझमें प्रभावना तेरी हो या तेरी प्रभावना पर में होगी?

मुमुक्षु : दूसरे में .... अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, अभाव है। आहाहा! वस्तु ही ऐसी है, वहाँ उसमें दूसरी चीज़ कहाँ से लावे? समझ में आया? आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप ऐसी दृष्टि हुई, वहाँ पर्याय में तीन प्रकार ज्ञात हुए। परलक्ष्य से देखे तो अशुद्धता भी दिखती है, इस ओर से देखे तो शुद्धता भी प्रगट हुई है, एक साथ देखे तो शुद्धाशुद्ध परिणमन भी है

पर्याय में। समझ में आया? यहाँ पर को देखना, यह बात भी नहीं। मूलचन्दभाई! आहाहा!

एक सेठिया ऐसा कहता था। एक सेठिया तुम्हारा नहीं वह? पूनमचन्द घासीलाल मुम्बई। कालबादेवी मन्दिर नहीं? पूनमचन्द.... हाँ, वह। उसकी एक बात आयी थी बाहर से कि कानजीस्वामी जरा बहुत खींचते हैं। वे थोड़ा सा ऐसा पोचा रखे और हम थोड़ा सा पोचा रखें तो इकट्ठे हो जायें। यह तो तुम्हारे सेठिया में से एक सेठिया ऐसा कहते थे, ऐसा कहता हूँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ी सी जरा हाँ करे थोड़ा सा व्यवहार की इस ओर। ऐसा कुछ होगा। यह कुछ ऐसा कहना चाहते हैं। यह भाई कहते थे। उसे खबर नहीं। परन्तु यहाँ भाई कहते थे, नहीं? हिम्मतभाई कहते थे। हिम्मतभाई कहते थे, ऐसा कि ऐसा कहते हैं। कहा, यह बनियागीरी है नहीं।

वह बनिया ऐसे पाँच हजार रुपये माँगता हो किसान से। वह बनिया समझे कि इसके पास दो हजार के अतिरिक्त कुछ है नहीं। गद्दा-गोदड़ा बेचे तो भी दो हजार (मिलेंगे)। वह भी समझे कि अपने कुछ दो हजार के अतिरिक्त कोई रुपया अपने पास है नहीं। तब वह बनिया कहे, पाँच हजार में एक पाई कम लेना नहीं, ले। मन में है कि दो हजार (मिले तो) जाने दो। वह मांडे कि पाँच सौ अतिरिक्त एक रुपया मेरे पास अधिक नहीं है। पाई भी नहीं है। ऐसा करते करते करते वह बनिया और ऐसा आवे कि भाई! एक पाँच सौ कम देना। वह कहे कि परन्तु छह सौ (देना), लो। करते.. करते... करते दो हजार आवे। ऐसा है इसमें? भाव-ताव करते-करते... जादवजीभाई! बनिया करे तुम्हारे। मानो कि उसमें कुछ .... दुष्काल है और यह हुआ है। आहाहा!

कहते हैं, **उभै नै प्रवांन समकाल सुद्धासुद्ध रूप,....** ओहो! ... कहा है न परन्तु! **ऐसौ परजाइ धारी....** ऐसा कहा है न, ऐसी अवस्था का धारक। अशुद्धता भी है... साधक है न? शुद्धता प्रगट हुई है और एकसाथ देखो तो शुद्ध-अशुद्ध दोनों हैं। **एक ही समैमैं त्रिधारूप पै तथापि याकी,...** देखो। आहाहा! **एक ही समैमैं त्रिधारूप पै**

तथापि याकी, अखंडित चेतना सकति सरवंग है। चैतन्यशक्ति अखण्ड तो त्रिकाल पड़ी है उसमें। वाह! समझ में आया?

चार बातें कीं। धर्म का साधक हुआ अर्थात् कि आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यद्रव्य त्रिकाल अखण्ड आनन्द का जहाँ भान हुआ तो उस पर्याय में तीन प्रकार हैं। साधक की बात है न यह। आहाहा! अभी व्यवहार की अशुद्धता दिखती है, कर्म के संग से राग आदि विकल्प और इस ओर ढला, इसलिए शुद्धता भी दिखती है। आहाहा! दोनों को एक साथ देखे तो शुद्ध और अशुद्ध, पर्याय में दोनों दिखते हैं। और चौथे प्रकार से देखे **एक ही समैमैं त्रिधारूप पै तथापि**—तो भी **याकी, अखंडित चेतना सकति सरवंग है।** चेतना... चेतना... चेतना... चेतना... चेतना अनादि-अनन्त है। कहो, समझ में आया?

यह तो समझ में आये ऐसा है। यह सादा है। शिवलालभाई! समझ में आया या नहीं? और यह तो सादी भाषा है। वह गाड़ियाँ घुमायीं हो न अनाज की। जितनी गाड़ियाँ हों, उसमें शिवलालभाई मुख्य हों। उसका व्यापार-धन्धा। और वहाँ क्या नजर पहुँचे। उगाहते हैं अब। यह व्यापार दूसरे प्रकार का है। अब निवृत्ति लेंगे, ऐसा कहती थी बहिन घर से। अब निवृत्ति लेंगे। यह उपाधि बहुत की है न भाई! बहिन कहती थीं। आहाहा! यही करने का, यह करने का है। अरेरे! क्या करके करना? जिसमें शान्ति न मिले, शान्ति की शुरुआत न हो, वह क्या किया यह? आहाहा! जिसमें भवरहित की निःशंकता न हो, अरे! उसने क्या किया? पण्डितजी! आहाहा!

कहते हैं, वापस और उस शक्ति में है न! ४७ शक्ति का वर्णन। यह तो वह ४७ था न यहाँ। यह ४७ पद आया न उसमें अन्दर में। ४७ शक्ति में तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों प्रमाण का विषय निर्मल ही लिया है। अशुद्धता नहीं। समझ में आया? क्या कहा यह? ४७ शक्ति का जहाँ वर्णन किया... पहले आ गया। वहाँ तो वस्तु शुद्ध चैतन्य भगवान त्रिकाल, उसकी शक्ति शुद्ध त्रिकाल, उसकी अवस्था निर्मल। यह दोनों होकर, द्रव्य-गुण और पर्याय दोनों होकर प्रमाण का विषय। अशुद्ध की बात नहीं। अशुद्ध का ज्ञान है परन्तु यहाँ व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, (ऐसा) साथ में सिद्ध करना है

यहाँ। आहाहा! समझे न? वह व्यवहार उसकी पर्याय में है, ऐसा सिद्ध करना है न! पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! अरे! भगवान तैयार हो सकता है। ऐसा नहीं समझना (कि) अरेरे! हमको यह नहीं समझ में आता। हम बालक कहलाते हैं, हम स्त्रियाँ कहलाते हैं। क्या कहलाये, हमको आता नहीं। अब यह आत्मा है, यह तीनों काल चैतन्यशक्ति है। नहीं कहा यह?

अखंडित चेतना सकति सरवंग है। आहाहा! आत्मा है, ऐसा जानना है। उसमें न हो, उसे जानना हो तब तो कठोर पड़े। भाई, है या नहीं सब? बालक, जवान, ढोर, मनुष्य, नारकी—यह वस्तु कहाँ है अन्दर? त्रिकाल सर्वांग। आहाहा! **अखंडित चेतना सकति सरवंग है।** समझ में आया? **सरवंग है।** अर्थात् उसमें **अंग** कहा था न, **नाना रंग।** प्रत्येक पर्याय में द्रव्य तो त्रिकाल शक्तिरूप है, ऐसा। समझ में आया? अशुद्ध पर्याय, शुद्ध पर्याय और एकसाथ (शुद्धाशुद्ध), तो भी वह एक रंग में त्रिकाल है। यह सब रंग में **सरवंग...** सभी पर्यायों में द्रव्य त्रिकाल एकरूप है। समझ में आया? अरे, अरे! यह कहीं विद्वत्ता का विषय नहीं। यह तो आगम के स्वरूप का विषय है। और दुनिया इससे प्रसन्न हो या न प्रसन्न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। मार्ग यह है। समझ में आया? जिसे जन्म-मरण चौरासी के अवतार परिभ्रमण में भटकता है, उसे मिटाना हो तो यह मार्ग है। समझ में आया?

कहते हैं कि तू कौन है? कि मैं त्रिकाल रहनेवाला चैतन्यशक्ति सम्पन्न आत्मा। तेरी पर्याय में क्या है? तेरी दशा में क्या है? पर की दशा का यहाँ कुछ काम नहीं। कि मेरी दशा—पर्याय में तो यह है। निर्मल पर्याय धर्म की प्रगट हुई है। त्रिकाल शक्ति तो अखण्ड सर्वंग प्रत्येक पर्याय में है। उस समय में चैतन्य भगवान के आश्रय से शुद्ध पर्याय प्रगट हुई है, वह भी मैं हूँ, अशुद्धता है, वह भी मेरी पर्याय के अस्तित्व में है और दोनों को एक समय में जानना, ऐसा भी मेरे अस्तित्व में है। ऐसा एक पर्याय में ऐसे प्रसंग—प्रकार होने पर भी, आहाहा!

एक ही समैमैं त्रिधारूप पै तथापि याकी, अखंडित चेतना सकति सरवंग है। शुद्धपर्याय-अशुद्धपर्याय एक साथ (होने) पर भी उसमें भगवान त्रिकाल चैतन्यप्रभु ध्रुवरूप विराजता है। समझ में आया? पूरे चार अंग का ज्ञान कराया है। एक-एक नय

का एकसाथ... पर्याय को, वह भी नय है। परन्तु इन दो को इकट्ठा कहा है, ऐसा। आहाहा! यह प्रमाण तो यह प्रमाण दिया है। पर्याय निर्मल और मलिन, ऐसा करके इकट्ठा करके प्रमाण किया है। आहाहा! पर का नहीं तथा द्रव्य का इकट्ठा करके नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा... यह पर्याय में दोनों अंश होने पर भी एक-एक अंश का, एक-एक नय का ज्ञान होने पर भी एकसाथ करे तो भी वह नय है। क्योंकि प्रमाण है, वह भी सद्भूतव्यवहारनय है। वह भी प्रमाण का भाग है, यह तो अभी। पूरा प्रमाण है, वह तो स्व अपने और पर को जाने ऐसा जो प्रमाण, वह भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। आहाहा! क्योंकि वह पर अपेक्षा आयी न, इसी प्रकार यहाँ शुद्धता की पर्याय जो द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई, दो का ज्ञान एक साथ (होता है), वह भी एक प्रमाण है। दो इकट्ठे हुए न! वह ऐसा कहते हैं न कि राग निमित्त से होता है। निमित्त अकिंचित्कर नहीं है। भाई! तुझे खबर नहीं। वह ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता, तो फिर निमित्त से राग हो, यह तो कहाँ है?

दूसरी बात। कि उसमें वह (उपादान)-निमित्त से—दो से कार्य होता है। वह दृष्टान्त दिया न सामूहिक का। सामूहिक बजता है। मेरा बाजा सामूहिक बजता है। सब बाजा बजे तब मेरा बजता है, अकेला नहीं। इसी प्रकार उपादान-निमित्त इकट्ठे हों तो कार्य होता है। वह तो व्यवहारनय का वचन है। समझे? दो इकट्ठे हुए न दो। यह व्यवहारनय के विषय की बात है। निश्चय में तो पर्याय स्वयं से ही हुई है त्रिकाल। आहाहा! समझ में आया? व्यवहारनय के ग्रन्थ में यह आवे, एक कार्य के दो कारण। परन्तु दो कारण, वह व्यवहार हो गया। दो हुए, वही व्यवहार हो गया। आहाहा! अरे! क्या हो?

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक में....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आता है न, सब जगह। दो-दो हुए, वह तो व्यवहार हो गया। आहाहा! उसका विकार उससे होता है, यह निश्चय है। जिसमें स्व के अतिरिक्त पर की अपेक्षा है नहीं, उसका नाम निश्चय कहा जाता है। पर की अपेक्षा से जहाँ कथन करना, वहाँ तो व्यवहार हो गया। दो इकट्ठे। आहाहा!

मुमुक्षु : स्व को बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बताते हैं तो भी वह व्यवहार हो गया वह तो, ऐसा। समझ में आया?

यहाँ भी एक समय की दो पर्याय। पर्याय तो एक ही है, उसके दो भाग। आहाहा! अमरचन्दभाई! वस्तु एक यह त्रिकाल चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप। वह तो त्रिकाली दोनों पर्याय में त्रिकाल बसता है। दो भाग में। परन्तु एक पर्याय के दो भाग— एक अशुद्धता का अंश और एक शुद्धता का अंश। यह दोनों एक पर्याय के दो भाग हैं। पर्याय के दो भाग हैं।

मुमुक्षु : पर्याय एक, भाग दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग दो। पर्याय दो नहीं। दो भाग। समझ में आया? तब भाग बिना की चीज़ त्रिकाल चैतन्यशक्ति, वह अभाग। अखण्डानन्द प्रभु चैतन्यस्वभाव। समझ में आया?

अखंडित चेतना सकति सरवंग है। नीचे कर्ममलरहित लिखा है न। **यदि ये दोनों नय एक साथ सोचा जावें तो शुद्धाशुद्धरूप जाना जाता है।** नय। **इस प्रकार संसारी जीव की विचित्र गति हैं यद्यपि वह एक क्षण में शुद्ध, अशुद्ध और शुद्धाशुद्ध ऐसे तीनरूप है तो भी इन तीनों रूपों में वह अखण्ड चैतन्य शक्ति से सर्वांग सम्पन्न है।** पर्याय के अंश के पीछे पूरा चैतन्यशक्ति का पिण्ड त्रिकाल है। समझ में आया? थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए न, भाई! और सत् के फलरूप से सत्य होता है। असत्य आवे और उसका फल सत्य आवे, ऐसा बने? **अखंडित चेतना सकति सरवंग है।** अर्थात् सब अंग जो पर्यायें हुईं दो—दो भाग। उसमें त्रिकाली भागरहित चैतन्यमूर्ति, वह तो त्रिकाल है। उसका आश्रय और द्रव्यदृष्टि होने से जो पर्याय प्रगट हुई, उसमें से शुद्धता और अशुद्धता दो भाग पड़े हैं। साधक है न! समझ में आया?

यहै स्याद्वाद याकौ भेद स्यादवादी जानै,... देखो। **यहै स्याद्वाद...** ऐसे अनेक— अनन्त धर्मवाला तत्त्व अखण्ड तत्त्व और पर्याय के एक में दो भाग। अरे, अरे! अशुद्ध भी सही, शुद्ध भी सही। यह वह कुछ (बात है!) अशुद्धता भी उसका एक अंश—धर्म है

पर्याय का और शुद्धता प्रगट हुई, वह भी उसका एक धर्म है। **यहै स्याद्वाद याकौ भेद स्यादवादी जानै,...** अनेकान्त वस्तु का स्वरूप, उसे ज्ञानी जानता है। मूरख नहीं मानता। ऐसा होगा? शुद्ध पर्याय और फिर अशुद्ध पर्याय और पर्याय एक। एक समय की एक और उसके दो भाग। अरे, अरे! ऐसे पर्याय को माने नहीं, वह यह वेदान्त आदि को तो यह सब बड़ा गप्पा जैसा लगे। क्या कहते हैं? आहाहा! समझ में आया? कार्य होता है, वह तो पर्याय है। एक कार्य में—एक अधूरी दशा में शुद्धता और मलिनता दो भाग पड़े हैं उसमें। ऐसा उसे ज्ञान हो गया है। उसे स्वयं को अशुद्धता नहीं। दूसरा अभी नय से जाननेवाला जानता है कि चौदहवें गुणस्थान तक उसे अभी अशुद्धता है। समझ में आया?

ले, केवलज्ञान जाने कि उसमें इतना है, इतना। परन्तु उसे कुछ नयभेद नहीं। अर्थात् कि अशुद्ध मैं हूँ। शुद्ध मैं हूँ, अशुद्ध मैं हूँ—ऐसा वहाँ कुछ नहीं। समझ में आया? यह और क्या कहा? यह तो साधक श्रुतज्ञान की अपेक्षा से बात है। समझ में आया? केवली को कहीं नय नहीं हैं। वह अशुद्धता है, उसे जानता है, वैसे यह शुद्धता पर्याय को जानता है और त्रिकाली द्रव्य को जानता है—सब एक साथ जानता है। समझ में आया? आहाहा! एक-एक श्लोक और एक-एक पद में बहुत ही भर दिया है। अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि वनवासी। आहाहा! चलते सिद्ध थे, तथापि लोग उन्हें पहिचान नहीं सके। श्वेताम्बर पक्ष निकल गया था पहले से, कुन्दकुन्दाचार्य से पहले। ऐसे मुनि को भी परख नहीं सके। नया मत निकला। नहीं, ऐसी होगी बात। अमृतचन्द्राचार्य तो अभी यहाँ हुए। उनका ख्याल करे तो भी खबर पड़े कि ऐसी बात हम जानते नहीं और अपने में है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आदि लिया। उसका अर्थ वे करते हैं, आदि अर्थात् शुरुआत में बात। ऐसा अर्थ किया उन्होंने। पीछे से, हों! उस समय तो कि आदि अर्थात् मूल दिगम्बर। किसकी पहली पूजा हो (इसके लिये) दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों के बीच चर्चा चली न। तो उसमें सरस्वती को बुलाओ। बुलाओ, कुन्दकुन्दाचार्य कहे। फिर पत्थर में जवाब आया, आद्य दिगम्बर। उन्होंने फिर बाद में अर्थ बदल डाला।

आदिवाले हैं दिगम्बर, हम पुराने हैं। शब्द का अर्थ... गजब है!

मुमुक्षु : आवाज आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवाज आयी। पत्थर को बुलवाया। आहाहा!

मुमुक्षु : योग्यता या विशेषता?

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्यता। पुण्य भी है न। पुण्य की बात है, पवित्रता की कहाँ बात है?

दोनों को विवाद चला। कुन्दकुन्दाचार्य कहे, भाई! यह सरस्वती बोले। .... जो कहे माता वह बोले। दिगम्बर, करो पहली पूजा मूर्ति की। आहाहा! उस समय भी .... वस्तु वहाँ नहीं। .... दृढ़ हुआ। सौ वर्ष पहले निकल गये, यह (श्वेताम्बर) कुन्दकुन्द आचार्य के सौ वर्ष पहले निकल गये। फिर कहीं मिलान नहीं खाया। मध्यस्थता से देखना चाहिए। सत्य का सत्पना कैसा होता है, ऐसा उसे जानने में पक्षपात बिना जानना चाहिए। तो उसे सत्य हाथ आये बिना नहीं रहेगा। पक्ष बाँधकर देखे कि हम ऐसे मानते हैं। हम ऐसा... मानते हैं, परन्तु वह है या नहीं? ऐसा स्वरूप उसमें है या नहीं? ....धर्म है। शुद्ध उतना धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

साधक है, उसके साथ बाधकपना कुछ है तो साधक रहा न? पूरी बात करते हैं देखा? कि अशुद्धता उसका स्वभाव नहीं, इसलिए अशुद्धता नहीं, ऐसा नहीं। यहाँ तो अशुद्धता, जानने के लिये 'अशुद्धता है' ऐसा बराबर सिद्ध किया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे देखें तो कहे, सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है, अशुद्ध से मुक्त है। लो, ऐसा कहा या नहीं? परन्तु है न! है, उससे मुक्त है न! ज्ञान में जानता है कि यह है। पद्मनन्दि में आया है। ज्ञान जानता है ज्ञान। ऐसे ज्ञान में दो पहलू जानने में हुए। दर्शन में तो अकेला अभेद है। समझ में आया? और उसके साथ प्रगट हुआ ज्ञान जानता है कि यह शुद्ध है और यहाँ पर्याय में दो भाग हैं, बस इतना। जिसका **दृगभंग**—जिसकी दृष्टि अन्धी है, वह ऐसा समझते नहीं, ऐसा कहते हैं। दसवाँ कलश।

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभङ्गुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।

इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै–
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ।।१०।।

देखो! यह जीव का वैभव! यह सब पैसा-पैसा का नहीं। देखो! क्या यह मकान और वैभव को करे और रचे और अभी... लाईब्रेरी और क्या कहा जाता है सब? फर्नीचर। लकड़ी के मुख चले ऐसे-ऐसे। मर गये के ऐस मुख वापस... उसका वह फर्नीचर। यह तो जीवित फर्नीचर। घर का वैभव। मलूकचन्दभाई! यह घर का वैभव। वह तो पर का है, उसमें तेरा कहाँ आया यहाँ? व्यवहार बिना चलता है कहाँ? अब ऐसा लिखा उसने। व्यवहार है ही कहाँ, वह चले नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया? पर का व्यवहार, वह तुझमें है ही कहाँ कि उसके बिना न चले? उसके बिना ही चलता है इसे। आहाहा! पर की क्रिया जड़ की, उसके अभावरूप ही तीनों काल आत्मा निभ रहा है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार का संयोग देखे। खाये-पीये बिना चले? खाना पड़े, ऐसा ऐसे लिखा है। खाना पड़े। कौन खाये? कौन पीवे? ... सुन तो सही। जिसके अस्तित्व में—सत्ता में जो परद्रव्य नहीं, उसे खाना-पीना? क्या कहता है तू यह? समझ में आया?

अभी यहाँ प्रमाणज्ञान में राग व्यापता है अवस्था में, इतना तो जाननेयोग्य है। परन्तु वह ज्ञान जड़ में व्यापे और कुछ करे और बनावे, (ऐसा) है उसमें कुछ?

मुमुक्षु : वेदान्त और अध्यात्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बाद में वह यह... पहले तो यहाँ पर से भिन्न करके अकेला अखण्ड पर्याय चैतन्यद्रव्य सिद्ध करना है। वह और द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से देखने से अशुद्धपना भी परद्रव्य है। अरे, शुद्ध की पर्याय, वह परद्रव्य है। आहाहा! यह वह बात है! स्याद्वाद की शैली।

मुमुक्षु : भूतार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूत जो वस्तु है... परन्तु ऐसी वस्तु ही है, भाई! तेरे ज्ञान में देख न, जान न! पक्षपात छोड़ दे। जैसा है, वैसा जान, कहते हैं। यह पद उसका है।

★ ★ ★

काव्य - ४९

(सवैया इकतीसा)

निहचै दरवद्रिष्टि दीजै तब एक रूप,
गुन परजाइ भेद भावसौं बहुत है।
असंख्य परदेस संजुगत सत्ता परमान,
ग्यानकी प्रभासौं लोकाऽलोक मानयुत है।।
परजै तरंगनिके अंग छिनभंगुर है,
चेतना सकतिसौं अखंडित अचुत है।
सो है जीव जगत विनायक जगतसार,
जाकी मौज महिमा अपार अदभुत है।।४९।।

शब्दार्थ:-भेदभाव=व्यवहारनय। संजुगत (संयुक्त)=सहित। जुत (युक्त)=सहित। अचुत=अचल। विनायक=शिरोमणि। मौज=सुख।

अर्थ:-आत्मा निश्चयनय वा द्रव्यदृष्टि से एकरूप है, गुण-पर्यायों के भेद अर्थात् व्यवहारनय से अभेदरूप है। अस्तित्व की दृष्टि से निज क्षेत्रावगाह में स्थित है, प्रदेशों की दृष्टि से लोक-प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है, ज्ञायक दृष्टि से लोकालोक[१] प्रमाण है। पर्यायों की दृष्टि से क्षणभंगुर है, अविनाशी चेतनाशक्ति की दृष्टि से नित्य है। वह जीव जगत में श्रेष्ठ और सार पदार्थ है, उसके सुखगुण की महिमा अपरम्पार और अद्‌भुत है।।४९।।

काव्य-४९ पर प्रवचन

निहचै दरवद्रिष्टि दीजै तब एक रूप,
गुन परजाइ भेद भावसौं बहुत है।
असंख्य परदेस संजुगत सत्ता परमान,
ग्यानकी प्रभासौं लोकाऽलोक मानयुत है॥

परजै तरंगनिके अंग छिनभंगुर है,
चेतना सकतिसौं अखंडित अचुत है।
सो है जीव जगत विनायक जगतसार,
जाकी मौज महिमा अपार अद्‌भुत है॥४९॥

एक-अनेक उतारा है। लो आया, ऐई! विनायक। दूल्हा के पास विनायक रहे न, इसी प्रकार यहाँ भगवान के पास विनायक वह यन्त्र रहे।

आहाहा! **जाकी मौज महिमा....** देखो, मौज डालकर लिया तुम्हारे यह... मौज करने गये थे। नहीं कहते? घूमने गये थे। मित्रों को लेकर। सब अभी बहुत चलता है। लड़कों को लेकर घूमने निकले। मित्रों को लेकर देखने निकले पूरा देश। छह-छह हजार रुपये खर्च करके, यह लेकर जाते हैं न, क्या कहा जाता है उसे? देश देखने।

मुमुक्षु : पर्यटन।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यटन। भिन्न-भिन्न देश और भिन्न-भिन्न जानेंगे तो उसमें से ज्ञान खिलेगा। मूढ़ता खिलेगी। समझ में आया? देश-देश के भाँति-भाँति के वस्त्र और भाँति-भाँति की भाषा और भाँति-भाँति के बँगले और भाँति-भाँति के पंखी-पक्षी। कितना ज्ञान बढ़े? धूल में भी नहीं, सुन न अब! यह सब अज्ञान है। आहाहा! यह तो आत्मा की **जाकी मौज महिमा अपार अद्‌भुत है।** कहते हैं, यह जैसा आत्मा है, वैसा जिसने जाना और अनुभव किया, उसे इस प्रकार से नय का ज्ञान अपेक्षा से होता है। तथापि वह मौज और आनन्द की लहर करता होता है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

निहचै दरवद्रिष्टि दीजै तब एक रूप,... वस्तु देखें तो एकरूप त्रिकाल है। द्रव्य—वस्तु—सत्त्व—तत्त्व—स्वभाव—सत् त्रिकाल। वह एकरूप है निश्चय से। **गुन परजाइ भेद भावसौं बहुत है।** अनन्त गुण और उनकी पर्याय के भाव से बहुत है। अनेक है, ऐसा। इस प्रकार एक है, अनेक है। **अनेकतां** और ऐसे **एकता,** ऐसा है न अन्दर! लोक में ऐसा है न! एकदेश से एक... आहाहा! एकरूप से भी है और गुण-पर्याय से अनेकरूप भी है। आहाहा! यह उसका वैभव है। **असंख्य परदेस संजुगत सत्ता परमान,...** ऐसा देखें

तो असंख्य प्रदेश में अपने में है। क्षेत्र की बात। अपने असंख्य प्रदेश / क्षेत्र में है। एक परमाणु जितनी जगह रोके, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसा असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र है। उसके क्षेत्र में है स्वयं। **असंख्य परदेस संजुगत सहित सत्ता परमान**—अपनी सत्ता प्रमाण है।

ग्यानकी प्रभासौं लोकाऽलोक मानयुत-सहित है। लो। ज्ञान की अपेक्षा से लोकालोक को जानता है, इसलिए सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वव्यापक कहा, लो, ज्ञान की अपेक्षा से। क्षेत्र की अपेक्षा से नहीं? क्षेत्र तो असंख्य प्रदेश में पहुँचता है, परन्तु उसका ज्ञान लोकालोक को जानता है। **ग्यानकी प्रभासौं....** है न उसमें? **अस्तित्व की दृष्टि से निज क्षेत्रावगाह में स्थित है, प्रदेशों की दृष्टि से लोक-प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है, ज्ञायकदृष्टि से लोकालोक प्रमाण है।** लो, तीन लिये।

परजै तरंगनिके अंग छिनभंगुर है,.... पर्याय से देखें तो क्षणभंगुर क्षण-क्षण में तरंग उठती है। आहाहा! पर्याय की तरंग क्षण-क्षण में नयी-नयी क्रमवर्ती होती है। समझ में आया? किसमें क्षणभंगुर? उस पर्याय से आत्मा क्षणभंगुर। लो। शरीर क्षणभंगुर,.... क्षणभंगुर, परन्तु (यह तो) पर्याय से आत्मा क्षणभंगुर। जो पर्याय जिस क्षण में उत्पन्न हुई, वह दूसरे क्षण में रहती नहीं। ऐसा आत्मा पर्याय से क्षणभंगुर है। समझ में आया? **चेतना सकतिसौं अखंडित अचुत है।** परन्तु चेतनाशक्ति त्रिकाली देखें ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान, उससे तो वह अच्युत—कभी च्युत हुआ नहीं और अखण्डित है, ऐसा। पर्याय से खण्डित है, वस्तु से अखण्डित है। आहाहा! गजब वेदान्तवालों को तो ऐसा लगे यह। हैं, आत्मा क्षणभंगुर? भागो यहाँ से। हम तो ऐसा सुनते आये थे कि यह अध्यात्म की बात तो आत्मा अलख... ऐसी बात करते हैं यहाँ। यह तो कहे, आत्मा क्षणभंगुर, आत्मा अनित्य। नयी पर्याय का संयोग हो और पुरानी पर्याय का वियोग हो। समझ में आया?

सो है जीव जगत विनायक जगतसार,... लो। **वह जीव जगत में श्रेष्ठ और सार पदार्थ है।** सर्वोत्कृष्ट पदार्थ भगवान आत्मा और जगत में सार भी वही है। आहाहा! चेतनाशक्ति से भरपूर भण्डार और पर्याय में क्रम-क्रम से (परिणमता)। यह नित्य, ऐसे अनित्य। प्रदेश में अपनी सत्ता में। ज्ञानगुण से पर में व्यापक जानने की अपेक्षा से।—

ऐसा उसका स्वरूप स्वत: है। स्व की सत्ता का ऐसा स्वरूप है, लो। पहले कहा, सर्वगत है—ऐसा कहना, वह नयाभास है। प्रवचनसार में कहा कि भाई, सर्वगत है, ले। इस अपेक्षा से। आता है न, पंचाध्यायी में आता है। ऐसा आता है। सर्वगत कहना, वह नयाभास है। (व्यापक) होता नहीं इसलिए। परन्तु यहाँ कहते हैं कि मूल जानने का स्वभाव ऐसा है (कि) सबको जाने, इस अपेक्षा से उसे सर्वगत भी एक नय से कहते हैं। समझ में आया? अपनी सत्ता में रहा होने पर भी लोकालोक को जानता है, इस अपेक्षा से उसे प्रकाशक, व्यापक कहते हैं।

सो है जीव जगत विनायक जगतसार, जाकी मौज महिमा अपार अद्‌भुत है। आहाहा! उसकी सुखगुण से महिमा... मौज लिया है न। सुख अर्थात् आनन्द। जिसके आनन्दसागर भगवान आनन्दगुण की महिमा अपरम्पार और आश्चर्यकारी, अचम्भाकारी, अद्‌भुत है। आहाहा! ऐसा आत्मा, उसे जैसा है वैसा जानकर अनुभव करना, इसका नाम धर्म कहा जाता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७५, आसोज शुक्ल १०, गुरुवार, दिनांक ३०-०९-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ५० से ५१

यह समयसार नाटक। ११वाँ कलश है। नीचे.... नीचे। नीचे है न ११वाँ।

कषायकलिरेकतः स्खलति शान्तिरस्त्येकतो,
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः,
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ।।११।।

गाथा, चैतन्य महिमा की गाथा है। क्या कहते हैं, देखो। उसमें है न। पद-पद ५०।

★ ★ ★

काव्य - ५०

पुनः (सवैया इकतीसा)

विभाव सकति परनतिसौं विकल दीसै,
सुद्ध चेतना विचारतैं सहज संत है।
करम संजोगसौं कहावै गति जोनि वासी,
निहचै सुरूप सदा मुकत महंत है।।
ज्ञायक सुभाउ धरै लोकालोक परगासी,
सत्ता परवांन सत्ता परगासवंत है।
सो है जीव जानत जहान कौतुक महान,
जाकी किरति [१]कहां न अनादि अनंत है।।५०।।

१. कहान ऐसा भी पाठ है अर्थात् कहानी-कथा।

शब्दार्थ:–विकल=दुखी। सहज संत=स्वाभाविक शान्त। वासी=रहनेवाला। जहान=लोक। किरति (कीर्ति)=यश। कहां न=कहाँ नहीं।

अर्थ:–आत्मा विभाव परिणति से दु:खी दिखता है, पर उसकी शुद्ध चैतन्यशक्ति का विचार करो तो वह साहजिक शान्तिमय ही है। वह कर्म के संसर्ग से गति योनि का प्रवासी कहलाता है, पर उसका निश्चयस्वरूप देखो तो कर्म–बन्धन से मुक्त परमेश्वर ही है। उसकी ज्ञायकशक्ति पर दृष्टि डालो तो लोकालोक का ज्ञातादृष्टा है, यदि उसके अस्तित्व पर ध्यान दो तो निज क्षेत्रावगाह–प्रमाण ज्ञान का पिण्ड है। ऐसा जीव जगत का ज्ञाता है, उसकी लीला विशाल है, उसकी कीर्ति कहाँ नहीं है, अनादि काल से चली आती है और अनंत काल तक चलेगी।।५०।।

काव्य-५० पर प्रवचन

विभाव सकति परनतिसौं विकल दीसै,
सुद्ध चेतना विचारतैं सहज संत है।
करम संजोगसौं कहावै गति जोनि वासी,
निहचै सुरूप सदा मुकत महंत है॥
ज्ञायक सुभाउ धरै लोकालोक परगासी,
सत्ता परवांन सत्ता परगासवंत है।
सो है जीव जानत जहान कौतुक महान,
जाकी किरति कहां न अनादि अनंत है॥५०॥

क्या कहते हैं ? देखो ! **विभाव सकति परनतिसौं विकल दीसै,...** आत्मा, यह आत्मवस्तु जो है सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने जो आत्मा कहा, जिसे आत्मा वीतराग ने कहा। साधक जीव—धर्मी जीव यह आत्मा कैसा है, उसे जानते हैं। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसका अनुभव करना, वह धर्म है। आहाहा ! धर्म कोई बाह्य क्रियाकाण्ड में है नहीं। उस धर्म में जानने (में आता है) अपना शुद्ध स्वरूप, (परन्तु) पर्याय में **विभाव सकति परनतिसौं विकल दीसै,...** पर्याय में देखे तो विकार दिखता है। परचीज़

का सम्बन्ध यहाँ है नहीं। अपना आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द है, ऐसी जब दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन—धर्म की दशा, तब पर्याय में विकार भी दिखता है। यह शुभ-अशुभ जो परिणाम होते हैं, वह विकार है, विभाव है।

सुद्ध चेतना विचारतैं सहज संत है। विकार की एक समय की अवस्था से भिन्न देखो तो **सुद्ध चेतना विचारतैं....** शान्ति... शान्ति... शान्ति है। धर्मी की बात चलती है न। धर्म कोई शरीर से, मन से, वचन से होता नहीं, वैसे धर्म कोई पुण्य-पाप के परिणाम-क्रियाकाण्ड से होता नहीं। धर्म अपने स्वभाव से होता है। तो अपना स्वभाव चैतन्यमूर्ति, उसकी दृष्टि होकर अन्तर में अनुभव हो कि आत्मा तो पवित्र और आनन्द है, ऐसी दशावन्त को धर्मी कहते हैं। वह धर्मी अपनी पर्याय में विभाव है, यह भी जानते हैं.... पुण्य-पाप का विकल्प राग जो विकार है... जबतक केवलज्ञान नहीं, तबतक साधकस्वभाव में विभाव की पर्याय उत्पन्न होती दिखती है।

सुद्ध चेतना विचार.... अन्तर चीज़ यदि देखे तो अकेला शान्त अकषायरस पड़ा है आत्मा। आहाहा! कठिन काम! वस्तु—आत्मा जिसे कहते हैं, आत्मा तो अकषाय आनन्द का रसपिण्ड है। यहाँ अकषाय बताना है शान्त में। समझ में आया? पर्याय में राग दिखता है और स्वभाव में शान्ति दिखती है, यह कहते हैं। एक समय में ऐसा है। समझ में आया? शरीरवाला दिखता है या कर्मवाला दिखता है, वह बात यहाँ है नहीं। एक समय में, ज्ञानी अपना त्रिकाल चैतन्य भगवान का अनुभव गहरे उतरकर अन्तर स्वभाव को स्पर्श करते हैं, तो कहते हैं कि पर्याय में—अवस्था में धर्म होता है। वह धर्मी अपनी पर्याय में विकार है, ऐसा भी देखते हैं और त्रिकाली शुद्ध शान्त है, ऐसा भी देखते हैं। आहाहा! गजब धर्म! वीतराग का धर्म सूक्ष्म है। जगत को धर्म क्या चीज़ है (उसकी खबर नहीं)। धर्मी ऐसे अपने आत्मा को (देखते हैं)। पर की बात (नहीं), पर देखे, न देखे, वह तो परचीज़ है।

अपना आत्मा निजस्वरूप अनादि-अनन्त शान्त अकषाय वीतरागमूर्ति, धर्मी उसे देखते हैं, चैतन्यशक्ति का सत्त्व (और) पर्याय में राग देखते हैं। समझ में आया? साधक की बात चलती है न, साधक धर्मी की। **विभाव सकति परनतिसौं विकल दीसै,...** अपने स्वरूप से थोड़ा भ्रष्ट होकर पुण्य-पाप की परिणति जो है विभाव—

दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा आदि, वह सब विभाव राग है। ऐसे धर्मी अपनी पर्याय में राग को देखते हैं और त्रिकाल में अकषायस्वभाव देखते हैं। समझ में आया? सहज शान्ति है शान्ति। ऐसे विभाव अशान्ति है, स्वभाव शान्ति है। आहाहा! समझ में आया?

करम संजोगसौं कहावै गति जोनि वासी,... कर्म के निमित्त से देखे तो मनुष्यगति, यह मनुष्य योनि आदि उसमें है, ऐसा पर्याय में दिखता है। गति है, योनि है। है पर्याय में, ऐसा देखते हैं। **निहचै सुरूप सदा मुकत महंत है...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी (को) अन्तर देखने से... धर्म उसे होता है कि जिसे अपना आत्मा त्रिकालस्वरूप सदा मुक्त महन्त दिखता है। आहाहा! समझ में आया? परमेश्वर, **उसका निश्चय स्वरूप देखो तो कर्म बन्धन से मुक्त परमेश्वर ही है।** कब? अभी। यह आत्मा भगवान अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध ज्ञान और आनन्द त्रिकालीस्वरूप है। वस्तु देखे तो मुक्त है, सदा मुक्त है। वस्तु कोई बन्ध में या राग में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहते हैं? **कर्म संयोगसौं...** देखो तो गति-योनि है। हो पर्याय में। परन्तु निश्चयस्वरूप सदा मुक्त है। त्रिकाल कर्म और राग से मुक्त है। ऐसी दृष्टि करने से त्रिकाली आत्मा शुद्ध दिखता है। आहाहा! धर्मी की बात चलती है। जिसे आत्मा त्रिकाल शुद्ध अखण्ड मुक्त, ऐसी दृष्टि हुई नहीं तो उसे कभी धर्म होता ही नहीं। समझ में आया? बाहर की अकेली दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा, वह तो शुभ पुण्यभाव है। पाप से—अशुभ से बचने को ऐसी बात हो, परन्तु वह वस्तु धर्म नहीं है। आहाहा! क्योंकि ऐसी बात तो अनन्त बार की है। आहाहा! एक सेकेण्ड भी आत्मा त्रिकाल मुक्तस्वरूप है, ऐसी दृष्टि हुई तो सम्यग्दर्शन हुआ। समझ में आया? **निहचै सुरूप सदा मुकत महंत है।** परमेश्वर है। आहाहा! कैसे बैठे? मैं परमेश्वर हूँ। जो सिद्ध होते हैं तो सिद्ध की पर्याय कहाँ से आती है? बाहर से आती है? अन्दर में ऐसी अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं।

भगवान आत्मा अविनाशी आदि-अन्तरहित चीज़ नित्यानन्द प्रभु... आहाहा! अरे! कभी उसने अपने नित्यानन्द स्वभाव पर दृष्टि दी नहीं और उस पर दृष्टि दिये बिना वास्तविक विभाव क्या है, उसका भी ज्ञान यथार्थ हुआ नहीं। समझ में आया? यहाँ तो लक्ष्य में ऐसा आया कि निश्चयस्वरूप मुक्त आत्मा ऐसा जब ज्ञान और भान हुआ, तब

पर्याय में कर्म के निमित्त से योनि, गतिरूप भाव है, ऐसा ज्ञान करते हैं। सुजानमलजी! कठिन काम परन्तु ऐसा! ऐसा धर्म गजब!

मुमुक्षु : आनन्द की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द की बात है। आहाहा!

वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव तीर्थंकर परमात्मा की वाणी में धर्म का यह स्वरूप आया है। समझ में आया? कि धर्मी किसे कहे कि जिसकी दृष्टि में त्रिकाल बन्ध से रहित त्रिकाल मुक्तस्वरूप है, ऐसी दृष्टि हुई है। तब ऐसी दृष्टि में ज्ञान जो हुआ, वह ज्ञान त्रिकाल को भी जानता है और वर्तमान में गति में (मैं) हूँ, विभाव है, ऐसा जानता है। आहाहा! **निहचै सुरूप सदा मुकत महंत...** मुक्त परमेश्वर है। त्रिकाल वस्तु जो है वस्तु, एक समय की पर्याय की स्थिति के बिना वह तो त्रिकाल साक्षात् परमेश्वर है। समझ में आया? ऐसी धर्मी की दृष्टि हो जाती है और ऐसी दृष्टि बिना उसे धर्म कभी होता नहीं। उसे विभाव का ज्ञान भी यथार्थ नहीं होता है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार का राग आता है और मनुष्यगति में है, ऐसा ज्ञान भी, त्रिकाल मुक्तस्वरूप मैं हूँ, ऐसे अनुभव बिना पर्याय का विभाव और गति का यथार्थ ज्ञान होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन!

ज्ञायक सुभाउ धरै लोकालोक परगासी... जानने-देखने का उसका स्वभाव है। जानन-देखन ऐसा स्वभाव है। उस स्वभाव से लोकालोक को जानते हैं-देखते हैं। अपनी सत्ता में रहकर, अपने ज्ञान-दर्शन में रहकर पर को देखते हैं, ऐसा कहना, यह एक व्यवहार है। समझ में आया? निश्चय में यथार्थ सत्य में अपने स्वभाव में ही अपनी पर्याय में जो लोकालोक जानते हैं, उस पर्याय का अस्तित्व अपने में है। लोकालोक को व्यापकरूप (होकर) जानते नहीं। क्या कहा? आहाहा! अनन्त काल अनन्त अनन्त काल बीता। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का साधु अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। परन्तु यह आत्मा चीज़ क्या है अन्दर, उसका अनुभव और सम्यग्दर्शन बिना एक भव भी उसका कटा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जिसमें भव नहीं, भव का भाव नहीं, ऐसी चीज़... सुबह आया था न आज। कल? भव का परिचय... भव तो उसकी एक समय की पर्याय में राग आदि दिखते हैं। पर्याय—अवस्था। त्रिकाल चीज़ में भव का परिचय है नहीं। अखण्ड त्रिकाल में भव है नहीं। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाल में भव हो तब तो विकारी हो गया अन्दर। त्रिकाली चीज़ जो है, यह तो त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द है। उसमें भव तो नहीं परन्तु भव का कारणरूप विकल्प और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी उसमें नहीं। समझ में आया? ऐसा ज्ञायकस्वभाव, वह तो जानन-देखन स्वभाव की सत्ता रखनेवाला आत्मा है। ऐसे देखने से व्यवहार से लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहने में आता है।

सत्ता परवांन सत्ता परगासवंत है। परन्तु ऐसा होने पर भी अपनी सत्ता में रहता है। लोकालोक की सत्ता में आत्मा जानने-देखने जाता नहीं। अरे, अरे! भारी महँगा धर्म! समझ में आया? भगवान आत्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा आत्मा, वह आत्मा अपनी ज्ञायक सत्ता में रहता है। ज्ञायक (स्वभाव) से लोकालोक जाने, ऐसा कहने में आता है, परन्तु अपनी सत्ता छोड़कर लोकालोक में व्यापता नहीं। समझ में आया? आहाहा! आत्मा क्या चीज़ है, उसे जानने की दरकार की नहीं। समझ में आया? ऐसी क्रिया—दया-व्रत-तप, यह सब विकल्प—राग है। ऐसा कर-करके मर गया अनन्त काल में, परन्तु आत्मा का पता आया नहीं। आत्मा का पता आये बिना समकितदर्शन होता नहीं। **ज्ञायक सुभाउ धरै लोकालोक परगासी,...** ऐसे देखो तो लोकालोक को जानते हैं। परन्तु लोकालोक को जानते हैं, वह तो अपेक्षा से कहा। बाकी सत्ता प्रमाण.... **सत्ता परवांन सत्ता परगासवंत है।** अपनी सत्ता में प्रकाशमान सत्ता वहाँ रही है। यह प्रकाशसत्ता कहीं पर में गयी है, ऐसा नहीं है। मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : स्व में रहकर जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व में रहकर पर को जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। अपने को अपने में रहकर अपनी सत्ता प्रमाण को जानते हैं। समझ में आया? धर्म सूक्ष्म है। समझ में आया? उसने पुण्यक्रिया की। पुण्य, दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा-तप, यह सब पुण्य है। नौ तत्त्व में पुण्यतत्त्व तो भिन्न है। आत्मा भिन्न है। आत्मा का भान

करके संवर-निर्जरा हो, वह भी भिन्न तत्त्व है। आहाहा! तत्त्व की खबर नहीं, ऐसा का ऐसा जन्म गँवावे। समझ में आया? साधु होकर भी.... आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु का अनुभव में आनन्द आना चाहिए। ऐसी चीज़ के भान बिना आत्मा पर को प्रकाशित करे, ऐसा कहना, यह व्यवहार भी उसे लागू नहीं होता। समझ में आया?

वीतरागमार्ग सारी दुनिया से भिन्न है। तीर्थंकर का पंथ—सर्वज्ञ का पंथ सारी दुनिया से भिन्न है। जैन में जन्मे उसे भी खबर नहीं अभी कि क्या चीज़ है आत्मा। भगवान क्या कहते हैं और आत्मा किसे कहना? समझ में आया? धर्म करनेवाला जिसे धर्म करना है तो करनेवाला आत्मा कैसा है? समझ में आया? ऐसी खबर बिना धर्म किसमें होता है? पण्डितजी!

मुमुक्षु : बड़े-बड़े पण्डित नहीं समझते।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? ऐसे के ऐसे बेचारे जीवन चौरासी के अवतार कर-करके भटक मरे अनन्त काल। कोई शुभभाव किया, पुण्य बाँधा, (हुआ) बन्धन और माना कि हमें धर्म होता है। मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। वह जैन नहीं। समझ में आया?

जैन तो इसे कहते हैं, जिसके अपने स्वभाव में परिपूर्णता पड़ी है। उसके आश्रय से मिथ्यात्व का नाश होकर समकित की उत्पत्ति हो, तब जैनदशा उत्पन्न होती है, तब जैन कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! गजब! नाम लिखे... थैली (को) क्या कहते हैं तुम्हारे? थैली है न ऊपर....?

मुमुक्षु : चिरायता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। थैली। चिरायता तो बाद में। वह तो अन्दर माल की बात है।

मुमुक्षु : कोथला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोथला के ऊपर लिखे शक्कर और अन्दर है काली जीरी। अन्दर है अफीम, ऊपर लिखे कि शक्कर है। इसी प्रकार यह लिखे कि हम जैन हैं, हम श्रावक हैं। यह तो नाम दिया। वस्तु क्या है यह तो खबर नहीं। समझ में आया?

चैतन्यरत्न भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, राग और विकल्प से रहित ऐसी प्रतीति अनुभव में आये बिना जैन हो सकता ही नहीं।

मुमुक्षु : नाम (धारी) जैन।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम कहा शक्कर लिखा और थैली में चिरायता। थैली... थैली क्या है तुम्हारे?

मुमुक्षु : बोरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोरी तो बड़ी होती है। कोथली, कोथली।... क्या कहते हैं? कोथली, लो न। उसमें भरा है चिरायता (और) ऊपर लिखे शक्कर, तो क्या चिरायता मीठा हो जाता है? उसी प्रकार हम जैन हैं और हम तीर्थंकर को मानते हैं, ऐसा नाम लो। परन्तु अन्दर आत्मा क्या चीज़ है, उसका तो भान नहीं। समझ में आया?

शक्कररूप तो हुआ नहीं। भगवान आत्मा शक्कर—आनन्दरूप है। अतीन्द्रिय आनन्दरूप है। उस अतीन्द्रिय आनन्द के साथ में ज्ञायकभाव लोकालोक को जाने, ऐसा कहने में आता है। परन्तु है तो अपनी सत्ता में। समझ में आया? जाननस्वभाव और आनन्दस्वभाव अपनी सत्ता अपने अपने में है। वह कोई बाहर (जाकर) जानता है, ऐसा है नहीं। ऐसी चीज़ की स्व अस्ति, अपनी सत्ता की अस्ति ऐसी है। ऐसी दृष्टि है नहीं, अन्तर्मुख दृष्टि हुई नहीं और पर्याय में राग आदि की मन्दता करने से धर्म हो, ऐसा कभी होता नहीं। समझ में आया?

सत्ता परवांन सत्ता परगासवंत है। यह सत्ता प्रमाण कहा न! नीचे है। **यदि इसके अस्तित्व पर ध्यान दो तो निज क्षेत्रावगाह प्रमाण ज्ञान का पिण्ड है।** निजक्षेत्र—अपने क्षेत्र में आत्मा है, पर के क्षेत्र में नहीं। लोकालोक को यहाँ रहते हुए जानता है। जानता होने पर भी अपनी सत्ता अपने क्षेत्रप्रमाण से है। पर का क्षेत्र जानता है, इसलिए परक्षेत्र में चला जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा सब गजब! ऐसा समझे बिना करने लगे चार गति नाश। चार गति नाश करते हैं, ऐसा माने। हमारे भवभ्रमण मिटेगा और मुक्त होऊँगा। चार गति में भटकेगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हीरा-माणेक में कितनी दरकार की है? है या नहीं? वहाँ जवाहरात में ऐसा और नामा और फलाना। जिसमें जिसकी रुचि, उसमें वह वीर्य प्रस्फुटित किये बिना रहता नहीं। जिसमें जिसकी रुचि, उसमें पुरुषार्थ किये बिना रहता नहीं। पुण्य-पाप और बाह्य की रुचि है तो उसका पुरुषार्थ करते हैं। अपना आत्मा चीज़ क्या है? सच्चिदानन्द प्रभु सहजानन्द की मूर्ति अकेला ज्ञान का पुंज, ऐसी चीज़ की रुचि नहीं तो उसका प्रयत्न भी नहीं करते। समझ में आया?

सो है जीव जानत जहान कौतुक महान,... ऐसा। **ऐसा जीव जगत का ज्ञाता है, उसकी लीला विशाल है।** कहते हैं कि **जाकी कीरति...** आहाहा! भगवान आत्मा की कीर्ति कहा है न, यह कहते हैं। कहाँ नहीं है? 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है या नहीं? '**चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ**' बनारसीदास, नाटक समयसार में है। बनारसीदास ने बनाया, उसमें यह बात है पहली।

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।

मैं तो सिद्धस्वरूपी त्रिकाल हूँ। समझ में आया?

मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ॥
ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग, वेगि मिटै घटवास बसेरौ॥

सम्यग्ज्ञान की कला मुझे प्रगट हुई है। बनारसीदास अपनी साक्षी करके बोलते हैं। समझ में आया? **ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ। जासु प्रसाद सधै सिवमारग,...** शिव अर्थात् मोक्ष का मार्ग। **वेगि मिटै घटवास बसेरौ।**

इस शरीर में माँस, हड्डियाँ, चमड़ा में रहना कलंक है। अमृत का सागर, वह इन हड्डियों और माँस में रहे? आहाहा! प्रभु आत्मा अमृत का सागर है। सुना ही नहीं। अमृत का सागर कहाँ आया? कहे।

मुमुक्षु : वास्तव में नहीं सुना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सुना। आहाहा! धर्म करो... धर्म करो। परन्तु क्या करे? किसमें करे? किससे हो? किसमें हो? और हो तो क्या होता है? खबर कुछ होती

नहीं। समझ में आया? यहाँ तो धर्म करनेवाले को अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा, ऐसी दृष्टि होने से पर्याय—दशा में आनन्द होता है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसका नाम धर्म है। आहाहा! मूलचन्दभाई! वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव इन्द्र और गणधरों के समक्ष ऐसी उनकी दिव्यध्वनि आती थी। समझ में आया?

कहते हैं, **जानत जहान कौतुक महान....** आहाहा! यह तो नित्य जगत का ज्ञाता है। उसकी लीला (अर्थात्) कौतुक है न, महान है। भगवान चैतन्यचमत्कार की लीला महान है। तीन काल-तीन लोक को जाने, फिर भी पर में प्रवेश न करे और अपने में जाने। आहाहा! और अपना ज्ञान हुआ तो अतीन्द्रिय आनन्द आया, ऐसा महान कौतुक है, कहते हैं। आहाहा! अपने से आनन्द आया, पर से आनन्द है नहीं। कुछ भी आनन्द पर में मानना, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, मूढ़ है। जैन नहीं। समझ में आया? आहाहा! परमेश्वर तेरा स्वरूप परमेश्वरपना कहते हैं। समझ में आया? तो परमेश्वरता किसकी? अपना ज्ञान-दर्शन-आनन्द, इसकी ईश्वरता उसमें है। कोई राग और पर का स्वामी है, ऐसा है नहीं।

जानत जहान कौतुक महान.... आहाहा! चैतन्य चमत्कार का कौतुक—विस्मयता उसकी लीला विशाल है। आहाहा! समझ में आया? **जाकी कीरति कहां न....** है न, ऐसा कहते हैं। नीचे पाठ किया है। कहा न इसलिए (कहाँ नहीं)। **जाकी कीरति कहां न अनादि अनंत है....** अनादि-अनन्त है वह तो। आदि नहीं, अन्त नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, कहते हैं कि इसकी कीर्ति कहाँ नहीं! तीन लोक में उसकी कीर्ति है। समझ में आया? सप्तम नरक में रहा नारकी, अपना आनन्द अन्दर वेदता है सम्यग्दृष्टि। कीर्ति कहाँ नहीं है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सप्तम नरक में हो या स्वर्ग में हो, व्यन्तर-भवनपति में हो। अरे, उसकी स्त्री में हो, आहाहा! शरीर। परन्तु अपनी कीर्ति कहाँ नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपने आनन्दस्वरूप की प्रतीति—अनुभव करे तो उस स्थिति में आनन्द आता है। उसकी कीर्ति विशाल है। आहाहा! जहाँ नरक में इतनी पीड़ा। समझ में आया? आया था न, '**भवोपहतिरेकतः चिच्चकारस्त्येकतः**' है न उसमें? '**भवोपहति**'—भव की पीड़ा दिखती है पर्याय में। एक ओर देखो तो भव की पीड़ा राग दिखता है। पर्याय में, हों! वस्तु में तो कुछ है नहीं। आहाहा!

'**स्पृशति मुक्तिरप्येकतः**' आत्मा देखो तो अकेला मुक्तस्वभाव सम्यग्दृष्टि को दिखता है। आहाहा! समझ में आया? कभी? त्रिकाल। मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा निराली चीज़ है। राग और कर्म से निराली चीज़ को आत्मा कहते हैं। वह तो मुक्तस्वरूप परमात्मा है। ऐसी दृष्टि में मुक्तस्वरूप जब आता है, तब उसकी पर्याय में धर्म और आनन्द होता है। धर्म कहो या आनन्द कहो। क्योंकि आनन्द उसका धर्म है, वह पर्याय में आता है। आहाहा! यह तो सब निश्चय की बातें हैं, कहते हैं। परन्तु व्यवहार? अरे! सुन तो सही! निश्चय अर्थात् यथार्थ सत्य; व्यवहार अर्थात् झूठी कथनशैली। समझ में आया?

अनन्त बार दिगम्बर साधु होकर नौवें ग्रैवेयक गया। दृष्टि मिथ्या कर अपने आनन्द का अनुभव किये बिना ऐसी क्रिया से नौवें ग्रैवेयक तो चला गया। वह दुःख था। 'लेश न सुख' आया न? 'आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' तो उसका अर्थ क्या हुआ? कि नौवें ग्रैवेयक गये, पंच महाव्रत पालन किये, २८ मूलगुण पालन किये। तो कहते हैं कि लेश सुख नहीं पाया। तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत और २८ मूलगुण का राग, वह तो दुःख है। आहाहा! गजब बात है। वीतराग का मार्ग तीर्थंकर का मार्ग सुना नहीं। ऐसे के ऐसे गधा मजदूरी करके जिन्दगी चली जाती है। अमृत का स्वरूप क्या है, उसकी खबर नहीं। आहाहा!

उसमें आया या नहीं वह नौवें ग्रैवेयक? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' तो नौवें ग्रैवेयक तक जाये कौन? मुनि नग्न दिगम्बर। २८ मूलगुण पालन करे और चमड़ी उतारकर नमक छिड़के (तो भी) क्रोध न करे, ऐसी क्रिया हो, परन्तु आत्मा अन्दर आनन्दमूर्ति का दर्शन नहीं, उसका भान नहीं तो वह दुःखी है, ऐसा कहते हैं। 'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? पंच महाव्रत राग आदि की क्रिया, वह सुख नहीं, वह तो राग है, दुःख है। बराबर है? आहाहा! अरे! यह तो ऐसा माने कि हमने धर्म किया। यहाँ तो कहा कि नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। फिर भी आत्मा का सुख का अंश भी आया नहीं। तो उसका अर्थ हुआ कि सब दुःख था। आहाहा! भारी कठिन काम जगत को। तीर्थंकर का पंथ मिलना, सुनने को मिलना कठिन हो गया। आहाहा! सुनने में भी दूसरी चीज़ मिलती है। क्या कहा?

मुमुक्षु : स्पष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट। आहाहा!

कहते हैं कि जिसमें आत्मा का आनन्द नहीं, वह सब परिणाम दुःखरूप है। समझ में आया? 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' अब थोड़ा तो भाई, पंच महाव्रत, २८ मूलगुण पालन किये, थोड़ा-थोड़ा सा सुख होगा या नहीं? थोड़ी शान्ति है? यहाँ तो इनकार किया। वह तो विभाव परिणति है। शान्ति यहाँ कहाँ थी? आहाहा! वहाँ शान्ति कहाँ? वह राग है। पर की दया, भगवान की पूजा, भक्ति, यात्रा, वह तो शुभ राग है, पुण्य है। पाप से बचने को यह आता है, परन्तु है तो राग। ऐसी क्रिया अनन्त बार की तो आनन्द आया? नहीं। तो उसका अर्थ हो गया कि वह स्वयं दुःख है। अभी दुःख तत्त्व और आनन्दतत्त्व की खबर नहीं होती। आहाहा! जो दुःखतत्त्व है उसे धर्मतत्त्व मानते हैं, संवरतत्त्व मानते हैं। समझ में आया? राग की वृत्ति उठती है, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ—वह तो दुःख है। भगवान आत्मा तो आनन्दस्वरूप है।

तो कहते हैं, **जाकी कीरति कहां न,...** आहाहा! सप्तम नरक में संयोगी प्रतिकूलता अनन्त, तो भी आत्मा की कीर्ति वहाँ प्रगट होती है। समझ में आया? कीर्ति कहाँ नहीं है? अनादिकाल से चली आती है कीर्ति तो। समझ में आया? ऐसे आत्मा के गुण की शक्तियाँ उसका वर्णन और शक्ति का प्रगट अनुभव, अनादि से आत्मा में चला आता है धर्मी जीव में। अज्ञानी को अपने आत्मा की कीर्ति प्रगट नहीं होती। खबर नहीं है, कीर्ति क्या है, आत्मा क्या है। आत्मा-आत्मा क्या करना? कुछ करो न! क्या करो? राग करे राग। समझ में आया? आहाहा!

जाकी किरति कहां न अनादि अनंत है। ओहो! सिद्ध प्रसिद्ध, आता है न? प्रसिद्ध है सिद्ध तो। यह आत्मा की कीर्ति अनादि अनन्त प्रसिद्ध है। अनन्त सन्तों ने गायी है, अनन्त सन्तों ने प्रगट की है और अनन्त सन्त प्रगट करेंगे। आहाहा! पुण्य-पाप की कीर्ति को यहाँ कीर्ति नहीं कहा जाता है। समझ में आया? शुभभाव से स्वर्ग मिले या अशुभ से नरक—दोनों ही भाव की कीर्ति कुछ नहीं। वह तो निन्दा करनेयोग्य है। आहाहा! व्यसनी हो गया है। आहाहा! व्यसन का अर्थ ही दुःख है। व्यसन का अर्थ

दु:ख है। व्यसन अर्थात् दु:ख। व्यसन अर्थात् दु:ख। पुण्य-पाप की क्रिया शुभाशुभभाव, वह व्यसन है, दु:ख है। भगवान दु:ख से रहित अतीन्द्रिय आनन्दमय है। समझ में आया? क्या भगवान? यह (स्वयं) भगवान हों! भगवान हो गये, वे हो गये उनके। आहाहा!

'**स्वभावमहिमात्मनो विजयते**' ऐसा है न? इसका अर्थ किया न! '**विजयते**' अर्थात् कीर्ति। '**स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः**' चौथा पद है कलश में। ऐसे स्वभाव की महिमा, आहाहा! '**चिच्चकास्त्ये**'। यहाँ तो भगवान एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द की महिमावन्त प्रभु है। जिसमें अनन्त शान्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता है—ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु आत्मा है। ऐसी कीर्ति कहाँ नहीं है? उसकी विजय कहाँ नहीं है? ऐसा कहते हैं। विजय का अर्थ किया न, यशकीर्ति। देखो, उसकी विजय सब जगह है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पुण्य-पाप का फल और पुण्य-पाप की विजय अनादि से चली आयी है। वह विजय नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**विजयतेऽद्भुतादद्भुतः**' भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु ज्ञान की गाँठ—ज्ञान की डली, ऐसी चीज़ की कीर्ति कहाँ नहीं है और कहाँ उसकी विजय नहीं है? नरक में हो तो भी उसकी—सम्यग्दृष्टि की विजय है। आहाहा! समझ में आया? '**स्वभावमहिमात्मनो विजयते**'

भगवान आत्मा पूर्णस्वभाव पूर्ण स्व-भाव अपना, पुण्य-पाप के राग से रहित त्रिकाल स्वभाव की विजय कहाँ नहीं है? उसकी विजय कहाँ नहीं है? किस क्षेत्र में नहीं है? किस काल में नहीं है? किस भाव में नहीं है? ऐसा कहते हैं। उसकी ही विजय है। समझ में आया? '**अद्भुतादद्भुतः**' अपने से प्रत्यक्ष जाननेयोग्य चीज़ की महिमा सदा त्रिकाल अद्भुत है। आहाहा! जिसे विकल्प—शुभराग या शुभउपयोग की भी आवश्यकता नहीं। निमित्त की आवश्यकता नहीं, शुभराग की आवश्यकता नहीं। एक पर्याय का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं। आहाहा! अद्भुत! ऐसी अद्भुत विजयकीर्ति भगवान की हो रही है, कहते हैं। जड़ की कीर्ति और जड़ की विजय कभी हुई नहीं। अज्ञानी ने माना, परन्तु उसकी विजय हुई नहीं। समझ में आया? ११वें श्लोक का अर्थ हुआ, लो।

ओहो! अनादि-अनन्त। अनन्त काल से सम्यग्दर्शन प्रगट करनेवाले जीव हैं ही। पशु में (भी) हैं। तिर्यंच पशु में असंख्य समकिती हैं। आहाहा! किस गति में उसकी विजय नहीं? ऐसा कहते हैं। पशु में असंख्य तिर्यंच स्वयंभूरमण समुद्र में पड़े हैं। आतमज्ञानी पशु। हजार-हजार योजन के लम्बे शरीर। स्वयंभूरमण समुद्र। उसमें आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, ऐसा अनुभव करते हैं। तिर्यंच में भी आत्मा की विजय है, ऐसा कहते हैं। गति की—राग की विजय नहीं। समझ में आया? आहाहा! गरीब अवस्था हो, बाहर में निर्धन हो, रोगी हो। शरीर में १६ रोग हैं। लो, नहीं नारकी में तो। परन्तु कहते हैं कि वहाँ आत्मा की विजय है। समझ में आया? आत्मा का भान किया कि यह आत्मा। मैं अनादि-अनन्त आनन्द की मूर्ति हूँ। ऐसी कीर्ति प्रसिद्ध की तो उसकी ही जय है वहाँ। समझ में आया? आहाहा! नरक में भी आत्मा की विजय है। पशु में है, मनुष्य में है, देव में भी है। शकेन्द्र की रानी शचि इन्द्राणी यहाँ से मिथ्यात्व लेकर गयी थी स्वर्ग में। स्त्री का अवतार तो मिथ्यात्व में मिले। समकित में स्त्री का अवतार नहीं मिलता। मिथ्यात्व (लेकर) गयी परन्तु वहाँ कीर्ति जगी आत्मा की। समझ में आया? कहाँ नहीं तेरी कीर्ति? तेरी महिमा कहाँ छुपी है? आहाहा! तेरी महिमा तो प्रगट प्रत्यक्ष सामने है। समझ में आया? कहाँ नहीं तेरी कीर्ति, कहाँ नहीं तेरी प्रसिद्धि, कहाँ नहीं तेरी श्लाघा? तेरी श्लाघा कहाँ नहीं है? सब गति में और अनादि-अनन्त चली आती है कीर्ति। आहाहा! समझ में आया?

मनुष्यपने में भान होता है। चारित्र भी मनुष्यपने में ही होता है। तीन गति में नहीं होता। क्या है वह चारित्र? समझ में आया? यहाँ तो प्रथम वस्तु कैसी है, ऐसे स्वभाव की महिमा की बात पहले चलती है। ऐसा सम्यग्दर्शन तो चारों ही गतियों में उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-फारित्र होता नहीं। अकेले व्रत पाले, वह चारित्र है नहीं। समझ में आया? आत्मा अनुभव में आया महिमावन्त प्रभु। जिसकी एक समय की दृष्टि में '**अदभुतादद्भुतं**' आत्मा अनुभव में आता है, बाद में स्वरूप में लीनता आनन्द में (लीनता) करते हैं, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? ऐसी '**स्वभावमहिमात्मनो विजयते**'—विजय है। आहाहा! यह विजय '**अदभुतादद्भुतं**' है, लो।

अब १२वाँ कलश। ऐसा साध्यस्वरूप का भान हुआ तो साध्य क्या प्राप्त हुआ, यह कहते हैं। साधक में अपना आनन्दस्वरूप सम्यग्दर्शन में प्रगट हुआ और बाद में स्वरूप में लीनता करते आनन्दमय रहते हैं, वह चारित्र है। तो उससे साध्य जो सिद्धपद या केवलज्ञान प्रगट होता है। साधक से साध्यपद होता है। वह साध्यपद कैसा है, यह बात करते हैं। **साध्यस्वरूप केवलज्ञान का वर्णन।** आहाहा! ऐसा अन्तर भगवान आत्मा अमृत का सागर प्रभु अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत। ऐसी चीज़ का अनुभव हुआ, उसकी महिमा दृष्टि में आयी, स्वरूप में स्थिरता करके साधकपने से सिद्ध—साध्यपद प्रगट किया। वह साध्य क्या है, उसका वर्णन करते हैं। समझ में आया? कलश १२।

जयति सहजतेज:पुञ्जमज्जत्त्रिलोकी–
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूप:।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भ:,
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एष:।।१२।।

आहा! **एष:** (अर्थात्) यह। क्या कहते हैं? यह साध्य-साधक द्वार है। पहले साधकभाव प्रगट किया। अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति मैं हूँ, ऐसा अनुभव राग से पृथक् होकर अपनी परिपूर्णता का अनुभव करके, प्रतीति करके स्थिरता की, उसका नाम साधक। उसका फलरूप से—साध्य केवलज्ञान। उसका फल—साध्य केवलज्ञान। समझ में आया? बीच में राग आदि आता है, उसका फल केवलज्ञान नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ५१

साध्यस्वरूप केवलज्ञान का वर्णन (सवैया इकतीसा)

पंच परकार ग्यानावरनकौ नास करि,
प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है।
ज्ञायक प्रभामैं नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि,
अनेक भई पै एकताके रस पगी है।।
याही भांति रहेगी अनंत काल परजंत,
अनंत सकति फोरि अनंतसौं लगी है।
नरदेह देवलमैं केवल सरूप सुद्ध,
ऐसी ग्यानज्योतिकी सिखा समाधि जगी है।।५१।।

शब्दार्थ:–फोरि=स्फुरित करके। देवल=मन्दिर। सिखा (शिखा)=लौ। समाधि= अनुभव।

अर्थ:–जगत में जो ज्ञायक ज्योति पाँच प्रकार का ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट करके चमकती हुई प्रगट हुई है और अनेक प्रकार ज्ञेयाकार परिणमन करने पर भी जो एकरूप हो रही है, वह ज्ञायक शक्ति इसी ही प्रकार अनन्त काल तक रहेगी और अनन्त वीर्य को स्फुरित करके अक्षय पद प्राप्त करेगी। वह शुद्ध केवलज्ञानरूप प्रभा मनुष्य देहरूप मन्दिर में परम शान्तिमय प्रगट हुई है।।५१।।

काव्य-५१ पर प्रवचन

पंच परकार ग्यानावरनकौ नास करि,
प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है।
ज्ञायक प्रभामैं नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि,
अनेक भई पै एकताके रस पगी है॥
याही भांति रहेगी अनंत काल परजंत,
अनंत सकति फोरि अनंतसौं लगी है।

नरदेह देवलमैं केवल सरूप सुद्ध,
ऐसी ग्यानज्योतिकी सिखा समाधि जगी है॥५१॥

यहाँ तो नरदेह में ही केवलज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं।

बनारसीदास का पद है। पहले बनारसीदास व्यभिचारी थे। पश्चात् आत्मभान हुआ तो बाद में यह समयसार नाटक बनाया। सुगम राजमल्ल टीका, उसमें से लिया।

कहते हैं कि **जगत में जो ज्ञायक ज्योति पाँच प्रकार का ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट करके चमकती हुई प्रगट हुई है।** आहाहा! यह साधक की बात ही अलग है। और क्या आया साधकपने में? ऐसा कहते हैं। कि केवलज्ञान हुआ। अन्तर में आनन्दस्वरूप का अनुभव करते-करते उसके परिणामरूप—फलरूप केवलज्ञान (हुआ)। कैसा? **पंच परकार ग्यानावरनकौ नास करि,...** केवलज्ञान प्रगट हुआ। ओहो! जिसमें तीन काल-तीन लोक जानने की अपनी परिणति—पूर्ण ज्ञान की दशा प्रगट हुई। समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञान किसे कहते हैं, उसका विवाद है अभी तो। केवलज्ञान उसे जाने, उसे नहीं जाने। आहाहा!

ज्ञानस्वभाव त्रिकाल का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन साधकभाव हुआ। 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः... सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।' अन्दर में से तीनों की दशा प्रगट हुई, उसका फल केवलज्ञान पूर्ण तीन काल-तीन लोक जाने। भगवान किसे न जाने? **...ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट करके चमकती हुई प्रगट हुई है।** चमकता तेज। सूर्य का तेज है, वह तो जड़ का तेज है। वह चैतन्य के प्रकाश का नूर। चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर। केवलज्ञान, वह चैतन्य के साधक के स्वभाव का फल। यह तो वहाँ केवलज्ञान है, जाओ। परन्तु है क्या? नहीं साधक की खबर और साधक के फलरूप से निश्चय मोक्षमार्ग में साधकरूप से फल तो सिद्ध केवलज्ञान है। समझ में आया?

ज्ञायक ज्योति पाँच प्रकार का ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट करके चमकती हुई प्रगट हुई है। सूर्य उगे तो वापस अस्त होता है। यह चमकती प्रगट हुई, उसका नाश कभी होता नहीं। ऐसी अविचलज्योति केवलज्ञान, अपना मोक्षमार्ग जो शुद्ध आत्मा के आश्रय

से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के फलरूप हुआ, वह केवलज्ञान कभी नाश नहीं होता। उसे फिर से अवतार धारण नहीं करना पड़ता। आहाहा! चमकती हुई प्रगट हुई है। **प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है... अनेक प्रकार ज्ञेयाकार परिणमन करने पर भी जो एकरूप हो रही है।** पीछे है। **प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है।** आहाहा! प्रगटी, अन्दर में थी, वह प्रगट हुई। समझ में आया?

ज्ञायक प्रभामैं नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि.... अनेक प्रकार ज्ञेयाकार परिणमन करने पर भी, लोकालोक ज्ञेय है, उसे जानने पर भी एकरूप रही है। अनन्त को जानने पर भी अनन्त खण्ड नहीं हुए, ऐसा कहते हैं। गजब मार्ग ऐसा! .... यह तो निश्चय है निश्चय। परन्तु निश्चय, वही सत्य है। परन्तु अपने करना है न व्यवहार को? क्या व्यवहार करे, सुन न! व्यवहार बीच में आता अवश्य है, परन्तु उससे कोई केवलज्ञान हो, यह नहीं। निश्चय साधकपने से केवलज्ञान होता है। समझ में आया?

अनेक भई पै एकताके रस पगी है। केवलज्ञान साध्य में एक समय में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त केवली आदि, अनन्त निगोद, अनन्त परमाणु आदि सबको जाने। एक समय की पर्याय में अनन्त को जाने फिर भी अनन्त खण्ड नहीं हुए। एकरूप पर्याय रही है। आहाहा! समझ में आया? **अनेक भई पै एकताके रस...** अकेला रस। ऐसे पड़ी है। एकरूप दशा। केवलज्ञान अभिन्न एक समय की पर्याय में एकरूपता है। अनन्त का जानते हुए भी एक पर्याय के अनन्त खण्ड नहीं हुए। आहाहा! केवल, देखो न अभी तो केवलज्ञान समझना इसे कठिन। एक समय का स्वभाव केवलज्ञान अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त क्षेत्र, अनन्त... अनन्त काल, अनन्त द्रव्य, अनन्त भाव—इतने अपार को जाने, फिर भी एकरूप रहा है। एकरूप (पर्याय) रही है। है न? उसमें लिखा है। आहाहा! एकरूप हो रही है। एक मिटके दो हुई नहीं। ऐसी केवलज्ञान की परिणति का स्वभाव अनन्त को जानने पर एकरूप रही है। समझ में आया? विशेष बाद में।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७६, आसोज शुक्ल ११, शुक्रवार, दिनांक ०१-१०-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ५१ से ५४

साध्य और उसका साधक। आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्य ध्रुव नित्यानन्द के ओर की एकाग्रता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—उस शुद्ध स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, वह साधक, मोक्ष के कारणरूप वह दशा। भगवान परमात्म होने को तीर्थंकर परमेश्वर ने केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् जो परमात्मा की वाणी निकली, तो वह केवलज्ञान अर्थात् परमात्मदशा—अरिहन्तदशा—सिद्धदशा सब एक ही है। वह प्राप्ति, वह साध्य है। जीव का कर्तव्य धर्म का वह है। और उसके कारणरूप से साधकभाव... यह आया है, देखो। **साध्य स्वरूप केवलज्ञान का वर्णन।** है न ५१, ५१। ५१ पद है। ३६१ पृष्ठ। ३६१। ३६१ पृष्ठ। ५१ पद है। है हिन्दी।

पंच परकार ग्यानावरनकौ नास करि,
प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है।
ज्ञायक प्रभामैं नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि,
अनेक भई पै एकताके रस पगी है॥
याही भांति रहेगी अनंत काल परजंत,
अनंत सकति फोरि अनंतसौं लगी है।
नरदेह देवलमैं केवल सरूप सुद्ध,
ऐसी ग्यानज्योतिकी सिखा समाधि जगी है॥५१॥

अब इसका अर्थ। यह तो पद हुआ कि यह आत्मा... यह देह है, वह मिट्टी का पिण्ड है पूरी देह। वह तो जड़-पुद्गल है। उसमें भगवान आत्मा चैतन्य आनन्द देहमन्दिर में चैतन्यस्वरूप विराजमान हैं। वह तो अरूपी आत्मा है। अनन्त आनन्द-ज्ञान-दर्शन की शक्ति का भण्डार है। आहाहा! समझ में आया? देहदेवल में केवल शुद्धस्वरूप। शरीर, वाणी, मन वह तो मिट्टी, जड़, अजीव, पुद्गल है। उससे भिन्न चीज़ है। उससे भिन्न परन्तु कर्म से भी भिन्न। क्योंकि कर्म जड़ है और यह तो भगवान आत्मा तो अरूपी है। इसलिए भिन्न परन्तु पुण्य-पाप के भाव (से भिन्न)। सूक्ष्म बात है, भाई!

तीर्थंकर का सहज मार्ग सूक्ष्म है। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का भाव, वह पुण्य है। हिंसा-झूठ-चोरी-विषयभोग का भाव, वह पाप है। पुण्य और पाप के भाव से आत्मा भिन्न है। समझ में आया? ऐसा जो आत्मतत्त्व, नरदेह—यह मनुष्य की मिट्टी की हड्डियों की देह, उसमें—देवल में (विराजमान है)। अन्तिम लाईन है।

नरदेह देवलमैं केवल सरूप सुद्ध... यह तो शुद्ध सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप है। जो कोई अरिहन्त और सिद्ध हुए, वह सब अन्दर शक्ति पड़ी थी, उसमें से प्रगट हुई है, कहीं बाहर से आती नहीं। आहाहा! समझ में आया? आगे तो कहेंगे कि क्रिया जो दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का भाव, वह क्रिया है। आगे स्वयं कहेंगे। **क्रियासौं उदासी वह....** ऐसा कहेंगे। **सो तो मेरे क्रियाकी ममताहीकौ फल है।** यह आगे आयेगा ५५ में। **क्रियासौं उदासी वह....** ५५ में है। सूक्ष्म बात है, भगवान! यहाँ तो कहते हैं कि चैतन्यस्वरूप यह ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। उसमें दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम, वह भी राग के परिणाम हैं, पुण्य परिणाम हैं; वह धर्म नहीं। उस क्रिया से भी उदास है धर्मी। हो, परन्तु होने पर भी उससे उदास है कि मेरी चीज़ नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि **नरदेह देवलमैं केवल सरूप सुद्ध...** आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु **ऐसी ग्यानज्योतिकी सिखा समाधि जगी है।** अन्तिम पद है। अन्तिम शब्द है न ५१ में। किस प्रकार? अब कहते हैं, **पंच परकार ग्यानावरनकौ नास करि....** ज्ञानावरणीय की प्रकृति पाँच हैं। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल—यह पाँच प्रकृति जड़ है। परन्तु उसका लक्ष्य छोड़कर और चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द और शान्ति का स्वरूप है, ऐसा अन्तर अनुभव करके, दृष्टि करके स्थिर होने पर पाँच प्रकार की प्रकृति का नाश होता है। यह ज्ञानावरणीय का नाश होता है वहाँ। अन्तर आनन्द और ज्ञानस्वरूप चैतन्य की जगमग ज्योति से भरपूर तत्त्व आत्मा है। समझ में आया? ऐसे चैतन्यसूर्य में एकाग्र होकर, अनुभव करके, कि मैं तो पूर्ण आनन्द और शुद्ध हूँ—ऐसी सम्यक् दृष्टि प्रगट करके और पश्चात् स्वरूप में स्थिरता की रमणता का नाम चारित्र। यहाँ तो अभी चारित्र किसे कहना और सम्यग्दर्शन किसे (कहना), उसकी खबर नहीं होती। यह बाहर जो वस्त्र बदले, हो गया चारित्र। समझ में आया? बापू! यह तो मार्ग दूसरा है।

यह तो वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा 'केवलीपण्णंतो धम्मं

शरणं।' मांगलिक में आता है न मांगलिक। 'अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं।' यह तो 'केवलीपण्णंतो धम्मं मंगलं', सूक्ष्म बात है। भगवान तीर्थंकरदेव ने ऐसा कहा कि यह आत्मा जो आनन्द और ज्ञान स्वभाव है, उसके अन्तर में दृष्टि करके निर्विकल्प प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट कर। समझ में आया? पश्चात् यहाँ तो अन्तिम बात है न, स्थिरता। उसमें रमणता कर। ज्ञान में, स्वरूप शुद्ध है उसमें रमणता कर, उससे पंच प्रकार के (ज्ञानावरणीय का) नाश करके... पंच प्रकार ज्ञानावरणीय का नाश होता है। भीखाभाई! आहाहा!

यह तो सम्यक्त्व का भान नहीं होता, सम्यग्दर्शन किसे कहना और सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय क्या? भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा केवलज्ञान में देखा, सबके आत्मा, हों! आहाहा! वह तो परम पवित्र आनन्द का धाम आत्मा है अभी। उसके अन्तर में दृष्टि और स्थिरता करके साधकभाव प्रगट करके केवलज्ञान प्रगट होता है, उसे साध्य कहा जाता है, तब पाँच ज्ञानावरणीय प्रकृति का नाश होता है। समझ में आया?

यह कर्मदहन की पूजा चलती है न! अन्तरायकर्म की पूजा और कर्मदहन ....

मुमुक्षु : अन्तराय कर्म की पूजा करावे तो लाभ हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं होता। वह तो शुभभाव है।

मुमुक्षु : अन्तराय जाये तो पैसे के लाभ में ढ़ेर हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का ढ़ेर, उसमें आत्मा को (क्या)? ऐई! लोगों की दशा अनादि की मूढ़ है। वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ कहते हैं कि वह सब पूजा-बूजा सब शुभभाव है। पुण्य है। कर्म उससे नाश हों, वह बात उसमें है नहीं।

मुमुक्षु : अरे, कर्म नाश न हो तो कुछ नहीं। पैसा तो मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा धूल भी मिलता नहीं। उसके कारण से पैसे मिलें? वह तो पूर्व का पुण्य हो तो मिलता है। ऐसा होगा या नहीं?

इनका पुत्र कहाँ पूजा-बूजा करने गया था। यह तो ढुंढिया—स्थानकवासी थे। उसे दो करोड़ है, उसके पास। उसके पास (है उसकी) इनकार करते हैं रामजीभाई।

वह तो उसके पुत्र के पास, लो न! इनके पुत्र के पास दो करोड़ रुपये हैं अभी। इसलिए यह स्वयं कमाये नहीं, ऐसा। उसने कमाये, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह तो पूर्व का पुण्य था उसका, वह उसे दिखाव हुआ कहलाता है। उस पुण्य बिना कहीं प्रयत्न करने से मिलते होते तो बुद्धि बिना के बारदान को भी मिलते हैं। वह तो पूर्व का पुण्य हो तो आवे, दिखायी दे कि इसमें दो लाख-दस लाख-बीस लाख (आये)। उसमें आत्मा को क्या? समझ में आया? वह पर का लक्ष्य करे, वह तो दुःखी है। आहाहा! लक्ष्मी, यह शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार परवस्तु है और परवस्तु, वह जीव और अजीवतत्त्व भिन्न है। वह भिन्न तत्त्व मेरे, यह मान्यता ही मिथ्या और भ्रम है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! पैसा-पैसा की बात... परन्तु वह भगवान स्वयं ही अनन्त लक्ष्मी का भण्डार है। आहाहा! परन्तु यह बात बैठना चाहिए न अन्दर, हों! अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द, शान्ति और स्वच्छता, प्रभुता—ऐसी अनन्त शक्तियों का सागर, वह तो आत्मा है। ऐसे आत्मा का अनुभव करके, ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर जो शान्ति और आनन्ददशा प्रगट होती है, उसे साधक कहा जाता है। वह धर्म का साधन करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? उसमें एकाग्र होकर... अभी एक पत्र में आया था न? वह पढ़ा ने इसमें।

दरबार है न, अपने एक आते हैं न। भरवाड़ा और क्या नाम है कुछ? जमींदार एक आते हैं यहाँ लाभ लेने बहुत बार (आते हैं)। अपने व्याख्यान में भी आते हैं। ऐसे उपज है २५ हजार की। है जमींदार। अभी २५ हजार की गिनती क्या अभी? अभी पाँच सौ अर्थात् पच्चीस हजार। बीसगुणा भाव हो गया सब। आहाहा! यह भी वहाँ गये थे, कहते हैं अहमदाबाद में रामविजय के पास सुनने। उस रामविजय ने कहा होगा कि यह मोक्ष की विरोधी माया है, इसलिए माया छोड़ो। तब इन्होंने कहा कि माया तो जड़ है। वह जड़ विरोधी कैसे होगी? है न पत्र, कहाँ गया? वह पत्र है। आज ही आया। आज उनका पत्र आया।

मोक्ष हो, (इसके लिये) क्या करना? जवाब दो। ....कोई बोलता साधारण कहा। प्रश्न किया (उसके जवाब में कहा) कि मोक्ष में विरोध माया है। माया तजो तो मोक्ष होगा। तो क्या करना? ऐसा कुछ बोलने लगे, कोई कहता है। फिर कहा कि माया

तो जड़ है। ऐई! ऐसा जवाब देने वाले मिले जमींदार। माया तो जड़ है। वह मोक्ष में आवरण कर ही नहीं सकती। जड़ आत्मा को आवरण करे? ऐई! एक जमींदार आता है यहाँ। दरबार है।

मुमुक्षु : कक्षा में थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कक्षा में थे। हाँ, वे। बहुत (बरसों से) आते हैं। घर में यह वाँचन करे, घर में सब इकट्ठे होकर। यह आत्मा क्या चीज़ है, यह क्या कहते हैं यह? थे तो सब (लौकिक) ईश्वर के माननेवाले थे। परन्तु ईश्वर-बिश्वर कोई नहीं, ...सुन न! स्वयं ही ईश्वर है। इसका कर्ता कोई है नहीं। ऐसा पढ़ते हैं।

बेचारे ने जवाब दिया रामविजय को कि तुम कहते हो कि माया मोक्ष की विरोधी, तो माया तो जड़ है। वह विरोधी कैसे होगी? देखो। (हो) नहीं सकती। मात्र जीव की अज्ञानदशा और जड़-चेतन का भिन्न का ज्ञान जीव को नहीं, इस भूल के कारण से भवभ्रमण है। मार डाला। बहुत सरस! यह अभी बात हुई। यहाँ अहमदाबाद में है न रामविजय। आज पत्र आया है। .... कहे, चार बजे आना। फिर चार बजे गये। कहे, तुम क्षत्रिय हो तो तुमने यह वस्तु कहाँ से जानी? ऐसा पूछा। तुम तो जमींदार हो। बनिया हो तो भाई, वह जैन कहलाये। परन्तु तुम तो जमींदार हो। यह वस्तु कहाँ से ऐसी जानी? उसने पूछा। तो कहे, सोनगढ़, गुरुदेव कानजीमुनि के प्रवचन से और शिक्षण शिविर से जानी यह तत्त्व की बात, समझे न! मैंने वहाँ जानी और मोक्षमार्गप्रकाशक और समयसार के प्रवचनों में अकेला अमृत झरता है, वह हम पढ़ते हैं।

तब कहे, दीक्षा लेना। है तो छोटी उम्र। नहीं? साठेक वर्ष होंगे। जमींदार है। तो उन्होंने कहा कि वास्तविक तत्त्व जानने के पश्चात् दीक्षा शोभे। अरे! आत्मज्ञान बिना दीक्षा कैसी? बात बराबर है? सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान बिना यह वस्त्र पहनकर साधु हो गये, वे साधु कैसे? कहते हैं। जमींदार यह बात करता है। अभी आज पत्र आया। जानने के बाद दीक्षा शोभे। इसलिए आत्मतत्त्व की गादी सोनगढ़ में गुरु कानजी शोभाते हैं। सुनकर वह प्रसन्न (हो गया)। लिखा है, हों! यह सुनकर प्रसन्न हुए। इसलिए दूसरे साधु ने कहा कि तुम्हारी बात तो (सच्ची है)। इस जमींदार को क्या कहना जमींदार को। आज पत्र आया है।

यह आत्मा, इस देह की क्रिया से भिन्न। अरे, दया-दान के व्रत और तप के विकल्प का राग है, उससे भिन्न। उसका अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन बिना साधुपना कहाँ से आया? एकड़ा बिना शून्य कोरे कागज हैं सब। ऐई, पण्डितजी! सूक्ष्म बात है, भाई! जगत को न रुचे, ऐसी बात है। यह तो वीतराग का मार्ग है। यह कहीं किसी का कल्पित किया हुआ नहीं। केवली परमात्मा ने (कहा कि) अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में गया, स्वर्ग में नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु मिथ्यादृष्टि आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव किया नहीं। उसके अनुभव बिना सब थोथा-थोथा निकला। समझ में आया? फिर भले राजा हो या देव हो। वे सब मिथ्यादृष्टि दुःखी हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है...** क्या कहते हैं? **कर्म नष्ट करके चमकती हुई प्रगट हुई है....** लो। ज्ञानज्योति प्रगट हुई। भगवान आत्मा चैतन्य के पिण्ड से भरपूर, उसका अनुभव, आनन्द के वेदन में स्वसंवेदन से आगे बढ़ते हुए उसे, चमक से जैसे अग्नि प्रगट होती है, उसी प्रकार आत्मा में केवलज्ञान प्रगट हुआ, कहते हैं। समझ में आया? कोई राग और क्रियाकाण्ड से प्रगट नहीं हुआ। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

ज्ञायक प्रभामैं नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि,... क्या कहते हैं? ओहो! चैतन्य भगवान अपने अन्तर्मुख के अनुभव से और अन्तर्मुख की चारित्रदशा से पाँच ज्ञानावरणीय प्रकृति का नाश किया, केवलज्ञान जगमग ज्योति प्रगट हुई। समझ में आया? तब ज्ञान में लोकालोक ज्ञात हुए। तीन काल-तीन लोक भगवान केवलज्ञानी जानते हैं। कोई बात गुप्त होती नहीं। भगवान से कोई बात गुप्त होती नहीं। ऐसा जिसे ज्ञान आत्मा के अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो वीतरागी दशा, अन्तर के अनुभव की दशा, वह क्रियाकाण्ड से रहित आत्मा के स्वभाव की क्रिया द्वारा केवलज्ञान जगमग ज्योति प्रगट हुई। साधक भी कहा और साधक का फल साध्य भी कहा। आहाहा!

कहते हैं कि ज्ञायकस्वभाव में **अनेक प्रकार ज्ञेयाकार परिणमन करने पर भी जो एकरूप हो रही है....** अपना स्वरूप जहाँ केवलज्ञान प्रगट हुआ, तीन काल-तीन लोक जानने पर भी ज्ञान की पर्याय तो एकरूप रही है। वह ज्ञान की पर्याय खण्ड-खण्ड होकर अनन्त हुई नहीं। अनन्त को जानने पर भी एकरूप रही है। ऐसा भारी सूक्ष्म मार्ग!

सर्वज्ञ परमात्मा सीमन्धर भगवान साक्षात् महाविदेह में तो विराजते हैं। वर्तमान तीर्थंकर विराजते हैं। ५०० धनुष्य का देह है। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। अभी विराजते हैं। मुनिसुव्रत भगवान के काल में दीक्षा ली थी। केवल (ज्ञान) प्राप्त हैं और अभी आगामी चौबीसी के तेरहवें तीर्थंकर के समय मोक्ष जायेंगे। इतना तो लम्बा आयुष्य है। किसका? सीमन्धर भगवान विराजते हैं महाविदेह में, उनका। अभी विराजते हैं।

यह सामायिक में आज्ञा नहीं लेते? सीमन्धर भगवान की आज्ञा लेकर... उसमें आता है स्थानकवासी में। बीस तीर्थंकर नहीं आते? बीस विहरमान भगवान। तो विहरमान अर्थात् विचरते। वे सिद्ध हुए नहीं। अरिहन्तपद में विचरते हैं। अहाहा! अभी महाविदेह में विचरते हैं। उन्होंने मुनिसुव्रत भगवान जब यहाँ हुए, तब तो केवलज्ञान हुआ। आहाहा! करोड़ पूर्व का आयुष्य है। आगामी चौबीसी में तेरहवें तीर्थंकर यहाँ होंगे, तब देह छूटकर मोक्ष होगा। सिद्धाणं होंगे। अभी 'णमो अरिहंताणं' में हैं। पश्चात् होंगे 'णमो सिद्धाणं'। समझ में आया?

परन्तु कहते हैं कि उन अरिहन्त भगवान ने ऐसा कहा कि तू मेरा स्वरूप, मेरी जाति का ही आत्मा है। मेरे और तेरे आत्मा में कुछ अन्तर नहीं है। आहाहा! जेठाभाई! तू तेरे स्वभाव में एकाग्र हो। भाई! करने का तो यह है। आहाहा! बीच में शुभभाव आवे, पुण्यभाव हो, परन्तु वह सब हेय है। हेयबुद्धि से आता है। और भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप की दृष्टिपूर्वक लीनता, वह उपादेय है। उसमें वास्तविक उपादेय तो वह आत्मा है। समझ में आया?

नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि, अनेक भई पै एकताके रस पगी है। आहाहा! साधक स्वभाव से साध्य, ऐसा केवलज्ञान होने पर केवलज्ञान में तो तीन काल-तीन लोक अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, अनन्त आकाश, तीन काल सब ज्ञात होता है। तथापि कहते हैं कि अनन्त ज्ञेय को जानने पर भी ज्ञान की दशा अनन्त हुई नहीं, अवस्था एक रही है। एक में अनन्त ज्ञात होते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! अभी तो केवलज्ञान किसे कहना, (उसकी खबर नहीं)। अरिहन्त का 'केवलीपण्णत्तं धम्मं सरणं।' केवली ने कहा हुआ धर्म, वह आत्मा के आनन्द में रमणता, शान्ति की अतीन्द्रियदशा प्रगट होना, उसका नाम केवलीपण्णंत्तो धर्म है। समझ में आया?

याही भांति रहेगी अनंत काल परजंत,... वस्तु पूर्ण ज्ञान का पिण्ड, ऐसा तत्त्व आत्मा, उसका आत्मज्ञान हुआ, उसका ज्ञान और उसका अनुभव, उसकी स्थिरता उससे जो केवलज्ञान हुआ, वह अनन्त काल रहेगा। कितने ही कहते हैं न कि भाई! केवल मुक्ति होने के पश्चात् भी वापस अवतार धारण करे। जगत के भक्तों के कष्ट देखकर और राक्षसों तथा विरोधियों का दुःख देखकर भगवान अवतरित हों। भगवान-भगवान अवतरे नहीं। समझ में आया? वे तो पूर्ण दशा प्राप्त हुए, वे अनन्त काल ऐसे के ऐसे रहेंगे। उन्हें अवतार और राग होता नहीं। आता है न उसमें—गीता में कि भाई, यदा... यदा... सब बातें सब कल्पना की। कल्पना की बातें।

चना सिंका और सिंककर जहाँ पक्का हुआ, अब उगेगा? कच्चा चना हो, तब तक उसे चना का स्वाद सच्चा नहीं आता। स्वाद तूरा आता है। तूरा समझते हो? चना होता है न चना... चना। कच्चा चना है, उसका स्वाद तूरा आता है। और बोबे तो उगे। सेंकने से स्वाद पलट जाता है। तूरा का नाश होकर... डाळिया होता है न! डाळिया, कहते हैं न? भूना हुआ चना। उसका स्वाद मीठा हो जाता है। मीठा स्वाद और बोबे तो उगे नहीं। इसी प्रकार यह आत्मा जहाँ तक पुण्य और पाप के राग और शरीर मेरा माने, तब तक वह अज्ञानी है। उसे अज्ञान का स्वाद तूरो—दुःख का आता है और जहाँ-तहाँ वह जन्मा करता है। आहाहा!

परन्तु एक बार अन्दर में आत्मा के आनन्द का अनुभव करके और अज्ञान को जलाये और दुःख का नाश करे तो उसे अन्तर में अनन्त आनन्द की मिठास प्रगट हो और उस आनन्द की मिठास में उसे उगना हो नहीं सकता (अर्थात्) उसे जन्म-मरण नहीं हों और अवतार उसे हो नहीं सकते। सिंका हुआ चना उगता नहीं, इसी प्रकार केवलज्ञान प्राप्त भगवान भव में भ्रमण नहीं करते। समझ में आया? आहाहा! गजब बात भाई! यह कहते हैं, देखो। **याही भांति रहेगी अनंत काल परजंत,...** आनन्द और केवलज्ञान प्रगट हुआ, अनन्त काल रहेगा ऐसा का ऐसा। 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में।'

अनंत सकति फोरि अनंतसौं लगी है। लो। **और अनन्त वीर्य स्फुरित करके अक्षयपद प्राप्त करेगी।** आत्मा का बल जो अनन्त है, उसे आत्मा में स्फुरित करके जिसने अनन्त वीर्य प्रगट किया है। अन्तर के स्वभाव में शक्तिरूप से है, उसे प्रगट किया

है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनन्त वीर्य। भगवान को—परमात्मा को अनन्त ज्ञान होता है, अनन्त दर्शन होता है, अनन्त आनन्द होता है और अनन्त वीर्य होता है—अनन्त चतुष्टय होते हैं। वह अन्दर शक्ति में थे, वे प्रगट हुए हैं। समझ में आया? आहाहा! अनन्त काल रहेगा वीर्य को स्फुरित करके। **वह शुद्ध केवलज्ञानरूप प्रभा मनुष्य देहरूप मन्दिर में परम शान्तिमय प्रगट हुई है।** आहाहा!

'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञान सहित जो।' ऐसी दशा परमात्मा अरिहन्त की होती है। वे अरिहन्तपना पावे, वह सिद्धदशा ही है अब। चार कर्म थोड़े बाकी रहे, टालकर सिद्ध हो जानेवाले हैं। समझ में आया? सीमन्धर भगवान विराजते हैं, उन्हें आठ कर्म में चार कर्म का नाश है, चार कर्म बाकी हैं। परन्तु है केवलज्ञान और अनन्त आनन्द में। वे क्रम से उन्हें टालेंगे और आगामी चौबीसी में (तेरहवें तीर्थंकर के काल में) सिद्ध होंगे।

सिद्ध भगवान को आठ कर्म का अभाव होता है। अरिहन्त को चार का अभाव होता है। आठ कर्म हैं न आठ। अरिहन्त भगवान को चार का अभाव होता है, सिद्ध को आठों का अभाव होता है। अकेला आत्मा रह जाता है। आहाहा! चैतन्य के प्रकाश का नूर, आनन्द का पूर। आहाहा! उसका नाम सिद्ध, उसका नाम अरिहन्त। समझ में आया? वे आठ कर्मों का नाश करेंगे। कहा न, 'अरि' आता है न! शत्रु का नाश करके, लो। 'णमो अरिहंताणं।' ऐसा आता है न! जिसने आत्मा के आनन्द और अनुभव द्वारा कर्मरूपी शत्रु का जिसने नाश किया है। यह पहले आया था। आहाहा!

ऐसी ग्यानज्योतिकी सिखा... जलहल ज्योति भगवान आत्मा... जिसे पीपर के दाने में—छोटीपीपर... वह लींडीपीपर होती है न। छोटी, नहीं? काली। चौंसठ पहरी। वह चौंसठ पहरी हुई कहाँ से? पत्थर के घिसने से हुई? अन्दर से (हुई है)। पत्थर के घिसने से होवे तो पत्थर कंकड़ घिसे न? अन्दर (शक्ति) है। चौंसठ (पहरी) शक्ति है तो प्रगट होती है। इसी प्रकार आत्मा में केवलज्ञान—केवलदर्शन प्रगट शक्तिरूप है। है, इसलिए प्रगट होता है। आहाहा! बराबर है? आहाहा! आत्मधर्म में थोड़ा-थोड़ा आता है। आता है? चौंसठ पहरी का कहा न, भाई! वह आत्मधर्म में यह ६४ पहर का दृष्टान्त

आया था बहुत (समय) पहले। वह शुद्ध केवलज्ञान अन्दर शक्तिरूप से था, उसे अन्तर्मुख होकर प्रगट किया। समझ में आया? आहाहा!

सिखा समाधि जगी... उसके साथ वीतरागरूपी समाधि... वे बाबा करें, वह समाधि नहीं, हों! यह तो समाधि अर्थात् शान्ति... शान्ति... शान्ति। केवलज्ञानी परमात्मा को अनन्त सुख की समाधि है। अनन्त सुख में विराजते हैं। उस साधकभाव से साध्य हुआ है। आहाहा! अन्तर के स्वभाव को अनुभव में लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा रमणता करते-करते वह केवलज्ञान और आनन्द हुआ। तो यह अभी कहते हैं कि यह बाहर की क्रिया से मुक्ति होगी। उसे श्रद्धा में ही मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा!

अब अमृतचन्द्रकला के तीन अर्थ। यह इसकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य हैं। यह अन्तिम गाथायें (कलश) हैं न! मूल श्लोक करनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य हैं। जो दो हजार वर्ष पहले मुनि—दिगम्बर सन्त थे यहाँ भरतक्षेत्र में। भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ वर्तमान में सदेह विराजमान हैं। उस समय भी वहाँ थे। उनके पास आठ दिन रहे। साक्षात् दिव्यध्वनि सुनकर यहाँ आये। उन्होंने यह समयसार बनाया। उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने की। हजार वर्ष पश्चात् एक मुनि हुए। अमृतचन्द्र दिगम्बर सन्त वनवासी। उनकी यहाँ बात चलती है। अब १३वाँ कलश है नीचे। कलश है न नीचे। संस्कृत है।

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता-
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम्।।२७६।।

अब अमृतचन्द्राचार्य यहाँ इसका अर्थ करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ५२

अमृतचन्द्र कला के तीन अर्थ (सवैया इकतीसा)

अच्छर अरथमैं मगन रहै सदा काल,
महासुख दैवा जैसी सेवा कामगविकी।
अमल अबाधित अलख गुन गावना है,
पावना परम सुद्ध भावना है भविकी।।
मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्धमान धारा,
जैसी उभै जामलौं किरण दीपैं रविकी।
ऐसी है अमृतचंद्र कला त्रिधारूप धरै,
अनुभौ दसा गरंभ टीका बुद्धि कविकी।।५२।।

शब्दार्थ:-कामगवि=कामधेनु। अलख=आत्मा। पावना=पवित्र। अपहारा=नष्ट करनेवाली। वर्धमान=उन्नतिरूप। उभै जाम=दोपहर। त्रिधारूप=तीन प्रकार की।

अर्थ:-अमृतचन्द्र स्वामी की चन्द्रकला, अनुभव की, टीका की और कविता की तीनरूप है सो सदाकाल अक्षर अर्थ अर्थात् मोक्ष पदार्थ से भरपूर है, सेवा करने से कामधेनु के समान महा सुखदायक है। इसमें निर्मल और शुद्ध परमात्मा के गुणसमूह का वर्णन है, परम पवित्र है, निर्मल है और भव्य जीवों के चिन्तवन करने योग्य है, मिथ्यात्व का अन्धकार नष्ट करनेवाली है, दोपहर के सूर्य के समान उन्नतिशील है।।५२।।

काव्य-५२ पर प्रवचन

अच्छर अरथमैं मगन रहै सदा काल,
महासुख दैवा जैसी सेवा कामगविकी।
अमल अबाधित अलख गुन गावना है,
पावना परम सुद्ध भावना है भविकी॥

मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्धमान धारा,
जैसी उभै जामलौं किरण दीपैं रविकी।
ऐसी है अमृतचंद्र कला त्रिधारूप धरै,
अनुभौ दसा गरंभ टीका बुद्धि कविकी॥५२॥

यह समयसार नाटक बहुत समय से चलता है न यह। अब कहते हैं कि **अच्छर अरथमैं मगन रहै सदा काल,...** अक्षर ऐसा जो अविनाशी अर्थ ऐसा जो मोक्षदशा। **अच्छर अरथ—**नाश न पावे ऐसा अर्थ—पदार्थ, मोक्षपदार्थ। **अच्छर अरथमैं मगन रहै सदा काल,...** उसमें आनन्द के अनुभव में सदाकाल रहे। यह अमृतचन्द्र (शब्द में) वहाँ अ—मृत है न भाई उसमें? मरे नहीं, ऐसा कहना है। आत्मा के आनन्द का अनुभव करके और जो मोक्ष हो, उस मोक्ष में तो **मगन रहै सदा काल।** यह अमृतचन्द्र का अर्थ चलता है। टीकाकार का नाम अमृत है—अमृतचन्द्र। अ—मृत—मरे नहीं कभी। टीकाकार का अर्थ है। आहाहा! अब कभी भव धारण करे (नहीं)। मरे नहीं। देह छूटे, देह ही कहाँ है? मोक्ष हुआ तो देहातीत अकेला पूर्णानन्द आत्मतत्त्व रहा। जरा (सिंका हुआ) चना फिर से उगता नहीं, इसी प्रकार मोक्ष होने के पश्चात् उसे अवतार होता नहीं।

अच्छर अरथमैं मगन रहै सदा काल,... अक्षर अर्थ सदा काल। अक्षर अर्थ अर्थात् मोक्षपदार्थ भरपूर है, ऐसा लिखा है। मोक्षपदार्थ से भरपूर है आत्मा। आहाहा! अन्तर स्वभाव पूर्ण शान्ति और आनन्द से भरपूर पदार्थ; उसके अन्तर में अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसने प्रगट किये, उसके फलरूप से मोक्षपदार्थ प्राप्त होता है। वह मोक्षपदार्थ कैसा है? सदा काल मोक्षपदार्थ से भरपूर है वह तो। आहाहा! समझ में आया? सिद्धदशा में पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, वह तो भरपूर है।

महासुख दैवा जैसी सेवा कामगविकी... सेवा करने से कामधेनु के समान महा सुखदायक है। कहते हैं कि यह शास्त्र जो है, उसका अनुभव करने से उसे मोक्ष होता है, ऐसा कहते हैं। इस शास्त्र में जो कहा है, वह उसका—आत्मा का भाव कहा है इसमें। समझ में आया? आहाहा! 'शक्कर' शब्द है। वह शब्द 'शक्कर' कहीं शक्कर पदार्थ में नहीं है। ऐसा शक्कर पदार्थ में शब्द नहीं और शब्द 'शक्कर' उसमें शक्कर पदार्थ नहीं। दोनों भिन्न चीज़ें हैं। इसी प्रकार यह शब्द है, यह समयसार, परन्तु शब्द में

कहीं आत्मा नहीं। अन्दर भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन।

कहते हैं, **सेवा करने से कामधेनु के समान महा सुखदायक है।** ऐसा जो आत्मा... शास्त्र की सेवा तो निमित्त से कथन है, परन्तु उसने कहा हुआ जो भगवान आत्मा, उसकी सेवा करने से कामधेनु समान महासुखदायक है। कामधेनु गाय उसे कहते हैं कि माँगे तब दूध दे। कामधेनु गाय है न। जब चाहिए (तब दूध दे)। यह चायवाले सवेरे पीवे, ऐसा नहीं, बारह बजे पीवे तो रात्रि के बारह बजे दूध दे। यहाँ कामधेनु गाय थी, यहाँ वढ़वाण में। कैसे? दादभा चुनीलालभाई। उनके पास कामधेनु गाय (थी)। चाहे जब चाहिए, दूहे तो दूध दे। एक सेठिया थे विसाश्रीमाली, वहाँ वढवाण।

इसी प्रकार यह आत्मा कामधेनु समान आनन्द का धाम है। आहाहा! जब एकाग्रता हो, तब आनन्द झरे। समझ में आया? उसे ऐसा नहीं कि यह रात्रि के बारह बजे हैं और अब ध्यान करे तो आनन्द आयेगा या नहीं? सदा। आहाहा! वह आनन्द का धाम अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान है। सर्वज्ञ परमेश्वर की प्रगट दशा हुई, वैसी यहाँ शक्तिरूप से है। उसकी सेवा करने से **कामधेनु के समान महा सुखदायक है।** लो। लो, यह सेवा। पर की सेवा करना, कोई धूल भी कर सकता नहीं।

मुमुक्षु : सेवाधर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सेवाधर्म यह। यह सेवाधर्म, लो। पर की सेवा कौन करे? धूल। शरीर के रजकण फटकर रोग हो, कोई मिटा सकेगा? यह तो जड़ है। यह तो अजीवतत्त्व है। अजीव की पर्याय अजीव से होती है। वह पर से होगी? इंजेक्शन लगावे, इसलिए रोग मिटे, ऐसा है? वह तो उसकी पर्याय स्वतन्त्र है। उसके प्रकार से परिणमना हो, वैसे परिणमे। उसे—जड़ को कोई दूसरा परिणमा दे, (ऐसा नहीं)। जड़ की क्रिया का कर्ता आत्मा तीन काल में है नहीं। अरे, राग का कर्ता नहीं। यहाँ तो यह कहना है न! राग का कर्ता माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, सेवा करने से महासुखदायक... भगवान कामधेनु समान है। (कामधेनु के पास) जब माँगो, तब दूध निकले; इसी प्रभु ज्ञानानन्दस्वभाव चैतन्य रसकन्द (में) जब एकाग्रता हो, तब उसे आनन्द आवे। आहाहा! वह आनन्द नहीं पैसे

में, नहीं स्त्री में, नहीं धूल में, कहीं नहीं। मूढ़ मुफ्त में मानकर (बैठा है)। यह पैसा पाँच करोड़ हुए और धूल करोड़ हुए। रमेशभाई! सुखी हैं हम। धूल में भी नहीं अब, सुन न! और यह सुख, वह पर में होगा या सुख, वह आत्मा में होगा? अनेकान्त किया न, आत्मा में सुख हो और पर में न हो। या आत्मा में भी सुख हो, पर में भी सुख (हो) ऐसा अनेकान्त होगा? आहाहा! भगवान तो कहते हैं न, महासुखदायक है। पुण्य-पाप के परिणाम सुखरूप नहीं। वह दुःखरूप है। स्त्री और पुत्र और पैसा और बड़े बँगले... हजीरा अर्थात् यह मकान। दस-दस लाख के और बीस-बीस लाख के। धूल भी नहीं, कहते हैं, महासुख तो आत्मा में है। आहाहा!

तुम्हारा लड़का वहाँ बड़े बँगले में रहता है या नहीं, लो। जा आये न, उसका ल्हावा ले आये थोड़ा स्वीट्जरलैण्ड जाकर। धूल में भी नहीं। हैरान हो गये हैरान। आहाहा! कष्ट में मरता है। रामजीभाई ने कहा नहीं था। (सुमन) पढ़ने गया भाई को सुमनभाई। कष्ट में मरने गया है। ऐसे आये कष्ट में मरता है वहाँ। कष्ट में मरता है अर्थात् हैरान हो जाता है। आहाहा! उसकी—आत्मा की यात्रा कर न! तुझे अन्तर में पड़ा है न प्रभु। आहाहा! उसके ऊपर, सुख के ऊपर चढ़ तो तुझे सुख मिलेगा। आहाहा! बाहर की यात्रा, वह तो शुभभाव... पाप से बचने को शुभ पुण्य है। वह कहीं संवर-निर्जरा और धर्म है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, महासुखदायक। लो, है न। **दैवा जैसी सेवा कामगविकी...** कामगवि अर्थात् कामधेनु। **अमल अबाधित अलख गुन गावना है...** आहाहा! यह भगवान आत्मा... **इसमें निर्मल और शुद्ध परमात्मा के गुणसमूह का वर्णन है....** यह शास्त्र में, ऐसा कहते हैं। यह शास्त्र में आत्मा निर्मल, शुद्ध, परमात्मस्वरूप के गुण का समूह का वर्णन है। आहाहा! यह समयसार परम पवित्र है। है न, **अमल अबाधित अलख गुन गावना है, पावना परम सुद्ध भावना है भविकी....** परम पवित्र है आत्मा, निर्मल है। **भव्य जीवों के चिन्तवन करनेयोग्य है,....** शास्त्र, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भव्य अर्थात् योग्य जीव को यह समयसार चिन्तवन अर्थात् समझने योग्य है, ऐसा कहते हैं। ऐसा शास्त्र अभी अद्वैत—भरतक्षेत्र में अजोड़ है, अजोड़ शास्त्र। आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार कर-करके मर गया, वह दुःखी है। ढोर के, कौवे के, कुत्ते के,

आहाहा! जरा कहीं शरीर ठीक हो और लाख—दो लाख—पाँच लाख मिले, वहाँ हम बादशाह हैं। धूल भी नहीं। यह सड़ गया, सुन न अब। दु:ख में सड़ गया है। सड़ गया समझते हैं ?

मुमुक्षु : गिर गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : गिर गये नहीं। सड़ जाता है। आहाहा! फोड़ा होता है न, ऐसा फोड़ा है। आहाहा!

पावना परम सुद्ध भावना है भविकी.... भव्य प्राणी को ऐसा समयसार चैतन्य भगवान का अनुभव करके पवित्र भावना भाकर शुद्ध भावना भाना, ऐसा कहते हैं। देखो, इसमें पुण्य की भावना, व्यवहार की भावना भाना, ऐसा नहीं कहा। बीच में आता है। देखो, है ? **पावना परम सुद्ध भावना है भविकी....** भव्य प्राणी की भावना अन्तर ज्ञान और आनन्द की भावना होती है। आहाहा! उसे पुण्य बीच में आवे सही। भक्ति आदि होते हैं न!

मुमुक्षु : उसमें पोषाये तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं। तथापि उसका जानने का उसके ज्ञान का है बस, उसे आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा!

मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्धमान धारा... आहाहा! मिथ्यात्व का अन्धकार नाश होकर... आत्मा का यह शास्त्र समझे, उसे मिथ्यात्व का नाश होता है, ऐसा कहते हैं। मिथ्या अर्थात् भ्रमणा। यह पर से मुझे सुख होगा, पैसे से सुख होगा, यह पुण्य के भाव में सुख होगा, पाप के भाव में ठीक होगा—ऐसा जो मिथ्याभ्रम—मिथ्यादर्शन शल्य, आहाहा! उसे नष्ट करनेवाला (यह शास्त्र)।

दोपहर के सूर्य के समान उन्नतिशील है। बारह बजे जैसे दोपहर का सूर्य उगे, प्रकाश... प्रकाश... प्रकाशपिण्ड। ऐसा यह समयसार का ज्ञान करके, उसका अनुभव करके ज्ञान प्रगट होता है, वह सूर्य के समान उन्नतिशील है। आगे बढ़कर परमात्मा हो, ऐसा उसमें कथन है, लो। ऐसा बारम्बार.... वकालत—फकालत में कुछ नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। गोता मारकर हैरान होने का है वहाँ। वकील है न यह। यह तो सब

छोड़ दिया है अब। आहाहा! यह कवि के ज्ञान और डॉक्टर का ज्ञान, सब अज्ञान है। आहाहा! अज्ञान का बाप बड़ा है। भगवान आत्मा का ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया?

'आत्मज्ञान वहाँ मुनिपना, वे सच्चे गुरु होय।' श्रीमद् में आता है न! श्रीमद् राजचन्द्र में आता है। वह आत्मज्ञान। मुनि हों वहाँ आत्मज्ञान हो, ऐसा लिया है। ऐई! मुनि आत्मज्ञान बिना के होते नहीं और आत्मज्ञान न हो, वे मुनि हैं ही नहीं। ऐसा कहा न, यह दरबार ने कहा न। तत्त्वज्ञान बिना दीक्षा शोभती नहीं। मीठी भाषा की। अर्थात् कि वास्तव में दीक्षा होती नहीं। जिसे अभी आत्मज्ञान—सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, उसे दीक्षा और चारित्र हो गये? यह मुँडाकर बैठा दे। आहाहा!

मुमुक्षु : वह समय गँवाने का है....

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाना क्या? रोटियाँ मिलनेवाली हैं वहाँ। एक जगह रोटियाँ दे, उसमें आत्मा कहाँ आया? आहाहा! भगवान आत्मा....

भरत चक्रवर्ती जैसे गृहस्थाश्रम में ९६ हजार स्त्रियाँ थीं। तथापि आनन्द में लवलीन गृहस्थाश्रम में अन्दर आत्मा के आनन्द में। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान के पुत्र थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के पुत्र तो दूसरा वह मारीचि भी था एक। भरत का (पुत्र), लो। एक मारीचि नहीं था? मिथ्यादृष्टि। भगवान के समय में, ऋषभदेव भगवान के समय में भरत के मारीचिकुमार ने दूसरा मत निकाला। भगवान विराजते थे और भविष्य में तीर्थंकर होनेवाला है। चौबीसवाँ तीर्थंकर महावीर भगवान—मारीचिकुमार। आता है न! उल्टा पंथ निकाला, उल्टा परिणमा। वीतरागमार्ग छोड़कर उसने दूसरा मार्ग निकाला सांख्यमति का कुछ। पुत्र क्या करे? आहाहा! समझ में आया? भरत चक्रवर्ती का पुत्र।

ऐसी है अमृतचंद्र कला त्रिधारूप धरै,... यह अनुभव—दशा, ग्रन्थ टीका और बुद्धि—तीनों। है न अन्दर। **अमृतचन्द्र स्वामी की चन्द्रकला अनुभव की, टीका की और कविता की तीन रूप है।** अमृतचन्द्र की कला। अनुभव की कला आत्मज्ञान

आनन्द की, टीका की—उन्होंने टीका बनायी उसकी और उसकी कविता बनायी इसमें। यह कलश बनाये न! समयसार ग्रन्थ अलौकिक है। अलौकिक। अद्वैत आया न? अद्वैतचक्षु।

★ ★ ★

काव्य - ५३

(दोहा)

नाम साध्य साधक कह्यौ, द्वार द्वादसम ठीक।
समयसार नाटक सकल, पूरन भयौ सटीक।।५३।।

अर्थः–साध्य–साधक नामक बारहवाँ अधिकार वर्णन किया और श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत समयसारजी समाप्त हुए।।५३।।

काव्य-५३ पर प्रवचन

दोहा—

नाम साध्य साधक कह्यौ, द्वार द्वादसम ठीक।
समयसार नाटक सकल, पूरन भयौ सटीक॥५३॥

साध्य अर्थात् परमात्मा का पद प्राप्त करना, वह जीव को साध्य है। पैसावाला होना और दुनिया में इज्जतवाला होना, वह इसका साध्य नहीं। वह पाप का साध्य है। आहाहा! यह तुम्हारे लड़के को तो कुछ है नहीं तो भी निवृत्त नहीं होता, लो। इकलौती पुत्री है, उसका तो विवाह कर दिया है। और यह क्या होगा इन सबमें मोह?

मुमुक्षु : मोह राग।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोह। आहाहा! अरे! करने का तो यह है मनुष्यदेह में। उसके बदले कहाँ करने उतर गया ....। यह व्यवस्थित करूँ और यह व्यवस्थित करूँ। बाहर

की व्यवस्था तो पुण्य-पाप के कारण होती है। पुण्य के कारण बाहर की अनुकूलता, पाप के कारण प्रतिकूलता। समझ में आया? यह तो पुण्य-पाप के भाव बिना की अनुकूलता आत्मा में है। वीतराग परमात्मा ने ऐसा फरमाया है। आहाहा! भाई! तू आनन्द है न नाथ! आहाहा! तेरी तुलना करे ऐसा तत्त्व जगत में तू ही है। और दूसरा आत्मा सिद्ध (के साथ) तेरी तुलना करे, ऐसी भी कोई दूसरी चीज नहीं। आहाहा!

कहते हैं, साध्य अर्थात् पूर्ण परमात्मा। साधक अर्थात् चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें तक। यह अधिकार कहा। चौथे गुणस्थान से धर्म का साधक होता है। अविरति सम्यग्दृष्टि। तब से आत्मा की दृष्टि अनुभव की हुई। राग और पुण्य वह चीज़ मेरी नहीं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव मेरा नहीं, वह भी राग है। राग से बन्धन होता है। कहीं धर्म से बन्धन होता है? राग से होता है। तीर्थंकरगोत्र बाँधे वह भावना राग है। आहाहा! कठिन काम है। समझ में आया? हो भले, परन्तु वह कहीं साधकपने में सहायता करनेवाला नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : विश्वास होकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्वास उससे हुआ है? वह तो अनुभव से हुआ है। अपने आत्मा से हुआ है कि, ओहो!

मुमुक्षु : आत्मा का विश्वास....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उसके कारण से हुआ नहीं, वह आत्मा के कारण से हुआ है। कि मैं अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करनेवाला हूँ। यह आत्मा के (ज्ञान के) कारण से हुआ है।

मुमुक्षु : वह अल्प साधन है। यह निश्चय....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। निश्चय उससे हुआ है, प्रकृति के कारण से नहीं। समझ में आया? आत्मा की यह बात ही कि, ऐसा आत्मा है कि जो अखण्ड, भवरहित है और पुण्य-पाप के भावरहित है। उसकी—मुक्त की दृष्टि हुई, इसलिए दृष्टि में तो मुक्ति हो गयी। आहाहा!

यह मुक्ति ने उसे भणकार दिया कि वह अल्प काल में दशा में मुक्ति आयेगी।

क्योंकि पूरा केवलज्ञान का कन्द पकड़ा है अनुभव में, इसलिए केवलज्ञान हुए बिना रहेगा नहीं। उसे केवलज्ञान की भी इच्छा होती नहीं समकिती को। तथापि एक न्याय से अभिलाषा, परमात्मपद पूर्ण हो, ऐसी भावना होती है भावना। समझ में आया? परन्तु वह आये बिना रहनेवाला नहीं न। अन्दर चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण केवलज्ञान का कन्द पकड़ा, पूरे खजाने को खोल दिया। उसे केवलज्ञान हुए बिना रहेगा नहीं।

श्रीमद् में आता है न एक। श्रीमद् में आता है। समकित कहता है कि देखो, मुझे पकड़ने के पश्चात्, मैं केवलज्ञान दिया बिना रहूँगा नहीं। इसलिए केवलज्ञान नहीं चाहिए हो तो मुझे पकड़ना नहीं। केवलज्ञान आयेगा, आयेगा और आयेगा। जिसने आत्मा का अनुभव पल में करके सम्यग्दर्शन किया, उसे केवलज्ञान होनेवाला है, होनेवाला है और होनेवाला है। दूज उगी, वह चन्द्रमा (पूर्ण) होनेवाला है। दूज उगी, वह फिर अमावस्या हो जाये, (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया? आहाहा! देखो न, आत्मा की लहर तो देखो, कहते हैं। आहाहा!

यह १२वाँ अधिकार कहा। **नाम साध्य साधक कह्यौ....** इसका नाम साध्य-साधक (अधिकार) नाम है। **द्वार द्वादसम...** १२वाँ अधिकार यह। जीव-अजीव, कर्ता, कर्म, पुण्य-पाप करते-करते बारहवाँ अधिकार। **समयसार नाटक सकल, पूरन भयौ सटीक....** यह टीका सहित पूर्ण हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार की आलोचना।

★ ★ ★

काव्य - ५४

ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार की आलोचना

(दोहा)

अब कवि निज पूरब दसा, कहैं आपसौं आप।
सहज हरख मनमैं धरै, करै न पश्चाताप।।५४।।

अर्थः–स्वरूप का ज्ञान होने से प्रसन्नता प्रगट हुई और संताप का अभाव हुआ है, इसलिए अब काव्यकर्ता स्वयं ही अपनी पूर्वदशा की आलोचना करते हैं।।५४।।

काव्य-५४ पर प्रवचन

अब कवि निज पूरब दसा, कहैं आपसौं आप।
सहज हरख मनमैं धरै, करै न पश्चाताप॥५४॥

बनारसीदास। आहाहा! **स्वरूप का ज्ञान होने से प्रसन्नता प्रगट हुई।** राग-द्वेष की एकता में तो दुःखदायी दशा थी। आहाहा! भगवान... राग और द्वेष से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन प्रगट किया, वहाँ स्वरूप का ज्ञान, प्रसन्नता प्रगट हुई। आनन्द आया। आहाहा! समझ में आया? **सन्ताप का अभाव हुआ है...** अस्तिरूप से सुख प्रगट हुआ। नास्तिरूप से सन्ताप—दुःख का नाश हुआ। आहाहा! अन्धकार का नाश और प्रकाश की उत्पत्ति। ऐसे आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होने पर प्रसन्नता—आनन्द प्रगट हुआ और संसार के दुःख का अभाव हुआ। आहाहा! **इसलिए अब काव्यकर्ता स्वयं ही अपनी पूर्वदशा की आलोचना करते हैं।** पूर्वदशा को जानते हैं, विचारते हैं, आलोचना करते हैं। ऐसा उसका अर्थ किया है, अपने को डालकर। डाला स्वभाव। जीव ऐसा था वह। अद्वैत और अचक्षु।

यस्माद् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं,
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं,
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किञ्चिन्न किञ्चित्किल।।१४।।

देखो! क्रिया आयी। आहाहा! स्वयं ने डाला, देखो! ..... ऐसा पहले था। मैं पहले ऐसा था और अब हुआ, ऐसा डाला है।

जो मैं आपा छांड़ि दीनौ पररूप गहि लीनौ.... लो, यह अनादि से किया था अज्ञान, कहते हैं। **जो मैं आपा छांड़ि दीनौ....** भगवान आनन्दस्वरूप की दृष्टि छोड़ दी अनादि से। **दीनौ पररूप गहि लीनौ....** परपदार्थों को अपना माना। शरीर मेरा और पुण्य

मेरा और पाप के भाव मेरे और विकारीभाव शुभ-अशुभ मेरे—यह सब मिथ्यात्वभाव था। भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्य को छोड़कर, अनादि से जो मुझमें नहीं और छूट जाये, ऐसी चीज़ें ही मुझमें नहीं, उन्हें मेरी माना था। आहाहा! परम समाधि में लीन नहीं हुआ। राग और द्वेष को मेरा मानकर, अपने आनन्दस्वभाव में लीन नहीं हुआ, वह मेरी भूल है। वह मेरी भूल थी। कोई कर्म ने भूल करायी है, (ऐसा है नहीं)।

(संवत्) २००६ के वर्ष में कहा था, वह इसमें आया। वह कहे, कर्म आत्मा को नुकसान करते हैं। कर्म से परिभ्रमण करता है। तब वह कहे, नहीं, अपने अज्ञान से। समझ में आया? 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' कर्म तो जड़ है। वह तो मिट्टी है, धूल है.... उसे तो खबर भी नहीं कि हम कौन हैं जगत् के। आहाहा! 'कर्म बेचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई।' कर्म क्या करे बेचारे? वह तो जड़, मिट्टी, धूल, अजीव है। वे जीव को क्या करे? जीव में अजीव का अभाव है। तो अभाव वस्तु उसके भाव को कैसे नुकसान करे? आहाहा! समझ में आया? जैन में तो जहाँ हो वहाँ यह डाले। कर्म के कारण हुआ, कर्म के कारण हुआ। धूल भी नहीं हुआ। तेरे दोष के कारण हुआ। समझ में आया?

जो मैं आपा छांड़ि दीनौ.... मेरे स्वरूप को मैंने दृष्टि में लिया नहीं। नहीं कि दर्शनमोह के कारण से मैंने दर्शन लिया नहीं। ऐसा नहीं कहा वहाँ। कर्म जड़ हैं बेचारे। वे कहाँ घुस गये हैं अन्दर? उसके अस्तित्व में हैं और मैं मेरे अस्तित्व में हूँ। आहाहा! **पररूप गहि लीनौ....** अपना स्वरूप ज्ञान और आनन्द, वह मैंने नहीं ग्रहण किया, तो पुण्य और पाप के विकल्प को मेरा मानकर पकड़ा, वह मिथ्यात्वभाव थ। आहाहा! **कीनौ न बसेरौ तहां जहां मेरौ थल है....** मैंने मेरा स्थल जो असंख्यप्रदेशी आनन्दधाम, उसमें मैं बसा नहीं और राग तथा पुण्य में बसा। वह मेरी अपनी भूल थी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे टालकर अब मैं मेरे आत्मा में आता हूँ। यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७७, आसोज शुक्ल १२, शनिवार, दिनांक ०२-१०-१९७१
साध्य-साधक द्वार, पद ५५ से ५६

साध्य-साधक द्वार। समयसार नाटक चलता है न। समयसार नाटक। अन्तिम गाथायें हैं। अनादि से क्यों दु:खी हुआ और आत्मा का भान हुआ तो दु:ख का कैसे अन्त आया, दोनों ही बातें एक श्लोक में हैं। समझ में आया? यह आत्मा अनादि से कैसे दु:खी हुआ और दु:ख का अन्त मैं कैसे लाया? दोनों ही चीज़ हैं। एक श्लोक में दोनों ही समाहित कर दिये। कहते हैं—

★ ★ ★

काव्य - ५५

(सवैया इकतीसा)

जो मैं आपा छांड़ि दीनौ पररूप गहि लीनौ,
कीनौ न बसेरौ तहां तहां मेरौ थल है।
भोगनिकौ भोगी ह्वै करमकौ करता भयौ,
हिरदै हमारे राग द्वेष मोह मल है।।
ऐसी विपरीत चाल भई जो अतीत काल,
सो तो मेरे क्रियाकी ममताहीकौ फल है।
ग्यान दृष्टि भासी भयौ क्रियासौं उदासी वह,
मिथ्या मोह निद्रामैं सुपनकोसौ छल है।।५५।।

शब्दार्थ:-बसेरौ=निवास। थल=स्थान। अतीत काल=पूर्व समय। सुपन=स्वप्न।

अर्थ:-मैंने पूर्वकाल में अपना स्वरूप ग्रहण नहीं किया, परपदार्थों को अपना माना और परम समाधि में लीन नहीं हुआ, भोगों का भोगता बनकर कर्मों का कर्ता हुआ, और हृदय राग-द्वेष-मोह के मल से मलिन रहा। ऐसी विभाव परिणति में हमने

ममत्वभाव रखा अर्थात् विभाव परिणति को आत्मपरिणति समझा, उसके फल से हमारी यह दशा हुई। अब ज्ञान का उदय होने से क्रिया से विरक्त हुआ हूँ, पहले का कहा हुआ जो कुछ हुआ, वह मिथ्यात्व की मोहनिद्रा में स्वप्न कैसा छल हुआ है, अब नींद खुल गई।।५५।।

काव्य-५५ पर प्रवचन

कहते हैं, **जो मैं आपा छांड़ि दीनौ....** अरे! मैंने अनादि काल से दृष्टि में से अपना आनन्द शान्त शुद्धस्वरूप अनादि से छोड़ दिया। **आपा छांड़ि दीनौ....** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दघन को दृष्टि में से छोड़ दिया अनादि से। **और पररूप गहि लीनौ,...** और राग-द्वेष, पुण्य-पाप, शरीर—परपदार्थ मेरे, ऐसा मान लिया। समझ में आया? आहाहा! अपनी चीज़ जो है अन्दर ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि से भरी हुई... एक प्रश्न अभी यह उठा था कि आत्मा का तो दोष है ही नहीं। आत्मा जो है, वह तो शुद्ध चैतन्यद्रव्य है। यह आज एक प्रश्न उठा था। पत्र लाया न वह तुम्हारा। एक मोरबी का है न वह विरोधी जयन्तीलाल। सत्रह पत्र एक साथ लिखे हैं यहाँ के विरोध में। वे एक (साथ) सत्रह। एक बार दस आये। ऐसे २७ आज आये। वे तो फाड़ दिये। परन्तु उसके ऊपर से विचार किया कि उसका कुछ दोष नहीं। आत्मा का दोष नहीं, ऐसा।

अपना आत्मा जो है, वह तो शुद्ध चिदानन्द आनन्दघन है, उसे आत्मा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह भी अज्ञान की पर्याय का दोष निकालता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानपर्याय, परन्तु वह अज्ञानपर्याय आत्मा है नहीं। समझ में आया? अज्ञान है, वह अनात्मा है, वास्तव में आत्मा नहीं। समझ में आया? आत्मा है तो शुद्ध चैतन्यघन शुद्ध द्रव्य, वही आत्मा है। शुद्धरूप परिणमे तो ही आत्मा। अशुद्ध परिणमन उसमें है ही नहीं। आहाहा! मूलचन्दभाई! यहाँ कहा न, **मैं आपा छांड़ि दीनौ...** मेरी चीज़ जो अन्दर है शुद्ध ज्ञानघन आनन्दकन्द प्रभु है, अनादि-अनन्त एकरूप चीज़ है, उसकी तो दृष्टि छोड़ दी। आत्मा की दृष्टि छोड़ दी। **और पररूप गहि लीनौ,...** राग-द्वेष, पुण्य-पाप, विकल्प जो राग आदि है, वह पररूप है, वह आत्मस्वरूप नहीं।

आहाहा! शरीर, वाणी, मन को अपना माने, पर उसका होता नहीं। राग-द्वेष तो परिणमन में होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द नित्यानन्दस्वरूप ही आत्मा है, उसे आत्मा कहते हैं। तो उस आत्मा की दृष्टि (नहीं करके) अनादि से अपने आत्मा को छोड़ दिया। जो छोड़ना था, वह नहीं छोड़ा और जो अपना था, वह छोड़ दिया दृष्टि में से। समझ में आया? आहाहा! **और पररूप गहि लीनौ,...** ५५ (पद) में है। भैया! है न? सूक्ष्म बात है यहाँ की। बाहर के विद्यालय में दु:ख है। कॉलेज है यहाँ तत्त्व की कॉलेज है। सागर से आये हैं। वहाँ उतरे हैं शोभालाल सेठ के यहाँ। समझ में आया? आहा! भगवान! तू तो भगवान परमात्मा परमेश्वर साक्षात् है अन्दर बसा हुआ। उसे अनादि से दृष्टि में से छोड़ दिया। नटुभाई!

और पररूप गहि लीनौ,... अपनी चीज़ में नहीं, ऐसा पुण्य-पाप, राग-विकल्प, यह अपना नहीं, यह तो विभाव-परभाव है। उसे पकड़ा। क्योंकि अपना अस्तित्व शुद्ध चैतन्य है, वह अस्तित्व है। अपनी सत्ता वह है, ऐसा जब छोड़ दिया दृष्टि में से, तो कहीं अपनापन मानना तो पड़ेगा न उसे? आहा! शरीर, वाणी, मन तो अजीव, जड़, धूल है। वह तो कोई दूसरी चीज़ है। परन्तु अन्दर में पुण्य-पाप का विकल्प जो वृत्ति उठती है, वह पररूप है, अपनेरूप है नहीं। आहाहा! त्रिकाली स्वभाव सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी प्रभु आत्मा है। ऐसा स्वभाव का लक्ष्य छोड़ दिया। अपनी चीज़ जो कायमी मौजूद है, उसका तो लक्ष्य छोड़ दिया और उसमें जो पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव जो अपनी चीज़ नहीं, अपने में नहीं, ऐसा कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ विकार, उसे पकड़ लिया। समझ में आया? आहाहा!

पररूप गहि लीनौ,... एक पद में दो आये। अपनी निज चीज़ (को) अनादि से लक्ष्य में से छोड़ दिया, आहाहा! और वह पुण्य-पाप का विकल्प जो विभाव जो कृत्रिम दु:खरूप दशा है, उसे ग्रहण कर लिया। यह अपना है, ऐसा अस्तित्व मान लिया, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! कहो, हीराभाई! कहाँ गये? हीराभाई गये थे कहीं, नहीं? कहो, समझ में आया? आहाहा! **कीनौ न बसेरौ तहां जहां मेरौ थल है।** मैं मेरा स्थान—स्थल—भाव में समाधि में तो नहीं बसा। आहाहा! **कीनौ न बसेरौ...** मेरी चीज़

जो शुद्ध आनन्दघन प्रभु, उसमें तो बसना हुआ नहीं। अपनी समाधि तो की नहीं। अपनी शान्ति में तो रहा नहीं। **तहां जहां मेरौ थल है.... तहां जहां मेरौ थल है।** मेरा स्थल तो ज्ञानानन्द ध्रुव, वह मेरा स्थल है। वह मेरा स्थल है, वह मेरा क्षेत्र है, वह मेरा भाव है। नटुभाई! उसमें तो इसका नहीं बाबरा, नहीं कुण्डला, नहीं पालीताणा, कुछ नहीं। तीन बदले तीन इसके पिता ने। आहाहा! उस स्थल में बसा नहीं। अपने स्थल में बसा नहीं, ऐसा कहते हैं। अपना आनन्दधाम भगवान शुद्ध चैतन्यघन, उसमें बसा नहीं, समाधि की नहीं, शान्ति ली नहीं। **तहां जहां मेरौ थल है।** समझ में आया? आहाहा! परमसमाधि में लीन हुआ नहीं।

भोगनिकौ भोगी ह्वै.... आहाहा! पहले राग-द्वेष, विकल्प अपना किया तो वहाँ कर्ता हुआ, अब वहाँ भोक्ता हुआ। आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप भगवान नित्य कायम रहने की चीज़ में रहा नहीं तो राग और पुण्य का परिणाम—पुण्य-पाप में रहा तो उसका भोक्ता हुआ। विकार का भोक्ता हुआ। आहाहा! ऐसी गाथा थोड़े में बहुत भर दिया है। गागर में सागर। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ है और अनादि से कहाँ तेरी दृष्टि पड़ी है, ऐसा कहते हैं। **भोगनिकौ भोगी....** जब अपने आनन्दस्वरूप से दृष्टि हट गयी तो उसमें बसना हुआ नहीं। तो पुण्य-पाप के विकल्प में अपना मानकर रहा, उसका भोक्ता हुआ। आहाहा! समझ में आया? शरीर, वाणी, मन का तो भोक्ता आत्मा होता ही नहीं। वह तो मिट्टी, जड़ है। भोक्ता हुआ राग-द्वेष का। ओहो! समझ में आया?

भोगनिकौ भोगी ह्वै करमकौ करता भयौ,.... भोग और कर्ता साथ में डाल दिया फिर। राग-द्वेषरूपी कर्म-कार्य का कर्ता हुआ। ऐई मूलचन्दभाई! ऊपर में बहुत है। उसमें है परन्तु अर्थ करते बहुत ऊपर में है। समझ में आया? आहाहा! इस संस्कृत श्लोक का अर्थ 'समयसार' में बहुत भरा है। एक का दो हुआ, ऐसा कहा भाई ने उसमें से, नहीं? अद्वैत है न! '**यस्मादद्वैतमभूत्पुरा**'। एक भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें विकार को अपना माना तो द्वैत हो गया। एक का दो हुआ। एकड़े एक और बिगड़े दो। राग मेरा, ऐसा द्वैत हुआ तो बिगड़ गया। मिथ्यात्व हुआ, अज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

भोगों का भोक्ता बनकर, कर्मों का कर्ता—विकाररूपी परिणाम का कर्ता हुआ।

समझ में आया? शरीर, कर्म जड़ का तो कर्ता हो सकता नहीं। अज्ञान में भी कर्ता नहीं हो सकता। परद्रव्य का क्या करे आत्मा? आहाहा! **भोगनिकौ भोगी ह्वै करमकौ करता भयौ, हिरदै हमारे राग द्वेष मोह मल है।** उस कारण से हृदय में—ज्ञान की पर्याय में—अपने निजानन्दस्वरूप (की) पर्याय—वर्तमान अवस्था में **हिरदै हमारे राग द्वेष मोह मल है।** उसकी पर्याय में पर मेरा, ऐसा मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष भाव, वह दशा में मल है, वह मैल है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी विपरीत चाल भई जो अतीत काल,.... आहाहा! सेठाई की तो ऐसा राग-द्वेष किया, ऐसा कहते हैं। धूल भी नहीं किया पर का। भीखाभाई! कुछ किया नहीं। चूड़ी का व्यापार और वह क्या कहलाता है तुम्हारा टपाली.... ? पोलीस पटेल—तलाटीपना। कुछ किया नहीं, ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष किया है। भीखाभाई! अपने त्रिकाली वीतरागमूर्ति को भूलकर राग-द्वेष परिणाम जो स्वभाव में नहीं, ऐसे उल्टे को किया और उसको भोगा। आहाहा! वह तो अनात्मा है। आहाहा! क्या करे? आत्मा तो यह न करे, भाई! आत्मा तो भूल करता ही नहीं। भूल करती है वह पर्याय—अज्ञान—अनात्मभाव। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है न, इसलिए लोगों को बैठती नहीं। मूढ़ महा मान... मान। ऐई! सोनगढ़ व्यवहार उड़ाता है। निश्चय की बात अकेली करता है। अरे प्रभु! सुन तो सही। व्यवहार किसे कहते हो तुम? जो राग-द्वेषरूप परिणाम हैं, वह तो विभाव है। उसे अपना मानना और अपना मानकर कर्ता हुआ, उसका भोक्ता हुआ तो वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

कभी यह बात रुचि नहीं उसे अनादिकाल से। देखो, यहाँ भूल तो अपनी कही है। दूसरा कर्म भूल कराता है, ऐसा कहा नहीं। तुम्हारे कहते थे न, कर्म भूल करावे, भटकावे। कल भी आया न वह दरबार का पत्र है। ऐसा कहते हैं कि आत्मा के मोक्ष की माया विरोधी है। माया (है), सब छोड़ दो। क्या छोड़े? वह तो परचीज़ है। कहाँ ग्रही थी कि छोड़े? आत्मा ने क्या रजकण पकड़ा है? वह तो मिट्टी है, धूल है। कर्म जड़ को पकड़ लिया है? उसने पकड़ा है विभाव। समझ में आया? वह उसका अज्ञानभाव है। अज्ञानभाव से रुला है। वह यहाँ कहते हैं। भीखाभाई!

जहाँ हो वहाँ जैन में कर्म... कर्म... कर्म... कर्म। दूसरे को ईश्वर बड़ा, इसको

कर्म बड़ा। ... मर गये न उसमें। जगत कहता है कि मुझे ईश्वर ने चार गति में रुलाया। तब और यह जैन कहे, हमें कर्म ने रुलाया। तो उसका तो ईश्वर चैतन्य और तेरा (ईश्वर) कर्म जड़। समझ में आया भैया? वह कहते हैं न कि ईश्वर ने कराया। ईश्वर सब करते हैं। कोई ईश्वर (कर्ता) है नहीं। सब स्वतन्त्र चीज़ है। तब यहाँ जैन में कहते हैं कि हमें कर्म ने रुलाया, भैया! उसने चैतन्य ईश्वर को कर्ता बनाया, तुमने जड़ को कर्ता बनाया। ऐसा है ही नहीं। कर्म रुलाते नहीं, कर्म छोड़ते नहीं। कर्म तो परपदार्थ की परिणति है। वह तो उसमें परिणति—अवस्था होती है।

यहाँ तो कहते हैं, **हिरदै हमारे राग द्वेष मोह मल है।** जेठाभाई! यह तो एक भी बात सुनने को मिली नहीं इसे, लो।

मुमुक्षु : कहाँ से मिले? वहाँ हो नहीं तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अरे! इसके घर की चीज़... 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' दूसरा भुलावे कौन? 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' भगवान की स्तुति में आता है। चन्द्रनाथ, कैसे? चन्द्रप्रभ जयमाला में आता है। भगवान की (पूजा की) जयमाला है न। 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' जड़ कर्म बेचारे अजीव क्या करे? मैंने भूल की, तब कर्म को निमित्त कहने में आया। 'अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पायी।' अग्नि पर घन पड़ते हैं घन, वह लोहे की संगति करती है तो घन पड़ते हैं। भिन्न अग्नि (पर) कोई घन मारते हैं? लोहे में अग्नि घुसती है तो घन पड़ते हैं। उसी प्रकार कर्म का संग किया तो विकार उत्पन्न हुआ। उससे दुःख के घन पड़ते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसी विपरीत चाल भई जो अतीत काल,... अब तक अनादि काल से, अतीत अर्थात् भूतकाल अनन्त काल से ऐसी विपरीत चाल हुई मेरे कारण से। समझ में आया? **ऐसी विपरीत चाल भई... चाल** (अर्थात्) गति—परिणमन। उल्टा-विपरीत परिणमन हुआ। आहाहा! जो अतीत अनन्त काल (से) हुआ **सो तो मेरे क्रियाकी ममताहीकौ फल है....** आहाहा! मेरी क्रिया जो राग की, पुण्य की, पाप के परिणाम, उस क्रिया का फल चार गति में रुलना है। क्रिया की ममता—मेरी है न मेरी क्रिया। राग मेरा, पुण्य मेरा, दया-दान-व्रत विकल्प राग की क्रिया, वह मेरी। छहों कारक खड़े हुए।

उसमें विशेष स्पष्टीकरण है न। '**यतो जातं क्रियाकारकैः**' अनादि से अपने स्वरूप को भूलकर वह पुण्य-पाप का भाव का कर्ता हुआ। वह मेरा कार्य है, वह मेरा कारण है अथवा मेरे कारण से उत्पन्न हुआ। समझ में आया? वही राग-विकार है, (उसे) अपने में रखा, अपने से उत्पन्न हुआ, अपने आधार से उत्पन्न हुआ। ऐसा षट्कारक अज्ञान में उत्पन्न किया। आहाहा! गजब भाई! धर्म का स्वरूप ऐसा वीतराग का! बेचारे जवानों को तो सुनने मिले नहीं। वृद्ध हों, वे झोंके खाये और... तथा पूर्व की जो बात बैठी हो, उससे दूसरी सुने तो, नहीं यह क्या? यह और ऊँची कहे। वह खोटी न कहे यहाँ, इसलिए ऊँची कहे। आहाहा! भाई! मार्ग ही ऐसा है। ऊँची कहे या हल्की कहे, यह मार्ग ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : महाराज! ऊँचा जाने के लिये बात भी ऊँची होनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँची कहते हैं, यह ऐसा नहीं कहते हैं। ऊँची है, हमारे लिये दूसरी क्रिया होनी चाहिए। आप कहते हैं, ऐसा नहीं, ऐसा। आहाहा! ओहोहो!

ऐसी विपरीत चाल भई जो अतीत काल,... चाल के साथ काल। कवि है न कवि। **ऐसी विपरीत चाल भई जो अतीत काल,...** अब तक अनन्त काल से मेरी विपरीत गति ऐसी हुई। **सो तो मेरे क्रियाकी ममताहीकौ फल है।** आहाहा! कहते हैं कि पुण्य-पाप के विकल्प जाति विभाव जो उत्पन्न होता है, वह मेरा है, मेरा कर्तव्य है, मैं करनेवाला हूँ, मेरे आधार से उत्पन्न हुआ—ऐसी पर्यायदृष्टि में भूल उसकी है। समझ में आया? आहा! **मेरे क्रियाकी ममताहीकौ फल है।** पुण्य विभाव, आहाहा! क्रिया राग की परिणति—विकार की दशा, वह क्रिया का फल। मेरी क्रिया की ममता—उसकी (क्रिया की) ममता का फल, ऐसा। यह राग मेरा है, ऐसी दृष्टि में चार गति में मैं अनन्त काल रुला। आहाहा! यह चार गति में भटका क्यों? कर्म के कारण से नहीं। ऐई जेठाभाई!

वह की वह बात आयी अभी अहमदाबाद में। वह जमींदार कहे, लो। क्षत्रिय हो न तुम? ऐसी बात कहाँ से लाये? भाई! हम कानजीस्वामी के पास सुनने जाते हैं, वहाँ से लाये हैं। समझे? कल पत्र आया था न जमींदार का। जमींदार है। पच्चीस हजार की आमदनी है। पच्चीस हजार तो अभी साधारण है न। बारह महीने में पच्चीस हजार की

आमदनी—उपज है जमींदारी की। आते हैं, यहाँ बहुत आते हैं। कक्षा में आते हैं। वहाँ उस एक व्यक्ति ने कहा, माया, वह मोक्ष की विरोधी है, इसलिए माया छोड़ो। ऐसे यह स्त्री, कुटुम्ब, यह धन्धा छोड़ दो। धूल भी माया विरोधी नहीं। वह तो परचीज है। उसने ऐसा जवाब दिया कि अपने स्वरूप को भूला, वह अज्ञान उसका विरोधी है। स्वभाव का विरोधी तो अज्ञान है। ऐई! बहुत सरस! या जड़ और चैतन्य की भिन्नता का भान नहीं, उस कारण से रुला है। कर्म ने रुलाया है, ऐसी बात है नहीं। कर्म बेचारे कौन? वह तो जड़ है। परन्तु जैन में रहते हुए भी खबर नहीं, भान नहीं। हम जैन। वे (अपने को) जैन कहे। बोले और भान नहीं होता। जैन क्या—किसे कहते हैं? परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव वीतरागदेव ने तो आत्मा का ऐसा स्वरूप कहा है। समझ में आया?

जैन में जन्मे परन्तु जैन की खबर नहीं। कल कहा था न वह? थैली में चिरायता—चिरायता। ऊपर लिखा शक्कर नाम लिखा। तो क्या शक्कर नाम लिखने से चिरायता मीठा हो जाता है? ऐसे हम जैन हैं। परन्तु जैन नाम कहाँ (से) आया? नाम से जैन हो गये? अन्दर विकार पुण्य-पाप का भाव है, वह मेरा नहीं, मेरी चीज़ तो आनन्द है। ऐसी चीज़ का भान हुआ, उसका नाम जैन कहते हैं। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं है। जैन तो वस्तु का स्वभाव है। भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा, यही वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? अभी तो लड़के भी आगे बढ़ गये हों और पिता पीछे रह जाये। ऐई! सुहाता है? ऐसा कि समझनेवाले लड़के हों तो लड़के भी बढ़ जाते हैं बाप से, ऐसा। आहाहा! ऐसी चीज़!

कहते हैं, पुण्य-पाप का, शुभ-अशुभराग का विभाव, यह राग की विभाव की क्रिया मेरी नहीं। परन्तु वह मेरी है, ऐसी ममता का फल चार गति में रुलना है। यह मम, यह मम नहीं। आहाहा! समझ में आया? दृष्टि में अन्तर है। अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य आत्मा, जैसा सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा, ऐसे आत्मा में ममपना—मैं(पना) नहीं। पर, राग आदि, पुण्य आदि, जिसे भगवान ने आत्मा नहीं कहा, ऐसा पुण्य-पाप तो अनात्मा आस्रवतत्त्व है। समझ में आया? उसकी ममता का फल मिथ्यात्व और उससे चार गति में रुलता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह तो जैन में जन्मे तो भी अपने को कर्म (भटकाते हैं)। कर्म का उदय आवे तो अपने को भटकना पड़ता

है। कर्म आवे तो राग-द्वेष करना पड़ता है। कर्म आवे तो आत्मा ऐसा दुःखी होता है। अरे! पर यह सीखा कहाँ से ऐसा? जैन परमेश्वर तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? नटुभाई!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर शास्त्र में तो ऐसा कहते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ऐसा कहते हैं। हाँ, है, है। उसमें लेख ऐसा श्वेताम्बर में इस प्रकार से शैली ही यह सब है। परन्तु यों भी यहाँ दिगम्बर में ऐसा आवे न, ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान रुका। ऐसा आवे। परन्तु यह तो निमित्त का ज्ञान कराने की बात है। क्या जड़ आत्मा को रोके? पर अजीव, वह तो धूल है। जैसे यह मिट्टी है, वैसे मिट्टी है। तो मिट्टी अपनी पर्याय को रोके? अपनी पर्याय अपने से उल्टी दशा से रुकती है, पर के कारण से नहीं। वह तो यहाँ कहते हैं। पण्डितजी!

कुछ भान नहीं होता। जैन हुए। यह क्रिया करो, सामायिक करो और प्रौषध करो और यात्रा करो, रात्रिभोजन नहीं करो। धर्म हो गया। धूल भी धर्म नहीं। समझ में आया? वह तो सब विकल्प है, राग है। राग की ममता का फल चार गति में रुलना है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। मम—मेरा स्वरूप भगवान आत्मा, उस ओर की दृष्टि नहीं और राग के-विकल्प के विभाव पर दृष्टि पड़ी, उसका फल चार गति में रुलने का कारण है। एक श्लोक में ऐसा भर दिया, देखो! ओहोहो!

अब कहते हैं कि क्रिया की ममता का फल। यह रागक्रिया, हों! आत्मा अक्रियस्वरूप ज्ञानानन्द है। यह राग-विकल्प उठते हैं—दया-दान-व्रत-भक्ति, काम-क्रोध-हिंसा-झूठ-चोरी-विषयभोगवासना—यह सब विकल्प जो हैं, यह राग की क्रिया है। इस क्रिया की ममता कि यह मेरी क्रिया है। (उससे) चैतन्य भगवान मेरा, ऐसी दृष्टि छूट गयी अनादि से। आहाहा! समझ में आया?

ग्यान दृष्टि भासी भयौ क्रियासौं उदासी.... ज्ञान दृष्टि भयी अब तो। मैं तो आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्द की मूर्ति परमेश्वर वीतरागदेव ने कहा (ऐसा)। दूसरा कोई कहते हैं, उसे आत्मा की खबर नहीं। वीतरागदेव के अतिरिक्त दूसरे को आत्मा की खबर नहीं। समझ में आया? सब धर्म समान हैं, ऐसी बात जैन में नहीं। परमात्मा त्रिलोकनाथ

सर्वज्ञ ने कहा आत्मा, वह आत्मा ऐसा है। पूर्णानन्द चैतन्यमूर्ति भगवान पर्याय में भूल करता था, वस्तु मेरी यह है, ऐसा अनुभव करके अज्ञान का नाश किया। समझ में आया? आहाहा!

ग्यान दृष्टि भासी.... जब ज्ञानदृष्टि हुई, ओहोहो! यह तो चैतन्यस्वरूप! यह तो राग कहाँ और चैतन्यस्वरूप कहाँ! आहाहा! समझ में आया? मैं तो चैतन्यप्रकाश का पुंज हूँ, चैतन्यमूर्ति मैं हूँ। चैतन्यप्रकाश। यह बाहर (का) प्रकाश परमाणु का है। चैतन्यप्रकाश का नूर, इसका पूर मैं हूँ। आहाहा! राग आदि मैं नहीं। राग नहीं तो शरीर-फरीर तो कहाँ से (मेरा) आया? वह तो परवस्तु है जड़, धूल। ऐसी **ग्यान दृष्टि भासी...** जब अपने चैतन्यस्वरूप का भान हुआ... श्रीमद् में ऐसा कहते हैं न, देखो न! शरीर आदि से भिन्न केवल चैतन्य... क्या? लाईन भूल गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो।' अपूर्व अवसर में आता है श्रीमद् में। उसकी भी इसे खबर नहीं पड़ती। यह हाँक रखता है। भक्ति करो भगवान की और गुरु की, हो जायेगी मुक्ति। अवतार छूट जायेगा। ऐसा अवतार मिला, उसमें यदि यह वस्तु नहीं समझा—समझ में नहीं आया, जिन्दगी चली जायेगी। समझ में आया? आहाहा!

'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो।' उसमें देह भिन्न में रागसहित, ऐसा कहा नहीं। वह तो राग, शरीर से भिन्न अकेला चैतन्य ज्ञाता-दृष्टास्वरूप (उसकी) ज्ञानदृष्टि हुई। तब सम्यग्दर्शन हुआ। तब धर्म की प्रथम श्रेणी प्रगट हुई। तब से धर्म करनेवाला कहने में आता है। उससे पहले जब तक राग-द्वेष का कर्ता होता है और भोक्ता होता है, तब तक अधर्मी कहा जाता है। यहाँ तो स्पष्ट बात है न! यहाँ कहाँ झटककर... यह बात है। आहाहा!

ग्यान दृष्टि भासी भयौ क्रियासौं उदासी... विकल्प—जो राग और पुण्य की वृत्ति उठती है, उससे उदास हुआ। मेरा नहीं, मेरी चीज़ में नहीं। अहाहा! देखो, व्यवहार से मुक्त है, यह आ गया। **ग्यान दृष्टि भासी भयौ क्रियासौं उदासी...** यह

व्यवहार क्रिया जो दया-दान-व्रत-भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प-राग— उससे तो **क्रियासौं उदासी भयौ....** है, उससे उदास हुआ। त्रिकाल है, उसकी आस्था हुई, दृष्टि हुई। आहाहा! समझ में आया? **ग्यान दृष्टि भासी भयौ क्रियासौं उदासी...** सबमें 'भ' भाषा रखी है। **ग्यान दृष्टि भासी भयौ क्रियासौं उदासी...** कवि है न यह तो बनारसीदास।

मिथ्या मोह निद्रामैं सुपनकोसौ छल है। आहाहा! क्या हुआ अभी तक यह? समझ में आया? मिथ्यात्व की मोहनिद्रा में स्वप्न जैसा छल हुआ। आहाहा! हुआ क्या? ज्ञानस्वरूप भगवान किसे करे? क्या राग को करे? राग को भोगे? यह ज्ञानस्वरूप चीज़ है, ऐसा जब भान हुआ, यह क्या हुआ? स्वप्न हो गया। भूल (थी वह) स्वप्न हो गया। वह मेरी मूल चीज़ ही नहीं। राग मेरा नहीं। स्वप्न हो गया। समझ में आया? आहाहा! एक श्लोक में कितना भर दिया है! आचार्यों ने गजब काम किया है! एक-एक श्लोक में शुरुआत से पूर्ण... विपरीत क्यों दृष्टि हुई? साधक कैसे हो और साधक से साध्य—सिद्धपद कैसे होता है? तीनों चीज़ें एक कलश में भर दी हैं। आहाहा! शान्ति से, धीरज से समझने में ले तो (कार्य हो सकता है)। उसे ऐसे-ऐसे पढ़ लिया। समयसार नाटक पढ़ लिया।

अपना आत्मा ज्ञानपुंज प्रभु में पुण्य-पाप का विभाव विकल्प की गन्ध नहीं। समझ में आया? ऐसी गन्ध जब तक अपने में मानी, तब तक तो मिथ्यात्व से चार गति में रुला। आहाहा! कहते हैं न, व्यवहार से निश्चय होता है। यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार की गन्ध नहीं आत्मा में। कहाँ से निश्चय होता है? आहाहा! भगवान आत्मा अपनी दृष्टि में पुण्य-पाप के भाव का पर्यायबुद्धि में अस्तित्व मानता था, वह दृष्टि छोड़ दी। मैं तो ज्ञानपुंज आत्मा आनन्द का कन्द निजानन्द प्रभु हूँ, ऐसी दृष्टि—ज्ञानदृष्टि हुई, पूर्व की भूल स्वप्न जैसी लगी। आहा! जैसे स्वप्न आये और चला जाये, वैसे यह क्या हुआ? आहाहा! कैसे हुआ? राग का कर्ता, राग का भोक्ता हुआ कैसे आत्मा? समझ में आया? आहाहा!

अरे! अपना स्वभाव भूलकर, अपनी त्रिकाली चीज़ को छोड़कर, कृत्रिम पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव का परिणमन कैसे हो गया? चैतन्य में है नहीं, (वह) हुआ

कैसे ? भान (होने पर) ऐसा होता है, यह कहते हैं। राग और द्वेष का अनुभव करनेवाला राग का भोक्ता ? अरे ! क्या हुआ ? भगवान ! मैं तो आनन्द का भोगनेवाला आत्मा हूँ, यह क्या हुआ ? स्वप्न (समान) हुआ। आहाहा ! समझ में आया ? जैसे स्वप्न आता है और आँख खुल जाये, क्या हुआ ? ओहो ! मैं तो सूखड़ी (मिठाई) खाता था, पेड़ा खाता था। नींद में। समझ में आया ? ऐसे खाता था। कुछ नहीं। आहाहा ! पानी पीता था, भूत आया था, भूत से मैं डर गया था। आता है न स्वप्न। भूत... भूत। ऐसे जहाँ आँख खुली तो भूत भी नहीं और डर भी नहीं। कुछ है नहीं।

ऐसे आत्मा अपने चैतन्यस्वभाव का भान—दृष्टि खुली, क्या हुआ संसार ? कैसे हुआ ? कुछ खबर पड़ती नहीं। आहाहा ! मिथ्यात्व की मोहनिद्रा में... मोह लिया न, मिथ्या(त्व) मोह। राग अपना है, पुण्य परिणाम अपना है, ऐसी मिथ्याबुद्धि, यह **मोह निद्रामैं सुपनकोसौ छल है।** यह स्वप्न जैसा छल हो गया तेरा। समझ में आया ? श्रीमद् में आता है न कुछ ? श्रीमद् में आता है न कहीं।

मुमुक्षु : कोटि वर्ष का स्वप्न....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह, यह। 'कोटि वर्ष का स्वप्न भी जागृत होय समाय, वैसे विभाव अनादि का ज्ञान होत दूर होय।' लो। गुजराती है। कोटि वर्ष का स्वप्न—उसका करोड़ वर्ष का स्वप्न।

कहा था न ? एक सी.जी.शाह था वढवाण का। तो निद्रा में ऐसा (स्वप्न आया) उसे कि चार महीने मैं बाहर गया। क्या कहलाता है तुम्हारा ? बैग। बैग लेकर यहाँ चार महीने (के बाद) मैं आया हूँ अभी। चार महीने जापान, यूरोप घूम-घूमकर। अब ऐसे आँख उघड़ी। कलैण्डर था न कलैण्डर। कहे, यह कल की तिथि यहाँ क्यों रखी ? मुझे तो चार महीने हुए बाहर निकले। परन्तु इस खाट में तुम सोये हो न यहाँ। सी.जी.शाह था विसाश्रीमाली वढ़वाण का। चार महीने घूम आये और बैग रखी। ऐसे आँख खुली। अरे ! यह तिथि क्यों है कलैण्डर में ? चार महीने बाहर था, किसी ने फाड़ी नहीं। क्या हुआ बापूजी ? नटुभाई ! खाट है। वह खाट शाम को बिछाई थी और सोता था और वह जगा। चार महीने .... यहाँ आये थे न। भ्रमणा में। ऐसी भ्रमणा लेकर चला गया।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! भगवान आत्मा... भूल में जो कुछ अपराध, राग-द्वेष अपना माना था, वह चीज़ अपनी नहीं। अपनी चीज़ तो ज्ञान-आनन्दस्वरूप मैं आत्मा हूँ—ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान दृष्टि हुई, **निद्रामैं सुपनकोसौ छल है।** मोह की निद्रा (उड़) गयी वह तो। मोह की निद्रा उड़ गयी। गुजराती है। कोटि वर्ष का स्वप्न—करोड़ वर्ष का स्वप्न आया। एक कलश का यह अर्थ है, लो। १४ है न १४। नीचे १४वाँ कलश है। उसका अर्थ इतना है। इतना अर्थ बनारसीदास ने भरा है। पद्य में ले लिया इतना। गद्य में तो बहुत विस्तार है। पद्य में ऐसा नहीं है। लो, पूरा हुआ वह।

★ ★ ★

काव्य - ५६

(दोहा)

अमृतचंद्र मुनिराजकृत, पूरन भयौ गिरंथ।
समयसार नाटक प्रगट, पंचम गतिको पंथ।।५६।।

अर्थः-साक्षात् मोक्ष का मार्ग बतलानेवाला श्रीअमृतचंद्रजी मुनिराजकृत नाटक समयसार ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ।।५६।।

काव्य-५६ पर प्रवचन

अमृतचंद्र मुनिराजकृत, पूरन भयौ गिरंथ।
समयसार नाटक प्रगट, पंचम गतिको पंथ।।५६।।

अमृतचन्द्र मुनिराज आज से ९०० वर्ष पहले, १००० वर्ष पहले हुए। मूल शास्त्र समयसार के कर्ता २००० वर्ष पहले संवत ४९ (में)... कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त संवत् ४९ (में) भरतक्षेत्र में थे। भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा वर्तमान तीर्थंकर विराजते हैं। महाविदेह में विराजते हैं अभी। शरीरसहित हैं, केवलज्ञानी हैं।

चार कर्म बाकी हैं, चार कर्म का नाश किया है। अरिहन्तपद में वर्तमान विराजते हैं, मनुष्यक्षेत्र में। कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे। आठ दिन रहे थे। दिगम्बर सन्त थे। समझ में आया? वहाँ से आकर समयसार शास्त्र बनाया। समयसार की टीका अमृतचन्द्राचार्य ने की। अमृतचन्द्राचार्य ने यह कलश बनाये। कलश का ग्रन्थ यहाँ पूरा हुआ, यह कहते हैं। समझ में आया?

अमृतचन्द्र मुनिराजकृत.... बनारसीदास कहते हैं, **पूरन भयौ गिरंथ समयसार नाटक प्रगट, पंचम गतिकौ पंथ...** आहाहा! मोक्ष का पंथ यह है। समझ में आया? नरक, पशु, मनुष्य, देव—वह चार गति तो दुःखदायक हैं। उसमें जन्म जीव को कलंक है। समझ में आया? यह पंचम गति का पंथ। मोक्षगति—सिद्धगति, उसका पंथ समयसार। समयसार अर्थात् आत्मा। शब्द—समयसार। भाव—आत्मा। अब १५वाँ कलश है न।

स्वशक्तिसन्सूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ।।१५।।

अन्तिम कलश है उसका अर्थ—साक्षात् मोक्ष का मार्ग बतलानेवाला। विशेष में .....चन्द्रसूरी कहा। अमृतचन्द्रजी मुनिराजकृत नाटक समयसार ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। हिन्दी था। समयसार... भाव आना चाहिए न। क्या कहते हैं अर्थ में? '**स्वशक्तिसंसूचित-वस्तुतत्त्वैर्व्याख्या**' यह समयसार की टीका जो हुई, वह शब्द से हुई है, आत्मा से नहीं—ऐसा कहते हैं। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्यसूर्य है। उसमें शब्द कहाँ है कि वह शब्द बनावे? आहाहा! समझ में आया? '**स्वशक्तिसंसूचित**' परमाणु भाषा (वर्गणा) में अपनी शक्ति है, उससे सूचित हुआ '**वस्तुतत्त्वैर्व्याख्या**' वस्तुतत्त्व की यह व्याख्या शब्द ने की है, मैंने नहीं की। यह बड़े वकील तो कोर्ट में वहाँ कहे, ऐसा है, ऐसा है। कहना पड़े वहाँ। ऐसा है, ऐसी भाषा हम करते हैं, ऐसी दलील करते हैं, लो। यहाँ तो कहते हैं, भाषा की पर्याय आत्मा से होती ही नहीं कभी। वह तो जड़ है, जड़ से उत्पन्न होती है वह भाषा। आत्मा में है भाषा? समझ में आया? अमृतचन्द्र आचार्य मुनिराज दिगम्बर सन्त ९०० वर्ष पहले समयसार की टीका रचनेवाले कहते हैं कि यह शब्द से टीका हुई है, मुझसे नहीं।

यह धन्धा-बन्धा करते हैं न? मूलचन्दभाई! कहाँ गये माणेकलालजी? यह धन्धा दवा का बड़ा करते हैं। कौन करता है? अब निवृत्त होकर यहाँ बैठे। परन्तु करता था वहाँ तक करता था न वहाँ?

मुमुक्षु : तब पुद्गल करता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले!

मुमुक्षु : पुद्गल का काम पुद्गल ही करे न! जीव क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ममता। हमने ऐसा धन्धा किया, ऐसा हमने किया। खजूर का थेला ऐसा रखा। लो, वह याद आया और। भूराभाई अपना पोरबन्दर। खजूर, खजूर का धन्धा है न। खजूर समझते हैं? खजूर नहीं समझते? खजूर को क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : खजूरी बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह खजूर। बड़ा व्यापार है उसका—भूराभाई का। पोरबन्दर। दस वर्ष में बीस लाख पैदा किये। अभी और बीस लाख पैदा किये एक वर्ष में। तो होशियार था तभी किया न यह सब तुमने? धूल में भी नहीं। तुमने तो राग किया था, कहा।

भूराभाई और मनसुखभाई और चार भाई हैं न? करोड़पति। बीस-बीस लाख की आमदनी वर्ष की। अभी करोड़ हो गये। बीस लाख तो उसके पिताजी रखकर गये थे। अब करोड़ रुपये हो गये। खूजर (गोदाम में) चीज़ रह गयी। चार भाई के बीच में २५-२५ आये। यह बाहर में इतना न कहे। जितने पैसे होते हैं, उतना न कहे। उसे खजूर इतना अधिक रह गया खजूर कि भाव घट गये। चौथा लड़का है। वे लोग जाते हैं अरबस्तान में माल लेने को। बसरा। वह खजूर के गोदाम हैं न गोदाम। बखार कहते हैं?

मुमुक्षु : गोदाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : गोदाम। चाबी बन्द कर दो। ताला लगाकर चाबी मेरे पास लाओ। भाव घट गया है (परन्तु) हम बचेंगे। तुम चिन्ता न करो। चौथा लड़का है। कुदरत से ऐसा हुआ। सरकार ने (ऐलान) कर दिया कि हिन्दुस्तान में वहाँ से खजूर

लाना बन्द करो। यहाँ गोदाम में भरी थी इतनी खजूर। अपनी इच्छा से भाव लिया। १५-२० लाख पैदा किये। जिसमें जानेवाला था... कौन करे?

सरकार ने ऐसा किया, हों सरकार ने। बसरा से खजूर लाने का बन्द कर दिया हिन्दुस्तान में। और इसके पास खजूर (का) बहुत माल पड़ा था। बाद में तो बहुत पैसा कमाया। कोई पन्द्रह लाख कहते हैं, कोई बीस लाख कहते हैं। इतना खजूर पड़ा था। सारे हिन्दुस्तान को बेचा। दिल्ली आदि बहुत व्यापारी हैं न। पोरबन्दर यहाँ का मुमुक्षु है। तो क्या अपनी बुद्धिबल से पैदा हुआ है? धूल भी काम करे नहीं व्यापारी। चकोर हो तो भी मर जाये। उसमें कुछ (नहीं)। पुण्य हो तो मिले, उसके बिना मिले नहीं। आहाहा! और वह कहता था कि महाराज! हमने कुछ नहीं किया। मेरे पास न कहे तो दूसरा (किसे) कहे तब। ऐई! और यह लड़के नरम हैं। पूर्व का पुण्य हो तो ऐसी चीज़ नजर में दिखती है। दिखती है, आये क्या और लाये क्या? देखे, यह तो ज्ञान की पर्याय की जानने की शक्ति उसकी है। जाने कि इतना है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने जो टीका बनायी... वे कहें, नहीं, मुझसे बनी है ही नहीं। शास्त्र मुझसे बना है ही नहीं। शास्त्र जड़ की पर्याय है। आहाहा! गजब बात है! यहाँ तो जहाँ हो वहाँ, मैं करता हूँ, मैं करता हूँ। धन्धे में होशियार। ऐई! अनूपचन्दभाई! शिवलालभाई व्यापार में बड़ा होशियार था। भाई! तुम्हारा भाई कहता था वह कि जैसे ईश्वर ने घर बदला, वैसे इसने बदला। ऐसा भीमजीभाई कहते थे। खबर है न यहाँ दृष्टान्त दिया था वहाँ। ईश्वर बदले वैसे हमारे घर में... बातें करते वहाँ। अब घर बदला। यहाँ किया, लो। भाई, किसे करे और कौन छोड़े? वह तो चीज़ जहाँ मिलनी है, वह चीज़ आती है, उसके—जड़ के कारण से। राग करे कि मैंने कमाया, मुझे नुकसान हुआ। वह तो राग-द्वेष करे। दूसरा तो कुछ कर नहीं सकता। आहाहा!

आचार्य कहते हैं, यह तत्त्वव्यवस्था की व्याख्या मैंने नहीं की। है न? '**कृतेयं समयस्य शब्दैः**' यह तो समय के शब्दों ने बनायी यह टीका, मुझसे नहीं। यहाँ तो अभिमान का पार नहीं। कहो, भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : बड़े लोग ऐसा ही कहे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, ठीक। यहाँ ऐसा कहे, नहीं। यहाँ कहते हैं। उन्होंने लिखा है, कलशटीका में ऐसा लिखा है कलशटीका में। बड़े पुरुष हैं। वे हमने किया ऐसा कैसे कहे? परन्तु कर सकता ही नहीं। बड़ा हो या छोटा हो, जड़ का क्या करे? क्या अक्षर बोलने की शक्ति आत्मा में है? अक्षर होता है, वह तो जड़ की पर्याय है। एक अक्षर में अनन्त परमाणु की पर्याय हो, तब अक्षर बनता है। वह तो परमाणु—जड़ की अवस्था है। आत्मा बना सके अक्षर को? भान नहीं होता मूढ़ की भाँति। पण्डित बोलते हैं, ऐसा नहीं। पण्डित कहते हैं कि नहीं, हमने शास्त्र सीखा, हम बोलते हैं। सुनो सुनो। यहाँ नहीं कहते कि सुनो। वह तो सुनने की क्रिया जड़ पर ध्यान रखो, इतनी बात। शब्द क्या अपने से होता है? शब्द सुननेवाले को शब्द से ज्ञान होता है? गजब बात मार्ग वीतराग का!

तो कहते हैं, '**कृतेयं समयस्य शब्दैः**' (इसका) अर्थ तो किया ही नहीं पाठ में, ऐसा लिया न, **अमृतचन्द्र मुनिराजकृत, पूरन भयौ गिरंथ, समयसार नाटक प्रगट, पंचम गतिको पंथ।** इन्होंने हाँ किया अर्थ करके। '**स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति**' आचार्य महाराज कहते हैं, मैं तो ज्ञानस्वरूप में रहनेवाला हूँ। मैं कोई शब्द में आया हूँ, राग में आया हूँ—यह तो है नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई! भगवान चैतन्यस्वरूप चैतन्यप्रकाश, वह तो अपने में अस्ति में रहा है। मैं तो अपने ज्ञानस्वरूप में रहा हूँ। विकल्प और वाणी में तो मैं आया ही नहीं, तो कहाँ से मैं रचूँ? समझ में आया? '**स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति**' मेरा कुछ कर्तव्य नहीं। आहाहा! '**न कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः**''**किंचिदस्ति न कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः**' मेरा कुछ कर्तव्य नहीं। भगवान! वाणी की शक्ति में स्व-पर कहने की सामर्थ्य है। परमाणु—वाणी में स्व-पर कहने की सामर्थ्य है, उससे बना है। मैं तो स्व-पर का जाननेवाला हूँ, मैं किसी पर का कर्ता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो जहाँ हो वहाँ मैंने किया, मैंने किया। 'मैं करूँ, मैं करूँ यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खींचे।' जहाँ-तहाँ मैं करता हूँ। शरीर मैं करूँ, वाणी मैं करूँ। वाणी मैं करूँ, शरीर मैं करूँ, यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ। शब्द का अर्थ तो ऐसा

है। उसकी दृष्टि दूसरी है। (लौकिक मान्यता है कि) ईश्वर कर्ता, मैं कर्ता नहीं। कोई कर्ता है नहीं। परमाणु की पर्याय का कर्ता परमाणु है। ईश्वर क्या करे? आहाहा! तत्त्व की खबर नहीं। जीवतत्त्व क्या करे? कि जीव तत्त्व ज्ञाता-दृष्टा की पर्याय रचे, वह भी व्यवहार से। समझ में आया? आहाहा! शरीर की क्रिया, वाणी-भाषा की क्रिया तीन काल-तीन लोक में तीर्थंकरदेव भी नहीं करते। समझ में आया? नौ तत्त्व में अजीवतत्त्व की श्रद्धा कब होती है? कि जीवतत्त्व अपने में है, अजीव में आता नहीं और अजीव अपने से परिणमता है, तब तो अजीव की श्रद्धा यथार्थ कहने में आती है। यह तो अजीव की श्रद्धा—भाषा मैंने की, ऐसा किया। देखो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लावे भाषा? अभी तो कफ के कारण देखो न भाषा जाड़ी हो गयी है। उसे निकलना हो, वैसे निकले। समझ में आया?

'**स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति न कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः**' आहाहा! कोई प्राणी राग की क्रिया का कर्ता माने, वह भी मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। तब परमाणु की पर्याय का कर्ता माने, वह तो महामिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! कहो, समझ में आया? दुकान के ऊपर गद्दी पर कोई होशियार व्यक्ति हो। थड़ा कहलाता है न क्या कहते हैं? थड़ा। बराबर बनाये रखे दुकान की धन्धे की पर्याय। बड़थोल जैसा बैठे तो काम कर सके? नहीं? क्या करे? धूल करे? वह तो बाह्य की क्रिया जड़ की होनेवाली होती है। आत्मा उसका कर्ता-फर्ता है नहीं। जैन परमेश्वर को माननेवाला ऐसा कहे कि मैं जड़ का कर्ता हूँ। वह जैन परमेश्वर को मानता नहीं। समझ में आया? आचार्य कहते हैं कि मैं इस वाणी का, टीका का, शास्त्र का कर्ता नहीं हूँ। अन्यत्र झूठ बोलना? बोलने की बात है, कर सकता तो है नहीं। आहाहा! ऐसे मैं तो ज्ञाता-दृष्टा आत्मा हूँ। वाणी, वाणी के कारण से निकल गयी है। उससे मैं उदास हूँ। ऐसा तात्पर्य निकालकर पर का कर्तापना (समझकर) छोड़ दे। और तेरी ज्ञानशक्ति का कर्ता, शक्ति का परिणमन, उसके तुम कर्ता हो। दूसरे के कर्ता हो नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७८, आसोज शुक्ल १४, रविवार, दिनांक ०३-१०-१९७१
साध्य-साधक द्वार का सार

बारहवें अधिकार का सार

जो साधै, सो साधक; जिसको साधा जावे, सो साध्य है। मोक्षमार्ग में, ''मैं साध्य, साधक मैं अबाधक'' की नीति से आत्मा ही साध्य है और आत्मा ही साधक है, भेद इतना है कि ऊँचे की अवस्था साध्य और नीचे की अवस्था साधक है, इसलिए केवलज्ञानी अर्हंत सिद्ध पर्याय साध्य और सम्यग्दृष्टि श्रावक साधु अवस्थाएँ साधक हैं।

अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी और दर्शनमोहनीय त्रय का अनुदय होने से सम्यग्दर्शन होता है, और सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर ही जीव उपदेश का वास्तविक पात्र होता है, सो मुख्य उपदेश तन, धन, जन आदि से राग हटाने और व्यसन तथा विषय-वासनाओं से विरक्त होने का है। जब लौकिक सम्पत्ति और विषय-वासनाओं से चित्त विरक्त हो जाता है, तब इन्द्र अहमिन्द्र की सम्पदा भी विरस और निस्सार भासने लगती है, इसलिए ज्ञानी लोग स्वर्गादि की अभिलाषा नहीं करते, क्योंकि जहाँ तक चढ़कर 'देव इक इन्द्री भया' की उक्ति के अनुसार फिर नीचे पड़ता है, उसे उन्नति ही नहीं कहते हैं, और जिस सुख में दु:ख का समावेश है, वह सुख नहीं, दु:ख ही है, इससे विवेकवान स्वर्ग और नर्क दोनों को एक ही सा गिनते हैं।

इस सर्वथा अनित्य संसार में कोई भी वस्तु तो ऐसी नहीं है, जिससे अनुराग किया जावे; क्योंकि भोगों में रोग, संयोग में वियोग, विद्या में विवाद, शुचि में ग्लानि, जय में हार पायी जाती है। भाव यह है कि संसार की जितनी सुख-सामग्रियाँ हैं, वे दु:खमय ही हैं, इससे साता की सहेली अकेली उदासीनता जानकर उसकी ही उपासना करनी चाहिए।

बारहवें अधिकार के सार पर प्रवचन

समयसार नाटक। बारहवाँ अधिकार का सार... सार। **जो साधै सो साधक, जिसको साधा जावे सो साध्य है।** क्या कहा? कि यह आत्मा है वस्तु, वह शुद्ध

चैतन्यघन वीतरागमूर्ति आत्मा है। शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, वह तो अजीव है। वह कहीं आत्मा नहीं, वह आत्मा में नहीं। तथा कर्म जो है, वह कहीं आत्मा नहीं। वह तो अजीव है, जड़ है। वह आत्मा में नहीं। तथा पुण्य और पाप के भाव शुभ-अशुभभाव होते हैं, वे कहीं आत्मा के नहीं, आत्मा में नहीं। अब रहा आत्मा। उसमें तो अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त पुरुषार्थ का पिण्ड, वह आत्मा है। समझ में आया? वह आत्मा... साधे सो साधक। अपना स्वरूप पूर्ण परमात्मदशा, वह सिद्ध या अरिहन्तदशा, अरिहन्त या सिद्धदशा, वह उसका साध्य। साधक अर्थात् जिसके द्वारा साधा जाये।

जिसको साधा जावे,.... ऐसा। जिसके द्वारा (साधे), वह तो साधक। जिसको साधा जाये। केवलज्ञान प्रगट करना, सिद्धपद प्रगट होना, वह आत्मा का साध्य है। समझ में आया? और साधक, वह आत्मा स्वयं शुद्ध चैतन्य पुण्य-पाप के विकल्प और रागरहित, उस आत्मा-सन्मुख की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल वीतरागी पर्याय, वह आत्मा साधक। आत्मा साधक (अर्थात्) आत्मा की पर्याय, वह साधक। वह मोक्ष का मार्ग। समझ में आया?

मोक्षमार्ग में, 'मैं साध्य, साधक मैं अबाधक' छहढाला की बात है। छहढाला में आता है। मैं साध्य-साधक। धर्मी ऐसा समझता है कि आहाहा! मैं एक आत्मा शान्तरस का पिण्ड प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो दशा—पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण पुरुषार्थ प्रगट हुआ, उस सब पुरुषार्थ का पिण्ड और ज्ञान का पिण्ड मैं हूँ। समझ में आया? ऐसा आत्मा कहता है कि मैं साध्य। मैं ही मेरी पूर्णदशा प्राप्त करने के योग्य वह मैं। और मैं साधक। पूर्ण केवलज्ञान और अरिहन्तपद को प्राप्त करने का कारणरूप हूँ। पुण्य और पाप तथा निमित्त, शरीर आदि कोई कारण साधक नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म—बारीक है। दुनिया बाहर की सिरपच्ची में मरी है। क्रिया करो और यह करो और वह करो। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव की वाणी में ऐसा आया कि धर्मी आत्मा स्वयं अपने को साधक मानता है और स्वयं अपना साध्य स्वयं प्रगट करता है। आहाहा! जयन्तीभाई! गजब! मैं साध्य। मैं एक आत्मा। यह (शरीर) तो मिट्टी, जड़,

धूल, कर्म जड़, धूल। परन्तु खबर नहीं होती, बोले सही ऐसा। अर्थ की खबर नहीं होती। लोगस्स में आता है 'विहुयरयमळा।' आता है न।

हे परमात्मा! हे सिद्ध भगवान! अरिहन्त! आपने विहुय अर्थात् टाले हैं, रज अर्थात् जड़ कर्म और मल अर्थात् पुण्य-पाप का मैल भाव। वह इसकी चीज़ नहीं, इसलिए टल गयी है, ऐसा कहते हैं। परन्तु अर्थ की कुछ खबर (नहीं)। जय नारायण। 'नमो लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे।' जय नारायण। अर्थ की कुछ खबर नहीं होती। परन्तु धर्म कब होता है, खबर है? वह धर्म करनेवाला आत्मा कैसे स्वभाव से, किस स्थिति से, किसी रीति से है? वह आत्मा है, वह स्वयं साधक होता है। पुण्य-पाप के विकल्प और राग, वह साधक नहीं होता। आहाहा!

देखो न, **मैं साध्य, साधक मैं अबाधक...** तीन शब्द लिये हैं छहढाला के। मैं एक आत्मा ज्ञान और आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति। 'समाहिवरमुत्तमदिंतु' नहीं आता? इसके अर्थ की खबर नहीं होती। जय नारायण। बनिया बोल जाये ऐसा का ऐसा, बस। धीरुभाई! समाहि इसका अर्थ अर्थात् क्या होगा? वे बाबा चढ़ावे समाधि ऐसी होगी? समाधि। 'समाहिवरमुत्तमदिंतु।' हे परमात्मा! मुझे तो आत्मा आनन्द की समाधि चाहिए। मुझे पुण्य-पाप के विकल्प और राग चाहिए नहीं। ऐसी धर्मी भावना करता है। धीरुभाई! आता है तुम्हारे? लोगस्स में आता है। किया था? हाँ। परन्तु कण्ठस्थ किया था न तुमने। आहाहा!

'समाहिवरमुत्तमदिंतु।' आता है न। 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु।' हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धि देना। सिद्ध भगवान देते हैं सिद्धपद? सिद्ध भगवान तो परचीज़ हैं। यह तो अन्दर स्वयं पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान का भण्डार भगवान है, उसमें से केवलज्ञान आता है। ऐसी जो चीज़ स्वयं, वह सिद्ध प्रभु तू। 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु।' मेरी पूर्णदशा को प्राप्त होओ। वह साध्य। आहाहा! मैं साध्य और साधक, ऐसा कहा है। उसमें कहीं पुण्य और पाप साधक, व्यवहार साधक और निश्चय साध्य, ऐसा नहीं कहा। परन्तु यह मैं साधक अर्थात् मैं आत्मा। वह (शुभराग) आत्मा हो गया? समझ में आया? वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है वहाँ। है नहीं। ऐसा कहते हैं न, तीन शब्द प्रयोग किये हैं इसमें।

मैं आत्मा चैतन्यज्योति अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड मैं ही पूर्ण प्राप्ति करने का साध्य मैं हूँ। मेरा साध्य कोई दूसरे सिद्ध भगवान या अरिहन्त हैं नहीं, ऐसा कहते हैं। मेरी पूर्ण केवलज्ञान की दशा, वह मुझे साध्य है। मुझे साधने का हो तो वह है। और साधक को साधन कौन? कि मैं साधन। 'मैं' कहा है न! 'मैं' अर्थात् आत्मा। आत्मा अर्थात् वह तो पुण्य-पाप के विकल्प के राग रहित और अविकारी शान्तरस का भरपूर। आहाहा! वह गाथा देखी थी। श्लोक आता है न **मज्जन्तु।** सवेरे कहा था। '**मज्जन्तु निर्भरममी सममेव लोका**' आचार्य कहते हैं। जीव अधिकार पूरा होता है न, आत्मा का अधिकार।

मैं पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्तस्वरूप विकाररहित, शरीररहित, वह तुझे बताऊँगा कि यह आत्मा। इस आत्मा में पूरा लोक सर्व समस्त **सममेव** एक साथ पड़ो यहाँ। आत्मा के शान्तरस में आ जाओ, भाई! तुम्हें कहीं अन्यत्र सुख है नहीं। पूरी दुनिया को उन्होंने आमन्त्रण दिया है। प्रसन्न हुआ आत्मा पूरी दुनिया को कहता है। आहाहा! ऐसा भगवान, यह दया-दान-व्रत-भक्ति के विकल्प उठें, वह रागरहित चीज़ है। वह चीज़ आत्मा की हो तो सिद्ध में भी रहना चाहिए। परन्तु खबर नहीं होती कुछ। खबर एक की भी खबर नहीं। ऐ धीरुभाई! मन्दिर बनाओ। बना दो एकाध—दो। उपाश्रय बना दो। या प्रौषध किये हों उसे दो रुपये दो, जाओ। दो-दो—तीन-तीन। धर्म हो गया, लो। धूल में भी धर्म नहीं।

यहाँ कहते हैं, मैं साध्य। जिसे मैंपना—चैतन्यपना, आनन्दपना, आत्मपना है, वह धर्म की पूर्णदशा की प्राप्ति का साधन मैं हूँ। व्यवहार, दया-दान और व्रत विकल्प, वह साधन है नहीं। आहाहा! बीच में आवे, वह तो बाधक है। तब मैं अबाधक हूँ, ऐसा कहते हैं, देखो! समझ में आया? मेरी चैतन्य चीज़ भगवान आत्मा जिसमें अतीन्द्रिय सुख का सागर प्रभु है। समझ में आया? अरे! यह कैसे बैठे? जगत की चीज़ की कीमत करे। हीरा माणेक की परीक्षायें करे। 'परख्या हीरा-माणेक-मोती परख्या हेम कपूर, परन्तु एक आत्मा नहीं परखा, वहाँ रहा दिग्मूढ़।' आहाहा! तू कौन? कहे, यह अपने को कुछ खबर नहीं पड़ती। आहाहा!

ऐसी परीक्षा करने बैठे, बड़ा देव का पुत्र उतरा मानो ऊपर से। ऐसे दाना ऐसा हो

और ज्वार ऐसे मोती के दाने जैसी हो और बाजरा मूँग के दाने जैसा और ढींकणा। सब बात उसके प्रमाण में करे न सब। हीरा ऐसा और माणेक का.... अभी नहीं को जवेरी। हीरा और माणेक। तुम्हारी घड़ियाँ। घड़ी की जाँच करता होगा तब कितना .... होता होगा स्वीट्जरलैण्ड। ऐसी घड़ी होती है और उसका काँटा ऐसा होता है। तुम्हारी लड़की ऐसा करती, हों! यह विवाह किया वह। क्या कहलाता है उसमें घड़ी का?

मुमुक्षु : पार्ट्स।

पूज्य गुरुदेवश्री : पार्ट्स। वह ऐसा करती। शौक था न। उसके पिता की एक ही पुत्री। परन्तु वह शौक था उसे। विवाह (कराया) न इनके पुत्र ने। आठ लाख खर्च किये एक (विवाह) में। दो करोड़ में आठ लाख की क्या गिनती परन्तु? यह दुनिया के कोयला के धन्धे हैं सब। समझ में आया?

भगवान आत्मा वह राग और रजकणरहित चीज़ अर्थात् कि अरागी और अरूपी चैतन्यघन जीव—आत्मा। अजीवरहित अर्थात् अकेला जीव चैतन्यमूर्ति आनन्द। रागरहित अर्थात् अकेला वीतरागमूर्ति आत्मा। समझ में आया? परन्तु अब यह सुना भी न हो वहाँ। भगवान वीतरागदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर अरिहन्त ऐसा फरमाते हैं कि मैं साध्य, साधक और अबाधक। तू स्वयं एक बार निर्णय कर। पण्डितजी! मेरे स्वरूप में... स्व रूप मेरा, यह ज्ञान के तेजवाला और आनन्द के स्वभाव के सुखवाला ऐसी मेरी चीज़ और वह मैं। उसमें मेरा स्वभाव शुद्ध चैतन्य, उस पूर्ण की प्राप्ति करने को मेरा शुद्ध चैतन्य पर्याय अपूर्ण साधकपर्याय को स्वभाव की उसे साधक कहते हैं, उसे मार्ग कहते हैं, उसे मोक्ष का उपाय कहते हैं। पूर्ण आनन्द की दशा प्रगट हो, उसे मोक्ष का साध्य कहते हैं।

परन्तु वह सब मैं का मैं हूँ, ऐसा कहा। उसमें कोई पुण्य-पाप और व्यवहार और निमित्त की आवश्यकता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! कब के कहते हैं, सोनगढ़वाला ऐसा करके कहे। अरे! परन्तु सुन तो सही पहले। तूने सुना ही नहीं। सोनगढ़वाले व्यवहार का नाश करते हैं, ढींकणा करते हैं। बाहर बहुत बातें करे सब। परन्तु सुन, एकबार सुन दो-पाँच-दस दिन कि यह क्या है। क्या है और क्या कहते हैं। यह मार्ग इसने कभी सुना नहीं। वीतराग त्रिलोकनाथ कहते हैं, उस पंथ की पद्धति की इसे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं साध्य। मेरी पूर्ण दशा—सिद्धदशा या अरिहन्तदशा, वह मुझे साधनेयोग्य चीज़ है। और मैं साधक। मेरा स्वभाव चैतन्यघन, उसकी अन्तर्मुख की अपूर्ण निर्मलदशा, वह मैं साधक हूँ। सिद्धपद मेरा, उसका साधक मैं हूँ। बीच में दया-दान-व्रत आवे, वह बन्ध के कारण हैं। वह मेरे साधक को मदद नहीं करते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धीरुभाई! अरेरे! यह जिन्दगी चली जाती है। मनुष्य का अवतार मुश्किल से अनन्त काल में मिला। उसमें सत् की समझण (का) सच्चा डोरा यदि सुई में नहीं पिरोया, वह सुई खो जायेगी, हाथ नहीं आयेगी। समझ में आया? डोरारहित सुई हाथ नहीं आयेगी। कहीं खो जायेगी। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी डोरा यदि नहीं पिरोया तो कहीं हाथ नहीं आयेगा। बराबर होगा? आहाहा!

कहते हैं। एक शब्द में ठीक डाला है तुम्हारे छहढाला में। मैं साध्य। मैं अर्थात् आत्मा। आत्मा अर्थात् पवित्र का पिण्ड। वीतराग की मूर्ति वह आत्मा। क्योंकि वीतराग पर्याय में हो, वह कहाँ से होगा? अन्दर में है, उसमें से आता है। मैं अर्थात् वीतरागमूर्ति अरूपी चैतन्यघन। मैं साध्य। मैं ही स्वयं पूर्ण साध्य को प्रगट करनेवाला मैं और साधक भी मैं आत्मा हूँ। राग और निमित्त तथा पुण्य और पाप मुझे साधन-फाधन है नहीं। आहाहा! है न, छहढाला में है। यह छहढाला में से लिया है। छहढाला है न? दौलतरामजी कृत। पूछ लिया और कहाँ से होगा यह?

मैं साध्य, साधक मैं अबाधक.... आहाहा! धर्मी सम्यग्दृष्टि आत्मा के भानवाला ऐसा कहता है कि मैं अबाधक—मुझे विघ्न करने के लिये जगत में कोई समर्थ है नहीं। मुझे कोई विघ्न और बाधा करे, ऐसी कोई चीज़ जगत में है नहीं। अबाधक। समझ में आया? तीन अर्थ हुए। **मैं साध्य, साधक मैं अबाधक....** मैं आत्मा अनन्त पुरुषार्थ का पिण्ड प्रभु और अतीन्द्रिय ज्ञान और अनन्त आनन्द का पिण्ड आत्मा। अरूपीधन।

सुवर्ण की गाँठ जैसे होती है, अधमण की या मण की, जहाँ देखे वहाँ सुवर्ण का रस ही होता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, यह परमाणु और राग के पीछे अकेला अतीन्द्रिय आनन्द और शान्तरस की गाँठ है। आहाहा! शान्तरस अर्थात् वीतरागभाव। भगवान अरिहन्त को वीतरागभाव प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया? बाहर से आता है? अन्दर में है, वह आया। तो हूँ ऐसा ही मैं। आहाहा! यह तो सादी भाषा में समझ में आये

ऐसा है। परन्तु (इसने) कभी दरकार की नहीं। ऐसा का ऐसा दो घड़ी जाये सुनने। मारे वह गप्पा ऊपर से। सुनकर जय... जय करके जाओ पूरा। आसन झटककर गये। यह व्यापार-धन्धा, तेईस घण्टे धन्धा और एक घण्टे सुनना। ऐसा होगा जयन्तीभाई? आहाहा!

....की नीति से आत्मा ही साध्य है,... देखो। मैं साध्य-साधक, मैं अबाधक। आहाहा! बहुत डाला संक्षिप्त में। (इस) रीति से.... इस नीति से और रीति से—पद्धति से आत्मा ही साध्य है। मेरा पूर्ण स्वरूप केवलज्ञान—सिद्धदशा—अरिहन्तपद मेरी दशा, वह मेरा साध्य है। मेरा लक्ष्य—ध्येय वहाँ है। समझ में आया?

और आत्मा ही साधक है। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वभाव (के) अन्तर्मुख होकर निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागीदशा, वह मैं साधक हूँ। आहाहा! व्यवहार, वह मैं नहीं; निमित्त, वह मैं नहीं; यह संहनन मजबूताई और शरीर, वह मैं नहीं। वे मुझे साधक नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! मैं और यह जीव साधक—दो, ऐसा कहते हैं इसमें। स्वयं गुरु और स्वयं देव। अनन्त आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है, तुझे खबर नहीं तेरी तुझे। समझ में आया? तेरी सम्पत्ति में तो अनन्त आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी पड़ी है। ऐसा आत्मा वह मैं।

आत्मा ही साधक। भेद इतना... अन्तर कितना साध्य और साधक में? कार्य और कारण में? कि **ऊँचे की अवस्था साध्य....** अरिहन्त पूर्ण केवलज्ञान की (दशा) और अरिहन्त को हुआ केवलज्ञान, केवलदर्शन अनन्त वह ऊँची दशा, वह साध्य। ऊँचे की अवस्था। अवस्था, हों! दशा। **नीचे की अवस्था साधक है।** निचली दशा। आत्मा पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान—उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसकी एकाग्रता, वह साधक। आत्मा की और आत्मा की पूर्ण अवस्था साध्य और निचली अवस्था साधक। उसे कोई दया-दान और व्रत के विकल्प साधक और उसका साध्य पूर्ण केवलज्ञान, ऐसा है नहीं। है न उसमें?

इसलिए केवलज्ञानी अर्हंत सिद्ध पर्याय साध्य,... देखो। केवलज्ञानी परमात्मा होना, अरिहन्तपना होना, सिद्धपर्याय होना, पर्याय है सिद्ध(दशा), वह पर्याय साध्य—प्रगट करने के योग्य। **और सम्यग्दृष्टि श्रावक साधु अवस्थाएँ साधक है,...** देखो! आहाहा! सम्यग्दृष्टि पूर्ण आत्मा आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्य ऐसी दृष्टि, ऐसा समकिती चौथे

गुणस्थान में हो, गृहस्थाश्रम में हो, छह खण्ड के राज में दिखाई दे। ऋषभदेव भगवान के पुत्र भरत। छह खण्ड का राज। समझ में आया? ९६ हजार स्त्रियाँ घर में। नौ निधान। सोलह हजार देव सेवा करे। परन्तु वह मैं नहीं। वह मैं नहीं। मैं तो आनन्द और ज्ञान का धाम, वह मैं हूँ। यह राग और यह शरीर और स्त्रियाँ, वह मुझमें नहीं, वे मेरी नहीं। आहाहा!

मुझमें तो पूर्ण आनन्द और ज्ञान भरपूर, उसे मैं आत्मा मानता हूँ। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, वह सिद्ध का साधक है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात ऐसी कुछ महँगी! बापू! केवलज्ञानी अरिहन्त... भाषा ऐसी। ऐसे अरिहन्त, अरिहन्त तो बहुत कहलवाते हैं, कहते हैं। केवलज्ञान... एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं अरिहन्त को। ऐसा जो केवलज्ञान अर्थात् कि केवलज्ञानी ऐसे अरिहन्त और केवलज्ञानी ऐसे सिद्ध भगवान 'णमो सिद्धाणं।' 'णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं' यह पद मेरा साध्य है मुझे। मुझे करनेयोग्य यह है। आहाहा! समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसा है यह। वह पुरानी विपरीतता बहुत घुस गयी हो न। वह तो जब से समझ में आये, तब से सवेरा। बात तो ऐसी है, भाई!

यह तो अगम्यगम्य की बात है। अगम को गम्य करना। आहाहा! और खोटा जाना, उसे छोड़ देना। आहाहा! अरे! इसने कभी आत्मा की दया की नहीं, हों! आहाहा! पर की दया करने निकल गया। धूल भी कर सकता नहीं पर की दया। आहाहा! पर की दया तो उसे आयुष्य हो तो बचे। न हो तो मर जाये उसके कारण से। तुझसे बचता है वह? समझ में आया? भारी उल्टी बातें, भाई! जगत की विपरीतता से यह उल्टी। जगत की विपरीतता, उससे यह भगवान का मार्ग उल्टा। उल्टे से उल्टा अर्थात् सुलटा।

केवलज्ञानी—अरिहन्त, सिद्ध। अरिहन्त भगवान को चार कर्म बाकी हैं और सिद्ध भगवान को आठों ही कर्मों का अभाव हो गया है। सीमन्धर भगवान वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकर परमात्मा विराजते हैं, वे अरिहन्तपद में हैं। महावीर भगवान आदि वे अभी सिद्धपद में विराजते हैं। उनको अब शरीर या कुछ है नहीं। वे अरिहन्त और सिद्ध का... केवलज्ञानी अरिहन्त और सिद्ध, ऐसा। समझ में आया? वे साध्य हैं अर्थात् मुझे प्रगट करनेयोग्य हैं तो पूर्ण दशा है, ऐसा कहते हैं। परन्तु साधक सम्यग्दृष्टि

साधक। चौथे गुणस्थान में अविरति सम्यग्दृष्टि। भले आसक्ति छूटी न हो, परन्तु स्वरूप पूर्णानन्द और अखण्डानन्द हूँ, ऐसा अनुभव सम्यग्दर्शन में हुआ, वह सम्यग्दृष्टि मोक्ष का साधक—मोक्ष का उपाय करनेवाला कहा जाता है। समझ में आया?

श्रावक। दूसरे नम्बर में श्रावक होता है। श्रावक अर्थात् यह वाडा के नहीं। श्रावक कहलवाते हैं और भान कुछ नहीं होता। थैली में चिरायता और ऊपर लिखे शक्कर। थैली में चिरायता (और ऊपर) शक्कर लिखे तो मिठास घुस जाती होगी? समझ में आया? करियात समझते हैं न? चिरायता। तुम्हारी हिन्दी भाषा में चिरायता। हमारे यहाँ करियातुं कहते हैं, चिरायता को। थैली में चिरायता—करियातुं, ऊपर लिखे शक्कर। इसी प्रकार अन्दर में राग और पुण्य की क्रिया मेरी और उससे मुझे धर्म होता है। मिथ्यात्व का कड़वा चिरायता भरा है अन्दर। ऊपर कहे कि हम श्रावक हैं। कहो, जयन्तीभाई! वह श्रावक नहीं। सच्चा श्रावक पाँचवें गुणस्थानवाला आत्मा का भान हुआ और पश्चात् स्वरूप में आंशिक स्थिरता हुई, वह साधक है। वह निर्मलदशा जो है, वह साधक है, ऐसा कहना है। समझ में आया?

अरे! चार गति में फांफा मारा...। साधु होकर भी वह क्रियाकाण्ड मेरा और उसमें फँस गया। संसार ऐसा का ऐसा खड़ा रहा। परन्तु उस राग के विकल्प से भी पार मेरी चीज़, (ऐसा) उसने पाताल कुँआ में से पानी नहीं निकाला। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा शुद्ध सिद्धस्वरूपी अन्दर, उसका भान होकर और आंशिक शान्ति और स्थिरता हो, उसे यहाँ श्रावक कहा जाता है। वह श्रावक सिद्ध का साधक है। भीखाभाई! उसमें गर्दन हिलावे कुछ भंग-भेद तैयार हो, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात! आहाहा!

साधु हुए। साधुदशा। समझ में आया? साधु तो जिसे अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द उछल गया है। ज्वार, जैसे समुद्र में ज्वार आवे और ऐसे किनारे से उछल जाये पानी, दो-दो माथोडा (आदमी डूबे इतना), तीन-तीन मथोडा ऐसे। आता है न ऐसे पोरबन्दर, हमने देखा हो न कोलाहल। समुद्र के किनारे तीन-तीन माथोडा, पूर्णिमा के दिन ऐसा। पूर्णिमा चन्द्रमा को और समुद्र को सम्बन्ध है। पूर्णिमा का दिन ज्वार बहुत आता है। इसी प्रकार जिसे मुनिपना अन्दर साधुपना, ओहोहो! ज्वार आ गया उसे। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लवलीन हो गया वह तो। आहाहा! और उस वनवास में रहनेवाले

नग्न मुनि हों, उन्हें वस्त्र का धागा भी न हो। आहाहा! वह मुनिदशा। भाई! अभी मुनिपना भी सुना नहीं।

'मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय।' अभी तो समकित किसे कहना, इसका भान नहीं होता, साधु कहाँ से आया? 'साधु हुआ तो सिद्ध हुआ कहनी न रही कोई।' आहाहा! साधु अर्थात् मुनि। अकेले ज्ञान का अवतार। अकेली ज्ञानदशा जिन्हें आनन्द की प्रगट हुई है। पंच महाव्रत के जो विकल्प हों, परन्तु वे आत्मा में बाधक हैं। वह साधकरूप से है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐई शान्तिभाई! भड़क उठे तुम्हारे वहाँ के लोग हों तो। नये आये हों तो भड़के। अब अपने सुनते हुए तुम्हारा... आया तो ऐसा का ऐसा। धर्म का यहाँ ना करते हैं। महाव्रत को धर्म नहीं कहते। परन्तु महाव्रत पालन करे वह कैसा, सुन तो सही पहले। पर की दया पालने का, झूठ नहीं बोलने का, वह तो सब विकल्प-राग है। वह महाव्रत कैसा? सच्चा महाव्रत था कब वह?

सच्चा महाव्रत का स्वरूप (कि) अन्दर आनन्द में लिपट जाना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार पर्याय में—अवस्था में आवे, वह साधु। वह मुक्ति के साधक उन्हें कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : साधु पीछे से हुए, श्रावक पहले हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो चौथे से लेना है न! चौथे से साधक है न! सम्यग्दृष्टि चौथे से साधक, पाँचवें में श्रावक और छठवें में साधु। साधक यहाँ से शुरु होता है, चौथे से शुरु होता है। आहाहा! आया नहीं? छहढाला में आता है। 'तीनों शिवमगचारी', आता है। सम्यग्दृष्टि, श्रावक और मुनि तीनों शिवमार्गी हैं।

सम्यग्दृष्टि श्रेणिकराजा। हजारों रानियाँ थी और बड़ा राज था, परन्तु सम्यग्दृष्टि थे। और आत्मा का भान। अरे! हम आनन्दस्वरूप हैं। पूर्व में साधु की असातना की थी, इसलिए नरक का आयुष्य बँध गया, इसलिए पहले नरक में हैं, चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में। परन्तु श्रेणिक राजा ने भगवान के निकट तीर्थंकरगोत्र बाँधा। मुनि के निकट आत्मज्ञान प्राप्त हुए। आत्मा राग और द्वेष—क्रियारहित चीज़ है। ऐसी चीज़ के अनुभव के वेदन में वहाँ भी आनन्द में हैं अन्दर। उन्हें पूर्व में नरक का आयुष्य बँध गया,

इसलिए नरक में गये। वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। ८४ हजार वर्ष तक का नरक का आयुष्य। ढाई हजार (वर्ष) गये। साढ़े इक्यासी हजार वर्ष बाकी हैं। वहाँ से निकलकर तीन लोक के नाथ (होंगे)। समकिती थे। अभी राग का त्याग किया नहीं था। अनन्त रागी मैं नहीं, ऐसा त्याग किया था। परन्तु परिमित राग का त्याग नहीं था अन्दर। समझ में आया?

इससे नरक में भी तीर्थंकरगोत्र बँधकर जाते हैं। यहाँ से वह बाँधकर गये हैं। चौरासी हजार वर्ष (की स्थिति में) पहले नरक में हैं। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। सम्यग्दृष्टि साधक है, ऐसा कहते हैं। वह नरक में रहा, वह साधक है। आहाहा! नरक में था कब? आहाहा! दृष्टि में तो पूर्ण स्वरूप है, उसका भान है, उसकी दशा में है वह। समझ में आया? आहाहा! राग को स्पर्शता नहीं। स्त्री, कुटुम्ब को छूता नहीं। आहाहा! यह वह कुछ बात है! समझ में आया? संसार के संयोग में दिखाई दे, तथापि धर्मी संयोग को स्पर्शता नहीं। वह समकिती राग आवे, उसे भी छूता नहीं। उससे भिन्न भगवान आत्मा के भान के कारण वह साधक होकर मुक्ति को साधेगा। वह साधता है अभी वहाँ। वर्ष जितने जाते हैं, उतना केवल(ज्ञान) के सन्मुख जाता है। आहाहा! समझ में आया?

आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। वहाँ आगे तीन ज्ञान लेकर आयेंगे यहाँ माता के गर्भ में। समकिती थे। वहाँ साधुपद और श्रावक के पद की शान्ति नहीं थी। शान्ति की वृद्धि उसे कम है। ... अनन्त परमाणु उसे उचित अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर उतनी शान्ति वहाँ है। ऐसा साधक जीव..., यहाँ अभी कहेंगे वह। वह साधक, सम्यग्दृष्टि वह साधक। श्रावक साधक, साधु अवस्था वह साधक है। वह अवस्था—दशा है। वस्तु तो त्रिकाल है। परन्तु उसकी दशा निर्मल—सम्यग्दर्शन की निर्मल दशा, वह मोक्ष की साधक है। श्रावक की वीतरागी निर्मल अन्तर्दशा, वह मोक्ष की साधक है। साधु की वीतरागदशा का अनुभव, वह मोक्ष का साधक है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी और दर्शनमोहनीय त्रय का अनुदय होने से सम्यग्दर्शन होता है। अर्थात् कि आत्मा का अनुभव होकर आत्मा आनन्द और ज्ञानमूर्ति का वेदन

हो, इससे उसे दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी टल जाती है। मिथ्यात्वभाव और दर्शनमोहनीय, अनन्तानुबन्धी के चार (कषाय) वे टल जाते हैं चौथे गुणस्थान में। उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **और सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर ही....** आहाहा! **जीव उपदेश का वास्तविक पात्र होता है।** तब उसे उपदेश सच्चा मिले, वह समझे। इसके बिना बराबर कोई समझे नहीं। लो, यहाँ बात की। समझ में आया? आहाहा!

सिंहनी का दूध सोने के पात्र में टिकता है। लोहे के पात्र को फाड़ डालता है। इसी प्रकार जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द ऐसा जहाँ अनुभव होकर प्रतीति का भान है, वह कहते हैं कि सिद्ध आदि के उपदेश को पात्र है। समझ में आया? देखो, पुरुषार्थसिद्धिउपाय में ऐसा लिया कि सात व्यसन को सेवन करनेवाला हो, वह पात्र नहीं। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो उत्कृष्ट पात्र, सम्यग्दर्शन, वही पात्र है गुण के लिये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गुण का टिकना वहाँ होता है, ऐसा। आहाहा!

भगवान पूर्णस्वरूप परमात्मा स्वयं ही परमात्मा का स्वरूप ही स्वयं है। सिद्ध और अरिहन्त का स्वरूप ही अपना अन्तर में है। ऐसा जहाँ भान हुआ, कहते हैं, ऐसे जीव ही सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ के सिद्धपद के उपदेश के वे पात्र और योग्य हैं। आहाहा! **सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर ही....** ऐसा लिखा है न। पात्रता वर्णन की है। **जीव उपदेश का वास्तविक पात्र होता है।** तब उसे ख्याल में-अनुभव में आवे कि ओहो! यह आत्मा की एक समय की पर्याय केवलज्ञान अनन्त-अनन्त तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा उपदेश मिलने पर उसे पात्र की बात बैठती है। समझ में आया? और वह स्वरूप की शुद्धता, वह साधक है, ऐसा प्रगट हुआ, उसे उस साधकपने का जो उपदेश मिले, वह उसे बराबर जँच जाता है। राग आदि साधक नहीं, वह बाधक है। समझ में आया? आहाहा!

यह पात्र लिये। ब्रह्मचर्य को लिया है न! नौ वाड़ विशुद्ध से .... 'पात्र होने को सेवो सदा ब्रह्मचर्य (मतिमान)।' यह सब साधारण बात है। परन्तु वह पात्र यह हुआ, ऐसा। यह अपेक्षा से बात है। वही पात्र हुआ। समझ में आया? इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मचर्य में पर में सुखबुद्धि टाले, ऐसा कहना है मूल। पाले, उसे पालन किया कहा

जाता है। विषय में, संसार में, राग-पुण्य में सुख नहीं। उसमें सुखबुद्धि वही मैथुन और अब्रह्म है। समझ में आया? बाहर के शरीर से ब्रह्मचर्य तो अनन्त बार पालन किया। ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा पर से स्वतन्त्र है। भगवान के सिवाय, ज्ञानी के सिवाय कोई अज्ञानी आत्मा की बातें करे, उन्हें आत्मा की कुछ खबर है नहीं। समझ में आया? वह जीव उपदेश का वास्तविक पात्र है, लो।

सो मुख्य उपदेश तन, धन, जन आदि से राग हटाने.... लो। तन अर्थात् शरीर, धन अर्थात् धूल-पैसा। धन अर्थात् धूल। उसे तो ऐसा गले पड़ा हो ऐसा मानो, आहाहा! दो-पाँच-दस लाख हों तो मानों मैं चौड़ा और गली सकड़ी। धीरुभाई! उसमें पचास लाख, सौ लाख... सौ लाख अर्थात् करोड़। आहाहा! वह तो धूल भी नहीं। वह तो जगत के कंकड़ हैं। तुझमें है नहीं और तेरी वह चीज़ नहीं। आहाहा! अब जीव तेरी चीज़ हो जाये? वह तो अजीव है। लक्ष्मी तो धूल, अजीव है। उसे तो भगवान ने अजीवतत्त्व कहा है। वह अजीव, जीवतत्त्व का हो जाये?

मुमुक्षु : जीव अजीव न हो, परन्तु अजीव पैसा तो जीव का कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहते हैं कि अजीव, जीव हो जाये? कहो, अजीव तो अजीवरूप रहे। आत्मा की पर्याय में अजीव—लक्ष्मी आ जाये? वह तो उसमें रहे धूल। ऐसा उपदेश, कहते हैं कि धन, वह धूल है। वह आत्मा को कोई सहायता करनेवाला सुखरूप नहीं। है न? तन, धन, जन। जन अर्थात् स्त्री-पुत्र और परिवार सब। आदि से राग हटा। वे मेरे, यह दृष्टि छोड़ दे। ऐसे (परवस्तु) तो छूटी हुई है। उसे कहते हैं कि अब आसक्ति छोड़ दे। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को स्त्री, कुटुम्ब मेरा, यह मान्यता टल ही गयी है। वे मेरे नहीं। मेरे हों वे मुझसे पृथक् नहीं रहे। पृथक् रहे, वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! उसे मिथ्यात्वभाव जो था, वह छोड़ा। और स्वरूप का... वह राग, उससे छोड़। ऐसी आसक्ति छोड़ने की बात करते हैं। समझ में आया? अरे, ऐसा उपदेश कैसा यह? इसमें घण्टे भर में ऐसा नहीं आया कि भाई, यह कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन (छोड़ना), सामायिक करना। अरे भगवान! तुझे खबर नहीं। बापू! पर की क्रिया करे कौन? छोड़े कौन और रखे कौन? तेरे स्वरूप में वह है ही नहीं। आहाहा!

तन, धन, जन.... जन अर्थात् कुटुम्बी मनुष्य पुत्र आदि सब। प्रजा—पुत्र-पुत्रियाँ। **आदि से राग हटाने....** भाई! आसक्ति छोड़ दे। वे मेरे हैं, ऐसा तो छोड़ दिया है धर्मी ने। वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ—यह दृष्टि तो छूट गयी है। यह दृष्टि न छूटे तो मिथ्यादृष्टि रहे। आहाहा! तथापि पुत्र के पुत्र नहीं, ऐसा कहना... यह न्यालभाई और यह पूनमचन्द और हिम्मतलाल और जयन्तीलाल। लो, दो करोड़पति और दो लाखपति। पति न?

मुमुक्षु : धूल कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल? आहाहा! धूल की धूल है यह तो। मेरी ममता का निमित्त है यह तो। आहाहा!

धर्मी को यह उपदेश दिया जाता है कि **तन, धन, जन आदि से राग हटाने और व्यसन तथा विषय-वासनाओं से विरक्त होने का है,...** लो। समझे? व्यसन। सात व्यसन छोड़ दिये होती हैं। प्रतिज्ञा लेता है। **विषय-वासनाओं से विरक्त....** विषयवासना सम्यग्दृष्टि को होती है, चारित्रदोष होता है। उसे छोड़ने की बात उपदेश में आती है। छोड़ यह। सुख तो मानता नहीं सम्यग्दृष्टि। ९६ हजार स्त्रियाँ पद्मिनी जैसी। गन्ध निकल गयी है, उसमें सुख है, यह गन्ध निकल गयी है। उसकी ओर का विकल्प, वह दुःख का कारण है। आसक्ति, वह दुःख है, ऐसा उसे भासित हुआ है। यह आसक्ति छोड़ने का उपदेश है। आगे बढ़ने का साधकरूप से। समझ में आया?

(जब लौकिक सम्पत्ति और) विषय-वासनाओं से चित्त विरक्त.... हो जाता है, लो। **विषय-वासनाओं से विरक्त होने का है।** उपदेश ऐसा करे, भाई! आत्मा को विषय बनाकर जो सम्यक्त्व हुआ, उसका विषय विशेष प्रगट कर। ध्येय में उग्ररूप से ले और यह विषय की वासना छोड़। वासना ही छोड़ने की बात है, हों! बाह्य पदार्थ छोड़कर बैठा तो विषय का त्यागी है, ऐसा नहीं। बाह्य वस्त्र छोड़ दिये और नग्न हो गये और परिवार छोड़ा, इसलिए यह छोड़ा, ऐसा नहीं है। जिसे अन्दर में राग और पुण्य की मिठास का प्रेम है, उसे पूरा संसार उसकी दृष्टि में पड़ा है। उसने कुछ छोड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दृष्टि में अकेला भगवान आत्मा ही आदरणीय जहाँ वर्तता है। जहाँ राग के कण से लेकर सब चीज़ का दृष्टि में तो त्याग ही है। तब तो उसे सम्यग्दर्शन और धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! भारी महँगा धर्म कहते हैं ऐसा। महँगा कहे या सस्ता कहे, बात तो यह है। समझ में आया? माप करना न आवे और उसे ऐसा लगे कि अपने तो अभी तक सुना नहीं। अपने तो ऐसा धर्म, ऐसा करे और सामायिक करे और प्रौषध करे और प्रतिक्रमण करे और धर्म हो गया, ऐसा (सुना था)। सामायिक कहाँ से आयी परन्तु? आत्मा क्या चीज़ है? वह वीतरागमूर्ति प्रभु है। उसका वेदन अनुभव बिना अर्थात् कि आत्मा की प्राप्ति बिना सामायिक आयी कहाँ से तेरे घर में? कहो, समझ में आया? जादवजीभाई! भारी काम! यह सब सेठाई तो वहाँ सर्वत्र दूसरी की होगी वहाँ कलकत्ता में। आहाहा!

जब लौकिक सम्पत्ति और विषय-वासनाओं से चित्त विरक्त हो जाता है,... लो। आहाहा! **जब लौकिक सम्पत्ति....** यह लक्ष्मी आदि, कीर्ति, चक्रवर्ती का बड़ा राज। **और विषय-वासनाओं से चित्त विरक्त हो जाता है, तब इन्द्र अहमिन्द्र की सम्पदा भी नीरस और निस्सार भासने लगती है।** सम्यग्दर्शन में ही वह है। आत्मा का भान हुआ, उसमें ही, इन्द्र के इन्द्रासन और करोड़ों अप्सराओं का सुख जहर जैसा लगे। काला नाग देखकर जैसे डरे, वैसे धर्मी विषय के सुख से डरता है। वह दुःख है, दुःख है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! स्त्री, पैसा, इज्जत, कीर्ति में कुछ भी सुखबुद्धि रहे .... और धर्मी वह इन्द्र के इन्द्रासन में सड़ी हुई बिल्ली जैसा सुख देखे। आहाहा! माँस और हड्डियाँ, चमड़ा है वह। उसे चूथने में सुख माने, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। वह जैन नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया? आहाहा!

भाई! तेरी चीज़ में आनन्द है। ऐसी चीज़ का जहाँ भान—सम्यग्दर्शन हो, पूरी दुनिया में से सुखबुद्धि उड़ जाये। देव के सुख है, ऐसा अज्ञानी मानता है। ज्ञानी को देव के दुःख लगते हैं। अनुकूलता बहुत है। परन्तु बहुत (अनुकूलता) है, उस पर लक्ष्य जाता है, तब राग और आकुलता है। समझ में आया? वे तो कहे न, 'पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख घर में चार पुत्र।' अब किसी को आठ हो, लो न! 'तीसरा सुख सुकुल की नारी, चौथा सुख कोठी में अनाज।' यह उसके—मूढ़ के सुख।

मिथ्यादृष्टि ने ऐसा माना है, ऐसा कहते हैं। धर्मी ऐसा मानता नहीं। आहाहा! धर्मी को दृष्टि का पलटा हो जाता है। समझ में आया? इन्द्र और अहमिन्द्र की सम्पदा विरस... वि-रस—उल्टा रसवावाला दुःख लगता है। निःसार। आहाहा!

जिसने आत्मा में आनन्द हे, सुख है, ऐसा भान किया, उसे इन्द्र के इन्द्रासन निःसार, निःसार, विपरीत भाववाले लगते हैं। विपरीत भाव लगे। आहाहा! समझ में आया? 'सकल जगत वह ऐंठवत अथवा स्वप्न समान; वह कहिये ज्ञानी दशा बाकी वाचा ज्ञान।' अन्तर में जिसे पुण्य के दया-दान-व्रत के परिणाम, शुभ का प्रेम है, उसे पूरी दुनिया के सुख का प्रेम है। आहाहा! भले त्यागी होकर साधु नाम धराता हो, परन्तु अन्दर में दया-दान-व्रत-पूजा शुभभाव, वह सब मेरा कर्तव्य है और मुझे हितकर है (मानता) है, (तो) मिथ्यादृष्टि पूरी दुनिया का रसिक है। समझ में आया?

और छह खण्ड के राज्य में पड़ा भरत चक्रवर्ती। मेरा सुख मुझमें है। स्त्रियों और लक्ष्मी और इज्जत और सोलह हजार देव सेवा करें। दो हजार तो शरीर के (रक्षा में) तैनात में खड़े हों, ऐसे खम्मा अन्नदाता। चौदह रत्न के चौदह हजार देव (रक्षक) और दो हजार शरीर के रक्षक—अंगरक्षक। धूल में भी (सुख नहीं), दुःख मानता है। वह तो धूल दुःख मानता है। आहाहा! अरे! परसन्मुख विकल्प उठता है, वह दुःख है। आनन्दस्वरूप तो भगवान आत्मा है। यह बात की बात नहीं, हों! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? दृष्टि में पलटा खाने से आत्मा में जहाँ धर्मी को आनन्द भासित हुआ, उसे (अन्यत्र) कहीं आनन्द भासित नहीं होता। अहमिन्द्र हो या इन्द्र हो। गजब बात, भाई!

इसलिए ज्ञानी लोग स्वर्गादि की अभिलाषा नहीं करते। धर्मी तो साध्य सिद्धपद उसे साधने के लिये प्रयास करता है। उसे चक्रवर्ती और फलाना पद मिले, ऐसी अभिलाषा (नहीं है)। स्वर्ग का पद मिले, चक्रवर्ती का पद मिले, राजा-महाराजा होवे, ऐसी अभिलाषा समकिती को-ज्ञानी को होती नहीं। और जिसे अभिलाषा है, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। उसे धर्म की खबर नहीं। समझ में आया?

इसलिए ज्ञानी लोग स्वर्गादि की अभिलाषा नहीं करते, क्योंकि जहाँ तक चढ़कर 'देव इक इन्द्री भया' ओहो! स्वर्ग में जाये दूसरे, तीसरे, आठवें देवलोक। दूसरे

देवलोक (से) मरकर एकेन्द्रिय में जाये। पुण्य किया हो कोई दया-दान-व्रत आदि का पुण्य, तो स्वर्ग में जाये। परन्तु दृष्टि मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, वह स्वर्ग में से मरकर एकेन्द्रिय में जाये। वह हीरा के खान में उपजे या वनस्पति के पत्ते में जाकर गुलाब के फूल में उपजे या गर्म ऊँचा पानी हो, उसमें देव मरकर उपजे। क्योंकि धर्म की खबर नहीं थी और पुण्य किया दया-दान-व्रत पालन किये। उसमें पुण्य (की) स्थिति पूरी हो गयी, इसलिए उसकी ममता में रुककर, मरकर एकेन्द्रिय हो। वह पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति में (उपजे)। अग्नि, वायु न हो।

यह पाँच एकेन्द्रिय हैं न! एकेंदिया, बेइंदिया नहीं आता इच्छामि पडिक्कमाणि में? पृथ्वीकाय, अपकाय, जलकाय, वायुकाय, वनस्पति, त्रसकाय। उसमें वनस्पति में उपजे देव मरकर। भान नहीं था। व्रत, तप और भक्ति की हुई पुण्य। मिथ्यादृष्टि था, उसका प्रेम था उसे। उसे आसक्ति थी, इससे स्वर्ग में से मरकर एकेन्द्रिय हो। आहाहा! वह गुलाब के फूल में उपजे वह दूसरे देवलोक में से। आहाहा! आठवें देवलोक का देव ढोर में जाये। छिपकली की कोख में अवतरे। ढेढगरोळी समझते हैं? इतनी पतली नहीं होती है? नाम दूसरा है तुम्हारे में?

मुमुक्षु : छिपकली।

पूज्य गुरुदेवश्री : छिपकली। छिपकली होती है न। जीवों को मारती है न।

जिसने आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना ऐसे दया-दान-व्रत के परिणाम किये, इससे आठवें देवलोक में जाये, परन्तु वहाँ से मरकर ढोर में जाये। आहाहा! समझ में आया? **'देव इक इन्द्री भया' की उक्ति के अनुसार फिर नीचे पड़ता है।** ऊपर (जाये) और नीचे (पड़े) वह ऊँची चीज़ ही नहीं, ऐसा कहते हैं। पहले आया था न।... उसे उन्नति नहीं कहते हैं। **और जिस सुख में दुःख का समावेश है, वह सुख नहीं दुःख ही है।** यह आ गया। **इसमें विवेकवान स्वर्ग और नर्क दोनों को एक ही सा गिनते हैं।** समकिती को स्वर्ग और नरक, सेठाई और रंकाई दोनों समान हैं। ऐसी मान्यता अन्तर में आत्मा का भान होता है, उसे धर्मी और सम्यग्दृष्टि कहते हैं। वह मोक्ष का साधक है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७९, आसोज कृष्ण १, मंगलवार, दिनांक ०५-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद १, २, ३

यह समयसार नाटक। इसका सार आता है न! अन्तिम थोड़ा बाकी है। **इस सर्वथा अनित्य संसार में....** ३६४ पृष्ठ। नीचे के भाग में है। **सर्वथा अनित्य संसार में....** क्या अपेक्षा है? आत्मा वह वस्तु तो नित्य है, परन्तु उसकी पर्याय आदि सामग्री, उसकी पर्याय सब अनित्य है। **इस सर्वथा अनित्य संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिससे अनुराग किया जावे....** किसके साथ प्रेम करना, कहते हैं। ध्रुव तो अपनी चीज़ है। नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति आत्मा, वह ध्रुव।

प्रवचनसार में आता है न! ध्रुव यह है, बाकी सब अध्रुव है। यह हो गया। हाँ, यह। आहाहा! आत्मा नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति नित्य वस्तु, इसके अतिरिक्त कोई जगत में नित्य वस्तु है नहीं। आहाहा! जिससे अनुराग किया जावे। किसके प्रति प्रेम करना? जो सब नाशवान चीज़—शरीर, पैसा, सामग्री, वाणी, यह सब नाशवान है। आहाहा! **जिससे अनुराग किया जावे; क्योंकि भोगों में रोग....** विषय का भोग, उसमें रोग की पीड़ा है। क्योंकि भोग, वह रोग का कारण है। आहाहा!

भोगे रोगभयं.... आता है न। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द में प्रेम करे आत्मा को शान्ति मिले और सुख हो। बाकी जगत की सब चीज़ों में भोग में रोग है। समझ में आया? विषय में रोग, शरीर जीर्ण हो जाये, वीर्य क्षीण हो जाये, शरीर निर्बल हो जाये, अनेक रोग भोग के कारण से शरीर में उत्पन्न हों, वह नाशवान भोग है। **संयोग में वियोग...** यह लक्ष्मी मिले—मिले और क्षण में चली जाये। छाया और धूप जैसा है। धूप और छाया। चढ़ती-फिरती छाया। लक्ष्मी आवे दो-पाँच करोड़। चली जाये, गरीब हो जाये। वह बाहर की चीज़ तो सब संयोग में वियोग का दुःख है।

विद्या में विवाद.... पढ़े तो अन्दर विवाद का भय—दुःख है। सच्चा-खोटा, यह छापना, यह करना। विद्या। **शुचि में ग्लानि...** बहुत शरीर स्नान करे और साफ रखे। ग्लानि हो जाती है शरीर में। ऐसे रोग क्षय (आदि) हो जाये कि साफ करे रहे नहीं। हाँ, यह तुम्हारे, नहीं? दिल्लीवाले कैसे?

मुमुक्षु : वीरावाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वीरावाले नहीं। वह ब्राह्मण तुम्हारा बड़ा। नथुराम शर्मा। बहुत नहाता था न। अन्त में एक महीने तक नहाना ही नहीं मिला। नथुराम शर्मा। वहाँ भाई कर्ता, वहाँ है न सामने ऐसे। सुना था। बहुत नहाते थे नथुराम शर्मा। साफ-सुथरा। अन्तिम एक महीने में वह नहाने का बन्द हो गया। ऐसा रोग हुआ कि नहाने का बन्द हो गया। पानी छुआये नहीं। आहाहा! अरर्र! उसमें शुचि में अशुचि का डर है, वहाँ कहाँ पवित्रता थी? पवित्रता तो आत्मा में है। आहाहा!

अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, उसमें एकाकार हो तो आनन्द आवे। बाकी कहीं सुख-बुख, सुख-दुःख है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : मानना हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने कल्पना से। पैसा और इज्जत, दो-पाँच-दस हजार का वेतन, बड़ी इज्जत। धूल में भी नहीं, अब सुन न! सब नाशवान है। अविनाशी चिदानन्द भगवान है। ऐसा आत्मा अविनाशी अन्दर त्रिकाल है, उसमें दृष्टि देने से, उसका आदर करने से सुख हो, ऐसा है। बाकी कहीं शान्ति और सुख है नहीं। **जय में हार...** जय हुई थोड़ी देर कहीं, तो फिर हार। हार पाड़नी है, क्या है? उसमें हार हो जायेगी। **पायी जाती है।**

भाव यह है कि संसार की जितनी सुख-सामग्रियाँ हैं, वे दुःखमय ही हैं। बराबर होगा रतनलालजी? क्या दुःखमय? तुम्हारे तो सब करोड़ों रुपये.....

मुमुक्षु : उन्हें सम्हालने की चिन्ता होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी निकले हैं घूमने देखो न कहीं.... और फलाना। पैसा ऐसा नगद दिखायी दे अन्दर, लो।

मुमुक्षु : सबको नगद दिखाई दे न, परन्तु उसमें क्या हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया ऐसा माने कि यह सुखी है, लो। धूल में भी सुख नहीं। मूढ़ परपदार्थ में अनुकूलता मानता है, वही मिथ्यात्वभाव है, झूठभाव है। आहाहा!

आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप—सत् अर्थात् शाश्वत्, आनन्द का धरनेवाला, उसमें

आनन्द है। ऐसी दृष्टि सम्यक् किये बिना कहीं सुख है नहीं। आहाहा! **संसार की जितनी सुख-सामग्रियाँ हैं, वे दुःखमय ही हैं।** दुःख का निमित्त। जितनी सामग्री—स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब-परिवार आदि सब आजीविका (के लिये) ठगों की टोली है। नियमसार में आया है। पुत्र-पुत्री, स्त्री, पुत्र, सास-ससुर सब ठगों की टोली है। अनुकूल हो, वहाँ तक। आहाहा... और प्रतिकूल... समझ में आया? **वे दुःखमय ही हैं, इससे सुख की सहेली अकेली उदासीनता....** साता, परन्तु सुख आनन्द इकट्ठा। साता अकेला नहीं। आत्मा उदासीन, पर से उदासीन होकर आत्मा आनन्दमय, उसकी शान्ति प्रगट करे, इसके अतिरिक्त कहीं सुख है नहीं। आहाहा! **जानकर उसकी ही उपासना करनी चाहिए,....** लो।

उसमें एक चौथा बोल था। उत्साह, भावना, प्रशंसा और सेवा। यही बस। देखा था, यह देखा था। कल रात्रि में याद आया था न वह कुधर्म का। कुधर्म के प्रति उत्साह—खोटे धर्म के प्रति उत्साह, प्रशंसा, भावना और सेवा—यह मिथ्यात्व के लक्षण हैं। आहाहा! सेवा। यह चौथा बोल तो... यह तीन तो भाई बोले थे। समझ में आया? अष्टपाहुड़ में। उत्साह, भावना, प्रशंसा और सेवा। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा कहा और उसका जो धर्म है वीतराग परिणति, उसके प्रति उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा, वह समकित का लक्षण है। और इसके अतिरिक्त अज्ञानी ने कहे हुए धर्मों में अपनी कल्पना से मानकर बैठे, उनके प्रति उत्साह, प्रशंसा, भावना—यह ठीक है और सेवा, यह मिथ्यादृष्टि के लक्षण हैं। ऐसी बात है। कुन्दकुन्दाचार्य ने तो स्पष्ट करके रखी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुकम्पा यहाँ कहाँ आयी? वह तो अनुकम्पा, वह तो दुःखी हो, उसे अनुकम्पा। वह तो शुभभाव है। सेवा अर्थात् धर्मी है, इसलिए सेवा, ऐसा। अनुकम्पा तो सभी प्राणियों के प्रति.... वह तो अपना शुभराग है। समझ में आया? परन्तु यह मिथ्यादृष्टि है और फिर भी सेवा करनेयोग्य है, ऐसा। यह मान्यता अज्ञान है। आहाहा! भाई कहाँ से आये? .... कहाँ से?

मुमुक्षु : बगसरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बगसरा। मुम्बई से। हाँ, ठीक।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, बराबर। जरा सूक्ष्म बात है, भगवान! यह आत्मा अन्दर नित्य अविनाशी वस्तु। यद्यपि उसकी अवस्था—पर्याय—हालत बदलती है, परन्तु वह बदलना, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान प्रगट—व्यक्त—प्रगट परिणमित हुआ था। ऐसे भगवान की वाणी इच्छा बिना ध्वनि आयी, उसे आगम कहते हैं। उस आगम में तो ऐसा कहा है। भाई! एक तू त्रिकाल... अपने जयपुर में यही पहले कहा था वहाँ। दस हजार लोग वहाँ थे। स्वागत का पहला दिन था न, स्वागत का।

मुमुक्षु : रामलीला में।

पूज्य गुरुदेवश्री : रामलीला (मैदान) में। यह तो बाद में आये अर्पणलालजी न। यह तो पहले दिन।

जब हम गये थे न, जयपुर में गये, बहुत लोग थे दस हजार। स्वागत था। रामलीला मैदान में। है न वहाँ? तो पहले यह कहा था। शुरुआत में मांगलिक। कि दूसरी चीज़ तो भिन्न रहो परन्तु अपनी पर्याय—अपनी पर्याय में... वहाँ तो हिन्दी बोले थे न, वह और हिन्दी आ गया। अपनी पर्याय में जो पुण्य-पाप के भाव होते हैं, अरे! संवर, निर्जरा और मोक्ष होता है, वह पर्याय है, वह विलय होनेयोग्य है, नाश होनेयोग्य एक समय की दशा है। समझ में आया?

अविनाशी भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुव, वह एक ही उपादेय और आदरणीय है। जिसे हित करना हो उसे। बराबर है? यह कहे कि तुम थे। वह बात कही थी न! सात तत्त्व जो है जीव की एक समय की पर्याय—आस्रव—पुण्य-पाप का भाव और राग में अटकना, वह भावबन्ध और संवर-निर्जरा धर्म की पर्याय प्रगट हो और धर्म की शुद्धि-वृद्धि हो और पूर्ण परमात्मदशा हो, वह सिद्धदशा भी एक समय की पर्याय है, अवस्था है, वह विलय होनेयोग्य है। आहाहा! त्रिकाली भगवान नित्यानन्द ध्रुव, वही

एक उपादेय और शाश्वत् रहनेवाली चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन काम है। अभी तो बाहर की चीज़ की अनित्यता, वह स्वयं नित्य है, इसलिए उसे नित्य करना का प्रयास करता है। कायम रहे—शरीर रहे, पैसा रहे, इज्जत रहे, परिवार रहे। वह वस्तु पर और स्वयं नित्य है। अब उस नित्य की दृष्टि नहीं, ऐसी परवस्तु को नित्य करने का प्रयास करता है। समझ में आया? आहाहा! वह नित्य होती नहीं और इसका दु:ख कभी मिटता नहीं।

भगवान आत्मा एक समय में नित्यानन्द सर्वज्ञ परमेश्वर, वह पर्याय प्रगट हुई है उसके पीछे। अरे! ध्रुव, एक समय का भगवान नित्यानन्द, वही ध्रुव है और वही आश्रय करनेयोग्य है, वही दृष्टि में लेनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो उसकी उपासना कर... पर से उदास होकर, वास्तव में अपनी अवस्था से भी उदास होकर... आहाहा! नित्य वस्तु भगवान आत्मा अविनाशी, उसकी सेवा करनेयोग्य है। यह वस्तु भगवान के मार्ग में है। आहाहा!

अब आया चतुर्दश गुणस्थान अधिकार। कविवर बनारसीदास विरचित रचना है। मंगलाचरण। यह बनारसीदास का कथन है। यह चालू था, वह आचार्यों का था। उसका इन्होंने स्पष्टीकरण किया है। अब स्वयं नया डालते हैं। गुणस्थान अधिकार। जैसे मंजिल पर चढ़ने की सीढ़ियाँ होती हैं न, सीढ़ियाँ—सोपान चौदह, उसी प्रकार मुक्ति जाने के लिये मुक्तदशा वह चौदहवें गुणस्थान के बाद की दशा है। तो उसकी सीढ़ी रूप से ऐसे चौदह उसकी—गुणस्थान की हद है। उसकी मर्यादा दशा है। वस्तु त्रिकाल है परन्तु उसी दशा-हालत-पर्याय-अवस्था के चौदह प्रकार हैं। समझ में आया? उसका वर्णन विशेष करके कहते हैं। मंगलाचरण।

★ ★ ★

(१३)

चतुर्दश गुणस्थान अधिकार

काव्य - १

मंगलाचरण (दोहा)

जिन–प्रतिमा जिन–सारखी, नमै बनारसी ताहि।
जाकी भक्ति प्रभावसौं, कीनौ ग्रन्थ निवाहि।।१।।

शब्दार्थ:–सारखी=सदृश। निवाहि=निर्वाह।

अर्थ:–जिसकी भक्ति के प्रसाद से यह ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त हुआ ऐसी जिनराज सदृश जिन–प्रतिमा को पण्डित बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं।।१।।

काव्य-१ पर प्रवचन

जिन-प्रतिमा जिन-सारखी, नमै बनारसी ताहि।
जाकी भक्ति प्रभावसौं, कीनौ ग्रन्थ निवाहि॥१॥

बनारसीदास धर्मात्मा। पहले व्यभिचारी थे। शृंगारी (कवि) थे। फिर उन्हें सत् समागम मिला। आत्मभान हुआ। बोधिबीज रोपा। आता है न उसमें 'बोधि बीज पायो रे।' समझ में आया? यह सम्यक् आत्मा का भान होने के पश्चात् शृंगार के उन्होंने बहुत ग्रन्थ लिखे थे। शरीर सुन्दर और .... वे लिखे हुए। उसमें फिर उन्हें यह भान हुआ। वे सब गोमती में डाल दिये। गोमती नदी में। फिर सन्तों के कहे हुए शास्त्र, उनकी टीका करने लगे। यह टीका करके फिर यह कहते हैं। अहो!

जिन-प्रतिमा जिन-सारखी। वीतराग मुद्रा। यह वीतराग मुद्रा—जिन प्रतिमा जिन सारखी है। यह जिन प्रतिमा अनादि की है। नयी चीज़ नहीं। समझ में आया? यह सम्प्रदाय में फेरफार हो गया। एक ने उत्थापित की, वहाँ दूसरे ने रखी, परन्तु यह वे

गहने और चढ़ा दिये ऊपर बड़े। क्या कहलाता है समझ में आया? आंगी। आंगी करे और फिर यह चाँदी के और सोने के, तीन लाख का मुकुट। वह प्रतिमा नहीं होती।

भगवान की प्रतिमा तो जैसे भगवान थे, वैसा उनका प्रतिबिम्ब हो। राज्याभिषेक और .... तो ऐसा कायोत्सर्ग में कैसे बैठे हैं? कायोत्सर्ग में। राज्योभिषेक में कायोत्सर्ग में बैठे होंगे? यह दलील सुनी है। .... आया था न एक। कैसा कान्तिसागर? यह बात हुई थी। एक जवान साधु है श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी। २८ वर्ष की उम्र। जवान प्रस्फुटित शरीर। सात वर्ष से दीक्षा ली हुई। मेरे पास आता था अन्दर एकान्त में। यहाँ रहा था बहुत तो। बहुत वर्ष हो गये, हों! ऐसा तो कहे, मैं तो कुछ... परन्तु तुम कहो वह कुछ ठीक लगता है। बाकी सब मान्यता मेरी नहीं है। वह ऐसा कहता था, लो।

कि तब यदि भगवान की मूर्ति उसे (शृंगार) वाली न हो तो ऐसी मूर्ति रखकर रथ में कैसे बैठाते हो तुम? लो, भाई! उसने तर्क किया था। ऐसे तो रथ में कैसे बैठाते हो तुम? रथ (में) बैठते थे न भगवान? भाई! वह तो व्यवहार ऐसा ही होता है। उन्हें जब बाहर प्रभावना के लिये भाव आया तो इसी प्रकार से, दूसरा क्या हो? उनका बहुमान उस प्रकार का शुभभाव है। धर्म नहीं, वह धर्म नहीं। वह पुण्यभाव है। समझ में आया? ऐसा भाव धर्मी को भी आत्मज्ञान और अनुभव होने के पश्चात् भी अन्तर में स्थिर नहीं हो सकता, तब तक उसे अशुभ से बचने अथवा सहज उस काल में उसका भाव आवे। शैली सब ऐसी है जरा सूक्ष्म। समझ में आया?

इससे यहाँ बनारसीदास कहते हैं, **जिन-प्रतिमा जिन-सारखी।** मुझे तो यह ग्रन्थ जो रहस्य महा बहुत गूढ़ रहस्य शास्त्र था, उसका भी निर्वाह हो गया। उस जिनप्रतिमा का मुझे भक्ति का प्रभाव है, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **नमै बनारसी ताहि।** इन्द्र भी जिन्हें वन्दन करते हैं। बात यह है कि वह है शुभभाव—पुण्यभाव। नौ तत्त्वों में वह पुण्यतत्त्व है; धर्मतत्त्व नहीं। संवर-निर्जरा वह तत्त्व नहीं। संवर-निर्जरा तत्त्व तो त्रिकाली ज्ञायक चिदानन्द प्रभु आनन्दमूर्ति का अवलम्बन लेकर जो निर्मल दशा प्रगट होती है, जिसे शुद्धभाव कहते हैं, उसे धर्म कहते हैं। परन्तु उस धर्म की दशा में स्थिरता विशेष न हो, पूर्ण वीतरागता प्रगटी न हो, तब तक ऐसा भाव आये बिना (रहता नहीं)। उसे करे, ऐसा भी कहा जाता है, लो। मूलचन्दभाई! यह विवाद पड़ा

बड़ा विवाद का। एक व्यक्ति कहे, प्रतिमा पूजनेयोग्य है। दूसरा कहे, प्रतिमा नहीं। वहाँ तीसरा कहे, प्रतिमा पूजनेयोग्य में वापस सिर पर गहने और जेवर चढ़ाना। अरे भगवान! यह विवाद है। आहाहा!

विद्यानन्दजी ने लिखा है आज, भाषण दिया था। श्वेताम्बर को अपने मिथ्यादृष्टि कहते हैं, वह अपना प्रमाद है। ऐसा है कहीं वह। ऐसा है। है कहीं यहाँ। 'हम श्वेताम्बरों को मिथ्यादृष्टि बताते हैं। वे णमोकार मन्त्र बोलते हैं, छानकर पानी पीते हैं, रात्रिभोजन नहीं करते हैं। जब प्राणीमात्र का तिरस्कार करने का हमें कोई अधिकार प्राप्त नहीं है तो हम फिर ऐसा क्यों करते हैं? केवल अपने प्रमाद के कारण।' ऐई! मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : इसमें प्रमाद कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सत्य बात है, ऐसा कहते हैं कि भाई! यह मार्ग ऐसा है।

कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं। **नग्गे मोखो भणियो, सेसा उमग्गा...** पाठ में है। आत्मा का ध्यान और आत्मा की आनन्ददशा जहाँ उग्र प्रगट होती है, साधु के योग्य जो आनन्द प्रगट होता है, तब दशा नग्न ही हो जाती है। **नग्गे मोखो भणियो।** उसका मोक्ष होता है। उस दशा से, हों! अकेले नग्न से नहीं। अन्दर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और परमानन्द की दशा, उसमें निमित्तपना नग्नपना ही शरीर का होता है। उसे वस्त्र-पात्र होते नहीं। **नग्गे मोखो भणियो, सेसा उमग्गा...** ऐसा पाठ है। प्रमाद से अभी....

मुमुक्षु : अपने जानना पड़े, बोलना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! बोले कौन? वह तो वाणी आवे। समझने का न आवे समझाने के लिये। उसे तो माने नहीं सब वे। परन्तु यह तो कुन्दकुन्दाचार्य का दृष्टान्त दिया। अब फिर कहाँ टोडरमलजी? आहाहा! भाई! मार्ग तो ऐसा है, भाई! हाँ, किसी के प्रति—व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं होना चाहिए। वह भी भगवान है, पूर्णानन्दस्वरूप है। द्रव्यदृष्टि से तो, द्रव्य से देखें तो वह आत्मा साधर्मी है। परन्तु पर्यायदृष्टि में अन्तर है, उसका ज्ञान तो बराबर करना चाहिए। समझ में आया? आहाहा! कहो, भीखाभाई! ऐसा है। भारी झगड़ा।

कहते हैं कि उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं, वह अपना प्रमाद है। क्योंकि पानी ऐसे

नहीं पीते। फलाना... भाई, वह क्रिया क्या? नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया दिगम्बर जैन साधु होकर। परन्तु जिसने यह दया, दान, व्रत के परिणाम राग है, उसे धर्म माना। धर्म आत्मा का अन्तर स्वभाव वीतराग परिणति हो, वह धर्म है। उसकी खबर बिना नग्नपने ऐसा रहा तो भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐई! और वहाँ तो वहाँ तक लिखा अष्टपाहुड़ में कि ऐसा द्रव्यलिंगीपना लेकर चौरासी (योनियों) में कोई अवतार खाली नहीं कि जहाँ अनन्त बार अवतरित नहीं हुआ। ऐसा शब्द भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का कथन है। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्त्रसहित की यह तो बात ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ही कहाँ? आहाहा! इसलिए प्रभु! किसी के प्रति विरोध नहीं। एक बात भी भूल हो तो भी उसे भूलरूप से जानना, मानना। तिरस्कार नहीं। समझ में आया? तिरस्कार अलग चीज़ है और सत्य को सत्य मानना, वह अलग चीज़ है। समझ में आया? किसी के प्रति द्वेष नहीं होना चाहिए। सब भगवान हैं। द्वेष किसी के प्रति न हो। समझ में आया? परन्तु राग तो जहाँ हो वहाँ हो। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **जाकी भक्ति प्रभावसौं,...** जिन-प्रतिमा। वर्तमान तो हमारे वीतराग नहीं। तो हमारे जिन-प्रतिमा जिन-सारखी है, कहते हैं। सदृश है। भगवान की भाँति मानना, वह शुभभाव है। भगवान की भक्ति करना, वह भी एक शुभभाव है। ऐसे जिन-प्रतिमा की भक्ति, वह भी शुभभाव है। आहाहा! शुद्ध धर्म नहीं, परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। बहुमान, विनय, भक्ति हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् ने तो यह कहा नहीं पहले ही? 'जो स्वरूप समझे बिना पायो दुःख अनन्त। समझाया उन पद नमूँ श्री सद्गुरु भगवन्त।' उपकारी का उपकार आये बिना रहता नहीं। परन्तु वह है विकल्प। आहाहा! कठिन बातें भाई यह तो! भगवान कहते हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान दिव्यध्वनि द्वारा समवसरण में इन्द्रों और गणधरों के समक्ष त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने फरमाया है, वह बात यह है। समझ में आया?

जाकी भक्ति प्रभावसौं,... ऐई! बहुमान हमें प्रतिमा का था। जिन सरीखे हम तो प्रभु को मानते हैं। जिन-प्रतिमा को जिन-सरीखा मानते हैं। वीतराग स्थापना निक्षेप है परन्तु जैसे जिन हों, वैसी प्रतिमा हो। दर्पण में इस शरीर का प्रतिबिम्ब कैसा पड़े? जैसा

हो, वैसा पड़े या नहीं? कहीं शरीर में वस्त्र न हो और उसमें वस्त्रसहित पड़े, ऐसा पड़ता होगा? इसी प्रकार वीतराग मुद्रा तीर्थंकर सर्वज्ञ हुए, ऐसी उनकी मुद्रा प्रतिमा होती है। उसके ऊपर वस्त्र, गहने, फूल.... यह क्या कहलाता है तुम्हारे? आंगी। यह केसर लगाना, यह कुछ नहीं होता। बनारसीदास। तुम्हारे सब यह है। बीसपंथी है न तुम्हारे वहाँ? तुम्हारे बीसपंथी हैं। तब भाई कहते हैं न, थोड़ा अन्तर है। आहाहा!

वीतराग मुद्रा ऐसा बताती है कि अक्रिय आत्मा है। और वीतराग मुद्रा, वह उसकी महिमा आयेगी। वीतराग मुद्रा देखने से अशुभ परिणाम टलकर शुभ होते हैं। और इतनी शुद्धता का अंश, समकित सहित है, इसलिए शुद्धता का अंश बढ़ता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उस शुभ के कारण नहीं। वहाँ ही शुद्ध का आश्रय है न! और अशुभ के समय आश्रय थोड़ा है। शुभ के समय आश्रय अधिक है। इसलिए इतनी शुद्धता का अंश (होता है)। पर के कारण से नहीं। आहाहा! गजब कहा, भाई! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! **दंसण**—दर्शन हुआ सम्यक्, वह तो मुक्ति हुई और श्रद्धा से भ्रष्ट '**दंसण भट्ठा भट्ठा**' ज्ञान भ्रष्ट, चारित्र भ्रष्ट (श्रद्धा भ्रष्ट)। भ्रष्ट में भ्रष्ट ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दर्शनपाहुड़ में कहते हैं। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भगवान!

मार्ग को मार्ग की रीति से जानना, कुमार्ग को कुमार्ग रीति से जानना। वह तो उसका विवेकी ज्ञान है। आहाहा! माता को मातारूप से जानना, पुत्री को पुत्रीरूप से जानना। है तो दोनों बाईयाँ—स्त्रियाँ। परन्तु जिसे जैसा है, वैसा जानना चाहिए न? तो ज्ञान सच्चा कहलाये न? इसी प्रकार भगवान के मार्ग में जिन-प्रतिमा पूजनीय अनादि से व्यवहार से चली आती है। इन्द्रों के वहाँ भी शाश्वत् जिनप्रतिमाएँ हैं। उन्हें देव भी पूजते हैं। परन्तु उसे मर्यादा इतनी, शुभभाव—पुण्यभाव। कहो, कोई ऐसा कहे कि वह भगवान की प्रतिमा का विनय बहुत, वह संवर है और धर्म है, ऐसा नहीं है। बात तो ऐसी है। तथा वह आये बिना रहता ही नहीं। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक राग आता है। राग के असंख्य प्रकार, उसका ऐसा राग आये बिना रहता नहीं। बात ऐसी है। आहाहा! जिसकी जितनी मर्यादा हो, उतना उसे मानना चाहिए। अधिक और कम और विपरीत माने तो उसकी मान्यता झूठी है।

जाकी भक्ति प्रभावसौं,... देखो! **कीनौ ग्रन्थ।** यह रहस्यपूर्ण ग्रन्थ समयसार

अर्थात्! आहाहा! केवलियों का हृदय, तीर्थंकरों का हृदय—ऐसा ग्रन्थ समयसार! अद्वितीय! भरतक्षेत्र में इसके जैसा कोई ग्रन्थ अभी नहीं है। आहाहा! अजोड़ ग्रन्थ! भाई! जिसे अभ्यास नहीं, उसे क्या खबर पड़े? अभ्यास हो तो खबर पड़े कि यह वह समयसार क्या चीज़ है! यह समयसार का निर्वाह—रहस्य का हुआ, वह मुझे तो भगवान की प्रभावना की भक्ति के प्रभाव से हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया या नहीं? इस प्रकार से, हों, परन्तु जितने प्रमाण में कहा जाता है, उस प्रकार से। ऐ शान्तिभाई! वह तो आवे तब आवे। यह सब स्थानकवासी के सेठिया हैं यह। कलकत्ता के सेठिया हैं यह, लो। मार्ग यह है।

कीनौ ग्रन्थ निवाहि.... आहाहा! आत्मा परमानन्द की मूर्ति सर्वज्ञ-परमेश्वर ने कहा उसका मैंने कथन किया। समयसार का, वह भगवान की प्रतिमा के भक्ति के भाव से निर्वाह यह हो गया, कहते हैं। ऐसा है। बहुमान अब। **जिन-प्रतिबिम्ब का माहात्म्य।** त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का प्रतिबिम्ब। प्रतिबिम्ब है न? प्रतिबिम्ब अर्थात्? जैसे भगवान थे, वैसा ही सामने प्रतिबिम्ब हो, ऐसा। समझ में आया? चाँदमलजी, कहाँ थे तुम्हारे? बीसपंथी थे या तेरापंथी? बीस। यहाँ तो बीसपंथी तेरापंथी कुछ नहीं, यहाँ तो आत्मपंथी की बात है यहाँ। आहाहा!

अरे! आत्मा अन्दर भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देखा, जाना। 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान।' क्या कहे? जगत की एक घी की मिठास को भी, जिसे जन्मघूंटी से मिली है। गळथूथी समझते हैं? नहीं समझते। जन्मघूंटी। तुम्हारी भाषा जन्मघूंटी है हिन्दी। हमारे यहाँ गळथूथी है। जन्मघूंटी अर्थात् गळथूथी से घी मिला। कैसा स्वाद? रतनलालजी! बहुत घी खाते हो तुम। कैसा स्वाद है लो बताओ। किस पदार्थ के साथ? ख्याल हो परन्तु कोई दूसरे पदार्थ के साथ तुलना (नहीं) की जा सकती। यदि जड़ की मिठास को भी नहीं कहा जा सकता दूसरे पदार्थ के साथ मिलान करके, तो भगवान आत्मा 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान,' उसका पूर्ण, पूर्ण स्वरूप, उन्हें वाणी में आवे नहीं। यह आया नहीं, ऐसा एक जगह आता है, ऐसा कहते हैं, वह अपने पाठ में—गाथा में। 'उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे? अनुभवगोचर मात्र रहा ज्ञान।' समझ में आया?

एक सिर का दर्द हुआ। अब दर्द के बहुत प्रकार। सिर के दर्द के। लाओ बताओ, कैसा दर्द हुआ? बताओ। रतनलालजी! अरे, मैं जानता हूँ कि यहाँ कुछ दु:खता है। परन्तु कैसा? लाओ न बता दे न! अब जिसे दु:ख का अनुभव अनादि से, वह भी दु:ख की व्याख्या समझा या कह नहीं सकता। तो भगवान आत्मा, आहाहा! पुण्य और पाप के राग से रहित ऐसा चैतन्यतत्त्व, उसे जाना और अनुभव किया, उसकी क्या बात करना, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - २

(सवैया इकतीसा)

जाके मुख दरससौं भगतके नैननिकौं,
थिरताकी बानि बढ़ै चंचलता विनसी।
मुद्रा देखि केवलीकी मुद्रा याद आवै जहां,
जाके आगै इंद्रकी विभूति दीसै तिनसी।।
जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदेमैं,
सोई सुद्धमति होइ [१]हुती जु मलिनसी।
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिनकी छवि सुविद्यमान जिनसी।।२।।

शब्दार्थ:-बानि=आदत। विनसी=नष्ट हुई। विभूति=सम्पत्ति। तिनसी (तृणसी)= तिनका के समान। मलिनसी (मलिन सी)=मैली सरीखी। जिनसी=जिनदेव सृदश।

अर्थ:-जिसके मुख का दर्शन करने से भक्तजनों के नेत्रों की चंचलता नष्ट होती है और स्थिर होने की आदत बढ़ती है अर्थात् एकदम टकटकी लगाकर देखने लगते हैं, जिस मुद्रा के देखने से केवली भगवान का स्मरण हो पड़ता है, जिसके सामने सुरेन्द्र की

१. 'कुमति मलिनसी' ऐसा भी पाठ है।

सम्पदा भी तिनके के समान तुच्छ भासने लगती है, जिसके गुणों का गान करने से हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है और जो बुद्धि मलिन थी, वह पवित्र हो जाती है। पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि जिनराज के प्रतिबिम्ब की प्रत्यक्ष महिमा है, जिनेन्द्र की मूर्ति साक्षात् जिनेन्द्र के समान सुशोभित होती है।।२।।

काव्य-२ पर प्रवचन

जाके मुख दरससौं भगतके नैननिकौं,
थिरताकी बानि बढ़ै चंचलता विनसी।
मुद्रा देखि केवलीकी मुद्रा याद आवै जहां,
जाके आगै इंद्रकी विभूति दीसै तिनसी॥
जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदेमैं,
सोई सुद्धमति होइ हुती जु मलिनसी।
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिनकी छवि सुविद्यमान जिनसी॥२॥

लो। व्यवहार आवे तब समझावे तो सही न व्यवहार बराबर? क्या कहते हैं? भगवान साक्षात् त्रिलोकनाथ समवसरण में विराजते हों, वह भी वाणी द्वारा बात करे। है या नहीं? एक यहाँ वाणी नहीं मूर्त प्रतिमा में। बाकी सब शान्त अक्रियबिम्ब! सब इस प्रकार समझे, उसे वह निमित्तरूप से होती है। न समझे, उसे (निमित्त नहीं)। कहीं उससे होता नहीं। उससे होवे तो उस पर चिड़िया, चींटियाँ खाकर बैठती हैं भगवान के ऊपर। समझ में आया? चिड़िया हो न चिड़िया, कीड़े-कीड़े खाये, बैठे भगवान के सिर पर। उससे कहीं, वह तो परवस्तु है। समझ में आया? परन्तु जिसे उसका बहुमान है। जिसे तीर्थंकरदेव ऐसे होते हैं, केवली प्रभु ऐसे होते हैं, ऐसा जिसे ज्ञान है, उसे वह निमित्त में शुभभाव उसके होता है।

जाके मुख दरससौं... देखो, **मुख दरससौं...** मुख देखते हैं, ऐसा कहते हैं। वह चिड़िया-बिड़िया तो सिर पर चींटियाँ खाकर बैठती हैं, उन्हें कहीं मुख की खबर है कि

यह मुख वीतराग का निमित्त है या यह क्या है? ऐसे भगवान की प्रतिमा **जाके मुख दरससौं भगतके नैननिकौं,...** है न? **जिसके मुख का दर्शन करने से भक्तजनों के नेत्रों की चंचलता नष्ट होती है।** आँखें चंचल, आगे-पीछे हो, वहाँ स्थिर हो जाये ऐसे देखे तो, ओहो! समझ में आया? वीतराग मुद्रा देखने में....

मुमुक्षु : यहाँ तो पर्याय की ही ना करते हैं, यह तो परद्रव्य की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न? वस्तु है न। है। है न, व्यवहार नहीं? व्यवहार के आश्रय से धर्म नहीं होता। समझ में आया? कहो, यहाँ तो शुभभाव में आँख की चंचलता, वह मिट जाती है और शुभभाव होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐई!

स्थिर होने की आदत बढ़ती है। लो। अन्दर में शुभभाव में आकर आगे बढ़ना, ऐसा अन्दर निमित्तपने का ज्ञान होता है। आहा! भगवान ऐसे! बोले नहीं और चले नहीं। स्थिरबिम्ब! राग की क्रिया बिना की चीज़ ऐसा परमात्मा, उनका बिम्ब देखकर स्वयं को स्थिर होने की दशा बढ़े। बढ़ती है अपने से, परन्तु उसमें निमित्त करके लक्ष्य करता है। ऐसी बात है। **एकदम टकटकी लगाकर देखने लगते हैं।** आहाहा! देखो न, शास्त्र में आता है न! भगवान का जन्म हो, इन्द्र एक हजार नेत्र से भगवान को देखते हैं। अब वह तो पर है और शरीर पर है। इन्द्र एक हजार नेत्र से ऐसे देखे उन्हें। ऐसा भक्ति का भाव आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? ऐ भीखाभाई! अरे, अरे, गजब! वस्तु ऐसी है। वस्तु हाथ आवे बस इतना। (धर्म नहीं होता)। पाप से बचने के लिये ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

इन्द्र एकावतारी शकेन्द्र, सौधर्म देवलोक, ईशान देवलोक, बारह देवलोक। सौधर्म देवलोक में ३२ लाख विमान। एक-एक विमान में असंख्य देव, उनका वह स्वामी। निमित्त से कहा जाता है, हों! समकिती किसी का स्वामी है नहीं। कथन संयोग से क्या है, वह बतलाने को (ऐसा कहा जाता है)। उसकी स्त्री भी है। शकेन्द्र की स्त्री है, वह एकावतारी है। दोनों एक भव करके मुक्ति जानेवाले हैं। पति-पत्नी दोनों। सौधर्म देवलाक। कहो, समझ में आया? पत्नियाँ बहुत होती हैं, वे सब एकावतारी होती हैं। थोड़ा परन्तु एकावतारी हो उसके जैसी वह एकावतारी ही होती है। समझ में आया? ऐसी स्थिति ही उसकी है। आहाहा! यह तो है, वह तो बहुत काल रहेगा न।

असंख्य अरब वर्ष तक एक-एक स्त्री। भगवान की वाणी में आया है, पति और पत्नी दोनों एकावतारी हैं। समझ में आया?

यह भी भगवान के जन्म के समय हाथ में लेकर ऐसे दर्शन करे। व्यवहार के काल में व्यवहार आत है न। आहाहा! व्यवहार का—राग का काल है। ऐई! यही स्वकाल है, उसे राग का विकार के आने का काल है। तथापि दृष्टि में उसे हेय वर्तता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग गजब! यह स्याद्वाद अनेकान्त गजब मार्ग! आहाहा! करे, आवे, उत्साह करे और कहते हैं कि हेय करे। ले। यह सहज दशा ऐसी है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? **थिरता की बानी बढ़ै...** ठीक। **स्थिर होने की आदत बढ़ती है....** बानी का अर्थ यह हुआ। **एकदम टकटकी लगाकर देखने लगते हैं।** आहाहा!

मुद्रा देखि केवलीकी मुद्रा याद आवै जहां,... आहाहा! कहा था न! पहले जब यह (संवत्) २०१३ के वर्ष में गये न यात्रा, तब मुम्बई गये थे, तब मुम्बई। १३, १३। १४ वर्ष हुए। तब अपने बरवाळा के थे न एक जगदीशभाई। जगदीशभाई थे वे बरवाळा के। पहले सन्त बाजू मानते और फिर वह छूट गया। फिर स्थानकवासी पालते थे। परन्तु हमारे हमारे प्रति तो दूसरे प्रकार से प्रेम था न सम्प्रदाय का। फिर उन्होंने पूछा कि महाराज! इस यात्रा में क्या है? कहा, भाई! यात्रा में ऐसा है कि जहाँ आगे मुनि मोक्ष पधारे हैं जिस क्षेत्र में, जिस स्थान में, उस स्थान से मुनि का मोक्ष (हुआ था), वहाँ भगवान विराजते हैं। उस क्षेत्र में देह छूटा हुआ, उस क्षेत्र में वहाँ विराजते हैं। यह याद आने का निमित्त है।

यहाँ कहा, देखो न! **मुद्रा देखि केवलीकी मुद्रा याद आवै जहां,...** ओहो! केवली ऐसे थे शान्त। राग नहीं, देह ही नहीं, वाणी उनकी नहीं। वह तो अन्तर आनन्दमूर्ति का अनुभव। तीर्थंकर परमात्मा अरिहन्तदेव। वे तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द में विराजते थे। ऐसी मुद्रा देखकर ऐसे स्वरूप की धारणा जिसने पहले की है, समकिती की बात है न यहाँ, उसे याद आवे। अज्ञानी को कहाँ याद आता था? ऐसे केवली परमात्मा। आहाहा! तीर्थंकरदेव। णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। वे कौन थे अरिहन्त! आहाहा! ऐसे अरिहन्त की, केवली की मुद्रा देखकर मुद्रा याद आवे जहाँ, लो।

जाके आगै इंद्रकी विभूति दीसै तिनसी.... आहाहा! भगवान के दर्शन में धर्मी जीव को शुभभाव आने पर, इन्द्र-इन्द्राणी के सुख सड़े हुए तिनके जैसे दिखते हैं। आहाहा! भगवान को परमानन्द सुख, अतीन्द्रिय आनन्द में विराजमान हैं, ऐसा स्मरण आने पर... समझ में आया? गजब! **जिसके सामने सुरेन्द्र की सम्पदा भी तिनके समान...** तिनका समझ में आया? तिनका। छिलका। तृण... तृण। छिलका। ऐसा लगे। आहाहा!

कहाँ भगवान का आनन्द और कहाँ भगवान की मुद्रा निष्क्रिय—अक्रिय! उसके समाने सुरेन्द्र की सम्पदा भी जिसे तिनके जैसी लगे। धर्मी जीव की बात है। अज्ञानी की यहाँ बात नहीं। धर्मी जीव को ऐसा शुभभाव आने पर भक्ति आवे, उसकी बात है। समझ में आया? आहाहा! जिसे आत्मज्ञान हुआ है, जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है, जिसे आत्मा पुण्य-पाप, शरीर, वाणी से भिन्न ऐसा अन्तर में अनुभव और आत्मज्ञान हुआ, उसकी बात चलती है। समझ में आया? आहाहा!

वह पुण्यविजय हुए न, उन्होंने एक बार लिखा था। वह भाई, दिगम्बर की प्रतिमा बहुत देखी हो न! बाहर गये थे न जब। कहाँ? जैसलमेर। जैसलमेर न? जैसलमेर है न वहाँ। पुस्तकें थीं न, वहाँ गये थे। भण्डार। बीस हजार दिये थे न हमारे हेमचन्दजी ने। मुम्बई से। भूपेन्द्र डाईंग प्रिंटिंग वर्क्स। है न मुम्बई? भूपेन्द्र। उसका पिता था न हेमचन्द्र। उसने बीस हजार दिये थे जवा। वह पुण्यविजय गुजर गया अभी मुम्बई में मन्दिरमार्गी। उसने रास्ते में बहुत दिगम्बर प्रतिमायें देखीं जंगल में। तो उसे ऐसा लगा कि यह अपने दिगम्बर नये-नये कहते हैं, परन्तु यह तो पुराना लगता है। पत्रिका में आया था। इसलिए किसी को उस सम्बन्धी का विरोध करना नहीं। ऐसा थोड़ा लिखा है। सम्प्रदाय में रहकर कितना कहा जाये? ऐसा लिखा है। जैसलमेर में बहुत पुस्तकें थीं न। उसे पुस्तकें देखने का शौक था। गुजर गये अभी वह मुम्बई।

यहाँ कहते हैं, जिसे **आगै इंद्रकी विभूति दीसै तिनसी....** वह सम्यग्दृष्टि जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है, ऐसे धर्मी भगवान को देखकर, आहाहा! सड़े हुए तिनके जैसे इन्द्र के इन्द्रासन दिखें, उसे धर्मी कहते हैं। यह सब यह पैसे और स्त्री पुत्र अच्छे और उसमें मिठास है न, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यहाँ से हम स्वर्ग में जायेंगे। ऐसी क्रिया करेंगे, व्रत और तप, फिर स्वर्ग में जाऊँगा। स्वर्ग के सुख

भोगकर फिर मोक्ष जाऊँगा। कहता नहीं था भाई बोटाद? केशवलाल का छोटा पुत्र। या फिर स्वयं केशवलाल? तलोद। विसाश्रीमाली। नागलपर बोटाद के पास। विसाश्रीमाली। आये थे व्याख्यान में आये। महाराज! परन्तु यह वह क्रिया पुण्य करने दो न, फिर उसमें से स्वर्ग में जायेंगे। वहाँ स्वर्ग के सुख भोगेंगे और फिर मोक्ष जायेंगे। अब धूल भी नहीं जाये, सुन न! जिसने पुण्य के परिणाम को धर्म माना और उससे कल्याण माना, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? वह बेचारा था। ऐई गुजर गया बेचारा। उसका पिता था। उसे बहुत मानता। तलोद। ..... बहुत समय गये।

यहाँ कहते हैं, **जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदेमैं,...** आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा की मूर्ति देखकर उसका—परमात्मा का यश गाते हैं। वहाँ यह तो उसमें कहाँ है, मूर्ति में कहाँ भगवान थे? वह तो निमित्त है। स्थापना निक्षेप है। परन्तु स्थापना देख-देखकर उसका जो आत्मा है, उसके **जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदेमैं,...** यहाँ तो मूर्ति को देखकर कहते हैं, हों! **हिरदेमैं** प्रकाश लगे। आहाहा! ऐसी यह भगवान की प्रतिमा। ज्ञान का प्रकाश, उसमें उसे उज्ज्वलता आवे, ऐसा कहते हैं।

सोई सुद्धमति होइ हुती जु मलिनसी। पहले जो मलिन परिणाम थे। **और जो बुद्धि मलिन थी, वह पवित्र हो जाती है।** शुभभाव। समझ में आया? आहाहा! पुण्य को पवित्रता कहा जाता है न व्यवहार से, अशुभ टलकर। संसार के धन्धा-फन्धा के पाप भाव—मलिनभाव, उसकी अपेक्षा इस शुभभाव के व्यवहार से पवित्र कहा जाता है।

कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,... कहते हैं बनारसीदास, **सुमहिमा सोहै जिनकी छबि।** वह वीतराग की मूर्ति। **सुविद्यमान जिनसी**—जैसे त्रिलोकनाथ तीर्थंकर थे, ऐसी ही वह प्रतिमा लगती है। समझ में आया? अरे, गजब बात! यह झगड़ा मूर्ति का। एक कहे कि मूर्ति को मानने से धर्म होता है। दूसरा कहे कि भाई! मूर्ति है उसकी पूजा आदि का भाव, वह पुण्य है। समझ में आया? सत्य वस्तु बीच में आयी .... आये बिना रहती नहीं। आहाहा! गजब!

जिनराज के प्रतिबिम्ब की प्रत्यक्ष महिमा है, जिनेन्द्र की मूर्ति साक्षात् जिनेन्द्र के समान सुशोभित होती है,.... लो। उपमा है न। कहीं जिनेन्द्र वहाँ नहीं। जिनेन्द्र के जो गुण कहे, उसमें नहीं। वह तो एकेन्द्रिय जीव है। परन्तु उसे देखकर ऐसे गुण होते

हैं, ऐसा उसे भास होता है। जिनेन्द्र के समान सुशोभित होती है, लो। एक बोलते नहीं इतना। बाकी सब, कहते हैं, शान्त निष्क्रियपना। सब शुभभाव में ज्ञात हो। ज्ञान में ज्ञात होता है न। यह बनारसीदास ने पहले यह गुणस्थान का वर्णन करते हुए यह मंगलाचरण कहा। समझ में आया?

जिन मूर्ति-पूजकों की प्रशंसा। तीसरा श्लोक।

★ ★ ★

काव्य - ३

जिन-मूर्ति पूजकों की प्रशंसा

(सवैया इकतीसा)

जाके उर अंतर सुद्रिष्टिकी लहर लसी,
विनसी मिथ्यात मोहनिद्राकी ममारखी।
सैली जिनशासनकी फैली जाकै घट भयौ,
गरबकौ त्यागी षट-दरबकौ पारखी।।
आगमकै अच्छर परे हैं जाके श्रवनमैं,
हिरदै-भंडारमैं समानी वानी आरखी।
कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोई जिन प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी।।३।।

शब्दार्थ:-सुद्रिष्टि=सम्यग्दर्शन। ममारखी=मूर्ख-अचेतना। सैली (शैली)=पद्धति। गरब (गर्व)=अभिमान। पारखी=परीक्षक। श्रवन=कान। समानी=प्रवेश कर गई। आरखी (आर्षित)=ऋषि प्रणीत। अलप (अल्प)=थोड़ी।

अर्थ:-पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि जिसके अन्तरंग में सम्यग्दर्शन की तरंग उठकर मिथ्यात्व मोहनीयजनित निद्रा की असावधानी नष्ट हो गई है, जिनके हृदय में जैनमत की पद्धति प्रगट हुई है, जिन्होंने मिथ्याभिमान का त्याग किया है, जिन्हें छह

द्रव्यों के स्वरूप की पहिचान हुई है, जिन्हें अरहन्त कथित आगम का उपदेश श्रवणगोचर हुआ है, जिनके हृदयरूप भण्डार में जैन ऋषियों के वचन प्रवेश कर गये हैं, जिनका संसार निकट आया है, वे ही जिन-प्रतिमा को जिनराज वृषभ मानते हैं।।३।।

काव्य-३ पर प्रवचन

जाके उर अंतर सुद्रिष्टिकी लहर लसी,
विनसी मिथ्यात मोहनिद्राकी ममारखी।
सैली जिनशासनकी फैली जाकै घट भयौ,
गरबकौ त्यागी षट-दरबकौ पारखी॥
आगमकै अच्छर परे हैं जाके श्रवनमैं,
हिरदै-भंडारमैं समानी वानी आरखी।
कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोई जिन प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी॥३॥

आरखी का अर्थ यह हुआ। ऋषी प्रणीत। **आरखी**—आर्ष वचन। आर्ष वचन।

सम्यग्दृष्टि उसे प्रतिमारूप से मानता है, दूसरा मान नहीं सकता। समझ में आया? अज्ञानी को ज्ञान नहीं, इसलिए ज्ञान बिना उसका निक्षेप जो ज्ञेय है, वह कहाँ से आवे उसे? समझ में आया? ज्ञानी को ज्ञान आत्मज्ञान है, इसलिए उसके ज्ञान में नय पड़ते हैं और वह सामने निक्षेप के भेद भी उसे ज्ञेयरूप से ज्ञात होते हैं। ज्ञानी को ही निक्षेप होता है, अज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! अभी इन्होंने नाम डाला विद्यानन्दजी ने। भाई! नाम जिन, स्थापना जिन, द्रव्य जिन, भाव जिन—चारों ही जिन जैन हैं। ऐसा डाला उसमें। कहो, अब क्या करना चाहते हैं? सबको समान रखो। नाम जिन में क्या आया? नाम जिन तो सबको दे। पार्श्ववीर नाम था, लो। वांकानेर पार्श्ववीर। विसाश्रीमाली थे। दो भगवान के नाम। नाम दे तो भगवान हो गया? आहाहा! उसने ऐसा डाला है। नाम जिन, द्रव्य जिन और भाव जिन। जन, जिन और जैन, यह एक 'ई' का अन्तर है, बाकी सब बराबर है। जनधर्म—जनधर्म.... जन अर्थात् मनुष्य। जनधर्म, वह जिनधर्म; जिनधर्म, वह जैनधर्म। इतना अन्तर।

यहाँ तो कहते हैं कि जैनधर्म अर्थात्, आहाहा! आत्मा अत्यन्त अविकारी अकषाय स्वभाव का पिण्ड प्रभु, उसकी दृष्टि और ज्ञान में लीनता, एकाग्रता का नाम जैनधर्म है। जैनधर्म कोई बाहर में रहता नहीं। समझ में आया? जन—जिन—जैन। ऐसा कि अ—ई—ऐ, इतना अन्तर। ऐसा डाला। (शब्द का) खेल लोगों को। आहाहा! अरे, जैनधर्म तो बापू! महामाणिक रत्न है। आहाहा! भगवान होने का कार्य या भगवान होने का मार्ग।

भाई कहते हैं न अपने। जुगलकिशोर। जुगलकिशोर क्या, जुगराजजी। वे कारखानावाले जुगराजजी हैं न एक मुम्बई में। मुम्बई में है, क्या कहा जाता है उसे? महावीर मार्केट। ६०-७० लाख रुपये हैं। स्थानकवासी है। बगडी के स्थानकवासी। परन्तु उन्हें प्रेम यहाँ बहुत अधिक। यह तो सब, वे कहते हैं कि यहाँ मुक्त परमात्मा होना हो तो कारखाना यहाँ है। हाँ, हाँ, वे कहते हैं। अपने वह एक पुस्तक नहीं छपाई? पुस्तक दी थी या नहीं भैया? 'इतनी बात'। दी थी वहाँ? जयपुर। दी थी। 'इतनी बात' मिली है भैया? नहीं मिली। अच्छा। पुस्तक ले लेना। पीछे व्याख्यान के बाद। इतनी बात। इन्होंने पाँच हजार छपायी है।

कहते हैं, **सैली जिनशासनकी फैली जाकै घट भयौ, गरबकौ त्यागी षट-दरबकौ पारखी।** आहाहा! **जाके उर अंतर सुद्रिष्टिकी लहर लसी,... जिसके अन्तरंग में सम्यग्दर्शन की तरंग उठकर मिथ्यात्व मोहनीयजनित निद्रा की असावधानी नष्ट हो गई है।** आहाहा! जिसे आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द पवित्रता का पिण्ड प्रभु, ऐसा जिसे अनुभव में सम्यग्दर्शन हुआ, समकित हुआ। वह जीव अन्तरंग में सम्यग्दर्शन की तरंग उठकर निर्मल दशा उत्पन्न हुई, उसने मिथ्यात्व मोहनीयजनित निद्रा का नाश कर डाला।

विनसी मिथ्यात मोहनिद्राकी ममारखी। मूर्छा—अचेतना राग, राग। वह चाहे तो शुभराग हो या अशुभ हो, है अचेतन। उसकी मूर्छा समकिती को गयी है। मिथ्यादृष्टि वहाँ उसमें फँस गया मूर्च्छा में—राग में। समझ में आया? असावधानी नष्ट हुई, मोहनिद्रा गयी। मिथ्यात्वरूपी मोहनिद्रा नाश हो गयी है। आहाहा! मूर्च्छा अचेतन है वह तो, कहते हैं आहाहा! राग और पुण्य-पाप के भाव में जिसकी सावधानी है, उस चेतन की उसे असावधानी है। समझ में आया? आहाहा! यह पुण्य-पाप के भाव में असावधानी, वही ज्ञानी का लक्षण है। सावधानी, वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। आहाहा! यह विशेष बात कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८०, आसोज कृष्ण २, बुधवार, दिनांक ०६-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद ३ से ७

समयसार नाटक। चतुर्दश गुणस्थान अधिकार। चौदह गुणस्थान हैं न! चतुर्दश गुणस्थान का अधिकार बनारीदास वर्णन करते हैं। समयसार पूरा हुआ, उसके उपरान्त वर्णन करते हैं। कहते हैं कि मैंने समयसार की टीका की। हिन्दी, हिन्दी। कलशटीका में से, तो भगवान की प्रतिमा की भक्ति के प्रभाव से पूरा हुआ, ऐसा कहा। जिनमूर्ति परमात्मा की वीतराग मूर्ति जो इन्द्र भी पूजते हैं, ऐसी प्रतिमा वीतराग की मुद्रा, उसके पूजकों की प्रशंसा करते हैं। यह मूर्तिपूजा अनादि से है। नयी नहीं है। देवलोक में भी शाश्वत् जिनप्रतिमा असंख्य हैं। असंख्य शाश्वत् अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं। तो यह कृत्रिम प्रतिमा की यहाँ वर्तमान में बात चलती है। **जिनमूर्ति पूजकों की प्रशंसा।**

जाके उर अंतर सुद्रिष्टिकी लहर लसी,... क्या कहते हैं? जिसके हृदय में आत्मा का भान हुआ, सम्यक् दृष्टि की लहर लसी। है न? सम्यग्दर्शन की तरंग उठी। मैं तो आनन्द शुद्ध चैतन्यघन हूँ। पुण्य-पाप का विकल्प भी मुझमें नहीं। ऐसा अन्तर में चैतन्य स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन जो उत्पन्न हुआ, तो कहते हैं कि जिसके अन्तर में सुदृष्टि की लहर लसी—लहर आयी। **विनसी मिथ्यात मोहनिद्राकी ममारखी।** भ्रमणा मिथ्यात्व—देहक्रिया मेरी है, राग-पुण्य से धर्म होता है—ऐसी जो मिथ्यादशा थी, **विनसी मिथ्यात मोहनिद्राकी ममारखी। मिथ्यात्व मोहनीयजनित निद्रा की असावधानी नष्ट हो गयी है।** समझ में आया?

धर्मी जीव की, अपने चैतन्यस्वभाव के भान में सम्यग्दर्शन की दृष्टि उत्पन्न हुई। मैं त्रिकाली चिदानन्द आनन्द हूँ, मैं ध्रुव अखण्डानन्द हूँ, ऐसी अनुभव में दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जात है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि ही मूर्ति पूजा यथार्थ मानते हैं, यह कहते हैं। समझ में आया? है मूर्तिपूजा का भाव शुभ। समझ में आया? परन्तु वह शुभभाव धर्मी को आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं, **जिन विनसी मिथ्यात मोहनिद्राकी ममारखी।** पुस्तक है या नहीं भैया? मोहजनित निद्रा की असावधानी नष्ट हो गयी। असावधानी का अर्थ कि अपने ज्ञायकस्वभाव में सावधानी

करना। जो अपने स्वभाव की असावधानी थी, उसका नाश हुआ और अपने स्वभाव में सावधानी की उत्पत्ति हुई, यह सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ। गजब भाई! समझ में आया?

सैली जिनशासनकी फैली जाकै घट भयौ, जैनशासन की शैली—पद्धति, जिसके हृदय में—धर्मी समकिती को जैनशासन की पद्धति शैली प्रवेश हुई। आहाहा! **जाकै घट भयौ, गरबकौ त्यागी षट-दरबकौ पारखी।** परपदार्थ मेरे हैं, ऐसे गर्व का त्याग है उसे। समझ में आया? आहाहा! पुण्य-पाप का भाव—राग और शरीर से लेकर सारा जगत, वह मेरा है, ऐसा जो गर्व था, उस गर्व का नाश हुआ। यह धर्म की व्याख्या है। धर्मी जीव को अपना चिदानन्द अखण्ड आनन्द की ही प्रतीति और अधिकता भासित होती है। उसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ का अभिमान धर्मी को होता नहीं, क्योंकि वह चीज़ अपने में है नहीं। मूलचन्दभाई! यह ऐसी बात है।

गरबकौ त्यागी षट-दरबकौ पारखी। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ने जो छह द्रव्य जगत में देखे। छह वस्तु हैं जाति अपेक्षा से, संख्या अनन्त। अनन्त आत्मा हैं, यह जीवद्रव्य, अनन्त परमाणु हैं, रजकण, वह अजीवद्रव्य, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश और असंख्य कालाणु। ऐसी जाति में छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। छह द्रव्य को धर्मी ने पाठ परीक्षा करके निर्णय किये हैं, यह कहते हैं। समझ में आया? इसे तो कुछ भान ही नहीं होता और हम जैन। रतनलालजी! पैसे परखकर लेते हैं। सच्चा है या नहीं, लाओ।

यहाँ कहते हैं कि जैनशासन में जो सम्यग्दृष्टि होता है, (उसे) भगवान ने कहा, ऐसा आत्मा का अनुभव और प्रतीति होती है, वह षट्द्रव्य का पारखी होता है। जगत में छह द्रव्य हैं। एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं और एक ही पुद्गल ही है, ऐसा नहीं। इसके अतिरिक्त भी चार द्रव्य हैं अरूपी—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। छह द्रव्य की परीक्षा करके, पर्याय की बात चलती है, छह द्रव्य की परीक्षा करके छह द्रव्य का जाननेवाला हुआ है, पारखी है वह। समझ में आया?

आगमकै अच्छर परे हैं जाके श्रवनमैं,... आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग जिनेन्द्रदेव की वाणी जिसके कान में पड़ी है। वह तेरा स्वरूप है, यह पुण्य है, यह धर्म है। समझ में आया? आहाहा! आगम—परमागम सर्वज्ञ की वाणी। **आगमकै अच्छर**

परे हैं जाके श्रवनमैं,... कहते हैं कि अज्ञानी का आगम वह सुनता नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आगम कहा, वह आगम सुनते हैं और अक्षर कान में पड़े हैं। **हिरदै-भंडारमैं समानी वानी आरखी।** लो। **जिनके हृदयरूप भण्डार में जैन ऋषियों के वचन प्रवेश कर गये हैं।** है न? **वानी आरखी... आरखी...** आरखी अर्थात् ऋषि। ऋषि, सन्त कुन्दकुन्दाचार्य आदि महामुनि, दिगम्बर सन्त, धर्म के स्तम्भ। उनकी वाणी उसके हृदय में पड़ी है और ऋषियों के वचन प्रवेश कर गये हैं। आहाहा! समझ में आया? धर्मी इसे कहते हैं। यह तो सुना भी न हो, क्या षट्द्रव्य है और क्या मार्ग है। हो गया जैन। कहो, भीखाभाई! छह द्रव्य हैं, खबर थी?

मुमुक्षु : नहीं, पहले नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले नहीं थी। समझ में आया?

त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञ अरिहन्त जिनेश्वर ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे, उसका वह पारखी और **समानी आरखी वानी।** जैनऋषियों की वाणी प्रवेश कर गयी है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ के सन्त आत्मज्ञानी ध्यानी मुनियों की वाणी ने जिसके हृदय में प्रवेश किया है। अज्ञानी की वाणी का निषेध है वहाँ, यह कहते हैं। आहाहा! पक्ष नहीं होता है कि सत्य है? कि पक्ष से तो सत्य बात आयी है। धर्मी के हृदय में सर्वज्ञ की वाणी और ऋषियों की वाणी प्रवेश कर गयी है। तो उसका अर्थ, उसका भाव उसके ज्ञान में आ गया है। समझ में आया? आहाहा! बनारसीदास ने तो... **कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,...** लो। जिसे आत्मज्ञान हुआ, उसके अल्प भव ही हैं अब। **सोई जिन प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी।** आहाहा! समझ में आया? वीतराग प्रतिमा! जैसे भगवान थे, ऐसी मुद्रा। उस मुद्रा में दूसरी खटपट नहीं। मुकुट चढ़ाना, चाँदी के जेवर लगाना। अरे, केसर या फूल चढ़ाना मूर्ति पर, यह भी नहीं। क्योंकि जैसे परमात्मा थे, ऐसा प्रतिबिम्ब होना चाहिए। समझ में आया? वीतराग! वीतरागी मुद्रा!

कहते हैं, **कहत बनारसी कहत अलप भवथिति,....** जिसके अल्पभव रहे हैं, **सोई जिन प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी।** जिन प्रतिमा को वीतराग प्रतिमा जैसी मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? है यह शुभभाव, परन्तु ज्ञानी को ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिनप्रतिमा जिन सारखी। अरे, साक्षात् जिन हों, तो भी

उन्हें मानना, वह शुभभाव है। क्योंकि परद्रव्य है न? परद्रव्य आश्रय की मान्यता रागभाव है। तो यह जिनप्रतिमा भी परद्रव्य है परन्तु जिन सारखी मानकर उसका शुभभाव—पूज्यभाव आये बिना रहता नहीं। समझते हैं ज्ञानी कि वह हेय है। शुभभाव हेय है परन्तु आये बिना रहता नहीं। जबतक वीतराग पूर्ण दशा न हो, तब तक ऐसी भक्ति, यात्रा, पूजा—ऐसे भाव आते हैं। समझ में आया? तथापि वह धर्म नहीं। परन्तु जब तक धर्म की दशा पूर्ण न हो, तब तक ऐसे भाव धर्मी को अवश्य आते हैं। समझ में आया? भारी बात, भाई!

वे ही **जिन प्रतिमा को जिनराज सदृश मानते हैं।** आहाहा! साक्षात् भगवान! एक वाणी निकलती है (साक्षात्) परमात्मा को, यहाँ वाणी नहीं। यह जिन प्रतिमा सारखी। अक्रियबिम्ब! जिसे देखने से सिद्ध समान अपनी दशा याद आती है। समझ में आया? प्रतिमा को नहीं माननेवाला है या नहीं? प्रतिमा तो पर है। उसमें कहाँ भगवान आया? भाई! भगवान आये नहीं। सुन तो सही! यह भगवान का प्रतिबिम्ब है। समझ में आया? प्रिय चीज़ की फोटो बनाकर मानते हैं या नहीं? प्रिय चीज़ की। स्त्री मर गयी हो छोटी उम्र में और बहुत प्रेम हो तो फोटो रखे बड़ा। रखते हैं या नहीं? बड़ा। कहा था। पोरबन्दर चातुर्मास में गये तब। साथ में है एक मकान किसी का। उपाश्रय के साथ में है। गृहस्थ व्यक्ति। बहुत लाखोंपति। वह पहले वहाँ उतरने का कुछ रखा था। वहाँ ऐसा देखने गये तो स्त्री का बड़ा फोटो। यह कौन है यह? कहे, मेरी स्त्री। बहुत वर्ष पहले मर गयी है, उसका फोटो। .... यह फोटो रखो और भगवान की मूर्ति नहीं?

मुमुक्षु : वह तो संसार का काम है, यह धर्म का काम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म के काम में शुभभाव है। उस संसार के काम में पापभाव है। समझ में आया? ऐसा भाव परम परमात्मा की प्रीति का भाव आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

निश्चय में जिसे अपना वीतरागभाव का प्रेम-रुचि-दृष्टि है, उसे वीतराग परमात्मा और वीतराग प्रतिमा के प्रति भक्ति और प्रेम का उल्लास भाव आये बिना रहता नहीं। उसका विनय आता है। अमरचन्दभाई! अकेला निश्चय करने जाये, वहाँ व्यवहार उड़ा दे कि व्यवहार है नहीं। व्यवहार की नास्ति नहीं; है। है, परन्तु वह धर्म नहीं। आये बिना

रहता नहीं। (पूर्ण) वीतराग न हो, तब तक आये बिना रहता नहीं। साधर्मी के प्रति प्रेम, तीर्थंकर के प्रति प्रेम, तीर्थंकर प्रतिमा के प्रति पूजा, भक्ति, यात्रा—ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। पूर्ण वीतराग न हो और यहाँ प्रेम न हो तो वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ओहो! गजब!

चौदह गुणस्थान के वर्णन के पहले परमात्मा की प्रतिमा की भक्ति पहले करते हैं। उस भक्ति के कारण से हमारा यह रहस्यपूर्ण शास्त्र पूर्ण होगा। ऐसा शुभभाव है न? अब कहते हैं, प्रतिज्ञा।

★ ★ ★

काव्य - ४-५

प्रतिज्ञा (चौपाई)

जिन-प्रतिमा जन दोष निकंदै।
सीस नमाइ बनारसि बंदै।।
फिरि मनमांहि विचारै ऐसा।
नाटक गरंथ परम पद जैसा।।४।।
परम तत्त परचै इस मांही।
गुनथानककी रचना नांही।।
यामैं गुनथानक रस आवै।
तो गरंथ अति शोभा पावै।।५।।

शब्दार्थ:-निकंदै=नष्ट करे। गुनथानक (गुणस्थान)=मोह और योग के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप आत्मा के गुणों की तारतम्यरूप अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं। यामैं=इसमें।

अर्थ:-जिनराज की प्रतिमा भक्तों के मिथ्यात्व को दूर करती है। उस जिनप्रतिमा को पण्डित बनारसीदासजी ने नमस्कार करके मन में ऐसा विचार किया कि यह नाटक

समयसार ग्रन्थ परम पदरूप है और इसमें आत्मतत्त्व का व्याख्यान तो है, परन्तु गुणस्थानों का वर्णन नहीं है। यदि इसमें गुणस्थानों की चर्चा सम्मिलित हो तो ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी हो सकता है।।४-५।।

काव्य-४-५ पर प्रवचन

जिन-प्रतिमा जन दोष निकंदै।
सीस नमाइ बनारसि बंदै॥
फिरि मनमांहि विचारै ऐसा।
नाटक गरंथ परम पद जैसा॥४॥
परम तत्त परचै इस मांही।
गुनथानककी रचना नांही॥
यामैं गुनथानक रस आवै।
तो गरंथ अति शोभा पावै॥५॥

क्योंकि गुणस्थान भेद है, व्यवहार है। व्यवहार का इसमें विस्तार नहीं।

लो, समयसार में चौदह गुणस्थान का भेद से वर्णन नहीं। निषेध में वर्णन आया कि चौदह गुणस्थान, वह आत्मा नहीं। क्योंकि आत्मा अभेद अखण्ड आनन्दकन्द में भेद कहाँ? समझ में आया? तो अभेद की दृष्टि कराने में भेद का निषेध करने में गुणस्थान आया। परन्तु गुणस्थान क्या है, ऐसी स्पष्ट बात विशेष स्पष्ट आयी नहीं। तो विशेष स्पष्ट करते हैं, यह कहते हैं।

जिन-प्रतिमा जन दोष निकंदै—जिनराज की प्रतिमा भक्तों के मिथ्यात्व दूर करती है। अपने स्वभाव-सन्मुख है तो गृहीत मिथ्यात्व का निषेध होता है, यह कहते हैं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को मानते हैं, वह मिथ्यात्व गृहीत मिथ्यात्व है। समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अतिरिक्त और सन्त दिगम्बर मुनि अन्तर आनन्द के झूले में झूलनेवलो ऐसे मुनि और भगवान ने एक कहे वह शास्त्र—इन तीन के बिना दूसरे को मानना, मिथ्यात्वभाव है। यह मिथ्यात्व का नाश करने में जिन प्रतिमा निमित्त है, यह

कहते हैं। समझ में आया? ऐई! सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र और सच्चा धर्म क्या है, वह जिसे अनुभव में आया, उसे यह प्रतिमा का दर्शन करने से गृहीत मिथ्यात्व का तो नाश होता है।

जिन-प्रतिमा जन दोष निकंदै, सीस नमाइ बनारसि बंदै। जिनप्रतिमा को पण्डित बनारसीदासजी नमस्कार करके मन में ऐसा विचार किया। आहाहा! भगवान की तो अनुपस्थिति है। सर्वज्ञ परमात्मा यहाँ नहीं तो उसके स्थान में जिन प्रतिमा को वन्दन करके मैं भक्ति करता हूँ, यह कहते हैं। समझ में आया? **फिरि मनमांहि विचारै ऐसा।** टीका तो की। कलश में से समयसार नाटक बनाया। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार बनाया। उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्त वनवासी १००० वर्ष पहले उन्होंने टीका बनायी। उसमें कलश बनाये कलश। कलश की टीका। राजमल्ल हुए। राजमल्ल गृहस्थाश्रम में एक पण्डित हुए। उन्होंने कलश की टीका बनायी हिन्दी में। समझ में आया? यहाँ है, कलशटीका है न। उसमें से यह समयसार नाटक बनारसीदासजी ने बनाया।

तो कहते हैं, **फिरि मनमांहि विचारै ऐसा, नाटक गरंथ परम पद जैसा।** आहाहा! **यह नाटक समयसार ग्रंथ परम पदरूप है।** समयसार के शब्द ही परमपद हैं। उसकी वाणी, उसमें कहा वाच्य—अखण्ड आनन्दस्वरूप ज्ञाता प्रभु, ऐसा समयसार का स्वरूप है, वह परमपद है। परमपद की व्याख्या की है और परमपद ही उसमें है, यह कहते हैं। आहाहा! परमपद वस्तु। जैसे सिद्ध भगवान हैं, ऐसा यहाँ आत्मा है। ऐसे आत्मा की व्याख्या वह पूर्ण समयसार और उसका वाच्य अर्थात् आत्मा। समझ में आया? आहाहा गजब! एक व्यक्ति कहे, आठ दिन में पूरा समयसार पढ़ लिया। अच्छी बात है। समयसार की एक गाथा समझना महा मुश्किल है। समझ में आया? यह तो सन्त की—भगवन्त की वाणी है। सन्त भगवन्त की वाणी है। साक्षात् त्रिलोकनाथ तीर्थंकर से सुनकर आये, उनकी वाणी है। एक-एक गाथा समझने में बहुत पात्रता और बहुत योग्यता (चाहिए)। समझ में आया?

परम तत्त परचै इस मांही। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने और अमृतचन्द्राचार्य टीका में **परम तत्त परचै।** उसमें तो ज्ञायक चिदानन्दभाव की स्पर्शना करने की बात की

है। आहाहा! समझ में आया? तो आत्मतत्त्व का व्याख्यान तो है, यह कहते हैं। **परचै इस मांही।** पूरे समयसार में एक ज्ञायक चिदानन्द प्रभु अभेद चीज़ की दृष्टि करायी है। समझ में आया? व्यवहार का निषेध करके, भेद नहीं उसमें, राग नहीं उसमें, कर्म—शरीर नहीं उसमें, एक समय की पर्याय भी नहीं उसमें—ऐसी चीज़ का व्याख्यान समयसार में कहा है। आहाहा! समझ में आया?

परम तत्त परचै इस मांही, गुनथानककी रचना नांही। प्रत्येक गुणस्थान का विस्तार जो होना चाहिए, यह उसमें है नहीं। **यामैं गुनथानक रस आवै**—उसमें यदि गुणस्थान की चर्चा हो तो **गरंथ अति शोभा पावै।** इसलिए चौदह गुणस्थान की रचना करता हूँ। कहो, चेतनजी! यह गुणस्थान तो व्यवहार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे भिन्न आत्मा है। परन्तु व्यवहार है, यह बताना तो पड़ेगा या नहीं? जाने बिना क्या है? पर्याय जानना तो पड़े न कि पर्याय क्या है। समझ में आया? कहो, गुणस्थान जानने की अब बात करते हैं। स्वद्रव्य की परीक्षा करके परीक्षा करने की बात करते हैं। है व्यवहार।

मुमुक्षु : अपनी पर्याय न ज्ञात हो वहाँ.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय एक समय का व्यवहार है। समझ में आया? यह मोक्ष की पर्याय भी व्यवहार है। जो निश्चय एकान्त अकेला अन्तःतत्त्व त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल भगवान, वही निश्चय है। वही सम्यग्दर्शन का विषय है, ध्येय है।

रतनलालजी! यह तो थोड़ा अभ्यास करे, समझ में आये ऐसा है, हों! पैसे में घुस गये। बहुत पैसे हो गये न! ऐसा समय भी मिलता नहीं सुनने को। जहाँ मजा आये ऐसे पैसा। ओहोहो! दो-तीन करोड़ और दो-पाँच-दस लाख, दस लाख-बीस लाख पैदा हों। ओहोहो! धूल में भी नहीं कुछ। आत्मा अखण्ड आनन्द की उपज जो है

उसमें, ऐसी उपज दूसरी किसी चीज़ में है नहीं। आहाहा! पैदाश कहते हैं न? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : कमाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाई, कमाई। कमाई कहते हैं न! कमाई तो यह है। वह कमाई नहीं, वह तो सब नुकसान का धन्धा है।

मुमुक्षु : गंवाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : गंवाई। आहाहा! बनारसीदास कहते हैं कि जो यह गुणस्थान अधिकार इसमें हो तो अति शोभा पावे। बराबर उसे गुणस्थान की मर्यादा, गुणस्थान में कैसी दशा हो, कैसा विकल्प हो, उसका उसे यथार्थ ज्ञान होवे।

★ ★ ★

काव्य - ६-७

(दोहा)

इह विचारि संछेपसौं, गुनथानक रस चोज।
वरनन करै बनारसी, कारन सिव-पथ खोज।।६।।
नियत एक विवहारसौं, जीव चतुर्दस भेद।
रंग जोग बहु विधि भयौ, ज्यौं पट सहज सुफेद।।७।।

शब्दार्थ:-संछेपसौं=थोड़े में। जोग (योग)=संयोग। पट=वस्त्र।

अर्थ:-यह सोचकर पण्डित बनारसीदासजी शिव-मार्ग खोजने में कारणभूत गुणस्थानों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं।।६।। जीव पदार्थ निश्चयनय से एकरूप है और व्यवहारनय से गुणस्थानों के भेद से चौदह प्रकार का है। जिस प्रकार श्वेत वस्त्र रंगों के संयोग से अनेक रंग का हो जाता है, उसी प्रकार मोह और योग के संयोग से संसारी जीवों में चौदह अवस्थाएँ पायी जाती हैं।।७।।

काव्य-६-७ पर प्रवचन

इह विचारि संछेपसौं, गुनथानक रस चोज।
वरनन करै बनारसी, कारन सिव-पथ खोज॥६॥
नियत एक विवहारसौं, जीव चतुर्दस भेद।
रंग जोग बहु विधि भयौ, ज्यौं पट सहज सुफेद॥७॥

आहाहा! देखो! दृष्टान्त देते हैं। **इह विचारि संछेपसौं, गुनथानक रस चोज।** गुणस्थान की रचना शिव मार्ग खोजने को कारणभूत... देखो, **यह सोचकर पण्डित बनारसीदासजी शिव-मार्ग खोजने में कारणभूत गुणस्थानों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं...** लो। शिव—मोक्षमार्ग में गुणस्थान कारणभूत... कौन से गुणस्थान की (क्या) मर्यादा है, उसे जानना तो पड़ेगा या नहीं? समझ में आया? उन्हें ऐसा हो गया था न पहले बनारसीदास को। तत्त्व की दृष्टि हुई नहीं और निश्चयाभास हो गया था। बाद में एक बार कोठरी में चार व्यक्ति नग्न हो गये। उसमें आता है। नग्न होकर हम साधु हैं (ऐसा मानने लगे)। तो नग्नता से साधु हो गये? समझ में आया? अन्दर गुणस्थान की क्या दशा है? छठवें की क्या दशा है? चौथे की क्या दशा है? भान बिना कपड़े छोड़ दिये और नग्न हो गये चारों (लोग)। चारों कोठरी में फिरते थे कि हम साधु हो गये। बाद में उन्हें रूपचन्दजी पाण्डे मिले। बताया गुणस्थान में पर्याय निर्मल ऐसी है और उसमें विकल्प भी ऐसा आता है। ऐसे नग्न हो गये कपड़े छोड़कर, इसलिए मुनि हो गये, ऐसा नहीं है। आता है? सुना है या नहीं?

हमारे ऐसा हुआ था यहाँ। मकनभाई थे न हुँकारा देनेवाले। अभी यहाँ नहीं हैं। हुँकारा देते थे न! तो (संवत्) १९९५ के वर्ष में हमारा वाँचन किया, सुना। तो एक रात्रि को नग्न होकर आये हमारे पास। यहाँ बैठते थे मकनभाई गोसलिया। पहले हामी नहीं देते थे? गर्दन जरा ऐसे-ऐसे... नग्न होकर आये। (संवत्) १९९५ का चातुर्मास था न। ९५ समझे? संवत् १९९५। ५+२७=३२ वर्ष पहले की बात है।

मुमुक्षु : कहाँ पर महाराज! यहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राजकोट। हम राजकोट में (ठहरे) थे, मोहनभाई के मकान में। तो एक कमरे में हम थे। एक कमरे में वे सोते थे। तो सुबह में... अभी रात्रि का अन्धेरा था। (सूर्योदय के) घण्टे-दो घण्टे पहले। नग्न होकर आये। मैंने ऐसे देखा कि यह कौन? अरे, मकनभाई क्या हुआ है? यह नग्न हो जाये, इसलिए साधुपना—ऐसा भगवान ने नहीं कहा।

अब तो दृष्टि बहुत अच्छी ऐसी है। अभी यहाँ नहीं हैं। वह गढडा, गढडा। तबियत के कारण अवस्था हो गयी न! ८९ वर्ष हुए। तुम्हारे से भी बड़े हैं या नहीं थोड़े? तीन-चार महीने बड़े हैं। ८९ वर्ष में हुँकारा ऐसा देते थे। कहा, मकनभाई, ऐसे कपड़े छोड़े, नग्न हुए इसलिए साधु हो गये, ऐसी चीज़ नहीं है। वह तो अन्तर में आत्मा का भान होकर, अनुभव होकर, आत्मा अखण्ड आनन्द चीज़ के ध्यान में आनन्द होकर बाद में स्वरूप में स्थिरता करके तीन कषाय का अभाव हो, तब सहज शरीर की नग्नदशा हो जाती है, उसे नग्न कहते हैं। अकेला नग्न तो बाबा भी घूमते हैं। ढोर भी नग्न घूमते हैं। (छोटा) लड़का भी नग्न ही फिरता है। दृष्टान्त दिया है कुन्दकुन्दाचार्य ने। लिंगपाहड़ में। नग्न से क्या है? अकेला नग्न हुआ। अन्दर में नग्न हुए बिना बाहर के नग्नपने का क्या काम है? यह तो ढ़ोर भी नग्न हैं। समझ में आया? ढोर समझते हैं? पशु।

आत्मा अखण्ड आनन्द प्रभु सहजानन्द की मूर्ति का स्वाद सम्यग्दर्शन में आये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? क्योंकि अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है। उसके अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। उसकी प्रतीति का नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसे ही देव-गुरु-शास्त्र सच्चे, यह सम्यग्दर्शन है, नौ तत्त्व की श्रद्धा सम्यग्दर्शन, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्या करे! समझ में आता नहीं और यहाँ—वहाँ बैठकर कहे कि हम समकिती धर्मी हैं। अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, तू वस्त्र छोड़कर नग्न हुआ, साधु कहाँ से हुआ? समझ में आया? 'मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से हो? साधु हुआ तो सिद्ध हुआ, कहनी रही न कोई।' आहाहा! साधु, उसे जानना चाहिए कि छठवें, सातवें गुणस्थान में मुनि की क्या दशा है! जिसे तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव हुआ है, जो

वनवास में रहते हैं और जिसे पौन सेकेण्ड के अन्दर की निद्रा आती है। समझ में आया? यहाँ तो ३-३, ४-४, ६-६ घण्टे निद्रा ले और हम साधु हैं। साधु कैसा आया?

भगवान ऐसा कहते हैं। छहढाला में आता है, 'पिछली रयनि।' छहढाला में आता है। पिछली रैन में कुछ एकासन में निद्रा आ जाती है। पौन सेकेण्ड के अन्दर। छठवें गुणस्थान में आते हैं। रात्रि के अन्तिम पहर में चौथा पहर, चौथे पहर में थोड़ी एक करवट (निद्रा आती है)। क्षण में सप्तम (गुणस्थान) आ जाता है आनन्द का अनुभव। क्षण में छठवाँ, क्षण में सप्तम। ऐसी दशा का वर्णन स्पष्ट करने को यहाँ गुणस्थान का वर्णन कहने में आया है। यह जरूरी है। ऐसे ही मान ले, लो। चौथा गुणस्थान ऐसा मान ले, लो। हमारे नौ तत्त्व की श्रद्धा है, यह चौथा (गुणस्थान) है। यह नहीं। नौ तत्त्व की भेद की श्रद्धा तो मिथ्यात्व है। गजब बात है।

अखण्डानन्द प्रभु पूर्णानन्द एक चिदानन्द ध्रुव स्वभाव की अनुभव में प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! गुणस्थान की स्पष्टता उसमें—समयसार में नहीं है। क्योंकि वहाँ तो अकेले परमपद की मुख्यता से ही कथन है। अंश है थोड़ा। परन्तु यहाँ तो स्पष्ट करने का (कहा है)। चौथा गुणस्थान किसे कहें? पाँचवाँ किसे कहें? छठवाँ किसे कहें? पाँचवाँ श्रावक। भान नहीं होता कुछ और हम श्रावक हो गये। श्रावक किसे कहते हैं? सावज है यह तो। दया, दान, व्रत, विकल्प, राग, उसे धर्म मानते हैं, सावज हैं। श्रावक कैसा? ऐई, शान्तिभाई! यहाँ तो ऐसी बात है। नगद बात है यहाँ। समझ में आया?

दृष्टान्त दिया था न पहले? थैली में चिरायता और ऊपर लिखे शक्कर। तो चिरायता मीठा हो जायेगा? समझ में आया? इसी प्रकार ऊपर से हम श्रावक जैन नाम लिखें, नाम मानें। अन्दर में तो राग से धर्म होता है, पुण्य से धर्म होता है, पुण्य की क्रिया मेरी है, शरीर की क्रिया मैं करता हूँ—ऐसा मिथ्यात्व का जहर तो पड़ा है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! भगवान का समकिती होना और भगवान का श्रावक होना, यह कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा! भगवान की समीपता जिसने पाई है, यहाँ अन्दर, उसे भगवान समीप में केवलज्ञान वर्तता है, यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वरनन करै बनारसी, कारन सिव-पथ खोज। मोक्षपंथ के खोजने के लिये यह कहते हैं, देखो! मोक्षमार्ग की खोज। मोक्षमार्ग चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें (गुणस्थान में) मोक्षमार्ग है। तो उसकी खोज करते हैं कि यह गुणस्थान की दशा कैसी है? समझ में आया? **सिव-पथ खोज,** है न? मोक्ष के पंथ की खोज करते हैं कि मोक्ष के मार्ग की दशा समकित में कैसी है, पंचम में कैसी है, छठवें गुणस्थान में कैसी है, सातवें में कैसी है और तेरहवें में कैसी है?

चौदह गुणस्थान हैं। मेडी है न मेडी, क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : दादर।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेडी, मेडी। दादर नहीं। कहो, मेडी अर्थात् ऊपर मंजिल... मंजिल। उस पर चढ़ने को सीढ़ियाँ होती हैं न सीढ़ियाँ। सीढ़ी... सीढ़ी। यह सीढ़ी के १४ (पायदान) होते हैं। वैसे मुक्ति को जानेवाली सिद्धदशा के पहले १४ गुणस्थान की दशा होती है। चौथे गुणस्थान से धर्म शुरु होता है। समझ में आया? **वरनन करै बनारसी, कारन सिव-पथ खोज।** भाषा तो देखो। मोक्ष के मार्ग की खोज करने को, देखो। सिव मार्ग खोजने में कारणभूत है। मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्वरूप आचरण हुआ या विशेष स्थिरता हुई या चारित्र हुआ या श्रेणी में वीतराग धारा हुई। यह बताने को यह गुणस्थान कहे जाते हैं। समझ में आया?

नियत एक विवहारसौं, जीव चतुर्दस भेद। निश्चय में तो जीव एक स्वरूप ही है। आहाहा! सत्य की दृष्टि और निश्चय दृष्टि में एकरूप निश्चय भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकस्वभाव अनन्त शक्ति का एकरूप जिसका, वह नियत, वह निश्चय में तो एकरूप ही जीव है। निश्चय में दो रूप जीव, पर्याय का भेद, बन्ध-मोक्ष, मोक्ष का मार्ग, मोक्ष—यह निश्चय में है नहीं। आहाहा! मोक्ष का मार्ग निश्चय है, वही व्यवहार है क्योंकि पर्याय है। आहाहा! क्या पर्याय, क्या द्रव्य, भगवान जाने! भगवान तो जानते हैं। यह तो भगवान कहते हैं दुनिया को। द्रव्य अर्थात् चीज़ वस्तु, अपनी एकरूप अनन्त गुण का एकरूप चिदानन्द प्रभु, वह निश्चय में तो एक ही रूप जीव का है। उसे बन्ध और मोक्ष—दो कहना, वही व्यवहार है। आहाहा! और मोक्षमार्ग की निश्चय सच्ची

दशा पर्याय, वह भी व्यवहार है। आहाहा! निश्चय तो एकरूप है। पर्याय भेद हो गया, व्यवहार हो गया। अरे, अरे, यह गजब! समझ में आया? उसमें दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह तो असद्भूतव्यवहार है। परन्तु मोक्षमार्ग की पर्याय निर्मल जितनी हुई, वह त्रिकाली की अपेक्षा से तो व्यवहार है। निश्चय में तो एक ही स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

नियत एक, है न? **जीव पदार्थ निश्चयनय से एकरूप है और व्यवहारनय से गुणस्थानों के भेद से चौदह प्रकार का है।** चौदह प्रकार हैं। अस्ति है। है, उसका निषेध किया है न। चौदह गुणस्थान आत्मा में नहीं त्रिकाल में। परन्तु है या नहीं भेदरूप? है उसका निषेध या नहीं उसका निषेध? खरगोश के सींग, गधे के सींग। बारीक... बारीक। बहुत सूक्ष्म काटना। परन्तु है नहीं, क्या काटे? समझ में आया? चौदह गुणस्थान पर्याय में है तो उसमें चौथे की दशा क्या, मिथ्यात्व की दशा क्या, पंचम की क्या, छठवें की क्या, सातवें आठ-नौ-दस-ग्यारह-बारह-तेरह-चौदह। यह दशा यथार्थ समझने में मोक्षपंथ खोज (में कारण) है यह। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान कराते हैं न! दृष्टि में तो आदर नहीं। समझ में आया? गजब बात, भाई! जैनदर्शन सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ने कहा जो सम्यग्दर्शन, उसमें तो अभेद अकेला आत्मा अभेद ही है। सम्यग्दर्शन और मोक्ष की पर्याय तथा बन्ध और ऐसे दो भेद सम्यग्दर्शन का विषय नहीं, नहीं है। आहाहा!

नियत निश्चय से तो जीव एकरूप है और व्यवहारनय से गुणस्थानों के भेद से चौदह प्रकार हैं। तो जानना पड़ेगा या नहीं उसे? अपने मोक्षमार्ग की दशा में किस दशा में मैं हूँ। समझ में आया? सम्यग्दर्शन हुआ अखण्ड आनन्द एकरूप दृष्टि से, तो क्या मोक्षमार्ग पूरा हो गया? जब दर्शन-ज्ञान-चारित्र होगा, उससे आगे बढ़कर आत्मा की पूर्ण दशा हो, वह तो चौदहवें के अन्तिम समय में पूरा होता है। समझ में आया? मोक्षमार्ग तो चौदह गुणस्थान के अन्तिम समय में पूरा होता है। आहाहा!

समझण (नहीं), द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या। लो, जैनदर्शन का एकड़ा है, (उसकी) खबर नहीं। जाओ हम तो भगवान को मानते हैं। तीर्थंकरदेव और उनके गुरु

मुनि को मानते हैं, साधु को मानते हैं, लो हो गया समकित। ऐसा तो अनन्त बार माना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। परद्रव्य को मानने से विकल्प होता है, उसमें धर्म है, (-ऐसा मानना) वह तो मिथ्यात्वभाव है। यहाँ तो (इतने) तक लिया, नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व है। हाँ। एकरूप चैतन्य अखण्डानन्द अभेद की दृष्टि हुए बिना नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा, वह नौ तत्त्व मिथ्यात्व है। कलशटीका में लिया है। उसमें से बनाया है न यह। कलशटीका है न, कलशटीका। यह रही कलशटीका। कितने में है ? छह, छह कलश। (जीव अधिकार)। लो, यही निकला।

'**इमाम् नवतत्त्वसन्ततिम् मुक्त्वा**' आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य। कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल में तीर्थंकर जैसा काम किया है और अमृतचन्द्राचार्य ने तीर्थंकर के गणधर जैसा काम किया है। ऐसी टीका, आहाहा! भरतक्षेत्र में कहीं है नहीं। समझ में आया ? तो कहते हैं। कलशटीका में है। छठवें कलश में। 'जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप के अनादि सम्बन्ध को छोड़कर।' छोड़ दे। 'संसार अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है, वह तो विभाव परिणति है, इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।' चिल्लाहट मचा दे। जीव, उसके साथ आस्रव-बन्ध—ऐसे नौ भेद बाह्य तत्त्व है। आहाहा!

आत्मा अखण्ड अन्तःतत्त्व एकरूप स्वरूप की प्रतीति करना, अनुभव करके उसका नाम सम्यग्दर्शन है। नौ पर्याय, वह तो भेद है। पर्याय तो अंश तत्त्व हुआ। अंश तत्त्व की श्रद्धा में तो पूरा अंशी रह जाता है। अरे, अरे! यह व्याख्या ऐसी की! ऐसा धर्म कैसा होगा ? हम तो भाई! अभी तक (सुनते थे) धर्म ऐसा कि कन्दमूल नहीं खाना, हरितकाय प्रत्येक हो वह लेना, रात्रि को नहीं खाना, सामायिक करना, यात्रा करना, व्रत लेना और अपवास करना। ऐसा सुना है अभी तक तो। भाई! यह तो सब विकल्प की क्रिया की बात है। समझ में आया ? वह धर्म नहीं। आहाहा! नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व है। अपना स्वभाव भगवान नियत में तो निश्चय एकरूप ही जीव है। पर्याय का भेद कहना, मोक्ष की पर्याय जीव की कहना, वही व्यवहार हुआ। आहाहा! भगवान आत्मा ध्रुव जो निश्चय है, वह तो उत्पाद-व्यय की पर्याय से विरुद्ध ध्रुव तत्त्व है। समझ में आया ?

यह ले, ऐसा नित्य! अपना त्रिकाली भगवान आत्मा, वह ध्रुव है, उसकी श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है। परन्तु वह श्रद्धा है, वह उत्पाद-व्ययवाली है। आहाहा! उत्पाद-व्यय ध्रुव से विरुद्ध है। उत्पाद-व्यय ध्रुव से विरुद्ध है। ध्रुव से उत्पाद-व्यय विरुद्ध है और उत्पाद-व्यय से ध्रुव (विरुद्ध है)। आहाहा! त्रिकाली भगवान आत्मा एकरूप अखण्ड में तो उत्पाद-व्यय भी है (नहीं)। आहाहा! 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।' तीन मिलकर सत् कहते हैं न! तत्त्वार्थसूत्र। 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।' 'सत् द्रव्यलक्षणं।' वह तो प्रमाण का विषय बताते हैं। समझ में आया?

एकरूप। यहाँ तो नियत एक कहा न। तो उत्पाद-व्यय तो दो हुए। उत्पाद-व्यय की पर्याय—उत्पाद मुक्ति हुई, व्यय हुआ संसार का। समझ में आया? वह भी ध्रुव से तो विरुद्ध हुआ। ऐई, भीखाभाई! गजब मार्ग ऐसा! ऐसा मार्ग वीतराग का होगा? वीतराग ऐसा कहते होंगे? क्या कहते हैं यहाँ? बनारसीदास सम्यग्दृष्टि थे। टीका करके बाद में गुणस्थान का वर्णन करने में यह कहते हैं। शिवपंथ—मोक्षमार्ग में क्या-क्या दशा है? ऐसा ज्ञान कराने को चौदह गुणस्थान का वर्णन करते हैं। समझ में आया?

विवहारसौं, जीव चतुर्दस भेद, रंग जोग बहु विधि भयौ, ज्यौं पट सहज सुफेद। दृष्टान्त देते हैं। सफेद वस्त्र एकरूप है। उसमें रंग भेद से भिन्न-भिन्न रंग भेद हो गया। उसी प्रकार भगवान आत्मा निश्चय से एकरूप है। योग और मोह के निमित्त से चौदह भंग गुणस्थान के हो गये। अरे! गुणस्थान और मार्गणा व्यवहार, नहीं आता? उसमें—योगसार में आता है। यह तो श्लोक ही ऐसा आता है। 'गुणस्थान अरु मार्गणा व्यवहार।' यहाँ तो आता है न १४ गुणस्थान में। ६८ गाथा, समयसार। सब नहीं। अकेला ज्ञायकभाव में पर्यायमात्र नहीं, लो। समझ में आया? ऐसा निश्चय में एकरूप है, फिर भी गुणस्थान भेद से व्यवहार से उसमें जो दशा है, उस दशा में किस दशा में समकित है, किस दशा में पंचम है, किस दशा में मुनिपना है, यह बताने को मोक्षमार्ग की खोज करने को यह मार्ग कहते हैं। अरे! अब द्रव्य की बात सुने, वहाँ पर्याय की.... ऐ, चेतनजी!

मुमुक्षु : पर्याय का निषेध आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा!

रंग जोग बहु विधि भयौ, ज्यौं पट सहज सुफेद। वस्त्र है न वस्त्र। मोह—योग के संयोग... उसमें लिखा है ऐसा ही। **जिस प्रकार श्वेत वस्त्र रंगों के संयोग से अनेक रंग का हो जाता है, उसी प्रकार मोह और योग के संयोग से,...** लो। गोम्मटसार। गोम्मटसार से लिया है, लो। **मोह और योग के संयोग से संसारी जीवों में चौदह अवस्थाएँ पायी जाती हैं।** आहाहा! अब उनके नाम। **चौदह गुणस्थानों के नाम।** अभी तो नाम।

★ ★ ★

काव्य - ८

चौदह गुणस्थानों के नाम

(सवैया इकतीसा)

प्रथम मिथ्यात दूजौ सासादान तीजौ मिश्र,
चतुर्थ अव्रत पंचमौ विरत रंच है।
छट्ठौ परमत्त नाम सातमो अपरमत्त,
आठमो अपूरवकरन सुख संच है।।
नौमौ अनिवृत्तिभाव दशमो सूच्छम लोभ,
एकादशमो सु उपसांत मोह बंच है।
द्वादशमो खीनमोह तेरहो सजोगी जिन,
चौदहो अजोगी जाकी थिति अंक पंच है।।८।।

शब्दार्थ:–रंच=किंचित्। सुखसंच=आनन्द का संग्रह। वंच (वंचकता)=ठगाई–धोखा। थिति=स्थिति। अंक पंच=पाँच अक्षर।

अर्थ:–पहला मिथ्यात्व, दूसरा सासादन, तीसरा मिश्र, चौथा अव्रत सम्यग्दृष्टि, पाँचवाँ देशव्रत, छठवाँ प्रमत्त मुनि, सातवाँ अप्रमत्त मुनि, आठवाँ अपूर्वकरण, नववाँ अनिवृत्तिकरण, दसवाँ सूक्ष्मलोभ, ग्यारहवाँ उपशान्तमोह, बारहवाँ क्षीणमोह, तेरहवाँ

सयोगी–जिन और चौदहवाँ अयोगी–जिन जिसकी स्थिति अ इ उ ऋ लृ इन पाँच उच्चारण–काल के बराबर है।।८।।

काव्य-८ पर प्रवचन

प्रथम मिथ्यात दूजौ सासादान तीजौ मिश्र,
चतुर्थ अव्रत पंचमौ विरत रंच है।
छठ्ठौ परमत्त नाम सातमो अपरमत्त,
आठमो अपूरवकरन सुख संच है॥
नौमौ अनिवृत्तिभाव दशमो सूच्छम लोभ,
एकादशमो सु उपसांत मोह बंच है।
द्वादशमो खीनमोह तेरहो सजोगी जिन,
चौदहो अजोगी जाकी थिति अंक पंच है॥८॥

चौदह गुणस्थान का वर्णन करते हैं। पहला मिथ्यात्व है। आहाहा! पर्यायबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि है। एक अंश को ही अपना मानते हैं और विकार को, विभाव को अपना मानते हैं और परचीज़ अपने में नहीं, उसे अपनी मानते हैं। वह मिथ्यात्व गुणस्थान अज्ञानदशा है। यह अधर्म गुणस्थान है। .... मिथ्यात्व। दूसरा सासादन है। यह जरा सूक्ष्म बात है। पहले समकित पाकर नीचे गिरते हैं बीच में थोड़ा काल रहते हैं। उसको सासादन कहते हैं। यह तो बहुत थोड़ा काल है। तीसरा मिश्र है। समकित पाकर आत्म-अनुभव पाकर कोई गिर जाये, उसकी मिश्रदशा हो जाती है अन्तर्मुहूर्त, वह तीसरा (गुणस्थान) है।

चौथा अव्रत सम्यग्दृष्टि। अभी आसक्ति व्रत की छूटी नहीं अव्रती। अन्दर व्रत हुआ नहीं परन्तु सम्यग्दृष्टि है। अविरत सम्यग्दृष्टि। श्रेणिक राजा भगवान के काल में सम्यग्दृष्टि हुए। अविरत सम्यग्दृष्टि थे। भव का अभाव करके शुभभाव आया, तीर्थंकरगोत्र बँधा। चौथे गुणस्थान में तीर्थंकरगोत्र बँध गया। और पूर्व की नरक की आयुष्य की स्थिति बँध गयी थी। नरक में चले गये ८४ हजार वर्ष। परन्तु वहाँ से निकलकर

आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। समझ में आया? वे अविरति सम्यग्दृष्टि थे। परन्तु सम्यग्दृष्टि थे। वे तो क्षायिक समकिती थे। आहाहा! पहले नरक का आयुष्य, सच्चे सन्त का अनादर करके सर्प डाल दिया था न। गले में सर्प डाल दिया था गले में। और लाखों चींटियाँ।

उनकी स्त्री थी चेलना, वह समकिती थी, जैन थी। यह बुद्ध था। तो एक बार चेलना को कहा, 'अरे, तेरे गुरु को मैंने गले में सर्प डाल दिया है। निकाल दिया होगा।' 'अरे महाराज! ऐसे मेरे गुरु नहीं होते। ऐसे उपसर्ग को टालते नहीं। ऐसे के ऐसे ध्यान में होंगे आनन्द में। चलो।' चेलना को साथ लेकर गये। स्त्री (रानी) समकिती थी, वह बौद्ध मिथ्यादृष्टि था। बौद्ध। उसकी बौद्ध की मान्यता थी। आहाहा! चलो, लाखों चींटियाँ। ऐसे के ऐसे ध्यान में आनन्द... आनन्द... आनन्द। 'अरे, अन्नदाता! देखो, हमारे सन्त देखो! आत्म-आनन्द में झूलते हैं यह तो।'

सर्प को उठाकर उसे निकाल दिया। (श्रेणिक) ने निकाला। असातना की, वहाँ नरक का आयुष्य बँध गया था। तैतीस सागर की स्थिति बँध गयी थी। सातवें नरक की आयुष्य बँध गयी थी। परन्तु बाद में मुनि ने उपदेश दिया, सम्यक्त्व पाया। तैतीस सागर की स्थिति घट गयी। भगवान के पास गये और वहाँ तीर्थंकरगोत्र बाँधा। आहाहा! समवसरण में। आहाहा! अभी श्रावक-मुनि नहीं थे। अन्दर शान्ति की स्थिरता बढ़ी नहीं थी। परन्तु आंशिक शान्ति और आंशिक अशान्ति, ऐसी दोनों ही चीज़ साथ में थी। आहाहा! परन्तु वह शान्ति के ही स्वामी थे, राग के नहीं। ऐसी अन्तर्दृष्टि—कोई चीज़ मेरी नहीं। समकिती कदाचित् युद्ध में हो, तो भी राग-द्वेष का अंश, वह मेरा नहीं। मैं तो उसको जानने-देखनेवाली दशावाला मैं तो हूँ। आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि अविरति, उसे चौथे गुणस्थान में कहते हैं। समझ में आया?

पाँचवाँ देशव्रत, सम्यक्त्व अनुभवसहित, स्वरूप में आंशिक स्थिरता बढ़ी और बारह व्रत का विकल्प उत्पन्न होता है, उसे पंचम गुणस्थान देशव्रत कहा जाता है। आहाहा! यह श्रावक... श्रावक। यह सब श्रावक हैं, ऐसा श्रावक नहीं, यह कहते हैं। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष दूसरे में कभी समकिती को रस पड़ता

ही नहीं। ९६ हजार स्त्रियाँ भरत को थीं। भरत चक्रवर्ती। ९६ हजार। परन्तु आत्मज्ञान के रस में कहीं रस लगता नहीं। फीका... फीका। जहर जैसा लगे। ऐसा अविरति सम्यग्दृष्टि, उसके उपरान्त स्वरूप में स्थिरता होकर दूसरी कषाय गयी है, शान्ति बढ़ गयी है। कैसी? सर्वार्थसिद्धि के देव में एकावतारी समकिती क्षायिक समकिती है कितने, उनसे भी पंचम गुणस्थान में शान्ति (अधिक) है। आहाहा! समझ में आया? उसे श्रावक कहते हैं। उसे श्रावक पंचम गुणस्थानवाला कहते हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८१, आसोज कृष्ण ८, रविवार, दिनांक ११-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद ८ से १३

नाटक (समयसार) बनारसीदास का किया हुआ है। चौदह गुणस्थान का वर्णन है। चौदह गुणस्थान के नाम।

प्रथम मिथ्यात दूजौ सासादान तीजौ मिश्र,
चतुर्थ अव्रत पंचमौ विरत रंच है।
छठ्ठौ परमत्त नाम सातमो अपरमत्त,
आठमो अपूरवकरन सुख संच है॥
नौमौ अनिवृत्तिभाव दशमो सूच्छम लोभ,
एकादशमो सु उपसांत मोह बंच है।
द्वादशमो खीनमोह तेरहो सजोगी जिन,
चौदहो अजोगी जाकी थिति अंक पंच है॥८॥

भगवान तीर्थंकरदेव ने चौदह गुणस्थान (कहे हैं)। जीव निश्चयनय से तो एकरूप है। वस्तु में भेद करके कहना, वह सब व्यवहार का विषय है। परन्तु वह विषय है न? आश्रय करनेयोग्य है कि यह यहाँ प्रश्न नहीं अभी। चौदह गुणस्थान पर्याय में भेदरूप होते हैं, वे आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं, परन्तु वे जाननेयोग्य तो हैं न? समझ में आया?

मुमुक्षु : जाननेयोग्य किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों, वह पर्याय क्या है, यह जाने नहीं तो द्रव्य का आश्रय करे कैसे? राग और पर्याय की दशा वर्तमान में कैसी है, उसे जाने बिना उसके ऊपर से हटकर, अन्दर में जा कैसे सके? समझ में आया? जानना चाहिए न! चेतनजी! आहाहा! पहला मिथ्यात्व। उसके पाँच भेद लेंगे। मिथ्यात्व अर्थात् एकान्त और विपरीत श्रद्धा की दृष्टि, वह मिथ्यात्व है। वह अनादि का मिथ्यात्व है, उसे जानना तो चाहिए न?

मुमुक्षु : परन्तु पर्याय को?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को जाने, परन्तु जानने का कार्य तो पर्याय में है। कहो, जानने का कार्य तो पर्याय में है। मोक्षमार्ग पर्याय है, सिद्ध भी पर्याय है।

मुमुक्षु : जानने का काम पर्याय में परन्तु जाननेवाला त्रिकाल पड़ा है, उसे जाने न? दूसरे को किसलिए जानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई चेतनजी! त्रिकाल पड़ा है, परन्तु त्रिकाल किसकी अपेक्षा से? एक समय की अपेक्षा से त्रिकाल है। अपेक्षा से। वस्तु त्रिकाल त्रिकाल से है। परन्तु यह त्रिकाल है और यह एक समय की अवस्था है। यह एक समय की अवस्था की अपेक्षा बिना त्रिकाल यह है, वह कौन है? समझ में आया? ऐसा मार्ग है वीतराग का। व्यवहार बीच में होता है, परन्तु वह शरण नहीं। सूक्ष्म बात है। आश्रय करनेयोग्य नहीं परन्तु जाननेयोग्य तो है। समझ में आया?

पहला मिथ्यात्वभाव। उसके पाँच भेद लेंगे। दूसरा सासादन। दूसरे गुणस्थान की दशा सासादन है। आत्मा का भान होकर नीचे गिरते हुए, मिथ्यात्व में आने पर वह दशा होती है। उसका नाम सासादन। दूसरे गुणस्थान की दशा है। तीसरा मिश्र। वह तीसरे गुणस्थान की कोई मिश्र दशा है अन्तर्मुहूर्त। यह भी सच्चा और यह भी सच्चा, ऐसा नहीं। परन्तु अन्दर कोई ऐसे परिणाम मिश्र होते हैं कि जो समकित से गिरने पर, या गिरने के बाद मिथ्यात्व से चढ़ने पर। समझ में आया? चौथा तो अव्रत। चौथा गुणस्थान अव्रत है। वस्तु अखण्ड अभेद चिदानन्द आत्मा पूर्णानन्द सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने कहा, ऐसा आत्मा, उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन होता है। अनुभव में आत्मा वेदन में आवे। ऐसा वेदन तो अनादि से राग और पर्याय में ही वेदन है। और उस वेदन के समक्ष अप्रगट वस्तु क्या है, उसकी उसे दृष्टि की खबर नहीं। वेदन में आनेवाली दशा, वह मैं हूँ— ऐसा मानकर त्रिकाल ज्ञायकभाव को दृष्टि में से छोड़ दिया। समझ में आया? वह अव्रतभाव। जिसने त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप ध्रुव सच्चिदानन्द प्रभु 'मैं'। पर्याय एक समय की अवस्था और राग जितना मैं नहीं। पूर्ण परमात्मा, पूर्णस्वरूप वह मेरा है, ऐसा अनुभव में आना, इसका नाम अविरति सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

पंचमौ विरत रंच है। पंचम गुणस्थान में विरति का रंचमात्र भी प्रगट होता है। वीतरागी शान्ति। पंचम गुणस्थान में आवे विशेष, उसे श्रावक और पंचम गुणस्थान कहते हैं। समझ में आया? छठवाँ प्रमत्त। सच्चे मुनि हों सन्त सच्चे, उन्हें छठवाँ गुणस्थान होता है। उसमें सर्वविरति के परिणाम अविकारीदशा के होते हैं। जिसे देह

की क्रिया और राग का कर्तापना छोड़कर अकेली ज्ञाता-दृष्टा की स्थिरता जिसे बढ़ गयी होती है, ऐसी भूमिका को छठवें गुणस्थान की प्रमत्तदशा सच्चे मुनि की (दशा) कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सातवाँ अप्रमत्त। सातवाँ गुणस्थान अप्रमत्त। यह विकल्प छूटकर निर्विकल्प आनन्द में हो, ऐसी दशा को सातवाँ कहते हैं। सातवीं भूमिका—गुणस्थान। सच्चे मुनि हों, उन्हें क्षण-क्षण में छठवाँ और सातवाँ हजारों बार अन्तर्मुहूर्त में आता है। सूक्ष्म बात है, भाई!

वीगराग सर्वज्ञ का कहा हुआ मार्ग जिसे अन्तर में परिणमित हुआ है, वह और उपरान्त चारित्र की वीतरागदशा जिसे अन्तर (में) हुई है, ऐसे सन्त को क्षण में छठवाँ, क्षण में सातवाँ गुणस्थान होता है। उसे निद्रा भी एक पौन सेकेण्ड के अन्दर होती है। उसे निद्रा एक सेकेण्ड की—मिनिट की निद्रा नहीं होती। इतनी निद्रा हो तो (छठवाँ) गुणस्थान मुनिपना रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा! दुनिया ने मुनि तो देखे नहीं, परन्तु मुनि कैसे होते हें, ऐसा सुना भी नहीं। समझ में आया? जिसे एक अन्तर्मुहूर्त में छठा-सातवाँ हजारों बार आवे। अन्तर आनन्द का वेदन सातवें में उग्र आवे। छठवें में विकल्पसहित परन्तु आनन्द का वेदन होता है। समझ में आया? ऐसी दशा को अप्रमत्त दशा कहते हैं।

आठमो अपूरवकरन सुखसंच.... आठवीं भूमिका में सुख का संग्रह, आनन्द का विशेष संग्रह होता है। अतीन्द्रिय आनन्द की लहर विशेष उठती है, उसे आठवाँ गुणस्थान कहते हैं। नौवाँ अनिवृत्तिभाव। अनिवृत्तिकरण परिणाम है। ऊँचे में ऊँचे हुआ ही करे, श्रेणी के अन्दर में। दसवाँ सूक्ष्म लोभ। दसवें गुणस्थान की भूमिका थोड़ा लोभ होता है। उसे कुछ गुणस्थान कहते नहीं। लोभ गुणस्थान तो निवृत्ति परिणति को कहते हैं। परन्तु उसमें लोभ का भाग है, ऐसा ज्ञान कराते हैं।

एकादशमो सु उपशांत मोहबंच। ठगाई, धोखा देता है। मोह शान्त होता है परन्तु प्रगट होगा, इसलिए ग्यारह गुणस्थान को वंच—ठग जैसा कहा गया है। **द्वादशमो खीनमोह।** बारहवाँ क्षीणमोह। जिसका मोह नाश हो गया, वीतरागता प्रगटी है। **तेरहो सजोगी जिन।** ऐसी गुणस्थान की दशा वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त, परमेश्वर तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव के अतिरिक्त यह भाव अन्यत्र कहीं होता नहीं, ऐसा जानना। परन्तु यह उसे

जानना चाहिए। समझ में आया? तेरहवाँ सयोगी जिन। योग कम्पन होता है, परन्तु केवलज्ञानी—त्रिकाल जाननेवाले—एक समय में तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान हो। चौदहवाँ अयोगी, योगरहित, कम्पनरहित की दशा। पाँच अक्षर (जितने काल) वाला। पाँच अक्षर प्रमाण। यह चौदह गुणस्थान की भूमिका है। जैसे मंजिल पर, क्या कहलाता है वह? मंजिल पर चढ़ते हुए सीढ़ियाँ होती हैं न? सीढ़ी के सोपान, वैसे चौदहवें गुणस्थान के ऊपर जाकर सिद्ध होते हैं। वह सिद्ध दशा पहले के चौदह गुणस्थानों का वर्णन है।

मिथ्यात्व गुणस्थान का वर्णन।

★ ★ ★

काव्य - ९

मिथ्यात्व गुणस्थान का वर्णन (दोहा)

बरनै सब गुनथानके नाम चतुर्दस सार।
अब बरनौं मिथ्यातके, भेद पंच परकार।।९।।

अर्थः–गुणस्थानों के चौदह मुख्य नाम बतलाये, अब पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन करते हैं।।९।।

काव्य-९ पर प्रवचन

बरनै सब गुनथानके नाम चतुर्दस सार।
अब बरनौं मिथ्यातके, भेद पंच परकार॥९॥

मिथ्यात्व के पाँच प्रकार वर्णन करते हैं। गुणस्थान के नाम लिये मिथ्यात्व। पाँच प्रकार के मिथ्यात्व।

★ ★ ★

काव्य - १०

मिथ्यात्व गुणस्थान में पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का उदय रहता है।

(सवैया इकतीसा)

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात अभिग्रहीत,
दूजौ विपरीत अभिनिवेसिक गोत है।
तीजौ विनै मिथ्यात अनाभिग्रह नाम जाकौ,
चौथौ संसै जहां चित्त भौंरकौसौ पोत है।।
पांचमौ अग्यान अनाभोगिक गहलरूप,
जाकै उदै चेतन अचेतसौ होत है।
एई पांचौं मिथ्यात जीवकौं जगमैं भ्रमावैं,
इनको विनास समकितकौ उदोत है।।१०।।

शब्दार्थ:–गोत=नाम। भौंर=भँवर। पोत=जहाज। गहल=अचेतता। उदोत=प्रगट होना।

अर्थ:–पहला अभिग्रहीत अर्थात् एकान्त मिथ्यात्व है, दूसरा अभिनिवेशिक अर्थात् विपरीत मिथ्यात्व है, तीसरा अनाभिग्रह अर्थात् विनय मिथ्यात्व है, चौथा चित्त को भँवर में पड़े हुए जहाज के समान डाँवाडोल करनेवाला संशय मिथ्यात्व है, पाँचवाँ अनाभोगिक अर्थात् अज्ञान मिथ्यात्व सर्वथा असावधानी की मूर्ति है। ये पाँचों मिथ्यात्व जीव को संसार में भ्रमण कराते हैं और इनके नष्ट होने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।।१०।।

काव्य-१० पर प्रवचन

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात अभिग्रहीत,... एकान्त पक्ष जो माने। द्रव्य ही माने, पर्याय न माने और पर्याय ही माने, द्रव्य न माने। समझ में आया? त्रिकाल शुद्ध को माने और वर्तमान पर्याय में अशुद्धता है, उसे न जाने, ऐसा एकान्त पक्ष जो है अनादि का

पर्यायबुद्धिवाला। एक समय की दशा को ही आत्मा माने, वह एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया? **दूजौ विपरीत अभिनिवेसिक गोत है।** गोत अर्थात् नाम। दूसरा मिथ्यात्व विपरीत मिथ्यात्व। सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्वों से विपरीत मान्यता, उसे विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं। अनाभिग्रहीत मिथ्यात्व। विनय मिथ्यात्व महापाप। सब धर्म समान हैं, ऐसा माननेवाले विनय मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं। नया ग्रहण किया, अन्दर अनादि का भी है। कहो, समझ में आया?

अनादि का अर्थात् अन्दर में आत्मा का भान नहीं, उसका अनादि का कहा जाता है। एक यहाँ होता है और एकेन्द्रिय में जाये तो उसके पर्याप्त का थोड़ा भाग रह जाता है। विनय मिथ्यात्व। सब धर्म समान। सब धर्म में कुछ न कुछ है, ऐसी मान्यता को विनय मिथ्यात्व कहते हैं। यह मान्यतावाले मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। जैन नहीं। समझ में आया? यह अभी बहुत चला है अभी। लोगों को वे सब धर्म समान हैं। भाई! किसी धर्म को खोटा न कहना, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। अज्ञानी की है। उसे समकित नहीं तो साधुपना तो हो सकता ही नहीं। समझ में आया?

सभी धर्मात्मा ने धर्म को कहा है, ऐसा जो माननेवाले, उन्हें परमात्मा कहते हैं कि मूढ़ जीव असावधानीवाला है। वह आगे असावधानीवाला कहेंगे अज्ञान में। आत्मा का जिसे भान नहीं, ऐसे जीव, सब देव, सब गुरु, सब शास्त्र सच्चे हैं—ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव हैं। चाहे तो नग्न साधु घूमे और यह माने, ऐसी प्ररूपणा करे, वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं। समकिती नहीं और मुनि तो नहीं, नहीं और नहीं। आहाहा! अच्छा बहुत लगे इसमें, सब धर्म समन्वय करो। जहर और अमृत का समन्वय करो। यह भी सच्चा, यह भी सच्चा। उसे यहाँ जैनधर्म से विरुद्ध मान्यतावाले कहा है। समझ में आया? देव की विनय, गुरु की विनय, शास्त्र की विनय, माँ-बाप का विनय, राजा का विनय। विनय करने से ही आत्मा को लाभ होगा। समझ में आया? एक प्रकार से सब सच्चे, ऐसा मानना, वह भी विनय मिथ्यात्व और एक दूसरे प्रकार से सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का भी विनय करने से जीव को धर्म होता है, यह भी विनय मिथ्यादृष्टि है। क्या है देवशीभाई? भाव है। हाँ, हाँ। शुभभाव है न! शुभभाव है, वह धर्म है, लाभ होता है, उसे विनय मिथ्यादृष्टि कहा है। आहाहा!

कठिन काम है भाई! और यहाँ तो एक समय की पर्याय में खड़े रहकर उसी और उसी में घोंटा करे। अनादि से ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा, परन्तु उसमें उसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर। समझ में आया? उसका अकेला आदर करे और आत्मा को भूल जाये, वह भी विनय मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! भारी कठिन! पहले दृष्टि की अभी खबर न हो और उसे आचरण-फाचरण हो कहाँ से? चारित्र कैसा और व्रत कैसे उसे? आहाहा! कठिन जगत को। सब अच्छा लगे न सबको। बहुत अच्छा लगे। लोगों को ऐसा कि अपना धर्म विशाल है। अपना धर्म सबको अच्छा लगे ऐसा है। ऐसा धर्म वीतराग का है नहीं। समझ में आया? **विनै मिथ्यात अनाभिग्रह...** ऐसे अनाभिग्रही की कुछ पकड़ ही नहीं। यह सच्चा, यह सच्चा, यह सच्चा, यह सच्चा सब। समझ में आया? अन्य मत में भी मोक्ष गये हैं, अन्य मत से भी मोक्ष होता है, अन्य मत से भी धर्म होता है—ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी की है। वह अनन्त संसार में भटकनेवाला है। समझ में आया? कठिन बात!

चौथा चित्त को भँवर में पड़े हुए जहाज के समान। पानी में भँवर हों न भँवर, उसमें जहाज हो, वह उसी और उसी में रहा करे। **डाँवाडोल करनेवाला संशय मिथ्यात्व है।** यह सच्चा होगा? यह सच्चा होगा? यह सच्चा होगा? समझ में आया? श्वेताम्बर धर्म सच्चा होगा? दिगम्बर धर्म सच्चा होगा? वह सब संशय मिथ्यात्वी अज्ञानी है। समझ में आया? बहुत भारी कठिन काम, बापू! इसमें सबको अच्छा लगावे, ऐसी यह चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? अन्यमत, जैन के अतिरिक्त अन्यमत की बात तो क्या करना, वह तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। परन्तु जैन में श्वेताम्बर पंथ जो निकला, उसमें से यह स्थानकवासी निकला, दोनों संशय मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसी गोम्मटसार में स्पष्ट गाथा है। सूक्ष्म बात है, भाई! और वह श्वेताम्बर धर्म और दिगम्बर धर्म दोनों धर्म हैं, दोनों में मुनि हो सकते हैं, यह दृष्टि अत्यन्त मिथ्यात्व और अज्ञान है। यह जैनधर्म के लोपनेवाले नास्ति हैं। समझ में आया? ऐ भीखाभाई! भारी कठिन ऐसा!

बड़े-बड़े मुनि हुए, आचार्य हुए, पण्डित हुए, वे सब खोटे होंगे? यहाँ तो कहते हैं, लाख बार और अनन्त बार खोटे। एक वीतराग परमेश्वर कुन्दकुन्दाचार्य और सर्वज्ञ ने कहा जो आत्मा का मार्ग, उस मार्ग के अतिरिक्त दूसरे सब कहनेवाले खोटे। अनन्त

बार खोटे। समझ में आया? न्यालचन्दभाई! ऐसा कठिन काम! कठिन पड़े लोगों को, हों! इसकी अपेक्षा सब धर्म समान। कितना संगठन हो, लो। दूसरे को अच्छा लगे, संगठन हो। भाई!

मुमुक्षु : अनन्तकाल से ऐसा मार्ग....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! यह मार्ग तो प्रभु! निर्विकल्प स्वरूप आत्मा का! ऐसे स्वरूप में जहाँ विकल्प नहीं, अरे! त्रिकाली स्वरूप में जहाँ एक समय की पर्याय निर्णय करनेवाली, निर्णय करनेवाली कि मैं त्रिकाली द्रव्य हूँ, ऐसा निर्णय करनेवाली एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं, ऐसा जो वीतराग का शासन, इसके अतिरिक्त दूसरे सब... जेठाभाई! कठिन लगे लोगों को।

करो चर्चा, कहते हैं। क्या करना? किसके साथ करे? भाई! लिखित करो। अभी एक ऐसा आया। शिक्षा करे। आनन्दघनजी ने कहा है, 'तत्त्व विवादे वाद परम्परा पार न पहोंचे।' इसलिए तुमने ठीक किया। वाद नहीं किया लीमडी में। अब तुम लिखित करो। यहाँ नजदीक है न जामनगर। किसके साथ करे? जहाँ जैन ही नहीं। समझ में आया? उसके साथ चर्चा, किसके साथ करना? और चर्चा से यह पार पड़े यह बात? गजब बात है।

मुमुक्षु : यह सच्चा पड़े तो तुम्हें बदल जाना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह भी लिखा है न! तो तुम्हारे बदलना पड़ेगा। कौन बदले बापू? यह वह कहीं चीज़ है? आहाहा!

यह किसी बात की बात है? सनातन जैनदर्शन दिगम्बरदर्शन अनादि सनातनमार्ग, इस मार्ग के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि के मार्ग हैं। उसे दुःख लगे या ठीक लगे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। मार्ग तो यह है, भाई! और अन्तर में यह मार्ग है। यह बाहर के वस्त्र पहने और नग्न हो गये, इसलिए मुनि हो गये, ऐसा नहीं। और पंच महाव्रत की क्रिया के परिणाम कदाचित् हों, वह कहीं जैनधर्म नहीं। आहाहा! गजब बात है। अन्तरस्वरूप। वजुभाई! क्या करना इसमें अब? विवाद हुआ करे। बापू! विवाद तो.... मार्ग तो यह है। समझ में आया?

श्वेताम्बर और स्थानकवासी—दोनों को भगवान ने तो आचार्यवर कुन्दकुन्दाचार्य ने तो मिथ्यादृष्टि कहा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो उन्हें अन्यमति में डाला है। टोडरमल (जी ने)। जो हजारों शास्त्रों का निचोड़। ऐसे टोडरमलजी ने जैन के दो सम्प्रदायों को अन्यमत में डाला है। तो फिर अन्य की बात की बात क्या करना? आहाहा! भाई! उसमें शान्ति मिले नहीं, हों! सुगठित न हो उसमें। भाई! तेरी चीज़ उसमें, वर्तमान दशा भी जहाँ पूर्णस्वरूप नहीं, उसे अन्तर में झुकाना और पूर्ण को पकड़ना, इसके अतिरिक्त कोई सम्यग्दर्शन का मार्ग है ही नहीं। और ऐसी बात वीतराग कुन्दकुन्दाचार्य मुनि दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र है नहीं। उनकी परम्परा में यह सत्य मार्ग वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? आज माने, कल माने, चाहे जब (माने), यह मानने से ही उसे छुटकारा है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, वहाँ क्या हो? समझ में आया?

वह कहे, वस्त्र-पात्र रखकर साधु हो। यह दिगम्बर कहे कि वस्त्र-पात्र रखकर साधु नहीं होते। परन्तु दोनों को समान मानना कैसे?

मुमुक्षु : अनेकान्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त अर्थात्? जहर भी अमृत है और अमृत भी अमृत है, ऐसा अनेकान्त है? अमृत, वह अमृत है; अमृत, वह जहर नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! भारी काम बापू! जगत से भिन्न पड़ जाना, अरे! विकल्प से भिन्न पड़ना। अरे, एक समय की पर्याय से भिन्न पड़ना। आहाहा! महा खान निधान भगवान द्रव्यदृष्टि। समझ में आया? वह प्रभु स्वयं महाप्रभु है अन्दर! उसे दृष्टि में लेकर और उसमें स्थिर होना, यह एक ही वीतराग का मार्ग है। कहो, समझ में आया? कोमलचन्दजी! यह तो सब विरोध हो जाये तो झगड़ा उठे गाँव में। तुम्हारे मांगीलाल और फांगीलाल और सब। भगवान! यह वस्तु झगड़ा की नहीं। प्रभु! यह तो झगड़ा टालने की बात है। आहाहा! क्या करे?

विनय मिथ्यात्व। वह संशय मिथ्यात्व। शास्त्र में श्वेताम्बर को संशय मिथ्यात्व कहा है। गोम्मटसार। बाकी सब अन्यों को एकान्त और दूसरे अनेक प्रकार के मिथ्यात्व कहे हैं। आहाहा! जैन सन्तों ने दिगम्बर मुनियों ने जो आत्मा की धारा, केवलज्ञानी ने कही, ऐसी जो आत्मा की धारा मुनियों ने प्रगट की है। उन सन्तों की वाणी में तो यह

है। कहते हैं कि पालन किया नहीं जा सकता, इसलिए यह धर्म—मुनिपना ऐसा नहीं मानना। शक्य हो ऐसा कर, शक्ति हो उतना कर। न शक्ति हो तो श्रद्धा में तो ला कि मार्ग तो यह है। दूसरा मार्ग नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन के वस्तु के स्वरूप को यदि प्रतीति में लेगा तो उसका उद्धार है। दर्शन भठ्ठा भठ्ठा। परन्तु समकित से जो भ्रष्ट है, वह तो भ्रष्ट में भ्रष्ट है तीनों में। ज्ञान में भ्रष्ट, चारित्र में भ्रष्ट, तप में भ्रष्ट। चारित्र का भ्रष्ट है, वह समकिती है, वह सीझेगा। क्योंकि उसे ख्याल में है कि मेरे पास चारित्र नहीं है। चारित्र ऐसा हो, वह ऐसा होगा, तब मेरी मुक्ति होगी। ऐसा समकिती को ख्याल में है। दंसण भ्रष्ट हो, उसका तो ज्ञान और चारित्र सब तीनों भ्रष्ट हैं। चारित्र न हो, वह चारित्र से भ्रष्ट होता है, वह समकिती सीझेगा। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया?

पाँचवाँ अनाभोगिक अर्थात् अज्ञान मिथ्यात्व सर्वथा असावधानी की मूर्ति है। हमको तो कुछ भान नहीं। भाई! यह हो या यह हो, हमको तो कुछ खबर नहीं। ऐसे अज्ञान की मूर्ति, वे भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं। कहो, सुजानमलजी! क्या बराबर? यह सब विवाद उठे सब।

मुमुक्षु : विवाद ही उठे। मार डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! बापू! अनादि का सनातन सत्य तो यह है। जगत को रुचे, न रुचे, उसके साथ सत् को कोई सम्बन्ध नहीं। परम वीतरागमूर्ति आत्मा, उसे व्यवहार की शुभक्रिया से भी लाभ हो, ऐसा मार्ग आत्मा में नहीं। समझ में आया? आहाहा!

बहुत लेख आये हैं जैन संस्कृति में। यहाँ जैन संस्कृति पत्रिका पड़ी है। भाई! आया? यहाँ के नाम का सब।

मुमुक्षु : पुनर्जन्म ही मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते नहीं। पुनर्जन्म सोनगढ़वाले मानते नहीं। क्योंकि पुनर्जन्म में तो कर्म के निमित्त से विकार होता है, विकार से भटकता है। वह तो मानते नहीं। अरे भगवान! क्या कहता है? कर्म तो जड़ है। जड़ से विकार हो जीव में? जीव स्वयं विकार करे, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है। बात की खबर नहीं होती। आहाहा! एक आवे राज करे। एक आवे भोगे। १०२ गाथा में आता है समयसार में। कर्म का

भोगना तो आत्मा को है नहीं। यह डाला उसने....। ऐई! भगवान! तू भी बहुत बड़ा है न? हो उसमें बड़ा है न वह। आहाहा! कर्म जड़ है, यह बात बराबर है। परन्तु जीव में विकार होता है इसलिए, कर्म है इसलिए विकार होता है, ऐसा नहीं है। स्वयं अपने को भूले और अस्थिरता करे तो विकार होता है। यह तत्त्व का विवाद उठता है। और वह विकार है, उसकी दशा में, वह व्यवहार है। त्रिकाल में वह विकार नहीं।

जिसे सम्यग्दर्शन करना है, जिसे धर्म की पहली दशा प्रगट करनी है। वह तो त्रिकाली ज्ञायक में पवित्रता ही पड़ी है, ऐसी द्रव्यदृष्टि करेगा तो उसे समकित होगा। समकित है पर्याय, परन्तु उस पर्याय का विषय पूरा त्रिकाल है। आहाहा! भारी कठिन काम भाई! संसार पूरा व्यवहार है। चार गति भी व्यवहार है। आत्मा के ज्ञायकभाव में गति कहाँ है? और सिद्धगति की पर्याय, वह भी व्यवहार है। आहाहा! है, वह बराबर है जाननेयोग्य। आदरनेयोग्य वह चार गति नहीं, कोई भी पर्याय। उपादेय तो एक त्रिकाली भगवान शुद्ध आनन्दघन परमात्मा। 'अप्पा सो परम अप्पा।' आत्मा स्वयं ही परमात्मा का स्वरूप है। आहाहा! ऐसी अन्तर में दृष्टि किये बिना समकित तीन काल में होता नहीं। यह भारी कठिन काम जगत को। सत्य बात, परन्तु सत्य को पचाना बहुत कठिन। अब एकान्त मिथ्यात्व का स्वरूप (कहते हैं)।

★ ★ ★

काव्य - ११

एकान्त मिथ्यात्व का स्वरूप (दोहा)

जो इकंत नय पच्छ गहि, छकै कहावै दच्छ।
सो इकंतवादी पुरुष, मृषावंत परतच्छ।।११।।

शब्दार्थ:-मृषावंत=झूठा। परतच्छ (प्रत्यक्ष)=साक्षात्।

अर्थ:-जो किसी एक नय का हठ ग्रहण करके उसी में लीन होकर अपने को तत्त्ववेत्ता कहता है, वह पुरुष एकान्तवादी साक्षात् मिथ्यात्वी है।।११।।

काव्य-११ पर प्रवचन

जो इकंत नय पच्छ गहि, छकै कहावै दच्छ।
सो इकंतवादी पुरुष, मृषावंत परतच्छ॥११॥

आहाहा! **जो किसी एक नय का हठ ग्रहण करके उसी में लीन होकर,....** एकान्त में लीन होकर। भगवान आत्मा के स्वरूप में तो द्रव्य है त्रिकाली, उसमें गुणभेद भी नहीं। गुणभेद है, उसमें द्रव्य नहीं, अभेद नहीं। एक समय की पर्याय में द्रव्य नहीं। एक समय के द्रव्य में पर्याय नहीं। आहाहा! ऐसा अनेकान्त स्वरूप है, ऐसा न मानकर एकान्त मानता है। राग और पुण्य के परिणाम से जीव को समकित होता है, एकान्त मिथ्यादृष्टि है। कठिन काम, भाई! अशुभ छोड़कर शुभ में आने से आत्महित होता है, यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझ में आया? शुभ की रुचि को छोड़कर। जिसे अभी विकल्पात्मक ज्ञान है शास्त्र आदि का, उसे भी धर्म का कारण हो और उस आत्मा को समकित का कारण हो, यह भी नहीं। समझ में आया?

जो किसी एक नय का हठ ग्रहण करके उसी में लीन होकर, अपने को तत्त्ववेत्ता कहता है। दक्ष-दक्ष, तत्त्ववेत्ता कहता है। हमारे तो मार्ग अनेकान्त ऐसा है। आहाहा! पर्याय पर्यायरूप से है परन्तु त्रिकाली की अपेक्षा से वह पर्याय भी अभूतार्थ है। आहाहा! तब कहे, पर्याय मानते ही नहीं। अरे, पर्याय न माने तो यह मोक्ष का मार्ग पर्याय है, सिद्ध स्वयं पर्याय है। सिद्ध कहाँ द्रव्य और गुण है? द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। कठिन काम! बाहर की प्रवृत्ति में लोगों को चढ़ा दिया। शास्त्र पढ़ो, शास्त्र समझो, भक्ति करो, पूजा-बूजा करो। उसमें से धीरे-धीरे तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। ऐसा माननेवाले एकान्त हठाग्रही मिथ्यात्व में लीन होकर अपने को तत्त्ववेत्ता कहते हैं।

पण्डितजी! है न पाठ में? **छकै कहावै दच्छ। छकै**—छक गया एकान्त में—हठ में। गजब! तुम भी ऐसा कहते हो कि पुण्य से लाभ नहीं होता। तो पुण्य से लाभ होता है और पुण्य से लाभ नहीं होता, ऐसा दोनों कहो तो अनेकान्त हो। भाई! ऐसा नहीं होता। पुण्य से शुभराग से आत्मा को लाभ वीतराग धर्म का होगा? राग से वीतरागता

आयेगी ? राग से नहीं आवे परन्तु आत्मा के आश्रय से वीतरागता आवे और धर्म हो और राग से धर्म नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा!

उसमें तो बहुत लिखा है। भाई! शास्त्र का परिवर्तन कर दिया सब। महावीर के मार्ग का परिवर्तन कर दिया है। अरे प्रभु! अरे, ऐसा काल आया प्रभु! तुझे। उसमें इस प्रकार से.... यहाँ आत्मा के शरण में प्रभु स्वयं है, उसे पर्याय का शरण नहीं, तो शुभराग का शरण कहाँ से ? निमित्त का शरण (कैसे होगा ?) हो, वस्तु है। शरण नहीं। समझ में आया ? पर्याय नहीं तो एकान्त वेदान्त हो जाता है। समझ में आया ? राग संसारदशा में नहीं तो शुद्धता आ जाती है अन्दर। है, यह बात अलग है। परन्तु है राग, वह कर्म के कारण से है, पर के द्रव्य के अस्ति के करण यह विकार का अस्तित्व है, ऐसा तीन काल में नहीं हो सकता। समझ में आया ? क्योंकि कर्म का उदय तो जड़ की दशा है और विकार चैतन्य की उल्टी विकारी दशा है। उस जड़ की अवस्था का तो विकारी दशा में नास्ति है। उसके बदले विकार, कर्म के कारण ही विकार होता है, ऐसी जो हठ— एकान्त मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझ में आया ? आहाहा!

अरे! जिसे स्वतन्त्र एक समय की पर्याय मानने में विरोध है, स्वतन्त्र न हो, एक समय की स्वतन्त्रता हो तो कर्म के कारण विकार होता है, उसका नाश हो जाता है। निमित्त अकिंचित्कर नहीं। और ऐसा लिखा है। ....यह तो बड़ा है ....थोड़ा पढ़ा। .... वह तो कहते हैं। कहा करे लम्बा-लम्बा। आहाहा! अरे, भगवन! यह वाद का विषय नहीं। यह तो अनुभवगम्य विषय है। समझ में आया ? यहाँ तो बाहर से हटकर जिसे विकल्प के भाव भी दुःखरूप लगें। आहाहा! वह शुभभाव भी दुःखरूप लगे। क्योंकि राग है। 'राग आग दहे' आता है न! 'राग आग दाह दहे।' छहढाला में आता है। राग की अग्नि जीव को जलाती है। अरे, इस जगत को वीतरागमार्ग की खबर नहीं। शुभ से-पुण्य से होता है, यह एकान्त मिथ्यात्व है और हठ है। समझ में आया ?

वह पुरुष एकान्तवादी साक्षात् मिथ्यात्वी है,... लो। कहा न उसमें। '**मृषावंत परतच्छ।**' प्रत्यक्ष का अर्थ किया। जीव की वर्तमान अवस्था स्वकाल में होती है। उसमें पूर्व की पर्याय की भी सहायता की आवश्यकता नहीं और बाद की पर्याय होने की,

इसलिए यह होती है, ऐसा नहीं। और एक समय की पर्याय कर्म के कारण विकार होता है या कर्म हटे, इसलिए समकित होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म! सुना नहीं, जैनदर्शन क्या कहलाता है। यह जैनदर्शन अर्थात् दिगम्बर दर्शन, हों! दिगम्बर दर्शन अर्थात् जैनदर्शन। जैनदर्शन अर्थात् विश्वदर्शन। यह विश्वदर्शन। सब धर्म समान, यह विश्वदर्शन—यह नहीं। समझ में आया? ऐसा अनादि सनातन वीतरागमार्ग। 'मंगलम् भगवान वीरो'—आता है? आता है या नहीं? 'मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणी, मंगलम् कुन्दकुन्दार्यो।' तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य आये हैं। और चौथे नम्बर में 'जैन धर्मोस्तु मंगलम्।'

यह कुन्दकुन्दाचार्य महान सन्त मुनि जिन्होंने जैनधर्म को टिका रखा। सर्वज्ञ के पास—भगवान के पास गये थे। साक्षात् त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान वर्तमान में विराजते हैं। अपने भगवान के पास तो गये थे। परन्तु भगवान परमात्मा विराजते हैं अभी। सीमन्धर भगवान समवसरण में विराजते हैं। मनुष्य क्षेत्र में, महाविदेह में पाँच सौ धनुष का देह है। दो हजार हाथ ऊँचा। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। करोड़ पूर्व। भगवान विराजते हैं अभी मनुष्यरूप से। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। २००० वर्ष हो गये। संवत् ४९, उनका आयुष्य तो बड़ा है। अभी तो अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? वहाँ तो अकेला मुनिमार्ग। दिगम्बर सन्त आत्मा के आनन्द में—ध्यान में रहनेवाले हैं। वहाँ दूसरा पंथ है ही नहीं। समझ में आया? जो कोई आत्मा का ऐसा स्वभाव और विभाव एक समय की पर्याय अपने से है, ऐसा न मानकर, पर से है—(ऐसा) एकान्त माननेवाले, अथवा व्यवहार राग है, उससे धर्म होता है, ऐसा एकान्त माननेवाले मिथ्यात्व प्रत्यक्ष है, कहते हैं, दृष्टि में मिथ्यात्व प्रत्यक्ष है। जहर भरा है उसकी दृष्टि में। आहाहा! कठिन लगे भाई यह! ऐई! खबर नहीं। क्या करे?

विपरीत मिथ्यात्व का स्वरूप। अब दूसरा। पहला हो गया।

★ ★ ★

काव्य - १२

विपरीत मिथ्यात्व का स्वरूप (दोहा)

ग्रंथ उकत पथ उथपि जो, थापै कुमत स्वकीउ।
सुजस हेतु गुरुता गहै, सो विपरीती जीउ।।१२।।

शब्दार्थ:–उकत=कहा हुआ। उथपि=खंडन करके। गुरुता=बड़प्पन।

अर्थ:–जो आगम कथित मार्ग का खण्डन करके स्नान, छुआछूत आदि में धर्म बतलाकर अपना कपोलकल्पित पाखण्ड पुष्ट करता है व अपनी नामवरी के लिये बड़ा बना फिरता है, वह जीव विपरीत मिथ्यात्वी है।।१२।।

काव्य-१२ पर प्रवचन

ग्रंथ उकत पथ उथपि जो, थापै कुमत स्वकीउ।
सुजस हेतु गुरुता गहै, सो विपरीती जीउ॥१२॥

जो आगमकथित मार्ग का खण्डन करके,.... भगवान सर्वज्ञ की वाणी में जो आया, आया। ऐसा जो आगम भगवान ने बनाया, गणधरों ने सूत्र रचे। भगवान के मुख में से अर्थ आया, ऐसे गणधर ने जो शास्त्र रचे, उनकी परम्परा से कुन्दकुन्दाचार्य देव ने रचे। 'मंगलम् भगवान कुन्दकुन्दार्यो।' ऐसे शास्त्र के अर्थों के **ग्रंथ उकत पथ उथपि....** उनका अध्यात्ममार्ग जो है, उसे उत्थापकर, **थापै कुमत स्वकीउ।** अपना मत स्थापित करे। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? मार्ग यह है, भाई! **जो आगमकथित मार्ग का खण्डन करके स्नान, छूताछूत आदि में धर्म बतलाकर।** बाहर में धर्म है, ऐसा। समझ में आया? आया? **अपना कपोलकल्पित पाखण्ड पुष्ट करता है।** इसकेवाला इसको कहे, उसकेवाला उसको कहे। भगवान! क्या करे? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के आगम, भगवान की वाणी में से दिव्यध्वनि निकली, दिव्यध्वनि में से सन्तों ने आगम रचे। परमागम—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, गोम्मटसार, इत्यादि शास्त्र आगम, आगम है। उस आगम में जो कथन है, उसे उलटा करके व्यवहार के कथन को निश्चय में स्थापित करे और निश्चय का कथन छोड़ दे।

थापे कुमति स्वकीउ। अपना कपोलकल्पित पाखण्ड पुष्ट करता है। आहाहा! **सुजस हेतु—अपनी नामवरी के लिए।** अपनी इज्जत रहे। भाई! यह मार्ग तो भारी कठिन! सबको समान मानते हैं, हों! ऐसी नामावली के लिये। नामावली समझे? नामावली क्या है? **सुजस**—इज्जत के लिये। नाम निकले नामावली। नाम निकले। आत्मा निकले नहीं, नाम निकले। आहाहा! उसका नाम बाहर निकले, इसलिए सिद्धान्त के उल्टे अर्थ करे और डाले, सच्चे को खोटा ठहरावे और खोटे को सच्चा ठहरावे। **हेतु गुरुता गहै...** लो। **बड़ा बना फिरता है।** मैं बड़ा हूँ, सबका मैं जाननेवाला हूँ। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की उल्टी श्रद्धा है और बड़ा होकर घूमता है। **सो विपरीती जीउ।** वह विपरीत मिथ्यादृष्टि जीव है। वह अनन्त संसार नरक और निगोद में जानेवाला जीव है। आहाहा! समझ में आया? भाषा कैसी की, देखो!

सुजस हेतु गुरुता गहै, सो विपरीती जीउ। अपनी बढ़ाई के लिये विपरीतता —उल्टा अर्थ करे और दुनिया को प्रसन्न रखे। सो विपरीत जीव है। विपरीत मिथ्यात्व है। उसमें यह डाला था। प्रश्न क्या कहलाये? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका। संशय में श्वेताम्बर डाले हैं। यह विपरीत में? निर्ग्रन्थ को सग्रन्थ माने, सग्रन्थ को निर्ग्रन्थ माने, ऐसा है उसमें, नहीं? देखो, वस्त्रसहित हो और मुनि माने उसे, केवली को आहार माने। तीन लोक के नाथ भगवान को आहार था। तीर्थंकर मल्लिनाथ स्त्री थे, यह सब विपरीत मिथ्यात्वी। भारी कठिन इसमें! अब इन दो का मिलान कैसे करना? दो मत हैं जगत में, ऐसे मेल हुआ। परन्तु दोनों सच्चे हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! विपरीत में बहुत दृष्टान्त दिये हैं। गोपालदास बरैया (ने दिये हैं)। केवली को आहार माने, स्त्री को मुक्ति माने, वस्त्रसहित साधुपना माने। साधु वस्त्रसहित होता नहीं है और वस्त्र छूट गये, इसलिए साधु, ऐसा भी नहीं है। अन्तर में निर्विकल्प आनन्द की दशा प्रगट हो और स्वरूप की रमणता चारित्र की क्षण में और पल में जिसे छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आता है, उसे भगवान के शासन में मुनि कहा है। समझ में आया? यह हिन्दीवाले बाद में आये, इसलिए गुजराती हो गया। पहले आये होते तो हिन्दी होता। यहाँ तो साथ-साथ आवे तो हो। समझ में आया? दरकार हो, उसे पहले सुनने मिल गया।

विनय मिथ्यात्व का स्वरूप। लो।

★ ★ ★

काव्य - १३

विनय मिथ्यात्व का स्वरूप (दोहा)

देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, ठानै समान जु कोइ।
नमै भगतिसौं सबनिकौं, विनै मिथ्याती सोइ।।१३।।

अर्थः–जो सुदेव–कुदेव, सुगुरु–कुगुरु, सत्शास्त्र–कुशास्त्र सबको एकसा गिनता है और विवेकरहित सबकी भक्ति वन्दना करता है, वह जीव विनय मिथ्यात्वी है।।१३।।

काव्य-१३ पर प्रवचन

देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, ठानै समान जु कोइ।
नमै भगतिसौं सबनिकौं, विनै मिथ्याती सोइ॥१३॥

सुदेव। अरिहन्त परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ, वे सुदेव हैं। इसके अतिरिक्त कुदेव। उन सबके अतिरिक्त जितने, वे सब कुदेव हैं। समझ में आया? ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वे सब कुदेव हैं। सबको वन्दन करो भक्ति से। सबको नमे, नमे वह गमे। ऐसा कहते हैं न। नमे वह प्रभु को गमे (सुहावे)। सबको नमना। यह मार्ग वीतराग का नहीं। सुदेव—कुदेव उन्हें समान माने। **विवेकरहित सबकी भक्ति वन्दना करता है।** जय भगवान। वह मिथ्यादृष्टि है। **सुगुरु-कुगुरु।** सुगुरु सन्त मुनि महात्मा—धर्मात्मा आनन्दकुन्द में झूलनेवाले, वे सुगुरु। झूलनेवाले धर्मी। और कुगुरु। मुनि है नहीं, मुनिपना माने। समझ में आया? उल्टी प्ररूपणा करे, वीतरागमार्ग के अतिरिक्त अन्य मार्ग भी सच्चा है, ऐसा कहे, माने, वह कुगुरु है।

सुगुरु और कुगुरु। **ठानै समान जु कोइ,...** लो, है न! और सत् शास्त्र ले लेना। सत् शास्त्र और कुशास्त्र। आहाहा! परमागम भगवान की वाणी—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, स्वामीकार्तिकेय टीका यह सब परमागम हैं। परमागम है यह। और कुशास्त्र—भगवान के ज्ञान बिना कल्पित जगत ने बनाये हुए। इन दोनों को समान माने और दोनों को भक्ति से वन्दन करे, वह विनय मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? **सबको एकसा गिनता है।** सबको एकसमान माने, लो।

यहाँ तो भगवान ने ३६३ पाखण्ड कहे हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे के अतिरिक्त जगत में ३६३ पाखण्ड हैं। उनकी व्याख्या भिन्न-भिन्न अन्दर में है। क्रियावादी और अक्रियावादी और विनयवादी। गोम्मटसार में है। नेमिचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती ग्रोम्मटसार के कर्ता। उसमें यह सब बात है। लोगों को शास्त्र का स्वाध्याय नहीं होता और पक्ष में पड़े अपने अर्थ की दृष्टि अपनी दृष्टि से अर्थ करे। वे ऐसा कहे कि, तुम्हारी दृष्टि से तुम अर्थ करते हो। उसका अर्थ दूसरा है। और ऐसा भी कहे। .... कहे बेचारे क्या करे? भाई! उसमें वास्तविकता है, इसकी खबर नहीं होती। अवास्तविकता को भी वास्तविकता में खतौनी कर डाले। ऐसे सब शास्त्र—कुशास्त्र सबको एकसा गिनना। **ठानै समान जु कोइ।** आहाहा! **नमैं भगतिसौं सबनिकौं।** भक्ति से वन्दन करे। **विनै मिथ्याती सोइ।** वह विनय मिथ्यादृष्टि है। अज्ञानी है, मूढ़ है; जैन नहीं। आहाहा! कठिन काम! मार डाले सच्चा कहनेवाले को, हों! कोई कहे, ऐसा ऐसा होगा? ऐसा मार्ग होगा? मार्ग तो ऐसा है, भाई! समझ में आया? पन्द्रह भेद से सिद्ध होते हैं, ऐसा कहा। अन्य लिंग में भी मुक्ति होती है, स्त्रीलिंग में भी मुक्ति होती है। न माने वह मिथ्यादृष्टि, वे कहते हैं, लो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि स्त्रीलिंग से मुक्ति माने, वह मिथ्यादृष्टि है। जिसे स्त्री का देह है, उसे साधु-साध्वीपना माने, छठवाँ गुणस्थान माने, वह मिथ्यादृष्टि है। स्त्री के शरीरवाले को पंचम गुणस्थान दशा आवे, आत्मा का आश्रय करे तो। परन्तु उसे मुनिपने की दशा हो नहीं सकती। कठिन काम! कितने बोल को बदलना इसे? समझ में आया? पन्द्रह भेद से सिद्ध कहा है, वह लिखा है भाई ने। त्रंबक ने। त्रंबक क्या वह हंपी का। पन्द्रह भेद से सिद्ध न माने, वह ऐसा है मिथ्यादृष्टि। अब उसने उसमें लिखा।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो मानते ही हैं न। यह श्वेताम्बर की श्रद्धा है। हंपी। श्रीमद्वालों ने किया है न हंपी। हंपी है न महाराष्ट्र में। श्रीमद् का आश्रम निकाला है। वह तो गुजर गया बेचारा अभी। वह ऐसी पुस्तक लिखी है, भाई। केवलज्ञान तो सेवा करते-करते होता है। उसकी गोराणी की सेवा करती थी और उसे केवलज्ञान हो गया, लो। चेतनजी! आया है या नहीं? सुना है? गुरुणी को बाद में केवलज्ञान हुआ। नहीं हो

जाये। ऐसा नहीं। होने में दिक्कत नहीं, परन्तु स्त्री को होता ही नहीं, जिसे स्त्री का देह हो, उसे मुनिपना नहीं होता तो केवलज्ञान तो कहाँ से आया? एकदम झूठ बात है। आहाहा! गजब बात, भाई! आहाहा!

यह तो अनन्त तीर्थंकरों, केवलियों, गणधरों, इन्द्रों, जिसे स्वीकारते हैं, वह मार्ग है, यह तो। भाई! यह कहीं किसी के घर का नहीं। ऐसा आता है। गोराणी सो रही थी, इसलिए उसकी शिष्यणी पैर दबाती थी। उसमें पैर दबाते-दबाते केवलज्ञान हो गया। पैर दबाते केवलज्ञान हुआ। इसलिए हाथ ऐसे अटकने पर वहाँ सर्प निकाला सर्प। केवलज्ञान में ख्याल आया कि यह सर्प है, इसलिए हाथ ऐसे ले लिया। गोराणी का हाथ ले लिया। सर्प... सर्प निकला और हाथ ऐसे ले लिया। गोराणी को खबर पड़ी कि यह अन्धेरे में सर्प (की) खबर कैसे पड़ी? कहे। ज्ञान से। प्रत्यक्ष ज्ञान है? केवलज्ञान? तो कहे, हाँ। अरे, मैंने आपकी अवहेलना की। फिर वह बाई भी निन्दा करते-करते केवलज्ञान को पायी। पूरा केवलज्ञान वह.... श्रद्धा सच्ची नहीं, मिथ्यात्व (है), और साधुपना नहीं, वहाँ फिर केवलज्ञान आया कहाँ से? ऐसी बातें करके जगत को भरमाया है। समझ में आया? आहाहा! दुनिया को अच्छा लगे। स्त्रियों को सर्व स्वाधीन दिया भगवान ने। पुरुष का हक है और स्त्री का नहीं, ऐसा नहीं। सब सर्व हक दिया। भगवान ने तो जैसा जाना, वैसा कहा। दे किसे और दे किसे? स्त्री को भी समान रखा पुरुष की भाँति। उसे भी केवल(ज्ञान) और मोक्ष कहा। एकदम खोटी बात है। समझ में आया?

स्त्री को साधुपना नहीं होता तो मुक्ति—केवल (ज्ञान) तो होता नहीं। वह नट... नट कैसा? ऐलचीकुमार। ऐसे डोरी पर नाचता था। नाचते-नाचते केवलज्ञान। अरे! अभी साधुपना बिना केवल... ऐसे के ऐसे गप्प मारते हैं। समझ में आया? यह सब विनय मिथ्यात्व के लक्षण हैं। उसको भी मानो, उसे भी मानो। कहते हैं, सबको एक सा माना विवेकरहित। श्रीमद् ने तो कहा है भाई! सबको समान मानना, वह तो विवेकरहित मूढता है। समभाव की व्याख्या तो ऐसी है कि सच्चे को सच्चा माने और खोटे को खोटा (मानकर) उत्थापित करे। यह खोटा है। इसका नाम समभाव कहा जाता है। खोटा और सच्चा—दोनों समान माने, उसे तो मूढ़ता कही जाती है। वह जीव विनय मिथ्यात्व कहा जाता है। पश्चात् संशय मिथ्यात्वी का लक्षण कहा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८२, आसोज कृष्ण ९, मंगलवार, दिनांक १२-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद १४ से २४

समयसार नाटक। मिथ्यात्व से लेकर अयोगी गुणस्थान तक चौदह भेद हैं। उन्हें जानना। पर्याय है न? वह आश्रय करनेयोग्य नहीं क्योंकि त्रिकाली वस्तु में वह भेद है नहीं। भेद है, वह तो जानना चाहिए या नहीं? जानना यथार्थ चाहिए न? किस भूमिका में? कैसी दशा? कैसा उसका विकल्प? योग्यता, व्यवहार—उसकी यहाँ बात है। सम्यक् दृष्टि के बाद की ही बात है यहाँ। जानना, जाने परन्तु यह पहले जाने तो सही या नहीं व्यवहार? यथार्थ जानना तो सम्यक्त्व होने के बाद होगा। आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञायकस्वरूप ऐसी दृष्टि होने के पश्चात् वास्तविक पर्याय का ज्ञान उसे होता है, परन्तु इससे पहले भी इसे जानना तो चाहिए न? क्या चीज़ है यह?

मुमुक्षु : जानना लाभदायक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभदायक तो नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, जेठाभाई!

सुनने से नुकसान है, ऐसा और कहना, और सुनाना तथा सुनना, ऐसा व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं। ऐसा मार्ग है। स्वरूप ही ऐसा है उसका। शास्त्र का ज्ञान आदि अनन्त बार किये होंगे, परन्तु मूल भूल गया है न, इसलिए उसे वास्तविक तत्त्व नय-निक्षेप-प्रमाण से जानने में आता है या नहीं? यद्यपि है वह अभूतार्थ। आहाहा! भारी अटपटा मार्ग लगता है दुनिया को। जन्म-जरा-मरण चौरासी के अवतार में दुःखी है, दुःखी। उसे खबर नहीं। आत्मा के आनन्द का ख्याल नहीं, किसके साथ मिलावे यह? कि यह सब भाव होते हैं—शुभ-अशुभभाव, आहाहा! वह दुःख है। वह सुख नहीं। दुःखी है। शुभभाव और अशुभभाव दोनों आकुलता है। ऐसा ख्याल इसे पहले विकल्प से इसको निर्णय तो करना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया? विकल्प से निर्णय किये बिना जाना है, ऐसी धारणा हुए बिना निर्विकल्पता में यह आ नहीं सकता। विकल्प से धारण किया, इसलिए निर्विकल्पता में आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, संशय मिथ्यात्व।

★ ★ ★

काव्य - १४

संशय मिथ्यात्व का स्वरूप (दोहा)

जो नाना विकलप गहै, रहै हियै हैरान।
थिर ह्वै तत्त्व न सद्दहै, सो जिय संसयवान।।१४।।

अर्थः–जो जीव अनेक कोटि का अवलम्बन करके चंचल चित्त रहता है और स्थिर चित्त होकर पदार्थ का यथार्थ श्रद्धान नहीं करता, वह संशय मिथ्यात्वी है।।१४।।

काव्य-१४ पर प्रवचन

जो नाना विकलप गहै, रहै हियै हैरान।
थिर ह्वै तत्त्व न सद्दहै, सो जिय संसयवान॥१४॥

जो जीव अनेक कोटि का अवलम्बन करके चंचल चित्त रहता है,.... डाँवाडोल। दृष्टान्त पहले आ गया है। जैसे भँवर में जहाज। पानी में समुद्र में भँवर में जहाज पड़ा हो वह .... चक्रवात में फँसे। स्थिर न रहे। इसी प्रकार अज्ञानी को यह धर्म सच्चा होगा? यह धर्म सच्चा होगा? (ऐसा संशय रहता है)। समझ में आया? शास्त्र में तो संशय मिथ्यादृष्टि को श्वेताम्बर में डाला है। भगवान! भारी कठिन! दुःख लगे लोगों को, हों! दृष्टान्तरूप से सिद्ध करने को लिखा है। दृष्टान्तरूप से सिद्ध। संशय में मुख्य यह है, ऐसा बतलाना है। .... होगा या नहीं? ऐसा यह संशय में है। समझ में आया?

केवली को आहार है या नहीं? ऐसा संशय नहीं करना। वह तो ईर्ष्या बुद्धि कहते हैं। ऐसा निर्णय करना। भगवान को आहार होगा? प्रभु! महा आनन्दस्वरूप को आहार कैसा? आनन्द का धाम भगवान आत्मा, ऐसा भान हो, उसे राग का आहार नहीं

तो पर का भी आहार नहीं। वह तो ज्ञाता-दृष्टारूप से ज्ञेयरूप से पर को जानते हैं। आहाहा! परन्तु उसे आहार का विकल्प है, तथापि आहार और पानी का वह तो ज्ञाता है, ऐसा आता है या नहीं? निर्जरा, साधक में। सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्णदशा प्राप्त आनन्द की, उन्हें विकल्प कहाँ है? उन्हें आहार कहाँ होता है? समझ में आया? शान्ति से समझने की पद्धति है भाई यह। वाद-विवाद से कुछ पार नहीं पड़ता। समझ में आया?

तब भगवान को ग्यारह परीषह कैसे कहे? और ऐसा कहा। वह तो सूक्ष्म उदय है। परन्तु ऐसा नहीं कि उन्हें क्षुधा लगे और आहार लेना पड़े। ऐसा उन्हें असाता का उदय होता ही नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। ऐसा उस परलक्षी ज्ञान की भी जहाँ यथार्थता नहीं, उसे स्वलक्षी ज्ञान होने का अवकाश नहीं। समझ में आया? **जो नाना विकलप गहै।** अनेक प्रकार के विकल्प ग्रहे—यह भी होगा... यह भी होगा... यह भी होगा... यह भी होगा... ऐसा निर्णय यथार्थ वस्तु का है, वह न करे। समझ में आया? **रहै हियै हैरान।** हृदय में हैरान, हैरान रहे। कहीं निर्णय करे (नहीं)। **थिर ह्वै तत्त्व न सद्दहै।** स्थिर होकर वास्तविक तत्त्व—भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति है, वह भगवान आत्मा सुख का सागर है, ऐसा भान होने पर जहाँ यह आहार और आहार के विकल्प का नाश हो जाता है। उसे सर्वज्ञ होवे, तब तो विकल्प और आहार का संयोग निमित्तरूप भी नहीं हो सकता। भारी कठिन काम। आहाहा!

थिर ह्वै तत्त्व न सद्दहै। स्थिर होकर वास्तविक (समझ नहीं करता)। सर्वज्ञ परमेश्वर को आहार नहीं होता, स्त्री का देह हो, उसे मुक्ति नहीं होती, समझ में आया? वस्त्रसहित मुनि या वस्त्रसहित वह साधु नहीं होता, उसे केवल (ज्ञान) नहीं होता; ऐसा संशयवादी निर्णय करता (नहीं)। यद्यपि वह तो वापस.... परन्तु यह.... नहीं होता, अन्दर गहरे, गहरे ऐसा संशय है न गहरे। कारण में देखो न! भाई ने डाला है हेमचन्द्राचार्य ने। उसका अर्थ क्या हुआ? ..... संशय, संशय है। आहाहा! स्वकाल आत्मा का बदलता है, वह निश्चय है, तब उसे परकाल हो, ऐसा व्यवहार अन्दर ज्ञान में बराबर आता है। ऐसा कहते हैं। परन्तु जो काल है, (ऐसा) मानते ही नहीं, उसे स्वकाल पड़ा ही नहीं। वह कब मानेगा? समझ में आया? **सो जिय संसयवान।** वह संशयवान मिथ्यादृष्टि है।

केवली को आहार होता है या नहीं? मुक्ति होती है या नहीं? स्त्री को मुक्ति होती है या नहीं? समझ में आया? वस्त्रसहित साधु होते हैं या नहीं? ऐसा जिसे संशय है, वे सब मिथ्यादृष्टि संशय (रहित) हैं ही नहीं। भारी कठिन! वस्तु की स्थिति ऐसी है, ऐसा तो इसे निर्णय करना चाहिए। वस्तु की मर्यादा ही ऐसी है। यह पर्याय की मर्यादा इतनी ही निर्मल है कि उसे आनन्द के अनुभव की पूर्णता होती है। ऐसा सम्यग्दर्शन। समझ में आया? क्षुधा, भगवान को लगे। आहार लेने जाये केवली? स्त्री, वह तो और कहाँ? ऐसी सब बातें हैं। क्या हो? अरेरे! ऐसा संशय है, वह मिथ्यादृष्टि है। अज्ञानी है। ऐसा दृढ़ होता (नहीं)। आहाहा! पूरा सम्प्रदाय मिथ्यादृष्टि संशयवान है। साधु, साध्वी नाम धरावे, सब मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : पण्डितजी ..... सिद्धान्त दूसरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलेंगे यह सिद्धान्त दूसरे। स्थानकवासी के लिये। यह दिगम्बर ....

मुमुक्षु : ऐसा ही चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थानकवासी श्वेताम्बर या मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर—दोनों पूरा पक्ष ही मिथ्यादृष्टि है संशय। मार्ग ऐसा भगवान! कठिन पड़े तो भी मार्ग तो यह है। भाई! समझ में आया? भगवान ने ऐसा कहा है। भगवान थे, तब तो यह पंथ नहीं था। बाद में हुआ, परन्तु भगवान ने जो मार्ग कहा है, उससे विरुद्ध था, ऐसा तो पहले भगवान ने कहा है या नहीं? आहाहा! उसे आहार और ऐसी सब विकल्प दशा, संयोगदशा मानना, उसे वास्तविक केवलज्ञान के स्वरूप की ही खबर नहीं। देव का स्वरूप कैसा होता है, इसकी भी उसे खबर नहीं। ऐसा है।

दिव्यशक्ति की प्रगट पर्याय की जिसे खबर नहीं, उसे दिव्यशक्तिवान प्रभु पूर्णानन्द प्रभु में परमानन्द की अवस्था का अनुभव है, वह भी जिसमें—द्रव्य में नहीं। आहाहा! उसकी दृष्टि का विषय तो द्रव्य है न! भले ही दृष्टि—विषय करती है पर्याय, परन्तु उसकी पर्याय का विषय पर्याय नहीं। समझ में आया? ऐसी बात .... लगे लोगों को।

भाई! मार्ग तो ऐसा है भाई! आहाहा! तेरे चौरासी लाख के अवतार ऐसे मिथ्यात्व के कारण हुए। उनके दु:ख इतने भोगे। वह मिथ्यात्व के फलरूप से नरक और निगोद, हों! आहाहा!

भवछेदक वाणी तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, वह भवछेदक है। यह तो भव को बढ़ानेवाला मिथ्यात्व है। आहाहा! ....गुंजन में उसमें आया था। कैलाशचन्दजी। यह सब है न क्षेत्रों की अपने को कहाँ खबर है यह? भारत और रूसी और रशिया को क्या कहा जाता है? अमेरिका और। भारत के गुटबन्दी से दूर रखा हुआ। ....नेहरु ने। परन्तु उसमें कुछ .... हुआ। फिर बहुत दृष्टान्त दिये हैं। मैं गुटबन्दी से दूर हूँ। खानिया में चर्चा हुई परन्तु मैं किसी में मिला नहीं। बड़ा मान दिया। अपने को खबर भी नहीं।

मुमुक्षु : गुटबन्दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुटबन्दी। यह तो है तो सही पेपर में दिया है। अपने को खबर भी नहीं होती उसे ऐसा है, रूसी को ऐसा है, चीन को ऐसा है, ढींकणा ऐसा है, ढींकणा ऐसा है न। गप्पें मारे थे जैनसन्देश में। पेपरवाले आये। वे कहे, अभी कानजीस्वामी का पक्ष है एक मुमुक्षु का और एक विरोधी पक्ष है। दोनों अभी बहुत खड़े हुए हैं। खानियाचर्चा में मैं गया ही नहीं। इतने कारण से। क्यों? जिसके गुट में आऊँ तो उसका अनुचित हो, वह भी हमें मानना पड़े और सामने का उचित हो तो भी उसे हमें अनुचित करना पड़े।

ऐसी बात। अरे, भगवान! भारी गजब करते हैं न यह!

मुमुक्षु : ऐसा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा? यहाँ तो अनुचित हो, ऐसा कि शुभ, उसे धर्म मानते नहीं। क्या है यह? ऐसा कहते हैं न, वह अनुचित है, ऐसा कहे यहाँ का। अरे भगवान! क्या करता है? भाई! शुभ हो, परन्तु वह कहीं जन्म-मरण मिटाने का कारण नहीं। तो फिर उसे उसकी कीमत क्या? यहाँ तो प्रभु! तुझे खबर नहीं, बापू! तीन लोक का नाथ त्रिकाली! इस त्रिकाली की अपेक्षा से, इसकी एक समय की पर्याय की भी कीमत क्या है? वहाँ पर की तो बात क्या करना? समझ में आया?

यह तीन काल का दल, वह क्या कहलाता है ? यह बात वह कैसे बैठे ? जो त्रिकाली ध्रुव, अन्तर, अन्तर, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण और अनन्त पर्याय का एकरस गुण, उसके समक्ष एक समय की पर्याय की भी क्या कीमत है ? आहाहा ! तीन काल में, भाई ! यह सत्... सत्... सत् ऐसी जो चीज़ ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसके समक्ष तीन काल के अनन्तवें भाग का एक समय का भाव। आहाहा ! समझ में आया ?

जिसकी भूत की पर्याय से भविष्य की पर्याय अनन्तगुणी। अब अनन्तगुणी भूतकाल से अनन्तगुणी। उसमें भी वह एक पर्याय। आहाहा ! जहाँ भविष्य की पर्याय की अपेक्षा से तो भूत की पर्याय तो अनन्तवें भाग। अब उसमें एक समय की पर्याय उससे अनन्तवें भाग। समझ में आया ? समझ में नहीं आया सुजानमलजी ? आत्मा वस्तु ऐसी है और वस्तु इसप्रकार न हो तो हो किस प्रकार ? भगवान ने कहा है, परन्तु इसे ख्याल में आना चाहिए न यह बात। आहाहा ! तीनों काल में रहने का तत्त्व ऐसा प्रभु आत्मा ! तीन काल किसे कहे ? आहाहा ! यह भविष्यकाल कभी कम नहीं होता। आहाहा ! कभी अन्त नहीं। ऐसा जो यह तत्त्व त्रिकाली। इस त्रिकाली के समक्ष एक समय की पर्याय की भी कीमत नहीं। तो फिर पुण्य के परिणाम की कीमत निकालना, वह तो भगवान आत्मा का अनादर करने जैसा है। आहाहा ! न्याय से और लॉजिक से इसे न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं ? समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, जो संशयवान प्राणी, वह तो एक समय के मिथ्यात्वभाव में अनन्त भव को बढ़ाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : वे लोग तो ऐसा मानते हैं कि, हम मानते हैं वह सही, तुम्हारी मान्यता है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, वह संशय है, गहरे अन्दर पहले का। अभी न हो भले। यह बताते हैं न कि सच्चे और खोटे की खबर नहीं। काल में होगा अर्थात् ? अब इसका अर्थ क्या हुआ ? एक ओर एक काल कहते हैं, तो इसका अर्थ कहाँ से ? यह संशय रहा न ! ऐसा नहीं। इसका अर्थ क्या ? है ही न परन्तु यह तो स्पष्ट बात।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... है ही, ऐसा कहते हैं। यह तो काल एक ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में शब्द है।

मुमुक्षु : कालेन ... सूत्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपने खबर है। श्वेताम्बर में 'काल है' एक ऐसा शब्द है। कोई कोई काल को भी द्रव्य कहते हैं। तो निर्णय तो उसे रहा नहीं। मध्यस्थ से देखे न! किसी व्यक्ति के लिये उसके प्रति द्वेष नहीं होता किसी के प्रति। वह आत्मा है, भगवान है। भाई! परन्तु उसकी पर्याय का जो स्वरूप है, ऐसा तो उसे बराबर लक्ष्य में जानना चाहिए या नहीं? ज्ञान तो जैसा है, वैसा जाने या उससे विपरीत जाने? समझ में आया?

तो एक कोई काल कहता है। उसमें शास्त्र में निर्णय तो उसका आया नहीं उसे?

मुमुक्षु : भगवान के कथन में किसी के साथ कहाँ मेल पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा हो सकता ही नहीं तीन काल में। यही है और ऐसा ही है, ऐसा ही होता है न! तत्त्वार्थसूत्र स्पष्ट बोलता है उनका श्वेताम्बर का। उसमें है।

मुमुक्षु : प्रमाण मानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं मानते। कोई काल कहता है, ऐसा कहकर काल (द्रव्य को) नहीं मानते। कालद्रव्य है न असंख्य। कोई काल कहते हैं, ऐसा कहकर मानते नहीं। समझ में नहीं आया बराबर। कोई कालद्रव्य है, ऐसा कहते हैं। ऐसा पाठ है वहाँ। उसका अर्थ क्या हुआ? कोई 'नहीं' और कोई 'है'—ऐसा कहे। संशय में रहे। अरे भगवान! आहाहा!

और काल असंख्य है और एक-एक काल की अनादि-अनन्त अनन्त पर्याय है। अब जब एक-एक द्रव्य की अनन्त पर्याय और अनन्त गुण—ऐसा द्रव्य। ऐसे असंख्य द्रव्य। अब उसे ही यहाँ 'नहीं' ऐसा कहना, 'है' ऐसा कहना, 'नहीं' ऐसा कहना। ऐसा संशय है उन्हें। तो ज्ञान की पर्याय में इतना सबका जानना होता है, इतनी तो वह ज्ञान की पर्याय है। अब यह 'नहीं' ऐसा कहे तो उसकी अनन्त-अनन्त गुणों की अनन्त पर्याय, उसे यहाँ जानने की पर्याय इतनी उसकी नहीं, तो केवलज्ञान की पर्याय में अन्तर पड़ा। समझ में आया? ऐसी बात है। परन्तु यह कहीं बात करे तो हो न! किसी के प्रति विरोध

नहीं होता। किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं होता। समझ में आया?

मार्ग तो है ऐसा है। उसमें कहीं कोई पक्ष करे, ऐसा होता है, ऐसा होता है, ऐसा नहीं होता। आहाहा! नये आगन्तुक के लिये मैं उनके पक्ष में था, कोई ऐसा कहता है। कैलाशचन्दजी। नये दिगम्बर हुए न।

मुमुक्षु : और उसमें जिनपने से विरुद्ध..... उनसे स्वीकारना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनसे स्वीकारना पड़े। उनमें है और उसमें उचित भी है। अरे प्रभु! क्या करता है? मार्ग तो ऐसा, भाई! आहाहा! यह मिथ्यात्व के फल अनन्त नरक और निगोद है। भगवान! ऐसा कि, पूरा प्रभु का स्वरूप जो है, उससे अत्यन्त उल्टा मान्यता में आवे, वह मान्यता तो अनन्त जन्म-मरण को उत्पन्न करे। समझ में आया?

पक्ष बाँधकर ऐसे झगड़े खड़े हुए। अभी २५०० वर्ष का महोत्सव करते हैं। सभी एक होओ। उसमें इस आत्मा का कहाँ भला होना है? वह कहीं परिणाम में अन्तर है, वह एकता कैसे होगी? संगठन करो और ..... महोत्सव मनाते हैं। वह अलग बात है। संगठन का अर्थ, दोनों इकट्ठे होकर काम करना, इतना। समझ में आया? ऐसा आया है। उसमें ऐसा कहा। किसी ने ऐसा कहा। संगठन होकर सब निर्णय करे। ऐसा है। और इन्दिरा (गाँधी) के पास जानेवाले हैं। इन्दिरा के पास जानेवाले हैं और वह भी समर्थन में पड़नेवाली है। अपने को मौका मिलेगा भगवान को २५०० वर्ष हुए।

मुमुक्षु : सरकार की ओर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरकारी बाद में। यहाँ तो ऐसा कहा, एक बार इन्दिरा भी ममद देंगी इस काम के लिये। .... लिखा है। उसमें कुछ दिक्कत नहीं। इसके लिये चाहे जो सम्प्रदाय जैन का हो, परन्तु वस्तु के लिये अभिप्राय में अन्तर है, वह एकता कैसे होगी? कहो, शान्तिभाई! क्या करना यह इसमें? यहाँ तो स्पष्ट बात। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वह यह बात है।

परन्तु यह इसमें विवाद चला है। अभी के साधु मर जाये और आर्यिका मर जाये तब सब साधु साथ में जाते हैं। उनके मातम को.... रहे उसका अभिषेक कराते हैं। मुर्दे का अभिषेक कराते हैं। वह यह कुछ रीति है इस जैनधर्म की? वे सब साधु उसमें

मिलते हैं न। विद्वान भी उसमें ऐसा कहते होंगे। बड़ा लेख है। साधु इकट्ठे जाये कोई मर जाये तो। तुझे क्या आवश्यकता है? और उसमें शरीर को अभिषेक करावे। और उसकी हड्डियाँ जल जाये उसकी उन हड्डियों का अभिषेक करावे। कौन सी क्रिया? कहे, हमारी परम्परा की क्रिया। परन्तु... तेरी परम्परा की क्रिया, परम्परा तो तीस-चालीस वर्ष से है अभी शान्तिसागर से। कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा कहाँ है यह? इसमें ही गड़बड़ है। बहुत बोल लिखे हैं। छह बोल हैं। दूसरे ने एक लिखा है, इतना-इतना अन्तर है अभी साधु के आचरण में। इकट्ठे मिलकर। परम्परा, शान्तिसागर से ही मानते हैं। परम्परा ऐसी नहीं होती। परम्परा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की होती है, वह होती है। क्यों, बराबर है न? परम्परा ऐसे कैसे आये? आहाहा! लोग जिस किसी पक्ष में गया हो, उसमें से छूटना बहुत मुश्किल, बहुत मुश्किल। आहाहा!

यहाँ संशय मिथ्यात्वी। **रहै हियै हैरान।** कहते हैं। समझ में आया? कोई कहता था अभी कोई मन्दिरमार्गी साधु है। उससे पूछा, तुम साधु। ऐसा हो पद? ऐसा अन्दर में। दिगम्बर में किसी के साथ.... नहीं, नहीं, हमने पढ़ा है। हम साधु नहीं। अन्दर से साधुपना ऐसा होगा? धर्म ऐसा होगा वीतराग का? हमने समयसार में पढ़ा है उस प्रमाण यह मार्ग नहीं। ऐसा कोई ऐसे हों बेचारे साधु, परन्तु क्या करे? पक्ष में बैठे हैं, उसमें से छूटना बहुत कठिन। ५०-५० वर्ष मान दिया हो जगत ने। तुम महाराज हो, तुम साधु हो, तुम ऐसे हो, आहाहा! दुनिया का मान छोड़ना कठिन काम है। क्योंकि अब तो यह समयसार की बात सब बाहर आयी है न! यहाँ कहाँ गुप्त रही है? उसमें ऐसा कहते हैं। स्पष्ट बात धड़ाकाबन्ध पड़ी है। मार्ग ऐसा कहते हैं। जो कुछ यह दया, दान, व्रत, पूजा और भक्ति के भाव हों, परन्तु वह धर्म नहीं। वह धर्म का कारण नहीं। यह बात तो ढिंढोरा पीटकर बाहर आयी है। यह कहाँ खानगी—गुप्त रही है अब यह? इसमें जो श्रद्धा रखे कि यह भी ठीक और यह भी ठीक, वह संशय मिथ्यादृष्टि है, लो।

★ ★ ★

काव्य - १५

अज्ञान मिथ्यात्व का स्वरूप (दोहा)

जाकौ तन दुख दहलसौं, सुरत होत नहि रंच।
गहल रूप वरतै सदा, सो अग्यान तिरजंच।।१५।।

शब्दार्थ:–सुरत=सुध। रंच=जरा भी। गहल=अचेतता।

अर्थ:–जिसको शारीरिक कष्ट के उद्वेग से किंचित् मात्र भी सुध नहीं है और सदैव तत्वज्ञान से अनभिज्ञ रहता है, वह जीव अज्ञानी है, पशु के समान है।।१५।।

काव्य-१५ पर प्रवचन

अज्ञान मिथ्यात्व का स्वरूप—

जाकौ तन दुख दहलसौं, सुरत होत नहि रंच।
गहल रूप वरतै सदा, सो अग्यान तिरजंच॥१५॥

जिसको शारीरिक कष्ट के उद्वेग से,.... शरीर की क्रिया, वह सब करे और माने कि उसमें से धर्म होगा। अज्ञान है, कहते हैं। कुछ भान नहीं। अज्ञानी है। **जिसको शारीरिक कष्ट के उद्वेग से किंचित्मात्र भी सुध नहीं है।** जहाँ शारीरिक क्रिया, वह जड़ की क्रिया है। राग आदि, वह भी विकार की क्रिया है, उसका जिसे कुछ भान नहीं। अज्ञानी उसे मानता है। ऐसे अज्ञानी हैरान मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? शरीर को कष्ट दो, शारीरिक क्रिया से धर्म होगा। पण्डितों में भी प्रश्न उठा है न यह खानियाचर्चा में। शारीरिक क्रिया से धर्म होता नहीं। जीवित शारीरिक क्रिया, जीवित शरीर, ऐसा पाठ है। यह शरीर से धर्म होता है यह। परन्तु निमित्त है न, यह कहते हैं। परन्तु निमित्त अर्थात् क्या? उसे व्रत और तप के विकल्प हैं, उनसे धर्म नहीं। भाई! वहाँ शान्ति नहीं। जिसमें शान्ति न हो, वह धर्म कैसा? समझ में आया? जिसमें अकषाय रस ऐसा प्रभु, उसका अंश अकषाय परिणाम न आवे तो धर्म कैसा? आहाहा! परन्तु वस्तु का स्वभाव, वह धर्म।

कहो, वस्तु का स्वभाव तो शान्तरस, उपशमरस, अकषायरस है। इसलिए पर्याय उपशम अर्थात् स्थिर शान्त ऐसी। उसमें से अमुक आवे अंश में तो शान्त आवे, अविकारी परिणाम आवे। उसमें पुण्य-पाप के परिणाम उसमें होते नहीं, ऐसे परिणाम को धर्म कहते हैं। अरे, बाप रे बाप! लोग इतने सब गड़बड़ में चढ़ गये बेचारे! अरेरे! यह मनुष्यपना चला जाता है, अवसर चला जाता है। निगोद में से निकलकर मुश्किल-मुश्किल से कहीं आया। और जिसके भव का अन्त नहीं, उसे यह समझना भारी मुश्किल। समझ में आया? जिसे संसार निकट है, उसे यह बात बैठती है। अज्ञानी शारीरिक कष्ट से बहुत अपवास करे और बहुत शरीर में क्षीणता करे तो (कहे), देखो, इसका नाम धर्म, इसका नाम निर्जरा। धूल भी नहीं निर्जरा। आहाहा!

उपवास सब करे महीने-महीने के, दो महीने के। लंघन है। लंघन-लंघन। समझ में आया? यह क्या कहलाता है? वह कहते हैं न त्रागुं। त्रागां पहले करते। त्रागां समझे? बाबा आवे न बाबा, पैसा लेने। पैसा न दे तो .....

मुमुक्षु : खून निकाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : छुरी रखे जरा। पैसा दे, उड़ाकर डाल दे मकान पर। यह त्रागां कहलाता है।

मुमुक्षु : .... बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाबा बहुत प्रकार के आवे न! हमारी दुकान पर बहुत प्रकार के आते थे। बहुत प्रकार का अनुभव है। एक तो ऐसा फकीर आता था। दिया पैसा परन्तु मैं नहीं था और यूँ ही हमारे कुँवरजीभाई थे भागीदार। पैसे दिये, वह खीझ गया। खीझा और वस्त्र जलाकर रखा उसका। अर्थात् पैसा न ले और आठ आना देना पड़े। तब, हों! यह तो ६५ वर्ष पहले की बात है। मैं नहीं था। उसे ... भाषा उसकी जैसी-तैसी थी। .... आहाहा! .... गाया हुआ उसके पास हों फकीर। अन्त में आठ आना देना पड़े। इसका नाम त्रागां कहा जाता है। हठ करके, खून निकालकर, जलाकर भी लाओ।

अपने इसमें ही कहीं होता है। महाजन और हो न, कहीं वह फेरफार हो तो महाजन की दुकान में जाये अथवा महाजन की पेढी हो और वहाँ जाये। भूखा बैठे।

आधा-पौन घण्टे पहले मेरा स्पष्टीकरण करो। त्रागां कहलाये। विवाद हो न जाति में से .... व्यक्ति आवे, फिर जाँच करे। आने के बाद लंघन बैठे। जब तक मेरा स्पष्टीकरण नहीं होगा, तब तक नहीं खाऊँगा, पानी नहीं पीऊँगा। कान्तिभाई! ऐसा होता है या नहीं? हाँ, है।

हमारे एक व्यक्ति बरवाळे.... लंघन लेकर बैठे। महाजन को शर्म हो या नहीं? ....बनिया खाता नहीं।

मुमुक्षु : बनिया भूखा रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूखा रहे चौबीस घण्टे। वह कहीं हठ करके बैठे। इसी प्रकार अज्ञानी हठ करके बैठा, शरीर की क्रिया से धर्म होगा। समझ में आया? अरे! पुण्य परिणाम से धर्म होगा, यह अज्ञानी अज्ञान से मानता है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! **जाकौ तन दुख दहलसौं, सुरत होत नहि रंच। सुरत**—अपने ज्ञान की किंचित्मात्र भी सुध नहीं। सुध ही नहीं। भानरहित। आहाहा! पशु होम करना और यह करना और वह करना। समझ में आया?

अपने आया है अभी रामजीभाई के ऊपर। ऐई! पत्र। किसी ने पत्र लिखा है। ....क्या है यह सब? जैन में यह कहाँ से घुस गया यह? .... पूजा क्या कहलाती है यह? अंकुर उत्पन्न। मिट्टी का यह फलना। ऊपर लेकर जाये और सिर पर मिट्टी लेकर आवे, मिट्टी खोदे, बोवे, अंकुर इतने बड़े-बड़े इतने हों और फिर अन्त में होम करे। तिल डाले। या होम स्वाहा। यह सब ऐसा है। व्यवहार.... उसमें भेद नहीं। उसमें कहीं कुछ हाथ आवे नहीं। धूल भी नहीं। लिखा है एक व्यक्ति ने, कोई ब्रह्मचारी...

यहाँ कहते हैं, अज्ञानी को किंचित्मात्र भी सुध नहीं। साध नहीं कि मैं तो आत्मा ज्ञान हूँ। उसे इस देह की क्रिया और राग की क्रिया से कैसे लाभ हो? ऐसी सुध का अंश भी जिसे (नहीं है)। आहाहा! अज्ञान में मूढ़ हो गया है, कहते हैं। **गहल रूप वरतै सदा....** लो। अनभिज्ञ रहे। पागल की भाँति। .... उपाश्रय। पर्यूषण में दो-दो उपवास और आठ-आठ उपवास करे और माने कि इसमें कुछ धर्म है। वह अज्ञानी अज्ञान में गहल-पागल हो गये हैं, कहते हैं।

सदैव तत्त्वज्ञान से अनभिज्ञ रहता है। उसे तत्त्वज्ञान का भान नहीं। आहाहा! भारी कठिन, भाई!

मुमुक्षु : क्रियाकाण्डी को एकदम कठोर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! **वह जीव अज्ञानी है, पशु के समान है,...** लो। **सो अग्यान तिरजंच।** पशु समान विकल्प कुछ भान नहीं कि आत्मा आनन्दस्वरूप, उसकी आत्मा की—आनन्द की क्रिया से धर्म होगा। यह दुःख के परिणाम और शरीर की क्रिया से धर्म होगा या निर्जरा होगी, ऐसा किंचित् होता (नहीं)। बहुत छनावट करने जाये तो फिर ऐसा होता है। यही एक तुम्हारा धर्म सच्चा? निर्णय कर न, बापू! भाई! यह तो अवसर हुआ है। हित की बात है।

(आगे का पेराग्राफ टेप में रिपीट होता है।)

एक व्यक्ति ने लिखा है, कोई ब्रह्मचारी... यहाँ कहते हैं, अज्ञानी को कुछ किंचित्मात्र भी सुध नहीं। साध नहीं कि मैं तो आत्मा ज्ञान हूँ। उसे यह देह की क्रिया और राग की क्रिया से कैसे लाभ होगा? ऐसी सुध का अंश भी जिसे (नहीं है)। आहाहा! अज्ञान में मूढ़ हो गया है, कहते हैं। **गहल रूप वरतै सदा,...** लो। अनभिज्ञ रहे। पागल की भाँति।.... उपाश्रय। पर्यूषण में दो-दो उपवास और आठ-आठ उपवास करे और माने कि, इसमें कुछ धर्म है। वह अज्ञानी अज्ञान में गहल-पागल हो गये हैं, कहते हैं। **सदैव तत्त्वज्ञान से अनभिज्ञ रहता है।** तत्त्वज्ञान का उसे भान नहीं। आहाहा! भारी कठिन भाई!

मुमुक्षु : क्रियाकाण्डी को अत्यन्त कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! **वह जीव अज्ञानी है, पशु के समान है,...** है, लो। **सो अग्यान तिरजंच।** पशु समान विकल्प, कुछ भान नहीं कि आत्मा आनन्दस्वरूप, उसकी आत्मा की—ज्ञान की क्रिया से धर्म होता है। यह दुःख के परिणाम और शरीर की क्रिया से धर्म हो या निर्जरा हो, ऐसा किंचित् होता (नहीं)। बहुत छनावट करने जायें तो फिर ऐसा हो जाये। यह ही एक तुम्हारा धर्म सच्चा? निर्णय कर न, बापू! भाई! यह तो अवसर हुआ है। हित की बात है।

यह तो हित कैसे हो, उसकी बात है।

मुमुक्षु : क्रिया को ही पहला धर्म मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है अनादि से। ऐसा का ऐसा यह तो क्रिया तो ठीक, परन्तु एक समय की पर्याय के ऊपर अनादि की दृष्टि है, उसे पर्यायबुद्धि कहते हैं। पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि, उसे जँचता नहीं, यह आया है इसमें। कि द्रव्यदृष्टि वह समकित और पर्यायदृष्टि मिथ्यात्व। कहाँ से आया यह? पर्याय तो है। किस अपेक्षा, सुन न! पर्याय—अकेले अंश को ही स्वीकारता है, ऐसा कहते हैं। इसका नाम पर्यायबुद्धि—पर्यायदृष्टि। अरे भगवान! क्या करे? भाई! तत्त्व का ही उल्टा अर्थ करे, वहाँ क्या हो? उसमें तेरा हित समाहित है। ऐसे अर्थ हों, वह तुझे जँचे नहीं और उल्टे अर्थ करे, वह तुझे जँचे। आहाहा!

आज भाई का पत्र आया है। आया है? क्या कहा? यह दूसरा दिन, ऐसा कहे, पेट में वाढ आती थी। बहुत चिल्लाती थी। फिर चन्दुबेन गये वहाँ तुम्हारे। भाई! लिखा है, उसमें लिखा है। उसने पौने सात लिखा है। बहिन कहती थी पौने आठ। चन्दुबेन आयीं वे ऐसा कहे, बात हुई। मांगलिक सुनाओ। परन्तु उसमें भी शरीर में इतनी शक्ति नहीं थी, इसलिए मूल घबराहट लगे। पीड़ा तो अन्दर बहुत। शान्त हो गये। तुरन्त आँख मिंच गयी। पौने आठ। बस देह छूट गयी। ओहोहो! ऐसे अवतार! भाई! सब हैरान होने के रास्ते। उसमें सुलटा समझने की दरकार नहीं होती। यह पक्ष की कहाँ बात है? यह तो वस्तु की स्थिति की बात है।

मिथ्यात्व के दो भेद। १६वाँ बोल।

★ ★ ★

काव्य - १६

मिथ्यात्व के दो भेद (दोहा)

पंच भेद मिथ्यातके, कहै जिनागम जोइ।
सादि अनादि सरूप अब, कहूं अवस्था दोइ।।१६।।

अर्थ:–जैन शास्त्रों में जो पाँच प्रकार का मिथ्यात्व वर्णन किया है, उसके सादि और अनादि दोनों का स्वरूप कहता हूँ।।

काव्य-१६ पर प्रवचन

पंच भेद मिथ्यात के, कहे जिनागम जोइ। कहे जिनागम जोइ—जिनागम प्रमाण मिथ्यात्व के पाँच प्रकार वर्णन किये हैं। **सादि अनादि सरूप अब, कहूं अवस्था दोइ।** अब सादि मिथ्यात्व और अनादि मिथ्यात्व दोनों की बात कहता हूँ, कहते हैं। सादि—नया। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् गिर जाये और मिथ्यात्व हो, वह सादि मिथ्यात्व, ऐसा। आता है, देखो! सादि मिथ्यात्व का स्वरूप।

★ ★ ★

काव्य - १७

सादि मिथ्यात्व का स्वरूप (दोहा)

जो मिथ्या दल उपसमै, ग्रंथि भेदि वुध होइ।
फिर आवै मिथ्यातमैं, सादि मिथ्याती सोइ।।१७।।

अर्थ:–जो जीव दर्शनमोहनीय का दल अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति को उपशम करके मिथ्यात्व गुणस्थान से चढ़कर सम्यक्त्व का स्वाद लेता है और फिर मिथ्यात्व में गिरता है, वह सादि मिथ्यात्वी है।।१७।।

काव्य-१७ पर प्रवचन

जो मिथ्या दल उपसमै, ग्रंथि भेदि वुध होइ।
फिर आवै मिथ्यातमैं, सादि मिथ्याती सोइ॥१७॥

जो जीव दर्शनमोहनीय का दल अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति को उपशम करके। दल उपसमै। यह तो उपशम समकित हो। चैतन्य के आनन्दस्वभाव को स्पर्शकर उपशम समकित हो। परन्तु सत्ता में सब कर्म दर्शनमोह आदि पड़े हैं, **मिथ्यात्व गुणस्थान से चढ़कर सम्यक्त्व का स्वाद लेता है।** लो। उपशम में भी समकित उपशम हो, परन्तु उसे आनन्द का स्वाद साथ में होता है। क्योंकि दु:ख है, वह तो अनादि का है। पुण्य-पाप के विकल्प का—राग का। वह जब राग की एकता तोड़कर स्वभाव में आया। कहते हैं, भले उपशम समकित हो, अन्तर्मुहूर्त रहे तो भी उसे आत्मा का स्वाद आता है। और उसमें गिर जाये, फिर मिथ्यादृष्टि। वह सादि मिथ्यात्व कहलाता है। अनादि का मिथ्यात्व तो तोड़ डाला था। फिर मिथ्यात्वी हुआ। आहाहा! **सम्यक्त्व का स्वाद लेता है और फिर मिथ्यात्व में गिरता है।** और विपरीत मान्यता में आ जाये। वह सादि मिथ्यात्वी है। मिथ्यात्व की आदि हुई। वह (अनादि का) नाश करके उत्पन्न किया न इस अपेक्षा से।

★ ★ ★

काव्य - १८

अनादि मिथ्यात्व का स्वरूप (दोहा)

जिनि ग्रंथी भेदी नहीं, ममता मगन सदीव।
सो अनादि मिथ्यामती, विकल बहिर्मुख जीव।।१८।।

शब्दार्थ:-विकल-मूर्ख। बहिर्मुख=पर्यायबुद्धि।

अर्थ:-जिसने मिथ्यात्व का कभी अनोदय नहीं किया, सदा शरीरादि से अहंबुद्धि रखता आया है, वह मूर्ख आत्मज्ञान से शून्य अनादि मिथ्यात्वी है।।१८।।

काव्य-१८ पर प्रवचन

अनादि मिथ्यात्व का स्वरूप

जिनि ग्रंथी भेदी नहीं, ममता मगन सदीव।
सो अनादि मिथ्यामती, विकल बहिर्मुख जीव॥१८॥

आहाहा! **जिसने मिथ्यात्व का कभी अनुदय नहीं किया।** कभी एक समयमात्र भी आनन्द का स्वाद लिया नहीं। राग और पुण्य को अपना मानकर उसमें पड़ा है। **ग्रंथी भेदी नहीं।** ऐसा कहते हैं। राग का विकल्प है, उससे भिन्न पड़ा नहीं। समझ में आया? राग जो विकल्प है—दया, दान, व्रत, भक्ति, गुण-गुणी के भेद का विकल्प या शुभ क्रिया का विकल्प या भक्ति का विकल्प, उससे स्वभाव भेद किया नहीं। कभी उससे भिन्न पड़ा नहीं। आहाहा! **जिनि ग्रंथी भेदी नहीं।** उल्टे पुरुषार्थ से **भेदी नहीं,** ऐसा कहते हैं।

ममता मगन सदीव। यह पुण्य के परिणाम और राग की ममता सदैव रही अथवा एक समय की पर्याय में बुद्धि टिक रही अनादि से। अनादि है न! **सो अनादि मिथ्यामती।** यह अनादि का मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? **विकल बहिर्मुख जीव।** वह तो मूर्ख है, बहिर्मुख जीव है वह तो। राग को और बहिर् को माननेवाला है। वास्तव में तो एक समय की पर्याय भी बहिर् है, उसे ही माननेवाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायबुद्धि शब्द आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायबुद्धि आता है न। है न? शरीर आदि। **सदा शरीरादि से अहंबुद्धि रखता आया है, वह मूर्ख आत्मज्ञान से शून्य अनादि मिथ्यात्वी है,....** लो। आहाहा! बहिर्मुख जीव है। अर्थात् कि आत्मा अन्तर्मुख त्रिकाली आनन्द प्रभु, उसकी दृष्टि अनन्त काल में कभी की नहीं और अनन्त काल में यह निमित्त और पुण्य-पाप और पर्याय, एक समय का अंश, उसमें इसकी बहिर्बुद्धि है। कहो, समझ में आया?

वह बहिर्मुख जीव है। अन्तर्मुख नहीं परन्तु बहिर्मुख है। जो उसमें त्रिकाल में नहीं, उसे अपना मानता है। यह अनादि मूर्ख बहिर्मुख जीव है, लो। अनादि का निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक जैन दिगम्बर मिथ्यादृष्टि गया, वह अनादि मिथ्यात्वी है। समझ

में आया ? यह पहले गुणस्थान की व्याख्या हुई। पाँच भेद पहले लिये, वह तो पाँच भेद का स्वरूप लिया। अब उसे सादि-अनादि करके दो भाग किये।

अब सासादन गुणस्थान का वर्णन। दूसरे गुणस्थान की व्याख्या। सासादन है न दूसरा गुणस्थान।

★ ★ ★

काव्य - १९

सासादन गुणस्थान का वर्णन करने की प्रतिज्ञा (दोहा)

कह्यौ प्रथम गुनथान यह, मिथ्यामत अभिधान।
करूं [१]अलप वरनन अबै, सासादन गुनथान।।१९।।

अर्थः-यह पहले मिथ्यात्व गुणस्थान का स्वरूप कहा, अब संक्षेप से सासादन गुणस्थान का कथन करते हैं।।१९।।

काव्य-१९ पर प्रवचन

कह्यौ प्रथम गुनथान यह, मिथ्यामत अभिधान। मिथ्यादृष्टि जिसका नाम है, ऐसा। **करूं अलप वरनन अबै, सासादन गुनथान।** दूसरे गुणस्थान की स्थिति बहुत अल्प है। परन्तु उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं।

★ ★ ★

१. 'अलपरूप अब बरनयौ' ऐसा भी पाठ है।

काव्य - २०

सासादन गुणस्थान का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

जैसैं कोऊ छुधित पुरुष खाइ खीर खांड,
वौन करै पीछेकौ लगार स्वाद पावै है।
तैसैं चढ़ि चौथै पांचए कै छट्ठे गुनथान,
काहू उपसमीकौ कषाय उदै आवै है।।
ताही समै तहांसौं गिरै प्रधान दसा त्यागी,
मिथ्यात अवस्थाकौ अधोमुख ह्वै धावै है।
बीचि एक समै वा छ आवली प्रवांन रहै,
सोई सासादान गुनथानक कहावै है।।२०।।

शब्दार्थ:-खांड=शक्कर। वौन=वमन। प्रधान=ऊँचा। अधोमुख=नीचे। आवली=असंख्यात समयों की एक आवली होती है।

अर्थ:-जिस प्रकार कोई भूखा मनुष्य शक्कर मिली हुई खीर खावे और वमन होने के बाद उसका किंचित् मात्र स्वाद लेता रहे, उसी प्रकार चौथे पाँचवें छठवें गुणस्थान तक चढ़े हुए किसी उपशमी सम्यक्त्वी को कषाय का उदय होता है तो उसी समय वहाँ से मिथ्यात्व में गिरता है, उस गिरती हुई दशा में एक समय और अधिक से अधिक छह आवली तक जो सम्यक्त्व का किंचित् स्वाद मिलता है, वह सासादन गुणस्थान है।

विशेष :-यहाँ अनंतानुबंधी चौकड़ी में से किसी एक का उदय रहता है।।२०।।

काव्य-२० पर प्रवचन

जैसैं कोऊ छुधित पुरुष खाई खीर खांड,
वौन करै पीछेकौ लगार स्वाद पावै है।
तैसैं चढ़ि चौथै पांचए कै छट्ठे गुनथान,
काहू उपसमीकौ कषाय उदै आवै है॥

ताही समै तहांसौं गिरै प्रधान दसा त्यागी,
मिथ्यात अवस्थाकौ अधोमुख ह्वै धावै है।
बीचि एक समै वा छ आवली प्रवांन रहै,
सोई सासादान गुनथानक कहावै है॥२०॥

जैसे कोई भूखा मनुष्य, **छुधित पुरुष खाई खीर खांड,...** खीर और खांड खाकर। खाने के बाद वमन किया। **वौन करै पीछेकौ लगार स्वाद पावै है।** और स्वाद जरा रह जाये। उसका नाम सम्यग्दर्शन पावे। स्वाद आत्मा का आवे, ऐसा कहते हैं। वह स्वाद छोड़कर बीच में जरा मिथ्यात्व में जाने से पहले, बीच में जरा स्वाद थोड़ा, उसे सासादन कहते हैं। समझ में आया? परन्तु वह तो छोड़ देने का ही है वह। छोड़कर मिथ्यात्व में जानेवाला है। यह तो पहले से सिखलाया है अपने। आता है, श्वेताम्बर में भी आता है। (संवत्) १९६८ के वर्ष से यह तो आता है। ज्ञानसागर का दृष्टान्त देते थे। ज्ञान कैसा? ज्ञान सागरमय। जामनगर। पूनातर। ६८ में। यह तो सब पहले से सीखा हुआ है सब। उसका खीर खांड खाये। उसे वमन हो उसका भाग रहे, उसे सासादन कहते हैं। समझ में आया? यह तो एक जानने की बातें बतलायीं।

तैसैं चढ़ि चौथै पांचए कै छट्ठे गुनथान,... चौथे में समकित पावे, पाँचवें में श्रावकपना और छठवें में मुनिपना। ऐसी सच्ची दशा पाने पर भी, **काहू उपसमीकौ कषाय उदै आवै है।** लो। **उपशमी सम्यक्त्वी को कषाय का उदय होता है तो उसी समय वहाँ से मिथ्यात्व में गिरता है।** गजब! ऐसे कषाय के उदय से मिथ्यात्व... परन्तु बात ऐसी है कि मूल मिथ्यात्व का ही उदय में जुड़ गया है। समझ में आया? मिथ्यात्व, वह कषाय है न। उसमें वह जुड़ गया है। गिर गया।

ताही समै तहांसौं गिरै प्रधान दसा त्यागी,... यह चौथे गुणस्थान की, पाँचवें की, छठवें की दशा छोड़कर मिथ्यात्व के सन्मुख हुआ, बीच में थोड़ा काल रहे, उसे सासादन कहते हैं। **मिथ्यात अवस्थाकौ अधोमुख ह्वै धावै है।** लो। **वहाँ से मिथ्यात्व में गिरता है, उस गिरती हुई दशा में एक समय और अधिक से अधिक छह आवली।** छह आंवली और एक समय उसकी स्थिति है। सासादन गुणस्थान। चौदह गुणस्थान में

आता है। श्वेताम्बर में भी आता है। स्थानकवासी में भी आता है। सबमें ही आता है। समझ में आया?

एक समै वा छ आवली प्रवांन रहै, सोई सासादान गुनथानक कहावै है। लो। उसे सासादन गुणस्थान कहते हैं। अर्थ में लिखा है। उसमें कषाय लिखा है न। अनन्तानुबन्धी चौकड़ी, ऐसा। दूसरा गुणस्थान है न! मिथ्यात्व पाने की तैयारी है। अनन्तानुबन्धी चौकड़ी, ऐसा कहना है। क्योंकि मिथ्यात्व-सन्मुख ही है वह, परन्तु हुआ नहीं। उसके पहले अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय आया, इसलिए दूसरा गुणस्थान कहा जाता है।

तीसरा गुणस्थान कहने की प्रतिज्ञा। तीसरा गुणस्थानक।

★ ★ ★

काव्य - २१

तीसरा गुणस्थान कहने की प्रतिज्ञा (दोहा)

सासादन गुनथान यह, भयौ समापत बीय।
मिश्रनाम गुनथान अब, वरनन करूं तृतीय।।२१।।

शब्दार्थ:-बीय (बीजो)=दूसरा।

अर्थ:-यह दूसरे सासादन गुणस्थान का स्वरूप समाप्त हुआ, अब तीसरे मिश्र गुणस्थान का वर्णन करते हैं।।२१।।

काव्य-२१ पर प्रवचन

सासादन गुनथान यह, भयौ समापत बीय।
मिश्रनाम गुनथान अब, वरनन करूं तृतीय॥२१॥

तीसरे गुणस्थान की दशा। अथवा समकित पाकर गिरते हुए मिश्र दशा किसी को

आवे, अथवा मिश्र दशा समकित पाने के पश्चात् मिश्र दशा होकर समकित हो। पहले से चढ़कर तीसरे में भी आवे। क्या कहा यह ? मिश्र दशा अनादि की पहले नहीं आवे। अनादि का पहला सम्यग्दर्शन हो। वह गिरकर या तीसरे में आवे और या गिरकर मिथ्यात्वी हो। वह मिथ्यात्वी भी वापस चढ़ते हुए फिर तीसरे में आवे। समझ में आया ?

★ ★ ★

काव्य - २२

तृतीय गुणस्थान का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

उपसमी समकिती कै तौ सादि मिथ्यामती,
दुहुंनिकौं मिश्रित मिथ्यात आइ गहै है।
अनंतानुबंधी चौकरीकौ उदै नाहि जामैं,
मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहै है।।
जहां सद्दहन सत्यासत्यरूप समकाल,
ग्यानभाव मिथ्याभाव मिश्र धारा बहै है।
याकी थिति अंतर मुहूरत उभयरूप,
ऐसौ मिश्र गुनथान अचारज कहै है।।२२।।

अर्थः–आचार्य कहते हैं कि उपशम सम्यग्दृष्टि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीव को यदि मिश्र मिथ्यात्व नामक कर्मप्रकृति का उदय हो पड़े और अनंतानुबंधी की चौकड़ी तथा मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन छह प्रकृतियों का उदय न हो, वहाँ एक साथ सत्यासत्य श्रद्धानरूप ज्ञान और मिथ्यात्वमिश्रित भाव रहते हैं, वह मिश्र गुणस्थान है, इसका काल अन्तर्मुहूर्त है।

भावार्थः–यहाँ गुड़ मिश्रित दही के समान सत्यासत्य मिश्रित भाव रहते हैं।।२२।।

काव्य-२२ पर प्रवचन

तृतीय गुणस्थान का स्वरूप

उपसमी समकिती कै तौ सादि मिथ्यामती,
दुहुंनिकौं मिश्रित मिथ्यात आइ गहै है।
अनंतानुबंधी चौकरीकौ उदै नाहि जामैं,
मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहै है॥
जहां सद्दहन सत्यासत्यरूप समकाल,
ग्यानभाव मिथ्याभाव मिश्र धारा बहै है।
याकी थिति अंतर मुहूरत उभयरूप,
ऐसौ मिश्र गुनथान अचारज कहै है॥२२॥

उसमें—दूसरे में अनन्तानुबन्धी का उदय है। इसमें नहीं। ऐसा कहते हैं।

उपशम सम्यग्दृष्टि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीव को यदि मिश्र मिथ्यात्व नामक कर्मप्रकृति का उदय हो पड़े और अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी तथा मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन छह प्रकृतियों का उदय न हो,... ऐसा। तीसरे में अनन्तानुबन्धी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। और समकिती को उसका उदय नहीं होता। छह प्रकृतियों का उदय नहीं हो। समकित मोहनीय का, अनन्तानुबन्धी का और मिथ्यात्व का। तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व का उदय नहीं होता, अनन्तानुबन्धी का नहीं होता और समकितमोहनीय का नहीं होता। यह जानने की बात है यह तो। समझ में आया?

एकसाथ सत्यासत्य श्रद्धानरूप ज्ञान और मिथ्यात्वमिश्रित भाव रहते हैं,... लो, मिश्रित ज्ञान कहा है न वहाँ। ज्ञान—अज्ञान मिश्रित है दोनों। अकेला अज्ञान भी नहीं और अकेला ज्ञान भी नहीं। ऐसा, हों! मिश्र गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है। यह तो लड़कों को जैसे पाठशाला में पढ़ावे, ऐसे पहले की बात चलती थी। शुरुआत में तो यह पढ़ाते हैं। ऐसा समझाते हैं। अभ्यास न हो उसे तो, यह क्या कहते हैं यह? ऐसा लगे। **यहाँ गुड़ मिश्रित दही के समान सत्यासत्य मिश्रित भाव रहते हैं।** अन्तर्मुहूर्त रहे।

अब चौथे गुणस्थान का वर्णन। समकित का वर्णन। चौथे गुणस्थान का समकित, श्रावक होने से पहले, श्रावक की दशा होने से पहले, समकित की दशा चौथे में होती है, वह धर्मी जीव कैसा होता है, उसकी व्याख्या।

★ ★ ★

काव्य - २३

चौथा गुणस्थान वर्णन करने की प्रतिज्ञा (दोहा)

मिश्र दसा पूरन भई, कही यथामति भाखि।
अब चतुर्थ गुनथान विधि, कहौं जिनागम साखि।।२३।।

अर्थः–अपने क्षयोपशम के अनुसार मिश्र गुणस्थान का कथन समाप्त हुआ, अब जिनागम की साक्षीपूर्वक चौथे गुणस्थान का वर्णन करता हूँ।।२३।।

काव्य-२३ पर प्रवचन

मिश्र दसा पूरन भई, कही यथामति भाखि।
अब चतुर्थ गुनथान विधि, कहौं जिनागम साखि॥२३॥

वीतराग की साक्षी से भगवान ने कहा था ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - २४

चौथे गुणस्थान का वर्णन (सवैया इकतीसा)

केई जीव समकित पाई अर्ध पुदगल–
परावर्त काल तांई चोखे होइ चितके।
केई एक अंतरमुहूरतमैं गंठि भेदि,
मारग उलंघि सुख वेदै मोख वितके।।
तातैं अंतरमुहूरतसौं अर्धपुदगल लौं,
जेते समै होहिं तेते भेद समकितके।
जाही समै जाकौं जब समकित होइ सोई,
तबहीसौं गुन गहै दोस दहै इतके।।२४।।

शब्दार्थ:–चोखै=अच्छे। वेदै=भोगे। दहै=जलावे। इतके=संसार के।

अर्थ:–जिस किसी जीव के संसार संसरण का काल अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गल परावर्तन और कम से कम अंतर्मुहूर्त शेष रहता है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन ग्रहण करके चतुर्गतिरूप संसार को पार करनेवाले मोक्षसुख की वानगी लेता है। अंतर्मुहूर्त से लगाकर अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल के जितने समय हैं, उतने ही सम्यक्त्व के भेद हैं। जिस समय जीव को सम्यक्त्व प्रगट होता है, तभी से आत्मगुण प्रगट होने लगते हैं और सांसारिक दोष नष्ट हो जाते हैं।।२४।।

काव्य-२४ पर प्रवचन

चौथे गुणस्थान का वर्णन

केई जीव समकित पाई अर्ध पुदगल–
परावर्त काल तांई चोखे होइ चितके।

यह तो उसमें भी आया, लो। वह कहे कि समकित पाये, अर्धपुद्गलपरावर्तन काल तक चोखे होई चित के। किसी के संसारसमुद्र का काल अधिक से अधिक

अर्धपुद्गलपरावर्तन, कम से कम अन्तर्मुहूर्त रहता है। तब निश्चय सम्यग्दर्शन ग्रहण करके चतुर्गति संसार को पार करनेवाला मोक्षसुख की वानगी लेता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं, धर्म की पहली दशा। अर्धपुद्गलपरावर्तन संसार रहा, उसे समकित होता है और या अन्तर्मुहूर्त संसार रहे (उसे होता है)।

मुमुक्षु : बड़े में बड़ा काल यह (अर्धपुद्गलपरावर्तन)।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक काल नहीं। अन्तर्मुहूर्त में होता है न! ....काल अर्थात् अन्तर्मुहूर्त ही रहे। मोक्ष जाने की तैयारी से पहले अन्तर्मुहूर्त में समकित हो। चौथा (गुणस्थान)। आहाहा! **परावर्त काल तांई चोखे होइ चितके।** लो। चोखे चित्त के अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन ग्रहण करके, ऐसा।

केई एक अंतरमुहूरतमैं गंठि भेदि,
मारग उलंघि सुख वेदै मोख वितके॥

कितना स्पष्टीकरण है! संसार को पार करनेवाला मोक्ष सुख की वानगी लेता है। समकिती जीव को मोख सुख की वानगी मिली। वानगी समझ में आती है? नमूना। आहाहा! उसे समकिती कहते हैं। ऐसे देव-गुरु की श्रद्धा करे, नौ तत्त्व की श्रद्धा करे, इसलिए समकिती—ऐसा नहीं। समझ में आया? अभी सम्यग्दर्शन। श्रावक तो बाद में पाँचवीं भूमिका, मुनि की तो छठवीं। उसे तो बहुत आनन्द होता है। सच्चे की बात है, हों! यह तो चौथे गुणस्थान में.....

तातैं अंतरमुहूरतसौं अर्धपुदगल लौं,
जेते समै होहिं तेते भेद समकितके।

परन्तु **मारग उलंघि सुख वेदै मोख वितके।** लो। आहाहा! राग की एकता टूटकर स्वभाव की एकता होने पर सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का अतीन्द्रिय स्वाद आता है, उसे समकित कहते हैं। उसे चौथा गुणस्थान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा नहीं कहा कि उन देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे, वह समकित; नौ तत्त्व की श्रद्धा करे तो समकित। यहाँ तो कहा कि **मारग उलंघि सुख वेदै मोख वितके।** आहाहा! मोक्षरूपी लक्ष्मी। उसका सुख वेदे, ऐसा। यह अनादि से पुण्य-पाप के राग

का दु:ख वेदता था अनादि से, वह दु:खी था। यह सेठिया हुए, राजा हुए, सब दु:खी के सरदार हैं। क्यों, ऐसा होगा? जयन्तीभाई! परन्तु दो व्यक्ति हों और पाँच-पचास हजार की पूँजी हो तो सुखी न कहलाये? कुछ चिन्ता न हो, आजीविका का साधन बहुत हो, लो।

परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा के आनन्दस्वभाव के पक्ष से अनादि से छूट गया है और राग के पक्ष में गया है, वह दु:खी है। आहाहा! चाहे तो देव हो या चाहे तो नारकी हो, परन्तु राग के विकल्प के पक्ष में चढ़ा हुआ प्राणी अनादि से दु:खी है। दु:ख में जलता है। दावानल सुलगा है उसकी दशा में। आहाहा! नग्न साधु हो, पंच महाव्रत के परिणाम पालता हो, वह सब दु:खरूप है। समझ में आया? ऐसे मार्ग को उल्लंघकर, लो।

सुख वेदै मोख वितके। मोक्षरूपी लक्ष्मी। यह उसका थोड़ा सुख, उसे वानगी में आ जाता है। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका हो या मेंढ़क हो मेंढ़क—मंडूक, परन्तु सम्यग्दर्शन पावे तो उसके आत्मा के आनन्द का स्वाद आवे, ऐसा कहते हैं। हरिभाई! ऐसा स्वरूप है? भगवान सच्चे और समकित, ऐसा नहीं, यहाँ कहते हैं। आत्मा सच्चा यह। आनन्दमूर्ति सच्चा, ऐसा जहाँ भान हुआ, उसे सच्चा मार्ग सुख आनन्द है, उसकी वानगी आ जाये कि मोक्ष का सुख इस जाति का है। समझ में आया? उसके भेद, कहते हैं कि अन्तर्मुहूर्त से अर्धपुद्गल(परावर्तन), लो।

जेते समै होहिं तेते भेद समकितके। अन्तर्मुहूर्त से लेकर अर्धपुद्गल (परावर्तन) इतने भेद पड़ते हैं।

जाही समै जाकौं जब समकित होइ सोई,
तबहीसौं गुन गहै दोस दहै इतके॥

जब से आत्मा का ज्ञान हो, तब से गुण में एकाग्रता होती है। राग को जलाता हुआ और विकार का नाश करता होता है। कहो, समझ में आया? सांसारिक दोष नष्ट हो जाता है और आत्मगुण प्रगट होता है, उसे सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला धर्मात्मा कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८३, आसोज कृष्ण १३, शनिवार, दिनांक १६-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद २५ से ३०

समयसार नाटक। चौदह गुणस्थान (अधिकार)। उसमें सम्यग्दर्शन कैसे होता है और उसका क्या स्वरूप। २५वाँ बोल है।

★ ★ ★

काव्य - २५

(दोहा)

अध अपूव्व अनिवृत्ति त्रिक, करन करै जो कोइ।
मिथ्या गंठि विदारि गुन, प्रगटै समकित सोइ।।२५।।

अर्थ:-जो अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणपूर्वक मिथ्यात्व का अनोदय करता है, उसे आत्मानुभव गुण प्रगट होता है और वही सम्यक्त्व है।।२५।।

काव्य-२५ पर प्रवचन

अध अपूव्व अनिवृत्ति त्रिक, करन करै जो कोइ।
मिथ्या गंठि विदारि गुन, प्रगटै समकित सोइ॥२५॥

प्रथम जो धर्म की पहली दशा सम्यग्दर्शन, वह कैसे प्रगटे? कि उसे अध:, अपूर्व और अनिवृत्ति तीन प्रकार के परिणाम होते हैं। यहाँ आगमदृष्टि से बात है न! अध्यात्मदृष्टि से देखें तो अत्यन्त शुद्ध आत्मा अन्तर रुचि से त्रिकाली द्रव्य की रुचि करना, उसमें यह परिणाम पहले होते हैं। धर्म की शुरुआत यहाँ है। अहो! अनन्त... अनन्त... अनन्त—अन्त नहीं इतने काल से भटकता था चौरासी में एक-एक में अनन्त अवतार में रहा, वह दु:खी होकर पराधीन दशा भोगता था, उसे जब आत्मदर्शन होता है, तब उसे यह एक अध:करण नाम के परिणाम होते हैं। एक अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। ऐसा करे। करे, यद्यपि वे तो होते हैं, उसे 'करे' नाम कहा जाता है।

मिथ्यात्व का अनुदय करता है। **मिथ्या गंठि विदारि।** पाठ तो ऐसा है। मिथ्यात्व के भाव की गाँठ को टालता है, नाश करता है परन्तु उसका अर्थ यह है कि उस काल में उसे मिथ्यात्व का उदय होता नहीं। समझ में आया? **मिथ्या गंठि विदारि।** अर्थात् राग और त्रिकालस्वभाव की एकता, वह मिथ्यागांठ है, उसे टालकर। **विदारि** कर कहा है न। **गुन प्रगटै—उसे आत्मानुभव गुण प्रगट होता है।**

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का वहाँ सम्यग्दर्शन में आनन्द का अनुभव होता है। अतीन्द्रिय आत्मानुभव गुण प्रगट होता है। अपना सुख अपने में है, ऐसा अनुभव में आनन्द में अनुभव आनन्द का प्रगट होता है। **प्रगटै गुन** अर्थात् अनुभव, **समकित सोइ**—इसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? राग की गाँठ (अर्थात्) त्रिकाली भगवान स्वभाव स्वरूप में पर्याय में एक समय की दशा में राग की एकताबुद्धि अथवा एक समय की पर्याय में एकताबुद्धि। समझ में आया?

त्रिकाली ध्रुव चैतन्यदल आदि-अन्तरहित जिसका सत् का सत्त्व जो है, (वह) वस्तु भगवान परमेश्वर स्वयं है। ऐसे परमेश्वर को अनुभव करने का गुण प्रगट हो। राग और द्वेष, पुण्य-पाप का अनुभव तो अनादि का है। चार गति में उसका अनुभव तो अनन्त काल से है। शरीर, वाणी, स्त्री का अनुभव अज्ञान में भी नहीं, क्योंकि वह तो परवस्तु है। परवस्तु का अनुभव और भोगना हो नहीं सकता। उसे अनादि से राग और द्वेष, पुण्य और पाप—मलिन मैलभाव का अनुभव है। वह विकार का अनुभव, वही मिथ्यात्व है। आहाहा! नरक में हो या स्वर्ग में हो, साधु के बाहर के वेश में हो या संसार के वेश में हो, परन्तु उसने राग को वेदन किया है। वह राग का अनुभव विकार का, वही मिथ्यात्वभाव है।

आत्मा के आनन्दस्वरूप त्रिकाली भगवान आत्मा की दृष्टि करके आत्मा के शान्त आनन्दभाव को अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। जयन्तीभाई! आहाहा! परदेश में तो यह बात सुनने को मिले नहीं। हो-हा, हो-हा।

मुमुक्षु : जरा भी नहीं मिलती....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं मिलती। देश में भी मुश्किल। यह तो परदेश में

भ्रम कर आये न अभी भटकने। पौने तीन वर्ष। आहाहा! कहते हैं, व्यवहार आगमदृष्टि से बात है न, इसलिए परिणाम से यहाँ लिया है। बाकी वास्तव में तो अन्तर के आनन्द की तीव्र धगश और रुचि से आत्मानुभव प्रगट हो, उसे यहाँ समकित कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, वह कहीं समकित नहीं। समझ में आया? पूर्णानन्दस्वरूप अपना, ऐसे आनन्द की झांकी होकर अनुभव हो, उसे समकित कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह समकित कोई देव-गुरु-शास्त्र से भी प्राप्त नहीं होता और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के भाव से भी यह प्राप्त नहीं होता। आहाहा! वह तो राग है।

सच्चे अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ, गुरु निर्ग्रन्थ मुनि सन्त चारित्रवन्त, शास्त्र सर्वज्ञ की वाणी में अनेकान्त के जो भाव आये, वे परद्रव्य हैं। स्वद्रव्य की अनुभव की दृष्टि में उस परद्रव्य की सहायता जरा भी नहीं। ऐसी बात है। देखो, उसमें कुछ लिया है? अपने परिणाम करे। **मिथ्या गंठि विदारि,** उसका अर्थ कि अनिवृत्ति परिणाम काल में आया, इसलिए तुरन्त मिथ्यात्व का उदय रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु शैली तो समझानी हो, तब क्या समझावे? समझ में आया? शास्त्र भाषा से ऐसा कहा जाता है आगम (भाषा में)। तत्त्व की दृष्टि के आश्रय से तो अकेला परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसे जो अनादि से दया-दान-भक्ति, ऐसे विकल्प-राग से एकताबुद्धि है। और उससे ऐसे आगे आये तो भी उसके एक समय की दशा—एक अंश की दशा में त्रिकाली द्रव्य को (छोड़कर) एक समय की दशा में एकताबुद्धि है, वह मिथ्यात्व है। ऐसा मार्ग है। वलुभाई! आहाहा!

वह पैसावाला झट हो जाये, लो। पूर्व के पुण्य के कारण ढेर दिखाई दे। तीस लाख और चालीस लाख और पचास लाख और साठ लाख।

मुमुक्षु : यह पैसा है, उसके राग का अनुभव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का। पैसे का कब था? पैसा तो जड़ है। स्त्री का शरीर जड़ है। मौसम्बी और लड्डू अजीव जड़ है। उन्हें कोई जीव भोगता है? अनादि का यह पुण्य और पाप के विकल्प के राग को वेदता (और) पूरा अविकारी तत्त्व पड़ा रहे। आहाहा! और वह पर्याय में वेदन प्रत्यक्ष, इसलिए इसे वही वस्तु लगे। समझ में

आया? आहाहा! तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, पर्याय के वेदन में उसका अनादर हो गया है। समझ में आया? आहाहा!

देव-गुरु-शास्त्र, वे तो पर हैं। उनसे तो एकत्व कि उनसे लाभ होगा, (ऐसी) एकत्वबुद्धि, वह तो मिथ्यात्व है, परन्तु उसके प्रति प्रेम की श्रद्धा-राग, यह उससे मुझे लाभ होगा, यह राग की एकता, वह मिथ्यात्व है। यह करते आगे जाने पर वह ज्ञान की पर्याय राग को जाने अव्यक्तरूप से.... समझ में आया? दूसरी गाथा में आता है। पर को जाने। दूसरी गाथा में आता है। परसमय—पर को जानता परसमय कहते हैं। आहाहा! परिणमन है उसका। यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान भी निमित्त से नहीं हुआ। वह अपने उपादान की पर्याय से हुआ है। उस ज्ञान के साथ एकताबुद्धि, वह मिथ्यात्व है। भारी कठिन काम! अभी तो लोगों को सत्य बात क्या है, मिलती ही नहीं। वह तो गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़। मिथ्यात्व के पोषक और माने कि हम धर्म के सन्मुख जाते हैं।

देखो, यहाँ तो कहा, तीन परिणाम करे। अर्थात् इसका अर्थ कि द्रव्य का लक्ष्य करे शुद्ध चैतन्य का, तब उसके पहले ऐसे परिणाम उसके होते हैं। तब उसे मिथ्यात्वभाव का उदय न हो, तब वह समकित पावे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्रभाषा से तो आगम में ऐसा कथन आवे न! अध्यात्मभाषा से देखो तो भगवान त्रिकाल ध्रुव चैतन्यमूर्ति नित्यानन्द जो वस्तु है, उसे तो भव का और भव के भाव का परिचय ही नहीं। ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द नित्यानन्द ध्रुव को ध्येय बनाकर उसे वर्तमान ज्ञान की और श्रद्धा की पर्याय में ऐसे द्रव्य का आश्रय लेकर जो परिणाम प्रगट हों, उस परिणाम ने मिथ्यात्व के परिणाम का नाश किया, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! **मिथ्या गंठि विदारि।** भाई! ऐसा कहा है न! आहाहा! मूल तो अर्थ में ठीक किया है। मिथ्यात्व का अनुदय कहा। वस्तु तो ऐसी है। समझ में आया?

चैतन्य भगवान! बारह अंग का सार। सर्व शास्त्र—जैनशास्त्र का सार। एक समय में पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय करे, उसमें बैठे, उसमें स्थिर हो, तब उसे राग की एकता का और पर्याय के एक अंश की एकता का मिथ्यात्वभाव व्यय होता है और द्रव्य की-स्वभाव की एकता की ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया?

आहाहा! गजब माल है! ऐसा स्वरूप है, यही पद्धति है। तीन काल-तीन लोक में इसी प्रकार से है। समझ में आया?

प्रगटै गुन। तब जो राग का अनुभव था, उसका व्यय हुआ और अरागी भगवान चैतन्य का आश्रय लेकर निर्मलदशा आनन्द की प्रगट हुई, उस आनन्द का अनुभव, वह गुण प्रगट हुआ। उस दशा की श्रद्धा, उसे समकित कहते हैं। आहाहा! अथवा उस दशावान की श्रद्धा। समझ में आया? सर्वज्ञस्वरूप में अनादि से इस प्रकार मार्ग आया है। इससे कोई फेरफार करके कहे, वह वीतरागमार्ग से विरुद्ध है। समझ में आया? वही समकित है। अब, समकित के आठ बोल (विवरण)।

★ ★ ★

काव्य - २६

सम्यक्त्व के आठ विवरण (दोहा)

समकित उतपति चिहन गुन, भूषन दोष विनास।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरनौं विवरन तास।।२६।।

अर्थः-सम्यक्त्व का स्वरूप, उत्पत्ति, चिह्न, गुण, भूषण, दोष, नाश और अतीचार ये सम्यक्त्व के आठ विवरण हैं।।२६।।

काव्य-२६ पर प्रवचन

समकित उतपति चिहन गुन, भूषन दोष विनास।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरनौं विवरन तास॥२६॥

समकित का स्वरूप—उसकी उत्पत्ति का स्वरूप, समकित के चिह्न, उसके गुण, उसकी शोभा—भूषण, उसमें दोष, नाश और अतिचार—यह समकित के आठ विवरण हैं। समकित को समझने के आठ प्रकार हैं। है यह मुद्दे की रकम।

★ ★ ★

काव्य - २७

(१) सम्यक्त्व का स्वरूप (चौपाई)

सत्यप्रतीति अवस्था जाकी।
दिन दिन रीति गहै समताकी।।
छिन छिन करै सत्यकौ साकौ।
समकित नाम कहावै ताकौ।।२७।।

अर्थ:–आत्मस्वरूप की सत्यप्रतीति होना, दिन–प्रतिदिन समताभाव में उन्नति होना, और क्षण–क्षण पर परिणामों की विशुद्धि होना, इसी का नाम सम्यग्दर्शन है।।२७।।

काव्य-२७ पर प्रवचन

सम्यक्त्व का स्वरूप

सत्यप्रतीति अवस्था जाकी।
दिन दिन रीति गहै समताकी॥
छिन छिन करै सत्यकौ साकौ।
समकित नाम कहावै ताकौ॥२७॥

आहाहा! **आत्मस्वरूप की सत्यप्रतीति होना।** लो, यह समकित का स्वरूप। देव–गुरु की प्रतीति होना, यह नहीं। आहाहा! तथा एक समय की पर्याय की प्रतीति होना, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अरे, नजर डाले कहीं अन्त आवे नहीं संसार का। ऐसा दु:खमय संसार, आहाहा! जैन का साधु हुआ परन्तु दृष्टि पर्याय और राग के ऊपर रही। वह चौरासी के अवतार, आहाहा! उसका प्रवाह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त बार गुणा करो, ऐसा अनन्त काल भूतकाल। अरे, उसका अन्त लाना, भाई! उसके अन्त का उपाय—आत्मस्वरूप की प्रतीति होना, यह समकित का स्वरूप है। उसने पुण्य की और देव–गुरु की प्रतीति तो अनन्त बार की है।

समझ में आया ? वह तो परद्रव्य है। आहाहा! अरे, इसने एक समय का अंश, देव-गुरु तो पर रहे, परन्तु अपना एक समय के अंश का खण्डभाव, उसकी भी प्रतीति इसने अनन्त बार की है। वह तो मिथ्यात्व प्रतीति है।

सत्यप्रतीति अवस्था जाकी। त्रिकाली भगवान आत्मा, ऐसी जो सत्यस्वरूप की प्रतीति, ऐसी जो अवस्था, उसे समकित कहा जाता है। आहाहा! पहले तो उसकी पद्धति समझना ही कठिन पड़े, ऐसा है। आहाहा! भारी कठिन काम! समझ में आया ? **दिन दिन रीति गहै समताकी—दिन-प्रतिदिन समताभाव में उन्नति होना।** क्योंकि जब आत्मा शुद्ध और वीतरागमूर्ति है, उसे अपने अनुभव के लिये समकित के लिये किसी की अपेक्षा नहीं है। ऐसा जो निरपेक्ष भगवान आत्मा और उसकी प्रतीति भी निरपेक्ष—पर की अपेक्षा बिना की, उसे दिन-प्रतिदिन वीतरागता के अंश—समताभाव, निर्लोभताभाव बढ़ता जाता है। समझ में आया ? आहाहा!

दिन दिन रीति गहै समताकी। समताभाव की उन्नति। क्योंकि आत्मा समता का पिण्ड प्रभु है। अकषायस्वभाव का रसकन्द आत्मा की जहाँ प्रतीति स्वसन्मुख होकर हुई तो उस जाति की पर्याय में शुद्धि बढ़ती जाती है, ऐसा कहते हैं। यह समकित का स्वरूप। समझ में आया ? यह वे कहें कि हमको मानो, तुम्हारे समकित होगा। अरिहन्तदेव भी ऐसा कहते नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी प्रभु ऐसा कहते हैं कि हमारी श्रद्धा, वह भी तुझे राग है। आहाहा! गजब बात! यह समकित का स्वरूप नहीं।

छिन छिन करै सत्यकौ साकौ।... क्षण क्षण पर परिणामों की विशुद्धि। त्रिकाली समतापिण्ड प्रभु सत्य के पक्ष में है, इसलिए क्षण-क्षण में सत्य की ही वहाँ वृद्धि (होती है)। असत्य का घटवारा है और सत्य की पर्याय की वृद्धि होती है, ऐसा कहते हैं। **समकित नाम कहावै ताकौ।** यह उसे समकित (कहते हैं)। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में गणधरों और इन्द्रों के समक्ष में ऐसा फरमाते थे। समझ में आया ? **समकित नाम कहावै...** पाठ ऐसा है न! उसका नाम सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। पहले समझण में ही जहाँ विरोध और अन्तर है, उसे तो परलक्षी ज्ञान ही खोटा है। समझ में आया ? आहाहा! जो परमात्मा स्वयं, उसमें ढलना है, वह पर की अपेक्षा रखता नहीं। सवेरे यह आया था। १३६ गाथा बहुत अच्छी थी। मुम्बई में परसों वह

चली थी। तीन से चार। बहुत लोग वहाँ। मार्ग यह है, भाई!

निज परमात्मा अपना परमात्मा, उसकी प्रतीति अथवा ऐसे निज परमात्मा के आनन्द के आनन्दअमृत को पीने का अभिलाषी। आहाहा! जिसे अभिप्राय में राग और पर्याय की दृष्टि छूट गयी है, इससे त्रिकाली अमृत का अनुभव करने का कामी। आहाहा! वह जीव इस सम्यग्दर्शन को इस प्रकार से प्राप्त करता है और तब वह आत्मा के अनुभव का आनन्द का स्वाद लेता है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार पक्षवालों को बहुत कठोर लगे, हों! पण्डितजी! आहाहा! बापू! तू तो स्वयंसिद्ध वस्तु है तो उसकी शक्तियाँ भी स्वयंसिद्ध है तो उसकी पर्याय भी स्वयंसिद्ध है। पर की अपेक्षा रखती नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का ध्रुवपना स्वयंसिद्ध है। किसी के कारण से है? तो उसके गुण भी स्वयंसिद्ध है। तो उसकी पर्याय भी स्वयंसिद्ध है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **छिन छिन करै सत्यकौ साकौ।** सत्स्वरूप का ही जहाँ अकेला आश्रय है और उसकी जो यह वृद्धि है। कहो, समझ में आया?

आहाहा! सत्य के बढ़ावे, ऐसा। दुनिया नहीं कहती? भाई, धन कमावे तो ढ़ेर हो और शरीर कमावे तो पेट भरे। ऐसी बातें करते हैं न! शरीर से कुछ क्रिया करे वह... क्रिया क्या, यह कमावे तो कितना इकट्ठा (हो)? पेट भरे। परन्तु पैसे का ढ़ेर तो धन कमावे तो ढ़ेर हो। करोड़, दो करोड़ होने के पश्चात् बढ़ते ही जायें। ऐसे यह धन कमावे तो ढ़ेर (हो)। आत्मा जो लक्ष्मी, उसका जहाँ अन्तर में स्वसन्मुख होकर स्वीकार किया। यही आत्मा, मैं परमात्मा हूँ। तो उसे उस धन की ही वृद्धि अर्थात् लक्ष्मी की वृद्धि होती है। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह तो अभी बैठना (कठिन)। यह तो कहे, यह तो व्यवहार का नाश हो जाता है। ऐसा लोग कहते हैं। अरे, भगवान! यहाँ तो एक समय की पर्याय की प्रतीति करता है, उसका नाश करे तो द्रव्य की प्रतीति हो। आहाहा! गजब बात है। वस्तु ही ऐसी है वहाँ।

एक समय की अवस्था अर्थात् क्या? त्रिकाल भगवान आत्मा में तो उस परिणाम का भी अभाव है। समझ में आया? जिसमें जिस परिणाम का अभाव, उसकी प्रतीति करने से द्रव्य की प्रतीति होगी? समझ में आया? देखो, यह धनतेरस है यह। यह धन का पूजना। आत्मा आनन्दमूर्ति पूर्णानन्द का अन्तर स्वीकार, वह धन का पूजना, आत्मा

का पूजना है। समझ में आया? यह तो पैसे के लिये पूजे, पैसा बढ़े। हैरान बढ़े, हैरानता बढ़े। आहाहा! यह तो सत्यस्वरूप ही बढ़ जाये, ऐसा कहते हैं। धन के ढ़ेर होते हैं। आहाहा! यह समकित का स्वरूप है। समकित का यह स्वरूप है। दूसरे प्रकार से कोई स्वरूप कहे तो वह तत्त्व से अत्यन्त विरुद्ध है। आहाहा!

(२) समकित की उत्पत्ति। पहले समकित का स्वरूप कहा। अब उत्पन्न कैसे होता है?

★ ★ ★

काव्य - २८

(२) सम्यक्त्व की उत्पत्ति (दोहा)

कै तौ सहज सुभाउकै, उपदेसै गुरु कोइ।
चहुंगति सैनी जीउकौ, सम्यकदरसन होइ।।२८।।

अर्थः–चतुर्गति में सैनी जीव को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सो अपने आप अर्थात् निसर्गज और गुरु के उपदेश से अर्थात् अधिगमज होता है।।२८।।

काव्य-२८ पर प्रवचन

कै तौ सहज सुभाउकै, उपदेसै गुरु कोइ।
चहुंगति सैनी जीउकौ, सम्यकदरसन होइ॥२८॥

चहुंगति सैनी जीउकौ,—चार गति में मनवाले जीव को समकित होता है। मनरहित प्राणी को समकित नहीं होता। एक बात। **सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, अपने आप अर्थात् निसर्गज**—सहज स्वभाव से उत्पन्न अन्दर से होता है। अन्तर की दृष्टि करने से जिसमें गुरु का निमित्त भी (न हो)। पहले निमित्त हो, परन्तु पाने के समय गुरु का निमित्त नहीं, उसे यहाँ निसर्गज कहा जाता है। समझ में आया? **सो अपने आप**—निसर्गज। पूर्व में देशनालब्धि मिली हो, परन्तु उस अपेक्षा से यह नहीं होता, कहते हैं। उसे उस समय पाने के समय यह अपेक्षा नहीं होती। वह सीधा सहजानन्द प्रभु आत्मा,

ऐसा अनुभव होता है, उसे निसर्गज स्वाभाविक अन्दर हुआ समकित कहा जाता है। दूसरा भी है तो ऐसा, परन्तु **उपदेसै गुरु कोइ।** गुरु का उपदेश वहाँ तात्कालिक था कि अखण्ड आनन्दकन्द तू है। ऐसा उपदेश था। उसका उसने लक्ष्य किया और वह लक्ष्य छोड़कर आत्मा की दृष्टि की, तब वह निमित्त था, (ऐसा) उसे कहा जाता है। अरे, अरे गजब! समझ में आया?

गुरु के उपदेश से अर्थात् अधिगमज होता है,... ऐसा। तात्कालिक उपदेश मिला और एकाध भव या दो भव में उस उपदेश के निमित्त में उसका लक्ष्य छोड़कर तत्काल स्वभाव का आश्रय करके स्वाभाविक अन्दर प्रगट हुआ, परन्तु उसके निमित्त को गिनने में आया, उसे गुरु के उपदेश से (हुआ), ऐसा कहा जाता है। वह निमित्त का कथन है। उन दोनों में स्वाभाविक होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न क्या? भाषा कही, सुनी नहीं? अखण्ड शुद्ध चैतन्य है, ऐसा कहा इन्होंने। परन्तु वह लक्ष्य है, वह भी साधन नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु निमित्त था, उसका लक्ष्य छोड़कर यह आत्मा की दृष्टि की, उसे यह निमित्त से हुआ, ऐसा कहा जाता है। ऐसी बात तो अन्दर आ जाती है एक की एक.... कहो, जेठाभाई! श्वेताम्बर की भाँति नहीं। अरिहन्त महादेवो .... सदहि समकित। वस्तु के स्वरूप में ऐसा नहीं।

(पाँचवें) अध्याय में रखा है। पाँचवें अध्याय में। मोक्षमार्गप्रकाशक में पाँचवाँ अध्याय है, उसमें यह रखा है। श्वेताम्बर लोग ऐसा माने समकित, ऐसा है नहीं। यह अत्यन्त विरुद्ध है, तत्त्वदृष्टि में उसका विरोध है। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन बात! कठिन अर्थात् दुर्लभ बात। दुर्लभ अर्थात् अशक्य नहीं परन्तु दुर्लभ तो सही यह।

मुमुक्षु : उग्र पुरुषार्थ साध्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : उग्र पुरुषार्थ साध्य, हाँ,.... समझ में आया?

उसे अधिगमज कहते हैं। दो बात। एक निसर्गज—यह स्वयं से सीधा हुआ। गुरु उपदेश तो था। परन्तु उसे अन्तर पड़ गया और फिर सीधा हुआ। और सीधा उपदेश था और वहीं का वहीं स्वयं लक्ष्य छोड़कर स्वयं ने किया, तब उसे अधिगमज कहा जाता

है। कहो, समझ में आया? आहाहा! बहुत अधिकार तो अच्छा है यह। अब,

(३) समकित के चिह्न। लो, समकित का स्वरूप कहा। समकित की उत्पत्ति कही। समकित का चिह्न—निशान। समकित के निशान—लक्षण क्या? उसके चिह्न क्या?

★ ★ ★

काव्य - २९

(३) सम्यक्त्व के चिह्न (दोहा)

आपा परिचै निज विषै, उपजै नहिं संदेह।
सहज प्रपंच रहित दसा, समकित लच्छन एह।।२९।।

अर्थः–अपने में ही आत्मस्वरूप का परिचय पाता है, कभी सन्देह नहीं उपजता और छल–कपटरहित वैराग्यभाव रहता है, यही सम्यग्दर्शन का चिह्न है।।२९।।

काव्य-२९ पर प्रवचन

आपा परिचै निज विषै, उपजै नहिं संदेह।
सहज प्रपंच रहित दसा, समकित लच्छन एह॥२९॥

चिह्न कहो या लक्षण कहो। ऊपर चिह्न कहा, नीचे लक्षण कहा। आहाहा! यह मुद्दे की रकम की यह बात है। बाकी सब बातें बहुत हों। आहाहा! जानने के प्रकार तो बहुत होते हैं, परन्तु वह मूल चीज़ यह है। **आपा परिचै निज विषै,** अपने में ही आत्मस्वरूप का परिचय पावे। वह उसका लक्षण। अपने में आत्मस्वरूप का परिचय पावे। श्रुत—परिचित, आता है न, अपना स्वरूप अनाकुल शान्ति, अनाकुल आनन्द, अनाकुल प्रभुता, उसका जिसे अन्दर में परिचय हो, लो, यह उसका लक्षण है। अपने में ही—अपने में आत्मस्वरूप का परिचय पावे। उसमें कभी सन्देह नहीं। सन्देह उसमें उपजता नहीं। यह वह समकित ऐसा होगा? और इस प्रकार से उपजा होगा, वह सच्चा होगा? यह सन्देह उसे होता नहीं तीन काल–तीन लोक में भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य का अनुभव करके जो प्रतीति हुई, उसमें दूसरा सन्देह होता नहीं।

मुमुक्षु : आगे नियतिवाद था....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात हो गयी पहले दोनों।

उपजै नहिं संदेह। कहो, समझ में आया? सन्देह उपजता नहीं। निःसन्देह, निःशंक भगवान आनन्दस्वरूप है, ऐसा अनुभव होने पर निःशंकता अनुभव के कारण निःशंकता बढ़ती है। निःशंकता रहती है, ऐसा। समझ में आया? **सहज प्रपंच रहित दसा।** वह विरागता की बात की है। वह अस्ति की बात की। स्वाभाविक प्रपंचरहित दशा। स्वाभाविक छलकपट रहित अर्थात् वैराग्यभाव। यह नास्ति से बात की। सम्यग्दर्शन में सहजरूप से पुण्य-पाप के राग से रहित वैराग्यभाव होता है। समझ में आया? स्वाभाविक प्रपंच रहित—माया और कपट से, यह नहीं। सहज चैतन्य के पूर्णभाव को अस्तिरूप से उसके अनुभव की निःसन्देह प्रतीति हुई, वहाँ पर से तो उसे उदासीनता—वैराग्य का परिणमन (होता है)। पर शब्द से पुण्य और पाप, उनसे रहित दशा **समकित लच्छन एह,** लो। यह समकित का यह लक्षण। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद् में आता है न कि समकित का, नहीं? देव-गुरु। 'स्वच्छंद मत आग्रह तजि, वर्ते सद्गुरु लक्ष। समकित उसको ही कहा कारण गिन (प्रत्यक्ष)।' परन्तु वह व्यवहार है। निश्चय की बात नहीं। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन को पाने की यह पद्धति नहीं। यह तो कारण गिनकर निमित्त से व्यवहार समकित की बात (कही)। स्व के लक्ष्य से प्राप्त करे तो उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? अपना आत्मा ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन करे, उसे ऐसे गुरु आदि की श्रद्धा का निमित्त कहा जाता है। और कारण गिन प्रत्यक्ष, है न? प्रत्यक्ष परमात्मा ही प्रत्यक्ष गुरु है, इसलिए उसे निमित्तरूप से, स्व का आश्रय लेकर हो, उसे निमित्तरूप से कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? .... गजब! बात-बात में अन्तर। 'आनन्द कहे परमानन्दा, माणसे माणसे फेर। एक लाखे तो न मळे ने एक त्रांबियाना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि मुझे और तेरे स्वच्छन्द की दृष्टि को बात-बात में अन्तर है। आहाहा! स्वतन्त्रता की दृष्टिवाले को स्वच्छन्द की दृष्टि का विरोध होता है। स्वच्छन्द दृष्टिवाले (को) स्वतन्त्रदृष्टि (का) विरोध होता है कि यह नहीं। समझ में आया? आहाहा!

सवेरे आया था न सवेरे, नहीं ? भेदकल्पना निरपेक्ष निरुपचार निरुपराग मोक्षमार्ग में आत्मा को स्थापित करे। आहाहा! जिसका अन्तर मार्ग (में) जिसे बाहर की व्यवहार समकित की भी अपेक्षा नहीं। कहो, भीखाभाई! कठिन काम, हों परन्तु यह। आहाहा! अपने निज परमात्मा के परिचय में आना। यह कहते हैं न, सत्संग के परिचय में आत्मा को समकित होता है। आहाहा! तब वह सत्संग है तो तू सत् नहीं ? समझ में आया ? तू सत् नहीं ? पर सत् है, वह तो व्यवहार सत् हुआ तेरे लिये तो। निश्चय सत् तो तू है। सत् है या असत् ? तो उसके परिचय से—संग से होता है। ऐसी बात है। अरेरे! सच्ची बात सुनने को मिलती नहीं और उल्टे रास्ते अनादि से दौड़ गया है।

मुमुक्षु : गुरु के नाम से।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके भान बिना। कहो, समझ में आया ?

आपा परिचै निज विषै, उपजै नहिं संदेह।
सहज प्रपंच रहित दसा, समकित लच्छन एह ॥२९॥

कठिन बात आयी है। मुद्दे की रकम की बात है यह। चौथा गुणस्थान किसे कहना, उसकी बात है। और कैसे उपजे, उसकी बात है। उसके लक्षण क्या, उसकी बात है। आहाहा! इससे वह दूसरी कौनसी बात अब इसे (मिले) ? चारित्र प्रगट करना, वह अनन्त पुरुषार्थ है। चारित्र प्रगट करना, वह समकित से अनन्त पुरुषार्थ है, परन्तु वह चारित्र भी पर्याय है। उसे पर्याय पर दृष्टि रखकर चारित्र प्रगट हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो द्रव्य के पूर्ण आश्रय से बहुत आश्रय लेना, उसे चारित्र होता है। समझ में आया ? श्रद्धा जितना आश्रय लेना, उसका नाम समकित और चारित्र के लिये अनन्त उग्र पुरुषार्थ द्रव्य का आश्रय लेना, तब उसे चारित्र होता है। वह चारित्र कोई बाहर की क्रिया या महाव्रत के परिणाम, वे कोई चारित्र नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया ? वह तो वैराग्यदशा पुण्य और पाप से सहजरूप से वर्ते, उसे यह राग मैं नहीं, ऐसा कुछ करना नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं। **सहज प्रपंच रहित दसा,...** ऐसा। स्वाभाविक पुण्य और पाप से विरक्तिरूपी वैराग्यता सहजरूप से होता है। उसे क्षण-क्षण में भेद नहीं करना पड़ता कि यह राग मैं नहीं और व्यवहार मैं नहीं। वह तो यह दशा ही ऐसी सहज हो जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

(४) सम्यग्दर्शन के आठ गुण। पर्याय में निर्मलता के प्रकार। गुण अर्थात् पर्याय है। पर्याय में निर्मलता के प्रकार।

★ ★ ★

काव्य - ३०

(४) सम्यग्दर्शन के आठ गुण (दोहा)

करुना वच्छल सुजनता, आतम निंदा पाठ।
समता भगति विरागता, धरमराग गुन आठ।।३०।।

अर्थः–करुणा, मैत्री, सज्जनता, स्वलघुता, समता, श्रद्धा, उदासीनता और धर्मानुराग, ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं।।३०।।

काव्य-३० पर प्रवचन

करुना वच्छल सुजनता, आतम निंदा पाठ।
समता भगति विरागता, धरमराग गुन आठ॥३०॥

उसे करुणा होती है। पर के प्रति अनुकम्पाभाव अर्थात् रागरहित जिसकी दशा होती है। समझ में आया? किसी के प्रति मारने का भाव नहीं होता परन्तु किसी को जिलाने का भाव भी उसे नहीं होता। ऐसी अन्दर में सबके ऊपर करुणा वर्तती है, वह समकित का लक्षण। वह समकित की पर्याय है। आहाहा! क्योंकि वहाँ अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का नाश है, इतनी करुणा तो उसे प्रगट हुई है। सिद्ध को, केवली को अनन्त करुणा कही है। वह कौनसी करुणा? वह परजीव की दया पालने की? जिनसेनस्वामी ने तो कहा था, भगवान को—केवली को अनन्त करुणा है। करुणा का अर्थ—सब जीवों के प्रति ज्ञेयभाव में परज्ञेयरूप से जानते हैं।

मुमुक्षु : इसका नाम करुणा?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम करुणा।

मुमुक्षु : अलौकिक करुणा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक!

'करुणा हम पावत है तुमकी यह बात रही सुगुरुगमकी।' श्रीमद् में आता है न! यह करुणा, भगवान की करुणा यहाँ होती होगी? परन्तु हमारी परिणति की पर्याय का आपको ज्ञान वर्तता है, वही हमारे ऊपर करुणा, प्रभु आपकी है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? केवली को विकल्प की करुणा होती है? परदया की?

मुमुक्षु : जी नहीं। वीतरागी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वीतरागी करुणा का अर्थ यह कि हमारी पर्याय जो प्रगट हुई, उसका ज्ञान तो उस समय में आपको वर्तता है। उस समय का ज्ञान वर्तता है कि इसे यह पर्याय है। वह आपकी करुणा है। जयन्तीभाई! ऐसा अर्थ है। अर्थ में बड़ा अन्तर है। अज्ञानी के अर्थ और ज्ञानी के अर्थ में बड़ा अन्तर है। पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। लगे वह अच्छा, हों! बाहर का यह हो तो यह होगा। आहाहा! श्रीमद् लिखते हैं न एक, 'ज्ञानी पुरुषों की कृपा दृष्टि वह समकित है।' देखो, ऐसा आवे। इसका अर्थ क्या? समझ में आया? जिसे आत्मा का दर्शन समकित हुआ, उसे ज्ञानी के ज्ञान में ज्ञात होता है कि इस प्रमाण है। वह उसकी कृपा। समझ में आया?

अरे, केवली की कृपा हो? करुणा—विकल्प। यहाँ तो कहते हैं कि करुणा होती है। केवली को समकित में भी करुणा होती है, ऐसा आया या नहीं? केवली को समकित है या नहीं?

मुमुक्षु : है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो उसे यह करुणा है या नहीं? वीतरागी करुणा। भाई! आहाहा! इस जीव की करुणा करूँ, कृपा करूँ, यह तो सब विकल्प है। यह करुणा समकित में होती नहीं। ज्ञान, उसे ज्ञान वर्तता है। स्व-पर का विवेक होकर स्व का ज्ञान स्व में वर्तता है। पर की प्रतीति वह नहीं। स्व की प्रतीति में पर की प्रतीति इकट्ठी आ जाती है। समझ में आया? आहाहा! बात तो ऐसी है। क्योंकि ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक अपना अपने से है। उसमें पर की प्रतीति नहीं आयी। परसम्बन्धी का जो

अपना ज्ञान और स्व का ज्ञान, उसकी प्रतीति है। समझ में आया? आहाहा! उसे यहाँ करुणा कहते हैं, देखो!

एक ओर भगवान ऐसा कहे कि परजीव की करुणा के विकल्प को धर्म माने, (वह) मूढ़—अज्ञानी है। समझ में आया? क्योंकि पर की करुणा कर सकता नहीं। वह तो उसकी पर्याय के काल में पर्याय रहे, उसकी पर्याय छूटने के काल में छूटे। दूसरा उसकी दया पालन कर सके, ऐसा है नहीं। यह है, ऐसे जो तत्त्व, उसे उस प्रकार से अपने स्व की श्रद्धा में (पर की) श्रद्धा आ गयी, उसे यहाँ करुणा कहा जाता है। नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा। आहाहा! वे-वे तत्त्व उस-उस पर्याय से परिणमित ऐसा है, ऐसे स्व के अनुभव की प्रतीति में वह अपनी प्रतीति उसमें वह है। पर के कारण से, पर में नहीं। समझ में आया? आहाहा! अब उसमें भी आत्मा आया सामने। समझ में आया? वह नहीं, ऐसा मानना तो मिथ्या नास्ति है। अकरुणा है, वह तो अकरुणा है। परन्तु है आत्मा। अहो! अनन्त गुण के धनी। पर्याय में भूलवाले अभी हैं और भूल टलकर रहे हुए—यह सब है। उसका 'है' रूप का अपने स्वभाव का ज्ञान होने पर उस ज्ञान में पर की प्रतीति नहीं, परसम्बन्धी अपने ज्ञान में प्रतीति, उसे यहाँ करुणा कहा जाता है। गजब व्याख्या! समझ में आया? यह तो सब समकित की व्याख्या है। आहाहा!

मुमुक्षु : बड़ी जोरदार बात!

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी जोरदार बार, लो!

मुमुक्षु : ज्ञाता—ज्ञान और ज्ञेय, स्वयं ज्ञान, स्वयं ज्ञाता और स्वयं आप ज्ञेय।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ही है। आहाहा! लो! कपड़ेवाले कहते हैं न कापड़ी, गजब है। सूरतवाले मूलचन्द। ऐसी बात करे तो 'गजब है', ऐसा कहे। गजब! यह गजब है बापू अन्दर। आहाहा! पर आत्मायें उस-उस पर्याय से परिणमित हैं, ऐसा जो स्व की प्रतीति के ज्ञान में उस जाति के ज्ञान की अपनी परिणति की प्रतीति वर्ते, उसे यहाँ पर की करुणा कहा जाता है। उसका स्वीकार है। समझ में आया? कहो, बल्लूभाई! ऐसा है यह। अरे, अरे गजब!

वच्छल—मैत्री, प्रेम। अपने अनन्त गुण के प्रति जिसे प्रेम वर्तता है, वह समकित

की पर्याय है। अपने गुण का प्रेम वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? **सज्जनता**— सत्-जनता। सत् अपना स्वभाव, उसकी परिणति। सत् की परिणति, वह सज्जनता। समझ में आया? आहाहा! **आतमनिंदा** अर्थात् अर्थ—स्वलघुता किया। निचली दशा की बात करते हैं न चौथे की यहाँ। स्वलघुता। पर्याय में पूर्णता नहीं, ऐसा उसे विवेक वर्तता है, वह उसकी स्वलघुता है। प्रभुता होने पर भी, दृष्टि के विषय में पूर्ण प्रभुता कृतकृत्य प्रभुता, ऐसा होने पर भी पर्याय में लघुता है, ऐसा उसे भान है। समझ में आया? ऐसी उसे समकित की पर्याय गुणपर्याय होती है। आहाहा!

समता। समता होती है। उसे विषमता का भाव नहीं होता। समता का भाव है उसे। समता में व्याख्या ऐसी नहीं कि सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र और खोटे देव, खोटे गुरु, (खोटे) शास्त्र—सबको समान माने तो वह समता। यह समता की व्याख्या नहीं है। समझ में आया? समता में, ऐसा स्वरूप कुगुरु का-कुदेव का-कुशास्त्र का जैसा है, वैसा जाने, प्ररूपित करे, खोटे का निषेध करे तो उसका नाम समता है। ऐई! आता है न श्रीमद् में नहीं आता? 'आतमज्ञान समदर्शिता।' समदर्शी की व्याख्या श्रीमद् ने स्वयं की है। समदर्शी की व्याख्या ऐसी नहीं कि सच्चे और खोटे के आगम सबको समान मानना। वह तो विकलता—मूर्खता है। बड़ी पुस्तक में है।

मुमुक्षु : आपने बताया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बताया थाा न। निकाला था न। यह बहुत वर्ष हो गये। समदर्शिता और समता—जैसा है वैसा जाने, जैसा है, वैसा कहे, उल्टा (हो) उसे उत्थापे और सच्चा (हो) उसे स्थापित करे तो उसे समता या समदर्शिता कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

भगति का अर्थ—श्रद्धा किया, भाई। **भगति** है न अन्दर? वह आत्मा की भक्ति। सवेरे चलता है वह। जिसे आत्मा की भक्ति वर्तती है, वह उसका लक्ष्य पर्याय है। सवेरे आया था न आज, नहीं? निज परमात्मा की भक्ति, वह समकित है। वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? भक्ति का अधिकार चलता है न उसमें? निज परमात्मा का भजन—भजना। त्रिकाल आनन्दस्वरूप ध्रुव है, उसका भजन करना अर्थात् एकाग्रता होना, वह सच्ची भक्ति है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह औपचारिक व्यवहार, वह

पुण्यबन्ध का कारण है। वह मोक्ष के मार्ग में वह है नहीं। वह बन्ध का मार्ग बीच में आता है। पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक वह होता है। सवेरे स्पष्टीकरण आया था। निश्चयमोक्षमार्ग, वह स्व की भक्ति है। पर की भक्ति मोक्षमार्ग है ही नहीं, आहाहा! गजब बात है न! वीतरागमार्ग! सवेरे आया था। अपने परमात्मा की भक्ति अर्थात् अन्दर स्वरूप की सन्मुखता की एकाग्रता। उसकी श्रद्धा—विश्वास—प्रतीति—पूर्णानन्द का स्वीकार, ऐसी अन्दर श्रद्धा जोरदार श्रद्धा, वह समकित की पर्याय है, लो। समझ में आया? यहाँ स्वलघुता कहा। पश्चात् समता कही। भक्ति के पश्चात् श्रद्धा।

विरागता—उदासीनता। विकल्प से लेकर, पुण्य से लेकर सबके प्रति उदासभाव। वह मेरी चीज़ नहीं, मुझमें नहीं—ऐसा जो वैराग्यभाव, शुभ-अशुभराग के प्रति भी जहाँ वैराग्यता है। शुभपरिणाम भक्ति आदि के ठीक और अशुभ अठीक, यह वैराग्य नहीं। पूर्ण स्वभाव अपना पूर्णानन्द का स्वभाव, उसका भान और प्रतीति, उसमें ऐसे पुण्य-पाप के विकल्प से उदासीनता है, उसे यहाँ वैराग्य कहा जाता है। स्त्री-पुत्र छोड़कर बाबा हुए, इसलिए वैराग्य हुआ, ऐसा नहीं है। रागभाव के अभाव करने का जो भाव, उसे वैराग्य कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाकी सब वैरागी। आहाहा! यह आठ पर्यायें कही। समकित के आठ गुण।

(५) समकित के पाँच भूषण।

शोभा... शोभा। यह **चित प्रभावना।** ऐई! यह तो अब अपने ज्ञानस्वभाव की अन्दर वृद्धि—शुद्धि करना, वह प्रभावना, वह जैनधर्म। जैनधर्म अर्थात् वीतरागी परिणति अपनी, वह जैनधर्म। उसकी प्रभावना बढ़ाना, उसका नाम प्रभावना कहा जाता है। पाठ ऐसा लिया, देखो! ऐसा अर्थ में भी जैनधर्म की प्रभावना (कही है)। तो जैनधर्म अर्थात् वीतरागभाव। समझ में आया? सर्वत्र ही बहुत अन्तर है। यह प्रभावना। यह तो बाहर की रथयात्रा निकाले और अपवास करे और बड़ी प्रभावना हो गयी (ऐसा अज्ञानी मानते हैं)। ऐई! अभी यह बहुत पढ़ा। यह मुम्बई में अपवास के ढ़ेर चारों ओर। अपवास के, हों! उपवास के नहीं। बुरेवास के ढ़ेर। उपवास तो आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु पूर्णानन्द के समीप में एकाग्र होना और शुद्धि की वृद्धि हो, उसका नाम प्रभावना और धर्म कहा जाता है। फिर विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८४, आसोज कृष्ण १४, रविवार, दिनांक १७-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद ३१ से ३५

यह समयसार नाटक। चौदह गुणस्थान का वर्णन। चौथे गुणस्थान की व्याख्या चलती है। समकित के पाँच भूषण। यह आया है न! सम्यग्दर्शन के पाँच भूषण हैं, उसकी शोभा है। सम्यग्दर्शन तो आत्मा परिपूर्ण ध्रुव नित्य आनन्द ऐसा अन्तर में सन्मुख होकर भान होना, प्रतीति होना। ज्ञान में पूर्णस्वरूप ध्रुव को ज्ञान में लेकर निर्विकल्प प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। जो मुक्ति का कारण, दुःख से मुक्त होने का उपाय है। उसके पाँच भूषण।

★ ★ ★

काव्य - ३१

(५) सम्यक्त्व के पाँच भूषण (दोहा)

चित प्रभावना भावजुत, हेय उपादै वानि।
धीरज हरख प्रवीनता, भूषन पंच बखानि।।३१।।

अर्थः–जैनधर्म की प्रभावना करने का अभिप्राय, हेय–उपादेय का विवेक, धीरज, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का हर्ष और तत्त्व–विचार में चतुराई ये पाँच सम्यग्दर्शन के भूषण हैं।।३१।।

काव्य-३१ पर प्रवचन

चित प्रभावना—ज्ञान की प्रभावना। इसका अर्थ जैनधर्म की प्रभावना। अर्थात् ज्ञान ऐसा आत्मा, उसका जो स्वभाव शुद्ध जैनधर्म वीतरागभाव, उसकी प्रभावना में वृद्धि करना। चित्त... चित्त शब्द है न! ज्ञानस्वरूपी भगवान की पर्याय में ज्ञान की शुद्धि—वृद्धि करना, वह जैनधर्म की प्रभावना कही जाती है। बाहर की प्रभावना तो शुभ विकल्प हो, उसे व्यवहार से कहा जाता है, परन्तु वह वास्तविक प्रभावना यह है।

समझ में आया? अपना निजस्वरूप पूर्णानन्द और शान्ति से भरपूर पदार्थ पूर्ण है, उसकी अन्तर्मुख होकर, प्रतीति अनुभव सम्यक् का होकर, अनुभव होकर प्रतीति हो, उसमें चित्त की प्रभावना, वह विशेष शोभा का कारण है, ऐसा कहते हैं। अपने स्वभाव की प्रभावना कि जो स्वभाव पवित्रस्वभाव, उसकी प्रभावना। **चित प्रभावना भावजुत।** ऐसा अभिप्राय जिसका हो। बाहर की प्रभावना, वह तो व्यवहारनय की बात है। वह तो विकल्प है। इसलिए विकल्प वह कहीं जैनधर्म की प्रभावना नहीं। आत्मा आनन्द और ज्ञान का भरपूर तत्त्व, उसकी दृष्टि में विशेष शुद्धि होना, स्व के लक्ष्य की विशेष शुद्धि होना, उसका नाम जैन प्रभावना, जैनधर्म की प्रभावना कही जाती है। समझ में आया?

हेय उपादै वानि। हेय उपादेय का विवेक होता है, वह सम्यग्दर्शन की शोभा है। रागादि भाव, वे हेय हैं। वास्तव में तो एक समय की पर्याय भी परद्रव्यरूप से गिनकर हेय किया। आहाहा! समझ में आया? भगवान पूर्णानन्दस्वरूप अविनाशी ध्रुव अनादि-अनन्त ऐसा जो तत्त्व जो शुद्ध है, वह उपादेय है। बाकी तो पर्याय रागादि हेय है। ऐसा सम्यग्दृष्टि को विवेक होता है। समझ में आया? मार्ग तो अन्तर की बातें हैं यह सब। बाहर से कुछ पता लगे, ऐसा नहीं। अरे, वस्तु देखो न कितने! शरीर की निर्बलता हो, जीर्णता हो, कहीं झांव डाले तो कहीं.... दवा अच्छी करे तो मिटे। धूल भी नहीं मिटता कुछ। उसे शरणभूत तो भगवान अन्दर आत्मा है। शुद्ध प्रभु जहाँ नजर डालने से शान्ति मिले, वह खुद भगवान स्वयं है। उसे नजर में लेने से नजर के परिणाम जहाँ से उठते हैं, उस परिणामी के ऊपर नजर डालने से शान्ति मिले ऐसा है। आहाहा! ऐसा उसे हेय-उपादेय का विवेक होता है। नियमसार में यहाँ तक कहा ५०वीं गाथा में (कि) क्षायिक समकित, वह परद्रव्य, परभाव, हेय। समझ में आया?

एक भगवान आत्मा स्वद्रव्य वास्तव में त्रिकाली प्रभु वही एक उपादेय है। आहाहा! यह नौ तत्त्व की बात आवे, तब ऐसा कहा जात है (कि) संवर उपादेय है, निर्जरा हितकर है, आस्रव अहितकर है। पर्याय की उत्पत्ति की अपेक्षा से व्यवहारनय से बात है। परन्तु बात तो यह है। आहाहा! अरे, उसे किंचित् किसके कारण दुःख मिटे, किसकी शरण में? आश्रय, वह शरण, उसकी पकड़, उसका ग्रहण। वह आत्मा है, उसकी पकड़, उसका ग्रहण, उसका आश्रय, उसके पक्ष में चढ़ने से, ध्रुव भगवान

आत्मा के पक्ष में चढ़ने से जो शान्ति सम्यक्त्व होता है। वह पर्याय भी वास्तव में हेय होती है। गजब बात है न! और भगवान परमात्मा स्वयं, ओहोहो! जिस परिणाम से आत्मा प्राप्त हुआ, वह परिणाम भी हेय है, कहते हैं। आहाहा!

यह उसकी हेय-उपादेय की परकाष्ठा है। समझ में आया? भगवान आत्मा की शुद्ध भक्ति के परिणाम भी हेय हैं, कहते हैं। अहाहा! शुद्ध भक्ति, हों! पर्याय है न! शुद्ध भक्ति। त्रिकाली की अपेक्षा से शुद्ध भक्ति (हेय), शुद्ध भक्ति की अपेक्षा से व्यवहार के विकल्प की भक्ति हेय। आहाहा! और व्यवहार के विकल्प की भक्ति की अपेक्षा से सब परद्रव्य हेय। इसका मार्ग ऐसा है। परन्तु इसने कभी नजर नहीं की, सुना नहीं। सुनकर धीरज से.... जो वस्तु धीरज, कहेंगे आगे। समझ में आया? उसमें ही कहेंगे, देखो!

यही आया, देखो! **धीरज** है न? आहाहा! बराबर है। धीरज चाहिए वहाँ। आहाहा! एक बड़ा स्वयंभूरमण समुद्र, उसे उलेचने को सळी, सळी... सळी....

मुमुक्षु : तिनका।

पूज्य गुरुदेवश्री : तिनका पानी में डुबोकर बाहर निकाले, पानी में से ऐसे... वह खाली होने कितनी धीरज चाहिए? उतावला हो तो वह कहीं खाली नहीं होगा कहीं। आहाहा! समझ में आया? इतनी धीरज... धीरज.... धीरज। यह उसकी शोभा है, कहते हैं। उसका भूषण है, वह समकित का गहना है, वह समकित का शृंगार है। आहाहा! धूल को शृंगारे न हीरा के अलंकार से। आहाहा! उसे ऐसा लगा, ओहो मर जाये और हीरा... इसके ऊपर तो मेरी नजर नहीं गयी थी। यह चन्दुभाई कहते हैं कि उसमें है। क्या कहलाता है वह?

मुमुक्षु : चूड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : चूड़ी में हीरा थे। मेरी नजर वहाँ नहीं गयी थी। .... वह (चैतन्य) हीरा अन्दर है, उसकी खबर नहीं होती। यह हीरा की शोभा। आहाहा! कहते हैं कि धीरज चाहिए। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को धीरज होती है। उतावल से आम नहीं पकते। इतनी धीरज उसे चाहिए। आम बोकर यदि छह महीने-बारह महीने में आम खाना चाहे, मिलेंगे? उसका

काल चाहिए। इतनी धीरज... शान्ति... शान्ति। वह उसकी शोभा। आत्मा को माना, जाना, वह उसकी शोभा कितनी है! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे, गजब ऐसी बातें! यह कहीं बाहर की प्रभावना और शोभायात्रा रथ (यात्रा) करना, लो। अपवास हुए और सन्मान दिया। दीक्षा लेने के भाव। दीक्षा नहीं भिक्षा है। मिथ्यात्व के पोषक की दीक्षा है। आहाहा! उसकी—जीव की दया की बात है, हों!

मुमुक्षु : अनादिकाल से ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! तुझे उसमें शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति के धाम को नहीं पकड़े, तब तक शान्ति नहीं मिलेगी। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का हर्ष होता है, प्रमोद होता है। धर्मी को अपने सम्यग्दर्शन का प्रमोद-हर्ष होता है। क्योंकि आत्मा पूर्णानन्द प्रभु का भान होकर जो सम्यग्दर्शन में आनन्द आया, उसका हर्ष होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : हर्ष अर्थात् राग?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। हर्ष, वह खुशी-आनन्दपना। खुशीपूर्वक जो आनन्दपना होता है.....

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय आनन्द?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे अतीन्द्रिय आनन्द की प्रसन्नता होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे शरीर में रोम-रोम में सातवें नरक की वेदना वेदता हो। रोम-रोम में जैसे लोहे के गर्म धगधगते सोनी कूटे, उसकी पीड़ा की अपेक्षा भी अनन्तगुनी पीड़ा है। परन्तु वह पीड़ा आकुलता अनन्त आनन्द का अनादर करके उत्पन्न होती है। समझ में आया? कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का हर्ष होता है।

और, **प्रवीनता,** है न। **तत्त्व-विचार में चतुराई।** धर्मी को तत्त्व का विचार करने में चतुराई होती है। त्रिकाली वस्तु, एक समय की पर्याय, राग आदि, उसकी उसे चतुराई होती है। धर्मी को आत्मा का भान होने पर, जैसे यह मकान और पैसा भिन्न भासित होता है, ऐसी ज्ञान की चतुराई में राग भिन्न भासित होता है। समझ में आया? आहाहा! अपने आनन्द के साथ जिसका मेल नहीं, वह भिन्न भासे अन्दर। आहाहा!

ऐसा समकित और यह उसका स्वाद! यह तो जैन में जन्मे, (इसलिए) सब समकिती हैं, जाओ। अरे, प्रभु! ठगाने के रास्ते हैं, भाई! तुझे तेरा ठगाने का रास्ता न हो। आहाहा! **भूषन पंच बखानि।** यह पाँच प्रकार भूषण, कहो। सम्यग्दर्शन के भूषण हैं, लो। अब, सम्यग्दर्शन में पच्चीस दोष वर्जित होते हैं। सम्यग्दर्शन में पच्चीस दोष वर्जित सम्यग्दर्शन होता है।

★ ★ ★

काव्य - ३२

(६) सम्यग्दर्शन पच्चीस दोष वर्जित होता है (दोहा)

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष।
तीन मूढ़ता संजुगत, दोष पचीसौं एष।।३२।।

अर्थः–आठ मद, आठ मल, छह अनायतन और तीन मूढ़ता ये सब मिलाकर पच्चीस दोष हैं।।३२।।

काव्य-३२ पर प्रवचन

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष।
तीन मूढ़ता संजुगत, दोष पचीसौं एष॥३२॥

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन.... अर्थात् छह स्थान सामायिक के। **विशेष** अर्थात् अनायतन। **तीन मूढ़ता ये सब मिलाकर पच्चीस दोष हैं।** आठ मद। उसका प्रत्येक का स्पष्टीकरण करेंगे। आठ मल आगे आयेंगे। छह अनायतन—कुदेव, कुगुरु आदि। **तीन मूढ़ता—**लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता आदि। **ये सब मिलाकर पच्चीस दोष हैं।** समकित के दोष है ये। समकिती को ये पच्चीस दोष नहीं होते। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ३३

आठ महामद के नाम (दोहा)

जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार।
इनकौ गरब जु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार।।३३।।

अर्थः–जाति, धन, कुल, रूप, तप, बल, विद्या और अधिकार इनका गर्व करना यह आठ प्रकार का महामद है।।३३।।

काव्य-३३ पर प्रवचन

आठ महामद के नाम—

यह जाति का मद। राज की माता, रानी हो। राजमाता। समझ में आता है कि राजा की बहिन हो। उसका गर्व, वह तो दोष है। आहाहा! माँ कैसी, उसका पुत्र कैसा? उसका अभिमान समकित में दोष है। समकिती को होता (नहीं)। मैं जहाँ ज्ञायक चिदानन्द अधिक पर्याय से अधिक अर्थात् भिन्न, राग से अधिक अर्थात् भिन्न। ऐसे माता के पक्ष में शरीर आदि, उसका कैसा गर्व करना? हमारी माता ऐसे उत्तमकुल की, उसका मद ज्ञानी को होता नहीं। धनमद। लक्ष्मी का मद। दो-पाँच करोड़ पैसे इकट्ठे हुए, फूला-फाले नहीं। चले ऐसे मानो ऐसे हाथ चौड़े लेकर चले ऐसे। वह मद अज्ञानी के अज्ञान को सूचित करता है। पर की लक्ष्मी जड़ है। चक्रवर्ती का राज हो तो भी वह पर है। धर्मी उसे वह अपना मानता नहीं। स्वयं राजवी। आहाहा! उसे धन का लाभ न हो, धन का मद न हो। लाभ है न 'लाभ' शब्द (पद में)। लाभ का अर्थ धन किया। लक्ष्मी मिले जहाँ दो-पाँच करोड़, ५० हजार-लाख की आमदनी महीने में। आहाहा! थैलियों की थैलियाँ आती हों ऐसे। .... हमको यहाँ लाभ है। कहाँ से लाभ... ? वह तो जड़ में है। समझ में आया? उसे लाभ से जो सामग्री मिले, उस सामग्री का गर्व, वह तो सब मिथ्यात्व के चिह्न हैं।

कुल। पिता का कुल। हम उत्तमकुल के। दस-दस पेढी में कहीं कलंक लगा

नहीं। उनके हम पुत्र हैं। अरे, पुत्र कैसा? आत्मा किसका पुत्र? आहाहा! आत्मा की निर्मल पर्याय, वह आत्मा की प्रजा, उसका वह बाप। यह भी अभी व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! गजब बात है न! एक समय की पर्याय का वह स्वामी और द्रव्य का स्वामी नहीं। समझ में आया? उसमें और कुल का मद क्या? हमारे पिता ऐसे थे, ऐसे थे। आहाहा! कथा में बात आती है। सब अभिमानी इकट्ठे हुए। एक कहे, मेरे पिता ने तो पापड़ मुट्ठी मारकर चूरा किया है। दूसरा कहे कि मेरे पिता ने तो मक्खी को हाथ में पकड़कर मसल दिया है। समझ में आया? आहाहा! यह सब अभिमानियों की कथा। सब अभिमानी इकट्ठे हुए, वे एक के बाद एक ऐसी बातें करने लगे। समझ में आया? मेरे पिता ने ताो पानी के कलश के कलश भरकर जगत को पिलाया था। प्याऊ बनवाई। आहाहा! अरेरे भाई! उसमें क्या करता है तू यह? समझ में आया? कहते हैं कि यह कुल का मद, यह समकिती को दूषण है।

रूप मद। शरीर की सुन्दरता। कोमलता, वह तो जड़ की है। आहाहा! वह परमाणु का परमाणु में उसका परिणमन जड़ का है। उसके रूप का मद करना। आहाहा! हम रूपवान हैं। हमारे सब अवयव कोमल शोभित हैं। अरे, अब हमारे अर्थात् क्या? रूप कहाँ तेरा था? वह तो जगत के रजकण, उसके परिणमन के काल में परिणमकर खड़े हैं। वे तेरे कारण से और तुझमें वे नहीं आये। मेरी आँखें ऐसी। और साठ-साठ वर्ष तक सोंठ भी चुपड़ी नहीं। कभी रोग आया नहीं। कहते हैं न बहुत से? आहाहा! सोंठ चुपड़ी नहीं साठ वर्ष में। उसे परन्तु किसे? जड़ को। उसमें तुझे क्या है? समझ में आया? आहाहा! उसका मद—अभिमान ज्ञानी को होता नहीं।

तप, तप। हम इतने तप करते हैं। छह-छह महीने के अपवास। महीने के अपवास, लो। हरिभद्र ने कहा न, उनके समय में बड़ी तपस्वी बाई थी। हरिभद्र न? वही न? अकबर के समय में कौन थे? वीरविजय। वीरविजय। वीरविजय के समय में एक बाई ने छह महीने के अपवास किये। जवान बाई। दिल्ली में वहाँ उसकी शोभायात्रा निकली थी। ओहोहो! यह बाई छह महीने तक आहार नहीं। यह लोग (मुसलमान) रोजा करे न, एक रोजा में मुश्किल पड़ जाये। सवेरे न खाये और रात्रि में खाये। छह महीने तक? तेरे गुरु कैसे। बुलाओ, अगवानी करके बुलाया वहाँ। आते हैं न वीरविजय।

अब उसमें क्या हुआ? भाई! आहाहा! यह हमने तप किये और हमको हमारे गुरु ने ऐसे तप कराये। उसकी शोभा में... कल उसका एक दृष्टान्त था। वह वस्तु एक, उसका अभिमान क्या? समझ में आया? तप का अभिमान। हम आजीवन रस नहीं खाते। गन्ने का रस नहीं, आम के रस का हमारे त्याग है, दही-दूध का त्याग है। ऐसे तप का अभिमान, वह समकित का दूषण है। वास्तव में तो उसका अभिमान मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द में झूलते हुए उग्र शोभा जो आत्मा की पर्याय में वीतरागीदशा हो, उसे तप कहते हैं। उस तप का अभिमान ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा!

बल मद। शरीर का बल हो। ... बल तो देह का बल परमाणु का है। उसका अभिमान है। वह धर्मी को शरीर के बल का, वाणी के बल का (मद नहीं होता)। हम एक आवाज से दो-दो घण्टे तक भाषण करते हैं, परन्तु हम थकते नहीं। उसका अभिमान। अरे, भगवान! भाई! वाणी जड़ है न! कण्ठ है, वह कहाँ तेरा और वाणी भी कहाँ तेरी? आहाहा! समझ में आया? पाँच-पाँच लाख लोगों को ऐसे भींगों दें, ऐसा हमारे में बल है। भगवान! यह बात, वह तेरा नहीं, हों! बल तो उसे कहते हैं बलवन्त भगवान, उसके बल को परीक्षा करके जो आत्मा में शान्ति प्रगट हो, उसे बल कहते हैं। बलवन्त का बलवान होकर त्रिकाल लोक प्रभु आत्मा, ऐसे बलवन्त के साथ एकाग्र होकर जो बल प्रगट हो, वह बल है धर्मी का तो। समझ में आया? जिस बल द्वारा अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान ले, वह बल। जड़ का बल क्या? वाणी का बल तो मिट्टी-जड़ है। यह बात बहुत सूक्ष्म है। समझ में आया?

इस प्रकार धर्मी, ऐसा कि सामायिक करके धर्मी हो जाये, प्रौषध करके धर्मी हो जाये, शास्त्र की कुछ समझ हुई, इसलिए धर्मी हो जाये। बापू! धर्मी का लक्षण सूक्ष्म है, भाई! समझ में आया? जिस धर्म के कारण से जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसे धर्म की दशा का भी जहाँ गर्व नहीं, तो उसे बल का गर्व किसका है वह? समझ में आया? आहाहा! अपनी धर्म की परिणति थोड़ी देखकर पूर्ण परिणति के समक्ष जिसे पामरता लगती है। समझ में आया? क्या कहा यह? आता है न स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा में। धर्मी तो अपने को पर्याय में तुच्छ मानता है, हों! ऐसे तो प्रभु है। परिणति थोड़ी अल्प-हीन

देखकर पूर्ण केवलज्ञान की परिणति के समक्ष अपने को पामर मानता है। आहाहा! कहाँ केवलज्ञान, कहाँ अनन्त आनन्द! उसे अनन्तवें भाग में यह दशा प्रगट हुई, उसका गर्व क्या? समझ में आया? सर्वज्ञ के साथ जहाँ अपनी परिणति को मिलावे, आहाहा! समझ में आया? उसे कायबल का मद नहीं होता।

विद्या मद नहीं होता, लो। कुछ शास्त्र का पढ़ा। ग्यारह अंग—नौ पूर्व पढ़ा। आहाहा! एक-एक शास्त्र के हजार-हजार पद। एक-एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। वे सब कण्ठस्थ किये, याद किये, धारण किये। वह सब अज्ञान है वह तो। समझ में आया? चैतन्य के स्व के उपयोग बिना का उपयोग, वह तो अचेतन है। आहाहा! समझ में आया? उसे ऐसी विद्या का अभिमान नहीं होता। आहाहा! विद्यमान टिकता तत्त्व त्रिकाल, उसके आश्रय से हुआ जो ज्ञान, वह ज्ञान भी पूर्ण केवल (ज्ञान) की अपेक्षा से पामर, तो पर के पठन का अभिमान क्या? आहाहा! समझ में आया? ...यह तो परउपयोग है। क्या कहा? परउपयोग है। परउपयोग है। वह अचेतन उपयोग है। आहाहा! शास्त्र के पठन का उपयोग परद्रव्य के लक्ष्य से अचेतन है। जिसमें ज्ञान के साथ शान्ति न आवे, अतीन्द्रिय सुख न आवे, वह ज्ञान ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी! आहाहा!

विद्या और ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द आवे। यह अकेली विद्या का अभिमान समकित का दूषण—मिथ्यात्व का लक्षण है। समझ में आया? समकित का दूषण और मिथ्यात्व का लक्षण। आहाहा! जिसे शास्त्रज्ञान विशेष न हो और आत्मज्ञानी धर्मात्मा हो, वह अपने विशेष ज्ञान के बल से उसकी (शास्त्रज्ञान की) गिनती नहीं गिनता। क्योंकि उसका अभिमान है (अज्ञानी को)। समझ में आया? आहाहा! जहाँ भगवान आत्मा अपनी पर्याय में द्रव्य को स्पर्शकर जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अमूल्य ज्ञान है। उसकी कीमत क्या? जिसका मूल्य आँकना, वह भी उसका मूल्य हो जाता है, कौन आँके? आहाहा! उसकी कीमत के समक्ष यह बाहर की विद्या की कीमत आँकने जाये, अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? वकील का पठन, डॉक्टर का पठन....

मुमुक्षु : शास्त्र का पठन।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र की तो पहली बात की। अब यह तो बाद में रहे। आहाहा! ऐसा मार्ग है। हिम्मतभाई! आहाहा! या हमने कुछ जाना है यह लोग माने, जाने, दिखाव हो तो कुछ ठीक कहलाये। यह सब अभिमानी हो गये। समझ में आया?

भाई ने दृष्टान्त दिया है न, निहालभाई ने दृष्टान्त दिया है। जंगल का फूल या बाग का फूल, कोई सूँघे तो ही उसकी कीमत है? और न सूँघे तो उसकी कीमत चली जाती है? दृष्टान्त दिया है न उसमें। दिया है। इस ओर है कहीं। ऐसे धर्मी को कोई जाने तो धर्मी की कीमत है? और न जाने तो उसकी—धर्मी की कीमत चली जाती है? कोई पहिचानते नहीं, ऐसा (शल्य) रह जाता है अन्दर?

मुमुक्षु : नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? अनन्त सिद्ध हो गये, किसे (नाम) आते हैं? पहिचानते हो तुम? असंख्य समकिती पड़े हैं बाहर पशु में, पहिचानते हो किसी को? बाहर आये हैं, कोई बाहर पड़े हैं (प्रसिद्ध है)? आहाहा! समझ में आया?

जिसे अन्तरलक्ष्मी भगवान आत्मा की जहाँ प्राप्ति पर्याय में हुई, आत्मा प्राप्त हुआ, उसे ऐसी विद्या का अभिमान क्या हो? कहते हैं। आहाहा! हमको बोलना आया, हमको भाषण करना आता है और इससे हमारा ज्ञान अधिक कहलाता है। हमको याददाश्त इतनी कि पृष्ठ फेरकर तुरन्त कहें कि इस पन्ने में ऐसा है, इस पन्ने में इस लाइन में ऐसा है, इस पन्ने पर इस लाईन में यह है। देखने की बात है। भाई! शान्तिभाई! इतना हमारा ज्ञान। वह ज्ञान नहीं कहलाता, बापू! ऐसे विद्या का अभिमान धर्मी को नहीं होता। समझ में आया? जहाँ एक समय की पर्याय से भी अधिकपने त्रिकाली भगवान भासित हुआ, अब उसे ऐसा विद्या का अभिमान किसका हो उसे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! विद्या का अभिमान।

अधिकार का अभिमान। ईश्वरता का होय। सेठाई की, प्रभुता की यह दूसरी तो बड़ी उपाधियाँ हो न! आचार्यपद की, देखो न! यह तो धर्म के नाम से, गणिवर्य, प्रज्ञाश्रमण, फलाना, ढिंकणा। यह सब उपाधि के अधिकार का अभिमान। हम आचार्य हैं। हमको कौन कहे? बापू! वाद-विवाद न हो, भाई! उसे अनन्त काल एकपने में

सिद्धपद में रहना है। अनन्त काल रहना है जिसे, ऐसे धर्मी को अन्तर के एकत्व में से बाहर विकल्प और बाहर के ज्ञान का अभिमान किसका हो? वह सब छूट जानेवाले हैं। समझ में आया? अन्तर में उतरा है और अन्तर में परिणति करके अनन्त काल रहने की है, उसका साधक, उसे ऐसा विद्या का अभिमान नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? अब यहाँ तो सब आया इसमें। लक्ष्मी, विद्या, बल, जाति, कुल, रूप।

मुमुक्षु : अभी पर से....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर से आया.... आहाहा! भगवान तीन लोक का नाथ सचेतन प्रभु। सचेतन उसकी जाति। उसकी अधिकाई के समक्ष ऐसी जो अधिकाई अन्यत्र हो जाये, दूषण है। भूषण के बदले दूषण है। **इनका गर्व करना यह आठ प्रकार का महामद है।** समझे? महा शब्द स्वयं आत्मा है अन्दर। यह मद अष्ट प्रकार। आठ प्रकार के मद हैं।

ओहोहो! जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान और बारह अंग जिन्होंने प्रगट किये, ऐसे गणधर, वे भी विनय... विनय... विनय... विनय। अपनी पर्याय को पामर जानते हैं। वस्तु को प्रभु जानते हैं। पर्याय को पामर जानते हैं पूर्ण प्रभुता की अपेक्षा से। उसे किसका मद? समझ में आया? परवस्तु का अभिमान, वह मिथ्यात्व का लक्षण है। आहाहा! उसने अपने से भी उसमें कुछ अधिकता मानी है, अधिकपना माना है। स्वयं अधिक है पर से, ऐसा नहीं माना। समझ में आया? धर्मात्मा हो और बोलना समझाना न आवे। और स्वयं अज्ञानी है और समझाना-बोलना आवे, इसलिए उसे ऐसा लगे कि मैं कुछ हूँ। समझ में आया? पण्डितजी! भारी कठिन! आहाहा! भाई! तू कौन है? कहाँ है? इसकी तुझे खबर बिना ऐसा ही एक विद्या का ज्ञान कि इस प्रकार का अभिमान, वह तो दूषण है। भूषण को दूषण कर डाला तूने। समझ में आया?

आठ मल के नाम। अब आठ मल कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ३४

आठ मलों के नाम (चौपाई)

आसंका अस्थिरता वांछा।
ममता द्रिष्टि दसा दुरगंछा।।
वच्छल रहित दोष पर भाखै।
चित प्रभावना मांहि न राखै।।३४।।

अर्थ:–जिन–वचन में सन्देह, आत्मस्वरूप से चिगना, विषयों की अभिलाषा, शरीरादि से ममत्व, अशुचि में ग्लानि, सहधर्मियों से द्वेष, दूसरों की निंदा, ज्ञान की वृद्धि आदि धर्मप्रभावनाओं में प्रमाद ये आठ मल सम्यग्दर्शन को दूषित करते हैं।।३४।।

काव्य-३४ पर प्रवचन

आसंका अस्थिरता वांछा।
ममता द्रिष्टि दसा दुरगंछा॥
वच्छल रहित दोष पर भाखै।
चित प्रभावना मांहि न राखै॥३४॥

पहला जिनवचन में सन्देह। वीतरागभाव में सन्देह। ऐसा वीतरागभाव होगा? समझ में आया? (कथा में) आता है न, आचार्य ने कहा हुआ है कि भाई! यह मन्त्री आते हैं अभी, बोलना नहीं कुछ। .... मुनि आये न और ध्यान में बैठे सब। इसलिए आचार्य ने हुकम किया कि कुछ .... है गाँव में भाई। इसलिए कोई उनका मन्त्री आवे तो बोलना नहीं। और .... नहीं बोले। मन्त्री को ऐसा लगा, देखा यह सब बैल जैसे हैं। कुछ जानते नहीं और मौन रखकर अपनी महत्ता बताते हैं। ठीक। राजा को भ्रमित किया। राजा अन्यधर्मी था न। बोलना समझाना आता नहीं, ऐसे मौन करके बैठे हैं। राजा को कहे, यह सब बैल जैसे हैं। आहाहा! वहाँ .... मौन है और किस कारण से ध्यान में है, इसकी खबर थी। समझ में आया? और फिर रास्ते में वे मुनि मिले। राजा

को कहा, राजा! देखो यह .... बैल जैसा पेट भरकर चला आ रहा है। आहाहा! उनको और ऐसा हुआ... क्या है, भाई! वे सब गूँगे बैठे थे। ....वह कायोत्सर्ग। वहाँ मुनि को ऐसा लगा, बापू! भाई! हम कुछ .... शास्त्रार्थ करेंगे अपन। शास्त्रार्थ करने गये वहाँ वह (मन्त्री) वापस पड़ गया (पराजित हो गया)। अरे, यह महामुनि थे, धर्मात्मा। उन्हें बाहर की कहाँ पड़ी थी। ऐसा प्रसंग खड़ा हुआ, वह विकल्प आया।

बापू! भाई! शास्त्रार्थ करो। हमको आता है या नहीं आता हमको, अज्ञानी हैं, मूढ़ हैं। देखो, भाई! हार गये। मार डालने का अभिप्राय किया उन्होंने। आहाहा! गजब करते हैं न! जीव क्या-क्या करता है? बोलना नहीं आता इससे मौन करके बैठे हैं, ऐसा। बापू! क्या कारण है, इसकी तुझे खबर नहीं, भाई! किसका तुझे अभिमान? आहाहा! अन्त में वे ठिकाने पड़े। मुनि के,... क्या कहलाता है वह? विष्णुकुमार। .... आहाहा! जीव ने क्या किया है और कैसे स्वच्छन्द सेवन किये हैं, इसकी उसे खबर भी नहीं। किसे स्वच्छन्दता कहा जाता है और किसे दोष कहा जाता है। उसे हम गुण में खतौनी करते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह शंका। वीतरागभाव में सन्देह, वह मल है, कहते हैं। मैल है। पवित्रता में वह मैल है। वीतरागभाव अर्थात् उसमें राग का कण भी नहीं, ऐसी दशा होती होगी? ऐसी वह शंका, उसे यहाँ सन्देह कहा जाता है।

आत्मस्वरूप में चिगना। अस्थिरता। स्वरूप से डिगना। आहाहा! दोष है, मल है। अरे, विकल्प में आना, वह स्वरूप से इतना चिगा है। वह इतना दोष है। समझ में आया? स्वरूप भगवान आत्मा, वह ज्ञान का खिला प्रभु। विकल्प में आया इतना वह स्वरूप से पर्याय में हट गया है। वह दोष है। मल-मैल है। आहाहा! गजब बात है न! वह धर्म प्रभावना के नाम से जो विकल्प उठा, वह मैल है। समझ में आया?

वांछा। मैल है। अरे, स्वविषय को छोड़कर राग और पर को विषय बनावे, विषयों की कांक्षा करे, भोग की, स्वर्ग की, शरीर के माँस और.... ऐसी विषय की कांक्षा, इज्जत की, बड़ा बतलाने की—ऐसी जो वांछा (वह) बड़ा दोष है। समझ में आया? है न विषयों की अभिलाषा। अरे, जिसे आनन्द की भावना है, उसे विषय की भावना कैसे होगी? समझ में आया? आहाहा! शुभभाव में आना, वह भी एक नपुंसकता

है। तो उसकी अभिलाषा करना, यह मुझे करनेयोग्य है, वह तो मल—मैल कठोर है। आहाहा! समझ में आया? यह वीतराग का मार्ग! यह रागरहित प्रभु और रागरहित मार्ग, वह जिसे बैठा है, उसे ऐसे मैल नहीं होते, ऐसा कहते हैं।

ममता, लो। शरीर आदि से ममत्व। इतने यह मेरे, ऐसा भाव उसे होता नहीं। होवे तो वह मैल है। शरीर, स्त्री, पुत्र, पैसा मेरे। मेरे कहाँ से आये? जीव को यह अजीवतत्त्व और दूसरे जीवतत्त्व तुझे कहाँ से आये? कठिन काम, भाई! समझ में आया? यह हमारी दुकान, यह हमारी पदवी, यह हमारे घर में स्त्रियाँ अच्छे कुल की, पुत्र बड़े लोहे जैसे आठ, पाँच-पाँच हजार की आमदनी लानेवाले—ऐसी यह मेरे, ऐसी ममता मिथ्यात्व का लक्षण है। भारी कठिन काम, भाई! समझ में आया? कितना स्पष्ट वर्णन किया।

ममता। अशुचि में ग्लानि, ग्लानि। शरीर की अशुचि हो, वह जड़ की पर्याय है। विष्टा हो, सड़ी हुई बिल्ली का कलेवर हो, सड़े हुए कुत्ते और बकरे के बच्चे गन्ध मारते हों। वह तो जड़ की पर्याय है। उस पर्याय का स्वकाल है और वही पर्याय उसका स्वरूप है। उसके बदले अशुचि करना, यह कैसे? यह कैसे—तेरे ज्ञान में यह ज्ञात होते हैं कि यह है। तेरे ज्ञान की पर्याय ही ऐसी है कि उस समय यह जाने। यह कैसे—इसका अर्थ कि तेरे ज्ञान की पर्याय का तू निषेध करता है। ऐसा कैसे ज्ञात होता है? तेरी पर्याय ऐसी ही है। समझ में आया? वह अशुचि दोष है ज्ञानी को। आहाहा!

आता है न दृष्टान्त? क्षुल्लक थे। उल्टी होती थी। ऐसा आता है। अपने यहाँ पड़ा है या नहीं? ऊपर पड़ा है, नहीं? उसके साथ। ग्लानि नहीं होती। सन्तों के शरीर सड़े हुए, कोढ़ हो, इससे ग्लानि। हम भी ऐसे निरोगी शरीर में रहते हैं और यह मुनि। कहते हैं कि ऐसे मुनि हैं, बड़े धर्मात्मा हैं। अँगुली में कोढ़। रसी, रुधिर और पीव बहता है। बापू! वह शरीर का स्वभाव है। पवित्रता उसे प्रगटी है, इसलिए उसे निरोगता ही हो शरीर में, ऐसा किसने कहा? समझ में आया? आहाहा!

लो, नवनीतभाई को अन्दर इतनी निर्बलता है। वे बोलते थे, हों! यह सब बात। यह दवायें उल्टी पड़ी। यहाँ हवा में परिवर्तन... कर्ता होने का यहाँ भाव हो न बेचारे

को। निकलने के बाद कहते हैं कि दस्त हुए। बहिन आयी थी न छोटी। ....भाई की पुत्री। चार दस्त और पाँच-पाँच दस्त। अब शरीर ऐसा .... मुश्किल-मुश्किल से खड़े हुए। आहाहा! देखो, यह भी .... है। शरीर का स्वभाव है, ऐसा बने। उसमें है क्या? उसमें ग्लानि करने जैसा (नहीं है)। दुर्गन्धित दस्त हों। ऐसी गन्ध मारे... गन्ध मारे।

मुमुक्षु : रोगियों की सेवा करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है परन्तु.... मनसुखभाई... राजकोट। .... उनके भाई थे। वे गये थे एक बार दर्शन करने। सैकड़ों दस्त। बैठे और उठे, बैठे और उठे। गन्ध मारे, गन्ध मारे। बापू! वह तो पर्याय का गुण है, भाई! उनकी पुत्री के साथ उसकी... समझ में आया? उसकी ग्लानि नहीं होती और अनुकूलता का उसे राग (नहीं) होता। आहा! धर्मी जीव को ऐसे भाव में ग्लानि होती नहीं। वे तो जानते हैं (कि) वह वस्तु का स्वभाव है। अरेरे! धर्मात्मा को ऐसा! ऐसा करके धिक्कार करे। प्रेम करे, वह अलग वस्तु है। लो, यह धर्मात्मा। धर्मात्मा को तो लब्धि प्रगट होना चाहिए। वह लब्धि प्रगट हुई हो तो भी धर्मी उसका उपयोग नहीं करते, सुन न! आहाहा! जिस प्रकार का उदय है, वह आकर खिर जाता है। आहाहा! ग्लानि किसकी? ऐसा मार्ग है यह। समझे? ग्लानि।

स्वधर्मियों के प्रति द्वेष। वत्सलरहित शब्द है न! प्रेमरहित। साधर्मी के प्रति प्रेम नहीं, वह दोष है। आहाहा! स्त्री, पुत्र के प्रति प्रेम। जरा सा उन्हें हो उहुंहुं... नींद न आवे उसके पिता को। अरेरे! बेटा! तुझे यह न हो। अब धूल में .... वह जहाँ खोटा, उसके लिये तुझे तालावेली, क्या कहलाता है? तड़पड़ाहट। ऐसा कहते हैं न कुछ? तड़पड़ाहट हो। भाई! मुझे सुख आता नहीं। तुझे सुख आवे तो अपने समान, जाओ। अब वहाँ उनका प्रेम और धर्मात्मा—श्रावक-श्राविका, आर्यिका, साधु के प्रति प्रेम नहीं। परन्तु उसका अर्थ ही यहाँ किया है कि द्वेष। आहाहा! साधर्मी की अधिकता देखकर उसे द्वेष होता है। यह और मुझसे आगे बढ़ा। यह द्वेष है। मैल है। कहो, समझ में आया? यह दोष है। आहाहा!

दोष पर भाखै—निन्दा। पर की निन्दा करने के भाव से निन्दा करे। वस्तु बतावे, वह अलग चीज़ है। परन्तु उसका तिरस्कार करने को निन्दा करे, वह दोष है। जरा

विसंवाद हो विवाद दोषवाला .... समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। जहाँ तक कोलाहल नहीं, शान्तपना है, विकल्प का भी कोलाहल है, कहते हैं। स्वयं ही कषाय और आकुलता है। उसे दूसरे के दोष देखकर निन्दा करना। किसकी निन्दा? वह उसकी पर्याय का काल ही ऐसा है उसे, ऐसा परिणमता है। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान की वृद्धि आदि धर्म-प्रभावनाओं में प्रमाद। चित प्रभावना मांहि न राखै। आया है न यह अन्तिम। उसमें चित्त (शब्द) आया था। चित्त प्रभावना। पाँच भूषण में पहला (शब्द) आया। आहाहा! यहाँ वह चित्त। चित्त अर्थात् ज्ञान। भगवानस्वरूप आत्मा ज्ञानस्वरूप, उसकी वृद्धि, ऐसा उपकार, प्रसन्नता, उसमें प्रमाद करे। ऐसा न करके प्रमाद आलसी का घर। संसार के काम में ऐसे प्रमाद (न करे)। ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ। और ऐसे जो अपने धर्म के काम में वृद्धिभाव में धर्म प्रभावना, अपनी धर्म प्रभावना, हों! आहाहा! पर को कौन करे और कहाँ करे? भाई! वाणी कहाँ उसकी है? विकल्प कहाँ उसका है कि उसके द्वारा प्रभावना हो? आहा! यहाँ तो अपना ज्ञान आदि धर्म जो है, उसमें प्रमाद करे, ऐसा। यह आठ मल सम्यग्दर्शन के दूषण हैं।

★ ★ ★

काव्य - ३५

छह अनायतन (दोहा)

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म।
इनकी करै सराहना, यह षडायतन कर्म।।३५।।

अर्थः-कुगुरु, कुदेव, कुधर्म के उपासकों और कुगुरु, कुदेव, कुधर्म की प्रशंसा करना ये छह अनायतन हैं।।३५।।

काव्य-३५ पर प्रवचन

छह अनायतन

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म।
इनकी करै सराहना, यह षडायतन कर्म॥३५॥

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर—उनके धरनेवाले, माननेवाले। उन्हें लिया पहले। कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को माननेवाले और कुगुरु-कुदेव-कुधर्म स्वयं—ऐसे छह। समझ में आया? कुगुरु-कुदेव-कुधर्म। पुण्य-पाप को धर्म माननेवाले। धरनेवाले हैं उन्हें धारण करनेवाले। कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को धारण करनेवाले और कुदेव-कुगुरु-कुधर्म स्वयं—यह छह हुए। **इनकी करै सराहना,...** इनकी महिमा करे। कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को माननेवाले की महिमा करना, यह अनायतन है। धर्म के स्थान नहीं। उनकी महिमा करना, वह अनायतन है। आहाहा! वह तो कुधर्म के स्थान हैं। समझ में आया? आहाहा! गजब! कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को धरनेवाले अर्थात् माननेवाले, उनकी सराहना करे, प्रशंसा करे, अनुमोदन करे, वह अनायतन को आयतन मानता है। है अनायतन। दोष है। उसे छोड़ना चाहिए, उसके बदले यह मानता है। दोष है। और कुदेव-कुगुरु-कुधर्म स्वयं वस्तु। कुगुरु वस्तु, कुदेव वस्तु, कुधर्म (वस्तु)। उसे माननेवाले और तीन ये। **इनकी करै सराहना,...** लो। **यह षडायतन कर्म।** यह छह अनायतनरूपी कार्य, वे सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं। उस अनायतन के दोष को छोड़कर समकित की निर्मलता प्रगट करना, उसका नाम अनायतन का त्याग और दोष का त्याग कहा जाता है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८५, आसोज कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक १८-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद ३६ से ४१

समयसार नाटक है। चौदह गुणस्थान अधिकार। समकिती को कैसे गुण होते हैं और कैसे दोष का त्याग होता है, उसकी बात है। चौथा गुणस्थान सम्यग्दर्शन। निश्चय सम्यग्दर्शन तो सच्चा तत्त्व, उसके व्यवहार में ऐसे दोष नहीं होते, ऐसा यहाँ साबित करते हैं, सिद्ध करते हैं। निश्चय तो आत्मा परिपूर्ण ध्रुव नित्य आनन्द के सन्मुख होकर, रागमिश्रित दशा छोड़कर स्वभाव की अन्तर एकता होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन, वस्तु जो वस्तु है, उसे अवलम्बकर—आश्रय से प्रगट होता है। देव-गुरु और धर्म-शास्त्र आदि के अवलम्बन से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया?

यह देव, गुरु और शास्त्र, वे तो परचीज़ हैं। उन्हें मानने से... बातें अजब की हैं, भाई! शुभभाव हो वह आत्मा को नुकसानकारक है। बात ऐसी है वस्तु की। समझ में आया? जितना आत्मा में शुभ-अशुभभाव, वह परआश्रित होता है, वह सब नुकसानकारक है। ऐसी पर की दृष्टि छोड़कर; निमित्त है, उसकी दृष्टि छोड़कर, उनके (देव-गुरु के) लक्ष्य से होनेवाले शुभभाव का भी लक्ष्य छोड़कर; उन्हें जानने की एक समय की ज्ञान की पर्याय है। जो देव-गुरु ने कहा, उसका ज्ञान स्वयं से हुआ, वह भी परलक्ष्यी है। वह भी वस्तु को नुकसानकारक है। अरे! आहाहा!

यह तो सम्यग्दर्शन अर्थात् मुक्ति हो गयी उसकी। क्योंकि वस्तु जो है ध्रुव द्रव्य वस्तु परमात्मा स्वयं मुक्तस्वरूप है वह। समझ में आया? अबद्धस्पृष्ट कहो या मुक्तस्वरूप कहो। ऐसा भगवान आत्मा, उसे नौ तत्त्व की श्रद्धा उसकी ऐसी होती है, परन्तु वह कहीं मूल चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? होवे तो भी विकल्प है। परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। शान्तिभाई! एक समय की पर्याय है। एक अंश है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? यह तो परमात्मा स्वयं शुद्ध आनन्दघन का आश्रय लेने से दूसरे की ओर से उसकी मुक्ति हो जाती है। तब

उसे स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि होती है, तब उसे ज्ञान और श्रद्धा में आनन्द आता है, उसे समकित कहते हैं। समझ में आया?

उसे यह छह अनायतन नहीं होते, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि यह कुदेव, कुगुरु और कुधर्म, उनके धारक की प्रशंसा वह नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? कुगुरु, कुदेव और कुधर्म तथा उनके धारक, उनका उसे प्रशंसापना नहीं होता। समकिती उन्हें अनुमोदन नहीं करता। ये भी उसके योग्य ठीक करते हैं, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। भारी कठिन काम! गाँव से अलग जाना पड़े, अलग होना पड़े। नहीं? पूरे गाँव में सबमें हाँ... हाँ... करके सबमें गये हों। अब उसमें से पृथक् पड़ना हो, लो। सब धर्म में जाते हों, सबको वन्दन करते हों, सबमें सामने (रहते हों) अब उसमें से हटना। उसे हटना तो ठीक, परन्तु उसे वह है, वह ठीक है, ऐसा भी (होता) नहीं।

यह तो एक आत्मा परमानन्द की मूर्ति नित्यानन्द प्रभु धीरज का पिण्ड। यह भगवान धीरज का पिण्ड है, शान्ति का सागर है, अनाकुल आनन्द का यह समुद्र है। आहाहा! उसकी दृष्टि में उसे ऐसे कुस्थान—धर्म के स्थान नहीं। उनकी प्रशंसा नहीं, वह उनकी सराहना नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? कुगुरु, कुदेव और कुधर्म के धारक और वे स्वयं कुदेव, कुगुरु और कुधर्म—छह की सराहना धर्मी नहीं करता। समझ में आया? जैन में भी वस्त्र रखकर मुनिपना माननेवाले, उनके शास्त्र में भी वस्त्रसहित मुनिपना कहा, वे सब कुशास्त्र और कुधर्म और कुगुरु हैं। भारी कठिन काम! समझ में आया? मार्ग तो यह है, भाई!

तीन मूढ़ता का नाम। छह की बात हुई। तीन बाकी रहे। पच्चीस (दोष) का योगफल किया।

★ ★ ★

काव्य - ३६

तीन मूढ़ता के नाम और पच्चीस दोषों का जोड़ (दोहा)

देवमूढ़ गुरुमूढ़ता, धर्ममूढ़ता पोष।
आठ आठ षट तीन मिलि, ए पचीस सब दोष।।३६।।

अर्थ:–देवमूढ़ता अर्थात् सच्चे देव का स्वरूप नहीं जानना, गुरुमूढ़ता अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनि का स्वरूप नहीं समझना और धर्ममूढ़ता अर्थात् जिनभाषित धर्म का स्वरूप नहीं समझना, ये तीन मूढ़ता हैं। आठ मद, आठ मल, छह अनायतन तथा तीन मूढ़ता सब मिलाकर पच्चीस दोष हुए।।३६।।

काव्य-३६ पर प्रवचन

देवमूढ़ गुरुमूढ़ता, धर्ममूढ़ता पोष।
आठ आठ षट तीन मिलि, ए पचीस सब दोष॥३६॥

पहले आठ कहे थे न मद। आठ मद, आठ मल=१६+छह अनायतन=२२ और यह देव, गुरु, धर्म की मूढ़ता, यह तीन (मिलकर) पच्चीस। आहाहा! **देवमूढ़ता अर्थात् सच्चे देव का स्वरूप नहीं जानना।** भगवान सर्वज्ञ जिन्हें एक समय में तीन काल का ज्ञान और अनन्त जिन्हें आनन्द, ऐसे देव के स्वरूप को मूढ़ होकर न जानना, ऐसी मूढ़ता समकिती को नहीं होती, ऐसा कहते हैं। ऐसे देव! ओहो! जिन्हें आहार नहीं, पानी नहीं, वस्त्र नहीं, पात्र नहीं, बोलने की इच्छा नहीं। समझ में आया? ऐसे जो देव अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा के स्वरूप को न जाने, मूढ़ता रखे, वह दोष है। धर्मी को वह हो नहीं सकता।

गुरुमूढ़ता अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनि का स्वरूप नहीं समझना। वाह! जिसके राग और द्वेष गल गये हैं, जिन्हें अन्तर में निर्ग्रन्थदशा वीतरागी झूले में झूलते हैं, ऐसे सन्तों की दशा और बाह्य में उनकी नग्न आदि की दशा—उसकी जिसे उलझन-मूढ़ता, वह समकिती को होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? गुरुमूढ़ता—जिसे तिसे (गुरु)

मानना, ऐसी गुरुमूढ़ता धर्मी को नहीं होती। जहाँ ज्ञान में आत्मदेव प्रगट हुआ, आत्मगुरु जिसे श्रद्धा-ज्ञान में आया है और आत्मा ही स्वयं सिद्धान्तों का स्वयं रहस्य है। आहाहा! समझ में आया? ग्रन्थ, गुरु और देव—तीनों स्वयं आत्मा हैं, ऐसा जिसे अन्तर में भान हुआ, उसे ऐसे गुरु आदि की मूढ़ता नहीं होती। समझ में आया?

अब यह भी सच्चे, यह भी सच्चे, समन्वय करो। अभी यह बहुत चलता है न? तो लोगों को अच्छा लगता है। बापू! किसी के प्रति विरोध नहीं होता, किसी के प्रति द्वेष नहीं होता। परन्तु स्वरूप तो जैसा हो, वैसा होगा न! दूसरा किस प्रकार होगा? अच्छे—बुरे सबको साथ में खतौनी करे, वह तो मूढ़ता है। क्यों पण्डितजी? आहाहा! व्यक्ति (मात्र) तो परमात्मा है सब ज्ञानस्वरूपी भगवान। उसकी पर्याय में दोष है, इसलिए उसे किसी व्यक्ति के प्रति विरोध और द्वेष नहीं होता। समझ में आया? ऐसे समकिती जिन्हें आत्मा का आश्रय मिला है, जिनकी पर्याय में आवश्यकता द्रव्य की है, ऐसा जो अवलम्बन और आधार मिला, उसे ऐसी गुरु की मूढ़ता का अभाव होता है। आहाहा!

धर्ममूढ़ता—जहाँ-तहाँ धर्म मान ले। यज्ञ में धर्म है। किसी का परोपकार करना, उसमें धर्म है और पुण्य के भाव में धर्म है। क्योंकि शास्त्र में पुण्य को भी धर्म कहा है, लो।

मुमुक्षु : भोगरूप धर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : भोग का कारणरूप धर्म कहा। आहाहा! धर्म तो वीतरागी परिणति आत्मा की, ऐसा उसका धर्म अर्थात् आत्मा का स्वभाव वीतरागस्वरूप है, ऐसी जिसकी वीतरागी परिणति प्रगट होना, उसका नाम धर्म है। विकल्पों की वृत्ति खड़ी करना और उसे धर्म मानना, वह धर्ममूढ़ता है। आहाहा! यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति होने से धर्म होता है, यह भी धर्ममूढ़ता है। ऐई, बलुभाई! बात तो ऐसी है। सत्स्वरूप ऐसा है। आहाहा! यह कहते हैं यहाँ। **धर्ममूढ़ता पोष।** अनजाने उसका पोषण उसे नहीं होता। **जिनभाषित धर्म का स्वरूप नहीं समझना ये तीन मूढ़ता हैं,...** लो।

वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा ने वीतराग परिणति को धर्म कहा है। तो वह आत्मा ही वीतरागस्वरूप है, पूरा त्रिकाली, ऐसे धर्म में मूढ़ता रखना, वह धर्मी को मूढ़ता नहीं होती। जिनभाषित का अर्थ, वीतराग ने जो यह कहा, और आत्मा में

परिणति खड़ी हुई (तो) जिन स्वयं है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान की परिणति खड़ी हुई, वह जिनभाषित वीतरागी धर्म है। आहाहा! गजब कहा! समझ में आया? यह मन्दिर बनाकर धर्म मानना, वह मूढ़ता है, ऐसा कहते हैं। वह शुभभाव हो, परन्तु वह नुकसानकारक है, ऐसा न माने तो उसकी मूढ़ता है। आहाहा! जिससे नुकसान है, उससे लाभ माने तो विपरीत दृष्टि है। समझ में आया? वास्तव में तो निमित्त से लाभ नहीं, ऐसा मानने पर भी उसे निमित्त से कुछ लाभ होगा, ऐसा गहरा अभिप्राय रहे, वह उसने माना नहीं। समझ में आया?

कल कहा था न? एक व्यक्ति ने पूछा कि जब तुम (मानते हो कि) निमित्त से लाभ नहीं होता तो सोनगढ़ किसलिए जाते हो? तब उन्होंने कहा। उसका जवाब दिया कि निमित्त से नहीं होता, ऐसी बात को दृढ़ करने हम जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! मार्ग वह मार्ग है। समझ में आया? अभिप्राय में गहरे-गहरे कहीं रह जाये कि श्रवण से, बाह्य सत्समागम से किंचित् लाभ होगा, यह तो विपरीत मान्यता है। कठिन बात ऐसी! अरे, जगत के समक्ष ऐसी बात आने पर कितने ही तो चमकते और भड़कते हैं। मार्ग तो ऐसा है, भाई! बिल्कुल पर की अपेक्षा नहीं और पूर्ण प्रभु की अपेक्षा अपनी। समझ में आया? स्वयं ही सत्स्वरूप भगवान है, उसके समागम से लाभ होता है। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया?

यह सम्यग्दृष्टि को इससे ऐसा होगा और ऐसा होगा, ऐसी मूढ़ता होती नहीं। कुछ तो होगा, कुछ तो अन्तर पड़ेगा, हों, कहे। भाई! मार्ग तो निरावलम्बी है न, प्रभु! आहाहा! अरे, आत्मा का ज्ञान और दर्शन और आनन्द, ऐसा धर्म, उसे व्यवहार के विकल्प की अपेक्षा नहीं। ऐसा उसका स्वभाव है। और उससे विरुद्धभाव से लाभ माने, वह आत्मा को जानता नहीं। आत्मा का स्वभाव क्या है और आत्मा कौन है, उसकी उसे खबर नहीं। आहाहा! यह पच्चीस दोष हुए, इकट्ठे हुए, इकट्ठे होकर... हुए न? आठ मद, आठ मल, छह अनायतन और तीन यह (मूढ़ता)।

(७) **पाँच कारणों से सम्यक्त्व का विनाश होता है।** अच्छा अधिकार आया है, लो।

★ ★ ★

काव्य - ३७

(७) पाँच कारणों से सम्यक्त्व का विनाश होता है (दोहा)

ग्यान गरब मति मंदता, निठुर वचन उदगार।
रुद्रभाव आलस दसा, नास पंच परकार।।३७।।

अर्थः–ज्ञान का अभिमान, बुद्धि की हीनता, निर्दय वचनों का भाषण, क्रोधी परिणाम और प्रमाद, ये पाँच सम्यक्त्व के घातक हैं।।३७।।

काव्य-३७ पर प्रवचन

ग्यान गरब मति मंदता, निठुर वचन उदगार।
रुद्रभाव आलस दसा, नास पंच परकार॥३७॥

अरे, ज्ञान का अभिमान। शास्त्र का बहुत ज्ञान हुआ, कहा बहुत। उसका उसे अभिमान—मैं कुछ जानता हूँ, हों! यह ज्ञान का गर्व, उसे आत्मा की श्रद्धा में दोष है। उसे आत्मा त्रिकाली परमात्मा, एक समय की केवलज्ञान की दशा के समक्ष भी त्रिकाली चीज़ अधिक है। जहाँ केवलज्ञान की पर्याय की भी महत्ता नहीं। समझ में आया? ऐसे आत्मा में कुछ ग्यारह अंग का ज्ञान हो, उसका अन्दर में गहरे, कुछ हे मुझे, कुछ मैं लाभ में आया हूँ—ऐसा गर्व हो, उसे उससे अधिक भगवान आत्मा की प्रतीति नहीं रहती। आहाहा! समझ में आया?

ग्यान गरब मति मंदता—मति की विपरीतता। मन्दता अर्थात् भान न हो कुछ। उलझन हो, ऐसा भाव समकिती को होता नहीं। बुद्धि की हीनता। कुछ ख्याल ही नहीं कर सकता। यह क्या कहते हैं? सत्-असत् का विवेक (नहीं होना), वह मति की मूढ़ता-मन्दता अपने स्व जानने में मति की मन्दता। समझ में आया? अरे, जिसे जन्म-मरण के कारण (ऐसे) भव के भाव जहाँ पड़े हैं, उस मिथ्यात्व में तो अनन्त भव करने की सामर्थ्य है। और आत्मा में अनन्त भव के कारण की पर्याय का व्यय करने की ही सामर्थ्य नहीं। आहाहा! उसमें तो अनन्त शान्ति उत्पन्न हो, ऐसी उसकी उसमें सामर्थ्य

है, वहाँ वह व्यय हो जाता है। समझ में आया?

परमार्थ से आत्मा संसार के भाव के नाश का भी कर्ता नहीं। उत्पन्नकर्ता तो नहीं। राग का (अ)कर्ता माने, वह पूरे आत्मा को निर्विकारी मानता है। शुभभाव का कर्ता हो, वह त्रिकाली भगवान को अकेला विकारमय मानता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! समझ में आया? क्योंकि वह शुभभाव का विकल्प जो है, उससे तो प्रभु पृथक् है। शुभराग को तो कभी उसने छुआ भी नहीं, स्पर्शा नहीं। अहाहा! ऐसे तत्त्व में मति की मन्दता रहे, वह समकित के नाश का (कारण), इस कारण से समकित का विनाश होता है। आहाहा! पकड़ में नहीं, फिर यह डाँवाडोल हो जाये। उसका मार्ग वह यह होगा? यह होगा? यह होगा? ऐसा मार्ग? आहाहा! समझ में आया?

निठुर वचन—निर्दय वचनों (का भाषण)। आत्मा की स्वभावदशा छोड़कर निर्दय कठोर कठिन वचन, ऐसा भाव हों, वह समकित के नाश का उपाय है, नाश करने का कारण है। विनाश का कारण। आहाहा! कितने ही ऐसा कहे न, जाओ, जाओ ऐसा करो, उसका पाप लगे तो मेरे सिर, जाओ। आहाहा! भाई! ऐसी वाणी नहीं होती। ऐसा भाव धर्मी को नहीं होता। ऐसे बहुत कितने ही होते हैं ऐसे। जाओ, ऐसा पाप हो तो मेरे सिर। तुम तुम्हारा करो। आहाहा! यह भव के भटकने का भाव, उसकी उसे दरकार (नहीं)। समकिती (को) तो भव का भय है। चार गति में जन्मना, उसका उसे भय है। अरे, चार गति में अवतार अर्थात् दुःख में जन्मना, दुःख की दशा उत्पन्न करना। भगवान तो आनन्दस्वरूप है, उसमें दुःख की दशा उत्पन्न करना, उसका तो उसे भय होता है। समझ में आया?

रुद्रभाव-क्रोधी परिणाम। कठोर क्रोध... क्रोध... क्रूरता, वह समकित के नाश का कारण है। धीरज के सागर में ऐसा क्रोध? अनन्तानुबन्धी का क्रोध। समझ में आया? स्वरूप की अरुचि और राग की रुचि, ऐसा जो स्वभाव के प्रति द्वेष—ऐसे परिणाम, वे समकित के नाश का कारण है।

प्रमाद। समकिती तो स्वभाव का पुरुषार्थवादी है। अपने स्वभाव-सन्मुख का पुरुषार्थ है। क्योंकि भगवान पूर्ण पुरुषार्थी है। उसका स्वरूप ही पूर्ण पुरुषार्थ है। और

उस पूर्ण पुरुषार्थ में उसे अनन्तवें भाग पुरुषार्थ जो पर्याय में है, वह स्वभाव-सन्मुख का पुरुषार्थ है। आहाहा! समझ में आया? उसे आलस नहीं होते। आलस की भूमिका मिथ्यात्व में.... ऐसा आता है आगे। समझ में आया? पहले आ गया है। वह पाँच समकित के घातक हैं। सम्यग्दर्शन—आत्मा के अनुभव की प्रतीति। है समकित पर्याय। समझ में आया? धर्मी जीव को उस पर्याय का जोर नहीं। जोर तो द्रव्य के ऊपर है। उसमें ऐसे दोष उसकी पर्याय में हो नहीं सकते, ऐसा कहते हैं।

(८) **सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार**

★ ★ ★

काव्य - ३८

(८) सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार (दोहा)

लोक हास भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति मेव।
मिथ्या आगमकी भगति, मृषा दर्सनी सेव।।३८।।

अर्थः-लोक-हास्य का भय अर्थात् सम्यक्त्वरूप प्रवृत्ति करने में लोगों की हँसी का भय, इन्द्रियों के विषय भोगने में अनुराग, आगामी काल की चिन्ता, कुशास्त्रों की भक्ति और कुदेवों की सेवा ये सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार हैं।।३८।।

काव्य-३८ पर प्रवचन

सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार

लोक हास भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति मेव।
मिथ्या आगमकी भगति, मृषा दर्सनी सेव॥३८॥

इस बार और यह अधिकार बराबर आया। कहो, यह दिवाली के दिनों में यह है। आहाहा! **लोक-हास्य का भय अर्थात् सम्यक्त्वरूप प्रवृत्ति करने में लोगों की हँसी का भय।** लोग मश्करी करेंगे, ऐसा कहेंगे। लो, भारी धर्म भाई! यह देव-गुरु और

शास्त्र के आश्रय से धर्म नहीं। गजब! लोग मश्करी करे। कहो, शान्तिभाई! ऐसा मार्ग। शास्त्र से ज्ञान नहीं, देव-गुरु से ज्ञान नहीं। वाह, भारी आगे चढ़ गये! समकिती पर से लाभ होता है, यह मानता नहीं, उसकी मजाक करे। लोग मश्करी करे। समझ में आया? उसकी प्रवृत्ति करने में लोगों की मश्करी का भय, वह अतिचार है, दोष है। दुनिया की क्या दरकार? दुनिया जो कहो। नास्तिक कहो। नास्तिक अर्थात्? देव-गुरु-शास्त्र को मानना, वह राग और वह अधर्म। यह नास्तिक है। सुजानमलजी!

मुमुक्षु : बात तो ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी है।

पूरे दिन करे और फिर कहे कि हम करते नहीं। यह गजब भाई! तुम चढ़ गये! भक्ति करे, मन्दिर बनावे, और यह चौबीस घण्टे व्यवहार में रहे और कहे कि व्यवहार के विकल्प का कर्ता आत्मा नहीं। आहाहा! बात ऐसी है, हों! ऐसे लोग मजाक करे। उसका भय ज्ञानी को होता नहीं। करो बापू! भाई! मार्ग तो यह है। इस मार्ग में कोई शंका करे या द्वेष करे, निन्दा करे, इससे वस्तु की भक्ति छोड़ना नहीं, प्रभु! ऐसा कहते हैं। दुनिया की संख्या बहुत। दूसरी मान्यता के वेग में चढ़ गयी। वह इस मान्यता को न स्वीकार करे और मश्करी करे, (तू) अभक्ति नहीं करना। अरे, यह क्या हुआ है? यह चीज़ ही ऐसी महाप्रभु है कि जिसकी भक्ति से सम्यक्त्व होने से, भक्ति अर्थात् एकाग्रता, उस सम्यग्दर्शन में लोक का भय नहीं होता। हास्य-मश्करी की, वाह... ...! सुनने जाये और कहे कि सुनने से ज्ञान नहीं होता। यह तुम्हारा ठिकाना कहाँ है? ऐसा कहे। ऐई, जेठाभाई! शास्त्र पढ़ने से ज्ञान नहीं होता और शास्त्र तो इसे रखा ही हो वाँचने में। अरे, गजब बात, भाई! लोग मश्करी करे, ऐसा मार्ग। है, वह है। लोक की मश्करी का भय ज्ञानी को नहीं होता।

एक ने कहा था। 'लोक मचाये शोर।' यह आया था एक बार। वे रतनचन्दजी थे न एक। सिद्धपर में थे। वहाँ श्रीमद् का आश्रम है न। वह यहाँ कहलाया था, हों! जब यह परिवर्तन किया न तब उन्होंने कहलवाया था। लोक मचाये शोर। लोक की दरकार करना नहीं। वे रतनचन्दजी थे। उनका भी ठिकाना नहीं था। उन्होंने रुपये कहीं रखे

हुए, उनके लिए वापस अनशन किया था। प्रेमचन्दभाई, खबर है ? नहीं। रतनचन्द या रतनलाल ?

मुमुक्षु : रतनदास।

पूज्य गुरुदेवश्री : रतनदास। सिद्धपर में थे। पैसे कहीं पड़े होंगे उनके पच्चीस हजार या अमुक। उसने (देने से) इनकार किया तब अनशन किया, लंघन किया। परन्तु तू कहाँ से भगवा में रहा ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होता है। उसका कुछ नहीं। यह तो यहाँ लोगों के हास्य से समकिती को कुछ शंका नहीं पड़ती। इतने सब लोग ऐसे बोले, वह लोग सब झुण्ड है और वह भी शास्त्र के जाननेवाले हैं, वाँचनेवाले हैं। समझ में आया ? बापू! चाहे जो हो। लोक के भय से.... आहाहा!

सीताजी ने कहा न! सीताजी को जब हुकम हुआ, वह रथवाला। जा, उन्हें यात्रा कराकर जंगल में छोड़ दे। आहाहा! सारथी जहाँ नीचे उतारता है, सारथी रोता है। अरेरे! यह नौकरी! महासती धर्मात्मा आनन्द की परिणति में रही हुई माता जिसके गर्भ में दो राजकुमार। आहाहा! वे चरमशरीरी जीव! अरे! मुझे यह हुकम क्या हुआ ? भाई! तू किसलिए रोता है ? माता! मुझे यह आज्ञा मिली है रामचन्दजी (की ओर से)। भाई! तू रो नहीं। छोड़ दे। उस आज्ञाप्रमाण तू कर। आहाहा! परन्तु रामचन्द्र को एक (बात) कहना, हों! आहाहा! इस लोक के भय से मुझे छोड़ा, परन्तु लोक के भय से धर्म नहीं छोड़ना। ऐसे विषमता के काल में जहाँ सिंह और बाघ (बसे)। जहाँ मनुष्य तो नहीं, सिंह-बाघरहित भी नहीं। सिंह साथ में बाघ दहाड़ते हों। वहाँ तीन जीव थे। स्वयं जीव और दो बालक। छोड़ी तो ऐसा कहा, भाई! समकिती है, ज्ञानी है। समझ में आया ?

यह और क्या ? ज्ञानी हो और यह गर्भ.... और यह। भाई! खबर नहीं। वह तो चारित्रमोह का राग होता है, उसे हेय जाने, सुख माने नहीं। तथापि वह राग होता है, उसका उसे स्वामित्व नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! राम को कहना। मुझे तो संसारलोक के भय से छोड़ा, धर्म नहीं छोड़ना तुम। उस काल में भी यह दशा, लो। वैसे

तो आँख में से आँसू भी बह आये होंगे। बात ऐसी है न! जरा सी देर (आघात) आया। मूर्च्छा हो गयी थोड़ी। ध्यान-भानसहित, हों! आहाहा! गजब बातें हैं न! जहाँ कान में पड़ा वहाँ ऐसा... आहाहा! यह जंगल में.... पानी माँगे वहाँ इक्कीस व्यक्ति, एक के इक्कीस खड़े हों। रसोई तो तैयार हुई हो, उसमें खाने बैठे। अरे, यहाँ अब यह समय व्यतीत करेंगे। बाघ और भालू। कहाँ फँसे? उसे लोक का भय (होता नहीं)। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है।

भोग रुचि। आहाहा! इन्द्रियों के विषयों के भोग में प्रेम, रुचि, वह समकित का अतिचार है। आहाहा! अरेरे! आत्मा के आनन्द का जहाँ रस है, जहाँ निज रस का प्याला पीता है, उसे भोग के रस का प्रेम कैसे हो? देखो यह। समझ में आया? भले भोग का भाव हो, परन्तु उसमें प्रेम नहीं। आहाहा! उसे काला नाग जैसा समकिती देखता है। यह उत्साह और हर्ष करते हैं भोग में, वह तो मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। समझ में आया? यह डोल गये आत्मा में से हट गये हैं। आहाहा! जिसे भोग का अनुराग और प्रेम है, वह आत्मा के अनुभव से हट गये हैं। समझ में आया?

धर्मी को तो आत्मा के आनन्द के भोग का अनुभव होता है। उसे यह भोग का अनुराग होता नहीं। अनुराग, कहते हैं। ऐसा है न अर्थ में? राग के पीछे राग की रुचि, ऐसा। राग का राग नहीं होता। अरे, हम चैतन्य भगवान पूर्णानन्द के सिंह से गर्जनावाले, पूर्णानन्द से गरजें, ऐसे हम तो हैं। समझ में आया? हमारी चोट पड़े तो अन्दर से आवाज पड़े और आनन्द आवे अन्दर एकाग्रता का, कहते हैं। आहाहा! ऐसे आत्मा के भोग की रुचि कैसे हो? ९६ हजार स्त्रियाँ विवाही हों, समकिती। समझ में आया? तथापि उसे अन्दर में रस है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! भोग रुचि नहीं।

अग्र सोच थिति— आगामी काल की चिन्ता। अरे! भविष्य में क्या होगा? ऐसा भाव, वह अतिचार दोष है। आगे क्या होगा? कहाँ जायेंगे? आगे हम स्वर्ग में जायेंगे, यह भी नहीं। हम तो हमारी दशा में ही आगे जायेंगे। गति का क्षेत्रान्तर होने पर भी हमारा क्षेत्रान्तर हुआ नहीं। हम तो हमारे भान में—आनन्द में हैं। वहीं के वहीं हम भविष्य में रहनेवाले हैं। समझ में आया? आहाहा! कैसी गति मिलेगी? भाई! गति कहाँ थी? उसे गति है ही कहाँ? आहाहा! गति और गति का भाव दोनों जहाँ स्वरूप

में नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा उज्ज्वल वीतरागमार्ग! वह कहीं मिले, ऐसा नहीं, बापू! आहाहा! अरे, वाद-विवाद करके प्रभु तू क्या करना चाहता है? भाई! ऐसा स्वभाव जिसे अन्तर में अनुभव में आया, अरे, वह आत्मा के आनन्द भले ९६ हजार स्त्रियों के भोग में दिखायी दे, वह भोग में नहीं। उसके ज्ञान और दर्शन का आनन्द है, उसमें वह है। समझ में आया? **अग्र सोच थिति,** ऐसा।

मिथ्या आगमकी भगति—कुशास्त्रों की भक्ति। आहाहा! भगवान आत्मा में से—निमित्त से निकले हुए शास्त्र जो भाव, उसके अतिरिक्त अज्ञानी ने कहे हुए कुशास्त्र, भले कोई कुयुक्ति और न्याय से ऐसा कहे कि हमारे शास्त्र महान्यायवाले हैं। यह बौद्ध में बहुत युक्तियाँ न! धूल भी नहीं, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो अनेकान्त—स्व में स्वपना, स्व में परपना नहीं—ऐसा जो सिद्धान्त का स्वरूप और शास्त्र का तथा वस्तु का (स्वरूप), ऐसा कहीं अन्यत्र है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे कुशास्त्र जिसने राग के परिणाम से धर्म मनाया है और माना है और जिसने एक समय की पर्याय को ही पूर्ण आत्मा माना, वह पर्यायबुद्धिवाले बौद्धमति हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

और ऐसे बौद्धमति के शास्त्र हों कि ऐसे सबको करुणा, सबका ऐसा करना, सबका ऐसा करना, फलाना करना, मदद करना, साधर्मियों की सेवा करना। ऐसा-ऐसा मध्यम मार्ग है न उनका। उत्कृष्ट मार्ग निकाल डाला है, अपवाद आदि कहा है। ऐसा लोगों को बहुत दया... उनके कथनों को वे सुखलालजी जैसे पहिचान करे कि ओहो! बौद्ध में तो कैसा है! सांख्य में तो कैसा है! ऐसा कहे। आहाहा! समझ में आया? आत्मा के स्वभाव को छूकर-स्पर्शकर.... वाणी कहीं स्पर्शी नहीं उसे। परन्तु उस काल में उसके वाणी के योग से वाणी जो आयी। उस वाणी के शास्त्र के समक्ष दुनिया के कुशास्त्र... समझ में आया? उन कुशास्त्र की भक्ति नहीं होती। उन्हें पूजता नहीं, उन्हें मानता नहीं। आहाहा! त्रिलोकनाथ की वाणी, आचार्यों की वाणी!

भाई ने तो एकबार ऐसा कहा है न, नहीं? सोगानी ने। एक ओर ऐसा कहा कि भगवान की वाणी सुनने में नुकसान है। एक ओर कहा कि आचार्यों के वचन शब्द में आनन्द की बूँद झरती है।

मुमुक्षु : पुद्गल में आनन्द की बूँद झरे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसका यहाँ लक्ष्य है, इसलिए यहाँ आनन्द की बूँद झरती है, ऐसी बात है। यह जो कहना है, वह मेरा लक्ष्य जो मैं हूँ, उसका उसे कहना है। समझ में आया ? मेरा जहाँ ध्येय-लक्ष्य पड़ा है, ऐसा आत्मा, उसकी दशा और उसके द्रव्य-गुण की बात वह करता है। ऐसे अपने ध्येय के लक्ष्य से जो पढ़ता है, उसे आनन्द की बूँद झरती है, कहते हैं। आहाहा! गजब बातें हैं।

एक ओर कहना है कि निमित्त से लाभ माननेवाले गहरे-गहरे मिथ्यात्व को सेवन करते हैं। उसे शुभ उपयोग है और शुभ उपयोग से धर्म मानता है, वह नपुंसकता है। वह नपुंसक है, वह आत्मा नहीं। समझ में आया ? दूसरी ओर कहना कि आचार्यों-सन्तों, कुन्दकुन्दाचार्य आदि आचार्यों के वचन अर्थात् शब्द हों। जो वचनों में रमनेवाले शब्द हैं, ऐसा है। आचार्यों के शब्दों में। अरे,... आनन्द की बूँद झरती है, कहते हैं। मुनि से बात है न! अपना आनन्दस्वभाव भगवान और यह बात उसमें कही है। वह कहते ही उसका लक्ष्य ध्रुव के ऊपर जोर जाता है, इसलिए वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द के बिन्दु झरते हैं। समझ में आया ? आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! स्याद्वाद का कथन, उसे न समझे और एकान्त खींच जाये तो वह वस्तु नहीं समझ सकता। समझ में आया ? ओहो! सन्तों की वाणी! अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्द आचार्य, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, पूज्यपादस्वामी, समन्तभद्र आचार्य इत्यादि।

कहते हैं, उसके बिना के अज्ञानियों ने अपनी कल्पना से शास्त्र किये। और कुदेवों की सेवा साथ में डाल दिया। पाठ में कुशास्त्र है अकेला। परन्तु वह कुशास्त्र और कुदेव, उनकी सेवा। उसमें भी कुछ, कुछ तो है न, सब धर्म है न, सब धर्मों ने आत्मा के उद्धार की बातें की हैं न! समझ में आया ? यह समकित का अतिचार है। यह अतिचार समकिती को होता नहीं।

★ ★ ★

काव्य - ३९

(चौपाई)

अतीचार ए पंच परकारा।
समल करहिं समकितकी धारा।।
दूषन भूषन गति अनुसरनी।
दसा आठ समकितकी वरनी।।३९।।

अर्थः–ये पाँच प्रकार के अतिचार सम्यग्दर्शन की उज्ज्वल परिणति को मलिन करते हैं। यहाँ तक सम्यग्दर्शन को सदोष व निर्दोष दशा प्राप्त करनेवाले आठ विवरण वर्णन किये।।३९।।

काव्य-३९ पर प्रवचन

अतीचार ए पंच परकारा।
समल करहिं समकितकी धारा॥
दूषन भूषन गति अनुसरनी।
दसा आठ समकितकी वरनी॥३९॥

दूषण का वर्णन किया। भूषण का वर्णन किया। सब वर्णन किया अभी तक, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो न, यह बनारसीदास ज्ञानी थे, समकिती थे। उन्होंने यह वर्णन किया। यह पाँच प्रकार के अतिचार सम्यक्त्व के उज्ज्वल परिणति को मलिन करते हैं। है न? **समल करहिं समकितकी धारा।** दूषण और भूषण। **यहाँ तक सम्यग्दर्शन को सदोष व निर्दोष दशा प्राप्त करनेवाले आठ विवरण वर्णन किये।** पहले से कहा था आठ का। समझ में आया? आया था न २६वाँ? २६, २६। समकित के आठ विवरण। २६वाँ बोल। पृष्ठ ३७५। समकित के आठ विवरण, है न? उसका यह वर्णन हो गया अभी तक। दोष का, गुण का। गुण अर्थात् भूषण का। दूषण और भूषण।

मोहनीयकर्म की सात प्रकृतियों के अनुदय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। यह

बात करते हैं। निमित्त का कथन है। अपने आत्मा के आनन्दस्वरूप ध्रुव को पकड़ने से जो सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ उसे सात प्रकृतियों का उदय नहीं होता। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ४०

मोहनीयकर्म की सात प्रकृतियों के अनोदय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है (दोहा)

प्रकृति सात अब मोहकी, कहूं जिनागम जोइ।
जिनकौ उदै निवारिकै, सम्यग्दरसन होइ।।४०।।

अर्थः–मोहनीयकर्म की जिन सात प्रकृतियों के अनोदय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उन्हें जिनशासन के अनुसार कहता हूँ।।४०।।

काव्य-४० पर प्रवचन

प्रकृति सात अब मोहकी, कहूं जिनागम जोइ।
जिनकौ उदै निवारिकै, सम्यग्दरसन होइ॥४०॥

यह तो निमित्त से है। आत्मा के स्वरूप के पूर्ण आनन्द की जहाँ एकता हुई, ऐसी दृष्टि में यह सात प्रकृति का उदय वहाँ होता नहीं। होता नहीं। यह तो यहाँ से बात की है। ज्ञान कराना है न! समझ में आया? जयसेनाचार्य की टीका में भी आता है। यह अभव्य को सात प्रकृति के कारण से समकित नहीं। टालता नहीं इसलिए। इसलिए उसे सम्यग्दर्शन हो, (तब) उसका उसे उदय होता नहीं। वह टले तो समकित हो, यह सब बात व्यवहार की है। समझ में आया? कर्म का पूरा सिद्धान्त या कर्म की प्रकृति है, वह टले तो हो, वह सब व्यवहार के कथन हैं। जो, आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके घर में गया तो पर के अज्ञानभाव से बँधी हुई प्रकृति थी, वह वहाँ रहती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

प्रकृति सात अब मोहकी, कहूं जिनागम जोइ। वीतरागमार्ग में होती है, अन्यत्र यह बात होती नहीं। कैसे बताते हैं? कि आत्मा का त्रिकाली स्वभाव जैसा सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा जिसने जाना और माना, उसे एक दूसरी प्रकृति निमित्तरूप थी, उसका उसमें अभाव होता है। समझ में आया? जैसे दोष का अभाव होता है, वैसे उस प्रकृति का भी (अभाव होता है)। जिस दोष में मिथ्यात्व का अभाव होता है, ऐसे मिथ्यात्व को निमित्तरूप जो प्रकृति थी, उसका भी अभाव (होता है)। आहाहा! ऐसा उसका स्वरूप है, ऐसा वर्णन करते हैं। जहाँ आत्मा का उजाला हुआ, वहाँ अन्धकार नहीं रहता। आहा! और अन्धेरे में निमित्त जो हो, वह भी (नहीं) रहता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अब ऐसा धर्म भारी सूक्ष्म अन्दर! इसकी अपेक्षा तो व्रत पालो, अपवास करो, बस। 'तपसा निर्जरा' सीधा-सट्ट। जितने अपवास करो उतना लाभ। अठ्ठम करो और उसमें एक पोरसी कराओ तो पच्चीस अपवास का लाभ। ऐई, चिमनभाई! देखो तो यह बेचारा क्या करे? अरेरे! जाति को जाना नहीं और जाति को कैसे जाना जाये, उसकी खबर नहीं तो क्या हो! वह परमात्मा है, हों! वह भगवान है न! आहाहा! भगवान भूल गया....। भगवान भूला की खिड़की में चढ़ गया। वह आत्माराम है न! उसके दादा भगवान वे हो गये हैं। उनकी खिड़की में रहता है वह। है आत्माराम। आहाहा! आत्माराम अविनाशी आया अकेला। आहाहा!

मोहनीयकर्म की जो सात प्रकृतियों का अनुदय। भले वहाँ क्षयोपशम समकित में उसका उदय हो परन्तु तो भी उसका जोर, ऐसा कहकर सातों का अनुदय कहा। **जिनकौ उदै निवारिकै।** समझे? भाषा ऐसी है। फिर किसी ने तकरार लिया इसमें। कि भाई! क्षयोपशम समकित में समकित में उसे उदय होता है। ऐई! सातों का तो अनुदय कैसे कहा? उदय पर्याय में नहीं, सुन न! यह मल जरा होता है, परन्तु उस मल से समकिती भिन्न है। समझ में आया? और उसका निमित्त जो प्रकृति, उससे भी भिन्न है। समकिती को उदय है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : होवे तो सही.....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उसे अपनी पर्याय में नहीं, ऐसा कहना है यहाँ तो। इसलिए अनुदय, ऐसा। पाठ है न, देखो न! **प्रकृति सात मोहकी कहूं, जिनकौ उदै निवारिकै,...**

ऐसा है न! सातों का। शब्द तो ऐसा है। सातों का **उदै निवारिकै सम्यग्दर्शन होइ।**

सात प्रकृति है न। चार अनन्तानुबन्धी और तीन—मिथ्यात्व, मिश्र और समकितमोहनीय। सातों का अस्तित्व आत्मा के अनुभव के समकित में है नहीं। समझ में आया? ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि जिसने भगवान आत्मा को पकड़ा, अनुभव किया, वह आनन्द का धाम जिसने अनुभव में लिया, उसे सात प्रकृति का उदय है (नहीं)। उदय है ही नहीं। वह समकितमोहनीय का उदय उसे यहाँ भी वास्तव में गिना नहीं है। उदय अर्थात् समकिती को (राग के) उदय में उदय से भिन्न है वह तो। समझ में आया? आहाहा! गजब! मोहनीयकर्म की सात प्रकृति के नाम अब। उनके नाम दिये।

यह तो वस्तुस्थिति। ऐसा धर्म... धर्म तो बहुत से कहते हैं। समझ में आया? और आत्मा... आत्मा तो बहुत कहते हैं। परन्तु भगवान ने देखा हुआ—कहा हुआ आत्मा और उसमें भरे हुए धर्म और उनका आश्रय होकर प्रगट हुई दशा में मलिनता का पहला भाव था, उसका अभाव। मलिनता की प्रकृति का उसमें निमित्त था, वह अस्ति थी, उसका अभाव। आहाहा! समझ में आया? ऐसे धर्म प्रगट हुआ... प्रगट हुआ धर्म... प्रगट हुआ। परन्तु प्रगट नहीं हुआ था, तब क्या था? समझ में आया? तब मैल था। परन्तु मैल था तो उसका निमित्त कौन था मैल का? ऐसे मैल जीव का स्वभाव नहीं। वह निमित्त को बताया कि निमित्त के आधीन यह मैल था। निमित्त ने कराया, ऐसा नहीं। इसलिए निमित्त के आधीन हुआ मैल और निमित्त, वह आत्मा का भान होने पर उन सबका अनुदय हो जाता है। उसे वहाँ रहता नहीं। आहाहा! ऐई! गजब भाई ऐसा पद यह!

मुमुक्षु : बहुत गहराई की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गहराई है? करणानुयोग में विकार और अविकार, ऐसा आता है वहाँ। आता है। करणानुयोग में विकार और विकार का फल है। द्रव्यानुयोग में अविकार स्वभाव और स्वभाव की पर्याय हो कथन में। करणानुयोग में तो शुद्धता का भी है और अशुद्धता का भी है, उसका फल भी है और उसमें निमित्त—यह सब उसमें (वर्णन) करणानुयोग में है। शान्तिभाई! पढ़ी है न यह पुस्तक? ली है न यह? उसमें यह आता है।

चार अनुयोग की व्याख्या आती है न, वहाँ करणानुयोग की व्याख्या में ऐसा है। उसमें विकार और विकार का फल यह है। और द्रव्यानुयोग में स्वभाव और स्वभाव का फल। चरणानुयोग में चारित्र की स्थिति, ऐसा लिया है। चरणानुयोग में चारित्र जो है, उसकी, उसके अतिरिक्त व्यवहारचारित्र के विकल्प का भी कथन है। वह तो ठीक बात कथानुयोग की। यह किये हुए, यह बात। किये हुए भाव के करनेवाले थे, उनकी कथा। कहो, समझ में आया? यहाँ तो मार्ग ऐसा है न, भाई! कुछ पौने सोलह आना चले नहीं इसमें। सोलह-सोलह आना (पूर्ण रुपया) चाहिए स्पष्ट। समझ में आया? वस्तुस्थिति है, उसमें कहाँ किसी के घर की है यह?

यहाँ तो **जिनकौ उदै निवारिकै, सम्यग्दरसन होइ।** और कोई विवाद करना चाहे, उसका अर्थ बाद में किया। यह सातों प्रकृति का अभाव (होता है), उसे समकित होता है। तो क्षयोपशम समकित में वह नहीं। प्रकृति यहाँ गिनती में ली नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब इनके—सात प्रकृतियों के नाम।

★ ★ ★

काव्य - ४१

मोहनीयकर्म की सात प्रकृतियों के नाम (सवैया इकतीसा)

चारित मोहकी च्यारि मिथ्यातकी तीन तामैं,
प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी।
बीजी महा-मानरसभीजी मायामयी तीजी,
चौथी महालोभ दसा परिग्रह पोहनी।।
पाँचइ मिथ्यातमति छट्ठी मिश्रपरनति,
सातईं समैं प्रकृति समकित मोहनी।
एई षट विगवनितासी एक कुतियासी,
सातौं मोहप्रकृति कहावैं सत्ता रोहनी।।४१।।

---

१. यह शब्द गुजराती भाषा का है।

शब्दार्थ:–चारितमोह=जो आत्मा के चारित्र गुण का घात करे। अनंतानुबंधी=जो आत्मा के स्वरूपाचरण चारित्र को घाते=अनंत संसार के कारणभूत मिथ्यात्व के साथ जिनका बंध होता है। कोहनी=क्रोध। [१]बीजी=दूसरी। पोहनी=पुष्ट करनेवाली। विगवनिता=व्याघ्रनी। कुतिया=कूकरी–अथवा कर्कशा स्त्री। रोहनी=ढँकनेवाली।

अर्थ:–सम्यक्त्व की घातक चारित्रमोहनीय की चार और दर्शनमोहनीय की तीन ऐसी सात प्रकृतियाँ हैं। उनमें से पहली अनंतानुबंधी क्रोध, दूसरी अभिमान के रंग से रंगी हुई अनंतानुबंधी मान, तीसरी अनंतानुबंधी माया, चौथी परिग्रह को पुष्ट करनेवाली अनंतानुबंधी लोभ, पाँचवीं मिथ्यात्व, छट्ठी मिश्र मिथ्यात्व और सातवीं सम्यक्त्वमोहनीय है। इनमें से छह प्रकृतियाँ व्याघ्रनी के समान सम्यक्त्व के पीछे पड़कर भक्षण करनेवाली हैं, और सातवीं कुतिया अर्थात् कुत्ती वा कर्कशा स्त्री के समान सम्यक्त्व को सकंप वा मलिन करनेवाली है। इस प्रकार ये सातों प्रकृतियाँ सम्यक्त्व के सद्भाव को रोकती हैं।।४१।।

काव्य-४१ पर प्रवचन

चारित मोहकी च्यारि मिथ्यातकी तीन तामैं,
प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी।
बीजी महा-मानरसभीजी मायामयी तीजी,
चौथी महालोभ दसा परिग्रह पोहनी॥
पाँचइ मिथ्यातमति छट्ठी मिश्रपरनति,
सातईं समैं प्रकृति समकित मोहनी।
एई षट विगवनितासी एक कुतियासी,
सातौं मोहप्रकृति कहावैं सत्ता रोहनी॥४१॥

चार क्रोध-मान-माया-लोभ और पाँच मिथ्यात्व।

अर्थ : **विगवनिता**—व्याघ्रनी अथवा स्त्री व्यभिचारी स्त्री कही। **कुतियारी**—समकित मोहनीय कुत्ती जैसी है, कहते हैं। वह व्याघ्री (बाघिन) जैसी है। यह आत्मा की सत्ता में रोकनेवाली निमित्तरूप प्रकृति सात होती हैं। विशेष आगे कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पद ४२ से ४९ पर प्रवचन उपलब्ध न होने से
मात्र मूल पद दिये गये हैं।

सम्यक्त्वों के नाम

(छप्पय छंद)

सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंडित।
सात प्रकृति छय करन-हार छायिकी अखंडित।।
सातमांहि कछु खपैं, कछुक उपसम करि रक्खै।
सो छय उपसमवंत, मिश्र समकित रस रक्खै।।
षट प्रकृति उपसमै वा खपैं, अथवा छय उपसम करै।
सातईं प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरै।।४२।।

शब्दार्थ:-अखंडित=अविनाशी। चक्खै=स्वाद लेवे। खपैं=क्षय करे।

अर्थ:-जो ऊपर कही हुई सातों प्रकृतियों को उपशमाता है, वह औपशमिक-सम्यग्दृष्टि है। सातों प्रकृतियों का क्षय करनेवाला क्षायिकसम्यग्दृष्टि है, यह सम्यक्त्व कभी नष्ट नहीं होता। सात प्रकृतियों में से कुछ क्षय हों और कुछ उपशम हों तो वह क्षयोपशमसम्यक्त्वी है, उसे सम्यक्त्व का मिश्ररूप स्वाद मिलता है। छह प्रकृतियाँ उपशम हों वा क्षय हों अथवा कोई क्षय और कोई उपशम हो केवल सातवीं प्रकृति सम्यक्त्व मोहनीय का उदय हो तो वह वेदक सम्यक्त्वधारी होता है।।४२।।

★ ★ ★

सम्यक्त्व के नव भेदों का वर्णन

(दोहा)

छयउपसम वरतै त्रिविधि, वेदक च्यारि प्रकार।
छायक उपसम जुगल जुत, नौधा समकित धार।।४३।।

शब्दार्थ:-त्रिविधि=तीन प्रकार का। जुगल=दो। जुत=सहित।

अर्थ:-क्षयोपशमसम्यक्त्व तीन प्रकार का है, वेदकसम्यक्त्व चार प्रकार का है,

और उपशम तथा क्षायिक ये दो भेद और मिलाने से सम्यक्त्व के नव भेद होते हैं।।४३।।

★ ★ ★

क्षयोपशमसम्यक्त्व के तीन भेदों का वर्णन

(दोहा)

च्यारि खिपै त्रय उपसमै, पन छै उपसम दोइ।
छै षट् उपसम एक यौं, छयउपसम त्रिक होइ।।४४।।

अर्थः–(१) चार[१] का अर तीन[२] का उपशम, (२) पाँच[३] का क्षय दो[४] का उपशम, (३) छह[५] का क्षय एक का उपशम, इस प्रकार क्षयोपशमसम्यक्त्व के तीन भेद हैं।।४४।।

★ ★ ★

वेदकसम्यक्त्व के चार भेद

(दोहा)

जहां च्यारि परकिति खिपहिं, द्वै उपशम इक वेद।
छय–उपसम वेदक दसा, तासु प्रथम यह भेद।।४५।।
पंच खिपैं इक उपसमै, इक वेदै जिहि ठौर।
सो छय–उपशम वेदकी, दसा दुतिय यह और।।४६।।
छै षट वेदै एक जो, छायक वेदक सोइ।
षट उपसम इक प्रकृति विद, उपसम वेदक होइ।।४७।।

---

१. अनंतानुबंधी की चौकड़ी।
२. दर्शनमोहनीय का त्रिक।
३. अनंतानुबंधी चौकड़ी और महामिथ्यात्व।
४. मिश्रमिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति।
५. अनंतानुबंधी की चौकड़ी, महामिथ्यात्व और मिश्र।

अर्थः–(१) जहाँ [१]चार प्रकृतियों का क्षय [२]दो का उपशम और [३]एक का उदय है वह प्रथम क्षयोपशमवेदकसम्यक्त्व है, (२) जहाँ [४]पाँच प्रकृतियों का क्षय [५]एक का उपशम और एक का उदय है वह द्वितीय क्षयोपशमवेदकसम्यक्त्व है, (३) जहाँ [६]छह प्रकृतियों का क्षय और एक का उदय है, वह क्षायिकवेदकसम्यक्त्व है, (४) जहाँ [७]छह प्रकृतियों का उपशम और एक का उदय है, वह उपशमवेदकसम्यक्त्व है।।४५–४७।।

★ ★ ★

यहाँ क्षायिक व उपशमसम्यक्त्व का स्वरूप न कहने का कारण

(दोहा)

उपसम छायककी दसा, पूरव षट पदमांहि।
कही प्रगट अब पुनरुकति, कारन वरनी नांहि।।४८।।

शब्दार्थः–पुनरुकति (पुनरुक्ति)=बार बार कहना।

अर्थः–क्षायिक और उपशमसम्यक्त्व का स्वरूप पहले ४२वें छप्पय छन्द में कह आये हैं, इसलिए पुनरुक्ति दोष के कारण यहाँ नहीं लिखा।।४८।।

★ ★ ★

नव प्रकार के सम्यक्त्वों का विवरण

(दोहा)

छय–उपसम वेदक खिपक, उपसम समकित च्यारि।
तीन च्यारि इक इक मिलत, सब नव भेद विचारि।।४९।।

अर्थः–क्षयोपशमसम्यक्त्व तीन प्रकार का, वेदकसम्यक्त्व चार प्रकार का और उपशमसम्यक्त्व एक तथा क्षायिकसम्यक्त्व एक, इस प्रकार सम्यक्त्व के मूल भेद चार और उत्तरभेद नव हैं।।४९।।

---

१. अनंतानुबंधी की चौकड़ी। २. महामिथ्यात्व और मिश्र। ३. सम्यक्प्रकृति। ४. अनंतानुबंधी चौकड़ी और महामिथ्यात्व। ५. मिश्र। ६. अनंतानुबंधी की चौकड़ी, महामिथ्यात्व और मिश्र। ७. अनंतानुबंधी की चौकड़ी, महामिथ्यात्व और मिश्र।

प्रवचन नं. १८६, आसोज कृष्ण अमावस्या, मंगलवार, दिनांक १९-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, पद ५० से ५३

चौथे गुणस्थान का वर्णन है। सम्यग्दर्शन—अनन्त काल में अपूर्व दर्शन, अपूर्व प्रतीति का अधिकार है। वैसे तो दीपावली है न आज! भगवान आज मोक्ष पधारे। अनादिसांत संसार हो गया। सादिअनन्त सिद्ध हो गये। शान्ति का, अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण स्वकाल जहाँ प्रगट हो गया, उसका नाम मुक्ति। मुक्ति एक समय में होती है। संसार की पर्याय चौदहवें गुणस्थान तक होती है। उसका व्यय होकर, नाश होकर आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा प्रगट होना, उसका नाम सिद्धदशा कहा जाता है। ऐसा समय तो जीव को किसी समय होता है, मुक्ति को पानेवाले जीव। परन्तु इस सम्यग्दर्शन को पाने के लिये भी किसी समय होते हैं। समझ में आया? इसने अनन्त काल में जो कुछ करने का था। '**णियमेण य जं कज्जं**' नियमसार में है। जो निश्चय से जीव को करनेयोग्य, वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की पर्याय है। लो, एक ओर कहे कि द्रव्य पर्याय को करता नहीं। '**णियमेण य जं कज्जं**' भगवान आत्मा में पर्याय अर्थात् अवस्था में निश्चय से कर्तव्य से परिणमन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा का परिणमन होना, उसका नाम आत्मा का निश्चय आवश्यक क्रिया है। वह क्रिया इसने अनन्त काल में (की नहीं)। भटकते में कहीं शरण लिया नहीं इसने। उसका यहाँ वर्णन कहते हैं। समकित के चार प्रकार, है न? प्रतिज्ञा।

★ ★ ★

काव्य - ५०

प्रतिज्ञा (सोरठा)

अब निहचै विवहार, अरु सामान्य विशेष विधि।
कहौं च्यारि परकार, रचना समकित भूमिकी।।५०।।

अर्थः-सम्यक्त्व सत्ता की निश्चय, व्यवहार, सामान्य और विशेष ऐसी चार विधि कहते हैं।।५०।।

काव्य-५० पर प्रवचन

अब निहचै विवहार, अरु सामान्य विशेष विधि।
कहौं च्यारि परकार, रचना समकित भूमिकी॥५०॥

समकित अर्थात् आत्मा का अनुभव होकर उसमें प्रतीति होना, यह पहले में पहली अपूर्व धर्म की दशा है। समझ में आया? उसके चार प्रकार। निश्चय समकित : अभेद की प्रतीति अनुभव में। व्यवहार : भेद की प्रतीति व्यवहार समकित। सामान्य और विशेष : बहु चैतन्य का भान होकर अकेला विशेष ज्ञान न हो, तथापि अनुभव हो। विशेष ज्ञान न हो, तिर्यंच को विशेष ज्ञान होता नहीं। तथापि वह आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसी अन्दर में स्वसन्मुख होकर जन्म-मरण की गाँठ गलाकर सामान्य समकित होता है और विशेष हेय-उपादेय का ज्ञान करके, हेय-उपादेय का ज्ञान करके होता है, उसे विशेष कहते हैं। यह **रचना समकित भूमिकी**—समकित की भूमिका है एक। आत्मा के गुणस्थान में गुण अर्थात् पर्याय का स्थान है, वह भूमि है। आहाहा! अब, समकित के चार प्रकार कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ५१

सम्यक्त्व के चार प्रकार (सवैया इकतीसा)

मिथ्यामति-गंठि-भेदि जगी निरमल जोति,
जोगसौं अतीत सो तो निहचै प्रमानियै।
वहै दुंद दसासौं कहावै जोग मुद्रा धरै,
मति श्रुतग्यान भेद विवहार मानियै।।
चेतना चिहन पहिचानि आपा पर वेदै,
पौरुष अलख तातैं सामान्य बखानियै।
करै भेदाभेदकौ विचार विसतार रूप,
हेय गेय उपादेयसौं विशेष जानियै।।५१।।

शब्दार्थ:–गंठि (ग्रंथि)=गाँठ। भेदि=नष्ट करके। अतीत=रहित। दुंददसा=सविकल्पता।

अर्थ:–मिथ्यात्व के नष्ट होने से मन, वचन, काय के अगोचर जो आत्मा की निर्विकार श्रद्धान की ज्योति प्रकाशित होती है, उसे निश्चय सम्यक्त्व जानना चाहिए। जिसमें योग, मुद्रा, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि के विकल्प हैं, वह व्यवहार सम्यक्त्व जानना। ज्ञान की अल्प शक्ति के कारण मात्र चेतना चिह्न के धारक आत्मा को पहिचानकर निज और पर के स्वरूप का जानना, सो सामान्य सम्यक्त्व है, और हेय ज्ञेय उपादेय के भेदाभेद को सविस्ताररूप से समझना, सो विशेष सम्यक्त्व है।।५१।।

काव्य-५१ पर प्रवचन

मिथ्यामति-गंठि-भेदि जगी निरमल जोति,
जोगसौं अतीत सो तो निहचै प्रमानियै।
वहै दुंद दसासौं कहावै जोग मुद्रा धरै,
मति श्रुतग्यान भेद विवहार मानियै॥
चेतना चिहन पहिचानि आपा पर वेदै,
पौरुष अलख तातैं सामान्य बखानियै।
करै भेदाभेदकौ विचार विसतार रूप,
हेय गेय उपादेयसौं विशेष जानियै॥५१॥

कहते हैं कि निश्चयसमकित—सच्चा समकित अर्थात् सच्चा हो जैसा उसका स्वभाव है। सत्य पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, उसका अन्तर में भान होकर प्रतीति होना। वह **मिथ्यामति-गंठि-भेदि**—यह राग की एकता की गाँठ को छेदकर। अनादि की विभावदशा के साथ जो एकता, वह मिथ्याग्रन्थी है। वह मिथ्यामति है और मिथ्यामति की गाँठ है। आहाहा! समझ में आया? उसे भेदकर, स्वरूप पूर्णानन्द प्रभु की अभेददृष्टि होना, तब राग की एकता की बुद्धि का नाश होता है। उसे सच्चा समकित, धर्म की पहली दशा, धर्म की पहली सीढ़ी (कहते हैं)। वस्तु ऐसी है। समझ में आया?

यहाँ तो नास्ति से बात होती है। **मिथ्यामति-गंठि-भेदि...** परन्तु उसका अर्थ यह है कि चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु के सन्मुख होकर जहाँ स्वभाव की एकता द्रव्य के साथ हुई, तब मति की राग के साथ मिथ्यामति थी एकान्त, वह छूट गयी है। समझ में आया? उसमें वह करे तो समकित हो और यह करे तो समकित, ऐसा इसमें कहीं नहीं आया। यह आया।

मुमुक्षु : सन्मुख होवे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया। परन्तु ऐसा कि वेदना के कारण समकित हो, आता है न शास्त्र में? देव-ऋद्धि देखे और समकित हो। यह सब निमित्त के कथन हैं ये तो। यह (समकित) हो, तब उस समय लक्ष्य वहाँ से छूटा था, उसे समझाने की बात है। आहाहा! बहुत कठिन बात जगत को। पहले में पहला जन्म-मरण का अन्त लाने का उपाय एक। बारम्बार यह उसका समय नहीं आता। समझ में आया?

कहते हैं कि **मिथ्यामति-गंठि-भेदि...** मिथ्यात्व के नष्ट होने से। '**भेदि**' है यहाँ तो। नष्ट होने से। तो फिर कोई कहे, यह तो मिथ्यात्व का नाश हो, तब यहाँ होता है।

मुमुक्षु : वह तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कथन में तो ऐसा ही आवे न! और यहाँ तो **मिथ्यामति-गंठि-भेदि...** राग विकल्प सूक्ष्म में सूक्ष्म। शुभ विकल्प के तीन प्रकार—(१) भक्ति का विकल्प—भगवान, गुरु आदि का। (२) एक क्रिया का विकल्प—दया, दान का और (३) एक गुण-गुणी के भेद का विकल्प। तीनों विकल्प हैं, राग है। उस राग के साथ एकत्वबुद्धि; त्रिकाली स्वभाव और विकार के साथ एकत्वबुद्धि, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? अब उसमें यह स्त्री, पुत्र और मकान और पैसा मेरा... मेरा... मेरा... आहाहा! भाई! ऐसा तो जब बाबा हो, तब समझ में आये। बाबा ही है, सुन न! कहाँ तू परद्रव्य में गया है? परद्रव्य के अस्तित्व में तेरा अस्तित्व कभी गया नहीं और तेरे अस्तित्व में परद्रव्य का अस्तित्व कभी आया नहीं। आहाहा! गजब!

दृष्टि उठा, कहते हैं। राग की एकता की दृष्टि का नाश होने से **जगी निरमल जोति।** ज्ञानस्वरूप भगवान निर्मलानन्द जागृत हुआ। **जोगसौं अतीत....** ऐसी चैतन्य की

निर्मल दशा जागृत हो, तब ग्रन्थी का भेद हो जाता है। **जोगसौं अतीत....** वह मन-वचन और काया का विकल्प और कम्पन, उससे भिन्न है। समकित योग से भी भिन्न है। **जोगसौं अतीत.... मन, वचन, काय के अगोचर।** मन को गम्य नहीं, वाणी (के) गम्य नहीं और काया के गम्य नहीं, विकल्प के गम्य नहीं। आहाहा! शुभराग के भी समकित गम्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! **जगी निरमल जोति,...** ज्ञानानन्दस्वरूप मैं, ऐसा ज्ञायकभाव का अन्तर में भ्रमणा का नाश होकर, निर्भ्रान्त—अभ्रान्त ऐसी सम्यग्दर्शन निर्विकल्पदशा आनन्द को लेती दशा प्रगट हो, उसे सच्चा समकित कहते हैं। कहो, समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह निश्चयसमकित (कहना), वह समकित सच्चा नहीं। वह सब व्यवहार में जाता है। परन्तु यह निश्चय हुआ हो तो उसको व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! भारी कठिन।

जोगसौं अतीत सो तो निहचै प्रमानियै—उसे सच्चा सत्य निश्चय समकित प्रमाणिये, जानिये। आहाहा! समझ में आया? और इस सम्यग्दर्शन बिना सब बिना एक के शून्य है। व्रत करे और तप करे, वे सब अज्ञान बालतप और बालव्रत है। मूर्खता से भरपूर व्रत और मूर्खता से भरपूर तप। आहाहा! समाज का बड़ा भाग अन्यत्र चढ़ा हो, उसे यह ऐसा लगे। जेठाभाई! ऐसे होशियार लोग भी चढ़ गये उसमें—गर्म पानी पीना और यह करना और वह करना। कौन पानी पीवे और कौन पानी छोड़े? आहाहा! परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा में कहाँ है? समझ में आया? यह तो चैतन्यमूर्ति ज्ञायकभाव ज्ञायकस्वभाव से भरपूर, ऐसा पदार्थ और सुख और आनन्द, वह सुखरूपी आनन्द अतीन्द्रिय धाम भगवान है। उसके ऊपर थाप पड़ने पर—उसके ऊपर दृष्टि जाने से जो सम्यग्दर्शन होता है, उसे सच्चा समकित कहते हैं। कहो, बलुभाई! अरे, गजब बात!

पैसा इकट्ठा करने में ऐसी मेहनत नहीं पड़ी। वहाँ तो वह पुण्य के परमाणु होते हैं।

मुमुक्षु : वह तो की ही कहाँ है? कौन कर सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाई पहले थे साधारण, अभी पैसे कितने इकट्ठे किये। दस लाख सरकार के और दस लाख अपने और बड़ा क्या कहलाता है वह? दवाखाना... कारखाना। कहो, किसका कारखाना? कौन करे? आहाहा! भाई! तू तो पर से निवृत्तस्वरूप

है न! पर से तो अभावस्वरूप है। वह पर से अभावस्वरूप पर को क्या करे? अरे, वह तो राग से अभावस्वरूप है। राग से सद्भावस्वरूप हूँ, यह तो मिथ्यागाँठ है। समझ में आया? उसे भेदकर और **जोगसौं अतीत**—योगातीत हो गया। समकित हुआ, वहाँ योगातीत हो गया, कहते हैं। शुभ-अशुभ विकल्प और कम्पन दोनों से रहित है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! ऐसा मार्ग है, भाई!

कुछ कृपा हो जाती होगी या नहीं? आहाहा! किसकी कृपा और किसकी सत्ता? कृपा की पर्याय तो उसमें रही। यहाँ समकित की सत्ता तो त्रिकाली सत्ता के आश्रय से होती है। उसमें कृपा क्या काम करे? आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या? कुछ नहीं। निमित्त का अर्थ ही—कुछ नहीं। नैमित्तिक अपनी दशा, आहाहा! पूर्ण आनन्द और ज्ञान और शान्ति से भरपूर प्रभु, उसके सन्मुख होकर जो स्वभाव में एकता होती है, उसे निश्चय समकित प्रमाण गिना जाता है। यहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। समझ में आया?

यह जन्म-मरण का अन्त आया, वहाँ अब और मुक्ति के किनारे आ गया वह। वस्तु रीति से तो मुक्ति हो गयी है। मुक्तस्वरूप का अनुभव में भान, वह मुक्त ही है। आहाहा! राग और बन्ध आदि, उसका तो ज्ञाता और परज्ञेयरूप से जाननेवाला है। समझ में आया? अरे, इसे ऐसा अवसर मिला, मनुष्यपने का, निगोद में से निकलकर, और कहाँ का कहाँ करने का रह गया और दूसरा करे। भाई! तेरा अवतार व्यर्थ जाता है। (अ)लेखे अर्थात् गिनती में आवे, ऐसा अवतार नहीं। गिनती में आवे, ऐसा यह अवतार है। आहाहा! अपने स्वभाव की परिपूर्णता के प्रति सन्मुखता पर्याय, राग और निमित्त से विमुखता, यह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

देखो न, एक शरीर में रोग आवे, पैसे इतने-इतने हों तो भी क्या करे? नवनीतभाई बेचारे को कैसे परिणाम! अपने तब भाई मोटाणी के यहाँ गये। चार-पाँच दस्त। क्या कहा वह? लो।

मुमुक्षु : लो ब्लडप्रेशर।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो ब्लडप्रेशर अर्थात् (दबाव) हल्का, ऐसा न? नीचे उतरता हुआ। उलझन। बापू! कहाँ-कहाँ तू है? ब्लडप्रेशर क्या दूसरा?

मुमुक्षु : हाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाई—ऊँचा। वह तो रजकण की दशा है न, भगवान! उस रजकण की दशा के परिणमन में तेरा अधिकार बिल्कुल नहीं। आहाहा! भले करोड़ों रुपये हों, अरबों हों, लो न!

मुमुक्षु : भले पूरी दुनिया की लक्ष्मी....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया की लक्ष्मी अर्थात् क्या परन्तु? वह तो उसका अस्तित्व उसमें है। यहाँ तो योग से अतीत, आहाहा! शुभ और अशुभ विकल्प से अलग भगवान है। ऐसे भगवान की अन्दर में अनुभव में आनन्द लेता ज्ञान और श्रद्धा हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अब व्यवहार। यह निश्चय की बात की। ऐसा जहाँ निश्चय हो, वहाँ वीतराग सर्वज्ञ जब तक न हो, तब उसे ऐसा एक व्यवहार होता है। कैसा? **वहै दुंद दसा—** द्वैतदशा। वह अद्वैत थी। आहाहा! गुण-गुणी का भेद और मति-श्रुतज्ञान की पर्याय की श्रद्धा और भेद की श्रद्धा। आहाहा! पण्डितजी! मति-श्रुतज्ञान आदि उसकी श्रद्धा सम्यक्, हों! जैसी पर्याय है, उसकी श्रद्धा, वह व्यवहार समकित है। समझ में आया? ... ऐसा मार्ग गजब, भाई! लोग तो ऐसा ही कहे, हों! भाई! यह तो दूसरा मार्ग निकाला। अपना पंथ चढ़ाया, कहते हैं। अरे, प्रभु! तेरा पंथ है न, नाथ! आहाहा! तुझमें है यह, भाई! आत्मा का पंथ यही है, बापू! कहीं दूसरा शरण है नहीं। वस्तु अभेद अखण्डानन्द प्रभु का सम्यग्दर्शन, वह निश्चय सच्चा है और पर्याय के भेद की श्रद्धा। आहाहा! **वहै दुंद दसा—** भेददशा। समझ में आया? चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, तेरहवाँ, चौदहवाँ, ऐसे गुणस्थान की श्रद्धा। भाई! यह गुणस्थान की श्रद्धा व्यवहार... व्यवहार विकल्प है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन की पर्याय, यह पर्याय है उसकी श्रद्धा, वह व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग!

वहै दुंद दसासौं कहावै जोग मुद्रा धरै,... योग अर्थात् विकल्प आदि हो इकट्ठा।

मुद्रा—ऐसे पर्याय में एकाग्र होकर विकल्प से उन सबकी श्रद्धा—भेद की, पर्याय की, उसे व्यवहार समकित कहते हैं। वह विकल्प है। समझ में आया? अर्थात् कि वह वास्तविक है नहीं, ऐसा। उपचार से उसे समकित कहा जाता है। बाकी है तो गुणस्थान की श्रद्धा आदि विकल्प राग। आहाहा! समझ में आया? चार तीर्थ की श्रद्धा और अपने गुणस्थान के भेद की श्रद्धा, वह सब विकल्प है। वह अभेद समकित है, उसे ऐसे विकल्प और व्यवहार समकित का आरोप दिया जाता है। समझ में आया? **वहै दुंद दसासौं कहावै जोग मुद्रा धरै,...** विकल्प से ऐसे एकाकार होना चाहे। समझ में आया? उसकी श्रद्धा, वह तो सभी विकल्पात्मक, रागात्मक व्यवहार समकित। है नहीं, उसे कहना, उसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? वह भी निश्चयसमकित हो उसे। अज्ञानी को व्यवहार समकित है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान! ऐसा मार्ग है, भाई! दुनिया को जँचे, न जँचे, उसमें किसी की सिफारिश वहाँ उसमें काम नहीं करती। आहाहा! दुःखी होकर अकेला रहता है या नहीं? देखो! आज्ञाकारी कुटुम्ब इकट्ठा हुआ हो, ऐसे पचास-सौ व्यक्ति। आठ-आठ पुत्र बड़े योद्धा जैसे और बाप मरने पड़े, वे रुपये और वह स्त्री और पुत्र उनमें रहे। बेचारा अकेला विकार को वेदे। और बहुत तो ऐसा बोले, हों! 'अरे! इसने पाप किये होंगे और या हमने बकरी का कान पकड़ा होगा और या इसने बकरी को मारा होगा। इसलिए अपने यह देखना (पड़े) पाप। आहाहा! जेठाभाई! वे ऐसा कहते हैं न? आहाहा!

अकेला ऐसे तड़पन-तड़पन करके ऐसा... राग और द्वेष के विकल्प में खड़ा हुआ दुःख के पंथ में पड़ा हुआ है यह। आहाहा! डाक्टर भी कहे, अब इंजेक्शन की बहुत आवश्यकता नहीं है। अब देखो, क्या होता है। घण्टे-दो घण्टे में अब... ऐसा बोले नहीं सीधा। परन्तु इसका अर्थ कि देखो अब। आहाहा! है कोई (शरण)? तब सम्यग्दर्शन में कोई आत्मा के अतिरिक्त दूसरा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसके दुःख के वेदन में भी दूसरा कोई नहीं तो आत्मा के सम्यग्दर्शन के वेदन में आत्मा के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ है नहीं। आहाहा! अरे, ऐसी चीज़ है, ऐसा सुनने को न मिले, वह कब विचार करे और कब अन्तर में परिणमन करे और उतारे? आहाहा!

बापू! मार्ग तो यह है। चौरासी के अवतार के डण्डे में से निकलना हो तो कहते हैं कि ऐसा निश्चय हो, वहाँ **दुंद दसा**—भेददशा, उसे श्रद्धना।

मति श्रुतग्यान भेद विवहार मानियै। भाषा, देखो न, कैसी की! सम्यग्दर्शन में जो मति-श्रुतज्ञान की (पर्याय) हो, उस पर्याय को श्रद्धना, वह व्यवहार है। आहाहा! द्रव्य को अनुभव करना श्रद्धा (करना), वह निश्चय है। समझ में आया? आहाहा! गजब भाई! यह संसार के ..... ऐसी क्रीड़ा में—व्यापार में चढ़ गये हों। होश और जोश में इसने यह किया। बापू! यह उत्साह बाहर में करता है, वह तो अकेला पाप का है। आहाहा! जहाँ उत्साह करना चाहिए, वहाँ उत्साह करता नहीं। जहाँ उद्यम करना चाहिए, वहाँ करता नहीं। उल्टे उद्यम करके माने, हम समकिती हैं। हम देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करनेवाले और जैनधर्म को माननेवाले हैं। अरे, भाई! जैनधर्म तो पर्याय है। आहाहा! वीतरागीपर्याय है। उसे माननेवाले वह भी पर्याय को माननेवाले व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! समझ में आया? देखो न, बनारसीदास ने स्वयं आप इसका स्पष्टीकरण किया है। आहाहा!

भगवान! तुझमें दो प्रकार—एक द्रव्य और दूसरा पर्याय। आहाहा! शान्तिभाई! कहो, ऐसा कहीं सुना था वहाँ? हो जाओ, त्याग करो। लेख में बहुत आता है। त्याग करो... त्याग करो... त्याग करो। यह त्याग की ही बात है, भगवान! मिथ्यात्व का त्याग, वहाँ समकित की उत्पत्ति, उसकी बात है यह तो। पहले मिथ्यात्व के त्याग बिना दूसरा त्याग आवे कहाँ से? आहाहा! **मति श्रुतग्यान भेद विवहार मानियै।** आहाहा! गजब बात है न!

कहते हैं, आत्मा का अनुभव होकर पूर्ण प्रभु की प्रतीति हुई, भान होकर, हों! ज्ञान होकर और आत्मा का आनन्द लेता हुआ, यह निश्चय है। यह सच्चा है, यह वास्तविक है और यथार्थ है। जो इस पर्याय की श्रद्धा करना, वह व्यवहार है। समझ में आया? ऐसा वीतरागमार्ग है, भाई! वीतरागियों ने सन्तों ने समवसरण में यह कहा था। **मति श्रुतग्यान भेद विवहार मानियै।** वाह! गजब! बनारसीदास ने भी...! मतिज्ञान सच्चा, हों! परन्तु पर्याय है न। आहाहा! गजब बात है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो विकल्प व्यवहार, वह तो एक ओर रखो, परन्तु अपनी पर्याय की श्रद्धा। आहाहा! ऐसा व्यवहार होता है,

परन्तु वह उपचार से उसे समकित कहा (जाता है)। वह वास्तविक वस्तु (समकित) नहीं। प्रेमचन्दभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! भाई! तेरे घर में यह है, हों! आहाहा!

अब हम कबहु न निज घर आये। यह आता है न? पण्डितजी! **अब हम कबहु न निज घर आये, पर घर भमत फिरत नाम अनेक धरायै।** एक की श्रद्धा, फिर अनेक की श्रद्धा को व्यवहार कहा जाता है, ऐसा कहते हैं, लो। अकेली अनेक की श्रद्धा, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! लो, यह भगवान का दीवाली दिन है यह। भगवान मोक्ष पधारे। पावापुरी। कोई और दूसरा कहता है.... नाम भी नहीं डाला। आत्मा आनन्द का गोला समश्रेणी से स्थिर हो गया वहाँ लोकान्त में। उसे २५०० वर्ष होंगे। यह २४९७ पूरे हुए। ९८ (शुरु) हुआ आज ही। कल तो (संवत्) ९८ का वर्ष शुरु होगा। परन्तु वास्तव में तो आज शुरु हो गया न यहाँ। अन्त आया और यह शुरु हो गया।

कहते हैं, अरे! यह **दुंद दसा**—भेददशा, ऐसी व्यवहार दशा, उसकी श्रद्धा करना वह विकल्पदशा है। आहाहा! समझ में आया? यह सच्ची श्रद्धा नहीं। समकिती को भी यह सच्ची श्रद्धा नहीं, उपचारी है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी को तो उपचार भी नहीं। अभी जगा नहीं वहाँ उपचार किसे करना? कहते हैं, **मति श्रुतग्यान भेद विवहार मानियै।** यह मतिज्ञान और यह श्रुतज्ञान और यह अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। ठीक। ऐई! अपने को केवलज्ञान तो है नहीं, परन्तु केवलज्ञान ऐसा होता है और ऐसा, ऐसे मानना, वह अभी व्यवहार है, कहते हैं। कहो, भीखाभाई! आहाहा! यह दो हुए। निश्चय समकित और व्यवहार समकित। अब सामान्य समकित और विशेष समकित।

चेतना चिहन पहिचानि आपा पर वेदै, पौरुष अलख तातैं सामान्य बखानियै। ज्ञान की अल्पशक्ति के कारण से.... ज्ञान (का) उघाड़ विशेष न हो, शास्त्र का जानपना भी विशेष न हो, (परन्तु) पशु-मेंढ़क जैसे को समकित होता है। यह चैतन्य चिह्न भगवान यह है। यह आनन्द का नाथ है, बस। यह आनन्द को जानकर जो समकित होता है, विशेष जानता न हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? आहाहा! सोगानी भी लिखते हैं न कि हमारे क्षयोपशम बढ़ाना नहीं। जहाँ केवलज्ञान भी हेय है, वहाँ क्षयोपशम तो हेय। वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? उसे

पहले समझण में परलक्षी समझण तो पहले सच्ची करे कि ऐसा स्वरूप है। इसके बिना अन्तर में उतर नहीं सकेगा। समझ में आया? विकल्प द्वारा भी वास्तविक तत्त्व ऐसा होता है और व्यवहार ऐसा होता है—ऐसा जिसे विकल्प द्वारा भी निर्णय का ठिकाना नहीं, उसे निर्विकल्प समकित होने का अवकाश नहीं। समझ में आया?

यह पेट में वह क्या कहलाता है? कैंसर। पेट का कैंसर होता है न? आहाहा! चिल्लाहट मचाती थी बहिन कंचनबेन। अब पैसे बहुत थे। तीन बँगले हैं छह-सात लाख के। पैसे दो-ढाई लाख। हीरा थे। वहाँ कान में भी हीरा थे, लो। अरे! कहा, यह हीरा रहेगा और मुर्दा जल जायेगा। हाँ, हीरा था। चूड़ी में भी होगा परन्तु मेरी नजर नहीं थी। चन्दुभाई कहते थे। चूड़ी में इतने हीरा थे। परन्तु उसे बहुत दुःखता न इतने तक, आहाहा! ओ...माँ! ऐसा करती-करती। दूसरे दिन, हों! ओ... माँ! ऐसा करती। हाथ ऐसा करे। सहन होता नहीं। लोहे के कीले गर्म करके धगधगते अन्दर लाखों अन्दर मारे हों न, ऐसी पीड़ा हो। अरे! उस पीड़ा में शरण कौन? पीड़ारहित भगवान, वह शरण है। बाहर में बाबा डाले व्यर्थ प्रयास। नेमिदासभाई साथ में 'शुद्ध बुद्ध चैतन्य' गीत यही गाते। ओ... माँ, ओ... माँ करते हैं, अभी निपट जायेगा ऐसा कहते हैं। बहुत पीड़ा थी न। .....हताश हो जाये, ऐसा। इसलिए साथ में बैठे नीचे। सुनावे 'शुद्ध बुद्ध चैतन्य'। वहाँ तो चिल्लाहट मचाये, स्वयं रोवे। वह न रोवे बाई, हों! चिल्लाहट मचावे। स्वयं रोवे और बाहर भाग जाये। देखा नहीं जा सकता। अरे, ऐसे परिणाम! मेरा करके माना, वह जब ऐसे पीड़ित हो। हाय, हाय! यह बापू! तेरे थे कब? आहाहा! किसकी पीड़ा? किसकी पीड़ा? भाई! यह आकुलता की पीड़ा, वह भी चीज़ में नहीं। शरीर की पीड़ा तो आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

धर्मी जीव तो क्षण में और पल में तैयार है कि वेदना, लाखों सुईयाँ लगे तो भी उसमें भी ज्ञाता-दृष्टा रहने को धर्मी तैयार है। समझ में आया? ऐसी वेदना के काल में भी समकिती शान्ति रख सकता है। अन्तिम स्थिति हुई तब श्रीमद् ने कहा न, 'मनसुख! माँ को खेद होने नहीं देना।' इतना कहा। 'मैं स्वरूप में समाता हूँ।' बस इतना कहा। आहाहा! सच्ची बात, हों! 'मैं स्वरूप में समाता हूँ।' आहाहा! यह अन्तर अनुभव सम्यक्त्व हो, उसे यह होता है। समझ में आया? आहाहा! यह अवसर सम्हालना, वह

तो आत्मा सच्चा है, वह प्रगट हुआ हो तो सम्हाले। आहाहा! यह तो कहते हैं कि भले ज्ञान अल्प हो। **चेतना चिहन पहिचानि...** यह जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला लक्ष्य, वह आत्मा। **चेतना चिहन पहिचानि...** यह जाननेवाला... जाननेवाला, वही आत्मा, ऐसा। इतना ज्ञान करके **आपा पर वेदै।** परन्तु स्व और आनन्द को वेदे और राग को पर रीति से जाने, उसे सामान्य समकित कहा जाता है। समझ में आया?

चेतना चिहन पहिचानि आपा पर वेदै,... पशु—बड़े मगरमच्छ हजार योजन के और मेंढ़क छोटा इतना, वह सम्यक्त्व पावे वह यह चेतना आनन्दस्वरूप है, वही आत्मा—ऐसा वेदन में आनन्द आया, वहाँ राग आदि पर, आनन्द की जाति नहीं, ऐसा पररूप से उसे जाने। बस, विशेष ज्ञान न हो, कहते हैं। विशेष ज्ञान समझाना भी न आता हो। इससे क्या?। आहाहा! समझ में आया? दुनिया को अपनी बात है क्या, यह भी कह सके नहीं। आहाहा! तो भी उसका समकित है, वह सामान्य सच्चा है। समझ में आया? वह प्रकृति के बोल थे, वे थोड़े नीचे लिये हैं। यह छह हों और यह पाँच हों और चार हों। वह मुद्दे का माल यह है।

मुमुक्षु : यह दीवाली है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दीवाली है इसलिए। आहाहा! समझ में आया?

यह घूघरा और फाफड़ा होते हैं यह। यह करे न कि दीवाली कराओ, दिवाली कराओ। कोई यहाँ खाने बैठे न तब, यह फाफड़ा बनाये, दिवाली कराओ, हमको दिवाली कराओ। भाई! अब तेल के फाफड़ा में क्या? दिवाली कराओ हमारे, दुनिया कहे। ऐसा कोई करके लाया था न फाफड़ा। दिवाली कराओ हमें, कहे। कहो, अब फाफड़ा खाने से दिवाली होती होगी? क्या होगा भीखाभाई? घूघरा और फाफड़ा और दूसरा क्या कहते हैं उसे?

मुमुक्षु : दल... दल।

पूज्य गुरुदेवश्री : दल का टाईम था।

मुमुक्षु : सूंआली।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूंआली। फाफड़ा और सूंआली दूसरे प्रकार की होती है।

आहाहा! सब सूंआला नहीं, कर्कश है। उसकी ओर का विकल्प भी दु:खदायक है। समझ में आया? अरे, स्वसन्मुख का विकल्प भी दु:खदायक है। स्वसन्मुख का विकल्प हो, वह ऐसा है और वैसा, परन्तु परसन्मुख है, दोनों दु:खदायक है। भाई! समझ में आया? ऐसा आनन्दस्वरूप आत्मा का जाना। विशेष ज्ञान न हो, परन्तु वह यह एक जाना, उसने सब जाना। सुजानमलजी! जाननेवाले को जाना, उसने सबको जाना। ज्ञात हो, ऐसी बाहर की चीज़ अधिक भले न ज्ञात हो। समझ में आया? 'एक जाने सब होत है, सबसे एक न होय।'

एक भगवान आत्मा जाना, उसने सब जाना। '**एगं जाणि सव्वं जाणदि।**' सब जाना। और उसे केवलज्ञान शक्ति में पड़ा है और आधीन तो किया है। आहाहा! केवलज्ञान शक्ति में यह पर्याय इस काल में निकलेगी, ऐसा केवलज्ञान ने देखा है और पड़ी है, वह प्रगट होगी। वह कहीं बाहर से आनेवाली है? समझ में आया? यह बात की बात ही बड़ी भी हो.... समझ में आया? **आपा पर वेदै,** लो। इतना तो हो, कहते हैं। अकेला आत्मा, अब ऐसा नहीं। **आपा पर वेदै,** ऐसा। आनन्द को आनन्दरूप वेदे और राग को रागरूप से दु:खरूप से जाने, ऐसा। समझ में आया? **पौरुष अलख तातैं।** ऐसा आत्मा अलख—विकल्प से लखा न जाये, ऐसा पुरुषार्थ से अन्दर में उसे जाना। यह **सामान्य बखानियै**—उसे सामान्य समकित कहते हैं। सामान्य अर्थात् है तो सच्चा, परन्तु ज्ञान विशेष नहीं है, इसलिए समकित को भी सामान्य कहा है। समकित की श्रद्धा तो सामान्य ही है। यहाँ ज्ञान की विशेषता नहीं। परन्तु महा भगवान को प्रतीति में लिया। समझ में आया? आहाहा!

करै भेदाभेदकौ विचार विसतार रूप,... अब विशेष समकित कहते हैं। विशेष समकित में समकित तो सामान्य ही निर्विकल्प है, परन्तु ज्ञान की विशेषता में प्रतीति होना, उसे विशेष समकित कहते हैं। समझ में आया? **भेदाभेदकौ विचार।** हेय, ज्ञेय और उपादेय। वास्तव में तो उपादेय और हेय—बस दो में आ गया। समाप्त हो गया। यह तो ज्ञेय तो यह है ही। पूर्णानन्द प्रभु उपादेय है, आदरणीय है। सत्ता की श्रद्धा में उसे कब्जे में करनेयोग्य है और पर्याय तथा राग की श्रद्धा छोड़नेयोग्य है, ऐसा विशेष **हेय ज्ञेय उपादेय के भेदाभेद को सविस्ताररूप से समझना।** है तो यह ज्ञान की पर्याय।

समझ में आया ? **सो विशेष सम्यक्त्व है।** समकित विशेष नहीं। समकित तो सामान्य ही है। परन्तु वह थोड़े ज्ञानवाले का समकित, वह सामान्य और विशेष ज्ञानवाले का विशेष, इतना अन्तर करने के लिये कहा है। शब्द से पकड़े तो काम पार न आवे उसे।

मुमुक्षु : ज्ञान से विशेषता की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, इतनी बात है।

श्रुतकेवली का समकित अवगाढ़, केवली का परम अवगाढ़। समकित तो समकित ही है। कहीं ज्ञान की विशेषता से समकित में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु उसे उपचार से इस प्रमाण पहिचानना, ऐसा कहा है। समझ में आया ? **हेय गेय उपादेयसौं विशेष जानियै।** बहुत सरस बात आयी, लो।

चतुर्थ गुणस्थान के वर्णन का उपसंहार। चतुर्थ गुणस्थान के वर्णन का उपसंहार। यह समकिती जीव का चौथा गुणस्थान, उसकी स्थिति का वर्णन अब यहाँ पूरा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ५२

चतुर्थ गुणस्थान के वर्णन का उपसंहार (सोरठा)

थिति सागर तेतीस, अंतर्मुहूरत एक वा।
अविरतसमकित रीति, यह चतुर्थ गुनथान इति।।५२।।

अर्थः–अव्रतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। यह चौथे गुणस्थान का कथन समाप्त हुआ।।५२।।

काव्य-५२ पर प्रवचन

थिति सागर तेतीस, अंतर्मुहूरत एक वा।
अविरतसमकित रीति, यह चतुर्थ गुनथान इति॥५२॥

अन्दर व्रत के परिणाम चारित्र के न हों। हो अव्रती। आसक्ति के परिणाम हों, तथापि उसकी दृष्टि में और पर्याय में आसक्ति के परिणाम का अभाव है। समझ में आया? अविरतपना, ऐसा जो दोषभाव, वह उसकी दृष्टि में भी नहीं और उसकी पर्याय में भी नहीं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि तो व्यवहार से मुक्त है। समझ में आया? अरे, ऐसा धर्म भाई! इसकी अपेक्षा तो अपवास करना न? कितने अपवास किये? दस किये, आठ किये, सोलह किये। गिनती में भी आवे। और उसकी शोभायात्रा निकले। उसकी शोभायात्रा स्वयं निकाले तो हो। बलुभाई! लो, बलुभाई को था न! लो बापू! इन्होंने किया था, वर्षीतप किया था। बलुभाई, नहीं? राजकोट गये थे, तब वहाँ आहार किया था न। इन्हें पारणा था। चन्दुभाई थे वहाँ। इनके पिताजी। आहाहा! वह तप नहीं, वह अपवास है, उपवास नहीं। आहाहा!

अपना भगवान आत्मा, उसके समीप में जाकर वहाँ स्थिर होना, बसना, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, यह उसे उपवास कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन लगे, हों! करोड़पति की बहुएँ, उनकी पुत्रियाँ दस-दस अपवास करे और उसे कहना कि यह सब तेरा लंघन है। बेचारे कहते ९० के वर्ष में पुरुषोत्तमजी थे न गाँव में। अरे, लाखोंपति की बहुएँ वर्षीतप तप करे और यह कहे, वह तो ना, ना। यहाँ सदर... सदर न भाई? सदर। अपने ९० के वर्ष। ऐसे खड़े-खड़े बेचारे ऐसे अपवास करे और यह कहे कि नहीं, वह तो सब लंघन है। भाई! लंघन, लंघन का बाप है। जिद्द है आत्मा के समीप, हों! आहाहा! वह कदाचित् राग की मन्दता हो तो वह पुण्य है। उसे निर्जरा (का) कारण माने, वह तो महामिथ्यात्व का पोषण है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

बिल्ली निकालते ऊँट घुसा, ऐसा यह तो। यह किया उसमें माना कि यह तो मुझे निर्जरा हुई। ऐसा माने कि राग निवृत्त, उतना पुण्य हो, धर्म नहीं। तब तक तो उसका जरा शुभभाव भी व्यवहार से पुण्य का कारण कहा जाता है। समझ में आया? परन्तु उसे धर्म और तप और निर्जरा माने, वह तो तत्त्व से विपरीत दृष्टि है और उल्टी दृष्टि का जो पाप, उसके जैसा कोई पाप नहीं। आहाहा! उस पाप की तो कुछ कीमत नहीं, उस पाप

का कोई माप नहीं। यह हिंसा करे और फलाना करे और पैसा रखे और ढींकणा करे तो वह पाप। आहाहा! यह (मिथ्यात्व) अमाप पाप है। समझ में आया? राग की क्रिया को धर्म माने और हमको निर्जरा हुई माने। अमाप श्रद्धा का पाप है यह। आहाहा! दुनिया के साथ मिलान खाये ऐसा नहीं, ऐसा बेचारे कहते, ऐसा वे। आहाहा!

कहते हैं कि उसकी स्थिति कितनी? कि ३३ सागर। समकित ऐसा का ऐसा रहे तो ३३ सागर। सर्वार्थसिद्धि में रहता है न! सर्वार्थसिद्धि देव। उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर है। ऐसे ६६ सागर गिनी है। हाँ, गिनी परन्तु यहाँ ३३ (सागर) उत्कृष्ट देव की स्थिति की अपेक्षा से गिनी है। ऐसे ६६ (सागर)। समझ में आया? परन्तु वह सर्वार्थसिद्धि में जाता है न, इस अपेक्षा से। एक धारावाही रहता है, इसलिए ऐसा गिन सकते हैं, बाकी ६६ सागर है। **थिति सागर तेतीस, अंतर्मुहूरत एक।** और या अन्तर्मुहूर्त स्थिति। समकित हुआ और अन्तर्मुहूर्त (काल में) केवल (ज्ञान) पाकर मुक्ति पावे। समझ में आया? अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में। अन्तर्मुहूर्त अर्थात दो घड़ी के अन्दर। संसार दो घड़ी रहा और आत्मा का अनुभव हुआ। दो घड़ी (में) वहीं का वहीं केवल (ज्ञान) और मुक्ति। समझ में आया? निगोद में से निकलकर आया हो। एकाधभव हो। अन्दर में जहाँ उतरा। अन्तर्मुहूर्त। ऐसा प्रभु विराजता है और अपरम्पार जिसका पुरुषार्थ है, ऐसे भगवान को जिसने पकड़ा, पूरा आत्मा कब्जे में लिया, उसे अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) होकर मुक्ति भी पावे। अन्तर्मुहूर्त में समकित होकर केवल (ज्ञान) हो, मुक्ति पावे और किसी को ३३ सागर स्वर्ग की स्थिति हो। समझ में आया?

अविरतसमकित रीति, यह चतुर्थ गुनथान इति,... लो। उसे चौथा गुणस्थान अविरति समकिती। अविरति समकिती उसे कहा जाता है। यह लोग अब अभी उल्टे रास्ते चढ़ गये हैं। कहे, ज्ञानी हो उसे त्याग चाहिए। त्याग न हो तो ज्ञान (नहीं)। त्याग किसका? पूरे संसार का त्याग है न दृष्टि में। सब त्याग है। पूरा संसार—उदयभाव का त्याग है। मैं उदयभाव ही नहीं और मुझमें नहीं। आहाहा! इस त्याग की खबर नहीं होती। समझ में आया? बाहर से ऐसा कहे कि चारित्र की कीमत है। ऐसा आवे उसमें लेख में भी। चारित्र हो, उसकी कीमत गिनी जाती है। समकिती को नहीं, ऐसा तो न कहे, परन्तु यह चारित्र, व्रत और तप...

मुमुक्षु : गर्भित....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गर्भित, परन्तु लिखे नहीं, लिख सके नहीं। त्याग चाहिए, तपस्या चाहिए, नग्नपना, व्रत और तप; तो उसका ज्ञान सफल कहलाये। चारित्र बिना क्या ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान करता है? अरे, भगवान! यह बाह्य का त्याग है। उसे (समकिती को) अन्तः पूरा त्याग है। भाई! विकल्पमात्र का (त्याग है)। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव का भी दृष्टि में त्याग है। अरे, परिणति में त्याग। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इस वस्तु की कीमत नहीं होती और बाहर की कीमत गिनाने जाये।

लो, यह चौथे गुणस्थान का (वर्णन)। जघन्य (काल) अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट (काल) ३३ सागर। एक धारा रहे, सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा गिनकर। बाकी तो २२ सागर स्थिति में तीन बार जाये। २२ है न? २२ × ३ = ६६। तीन बार जाये। सर्वार्थसिद्धि में एक बार जाये। २२ सागरोपम स्थिति। वह और वही दशा रहे और एक ही भव जितनी गिनती गिनकर ३३ सागर कहा जाता है। लो, ३३ सागर समकित रहे और व्रत नियम न हो। समझ में आया? ऋषभ भगवान, भरत चक्रवर्ती। छह लाख पूर्व तक चक्रवर्ती पद, समकिती ज्ञानी। चारित्र व्रत है नहीं। सम्यग्दर्शन हो, उसे चारित्र व्रत लेना ही पड़े और हो (ऐसा है नहीं)। लेना ही पड़े, यह बात सच्ची। उसकी श्रद्धा में चारित्र ऐसा होता है, ऐसा उसने ग्रहण किया है, ऐसा चारित्र हो, ऐसा माना है। वर्तमान प्रगट नहीं। समझ में आया? लो, यह चौथे गुणस्थान की स्थिति का वर्णन हुआ।

अणुव्रत गुणस्थान। अब श्रावक का पाँचवाँ गुणस्थान। यह समकितसहित, ऐसे भानसहित जिसे सच्चा श्रावकपना पंचम गुणस्थान की भूमिका, उसका वर्णन यहाँ बनारसीदास करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ५३

अणुव्रतगुणस्थान का वर्णन प्रतिज्ञा (दोहा)

अब वरनौं इकईस गुन, अरु बावीस अभक्ष।
जिनके संग्रह त्यागसौं, सोभै श्रावक पक्ष।।५३।।

अर्थ:–जिन गुणों के ग्रहण करने और अभक्ष्यों के त्यागने से श्रावक का पाँचवाा गुणस्थान सुशोभित होता है, ऐसे इक्कीस गुणों और बाईस अभक्ष्यों का वर्णन करता हूँ।।५३।।

काव्य-५३ पर प्रवचन

अब वरनौं इकईस गुन, अरु बावीस अभक्ष।
जिनके संग्रह त्यागसौं, सोभै श्रावक पक्ष॥५३॥

जिन गुणों को ग्रहण करे और अभक्ष्यों को छोड़े। व्यवहार से बात की है। छोड़ना—ग्रहण करना, उसमें है नहीं। परन्तु छूट जाते हैं, उसे छोड़ता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **जिन गुणों के ग्रहण करने और अभक्ष्यों के त्यागने से,....** लो। इक्कीस गुण हैं न! पाँचवाँ गुणस्थान है न! चौथे के उपरान्त शान्ति बढ़ी है। समाधिशतक में आता है न कि अव्रत में धूप में रहने की अपेक्षा व्रत में—छाया में खड़े रहना। परन्तु उसे व्रत के परिणाम हों, शान्ति अन्दर बढ़ी हो, उसे व्रत के परिणाम होते हैं। अकेला विकल्प और व्रत हो, उसे व्रत कहा जाता है? जिसे अन्तर में अनुभव उपरान्त स्थिरता की शान्ति का अंश भी सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा बढ़ गया है, उसे व्रत होते हैं और वह छाया कही जाती है। परन्तु समकित (रहित) के अकेले व्रत के परिणाम ही छाया है, ऐसा है (नहीं)। समाधिशतक का दृष्टान्त दे। **जिनके संग्रह त्यागसौं,...** गुण को ग्रहे, राग को छोड़े इत्यादि। अभक्ष्य। वह सुशोभित ऐसे इक्कीस गुण और बाईस अभक्ष्यों का वर्णन करता हूँ। इक्कीस गुण श्रावक के कैसे होते हैं और बाईस अभक्ष्य का त्याग, वह अभक्ष्य कैसे होते हैं, उसका वर्णन करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८७, कार्तिक शुक्ल १, बुधवार, दिनांक २०-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ५४

समयसार नाटक। चौदह गुणस्थान का वर्णन। चौथे गुणस्थान का वर्णन आ गया। पाँचवें गुणस्थान का वर्णन। पंचम गुणस्थान अर्थात् श्रावक। सच्चा श्रावक किसे कहते हैं? जिसे पहले आत्मा अखण्ड आनन्द का अनुभव होना चाहिए। यह तो सम्यग्दर्शन की भूमिका में उसकी दृष्टि का जोर वस्तु के स्वभाव पर होता है, तब उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। अपना आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप और अखण्ड सर्वज्ञस्वभावी चीज़ के ऊपर दृष्टि पड़ने से दृष्टि में निर्विकल्पता होकर और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उस दशा को समकित कहते हैं। कहो, समझ में आया? उसका नाम सम्यग्दृष्टि। वह धर्म और सुख के पंथ में पड़ा है। आगे जाने पर अब पंचम गुणस्थान की बात। जिसे स्वद्रव्य का आश्रय था, वह विशेष आश्रय बढ़ा। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्य और आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसकी रुचि का अनुभव तो था और रुचि से द्रव्य का आश्रय लिया था। परन्तु अब स्थिरता के अंश में द्रव्य का विशेष आश्रय लिया। सूक्ष्म बात है। यह कहीं श्रावक के व्रत बाहर में धारण करे, इसलिए श्रावक हो जाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द को स्पर्श कर जो दृष्टि में, वेदन में, शान्ति में अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर, जो शान्ति के रस का वेदन हो, तदुपरान्त स्व का आश्रय लेकर जिसे विशेष शान्ति बढ़े, उसे श्रावक कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? दो कषाय (चौकड़ी) का अभाव है न पाँचवें में। निरन्तर उसे आत्मा के शान्ति के रस की वेदनदशा निरन्तर होती है, उसे यहाँ श्रावक और पंचम गुणस्थानवाला धर्मी कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

ऐसे नाम श्रावक दे, इससे कहीं श्रावक हो (नहीं जाता)। नाम निक्षेप से स्थापना निक्षेप से और द्रव्य निक्षेप से। कितने ही अभी ऐसा कहते हैं, नाम भी हो, स्थापना हो, द्रव्य (हो) और सब जैन हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भाव से हो तो बस हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्दघनजी भी कहते हैं। नाम अध्यात्म, स्थापना अध्यात्म, द्रव्य अध्यात्म सुन लो। आनन्दघनजी कहते हैं। यह तो भाव अध्यात्म। शुभ-अशुभ विकल्प के रागरहित अन्तर के अनुभव के आनन्द में जो लवलीन है, उसे भाव अध्यात्मिक कहा जाता है। अब यह ऐसा कहते हैं। ....आनन्दघनजी ऐसा कहते हैं कि भाव अध्यात्म होय तो। अब अभी तक ऐसा कहे, नाम हो, स्थापना हो, द्रव्य हो तो जाओ, सब जैन है। सबका समन्वय करो। क्या करे? हो सके ऐसा कहाँ है? दास! ऐसा कहते हैं अभी लो। नाम भी है न! अब नाम में क्या भला हुआ? समझ में आया? उसमें ... भी आता है, भाई, नहीं? हाँ, वह। लक्ष्मीवन्त नाम और लकड़ियाँ बेचे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्मीबाई होगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अमर नाम और मर गया। लक्ष्मीबाई और लकड़ियाँ बेचे। दूसरा क्या कहा? धनवन्तो? ऐसे भीख माँगे और धनवन्त नाम। आता है न यह? स्कूल में आता था, नहीं? आता था। पहले से याद सुना हुआ है न। बलुभाई! भिखारी और धनवन्त नाम धनवन्तभाई। उसमें क्या भला हुआ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह काले कुत्ते जैसा है यह तो। काले कुत्ते का दृष्टान्त सुना था न!

वे दो कुत्ते थे। वह एक अमुक गली में चढ़ गया और एक अमुक गली में। उसमें काला कुत्ता था और अमुक गली में चढ़ा तो वह दुबला पड़ गया छह महीने में। रोटियाँ-बोटियाँ मिले नहीं। कुत्ते को जहाँ जाये, वहाँ लकड़ियाँ मारे। और एक सफेद कुत्ता था। उसे रोटियाँ मिले और सब मिले। छह महीने में वापस इकट्ठे हुए। वहाँ उसने काले कुत्ते का शरीर जीर्ण देखा। भाई! ऐसा कैसे? भाई! जिस गली में जाता हूँ, रहता

हूँ, वहाँ छूआछूत बहुत मानते हैं। मुझे तो घुसने नहीं देते, मारते हैं। तब कहे, मेरी गली में आ जा तू। सफेद कुत्ते ने कहा, मेरी गली में आ जा। मैं छह महीने तेरे यहाँ जाऊँ। वह बात ठीक है। परन्तु अब एक बात है उसमें। क्या है, कह। जिस गली में रहता हूँ, वहाँ एक विधवा देवरानी और जेठानी दो बाईयाँ हैं। उन्हें प्रतिदिन झगड़ा होता है। झगड़ा होता है तो यह काले कुत्ते की बहू, ऐसा कहे। वहाँ मुझे सन्तोष होता है, सुहाता है उससे। अच्छा। इतने नाम से मेरी गली छोड़ना सुहाता नहीं। आहाहा! ऐसा बोले....। प्रतिदिन दोनों लड़े देवरानी-जेठानी और लड़ते-लड़ते ऐसा कहे, ... काले कुत्ते की बहू, ऐसा बोले। इसलिए भले मारे, परन्तु वह बहुत अच्छा लगता है। आहाहा!

इसी प्रकार ऐसे कुछ भान नहीं होता और उसकी महिमा करे, वह काले कुत्ते की बहू का सुनने जैसा है। समझ में आया? आहाहा! अरे, दुनिया प्रशंसा करे, इससे उसमें आत्मा में कहाँ आनन्द आवे? आहाहा! और दुनिया निन्दा करे तो भी वहाँ कहाँ घट-बढ़ हो जाये? आहाहा! श्रावक की दशा अन्तर अनुभव के आश्रय से विशेष द्रव्य का आश्रय लेती है। समझ में आया? विशेष आत्मा का आश्रय अनुभव में तो लिया है, इसके अतिरिक्त विशेष एकाग्रता अन्दर होती है, तब उसे शान्ति की वृद्धि होती है। तब तो उसे दूसरी कषाय (चौकड़ी) का अभाव होता है। आहाहा! इसे समझने तो पड़ेगा या नहीं कि श्रावक किसे कहना? उसकी यह व्याख्या है, देखो! **अब वरनौं इकईस गुन, अरु बावीस अभक्ष। जिनके संग्रह त्यागसौं,...** २१ गुण का संग्रह करो, ऐसा कहे। २२ अभक्ष्य का त्याग करो। तो **सोभै श्रावक पक्ष।** श्रावक का यह पक्ष शोभे। श्रावक के २१ गुण।

★ ★ ★

काव्य - ५४

श्रावक के इक्कीस गुण (सवैया इकतीसा)

लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत,
परदोषकौ ढकैया पर-उपगारी है।
सौमदृष्टी गुनग्राही गरिष्ट सबकौं इष्ट,
शिष्टपक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है।।
विशेषग्य रसग्य कृतग्य तग्य धरमग्य,
न दीन न अभिमानी मध्य विवहारी है।
सहज विनीत पापक्रियासौं अतीत ऐसौ,
श्रावक पुनीत इकवीस गुनधारी है।।५४।।

शब्दार्थ:-प्रसंत=मंद कषायी। प्रतीतवंत=श्रद्धालु। गरिष्ट=सहनशील। इष्ट=प्रिय। शिष्टपक्षी=सत्य पक्ष में सहमत। दीरघ विचारी=अग्रसोची। विशेषज्ञ=अनुभवी। रसज्ञ=मर्म का जाननेवाला। कृतज्ञ=दूसरों के उपकारों को नहीं भूलनेवाला। मध्य व्यवहारी=दीनता और अभिमान रहित। विनीत=नम्र। अतीत=रहित।

अर्थ:-लज्जा, दया, मन्दकषाय, श्रद्धा, दूसरों के दोष ढाँकना, परोपकार, सौम्यदृष्टि, गुणग्राहकता, सहनशीलता, सर्वप्रियता, सत्य पक्ष, मिष्ट वचन, अग्रसोची, विशेषज्ञान, शास्त्रज्ञान की मर्मज्ञता, कृतज्ञता, तत्त्वज्ञानी, धर्मात्मा, न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी, स्वाभाविक विनयवान, पापाचरण से रहित। ऐसे इक्कीस पवित्र गुण श्रावकों को ग्रहण करना चाहिए।।५४।।

काव्य-५४ पर प्रवचन

लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत,
परदोषकौ ढकैया पर-उपगारी है।
सौमदृष्टी गुनग्राही गरिष्ट सबकौं इष्ट,
शिष्टपक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है॥

विशेषग्य रसग्य कृतग्य तग्य धरमग्य,
न दीन न अभिमानी मध्य विवहारी है।
सहज विनीत पापक्रियासौं अतीत ऐसौ,
श्रावक पुनीत इकवीस गुनधारी है॥५४॥

देखो, यह श्रावक की व्याख्या। इस नूतन वर्ष के दिन यह आया, देखो! पहली-पहली है यह। आहाहा! समझ में आया? श्रावक या श्राविका ऐसे होते हैं। जिसे आत्मा के आनन्द का अनुभव हो, तदुपरान्त ऐसे गुण हों। **लज्जावंत,** लो। लज्जावाला होता है। कुछ भी दोष आदि से वह लज्जा पावे। समझ में आया? निध्वंस न हो वह। पाप हुए। हुए तो क्या है? ऐसा। अरेरे! हम आत्मा, हम परमानन्द के भोक्ता, उसमें उसे न शोभे, ऐसे पाप से उसे लज्जा आती है। समझ में आया? विवाह करे, प्रसंग हो। समकिती है, श्रावक है, परन्तु उसे उसमें उत्साह नहीं होता। समझ में आया? लज्जा पावे।

क्या यह तुम्हारे कुछ है न विवाह करे तब? कुछ भाषा कोई कहता था। विवाहप्रसंग करे और फिर कुछ बोलते हैं। यह पंथ में चढ़ा ऐसा कुछ।

मुमुक्षु : प्रभु के पदचिह्नों...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह... यह। ऐसा तब बोले न। अपने तो सुना हुआ हो किसी से।

मुमुक्षु : प्रभु के पदचिह्नों के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभु के पदचिह्न। है?

मुमुक्षु : प्रभुता में पगला (चरण)।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रभुता। विवाह किया अर्थात् महत्ता हो गयी उसे।.... यह रंक है और भिखारी। समझ में आया? आता है, ऐसा जादवजीभाई! यह अखबार में आता है। ऐसा विवाह करे, तब नहीं सबके चरण छूते? पिता के, काका के। अच्छा किया मुझे डाला इसमें-जेल में। आहाहा! समकिती को ऐसा होवे तो उसे लज्जा होती है। देखो, ऐसा कहते हैं। होवे सही ऐसा भाव। विवाह का, स्त्रियों का भी, लज्जा (आवे)। अरे! हमारे यह नहीं होता। समझ में आया? उससे शोभा माने और प्रभुता के

चरण पड़ा, ऐसा न माने वह। समझ में आया? लज्जावन्त।

दयावंत। उसे परप्राणी और अपनी दया होती है। उसके हृदय में अनुकम्पा बहुत होती है। समझ में आया? श्रीमद् भी एक बार कहते थे कि कोई हरितकाय को काटता हो तो हमसे नहीं देखा जाता। आवे। आहाहा! कोई हरितकाय एकेन्द्रिय जीव अनन्त जीव को ऐसे काटता हो सब्जी करते हुए या ऐसा... समझ में आया? अरेरे! वह आत्मा ऐसा है। उसे यह सिर पर छुरी पड़ती है। वह प्रसन्न नहीं होता। स्वयं भी कदाचित् उस हरितकाय की (सब्जी) बनाता हो। समझ में आया? ऐसी दया है उसे। अरे, आत्मा ऐसा! मेरा विकल्प उस प्रकार का अभी वह क्रिया होती है, उसमें निमित्त है। समझ में आया? ऐसी धर्मी जीव को दया होती है।

प्रसंत—मन्दकषाय होती है। तीव्र क्रोधी, तीव्र मान, माया ऐसे होते नहीं। कोमल प्रकृति होती है। मन्द कषाय—प्रशन्त। 'प्रशांति अनंत सुधामय जे' आता है न! अन्तिम शब्द आता है। 'प्रशांति अनंत....' वह पर शान्ति नहीं, प्रशान्ति है वास्तव में तो। प्रशान्ति। जहाँ दो कषाय घट गये हैं, इसलिए शान्ति सर्वार्थसिद्धि के देव से भी बढ़ गयी है। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि के देव जिसे एक भव में मुक्ति, उसकी अपेक्षा पंचम गुणस्थान की दशा, भाई! अन्तर शान्ति में बढ़ गयी है। अकेला शान्तरस का कन्द भगवान उतना उसने आश्रय उग्ररूप से लिया। समझ में आया? आहाहा! उसे श्रावक कहा जाता है। नाम धारे श्रावक और माल न हो कुछ। थैली में चिरायता और ऊपर लिखे शक्कर, इससे कहीं कड़वी लकड़ियाँ मीठी हो जाये? समझ में आया? मीठा भगवान आनन्दस्वरूप, मीठा महेरामण आनन्द से भरपूर आत्मा, उसे जिसने स्पर्श किया है, ऐसे प्राणी तो प्रशान्त होते हैं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा बुलाया बोले नहीं। धमधमाट... समझ में आया न? कषाय में। यह तो प्रशान्त... प्रशान्त... आहाहा! भले गृहस्थाश्रम में हो, वहाँ दो कषाय (चौकड़ी) का अभाव। यह तो वास्तविक धर्म की बात है। वाड़ा ने माना वह धर्म नहीं। आहाहा! भारी कठिन लगे लोगों को। यह नूतन वर्ष के साथ यह बात आयी है।.... समझ में आया? २१ गुण का वर्णन तो नूतन वर्ष में आया। (संवत्) २०२८ के वर्ष।

प्रतीतवंत—यह तो वास्तविक तत्त्व की प्रतीतिवाला होता है। आत्मा का तो

प्रतीतिवाला होता है, परन्तु जितने भगवान ने छह द्रव्य आदि कहे, उन सबकी उसे प्रतीति होती है, आस्था होती है। आहाहा! एक समय में तीन काल—तीन लोक जाने, ऐसी शक्तिवाले आत्मायें अनन्त हैं। आहाहा! निगोद के जीव भी परमात्मस्वरूप से है, ऐसी उसे प्रतीति होती है। निगोद से लेकर सिद्ध की पर्याय; द्रव्य तो है वह है। वह निगोद की पर्याय के समय वस्तु में कमी हुई नहीं। सिद्ध की पर्याय के समय वस्तु में वृद्धि पायी नहीं। आहाहा! ऐसी उसे प्रतीति होती है। समझ में आया? और इतने सब आत्मायें अनन्त। बापू! तू तो उससे अनन्तगुना ज्ञेय का ज्ञान करे वह तेरी सामर्थ्य है। उन अनन्त की दया पालने का प्रश्न यहाँ नहीं। समझ में आया? परन्तु परज्ञेय इतने अनन्त हैं आत्मायें, उससे अनन्तगुणे रजकण, उनसे अनन्तगुणे तीन काल की पर्यायें, उनसे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश, उनसे अनन्तगुणे एक जीव के गुण। आहाहा! ऐसा समकिती श्रावक को प्रतीति में होता है। उसे कहीं शंका नहीं पड़ती। आहाहा! यह तो अन्तर की बातें हैं। इतनी बड़ी आत्मा की संख्या। समझ में आया?

वह वेदान्त आदि कहे, एक आत्मा सर्वव्यापक। यह दूसरा सब भ्रम। वे भ्रमणा में पड़े हैं। उन्हें तत्त्व की खबर नहीं। इतने आत्मायें और एक-एक आत्मा में पूर्ण सिद्ध होने की सामर्थ्य। इससे अनन्तगुणे रजकण। आहाहा! क्या संख्या यह? एक सागरोपम की स्थिति जिसे देव की कही, वह ३३ सागर की स्थिति है सर्वार्थसिद्धि के देव की। परन्तु वह ३३ सागर (में से) एक सागर और एक सागर में अनन्त कोड़ाकोड़ी पल्योपम, और एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्यात अरब वर्ष जाते हैं। तो भी उस ३३ सागर के समय तो असंख्य हैं और आत्मा के गुण अनन्तगुणा हैं। यह तो ३३ सागर है। वह तीन काल तो अधिक कहा, परन्तु यह ३३ सागर। लोगों को ऐसा होता है। ऐसे वे बड़े होंगे? मनुष्य के असंख्य अरब वर्ष के आयुष्य। (एक) पल्योपम, दो पल्योपम, तीन पल्योपम। एक-एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष, ऐसे जुगलिया हैं। सब ही है, भाई! उसके ज्ञान की वृद्धि में सब श्रद्धा में आता है। उसे शंका नहीं होती। आहाहा! कहो, जेठाभाई! आहाहा!

प्रतीतवन्त है। भरोसा है। सब है, वह है। मैं तो एक समय के ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य अर्थात् अनन्त सिद्ध, उन्हें भी जानने की सामर्थ्यवाला मैं एक समय की पर्याय

जानने की सामर्थ्यवाला तो इतने सब ज्ञेय हैं। समझ में आया? आहाहा! सिर घूम जाये दूसरे का कि यह सब क्या है यह? यह थोर के थोर पड़े हैं न यह रास्ते में। एक थोर का... नीचे गिरे वहाँ उसमें अनन्त-अनन्त ढ़ेर जीव हैं। एक राई का टुकड़ा जितना थोर में असंख्य तो औदारिकशरीर, उससे अनन्तगुणे जीव। आहाहा! बराबर है? समकिती को उसकी सच्ची प्रतीति होती है। आहाहा! इतना ही आत्मा है कि जो अनन्त को एक समय में जाने। समझ में आया? ऐसी अनन्त-अनन्त ज्ञान की पर्याय का पिण्ड वह आत्मा। इतने आत्मा का जिसे सम्यग्दर्शन-अनुभव हुआ, वह यह सब उसे प्रतीति में वर्तता है। समझ में आया?

परदोषको ढकैया— परदोष को ढाँके। ऐसा कि परदोष उघाड़ने जाने से सामनेवाले को दुःख हो, ऐसा न करे। वस्तु का स्वरूप बतावे परन्तु व्यक्तिगत उसका दोष निकालकर उसे वैसा करे, ऐसा नहीं होता। वह भी भगवान है। समझ में आया? उसके दोष निकालकर दुनिया में हल्का करना, यह कहीं श्रावक को शोभे? ऐसा कहते हैं। आठ वर्ष की बालिका भी यदि सम्यग्दर्शन होकर श्रावक हुई हो तो उसे ऐसे गुण होते हैं। आहाहा! फिर भले विवाह करे, शादी करे, परन्तु करे, यह कहा जाता है। अरे, अरे, गजब बात! वह विवाह करती नहीं। होता है, उसे वह जानती है। समझ में आया? आहाहा!

उसकी गजब लीला है। अब चार फेरा फिरे। चौथे फेरे में कहे कि अब चौथा होता है, ऐसा कहे। लोगों की बातें अपने सुनी हुई है। तीन फेरा के बाद अब चौथा पक्का होता है और या अब चौथा है। अन्तिम है, ऐसा। अर्थात् ऐसा कि यह चौथे में निश्चित होगा, ऐसा। अभी तीन तक फिरना हो तो फिरो, बाकी अब नहीं फिरा जायेगा। आहाहा! धर्मी जीव जगत के ऐसे दोष देखकर उसे ढाँकता है। किसने उघाड़े? अनन्त नाथ अनन्तगुण का नाथ प्रभु है, उसके पीछे यह दोष तो एक अल्प... अल्प... अल्प है। मिथ्यात्व का दोष भी त्रिकाली भगवान के समक्ष अल्प दोष है। महाभगवान चैतन्यप्रभु ऐसा जिसने अनुभव में और दृष्टि में लिया, उसे दूसरे के दोष तो एक अनन्तवें... अनन्तवें... अनन्तवें... अनन्तवें भाग में ज्ञात होते हैं, उसे कैसे तिरस्कार करे? समझ में आया? आहाहा! जानता है।

पर—उपगारी है। वह पर के उपकार करने का उसे सद्भाव होता है। विकल्प में दूसरे धर्म पावे, समझे—ऐसा उसका भाव (होता है)। उपकार कर सकता है या नहीं? यह प्रश्न यहाँ नहीं। परन्तु उसमें दूसरा कषाय चढ़ा है न! दूसरे प्राणी का हित कैसे हो? कल्याण कैसे हो? बात सवेरे तो कही थी। ऐसी गाथा है पहले जीव अधिकार में। '**मज्जंतो।**' अरे, जीवो जगत के सभी (जीव) आकर (पड़ो)। सामूहिक निमन्त्रण है यहाँ तो, कहे। लिया है न भाई कलश में? आहाहा! सब भटको, ऐसा नहीं उसे। आहाहा! पूरी दुनिया के जीव, अरे! यह ज्ञानसमुद्र भगवान उछलता है न नाथ! उसमें आओ, स्नान करो। सामूहिक निमन्त्रण। कन्दोराबन्ध और फलानाबन्ध, ऐसा नहीं। आहाहा!

होता है न बनियों में अपने? कन्दोराबन्ध। कन्दोरा हो अर्थात् सात दिन, सात दिन का जीमण हो, ऐसा। उसे कन्दोराबन्ध कहते हैं। ऐसा कहते हैं, सुना है। अपने अनुभव कहाँ है? और यह क्या कहलाये महिलायें, लड़कियों का कुछ है? गोरणी, गोरणी। आहाहा! सब शब्द स्वतन्त्र होते हैं। गोरणी का जीमण है, इसलिए सब कन्यायें ही आवे। कन्दोराबन्ध का जीमण है, इसलिए आदमी ही आवे। सामूहिक जीमण है, वह बीमार न आवे, बाकी सब आवे। यह नूतन वर्ष के दिन यह सामूहिक निमन्त्रण है, कहते हैं। समझ में आया? पर उपकारी, ऐसा कहते हैं। सब भगवान आत्मायें तुम्हारे घर में आ जाओ, भाई! तुम्हारा घर बड़ा है। तुम बड़े के... बड़े के तुम बड़े हो। तुम छोटे के पुत्र नहीं। आहाहा! पर उपकार है।

सौमदृष्टी—शान्तदृष्टि होती है। दृष्टि में तीखाश और जहर नहीं होता। दुश्मन हो तो भी उसके प्रति उसकी सौम्य दृष्टि। दुश्मन कैसा परन्तु? आहाहा! दुश्मन और सज्जन तो वह ज्ञेय के किये हुए दो भाग हैं। वे तो ज्ञेयरूप से हैं। ज्ञेय के भाग करना कि यह सज्जन और दुश्मन, वह तो मिथ्यादृष्टि की भूल है। आहाहा! समझ में आया? **सौमदृष्टि। गुनग्राही**—वह गुण को देखे। वे हों तो हों, न हो तो वहाँ गुण देखे (ऐसा नहीं)। गुण का ग्रहण करनेवाला हो। आहाहा! कथा में आता है न, यह कथा में एक। आता है, वह कुत्ता था ऐसा। कृष्ण निकले थे। कुत्ता मर गया था। ... दाँत भारी व्यवस्थित है। ऐसी बात आवे व्यवहार की। उस कुत्ते के दाँत व्यवस्थित है। यह बोले जाने कि बात। मर

गया, उसका कुछ नहीं, परन्तु दाँत व्यवस्थित है। ऐसा गुणग्राही। जैसा गुण हो, उसे ही ग्रहे।

गरिष्ट—सहनशील। वह सहनशील होता है। वह प्रतिकूलता में आकुलित हो जाये, ऐसा नहीं होता। आहाहा! निन्दा की झड़ी पड़े, प्रतिकूलता के ढ़ेर आवें। प्रतिकूलता कैसी? प्रतिकूलता का भाव, वह मेरा राग। अनुकूलता का भाव, वह मेरा स्वभाव। आहाहा! समझ में आया? इस दशा का नाम श्रावक कहते हैं। यहाँ तो भान न हो कुछ, अभी वस्तु की खबर नहीं होती और दूसरे कषाय का त्याग क्या है, उसकी खबर नहीं होती। रमणीकभाई! ऐसा गजब! आहाहा! गरिष्ट। **सबकौ इष्ट**—सबको प्रिय। तो इसका अर्थ, दुश्मन तो उसे नहीं होंगे? दूसरे हों, यहाँ क्या काम है? उसकी अपनी सर्वप्रियता अन्दर होती है। किसी के साथ उसे विरोध नहीं होता। आहाहा! दुनिया के निन्दा करनेवाले तो मुनियों की भी निन्दा करते हैं।

मुमुक्षु : भगवान की भी करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की भी करते हैं। लो, यह वे भगवान। पहले अकेले थे, तब तो बहुत तपस्या करते, जंगल में रहते थे। समझ में आया? और यह फिर वापस कहते हैं, हम बड़े हुए केवल (ज्ञान) और अब समवसरण में हजारों-लाखों लोग इकट्ठे हों, इन्द्र आवे। यह वह क्या सब तुम्हारी?

मुमुक्षु : जंजाल बढ़ाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा भी कहनेवाले होते हैं। सबमें ऐसी सहनशीलता होती है। समझ में आया? अथवा सर्व को प्रिय हो। उसे किसी की अप्रियता (नहीं क्योंकि) स्वयं को नहीं न! आहाहा!

पाँचवें गुणस्थान में तो भगवान ने ऐसा देखा है कि उसे अनादेय, दुर्भग और अयश प्रकृति का उसे उदय नहीं। आहाहा! समझ में आया? पंचम गुणस्थान आत्मा के आनन्द की वृद्धि, ऐसे आत्मा को, कहते हैं, अयश का उदय नहीं। लो! सर्वप्रिय में से उठाया। आहाहा! समझ में आया? सबको इष्ट। उस अपयश होता ही नहीं पाँचवें गुणस्थान में। ऐसा उदय ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! जिसका यश सर्वार्थसिद्धि के देव

गायें, ऐसा पंचम गुणस्थान, उसे अपयश की प्रकृति ही नहीं, कहते हैं। मूल में नहीं उसे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनादेय भी नहीं। अशोभनिक कि उसका कोई आदर न करे कि ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे, गजब भाई! और दुर्भाग्य। समझ में आया? ऐसा उसे उदय नहीं दुर्भाग्य का। वह तो भाग्यवान है। सातवें नरक का नारकी समकिती भाग्यवान है। उसके बदले यह तो पंचम गुणस्थानवाला है। बालिका हो, गरीब हो, आहाहा! लकड़ियाँ बेचकर आजीविका होती हो, ऐ, बलुभाई! बहुत फेरफार बहुत तुम्हारे पास। तो भी कहते हैं कि उसे दुर्भाग्य नहीं। उसे कोई ऐसा कहे कि यह दुर्भाग्य तू है। अरे, भगवान! हम तो भाग्यवान हैं। समझ में आया?

'लही भव्यता मोटुं मान, कोण अभव्य त्रिभोवन अपमान।' आनन्दघनजी कहते हैं। जिन्हें भगवान त्रिलोक के नाथ और मुनि ऐसा कहे कि अहो! यह सम्यग्दृष्टि श्रावक है, यह धर्मात्मा है। ऐसा जिसे परमात्मा कहे। उसे 'लही भव्यता मोटुं मान।' तीन लोक के नाथ का जहाँ मान मिला। 'कोण अभव्य त्रिभुवन अपमान।' भगवान के ज्ञान में ऐसा आवे कि यह नालायक है, अलायक है। कैसा तुझे अपमान चाहिए है? दुनिया भले बाहर में आदर करती हो, ओहो! खम्मा... खम्मा। परन्तु भगवान के ज्ञान में अन्दर में अनादर करता हो, तू धर्मी नहीं, अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया? 'लही भव्यता...' आनन्दघनजी कहते हैं, हों! आनन्दघनजी के उसमें आता है। 'लही भव्यता मोटुं मान, कोण अभव्य त्रिभोवन अपमान।' परमात्मा सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं। भले वाणी में न आवे परन्तु उनके ज्ञान में आया न कि यह श्रावक है, धर्मात्मा है। यह अल्पकाल में मुक्ति—मेरी जैसी दशा प्राप्त करेगा। आहाहा! समझ में आया? संसार में हो, ब्याज बटाव का धन्धा हो। आहाहा! तथापि भगवान के ज्ञान में और मुनियों के ज्ञान में उसकी प्रशंसा है। वह दो कषाय का अभाव है न, उसकी। यह तो दुनिया से सब दूसरी जाति है। आहाहा! समझ में आया? उसके नीति के जीवन बहुत हों। उसका अनैतिक जीवन हो नहीं। आहाहा! सर्व को प्रिय।

शिष्टपक्षी—सत्य के पक्षवाला हो, लो। है न शिष्टपक्षी। सत्यपक्ष। सत्य का पक्षी होता है वह। कोई चर्चा-वार्ता निकले तो वह सत्य का ही पक्षी होता है। भाई! यह तो सत्य का पक्ष है, ऐसा कि सत्य के पक्ष में जायें तो अनुचित को उचित करना पड़े। अरे,

भगवान! .... भाई! सत्य का स्वभाव जिसने ग्रहण किया है, उसकी जो बात है, उसके पक्ष में आना, वह तो श्रावक का गुण है, कहते हैं। पण्डितजी! आहाहा! भगवान ने कहा हुआ मार्ग उसे जिसने जाना, उस जाननेवाले के पक्ष में आना, वह तो सत्यपक्षी का स्वभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा अभी निर्णय नहीं किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय नहीं किया और। आहाहा! .... जीव तो कहते हैं, भाई! बापू! मार्ग तो यह है न! यह तो साधारण रीति से भी बैठ सके, ऐसा है। तीन लोक का नाथ आत्मा, उसकी शरण बिना किसी प्रकार से कहीं धर्म नहीं होता। अब ऐसी बात जहाँ आवे, उसके पक्ष में आना, ऐसा तो धर्मी का स्वभाव ही होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? धर्मात्मा मुनि हो तो भी जो सत्य की बात श्रावक करता हो, बात उसकी बराबर है। समझ में आया? वह धर्मात्मा है। वह न्याय से बात करता है। सत्य की शरण में गया है वह। इससे सब बात सत्य की ही आवे। आहाहा!

भाई ने नहीं कहा, सोगानी ने?—कि आत्मा में से बात आवे, उसे शास्त्र के साथ मिलान करना, क्योंकि आत्मा में से बात आवे, वह सच्ची ही होती है। समझ में आया? आहाहा! सब न्याय (युक्त) है। यह शिष्टपक्षी। शिष्टपक्षी। शिष्ट आचार सम्यग्दर्शन, शिष्ट सम्यग्ज्ञान, सम्यक् आचरण—इसका वह पक्षी होता है। समझ में आया? अशिष्टपक्षी वह होता नहीं। आहाहा! मुनि भगवन्त की तो बात क्या करना परन्तु श्रावक ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। वह महात्मा मोक्ष के पंथ में है। वह भी महात्मा है, वह योगी है। आहाहा! वस्तु के स्वभाव चैतन्यब्रह्म प्रभु का जहाँ आश्रय लिया और एकान्त है, वह निरन्तर योगी ही है। आहाहा! समझ में आया? उसके पक्ष में ज्ञानी होते हैं। समझ में आया?

मिष्टवादी—मिष्ट वचन। मीठे वचन होते हैं। शान्त वचन होते हैं। वाणी तो वाणी के कारण से परन्तु उसका भाव ऐसा होता है, ऐसा बताते हैं। समझ में आया? मीठी मधुर वाणी होती है। जैसे मुरली बजे और सर्प डोलता है, इसी प्रकार कहते हैं कि ज्ञानी के पंचम गुणस्थान के वचन ऐसे मीठे होते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो,

यह एक सम्यग्दृष्टि उपरान्त श्रावक की दशा। आहाहा! जिसने अवतार सफल किया। समझ में आया? परन्तु इस प्रकार से, हों! अकेले श्रावक के व्रत बारह व्रत ले न, वह तो सब विकल्प है। उसकी यहाँ गिनती नहीं। निर्विकल्प सच्चिदानन्द प्रभु के शरण में अन्तर में गया है, तदुपरान्त शरण विशेष ली है, वह तो ऐसे मिष्टवादी होते हैं। **दीरघ विचारी,** लो। अग्र सोची। अर्थात् बराबर विचारकर काम ले। बिना विचारे काम (न करे)। अग्र सोच ले, ऐसा। अग्र सोची का अर्थ यहाँ किया है, अग्र सोची इतना ही। कोई भी काम में उसका विचारा हुआ होता है। ऐसा का ऐसा अन्ध से काम नहीं करता अन्ध से, ऐसा कुछ होता नहीं। समझ में आया?

विशेषग्य, लो। विशेषज्ञ अर्थात् अनुभवी। यह अर्थ में किया है। वह श्रावक आत्मा का अनुभवी होता है। समझ में आया? वहाँ संसार की चतुराई या व्यवहार हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। कि संसार की बहुत विचक्षणता हो और काम भारी अच्छा कर सके और करने की व्यवस्था उसे आवे न। उसकी यहाँ बात नहीं। बालचन्दभाई! संसार के चतुर बहुत हों। देखो, तुम्हारे हरीभाई कैसे चतुर हैं या नहीं? आहाहा! यह तो आत्मा का अनुभवी, वह चतुर है। पूरी दुनिया के बड़े चित्राम कर-करके चतुराई माने, वह चतुराई तो भटकने की है। दुनिया की चतुराई दुनिया में गहरा उतरनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? अनुभवी होता है। आहाहा! श्रावक नाम धरावे और व्रत आदि पालन करे, इतना नहीं, वह अनुभवी होता है। आत्मा का अनुभवी, आनन्द का अनुभवी। आहाहा! और आत्मा क्या चीज़ है, उसका वेदन आया है। इसलिए उसे अनुभव है कि यह आत्मा ऐसा है। इस आत्मा में पुण्य और पाप आदि हैं ही नहीं। तीन काल-तीन लोक में नहीं। आहाहा! ऐसा उसे अनुभव होता है, उसे श्रावक कहते हैं। आहाहा! अरे, गजब! यह कहीं सम्प्रदाय की रीत नहीं। यह तो वस्तु का स्वभाव ऐसा है। जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं। वह कोई वाड़ा नहीं। आत्मा की जो चीज़ है, जैसी, उसका अन्तर में भान होकर विशेषरूप से आश्रय लेकर स्थिर होना, उसका नाम श्रावक कहा (जाता है)। वह तो वस्तु का स्वभाव है। समझ में आया? विशेषज्ञ।

रसग्य—रसज्ञ। शास्त्र का जाननेवाला। रस का जाननेवाला। शास्त्रज्ञान की मर्मज्ञता अर्थात् शास्त्र को क्या कहना है, उसके रस के मर्म का जाननेवाला है। किस

नय से कैसे कहा है, उसका मर्मज्ञ है वह। ऐसे का ऐसा हाँक रखे कि ऐसा कहा न शास्त्र में, ज्ञानावरणीय कर्म ने आत्मा को रोका। शास्त्र में ऐसा आता है, लो। ज्ञानावरणीय ने... पाठ क्या है? ज्ञानावरणीय कर्म ने ज्ञान को रोका। शास्त्र का जाननेवाला यथार्थ होता है, (वह ऐसा जानता है) कि ऐसा नहीं है। अपनी ज्ञान की दशा उसके (कारण से) अटकी है, कम (हुई है), उसमें वह कर्म निमित्त होता है, ऐसा उसका मर्म है। घातिकर्म, देखो, शब्द में आवे। घातिकर्म आत्मा के गुण को घातता है, इसका सीधा अर्थ तो ऐसा है।

मुमुक्षु : देव को अमर कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव को अमर कहते हैं परन्तु अमर का अर्थ, यह मनुष्य की अपेक्षा लम्बी स्थिति है, इसलिए अमर कहते हैं। था क्या वहाँ धूल? अमर कब? ऐई! आहाहा! देवों के वैभव। उसमें रहते हुए जहाँ मरे। अज्ञानी हो, भान न हो। यहाँ कोई पुण्य किया हो, आत्मा के भान बिना दया और व्रत आदि। वह मरकर जाये स्वर्ग में। पूरी स्थिति हो इसलिए, आहाहा! मरते हुए हाय रे! कहाँ जाऊँगा? क्या होगा? ऐसे अज्ञानियों को वहाँ दुःख होता है और मरकर छिपकली के अवतार में पेट में जाते हैं। छिपकली नहीं होती? अच्छी हो कोई ऊँची बहुत। आहाहा!

कहते हैं कि शास्त्र के भाव का वह जाननेवाला होता है। समझ में आया? एक सम्यग्दृष्टि कर्म करके नरक में जाये, पहले आयुष्य बँधा हो तो। और एक (मिथ्यादृष्टि) पुण्य भी करके स्वर्ग में जाये परन्तु दोनों में अच्छा वह है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि वह कर्म आया था, वह खिरने में वे गये वहाँ। वह समाप्त होकर खिर जानेवाला है। और अज्ञानी इस पुण्य के कारण स्वर्ग में गये, क्षण में पल में मृत्यु रोके। वह पुण्य पूरा हुआ, नीचे गिरेगा। पशु में जायेगा, शूकर में जायेगा। आहाहा! अरे, पर्दा गिरे फेरफार हो जायेगा। शास्त्र के ऐसे मर्म को जाने, उसकी महिमा करे नहीं। आहाहा! पाँचवें गुणस्थानवाला बारहवें देवलोक में जाये और छठवाँ गुणस्थानवाला पहले देवलोक में जाये। इसलिए छठवाँ अच्छा नहीं और पाँचवाँ अच्छा, ऐसा है? आहाहा!

एक व्यक्ति कहता था यहाँ (संवत्) १९९० के वर्ष में। यह परसोत्तमजी था न

वहाँ जयपुरवाला। कोठारी। ... गया था, वहाँ से बातें लावे। ऐई, श्रावकजी! तुम हमारे से अच्छे। क्या है कि तुम्हारे तो देव का आयुष्य थोड़ा। देव में जाये। है तो दोनों समान समझने जैसे, ऐसा कहे। तुम तो पहले मोक्ष में जाओगे। क्यों? तुम्हारे स्वर्ग में आयुष्य थोड़ा हो और हम साधु का आयुष्य बढ़ा हो। कहो, अरे, अरे! आहाहा! जेठाभाई! शास्त्र के मर्म को समझे नहीं। अब जल्दी-देरी काल हुआ हो, उसमें अन्तर क्या? वह तो आनन्द को वेदता है। समकिती श्रावक तो आनन्द को वेदता ही है। मुक्ति कब होगी, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। पर्याय के सामने देखे, ऐसी उसकी दृष्टि नहीं। समझ में आया? इसलिए निचले गुणस्थान में रहना, जिससे आयुष्य थोड़ा मिले, वहाँ देवलोक में। अरे, यह देखो। यह कहा, यह गप्प मारे। परसोत्तमजी थे। गोंडल सम्प्रदाय के, नहीं? हाँ, वह। और वे जैतपुरवाले उनके कामदार, क्या नाम? दौलतभाई कोठारी। यह नरभेराम का भाई। नरभेराम कोठारी है न, राजकोट। उनका भाई। ऐसी बात करे। क्या कहता है यह वह? (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है। कहीं तत्त्व को समझे नहीं और दिये रखे। धर्मी तो रसज्ञ। उस रस में क्या कहना है ज्ञान में, इस बात को बराबर जाने। आहाहा!

कृतग्य, लो। किये हुए उपकार को भूले नहीं। ऐसी ही उसकी स्थिति होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कृतज्ञता, है न? **दूसरों के उपकारों को नहीं भूलनेवाला।** और किसी का उपकार है नहीं। अरे, अरे! इसी जाति का विकल्प उसे होता है, ऐसा कहते हैं। बाहर से उपकार मानना और अन्दर से उपकार मानना नहीं। मायावी है, एक व्यक्ति ऐसा कहता था। एक व्यक्ति ऐसा कहता था बड़ा शास्त्र का पढ़नेवाला। अरे, भगवान! बापू! यह विनय में ऐसी भाषा आती है। श्रीमद् में तो ऐसा ही वहाँ तक कहा नहीं? 'वह तो प्रभु ने ही दिया।' आपीयो अर्थात्—मैंने जाना कि ऐसा आत्मा तो आपने दिया अर्थात् बतलाया, ऐसा। समझ में आया? यह उपकारी का उपकार छिपाये नहीं। उपकार को जाने। ओहोहो! समझ में आया?

तग्य—तज्ञ। आहाहा! तत्त्वज्ञानी। वास्तविक नव तत्त्व का जैसा स्वरूप है, वैसा बराबर जाने। पुण्य को पुण्यरूप से, पाप को पापरूप से, आस्रव को आस्रवरूप से, बन्ध को बन्धरूप से, मोक्ष को मोक्षरूप से, द्रव्य को द्रव्यरूप से। उसे वास्तविक ज्ञान होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। जैनतत्त्व .... गणधरों ने कहा हुआ, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ, गणधरों ने गूँथकर कहा। उसे माननेवाले जैन। समझ में आया? एक व्यक्ति और ऐसा कहे कि सब लोग 'जन' हैं और उसे 'जि' लगाओ तो 'जिन' होगा। और वह ऊपर दीर्घ वह कहलाती है न? बस रस्व 'ई' और दीर्घ 'ई' लगाओ तो 'जैन' होता है। सब आत्मा हैं।

मुमुक्षु : श्रद्धा खोटी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। श्रद्धा की है न खोटी। 'जन-जिन-जैन'। परन्तु जन अर्थात् क्या? वह तो मनुष्य अर्थ साधारण जीव होता है। जन का अर्थ जीव होता है बड़ा। अब उसका जिन—त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा ने कही हुई बात, वह जिन की कही हुई, उसे जिन कहते हैं और उसे अनुभव करनेवाला-माननेवाले को जैनी कहते हैं। यह कोई पक्ष नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **तज्ञ।**

धरमग्य—धर्म का बराबर प्रवीण। आहाहा! लो, है न? धर्मात्मा है। धर्मज्ञ—धर्म आत्मा। संवर-निर्जरा का बराबर स्वरूप जाननेवाला, उसे शुद्धि प्रगटी, उसमें रहनेवाला, उसे यहाँ धर्मात्मा कहते हैं। धर्मात्मा—धर्म आत्मा। जिसकी दशा में वीतरागी पर्याय प्रगट हुई है और भले दो कषाय का अभाववाली, परन्तु है वह धर्मात्मा। आहाहा! **न दीन न अभिमानी।** गृहस्थ है न। अभिमानी नहीं तथा दीन भी नहीं। मध्यस्थ भाववाला है। समझ में आया? **मध्य विवहारी**—लो। मध्यम व्यवहारी है। वे दीन—अभिमानी बीच में से।

सहज विनीत—वह तो स्वाभाविक विनयवाला होता है। समझ में आया? स्वाभाविक धर्म का विनय करनेवाला, तीर्थंकर, गुरु, ज्ञानी का स्वाभाविक उसका भाव ऐसा होता है। उसे उनका स्वाभाविक विनय होता है। समझ में आया? **पापक्रियासौं अतीत**—पाप की क्रिया मिथ्यात्व आदि से रहित है। कोई अशुभभाव हो, परन्तु मिथ्यात्व आदि के पाप से उसे विरति है। और उसके साथ अभक्ष्य, अन्याय ऐसे पाप की अभी उसे निवृत्ति है। समझ में आया? अभक्ष्य के नाम देंगे। **ऐसौ श्रावक पुनीत**

इकवीस गुनधारी है, लो, यह गुणवाला हो, उसे धर्मी गृहस्थाश्रमी श्रावक कहा जाता है। कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : ऐसे श्रावक कहाँ होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो आता है न! ऐसे... मूलपाठ में ऐसा कुछ निकाला है। निकाले न, न्याय से निकाले न। परमार्थ वचनिका में नहीं निकाला? यह निकाला हुआ है।

अब बाईस अभक्ष्य। उस श्रावक को २२ अभक्ष्य नहीं होते। यह **ओरा—** ओळा। ओळा नहीं खाता। वह ओळा नहीं खाता सिंगोड के।

मुमुक्षु : गोला-बर्फ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बर्फ बाद में कहेंगे।

मुमुक्षु : गेहूँ के, बाजरे के, ज्वार के....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका नाम ओळा। बर्फ बाद में कहेंगे। बर्फ, वह २१ में आयेगा। है न अन्दर? ओळा लिखा है न! यह तो 'ओरा' नाम दिया है। यह 'द्विदल'— **घोरबरा...** घोरबरा, हों! है न दूसरा? द्विदल नहीं खाता। यह जिसमें दही और छाछ के साथ उड़द की और मूँग की दो दाल (फाड़) पडे, उसके साथ छाछ-दही नहीं खाता। समझ में आया? दही, दूध और छाछ तीन में जहाँ कठोळ जो है—मूँग, मठ, उड़द ऐसी दाल का आटा, उसके साथ दही और छाछ हिलावे तो उसमें सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं। समझ में आया? द्विदल। आहाहा! वह अभक्ष्य है। समझ में आया?

रात्रिभोजन अभक्ष्य है। वह रात्रिभोजन नहीं करे। आहाहा! सूक्ष्म जीव त्रस के रात्रि में मरे।

मुमुक्षु : उसमें कोई शास्त्र निकाले तो उसे उपाय क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय कौन करता है? ऐ धीरुभाई! कहाँ गये धीरुभाई?

मलाड। यह तो तुम्हारी दलाली करते हैं। अब सोना के व्यापारी वहाँ मुम्बई में घर में जीमने आवे तो रात्रि में ही आवे प्रतिदिन।

मुमुक्षु : परन्तु उपाय क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा धन्धा ही नहीं होता उसे। ऐई, वजुभाई! प्रतिदिन रात्रि में खिचड़ी गर्म, उसमें बारीक जीवांत पड़े। खुराक—कढी में पड़े। पापड़ सेंका हुआ हो चिकना, उसमें जीवांत छुए। माँस जैसा भोजन हो जाता है। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? यह जीव का....

मुमुक्षु : यह तो श्रावक के लिये है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक होना है या नहीं इसे? समझ में आया? उसे रात्रिभोजन नहीं होता। जीवांत पड़ती है।

हमारे तो पालेज में एक बार कहा न, हमारी बड़ी बहिन थी पालेज में। वह अथाणा लेने गयी अथाणा। वहाँ बड़ी बरनी हो न इतनी बड़ी जोरदार। उसके ऊपर कोई कपड़ा एकदम मैला जैसा वस्त्र और ऊपर ढक्कन। अथाणा लेने गयी तो एक बार मैंने देखा वहाँ। यह अथाणा कहाँ से लाये यह? उस बरनी में से। बरनी के ऊपर देखो तो मैला वस्त्र, धोये कौन, उस वस्त्र को कौन धोये? और मलिन में कंथवा। वह अथाणा लेने जाये तो कंथवा अन्दर पड़े। उस अथाणा को रोटी में परोसे। अब यह वह अथाणा खाकर क्या करना है तुम्हारे? हमारी बड़ी बहिन थी। कहाँ गया हसमुख? तेरी भाभु। ... कुछ भानरहित बेचारे! अथाणा, वह साड़ियाँ हो और उसे नीचे रखे। क्या कहलाता है वह?

मुमुक्षु : गद्दे का ढ़ेर।

पूज्य गुरुदेवश्री : गद्दे का ढ़ेर। नीचे चीज़ हो और वह ऐसी बड़ी बरनी। उसे घर में लोग २५-३० एक रसोई में जीमनेवाले। इसलिए अथाणा बड़ा भरा हो, डिब्बे बड़े पूरे-पूरे। .... कहा, क्या करते हो यह तुम? अथाणा कहाँ से लाये? यहाँ से लाये। अरेरर... ऐसा अथाणा?

मुमुक्षु : अथाणा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अथाणा... अथाणा—अचार। ऐसा नहीं खाये, वह इसमें आयेगा। समझ में आया? वह सूक्ष्म जीवांत है। है?

अथाणां आता है, देखो! छठवाँ बोल। अथाणां—मुरब्बा। यह आम के मुरब्बे को क्या कहा जाता है तुम्हारे? गन्ना। गन्ने का मुरब्बा आवे न गन्ने टुकड़ और मुरब्बा।

मुमुक्षु : सेब फल का मुरब्बा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेब फल का तो पहले देखा हुआ है मेरा। बड़े भाई ने पानी माँगा था। (संवत्) १९५७ के वर्ष की बात है। मुरब्बा बनाया था। वह बरनी आदि आती है न मुरब्बा भरने के लिये। मुरब्बा अकेला सड़ा हुआ। त्रस की जाति (की) बहुत उत्पत्ति।

मुमुक्षु : अब तो पैकबन्द चलता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैकबन्द है न। अन्दर सड़े में ही उपजे हुए हों। ऊपर से पड़े हुए की बात नहीं यह। आहाहा! एक भोजन के लिए ऐसे त्रस जीव को मारना (उचित नहीं)। ऐसा रात्रिभोजन हो नहीं सकता। यह अथाणां नहीं होता। अथाणां समझे न अथाणां?

मुमुक्षु : अचार।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें अथाणा नाम है हिन्दी।

मुमुक्षु : उसमें .... का मुरब्बा तो इसी कोटि में।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब कोटि में है। आहाहा! ऐसे त्रस की हिंसा, वह सच्चे श्रावक को नहीं होती। खोटा करे तो वह कहीं वस्तु है? आहाहा! **बहुबीजा।** यह बैंगन आदि। अथवा जिसमें बहुत बीज हों न, उसे खाये नहीं। बहुत बारीक बीज चीज़ आती है न वह। बारीक-बारीक। हाँ, बहुत बारीक बीज। ऐसे फल श्रावक नहीं खाता। बैंगन... बैंगन। बैंगन। उसमें बहुत जीव हैं। उसकी टोपी होती है न ऊपर। बैंगन के ऊपर टोपी, उसमें बहुत जीवांत अन्दर होती है। टोपी के अन्दर कंथवा, जीवांत। वह आहार माँस जैसा आहार लगे। त्रस। आहाहा! समझ में आया? ऐसा होता नहीं। विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८८, कार्तिक शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक २१-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ५५, ५६, ५७

यह समयसार नाटक चलता है। इसमें चौदह गुणस्थान का वर्णन। पंचम गुणस्थान का वर्णन है। प्रथम तो आत्मा का स्वभाव जो चैतन्य ध्रुव नित्य त्रिकाली स्वभाव, उसमें पसरे बिना, उसकी श्रद्धा और उसमें एकत्व किये बिना सम्यग्दर्शन की शुरुआत और धर्म की (शुरुआत) होती नहीं। पहली तो यह चीज़ है। फिर यह सब बात है। उसमें तो त्याग की बात आती है, परन्तु जैसा त्याग बाहर से लोग करते हैं, इसलिए मान लेते हैं कि हम त्यागी है, ऐसा नहीं। यह तो आत्मा के और आनन्द के धाम में दृष्टि पड़ी है और आनन्द का परिणमन है, ऐसी दशावन्त को प्रथम सम्यग्दृष्टि, दुःख के दावानल को बुझाने के उपाय में आया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! चौरासी लाख के अवतार जन्म-मरण, वह संयोग की बात नहीं। परन्तु उसमें आकुलता, आनन्दस्वभाव में से हटकर विपरीत श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ऐसी आकुलता से अनादि से सिंक रहा है, यह खबर नहीं। समझ में आया?

कहा था न, दृष्टान्त नहीं दिया था उस चूड़ा का? चूडा में .... कुँवरजीभाई। कन्दोई कुँवरजीभाई। जैन स्थानकवासी। यहाँ का प्रेम था। यहाँ आते थे। वह कुछ गांठिया तलते होंगे। ऐसे तेल होगा धगधगता कडाही में। ऊपर एक बड़ा सर्प जाता था। उसका धुआँ लगा। वह सर्प ऊपर से अन्दर गिरा। आधा पड़ा तेल में और आधा रहा बाहर में। सिंक गया, वह कुछ भान नहीं रहा। आहाहा! जाने कहाँ से बचना, ऐसा करके जहाँ कलछी ऐसे निकालते हैं ऐसे। आधा पड़ा कडाही में, आधा धुएँ में गया। ये लोग तो जैनरूप से नाम—सम्प्रदाय, आहाहा! त्रास हो गया। इतने में ऐसे निकाला बाहर। निकाला साथ में भट्ठी में। क्योंकि खबर नहीं रही कहाँ जाता हूँ? क्या होता है? आहाहा! इतनी जलन। वह सर्प का कोमल शरीर। उसमें धगधगता तेल जिसमें गांठिया तले जायें ऐसा। वह आधा सिंका थोड़ा और आधा व्यवस्थित एक बाहर निकाला, वहाँ वह धगधगती भट्ठी थी, उस अग्नि में अन्दर घुस गया। खबर नहीं कि यह वह बचने का स्थान है या यह जलने का स्थान है। खबर नहीं। सिंक गया। समाप्त हो गया राख

(हो गया)। तब जैन लोगों की बँधी। बन्द कर दिया गांठिया-बांठिया सब। उस समय तो चिल्लाहट मचाये न। आर्य व्यक्ति को तो... आहाहा!

इस प्रकार अनादि से स्वरूप की शान्ति को भूलकर पुण्य और पाप और मिथ्यात्वभाव, वह भट्टी—अग्नि है। उसमें सिंका है। उसे बचाने के उपायरूप से कोई कहे कि भाई! यह राग की मन्दता करो तो बचोगे। उल्टा गहरा उतर जाता है पूरा। मिथ्यात्व तो है। अग्नि से जलता है। उसमें तीव्र उल्लास शुभभाव में घुसकर पूरा जल जाता है। समझ में आया? भान नहीं कि यह क्या करता हूँ, क्या होता है, कहाँ जाता हूँ, कहाँ से हटता हूँ। कहाँ जाना चाहिए। (कुछ) खबर नहीं। यहाँ कहते हैं कि प्रथम में प्रथम इसे शान्ति का धाम भगवान; वस्तु का स्वभाव शान्त और आनन्दधाम, उसे यह कषाय की—अग्नि की रुचि छोड़कर, अकषायस्वभाव का भान प्रभु के अन्दर स्पर्शना करे, श्रद्धा और ज्ञान की वर्तमानदशा को उसमें भिड़ावे, तब उसे सम्यग्दर्शन की शान्ति होती है। अपूर्व शान्ति होती है। भले आंशिक हो, परन्तु अनन्त काल में नहीं, ऐसी सिद्ध की जाति की शान्ति होती है। आहाहा! यह पहले करने का है।

मुमुक्षु : प्रथम में प्रथम मार्ग।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग है। समझ में आया?

तदुपरान्त अब यहाँ तो बात चलती है। ऐसी दशा है, उसकी दशा अब बढ़ती है। वह भी अन्तर का आश्रय उग्र ले तो यह बढ़ती है। यह कहीं वह बाहर का त्याग करे, इसलिए बढ़ती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जेठाभाई! ऐसी बात है। गजब भाई! आहाहा! चौरासी के रणसंग्राम में यह दुःखी... दुःखी... दुःखी, इसे खबर नहीं। आत्मा के ज्ञान के भान बिना महाव्रत आदि को पालन करे, तो भी वह अग्नि में सिंकता है। आहाहा! समझ में आया? उस अग्नि में से निकलकर 'राग आग दाह।' छहढाला में आता है। रागरूपी आग—अग्नि की दाह है, (वह) जलाती है। जलाती है... यह देखो न, सर्प अन्दर घुस गया चूल्हे में। इसी प्रकार राग की तीव्रता और मन्दता में प्रवेश करके बचने के उपाय चाहता है। आहाहा!

कहते हैं कि यह पंचम गुणस्थान की दशा, वह आत्मा के अवलम्बन से—आश्रय से जो प्रगट हुआ समकित और अनुभव, तदुपरान्त विशेष आश्रय लेकर द्रव्य को

उग्ररूप से अवलम्बकर जो स्थिरता शान्ति की चौथे (गुणस्थान) में थी, उससे पाँचवें में शान्ति की दशा वेदन में बढ़ती है। समझ में आया? आहाहा! उसे यहाँ पंचम गुणस्थान कहा जाता है। उसे ऐसे बाईस अभक्ष्य के खाने का विकल्प नहीं होता, ऐसा कहते हैं। इतना राग तो उसे गया है, ऐसा कहते हैं। खाना—न खाना की क्रिया सम्बन्धी की यहाँ बात नहीं। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ५५

बाईस अभक्ष्य (कवित्त)

ओरा घोरबरा निसिभोजन,
बहुबीजा बैंगन संधान।
पीपर बर ऊमर कठूंबर,
पाकर जो फल होइ अजान।।
कंदमूल माटी विष आमिष,
मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अति तुच्छ तुसार चलित रस,
जिनमत ए बाईस अखान।।५५।।

शब्दार्थ:–घोरबरा=द्विदल[१]। निसिभोजन=रात्रि में आहार करना। संधान=अथाना, मुरब्बा। आमिष=मांस। मधु=शहद। मदिरा=शराब। अति तुच्छ=बहुत छोटे। तुषार=बर्फ। चलित रस=जिनका स्वाद बिगड़ जाय। अखान=अभक्ष्य।

अर्थ:–(१) ओला (२) द्विदल (३) रात्रिभोजन (४) बहुबीजा[२] (५) बैंगन (६) अथाना, मुरब्बा (७) पीपर फल (८) बड़फल (९) ऊमर फल (१०) कठूमर (११) पाकर फल (१२) अजान[३] फल (१३) कन्दमूल (१४) माटी (१५) विष (१६)

---

१. जिन अन्नों की दो दालें होती हैं, उन अन्नों के साथ बिना गरम किया हुआ अर्थात् कच्चा दूध, दही, मठा आदि मिलाकर खाना अभक्ष्य है। २. जिन बहु बीजन के घर नाहिं, ते सब बहुबीजा कहलाहिं। 'क्रियाकोश' ३. जिन्हें पहिचानते ही नहीं हैं।

मांस (१७) शहद (१८) मक्खन (१९) शराब (२०) अतिसूक्ष्म फल (२१) बर्फ (२२) चलित रस – ये बाईस अभक्ष्य जैनमत में कहे हैं।।५५।।

काव्य-५५ पर प्रवचन

ओरा घोरबरा निसिभोजन,
बहुबीजा बैंगन संधान।
पीपर बर ऊमर कठूंबर,
पाकर जो फल होइ अजान॥
कंदमूल माटी विष आमिष,
मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अति तुच्छ तुसार चलित रस,
जिनमत ए बाईस अखान॥५५॥

ओला। पहले आया था न कल? ओला का अर्थ क्या कहा? करा... करा ऊपर से गिरते हैं न। कच्चा ओला वह अभक्ष्य है। ऐसी खाने की वृत्ति पंचम गुणस्थान की शान्ति की दशा में उसे ऐसा विकल्प का अभाव होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और इससे उतने राग का अभाव, इससे उसे ऐसे निमित्त की क्रिया का भी अभाव होता है। वस्तु तो ऐसी है। बाहर से ही न खाये और इससे अन्दर में धर्म की दशा हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? छह-छह डिग्री बुखार हो, आठ-आठ डिग्री, सिर घूम जाये। अब यह तो साधारण डिग्री है। नरक में तो अनन्त डिग्री का बुखार है पहले नरक में। दस हजार वर्ष की स्थिति में। वहाँ डिग्री का माप ही नहीं, ऐसी अमाप, उसे अग्नि है। वहाँ भी अनन्त बार भोग आया है, जाकर आया है। परन्तु जहाँ जाना है, वहाँ भोगा नहीं, वहाँ गया नहीं। समझ में आया? वह शान्ति का धाम भगवान, उसे जिसने पकड़ा, उसे जिसने अनुभव किया, उस अनुभव की उग्रता बढ़ने पर उसे ऐसा राग होता नहीं। इससे उसे यह अभक्ष्य गिनकर खाता नहीं, ऐसा कहा जाता है। ऐसा है।

उसे द्विदल नहीं होता। मूँग की दाल, उड़द की, मूँग-उड़द दाल दो फाड़ पड़ती

है न। उन सबको दही, दूध और छाछ के साथ और बिना गर्म किया हुआ कच्चा दूध। एक व्यक्ति तो ऐसा भी लाया था कि गर्म किया हो या न किया हो, सबके साथ द्विदल में जीव ही उत्पन्न होते हैं। ऐसी बात आयी थी। इन्दौर। प्रकाशचन्द है न प्रकाशचन्दजी। इन्दौर में नहीं? प्रकाशचन्दजी पाण्डया। यह चर्चा आयी थी। दही, दूध गर्म हो या ठण्डा हो, परन्तु उसके साथ मूँग, उड़द और मौंठ का आटा इकट्ठा हो और खाये। वडा हो उड़द का और मूँग का, उसके साथ दही और दूध। दहीवडा नहीं कहते? दहीवडा, वडा होता है न, उसमें दही डाले। मारवाड में दहीवडा बहुत होता है। वह दहीवडा सीधा... कच्चे दूध का अर्थ इतना किया है। **बिना गरम किया हुआ कच्चा दूध, दही, मठा आदि मिलाकर खाना अभक्ष्य है।** ऐसा भाव श्रावक को शान्ति की वृद्धि हुई, उसे ऐसा भाव—विकल्प होता नहीं। ऐसा है। समझ में आया? आत्मा के भान बिना द्विदल न खाना, वह धर्म है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

शब्द तो ऐसा आया था। **वरनौं इकईस गुन, अरु बावीस अभक्ष, जिनके संग्रह त्यागसौं।** भाषा तो ऐसी, कथन क्या हो? गुण को ग्रहण करना और अभक्ष्य को छोड़ना। एक ओर कहना कि आत्मा में ग्रहण-त्याग है ही नहीं। यह वस्तु की अपेक्षा से और दृष्टि की अपेक्षा से (बात है)। स्थिरता की अपेक्षा से अस्थिरता छोड़ना और स्थिरता ग्रहण करना, ऐसा कहा जाता है। परन्तु अस्थिरता छोड़ना, यह उपदेश की कथनशैली है। अन्दर भगवान आत्मा में गहरे-गहरे विशेष उतर जाना और आनन्द में जम जाना, इसका नाम गुण को ग्रहण किया कहा जाता है और उसने अशुद्धता को छोड़ा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! कथनशैली तो जिस प्रमाण हो, ऐसी आवे न! वाणी है तो वाणी का कितना काम होगा? आहाहा! कहते हैं, यह द्विदल खाने का भाव, सम्यग्दर्शन की आनन्द की दशा में और शान्ति का उग्र वेदन चौथे से विशेष हुआ है, इसलिए उसे ऐसा भाव होता नहीं। समझ में आया?

रात्रिभोजन त्याग। श्रावक की दशा शान्ति की जहाँ प्रगट हुई, उसे रात्रिभोजन का खाने का भाव होता नहीं। कितनी जीवांत पड़ती है, जीव मरते हैं ऐसे। तब कहे, आत्मा मार सकता नहीं, बचा सकता नहीं, ऐसा आप कहते थे? और मर जाये तथा और यह क्या कहते हैं? ऐई! भाव की बात है। उसे जो भाव है न रात्रि में खाने का, वह

भाव पाप है। समझ में आया? जिसमें माँस, जीवांत पड़े, कंथवा पड़े, ऐसा भोजन श्रावक की शान्ति जहाँ समकित से बढ़ी है, उसे यह नहीं होता। समझ में आया?

बहुबीजा। बहुबीजवाले जीव वनस्पति आदि उसे नहीं होती। नीचे श्लोक लिखा है। **जिन बहुबीजनके घर नाहिं ते सब बहुबीजा कहलाहिं।** ऐसा कुछ अन्तर है दूसरा कुछ। शब्द .....

मुमुक्षु : नाहिं में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाहिं में अन्तर है। यह शब्द चाहिए। बैठता नहीं। यह नकार चाहिए। जिन बहुबीज के घर नाहिं, बहुबीज के घर है ही, ते सब बहुबीजा कहलाहिं। ऐसा हो जाये। अस्ति सिद्ध करना है न! यह बहुत त्रस जीव उसमें होते हैं। बहुत बीज हों और उसमें सूक्ष्म त्रस भी अन्दर हों। आहाहा! अहिंसा। जिसे रागरहित दशा अहिंसा प्रगट हुई है। अहिंसा की व्याख्या—राग की अनुत्पत्ति का नाम अहिंसा है और राग की उत्पत्ति का नाम हिंसा है। यह पंचम गुणस्थान में तो दो राग की उत्पत्ति ही नाश हो गयी है। अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानी, इतनी अहिंसा प्रगट हुई है। उसे ऐसा बीज बहुत हों, उसे खाने का भाव होता नहीं। उसे वह त्याग कहा जाता है। आहाहा! रींगणां—बैंगन। उसमें बहुत बीज होते हैं।

अथाना, मुरब्बा। मुरब्बा की बात की थी और अथाणा की कल (बात की थी), नहीं? अथाणां... अथाणां... अचार। छह-छह महीने का मुरब्बा, बारह-बारह महीने का मुरब्बा होता है न। गन्ने का होता है, सेबफल का होता है, आम का होता है। बड़े-बड़े बोर होते हैं काशी के, उसका मुरब्बा होता है। बड़े काशी के बोर होते हैं न इतने।

मुमुक्षु : आंवला।

पूज्य गुरुदेवश्री : आंवला। छह-छह महीने के, चार-चार महीने के हों। आहाहा! स्थानकवासी को तो यह खबर ही नहीं कि इसमें (दोष है)। साधु लेते हैं। चार-चार महीने का मुरब्बा लेते हैं। लेते हैं। यह बात नहीं न उसमें। निश्चय की बात सच्ची नहीं और व्यवहार की भी कैसी, वह भी बात नहीं। समझ में आया? साधु होकर वह लेते हैं न, लहसुन और प्याज। प्याज... डुंगली समझे? प्याज... प्याज। प्याज घी में तला हुआ लेते हैं। घी में समझे? तेरापंथी लोग तो बहुत खाते हैं।

आचार्य तुलसी। प्याज और... भाई कहते थे, अभक्ष्य होता है। साथ में थे न लीलाधरजी। प्याज लावे दो-तीन गोला सिंका हुआ। वह घी में (सिंका हुआ), हों! अचेत।

मुमुक्षु : जमीकन्द को....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। (जमीकन्द) भी अचेत हो गया न। हमारे क्या है? साधु के लिये बनाया है? साधु के लिये बनाया नहीं, इसलिए (चलता है)। आहाहा! वे कहते थे कि हमको साधु दे। वह स्वयं आधा भाग अधिक वे लेते थे आचार्य। सब साधु को पूरी-पूरी कणी दे, परन्तु ऐसी मीठी लगे, कहे। फिर रोटी में जरा-जरा खाते जायें। टुकड़ा जरा-जरा लें। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। यह साधु! यह गजब करते हैं न यह! बापू! ऐसा नहीं होता। उसे प्याज, ... लहसुन, उसका अचेत हुई भी सब्जी नहीं होती। समझ में आया? तब कहे, हल्दी है वह कन्दमूल है। लो। समझ में आया? उसे कैसे.... ? क्या कहलाता है? आदु। आदु में से हल्दी होती है न? आदु में से वह सोंठ... सोंठ। और हल्दी भी पहले कन्दमूल होती है। हाँ, फिर हो यह। बापू! वह अलग चीज़ है। यह अलग चीज़ है। समझ में आया? यहाँ तो आत्मा का जिसे अनुभव है, सभी प्राणी ज्ञानसम है। 'सर्व जीव है ज्ञानसम।' ज्ञान से भरपूर भगवान है। उसे ज्ञाता-दृष्टा के उपरान्त शान्ति की वृद्धि हुई है, उसे ऐसे भाव होते नहीं।

पीपर के फल। यह पीपर के फल नहीं? टेटा। पेपडियो। हमारी काठियावाड़ी भाषा में पेपड़ी (कहते हैं)। यह पीपर होती है न पीपर। सब्जी करे इसकी सब्जी। कहीं वांकानेर में गये थे एक जगह। पेपड़ी की सब्जी है महाराज, लो। अरर्र! कहा, यह? कोई एक गली में था। .... पेपड़ी की सब्जी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खान है। बहुत महँगा। बालभंडारी। तुम्हारे कहाँ है यहाँ अन्दर कुछ? यह तो बात करे न। बाप-दादा का तो दूसरा था। .... इस चीज़ का विवेक व्यवहार का भी नहीं, ऐसा कहते हैं। निश्चय का तो है ही नहीं। राग से, विकल्प से पृथक् भगवान त्रिलोकनाथ को अन्दर में स्वभाव की स्थिति करके स्वीकार करना,

इसके बिना सम्यग्दर्शन की शुरुआत भी है नहीं। आहाहा! इस मूल भूमिका उपरान्त की यह तो बात है। यह है नहीं और बाहर त्याग करके बैठे कि हम यह नहीं खाते, पीपर के फल और फलाना, ढींकणा (नहीं खाते), इसलिए हम त्यागी श्रावक हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भाई! यह तो जगत से—संसार से उभरकर स्वभाव में जाने की बात है। संसार अर्थात् उदयभाव चाहे तो पुण्यभाव या पापभाव, वह धगधगती भट्टी है। सोगानीजी की जहाँ थोड़ी स्पष्ट भाषा बाहर आयी, लोग भड़क उठे कि शुभभाव भट्टी है। आहाहा! सेठिया जैसे को भी अन्दर से खलबलाहट हो गयी। लो। भाई! दूसरे ने ऐसा लिखा, उसके व्यक्ति शोभागचन्द (ने)। रामजीभाई के प्रति प्रश्न आया था न, तार आया था। ऐसी चीज़ है कि यह बात अन्दर में (बैठना मुश्किल)। यह विकल्प है शुभराग का भाई, वह अग्नि है। परन्तु किसके साथ तुलना करे? मिर्ची का कीड़ा मिर्ची को लपेटकर अन्दर रहे। यह मिर्ची में बारीक जीवांत होती है न सूक्ष्म। आटा हो न मिर्ची का आटा (चूरा) उसमें। चारों ओर उसका—मिर्ची का बारीक लाल करके और अन्दर रहे। इसी प्रकार अनादि से अज्ञानी शुभ-अशुभभाव और मिथ्याश्रद्धा, इस अग्नि के गर्भित में पड़कर घुस गया है। आहाहा! समझ में आया? अरे, यहाँ पाँच-छह-आठ डिग्री बुखार आवे, मर जाते हैं, मर जाते हैं। हाय रे हाय! आहाहा! भाई! यह संयोग कहीं दुःख नहीं देता। संयोग को आत्मा छूता भी नहीं। उसमें उसे आकुलता है। आहाहा! आहाहा! उस आकुलता का उसे वेदन है। बुखार की दशा तो जड़ की है। जड़ की दशा को चैतन्य विकार से भी छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा!

अपना भगवान आनन्द का धाम, उसमें रह सका नहीं और उसमें से बाहर निकला तो ऐसे विकल्प में रुक गया। इस दावानल को वह वेदता है। उसे उभरने का मार्ग यह है। स्वरूप की शान्ति की दृष्टि करके फिर विशेष आश्रय करके शान्ति प्रगट हुई। उसे ऐसे पीपर की, क्या कहा वह? पेपडियों, वड के फल। यह वड में आते हैं न बड़े टेटा। टेटा लाल बारीक उसमें जीव बहुत जीव। पेपडी की सब्जी बनाते हैं। किसी एक जगह सुना तब। बहुत वर्ष की बात है। वांकानेर में कोई छोटी गली, अन्दर गहरे-गहरे बाहर निकलने का था अन्दर। बाहर निकलने का। पेपड़ी की सब्जी है,

कहा। ओय...! पेपड़ी समझ में आया? अरेरे! यह तो माँस का भोजन कहलाता है। त्रस की बारीक जीवांत। भाई! और एक व्यक्ति ऐसा कहता था। यह मोक्षमार्ग सुनकर। पहले स्थानकवासी साधु था, हो गया मन्दिरमार्गी। फिर यहाँ चातुर्मास था और मिला था यहाँ रास्ते में। ... रेंकडी में जाते थे पालीताणा। और उठानेवाले चार और वह करे न एक हाथगाड़ी हो न, हाथगाड़ी यह। उसमें बैठा था और एक व्यक्ति हाँकता था ऊपर से।

तब बोले थे यहाँ। जिसे निश्चय भान हुआ, उसे फिर यह व्यवहार कैसा, उसका क्या काम है? ठीक। वह फिर माँस खाये या मदिरा पीवे, उसके साथ सम्बन्ध क्या है? अरे भाई! उल्टा उल्टा। यह नीतिविजय का चेला। नीतिविजय थे न वांकानेर के साधु, उनके शिष्य थे। स्थानकवासी में साधु थे। वे मन्दिरमार्गी साधु हुए। है, यहाँ चातुर्मास था तब अभी रास्ते में मिले। नहीं, उस रेंकड़ी में बैठे थे? एक साधु आये हमारे पास। उन्हें अलग होना था। एक अलग हो गया, कहते हैं। तब आया था। उसे अलग होना था। देखकर कहे, यह ठीक लगता है यह हमको। मोटर में घूमना और धर्मी कहलवाना। अपने ठीक घूमो इसमें। अरे, बापू! यह वस्तु मोटर क्या और फिर धातु चीज़ अलग है। समझ में आया? आहाहा! आत्मा के अन्दर के आनन्द के स्वाद के समक्ष जिसे राग, आकुलता और दुःख लगता है, वह राग की दशा स्व के आश्रय से छूट जाती है। तब उस प्रकार के निमित्त का त्याग है, ऐसा कहा जाता है। ऐसा है। समझ में आया?

ऊमर फल। आते हैं न ऊमर के फल। तब अपने यह नहीं था? वह ऊमर के फल वहाँ देखे थे न, ऐसे दिशा को गये थे। पड़े थे सब लाल। अपने यहाँ क्या? तलासरी। तलासरी। मगसिर कृष्ण ८ था न। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की तिथि थी। यह जब गये न मुम्बई, तब। (संवत्) २०१३ के वर्ष। बाहर दिशा को गये, बैठा वहाँ ऐसे बड़ा फल गिरा। ऐसा बड़ा फल। वह तो ऊमर के फल हैं। अकेली जीवांत, अकेली जीवांत। राजकोट में अपने उतरते थे न वहाँ भाई क्या?

मुमुक्षु : राठोड।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ बड़े वे ऊमर के फल थे। बहुत जीवांत, बहुत जीवांत। बारीक-बारीक। ऐसे त्रस के भोजन का स्थान, ऊपर से ऐसे भाव पंचम गुणस्थान

(वाले) धर्मी को होता नहीं। आहाहा! **कठूमर।** ऐसी कोई जीवांतवाली चीज़ होगी कुछ। **पाकर फल**—बहुत पक गया हुआ और बहुत बारीक जीवांत उसमें हो ऐसी। **अजान फल।** कुछ खबर न हो, कैसा फल है जंगल में अनेक प्रकार के फल होते हैं। वह अजान फल भी खाये नहीं। उसे वह भाव होता नहीं। वहाँ हठ नहीं है कि अपने अरेरे, यह नहीं खाया जाता, इसलिए अपने को छोड़ना (पड़ेगा), ऐसा नहीं। उसे वह आत्मभाव ही सहज आनन्द के धाम में बसने से, ऐसी विकृति उसे होती नहीं। आहाहा!

कन्दमूल नहीं खाये, लो ठीक। यहाँ तो कन्दमूल सब खाते हैं। यह शक्करकन्द और आलू और मूली, गाजर। एक बार आहार लेने गये थे, सेठ आये थे। कन्दमूल की सब्जी थी आलू की। भाई साथ में थे पण्डित देवकीनन्दन। आओ लो, सब्जी। अरे, यह क्या आलू—शक्करकन्द? आलू की सब्जी। हमारे तो सब खाते हैं। सर हुकमीचन्द स्वयं।

मुमुक्षु : और वह तो यात्रा में जाये तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यात्रा में जाये... अरर! ऐसा हो? व्यवहार का भी जिसे ठिकाना नहीं। यह तो निश्चयसहित आत्मा के भानसहित ऐसा भाव उसे कन्दमूल खाने का होता नहीं। उसमें अनन्त काय है। आहाहा! अनन्त आत्मा... एक आलू का टुकड़े राई जितना, बापू! उसकी प्रतीति भी कठिन है, भाई! उसमें असंख्य तो औदारिक -शरीर। एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीव। आहाहा! उसमें अनन्त-अनन्त भव किये, इसके माँ-बाप, पुत्री, पुत्रों के जीव भी अन्दर बैठे होंगे।

सहज स्वभाव के आनन्द की लहर की दशा में आगे शान्ति-चारित्र का अंश बढ़ा है न, इससे उसे कन्दमूल खाने का भाव होता नहीं। कहो, समझ में आया? यह बटाटा/आलू। चिप्स बनाते हैं न बारीक। बारीक-बारीक पतली चिप्स करके घी में तले, तेल में तले और फिर ककडाट... ककडाट... मीठी लगे। उसके ऊपर धाणा, जीरा उस चिप्स के ऊपर। घी में तलकर वह खाता जाये। आहाहा! भाई! आत्मा के स्वाद के समक्ष कहाँ गया तू बाहर! समझ में आया? जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है और स्वाद में भी थोड़ा आगे बढ़ा है, उसे ऐसे कन्दमूल के खाने का भाव होता नहीं। यह तो भक्ष्याभक्ष्य चाहे जो हो। यह भी चलता है और यह भी चलता है। यह तो

स्थिरता के विकल्प का त्याग, उसकी बात है। यह मैंने छोड़ा या रखा, यह प्रश्न नहीं। समझ में आया? कहते हैं, उसे कन्दमूल का त्याग होता है। ऊपर आया था न गुणग्रहे? गुण संग्रहे और त्याग, ऐसा आया था न। शुरुआत करते हुए। यह भाषा में व्यवहार जैसा कोई है, उसे उस प्रकार के भाव का व्यय होता है, ऐसा। समझ में आया?

मुनि को तो एकेन्द्रिय का एक जीव मरे, वह भी आहार न ले—हरितकाय या कन्दमूल। यह तो चौका के चौका करते हैं, वह चले। प्रभु! वस्तु का स्वरूप ऐसा है, हों! व्यक्तिगत तो जैसा हो, वैसा भले हो। मार्ग ऐसा है। उसे आत्मध्यान, आत्मज्ञान और उसकी उग्रता जिसे अन्तर में, ओहो! उसकी राग के अभाव की अहिंसा की क्या बात करना! उसे एकेन्द्रिय एक जीव मरे और आहार ले, वह भी उनकी वृत्ति नहीं होती। यह तो पंचम गुणस्थान है। गृहस्थाश्रम है। गजब बात, भाई! गृहस्थाश्रम कहना एक ओर। एक ओर कहना कि समकिती गृहस्थाश्रम में विकल्प से भी विरक्त है। समझ में आया? क्योंकि अभी विकल्प उठा है अचारित्र का, उससे भी सम्यग्दृष्टि तो द्रव्य-गुण-पर्याय से उससे तो विरक्त है। परन्तु अस्थिरता की अपेक्षा से जब स्वरूप का आश्रय लेकर जब विशेष शान्ति का वेदन करता है, तब ऐसा राग उत्पन्न होता नहीं। उसे—वस्तु को त्यागता है, ऐसा यहाँ के राग का व्यय—भेद हो जाता है, वहाँ पर को त्यागता है, ऐसा असद्भूतव्यवहारनय से कथन आता है। समझ में आया?

किस नय से क्या कहा है, यह समझे बिना... आया था या नहीं वहाँ गाथा में अभी? व्यवहार भान होता है नय में, नहीं? कथन का, शास्त्र के रहस्य का....

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार दोनों जानना। आज आया था सवेरे जैनतत्त्व में।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें आया था। यह तो पहले भी आया था। ऐसा कि ऐसा रहस्य जाने। शास्त्र के रहस्य को जाने। वह इसमें भी आया था यह तो। मर्मज्ञ, बस यह। इसके पहले तुरन्त ही, देखो न! **विशेषग्य रसग्य कृतग्य तग्य धरमग्य।** उसमें आया था। आहा! शास्त्रज्ञान की मर्मज्ञता। किस जगह किस अपेक्षा से कथन है, उन सबका मर्म जानकर धर्मी। अन्ध कूटता नहीं। समझ में आया? यह लिखा। लिखा है, वह किस अपेक्षा से है? भाई! .... घातिकर्म का। ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को रोका, दर्शनमोह का

उदय हो तो मिथ्यात्व होता ही है, ऐसा आवे। बापू! क्या अपेक्षा है, उसे जानना चाहिए न। जिसे मिथ्या अभिप्राय करने की योग्यता है, उसे मिथ्यात्व के उदय को निमित्त कहा जाता है। किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य को स्पर्शती नहीं, करे क्या? कर्म के उदय की पर्याय भी जीव की पर्याय को छूती नहीं। एक-दूसरे में अभावरूप से परिणमन हो रहा है। आहाहा! समझ में आया?

मिट्टी का आहार नहीं होता, लो। यह मिट्टी खाते हैं न। महिलायें नहीं, वह क्या कहलाता है? भूतड़ा। भूतड़ो... भूतड़ो। भूतड़ो अर्थात् जिसमें से पानी और ऐसा वह निकल गया हो तो नीचे इतना बारीक आटा जैसा ऐसा भूतड़ो होता है। गर्भ ऐसा आया हो, उसे भाव ऐसे ही होते हैं वापस। कंकड़ खाये। अपने हीराभाई थे, कोरे कंकड़ खाते थे। स्वयं क्या कारीगर थे न। यह हीराभाई, नहीं? अब नहीं। वह जिसमें मकान बनते थे पहले .... वे कहते थे कि कंकड़ .... खाऊँ। वह अन्दर पड़े रहते हैं। जरा ऐसी डकार आया करे, ऐसा कि जरा-जरा अन्दर। कुछ खबर नहीं। कंकड़... अरे अरे! यह भूतड़ो। वह अभक्ष्य है। अरे, जड़ की खुराक मिट्टी की? समझे न, यह बहुत कोमल लगती है। मीठी लगती है। आहाहा! वह अभक्ष्य है। समकिती पंचम गुणस्थानवाली महिला दो जीव होती हो, यह खुराक नहीं होती। आहाहा!

सीताजी जैसे धर्मात्मा, देखो न! दो जीव शरीर में लव और कुश दो। वे दोनों चरमशरीरी। जगत की गति की क्रिया का काल हो, वह बनता है, वह तो होता है। अन्तर में तो वे धर्मात्मा राग और शरीर की क्रिया से विरक्त है। हम उसमें आये नहीं और हम उसे करते नहीं। आहाहा! यह वह अजब-गजब की बातें! अज्ञानी विषय त्यागे तो भी मिथ्यादृष्टि। हमने यह छोड़ा, हम शरीर से ब्रह्मचर्य पालते हैं—ऐसे शरीर की क्रिया का अभिमान मिथ्यादृष्टि है। ऐसे स्वभाव में से नहीं हटे। जरा निर्बलता आयी, उसका भी अन्दर विरक्तभाव है। आहाहा! अरे, इसका मिलान कहाँ करना? ऐसी बात है। वह धर्मी जीव उसे विकल्प आया, वह उसे काला नाग जैसा देखता है। यह विषय में मजा है और रस है, वह रस समकिती को उड़ गया। धर्मी को आत्मा के रस के समक्ष, वह सब राग का रस अन्दर फीका पड़ गया है। आहाहा! अब यह कौन जाने? बाहर के आचरण देखनेवालों को इसकी खबर नहीं पड़ती। आहाहा! दृष्टि और

ज्ञान का विषय और उसका फल, वह दृष्टि बिना के लोग उसका माप नहीं कर सकते। समझ में आया? यह मार्ग वीतराग का मार्ग कोई पूरे जगत से अलग है।

कहते हैं, मिट्टी का खुराक नहीं होता, उसे विष—अफीम आदि नहीं होते। यह अफीम के बंधाण समकिती को नहीं होते, ऐसा कहते हैं। लो, जहर, अफीम, माँस नहीं होता। यह वृत्ति ही उसकी उसे नहीं होती। मधु... मधु। शहद अर्थात् मधु। उस मधु का खुराक ज्ञानी को नहीं होता। वह दवा में भी मधु का भाग हो तो नहीं लेता। समझ में आया? यहाँ तो मधु सेठिया तो मधु में दवा खाये। पण्डित सलाह दे कि यह दिक्कत नहीं। चारित्रदोष है।

मुमुक्षु : शास्त्र बताते हैं कि दिक्कत नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब क्या शास्त्र बतावे। इन्द्रिय के विषय से निवृत्त हुए नहीं, ऐसा आता है न, गोम्मटसार। परन्तु बापू! एक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा अन्दर हुई है, उसे आसक्ति—वृत्ति गयी नहीं, इतनी बात है। ऐसी खुराक। एक मधु के बूँद में सात गाँव को ऐसे मारने जितना पाप है। समझ में आया? सड़ो अकेला सड़ो। जीवांत त्रस। आहाहा! यह इत्र। इत्र नहीं आता इत्र? वस्त्र पर इत्र... अत्तर क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : इत्र.... सेंट।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत जीवांत। अकेला सड़ान। अरे, धर्मी को उस ओर का .... नहीं। यह सवेरे नहाकर वस्त्र के ऊपर छिड़कते हैं न। यहाँ बहुत प्रकार के वस्त्र गन्ध मारे। खबर पड़े कि यहाँ गन्ध मारी है इस वस्त्र ने। यहाँ तो नाक ताजा स्पष्ट और (इसलिए) तुरन्त गन्ध मारे। यह कहीं दूसरे प्रकार की गन्ध है। आहाहा!

वह एक थे न, नहीं भाई क्या कहे? वेणीभाई बक्षी। वे सामने प्रतिदिन मिले तो उनके वस्त्रों में ऐसा हो कि गन्ध ही मारे। .... छह-छह महीने। सामने मिले....

मुमुक्षु : कब्ज बहुत थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कब्ज बहुत थी। उस ओर जाते। अब दिशा को कहाँ जाना? .... जहाँ निकले वहाँ गन्ध मारे।

यह मधु का खुराक उसे होता नहीं। दवा में भी नहीं होता। एक बूँद में सात गाँव

को मारने का पाप। भाई! ऐसा विकल्प ही उसे नहीं होता। हठ से नहीं। उसकी भूमिका ही इतनी अधिक कोमल हो गयी है कि उसके ऐसे भाव होते नहीं। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि के देव से भी जिसे शान्ति बढ़ी है। सर्वार्थसिद्धि के देव समकिती और यह पंचम गुणस्थानवाला। उसकी कौन सी दशा! मक्खन जैसी दशा हो गयी है अन्दर से नरम... नरम... ऐसा। मक्खन नहीं खाये। ठीक। यह मक्खन... मक्खन। मक्खन। एक अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् तो बहुत जीवांत, जीवांत। मक्खन की गृद्धि।

शराब। शराब बहुत प्रकार की अभी शराब होती है। कितने ही तो ७५-७५, १०० रुपये की एक छोटी शीशी ले। .... सौ रुपये का पानी... बड़े राजा महाराजा पीवे न वह।

मुमुक्षु : शुद्ध मदिरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध मदिरा तो ठीक। स्वयं ही अशुद्ध है, उसमें शुद्ध कहाँ से आया? आहाहा! यह राजा-महाराजा, सेठिया है न। उनकी एक-एक थाली के दो सौ-दो सौ, पाँच सौ-पाँच सौ रुपये हों एक थाली के। यह होटल में जाये न बड़ी होटल में। यह बोतलें पड़ी हो अन्दर ऊँची। ....नरक के कीड़े हैं। भविष्य के नारकी। भविष्य में नारकी होनेवाले हैं, उसे वर्तमान नारकी कहो। आहाहा! कहते हैं, ऐसा मदिरा का खुराक उसे नहीं होता। समझ में आया?

अतिसूक्ष्म फल। बहुत सूक्ष्म। उसमें उसे खबर नहीं पड़े कि इसमें कितनी जीवांत हैं। उसे नहीं खाता। वह बर्फ नहीं लेता बर्फ। समझ में आया? बर्फ अभक्ष्य है। **चलित रस,** लो। २२वाँ। यह दाल, सब्जी चलित रस हो गयी हो न बिगड़कर। रातवासी रहे कि यह थोड़ा (काल) दिन में बहुत बिगड़ जाये। चलित रस में जीवांत होती है। जीवांत उसका आहार। जिसे भगवान की भेंट हुई, ऐसे आत्मा को मिला उसे ऐसा खुराक नहीं होता। समझ में आया? आत्मा के भान बिना इसका त्याग करे, उसका फल राग की मन्दता और पुण्य और मिथ्यात्व साथ में। मिथ्यात्व का फल साथ में मैं छोड़ता हूँ और मैंने छोड़ा है न, वह राग का कर्ता होता है। मिथ्यात्व, वह महापाप है। उसके साथ एक पुण्य अघाति का बँधे जरा। घाति का पाप तो बड़ा मिथ्यात्व है।

आहाहा! मिथ्यात्व महापाप की तो कीमत की खबर नहीं होती। समकित महाधर्म का ठेठ ठेका जिसने लिया। ठेका लिया कि मैं अब आत्मा पूर्णानन्द हूँ, ऐसा ठेका समकिती ने लिया है। अब उसमें से माल निकाले उतना निकले।

यह ठेका तुम्हारे कहते थे।

मुमुक्षु : ठेकेदार।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कुछ कहते थे कि उस अफ्रीका में भाई ने लिया है। यह कुंवरजीभाई का पुत्र। ठेका लिया था पन्ना का। अब पन्ना के ठेके में से करोड़ों-करोड़ों निकल गये। करोड़ों का पन्ना। एक अरब रुपये। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! अरे, धूल में भी नहीं, सुन न अब। पूर्व के पुण्य के परमाणु जरा थे, वे जल गये। दिखाई दे, परन्तु दिखता है न? तू तो देखनेवाला है। तुझमें कहाँ आये और तेरे होकर कहाँ रहे हैं? ऐसे तेरे आत्मा के होकर रहे हैं वहाँ अरब रुपये? वह तो अजीव होकर रहे हैं, तथापि उठाईगीर कहता है कि मुझे मिले और वे मेरे हैं। चोर है। किसी की चीज़ मेरी (है ऐसा माने) तो वह चोर है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, ऐसे जिसमें त्रस की बहुत उत्पत्ति हो अधिक... **ये बाईस अभक्ष्य जैनमत में कहे हैं....** देखो! पाठ है न, **जिनमत ए बाईस अखान।** आहाहा! ऐसा **अखान** अर्थात् कहा आख्यात, ऐसा।

★ ★ ★

काव्य - ५६

प्रतिज्ञा (दोहा)

अब पंचम गुनथानकी, रचना बरनौं अल्प।
जामैं एकादस दसा, प्रतिमा नाम विकल्प।।५६।।

अर्थ:-अब पाँचवें गुणस्थान का थोड़ा सा वर्णन करते हैं, जिसमें ग्यारह प्रतिमाओं का विकल्प है।।५६।।

काव्य-५६ पर प्रवचन

अब पंचम गुनथानकी, रचना बरनौं अल्प।
जामैं एकादस दसा, प्रतिमा नाम विकल्प॥५६॥

अब ग्यारह प्रतिमा होती है। पंचम गुणस्थान में—आत्मज्ञान में अनुभवसहित और शान्ति की आंशिक प्रगट विशेष (दशा) हुई, पश्चात् भी उसे शान्ति के अंश की वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे उसे प्रतिमा के नियमों के विकल्प भी ऐसे होते हैं। मात्र विकल्प ११ प्रतिमा के, उसे यहाँ प्रतिमा नहीं कहते। यह प्रतिमा लेकर बैठे और फिर हम प्रतिमाधारी हैं। अभी मिथ्यात्व का तो त्याग नहीं। दर्शनप्रतिमा का ठिकाना नहीं और दूसरी प्रतिमा आयी कहाँ से? समझ में आया?

रचना वरनौ अल्प। थोड़ा वर्णन करता हूँ, कहते हैं। **जामैं एकादस दसा।** ग्यारह शान्ति के अंश की वृद्धि... वृद्धि... वृद्धि के ग्यारह प्रकार हैं। समझ में आया? दो कषाय (चौकड़ी) तो टले हुए होते हैं। तीसरे कषाय का अंश-अंश रस घटता जाता है और यहाँ शुद्धि का अंश बढ़ता जाता है। ऐसे पंचम गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान से पहले ऐसी एक दशा पंचम गुणस्थान में होती है, उसे यहाँ प्रतिमा कहा जाता है। स्पष्टीकरण करेंगे। **प्रतिमा नाम विकल्प।** स्वयं प्रतिमा की व्याख्या करेंगे। **संजम अंस जग्यौ जहां, भोग अरुचि परिनाम।** बाद में आयेगा ५८ (पद) में। ५७ (पद) में नाम आयेंगे और ५८ (पद) में उनका स्वरूप कहेंगे।

संजम अंश जग्यौ जहां। देखो, पंचम गुणस्थान। अरे, भगवान के अन्तर्भेद में आगे बढ़ गया। ऐसा पंचम गुणस्थान **संजम अंश जग्यौ...** है न ५८ में? संयम का अंश जगा है। **भोग अरुचि परिनाम**—आसक्ति तो चौथे में ही होती है। परन्तु यहाँ तो आसक्ति घट गयी है। समकिती को भोग की रुचि होती ही नहीं। क्योंकि भोग की रुचि तो जहर है। भोग में सुख मानना, वह तो महा मिथ्यात्व का जहर है। उस जहर को वमन किया है जिसने, ऐसे सम्यग्दृष्टि को भोग की आसक्ति घट गयी है। समझ में आया? उसे यह प्रतिमा होती है, ऐसा कहते हैं। दिगम्बर में प्रतिमा का आग्रह अधिक

होता है और यह श्वेताम्बर में लेते नहीं। प्रतिमा नहीं लेते, सीधे साधु हो जाओ। बस, बारह व्रत ले और फिर साधु हो जाओ एकदम।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात भी कहाँ? परन्तु यह तो बारह व्रत का ठिकाना, अणुव्रत का प्रतिमा का ठिकाना नहीं। अभी प्रतिमा नहीं पलती, साधु (पना) पले?

उदै प्रतिग्याकौ भयौ,.... लो। प्रतिज्ञा का उदय आया। वस्तु का यह राग नहीं होता ऐसा—ऐसी प्रतिज्ञा का प्रगटपना वहाँ आया, ऐसा कहते हैं। चौथे गुणस्थान में प्रतिज्ञा होती नहीं। समझ में आया? **प्रतिमा ताकौ नाम**—इसका नाम प्रतिमा कहते हैं। यह पहली दर्शन प्रतिमा की ही व्याख्या से यह शुरु होती है। अब इनके नाम कहते हैं, देखो।

★ ★ ★

काव्य - ५७

ग्यारह प्रतिमाओं के नाम (सवैया इकतीसा)

दर्सनविसुद्धकारी बारह विरतधारी,
सामाइकचारी पर्वप्रोषध विधि वहै।
सचितकौ परहारी दिवा अपरस नारी,
आठौं जाम ब्रह्मचारी निरारंभी ह्वै रहै।।
पाप परिग्रह छंडै पापकी न शिक्षा मंडै,
कोऊ याके निमित्त करै सो वस्तु न गहै।
ऐते देसव्रतके धरैया समकिती जीव,
ग्यारह प्रतिमा तिन्है भगवंतजी कहै।।५७।।

अर्थः–(१) सम्यग्दर्शन में विशुद्धि उत्पन्न करनेवाली दर्शन प्रतिमा है, (२) बारह व्रतों का आचरण व्रत प्रतिमा है, (३) सामायिक की प्रवृत्ति सामायिक प्रतिमा है,

(४) पर्व में उपवास-विधि करना प्रोषध प्रतिमा है, (५) सचित्त का त्याग सचित्तविरत प्रतिमा है, (६) दिन में स्त्री स्पर्श का त्याग दिवामैथुनव्रत प्रतिमा है, (७) आठों पहर स्त्रीमात्र का त्याग ब्रह्मचर्य प्रतिमा है, (८) सर्व आरम्भ का त्याग निरारम्भ प्रतिमा है, (९) पाप के कारणभूत परिग्रह का त्याग सो परिग्रहत्याग प्रतिमा है, (१०) पाप की शिक्षा का त्याग अनुमतित्याग प्रतिमा है, (११) अपने वास्ते बनाये हुए भोजनादि का त्याग उद्देशविरति प्रतिमा है। ये ग्यारह प्रतिमा देशव्रतधारी सम्यग्दृष्टि जीवों की जिनराज ने कही हैं।।५७।।

काव्य-५७ पर प्रवचन

दर्सनविसुद्धकारी बारह विरतधारी, सामाइकचारी पर्वप्रोषध विधि वहै। पहली प्रतिमा का नाम दर्शनविशुद्धि। सम्यग्दर्शन निर्मल करे। अतिचार लगने दे नहीं, इसका नाम दर्शन प्रतिमा है। है पंचम गुणस्थान। व्रत होते हैं, तथापि निरतिचार नहीं होते। उसका समकित निर्मल निरतिचार। क्षयोपशम हो तो भी निरतिचार। ऐसे आत्मा के आनन्द की परिणति में अतिचार नहीं होते, ऐसी पंचम गुणस्थान की दशा। वैसे तो पंचम गुणस्थान है। पंचम गुणस्थान। अकेला समकित नहीं, उसके साथ बारह व्रत भी इकट्ठे होते हैं, परन्तु निरतिचार नहीं। वह निरतिचार समकित रखे और साथ में व्रत के विकल्प होते हैं और अन्दर शान्ति की आंशिक वृद्धि होती है, द्रव्य का आश्रय विशेष लिया है, उसे दर्शन विशुद्धकारी समकित—दर्शनप्रतिमा कहा जाता है।

बारह विरतधारी। यह दूसरी प्रतिमा है। यह निरतिचार, हों! **सामाइकचारी—** तीसरी सामायिक (प्रतिमा)। आनन्द का प्रयोग करना। दो-दो घड़ी प्रतिदिन आनन्द का प्रयोग। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा मैं कितने काल निज अन्तर में रह सकता हूँ, इसका प्रयोग, उसका नाम सामायिक। **पर्वप्रोषध—**पन्द्रह दिन यह पूरे दिन मैं किस प्रकार आत्मा में रह सकता हूँ, इसका प्रयोग, उसे प्रौषध कहते हैं। प्रौषध-बौषध किये तो होंगे? बहुत किये हैं।

सचितकौ परहारी। पाँचवीं प्रतिमा। सचित का त्याग। स्वयं सचेत को खाये

नहीं। **दिवा अपरस नारी**—दिन में स्त्री का स्पर्श नहीं। **आठौं जाम ब्रह्मचारी निरारंभी,** लो। आठों पहर स्त्रीमात्र का त्याग, यह आठवीं प्रतिमा या सातवीं कही? सर्व आरम्भ का त्याग। **निरारंभी,** लो है न। यह आठवीं। सर्व आरम्भ का त्याग निरारम्भी—आरम्भ न करे। वह सचित का अचित स्वयं न करे। पाप के कारणभूत परिग्रह का त्याग—लक्ष्मी न रखे और **पापकी न शिक्षा मंडै**—पाप की शिक्षा न दे। अनुमति न दे। ठीक, तुमने यह विवाह किया। ठीक, तुमने यह आहार किया। ऐसी अनुमति न दे। उसके (लिये) बनाया हुआ ले नहीं। ग्यारह प्रतिमा। **कोऊ याके निमित्त करै सो वस्तु न गहै।** ग्यारह प्रतिमावाला न ले। ऐसी तो स्पष्ट भाषा है। अब इसका यह बड़ा विवाद अभी चला है। यह बड़ा लेख। साधु स्वयं कहे कि करो, तो वह उद्देशिक कहलाये। उसके लिये किया हुआ हो और वह ले, वह उद्देशिक नहीं, लो। अरेरे!

मनोहरलालजी आये थे न वहाँ जयपुर। उन्हें बेचारों को... बहुत दूर से आये थे। परन्तु नरम व्यक्ति। तो सब प्रश्न होते थे, यह तो उद्देशिक का प्रश्न किया। उद्देशिक आहार का यदि आपकी ओर से समाधान हो तो बहुत संगठन हो, कहे। परन्तु बापू! क्या कहें? जैसा हो वैसा हो या.... उद्देशिक आहार का स्पष्टीकरण ... लोगों ने बनाया हुआ है, उसमें साधु को, श्रावक को क्या? ऐसा स्पष्टीकरण हो तो। ऐसा स्पष्टीकरण नहीं होता। दुनिया के लिये, भगवान का विरह है, इसलिए दूसरा मार्ग कहना, ऐसा हो नहीं सकता। वास्तव में तो, कहा, अभी कोई उद्दिष्ट भोजी, त्यागी उद्दिष्ट का प्रतिमाधारी श्रावक तो नहीं, कहा। स्पष्टीकरण किया। नहीं, सुनते बेचारे सुनते थे। उन्हें अन्दर खटक तो है कि एक .... यह सब .... मार्ग बापू ऐसा है। जैसा होगा वैसा रहेगा। कहीं स्पष्टीकरण करो आपकी ओर से तो ऐसा कि बहुत संगठन हो जाये। क्योंकि तुम्हारे वचन का बाहर में बहुत वजन पड़ता है। ठीक। इससे मार्ग दूसरा होगा? मार्ग दूसरा नहीं, बापू! यह मार्ग है। क्षुल्लक भी अभी उद्दिष्ट आहार लेते हैं। वह द्रव्यलिंगी क्षुल्लक नहीं, कहा। ऐसे सुनते थे बेचारे, हों! **ऐते देसव्रतके धरैया समकिती जीव,** हों परन्तु वापस ऐसा कि **ग्यारह प्रतिमा तिन्है भगवंतजी कहै।** भगवान उसे ग्यारह प्रतिमा कहते हैं। इसका स्पष्टीकरण कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८९, कार्तिक शुक्ल ३, शुक्रवार, दिनांक २२-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ५८ से ६४

समयसार नाटक। चौदह गुणस्थान में पाँचवें गुणस्थान श्रावक में प्रतिमा के स्वरूप का कथन है। प्रतिमा का स्वरूप। ५८ वाँ बोल है।

★ ★ ★

काव्य - ५८

प्रतिमा का स्वरूप (दोहा)

संजम अंस जग्यौ जहां, भोग अरुचि परिनाम।
उदै प्रतिग्याकौ भयौ, प्रतिमा ताकौ नाम।।५८।।

अर्थः-चारित्र गुण का प्रगट होना, परिणामों का भोगों से विरक्त होना और प्रतिज्ञा का उदय होना, इसको प्रतिमा कहते हैं।।५८।।

काव्य-५८ पर प्रवचन

संजम अंस जग्यौ जहां, भोग अरुचि परिनाम।
उदै प्रतिग्याकौ भयौ, प्रतिमा ताकौ नाम॥५८॥

कहते हैं कि संयम का अंश जगा। अर्थात् प्रथम आत्मा के अनुभव में शुद्धता के अनुभव—वेदन में प्रतीति होना, ऐसा सम्यग्दर्शन तो उसे होता है। सम्यग्दर्शन बिना संयम का अंश नहीं हो सकता। समझ में आया? यह संयम सम्यक्त्व-उपरान्त की बात है न! जिसमें आत्मा के निर्विकल्प स्वभाव का अनुभव प्रथम होने पर, उसमें उसकी श्रद्धा हुई कि यह वस्तु पूर्ण आनन्दस्वरूप है। उसमें राग भी नहीं, संसार नहीं, शरीर, कर्म कोई चीज़ ही उसमें नहीं। ऐसा आत्मा का अन्तर्मुख होकर सम्यग्ज्ञान की पर्याय में पूर्ण आत्मा ज्ञात हो और उसमें शुद्ध का वेदन हो, उसकी प्रतीति हो तो उसे समकित

कहते हैं। गजब! है कठिन। समझ में आया? वह कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को माने नहीं। सभी देव समान, सभी धर्म समान, ऐसा उसे होता नहीं। तथा व्यवहार से दया, दान के विकल्प-राग से धर्म होता है, यह भी मानता नहीं।

ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य ने जो दिगम्बर धर्म वास्तविक तत्त्व उन्होंने जो कहा, ऐसा अन्दर स्वरूप के भान में आवे, तब उसे समकित कहा जाता है। यह मार्ग वीतराग दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है नहीं। ऐसा मार्ग जिनवर ने कहा कि आत्मा ध्रुव चैतन्य पूर्ण प्रभु के ओर की झुकाववाली दशा को जघन्य अर्थात् पहला द्रव्य का आश्रय जघन्यरूप से जिसने लिया है। उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहा जाता है। उससे थोड़ा उग्र अधिक आश्रय लिया, तब शान्ति दूसरी कषाय (चौकड़ी) के अभाव की शान्ति प्रगटे, आंशिक विशेष, उसे यहाँ संयम अंश कहा है। समझ में आया?

संजम अंस जग्यौ जहां, भोग अरुचि परिनाम। भोग की अरुचि—रुचि तो नहीं। वह तो समकितदर्शन में ही होता है। यह तो आसक्ति का अंश घटा है, इस अपेक्षा से बात है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन आत्मा का भान होने पर कोई भोग की विषय की रुचि उसे होती ही नहीं, क्योंकि आत्मा में जिसने आनन्द देखा, वह आनन्द कहीं उसे भासित नहीं होता। सर्वत्र दुःख भासित होता है। विषय की वासना, इज्जत-कीर्ति पर लक्ष्य जाना, वह सब दुःख भासित होता है। अरुचि अर्थात् द्वेष, ऐसा नहीं। परन्तु भोग में सुख है, यह बुद्धि ही जिसकी टल गयी है। और आनन्द—आत्मा में आनन्द है, ऐसी जिसे अनुभवदृष्टि हुई है, उसे भोग की तो अरुचि ही होती है। गृहस्थाश्रम में रहा होने पर भी, ९६-९६ हजार स्त्रियों के संग में दिखाई दे, परन्तु उसे उनके भोग की रुचि होती नहीं। आहाहा!

जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान स्वभाव के भान में जहाँ जागृत हुआ, उसे कहीं रुचि भोग की, विषय की, शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श की ओर का प्रेम, रुचि उसे होती ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु प्रतिमा में तो इससे आगे बढ़कर भोग की आसक्ति घटती है। समझ में आया? आसक्ति घटती है, उसे यहाँ अरुचि के अर्थ में कहा है। **उदै प्रतिग्याकौ भयौ,....** प्रतिज्ञा हुई वहाँ। आहाहा! अन्दर दशा में शुद्धता का अंश जगने पर प्रतिज्ञा हो गयी कि अब इससे आगे जाना नहीं। राग

मेरा, यह तो नहीं, परन्तु राग की तीव्रता की आसक्ति भी उसे होती नहीं। **प्रतिमा ताकौ नाम।** उसे प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमा अर्थात् यह भगवान की मूर्ति वह?

मुमुक्षु : नहीं, उसे स्वयं को परिणमाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था न, **जहाँ भोग अरुचि परिनाम।** परिणाम की बात है। श्रावक की ११ प्रतिमा है। गुण की शुद्धि के अंशों के प्रकार को प्रतिमा कहा जाता है। अब दर्शन प्रतिमा का स्वरूप स्वयं कहते हैं। दर्शन प्रतिमा का स्वरूप

★ ★ ★

काव्य - ५९

दर्शन प्रतिमा का स्वरूप (दोहा)

आठ मूलगुण संग्रहै, कुविसन क्रिया न कोइ।
दरसन गुन निरमल करै, दरसन प्रतिमा सोइ।।५९।।

अर्थः–दर्शन गुण की निर्मलता, अष्ट मूलगुणों[१] का ग्रहण और सात कुव्यसनों का त्याग, इसे दर्शन प्रतिमा कहते हैं।।५९।।

काव्य-५९ पर प्रवचन

आठ मूलगुण संग्रहै, कुविसन क्रिया न कोइ।
दरसन गुन निरमल करै, दरसन प्रतिमा सोइ॥५९॥

पहली प्रतिमा पंचम गुणस्थान की दशा, कोई बाह्य से व्रत लेकर और विकल्प ले और बैठे कि हम प्रतिमाधारी हैं, वह नहीं। जिसने आत्मा के आनन्द का आश्रय लेकर

१. पंच परमेष्ठी में भक्ति, जीवदया, पानी छानकर काम में लेना, मद्य त्याग, मांस त्याग, मधु त्याग, रात्रिभोजनत्याग और उदम्बर फलों का त्याग, ये आठ मूलगुण हैं। कहीं कहीं मद्य, मांस, मधु और पाँच पाप के त्याग को अष्ट मूलगुण कहा है, कहीं कहीं पाँच उदम्बर फल और मद्य मांस मधु के त्याग को मूलगुण बतलाये हैं।

शान्ति उग्ररूप से समकित से भी अधिक प्रगट हुई है, उसे **आठ मूलगुण संग्रहै,..** आठ मूलगुण की व्याख्या चार प्रकार से है। (१) एक तो **पंचपरमेष्ठी में भक्ति....** ऐसा उसे विकल्प होता है। (२) **पानी छानकर काम में लाना।** दया। पानी छानकर, क्या कहलाता है? गळीने (छानकर) ले, ऐसा उसका भाव सम्यग्दर्शन प्रतिमाधारी, उसे वह सहज होता है। हठ नहीं। अरे, हमारे ऐसा करना पड़े और हमारे ऐसा करना पड़े। आहाहा! हठ बिना की ऐसी परिणति उसकी होती है जीवदया। पानी छानकर काम में लाना।

(३) **मद्य त्याग**—मदिरा का त्याग, **माँस त्याग, मधु त्याग, रात्रिभोजन त्याग।** यह प्रतिज्ञासहित की बात है, हों! **और उदंबर फलों का त्याग।** यह आठ मूलगुण हैं। यह आठ मूलगुण उसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। दूसरे **कहीं कहीं मद्य, माँस, मधु और पाँच पाप के त्याग को अष्ट मूलगुण कहा है।** अणुव्रत पाँच। **कहीं कहीं पाँच उदम्बर फल और मद्य, माँस, और मधु के त्याग को मूलगुण बतलाये हैं।** तीन। और चौथा, इसमें आ गया है पहले ३०वें बोल में। सम्यग्दर्शन के आठ गुण। ३०, ३०। (पद) रूपचन्दजी ने यह डाले हैं। उसमें है सही न यह।

करुना वच्छल सुजनता, आतम निंदा पाठ।
समता भगति विरागता, धरमराग गुन आठ॥३०॥

दर्शन प्रतिमा। उसमें उसे करुणा होती है। उसे कोई निर्दय परिणाम नहीं होते, मैत्री—वात्सल्य वात्सल्य। धर्मी के प्रति वात्सल्य। जैसे गाय को बछड़े के प्रति प्रेम, वैसे धर्मी को धर्मी के प्रति प्रेम होता है। आहाहा! समझ में आया? सज्जनता होती है सज्जनता। उसे दुर्जनता नहीं होती। स्वलघुता। अपनी लघुता बतावे। मैं ऐसा बड़ा हूँ और ऐसा हूँ, ऐसा नहीं। समता। श्रद्धा। श्रद्धा होती है। यह अपने आ गया है पहले। उदासीनता और धर्मानुराग। पूरे संसार से समकिती उदासीन है। समझ में आया? क्योंकि अपनी चीज़ में जो है, उसमें उसकी रुचि और प्रेम है। राग का विकल्प व्यवहार दया, दान आदि के विकल्प के प्रति भी जिसे अन्तर उदासीनता है। आहाहा! उसे दर्शन प्रतिमा के गुण कहे जाते हैं।

एक व्यक्ति को पूछा कि दर्शन प्रतिमा अर्थात् क्या? कहे, यह भगवान के दर्शन करना, वह दर्शन प्रतिमा। लो ठीक। ऐसा कर डाला लोगों ने बाहर में, मूल मार्ग

छोड़कर, मूल दशा छोड़कर दूसरी बात बाहर में। उसमें भी वापस यह भगवान के दर्शन करना, वह दर्शन प्रतिमा। कहो, ठीक। आहाहा! धर्मानुराग। धर्म के प्रति बहुत ही प्रेम, गाढ प्रेम। असंख्य प्रदेश में जिसे धर्म का अनुराग, हाड-हाड की अस्ति मज्जा में जिसे धर्म का प्रेम होता है। अर्थात्? हड्डियाँ तो पर हैं। उसके असंख्य प्रदेश में उसे धर्म का प्रेम होता है। आहाहा! समझ में आया? उसे राग और उसका प्रेम होता नहीं। यह समकित के आठ गुण, लो। चार प्रकार वर्णन किये न। तीन नीचे वर्णन किये हैं। यह आठ चौथे वर्णन किये।

मुमुक्षु : चौथे में फिरे तो सम्यग्दर्शन हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है। परन्तु वह प्रतिमा में आ जाये। यहाँ तो समुच्चय है न। **आठ मूलगुण संग्रहै, कुविसन क्रिया न कोइ।** उसे सात व्यसन नहीं होते। समझ में आया?

कुव्यसन—उसे सात कुव्यसन का त्याग होता है। आत्मदर्शन सहित, अनुभव सहित सहज उसे सात व्यसन का त्याग होता है। परस्त्री का त्याग, शिकार का त्याग, मद्य-माँस का त्याग, वेश्या का त्याग इत्यादि सहज ही होते हैं। ऐसी जो श्रावक की पंचम गुणस्थान की वास्तविक दशा में यह स्थिति होती है। हठ से होता नहीं। हमारे ऐसा करना पड़ेगा, क्या करें हम श्रावक हुए, यह नहीं। वह तो हठवाले हैं। वह तो अज्ञानी है। परन्तु उसकी अन्तरदशा ही ऐसी होती है कि उसे कुव्यसन की क्रिया होती ही नहीं।

दरसन गुन निरमल करै,... अब वह प्रतिमा की बात है यह। पाँचवें गुणस्थान की। समकित को निरतिचार रखे। आहाहा! व्रत हों सही उसे, परन्तु निरतिचार नहीं, इसलिए उसे व्रत प्रतिमा नहीं कहा जाता। **निरमल—**समकित निर्मल। इन्द्र के इन्द्रासन चलित हों और इन्द्र आदि देव डिगावे, तो भी उसके सम्यग्दर्शन में चलित नहीं होता। दुनिया की बातें बहुत सुने। पुण्यवन्त में.... ऐसे पुण्यवन्त हैं, बड़े बाबा फलाना साधु, मठ के .... आदि। उसे लाखों-करोड़ों रुपये की उपज है। राजा-महाराजा मानते हैं, इसलिए उसमें कुछ होगा, ऐसा होता नहीं। कहो, समझ में आया? दर्शन प्रतिमा—उसका नाम सम्यग्दर्शनसहित की प्रतिमा। तीर्थंकरगोत्र बाँधने के जो सोलह बोल हैं,

उसमें भी पहला दर्शन हो तो तीर्थंकरगोत्र के परिणाम होते हैं। समझ में आया? यह तो चौथे गुणस्थान में होते हैं और दर्शन प्रतिमा में भी तीर्थंकरगोत्र बाँधने के परिणाम होते हैं। समझ में आया? ऐसा विकल्प होता है। छठवें में भी होते हैं, सातवें में होते हैं, परन्तु वह सब शुभराग सम्यग्दृष्टि को ही होता है। मिथ्यादृष्टि को तीर्थंकरगोत्र के परिणाम नहीं हो सकते। कहो, समझ में आया? क्योंकि जिसे धर्म का भान हुआ है, आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसा ही आनन्द दूसरे को कैसे मिले, प्राप्त हो, ऐसा विकल्प तो उसे होता है। समझ में आया? आहाहा!

तुम्हारे उन श्वेताम्बर में बहुत आता है, संघ करे न संघ। बहुत वर्ष की बात हुई। गारियाधार संघ किया हुआ एक व्यक्ति ने। लीलाधर सेठ थे। ऐसे निकले शिवलालभाई। जब जिमावे तब ऐसा बोले। अरे, कोई इसमें तीर्थंकर का जीव हो तो इसमें अपने को लाभ होता है, इसलिए हम जिमाते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न! वहाँ तो मैंने देखा हुआ न! (संवत्) १९६९ के वर्ष की बात है। यह गारियाधार, नहीं? ५९ वर्ष हुए। लीलाधर सेठ थे। तुम्हारे में अन्तिम पढ़े हेमचन्द, नहीं? भूपेन्द्र है यहाँ। हेमचन्द उनके मामा का पुत्र। बहुत वृद्ध थे परन्तु ऐसा कहते थे। उस समय में ख्याल में था कि यह लोग ऐसा मानते हैं कि इसमें संघ में कोई जीमने में कोई तीर्थंकर का जीव हो तो अपने को लाभ हो जाये।

मुमुक्षु : यह अनुमोदना....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे, परन्तु कौन है, इसके भान बिना अनुमोदना भी किसकी? समझ में आया? सब बिना भान के कूटता है वहाँ। यह सब तब बराबर सुना हुआ। ६९ के वर्ष। जीमन किया फिर सबने। कोई भी बाकी न हो अपने जैन में से और उसमें से कोई जीव ऐसा हो और कोई तीर्थंकर का जीव। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, उसे दर्शनप्रतिमा में जो समकित हो, ऐसे जीव को ही विकल्प तीर्थंकरगोत्र का होता है। है बन्ध का कारण, है अपराध। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव तो राग है। अमृतचन्द्राचार्य ने तो स्पष्ट रखा है। अमृतचन्द्राचार्य ने पुरुषार्थसिद्धिउपाय

में शिष्य ने प्रश्न किया कि महाराज! यह समकित होने के पश्चात् ही तीर्थंकरगोत्र बँधता है और आहारकशरीर आदि जो मुनि को लब्धि होती है, वह भी बाद में आहारकशरीर बँधे तो वह कुछ क्या चीज़ है? कहे, वह चीज़ है अपराध। ऐसा पाठ है।

मुमुक्षु : शुभोपयोग अपराध।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपराध। अब इतनी स्पष्टता है। परन्तु ऐसा भाव समकिती को होता है, अज्ञानी को नहीं होता।

मुमुक्षु : शुभोपयोग में कणी....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं कणी शुद्धता में तो। वह तो स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई शुद्धता, वह शुद्धता है। इसलिए उसका अशुभ टलता है, उतने अंश में शुद्धता है। शुभकाल में आत्मा के आश्रय (अधिक) अशुभ समय के काल में आत्मा का आश्रय कम है। शुभ के (काल में) आश्रय अधिक है। शुद्ध के समय उग्र है। शुद्ध उपयोगकाल में। आहाहा! गजब बातें परन्तु! वीतरागमार्ग को समझना (कठिन)।

इसे अनन्त काल हुआ परन्तु सम्यग्दर्शन और उसका विषय और उसकी निर्मलता का क्या स्वरूप कभी जाना और सुना नहीं। बिना भान के भगवान सच्चे, देव-गुरु सच्चे—ऐसा वीतरागमार्ग में नहीं चलता। अन्दर भान में आना चाहिए, भाई! चौरासी के घोर भयंकर अवतार में से छूटना है। बापू! उसका रास्ता तो कोई कठिन होगा न। कठिन अर्थात् दुर्लभ अनन्त काल में नहीं प्राप्त हुई ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! सात कुव्यसनों का त्याग, वह दर्शन प्रतिमा है। है यह पंचम गुणस्थान की बात, परन्तु उसका नाम दर्शन प्रतिमा। समझ में आया? क्योंकि बारह व्रत उसे होते अवश्य हैं परन्तु निरतिचार नहीं, इसलिए उसे व्रत प्रतिमा नहीं कहा जाता। अब दूसरी व्रत प्रतिमा। यह ११ प्रतिमावाले तो अभी बहुत दिखते हैं यहाँ तो। सात प्रतिमा और आठ प्रतिमा और ग्यारह प्रतिमा। समझे बिना की प्रतिमा कैसी? अभी तो प्रतिमा किसे होती है? पहले सम्यक् अनुभव दर्शन निर्विकल्प अनुभव हो, उसे विशेष द्रव्य का आश्रय लेकर शान्ति बढ़े, उसे ऐसे विकल्प के प्रकार हों, वह व्यवहार है और शान्ति का अंश बढ़े, वह निश्चय है। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ६०

व्रत प्रतिमा का स्वरूप (दोहा)

पंच अनुव्रत आदरै, तीनौं गुनव्रत पाल।
सिच्छाव्रत चारौं धरै, यह व्रत प्रतिमा चाल।।६०।।

अर्थः–पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के धारण करने को व्रत प्रतिमा कहते हैं।

विशेषः–यहाँ पंच अणुव्रत का निरतिचार पालन होता है, पर गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के अतिचार सर्वथा नहीं टलते।।६०।।

काव्य-६० पर प्रवचन

पंच अनुव्रत आदरै, तीनौं गुनव्रत पाल।
सिच्छाव्रत चारौं धरै, यह व्रत प्रतिमा चाल॥६०॥

देखो! यह पाँच अणुव्रत आदरे। दोनों आये। भाई! वस्तु की स्थिति में **पंच अनुव्रत आदरै।** अर्थात् कि उसे शान्ति का अंश बढ़ गया है, वास्तव में तो वही प्रतिमा है।

मुमुक्षु : निश्चय प्रतिमा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निश्चय परन्तु उसे पाँच अणुव्रत के विकल्प भी व्यवहार से होते हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। सहज ऐसे विकल्प होते हैं। सहज ऐसा द्रव्य, सहज ऐसा गुण और सहज ऐसी निर्विकल्प परिणति होती है, उसे सहज ऐसा-ऐसा विकल्प होता है। समझ में आया? हठ से विकल्प करे और यह करे, उसे समकित ही न हो, वहाँ उसे व्रत कैसे? आहाहा!

पंच अनुव्रत आदरै। है अणुव्रत व्यवहार तो विकल्प, तथापि आदरे, ऐसा कहते हैं। आदरे अर्थात् वहाँ होते हैं, ऐसा व्यवहारनय से आदरे, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! तीन गुणव्रत—छठवाँ, सातवाँ और आठवाँ। आगे अभी इस विषय में आयेगा। उन्हें पालन करे, लो, तीन गुणव्रत को पाले, है तो विकल्प व्यवहार का। परन्तु वहाँ होता है

ऐसा बतलाने के लिये, पालता है, ऐसा व्यवहारनय का कथन आता है। **सिच्छाव्रत चारौं धरै,** लो। प्रत्येक के शब्द अलग किये। चार शिक्षाव्रत, उसमें कहीं चौथे में सल्लेखना भी डालते हैं। उन्हें धरे अर्थात् उस दशा में वह बात—भाव होते हैं। गजब बातें! **यह प्रतिमा।** यह व्रत प्रतिमा निरतिचार पाले। पाँच और तीन—आठ और चार—बारह। बारह व्रत का भूमिका में विकल्प हो परन्तु उसे निरतिचार पाले, इसलिए उसे व्रत प्रतिमा कहा जाता है।

दुनिया में ऐसा कहा जाता है कि ले लो प्रतिमा कुछ। परन्तु प्रतिमा, वह कहीं बाहर से आती होगी? भाई! वह तो आत्मा के ध्रुव स्वभाव का उग्ररूप से अवलम्बन हो, तब उसकी दशा पलट जाती है। चौथे से पाँचवीं हो जाती है। आहाहा! उसे ऐसे बारह व्रत के विकल्प होते हैं। बात-बात में बहुत अन्तर। मूल श्रद्धा और दर्शन में ही अन्तर है, इसलिए एक-एक बात का मिलान कहीं खाता नहीं। आहाहा! **यहाँ पंच अणुव्रत का निरतिचार पालन होता है,...** देखो, लिखा है। पहले पंच अणुव्रत तो थे दर्शन प्रतिमा में, परन्तु यह निरतिचार होते हैं। **पर गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के अतिचार सर्वथा नहीं टलते।** यह दूसरी प्रतिमा।

मुमुक्षु : ....अतिचार बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। थोड़ा आवे।

सामायिक प्रतिमा तीसरी, तीसरी। सामायिक में बैठ जाना। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं। यह सामायिक नहीं। कहो, बालचन्दजी! सामायिक तो कितनी होगी यह सब?

मुमुक्षु : एक साथ में नौ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत। एक साथ में नौ? नौवें व्रत की नौ सामायिक। अरे, यहाँ तो समकित सामायिक एक समय की, जिसके जन्म-मरण के अन्त के भणकार बजे, उस समकित सामायिक बिना व्रत की सामायिक आवे कहाँ से? आहाहा! कहो, शान्तिभाई! आहाहा! शान्तिभाई तो एकदम साधु होना चाहते थे—दिगम्बर मुनि।

मुमुक्षु : मरने के थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मरने के थे। स्त्री को कहा, कैसे आज्ञा क्यों दे दी? कहे, इनका बहुत भाव हुआ वह क्या करूँ? कहे, साधु हो जानेवाले थे दिगम्बर नग्न। नरम व्यक्ति। वैरागी मनुष्य। इन्होंने यह बात सुनी, ओय माँ... मार्ग दूसरा लगता है।

साधुपना किसे कहना, बापू! वह तो कोई अलौकिक चीज़ है। अभी तो सम्यग्दर्शन और श्रावक की प्रतिमा का स्वरूप क्या है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! सीधे मुनि हो जाये। बापू! मुनि तो धन्य अवतार है। आहाहा! अब कहेंगे कि उसे निरन्तर सामायिक होती है। उसे भी समकित की दशा का जो अंश जितना प्रगट हुआ है श्रावक को, वह निरन्तर होता है। परन्तु अमुक समय सामायिक करने बैठे, तब विशेष प्रयोग करे। अतीन्द्रिय आनन्द की झलक अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में कितना भाव आता है, होता है, उसका प्रयोग करे, उसका नाम सामायिक है। उसमें समताभाव प्रगट होता है, वीतरागभाव प्रगट हो, उस दशा को सामायिक कहा जाता है। आहाहा!

सामायिक का घड़ियाल दो घड़ी लेकर बैठा हो, घड़ियाल के सामने देखे, पूरा हो जाये तो सामायिक पूरी। यह घड़ियाल होता है न वह क्या? रेती... रेती। रेती नीचे पूरी गिरे, हो गया जाओ। उसमें यदि कहीं अटका तो देरी कैसे लगी यह? कुछ वह कणी जाड़ी आ जाये कोई। अटक जाये। फिर ऐसे हिलावे। खबर है न, देखा है न। हमारे तो वहाँ बहुत सामायिक करते। लोग सब पुराने वृद्ध थे। लेकर बैठे बेचारे। गृहस्थ व्यक्ति थे। पुत्र और पुत्री कुछ नहीं थे। मकान-बकान सब .... महाजन के गये। लेकर बैठते बेचारे, हों! वह बड़ा मकान .... यह किसान अभी लिया है वहाँ, नहीं? उमराला। सामने हमारे जन्मस्थान के सामने। सब हमारे मामा और सब बड़े। सब गृहस्थ थे। सात मामा और सात मामियाँ। एक पुत्री भी नहीं होती। सब गया। बाँझ का कौन ले? इस कारण किसी ने लिया नहीं उनके पास से।

उसमें ऐसा कुछ सुनते हैं यह नेमीदास में। कोई कहता था। कोई... कोई। उसका पुत्र स्वयं भतीजा कोई लेना चाहता नहीं था। मैंने कहा, इतना पास में रुपया। वह कोई कहता था, हों! कान में बात आयी थी। अभी गये न वहाँ। भाई तो मर गये। सात-आठ लाख रुपये हैं। स्वयं एक ही है। और वह बाई मर गयी। यहाँ तो दिये १४ हजार जरा उस दिन और। ऐसे तो बहुत हैं। मैंने कहा, यह भी कुछ.... कोई एक कहता

था। एकान्त में। लड़के कुछ लेना चाहते नहीं, ऐसी कुछ भाषा आयी है। ऐसे हैं लड़के। इसलिए यह वहम पड़ा हो। वह बाँझ है न। उनका लेकर और अपने बाँझ हो जायेंगे। पुत्ररहित की वह क्या..... ? यह तो सब वहम है, हों! दुनिया को भ्रमणा है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, आहाहा! धन्य धन्य सामायिक! व्रत पंचम गुणस्थान समकित सहित।

★ ★ ★

काव्य - ६१-६२

सामायिक प्रतिमा का स्वरूप (दोहा)

दर्व भाव विधि संजुगत, हियै प्रतिग्या टेक।
तजि ममता समता ग्रहै, अंतरमुहूरत एक।।६१।।

(चौपाई)

जो अरि मित्र समान विचारै।
आरत रौद्र कुध्यान निवारै।।
संयम सहित भावना भावै।
सो सामायिकवंत कहावै।।६२।।

शब्दार्थ:-दर्व विधि=बाह्य क्रिया-आसन, मुद्रा, पाठ, शरीर और वचन की स्थिरता आदि की सावधानी। भाव विधि=मन की स्थिरता और परिणामों में समता भाव का रखना। प्रतिज्ञा=आखड़ी। अरि=शत्रु। कुध्यान=खोटा विचार। निवारै=दूर करे।

अर्थ:-मन में समय की प्रतिज्ञापूर्वक द्रव्य और भावविधि सहित, एक मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी[१] तक ममत्वभावरहित साम्यभाव ग्रहण करना, शत्रु और मित्र पर एकसा भाव रखना, आर्त और रौद्र दोनों कुध्यानों का निवारण करना और संयम में सावधान रहना सामायिक प्रतिमा कहाती है।।६१-६२।।

---

१. चौबीस मिनिट की एक घड़ी होती है।

काव्य-६१-६२ पर प्रवचन

दर्व भाव विधि संजुगत, हियै प्रतिग्या टेक।
तजि ममता समता ग्रहै, अंतरमुहूरत एक॥६१॥

मन में समय की प्रतिज्ञापूर्वक.... है न अर्थ में? बाह्यक्रिया द्रव्यविधि, है न! आसनमुद्रा पाठ। .... यह मुद्रा आया अभी, हों, देखो! अन्दर में आया था न मुद्रा—योगमुद्रा। कल आया था। योगमुद्रा। बैठे अन्दर। आसन लगाकर मुद्रा ध्यान। कायोत्सर्ग के लिये। पाठ, शरीर-वचन-स्थिरता आदि की सावधानी, वह द्रव्य। वह द्रव्य, द्रव्य। मन की स्थिरता और परिणामों में समताभाव, वह भाव। अन्दर में वीतरागता। अन्तर्मुहूर्त—मुहूर्त के अन्दर। दो घड़ी के काल को—४८ मिनिट को मुहूर्त कहते हैं। २४ मिनिट को घड़ी कहते हैं। ४८ मिनिट को मुहूर्त कहते हैं। उसमें जरा सा कम—थोड़ा। आत्मा की सामायिक सम्यग्दृष्टि को होती है। जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं, उसे सामायिक होती नहीं। पाट लेकर बैठे और यहाँ सामने देखता हो। शीतलप्रसाद यहाँ रहे थे न एक बार पन्द्रह दिन, तब बैठते थे। णमो अरिहंताणं, णमो करके पूरा कर दे। वह सामायिक। अरे, भाई! सामायिक की एक पहर भी आनन्ददायक और वीतरागता की प्रगट दशा करे, ऐसी होती है। समझ में आया? कहते हैं न, **एक अंतरमुहूरत एक, तजि ममता समता ग्रहै।** अस्ति-नास्ति की है। प्रतिज्ञा लेकर परिणाम में समता .... ध्यान में। चैतन्यपिण्ड जहाँ अन्दर घुलता हो, आनन्द में जिसकी लीनता बढ़ गयी हो। समझ में आया? उसे श्रावक की सामायिक प्रतिज्ञा कहा जाता है। आहाहा!

दर्व भाव विधि-संजुगत। द्रव्य, यह बाहर की क्रिया आदि में, वचन आदि ध्यान। और विधि—भावविधि सहित। **हियै प्रतिग्या टेक।** प्रतिज्ञा बराबर अन्तर्मुहूर्त तक ध्यान में रहना, ऐसी उसे प्रतिज्ञा होती है। न रह सके तो फिर विकल्प हो व्यवहार के। **तजि ममता।** ममता का अर्थ राग आदि परिणाम से तो समकिती मुक्त ही है। समझ में आया? जितनी व्यवहार की—राग की क्रिया है, उनसे सम्यग्दृष्टि तो उदयभाव से मुक्त है परन्तु वह दृष्टि की अपेक्षा से। यहाँ अस्थिरता का त्याग, उसे यहाँ त्याग कहते हैं। ममता का त्याग कहा जाता है। वह ममता का त्याग कब होता है? कि समता ग्रहे तब। अर्थात् कि .... आहाहा!

भाई वे लिखते हैं, नहीं? एक जगह नहीं? निहालभाई। गुब्बारा... गुब्बारा खुलाओ। यह नहीं क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : वीतरागी भगवान को चढ़ावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। परन्तु यहाँ गुब्बारा करते हैं न, नीचे चढ़ावे तब.... रखकर चढ़ावे और सब करे। यह आत्मा.... गुब्बारा शब्द तो आता है, नहीं? यह दिवाली के दिन वह नहीं चढ़ाते बड़ी? नीचे रखे वह.... सब नाम भूल गये, सब करते थे। ....और एक फिर ऊपर चढ़ावे। इसी प्रकार आत्मा पूरा शक्ति का भण्डार और गुब्बारा है। उसकी एकाग्रता से वह खुलता है उस पर्याय में। समझ में आया? आता है? सोगानी में आता है। याद नहीं होगा भीखाभाई को।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम ऊँचा। जाये ऊँचे फिर ऐसे .... वह फूटे नहीं पूरा। गुब्बारा शब्द है। ऐसे ज्ञायकभाव को देखा है न, जाना है न समकिती ने, इसलिए श्रावक उसमें एकाग्र होकर फुलावे, पर्याय में विकास करता है। आहाहा! चन्दुभाई! भारी सामायिक, भाई! ऐ सुजानमलजी! सादड़ी में है सामायिक ऐसी?

मुमुक्षु : सादड़ी में तो बहुत सामायिक होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत। आहाहा!

अरे, भाई! प्रभु को कहते हैं। समता का पिण्ड तो प्रभु है। ऐसा परमात्मा स्वयं, उसमें एकाग्र होकर उसे फुलाना। फुलाना अर्थात् पर्याय में विकास करना, ऐसा। फुलाना शब्द है, हों! यह बड़े ऐसे नहीं होते लड़के को?

मुमुक्षु : फुग्गा... फुग्गा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा करे फूलकर वह बड़ा दड़ा होता है। इतना छोटा हो और पोला। उसे फूँके। फुग्गा... फुग्गा। फुग्गा करते हो न कोई फुग्गा। इतना बड़ा फुग्गा। इसी प्रकार आत्मा अन्दर फुग्गा है। अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति का फुग्गा भरा है। बालचन्दभाई! यह तो यहाँ की बात है। वे लड़के खेल करते हैं। यह तो राम की क्रीड़ा। आहाहा! आत्मा के स्वभाव के साथ जिसने क्रीड़ा की है, यह सामायिक उसका नाम

है, बापू! समझ में आया? आहाहा! फुग्गा को फुलाते हैं। केवलज्ञानरूपी पूर्ण दशा हो गयी, पूर्ण फुग्गा फूल गया जाओ। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय फूली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण हो गयी। पर्याय ही फूलती है न। द्रव्य तो है, वह है। बात तो ऐसी है, भाई! ऐसा द्रव्य भी ऐसा, उसकी पर्याय भी अलौकिक। आहाहा! उसके कथन भी सब अलौकिक हैं, भाई! यह तो शान्ति के पंथ में जाना हो, उसकी बात है।

कहते हैं, **तजि ममता।** क्या हो परन्तु उपदेश की शैली क्या करे? देखो, यह ममता छोड़ता हूँ, ऐसा है? और समता ग्रहण करता हूँ, ऐसे दो विकल्प—भेद है। समझाना कैसे? परन्तु भगवान शान्तरस का कन्द प्रभु जहाँ नजर में श्रद्धा ने पूरे आत्मा को स्वीकार किया, वह उसमें एकाग्र होना, इसका नाम आंशिक एकाग्र हो, उसका नाम गृहस्थाश्रम की सामायिक प्रतिमा कही जाती है। यह उपदेश की बात तो क्या करे? आहाहा! समझ में आया? अरे, भगवान! तेरी महत्ता की तुझे सम्हाल करने की वाणी नहीं मिलती, तेरी महत्ता की सम्हाल करने की वाणी भी नहीं मिलती, वह किस प्रकार समझे? बाहर का बाहर भटकाभटक। बाहर में आत्मा नहीं और जहाँ आत्मा है, वहाँ बाह्यपना नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह अन्तर्मुहूर्त तक का प्रयोग इतना, ऐसा यहाँ कहते हैं। किसी को निर्विकल्पता भी हो जाये। समझ में आया? प्रवचनसार में आता है न, भाई! भावना। उसका अर्थ उल्टा करते हैं न। अरे, भगवान! क्या करता है भाई? ऐसा कि चिन्तवन करता है। सामायिक में चिन्तवन है कि शुद्ध उपयोग प्राप्त होओ। ऐसा नहीं भाई! जिसे आत्मदर्शन और आत्मज्ञान हुआ है, वह जो सामायिक में पड़ता है जब, तब उसे शुद्ध उपयोग हो जाता है। इसका नाम वहाँ प्रवचनसार की टीका में भावना कहा है। समझ में आया? .... परन्तु जीवपद ऐसा मेरा। सुलटा पड़े तो केवल (ज्ञान) ले और उल्टा पड़े तो निगोद ले। इसकी और इसकी क्रीड़ा में रमता है न। पर के साथ कुछ सम्बन्ध है? आहाहा!

कहते हैं, तजि.... अपने सामायिक में बहुत आ गया। समाधि, परम समाधि अधिकार। नियमसार बहुत आ गया। **तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।** आ गया

अपने। उसको सामायिक होती है, ऐसा केवली परमात्मा कहते हैं। आहाहा! अरे, उसकी विधि, उसकी पद्धति क्या है सामायिक की, इसकी खबर नहीं होती और सामायिक हो जाये। आहाहा! यहाँ तो आठ-आठ वर्ष की बालिकायें पंचरंगी और नवरंगी। सेठिया पैसे दो उसे, इसलिए उसे अनुमोदन मिले। स्वयं न करे तो वे बेचारे करें, उन्हें पैसे दो। धूल भी सामायिक नहीं, सुन न! शुभभाव का भी ठिकाना, जहाँ समकित सहित के (शुभभाव) हैं, ऐसे भी शुभभाव का ठिकाना नहीं। आहाहा! **हियै प्रतिग्या सहित।** ऐसा है न? यों ही सामायिक करते हैं परन्तु यह तो प्रतिज्ञा... है न प्रतिमा है न? इस स्थिति से प्रतिमा है और वहाँ व्रत.... यह वह बारह व्रत में यह सामायिक तो आ गयी थी, भाई! दूसरी प्रतिमा में सामायिक तो आ गयी है। परन्तु यहाँ निरतिचार बतलाना है। समझ में आया? क्या कहा यह? कि सामायिक तो बारह व्रत में आ गयी है। अरे, बारह व्रत क्या, पहले दर्शन प्रतिमा में बारह व्रत आ गये हैं। उसमें भी सामायिक तो आयी है। यहाँ तो अतिचार नहीं। निर्दोष स्वभाव। जहाँ विकल्प का भी अवकाश नहीं। ऐसे अंश से शान्ति की दशा प्रगट करना। जिसकी शान्ति के समक्ष स्वर्ग के सुख सड़े हुए तिनके, दुर्गन्धित बिल्ली मर जाये, ऐसा लगे। समझ में आया?

ऐसी अन्तरदशा को सामायिक कहा जाता है। ऐ मनसुख! पहले की सामायिक नहीं की होगी तुमने, पीछे से आये हो न इसलिए। आहाहा! वहाँ हम करते थे, हों! दुकान पर सामायिक (करते थे)। यह आठ दिन, हों, आगे-पीछे नहीं। आठ दिन आवे। शाम को प्रतिक्रमण करें। सामायिक करके प्रतिक्रमण करें। एक प्रतिक्रमण हुआ तो एक-दो गायन बोलें। हो गयी सामायिक और हो गया प्रतिक्रमण, लो। जय भगवान! ३६३ के दिन के पाप धुल गये। अब नये करो। जादवजीभाई! आहाहा! भाई! अरे, पाप तो किसे कहे, इसकी खबर नहीं। यहाँ तो मिथ्यात्व पाप और अव्रती की आसक्ति का पाप—इन दो का जिसमें त्याग है, उसे यहाँ सामायिक कहा जाता है। समझ में आया? एक अन्तर्मुहूर्त। साम्यभाव ग्रहण करना दो घड़ी। चौबीस मिनिट की एक घड़ी होती है। लो, लिखा है, हों! चौपाई है न!

जो अरि मित्र समान विचारै। आरत रौद्र कुध्यान निवारै। जो अरि-मित्र समान विचारे। आहाहा! जिसे बाँस से छेदनेवाला दिखाई दे या सज्जन उसे मक्खन चुपड़नेवाला

दिखाई दे, उन सबके प्रति जिसे समभाव है। सम्यग्दर्शन में ही, यह मेरा और तेरा— ऐसा कोई है नहीं। यहाँ तो आसक्ति के अभाव की बात की बात है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा का भान होते ही आत्मा अर्थात् ज्ञानानन्द के सहजानन्द की मूर्ति, ऐसा भान होने पर समकिती तो सब चीज़—एक राग से लेकर पुत्र और पत्नी, ये सब ही मेरे नहीं। मेरे नहीं, तथापि वहाँ इकट्ठा रहे। इकट्ठा नहीं रहता, तुझे खबर नहीं। जेठाभाई! भिन्न ही है। माना था, उस मान्यता को चीर डाला। अरे, मैं तो आत्मा। मुझे राग कैसा? स्त्री, पत्नी, पुत्र सब द्रव्य, वे तो परद्रव्य हैं। परद्रव्य मेरे और मैं उनका, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? यह तो जिसे मिथ्यात्वभाव तो टल गया है। तदुपरान्त **अरि मित्र समान विचारै।** आसक्ति की जहाँ न्यूनता हो गयी है। वीतरागता जहाँ बढ़ी है। सम्यग्दर्शन भी वीतरागी दृष्टि है। सराग समकित, वह समकित नहीं।

अरि मित्र समान विचारै। विचार ऐसा आवे कि विचार करना, वह भी बन्ध का कारण है। यह अपेक्षा आयी। विकल्प है न, उसे चिन्तवन करना। परन्तु ज्ञान में समानभाव रहे, वहाँ अरि और सज्जन दोनों ज्ञेयरूप से सहज ज्ञान में जाने। सहज जाने। उसे ऐसा जानने न जाये वहाँ कि यह है और यह है और यह है। ऐसी दशा में शान्ति के ठण्डक हो, उसे यहाँ सामायिक कहा जाता है। आहाहा! अरे, उसे उसकी शान्ति का मार्ग और शान्ति का जीव भगवान स्वयं, उसे उसकी खबर नहीं होती। बाहर से ढूँढ़ने जाये। यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा, यहाँ से। जिसमें नहीं, वहाँ से मिलेगा और जिसमें है, वहाँ से खोजता नहीं। आहाहा! **आरत रौद्र कुध्यान निवारै।** आर्त और रौद्रध्यान को छोड़े। **संयम सहित भावना भावै,...** लो, इन्द्रिय का संयम, मन का संयम, स्वभाव में एकाग्रता की स्थिरता, वह भावना। देखो, यहाँ भावना ली है। यह एकाग्रता है। **सो सामायिकवंत कहावै।** लो, उसे सामायिकवन्त कहा जाता है।

★ ★ ★

काव्य - ६३

चौथी प्रतिमा का स्वरूप (दोहा)

सामायिककीसी दसा, च्यारि पहरलौं होइ।
अथवा आठ पहर रहै, प्रोसह प्रतिमा सोइ।।६३।।

अर्थः–बारह घण्टे अथवा चौबीस घण्टे तक सामायिक जैसी स्थिति अर्थात् समताभाव रखने को प्रौषध प्रतिमा कहते हैं।।६३।।

काव्य-६३ पर प्रवचन

चौथी प्रतिमा—

सामायिककीसी दसा,.... प्रौषध प्रतिमा। परन्तु सामायिक दो घड़ी की हो, आनन्द के प्रयोग की। यह चौबीस घण्टे का हो, उसे प्रौषध कहते हैं। चौबीस घण्टे की सामायिक। **सामायिककीसी दसा,....** सामायिक जैसी दशा। चौथी प्रतिमा प्रौषध। ११वाँ व्रत कहते हैं न। प्रौषध करके बैठे, न खाये-पीये। हो गया प्रौषध? जैसे चना पानी में डूबे और मोटा हो, उसी प्रकार भगवान प्रौषध में शान्ति के पोषाण से पुष्ट हो, उसे प्रौषध कहते हैं। आहाहा! प्रत्येक की व्याख्या में अन्तर। समझ में आया? कर सके नहीं, वह अलग बात, परन्तु उसका स्वरूप क्या है, उसकी मान्यता की खबर नहीं होती। कहो, पण्डितजी! हो गयी सामायिक और ११ प्रतिमा हो गयी। ऐसा नहीं, भाई! रामजीभाई कहते हैं, भाई! ग्यारह क्या, पन्द्रह हो तो ले। वहाँ मुफ्त में है न। कोई पर्याय क्या है, उसकी तो कुछ खबर .... क्योंकि यह क्या है ग्यारह और बारह, उसकी तो कुछ खबर नहीं। और यह तो इक्कीस ले तो कौन इनकार करता है? आहाहा!

और वे भी भागे। गुणभद्र थे न, वे चले गये। गुणभद्र? .... उसे दिया कि यह सात प्रतिमा लो। मेरे पास तो कुछ आयी नहीं अन्दर। तुमने दी सही परनतु यहाँ आयी नहीं लगती। आहाहा! अरेरे! भाई! प्रतिमा किसे कहना? इस प्रतिज्ञा के आगे दशा बढ़ा हुआ समकिती, संयम के भाव में रमणता में आया हुआ उस प्रौषध काल में। आहाहा!

सामायिककीसी दसा। ऐसी दशा उसे यह फिर दो घड़ी हो, यह चौबीस घण्टे। आहाहा! प्रतिदिन दो-दो घड़ी सिद्ध समान का प्रयोग करना, उसका नाम सामायिक। पन्द्रह दिन में या आठ दिन में २४ घण्टे तक सिद्ध का प्रयोग करना, उसका नाम प्रौषध। ऐ भीखाभाई! गजब बातें, भाई! मैं सिद्धस्वरूपी हूँ, ऐसा जो भान था, सम्यग्दर्शन में ज्ञान था, उसे अब अन्दर प्रयोग करता है। सिद्ध समान मैं कितना रह सकता हूँ। चौबीस घण्टे में इस सिद्ध समान का पोषण हो, उसे प्रौषधव्रत कहा जाता है। समझ में आया?

च्यारि पहरलौं होइ, लो। चार पहर। बारह घण्टे। आहाहा! **अथवा आठ पहर रहै।** दोनों लिये। अथवा रात्रि और दिन। समझ में आया? **प्रोसह प्रतिमा सोइ।** आहाहा! उसका आनन्दभाव, वह प्रतीति में—अनुभव में आया था कि यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द ही मैं हूँ। उस अतीन्द्रिय की शक्ति को विशेष व्यक्त करने—प्रगट करने के लिये उसमें उग्ररूप से एकाग्र होना, उसका नाम यहाँ प्रौषध कहा जाता है। अरे, अरे, गजब व्याख्या!

मुमुक्षु : सुनने को नहीं मिलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह तेरे आँगन बहुत उज्ज्वल, भाई! तेरे घर तो उज्ज्वल परन्तु यह प्रौषध और सामायिक में आँगन उज्ज्वल होता है। आहाहा! समझ में आया? जिसे पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा दृष्टि का भाव तो प्रगट हुआ, पश्चात् अस्थिरता के भाव को छोड़ने के लिये स्वरूप सन्मुख के पोषण की उग्र परिणति, चौथे (गुणस्थान) की अपेक्षा विशेष होना। अरे, तीसरी व्रत में—तीसरी प्रतिमा की अपेक्षा.....

मुमुक्षु : उसकी अपेक्षा भी अधिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। धन्य रे घड़ी! जहाँ २४-२४ घण्टे, आठ पहर जिसने राम—आतमराम के साथ क्रीड़ा मांडी हो, उसे प्रौषध कहा जाता है। कहो, बालचन्दजी! ऐसा था वहाँ सम्प्रदाय में? तुम्हारे पिता ने तो बहुत की होगी सामायिक। पुराने लोग करे न पुराने लोग।

मुमुक्षु : जैसे चलता हो वैसे करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही हो न। क्या हो उसमें? अनादि के.... आहाहा!

अनेक जुग जीते, वह उसे पंथ में चलते, न आया न आया पंथडा का पार। आहाहा! लोकडीया की लाज रे हम महिलाओं ने निकाला घूँघट। पति का घूंघट निकालती है। माँ-बाप को देखे वहाँ पति की लाज (घूंघट) निकाले। क्यों? वरना दो व्यक्ति बातें करते हों और जहाँ माँ बाहर निकले तो लाज निकाले। किसकी लाज निकाले? वे माँ-बाप हैं न। यह एक सभ्यता की पद्धति है। माँ-बाप की लाज हो तो माँ-बाप अकेले हों, तब लाज निकालकर बैठना चाहिए। कितने ही ऐसे होते हैं मारवाड में। सास हो न तो भी लाज निकालकर बैठे। ऐसा मारवाड की ओर है। ऐसे के ऐसे सब। क्या बात है और क्या पद्धति है, उसकी खबर नहीं होती। कहते हैं, बारह घण्टे अथवा समझे न २४ घण्टे सामायिक जैसी स्थिति। आहाहा! **समताभाव रखने को प्रौषध प्रतिमा कहते हैं।** पहले वस्तु का स्वरूप क्या है, यह जाने तो सही कि यह वस्तु की स्थिति और मर्यादा है।

★ ★ ★

काव्य - ६४

पाँचवीं प्रतिमा का स्वरूप (दोहा)

जो सचित्त भोजन तजै, पीवै प्रासुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिग्यागीर।।६४।।

अर्थः-सचित्त भोजन का त्याग करना और प्रासुक[१] जल पान करना, उसे सचित्तविरति प्रतिमा कहते हैं।

विशेषः-यहाँ सचित्त वनस्पति को मुख से विदारण नहीं करते।।६४।।

---

१. गर्म किया हुआ वा लवंग इलायची राख आदि डालकर स्वाद बदल देने से प्रासुक पानी होता है।

काव्य-६४ पर प्रवचन

जो सचित्त भोजन तजै, पीवै प्रासुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिग्यागीर॥६४॥

सचित भोजन का त्याग करे। पाँचवीं प्रतिमा में सचित न खाये। सचित का अचित करने का उसे विकल्प होता है। समझ में आया? इतना-इतना अन्दर राग घटता है, उसकी मर्यादा की यह बातें हैं। आहाहा! आंशिक आंशिक समता, भले दो कषाय का अभाव हो गया है परन्तु तीसरी कषाय का रस मन्द करने की यह परिणति अन्दर है। समझ में आया? तीसरे का अत्यन्त अभाव करे, वह तो मुनिपना दशा हो जाती है उसकी। आहाहा! आनन्द की लहर उठती हो जहाँ। अतीन्द्रिय प्रचुर स्वसंवेदन, ऐसी दशा अतीन्द्रिय और आनन्द के स्वाद की, वह तो उसे मुनिदशा कहते हैं। यह मुनि होने से पहले यह दशा होती है प्रतिमाधारी को। सचित भोजन नहीं। यह पानी सचित न पीवे। ठण्डा न पीवे। कच्ची ककड़ी और .... यह प्रत्येक वनस्पति न खाये। अमरूद। सचित है न अमरूद, नहीं? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : जामफल।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दाना होता है न। खाये नहीं। पाँचवीं प्रतिमावाला नहीं खाता। अचेतन करके खाये। इतनी उसे वीतराग परिणति थोड़े अंश में बढ़ गयी है। समझ में आया?

सचित त्यागी, पंच प्रतिग्यागीर, लो। **गीर।** उसे गीर अर्थात् करना। उसे पाँचवीं प्रतिमा कहा जाता है। देखो! **यहाँ सचित्त वनस्पति को मुख से विदारण नहीं करते।** मुख से ऐसे विदारण नहीं करे। न करे। ऐसा का ऐसा खाते हैं न कितने ही। यह जिंडवा। जिंडवा समझते हैं? नहीं। यह कपास होती है न कपास। रुई, रुई होती है न जिसमें कपास।

मुमुक्षु : उसकी जोडी।

पूज्य गुरुदेवश्री : जोडी। बहुत कोमल पोची होती है। कितने ही खाते हैं... में खाते हैं। नहीं खाये। आहाहा! देखो तो सही वीतरागता के अंश बढ़े हों, वहाँ उसकी यह स्थिति होती नहीं। सात प्रतिमा कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९०, कार्तिक शुक्ल ६, सोमवार, दिनांक २५-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ६५ से ७२

यह समयसार नाटक। चौदह गुणस्थान का अधिकार। उसमें प्रतिमा का अधिकार है। सच्चे श्रावक होते हैं, उन्हें पंचम गुणस्थान होता है। इसलिए यहाँ उसकी प्रतिमा की बात है न अभी। उसे आत्मा अन्दर वस्तु है शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसका उसे पुण्य-पाप के भाव से रहित आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। तब तो उसे अभी समकिती जीव कहा जाता है, वहाँ तक श्रावक (नहीं)। समझ में आया? यह आत्मा भगवान तीर्थंकरदेव ने सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देखा और केवलज्ञान द्वारा जाना और वाणी द्वारा कहा, वह आत्मा जिसे धर्म करना है, ऐसा जो आत्मा, उसका उसे पहले ज्ञान होना चाहिए। समझ में आया?

उसे अन्तर में अन्तर्मुख होकर, पुण्य और पाप के राग के विकल्प से भी भिन्न पड़कर अन्तर के आत्मा के आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना और उसमें प्रतीति होना, उसे समकित कहते हैं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म व्याख्या है। शान्तिभाई! दुनिया तो बाहर का मांडकर बैठी है। जो बात मूल है, वह रह गयी है। ऐसे श्रावक को सम्यग्दर्शन उपरान्त, ऐसा सम्यग्दर्शन तो हो, पश्चात् अब उसे श्रावक हो, तब उसे आत्मा की शान्ति अन्तर में बढ़ जाती है। सर्वार्थसिद्धि के देव को जो शान्ति है, उसकी अपेक्षा जिसे सच्चा श्रावक कहते हैं, भगवान ने कहे ऐसे (श्रावक), उसे अन्तर में शान्ति! सर्वार्थसिद्धि के देव समकिती एकावतारी एक भव में मोक्ष जानेवाले, उनकी अपेक्षा इसे शान्ति अन्दर अधिक होती है। क्योंकि जिसे दूसरी कषाय (चौकड़ी) नाश हो गयी है। आहाहा!

अरे! मूल निज चीज़ की खबर बिना, वर बिना बारात जोड़ दी। आत्मा क्या चीज़ है, उसका भान होकर फिर प्रतिमा अर्थात् व्रत धारण करे, तब उसे अन्दर शान्ति बढ़ी हुई होती है। उसमें उसके बारह व्रत होते हैं, परन्तु निरतिचार नहीं होते। सम्यग्दर्शन निरतिचार अनुभव होता है, उसे पहली दर्शन प्रतिमा कहते हैं। पोपटभाई! यह सुना भी नहीं होगा।

मुमुक्षु : वढवाण में ऐसा सुना नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सुना था? प्रतिक्रमण तो बहुत करते थे शाम-सवेरे।

मुमुक्षु : हाँक रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँक रखे पहाड़े जगत के। आहाहा! उसे श्रावक प्रतिमाधारी पंचम गुणस्थानवाले को बारह व्रत होते हैं परन्तु निरतिचार नहीं होते। सम्यग्दर्शन... पूरे स्वर्ग के देव उछल जायें ऊँधे-उल्टे होकर, परन्तु उसकी अन्तर अनुभव की प्रतीति में अन्तर नहीं पड़ता। समझ में आया?

यह देव-गुरु-शास्त्र सच्चे हैं, वह कहीं समकित नहीं, वह तो राग है। परद्रव्य की श्रद्धा, वह तो राग है। अपना आत्मा जिसे सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव ने देखा, कहा, ऐसे आत्मा के अन्तर सन्मुख होकर प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली दशा प्रगट करे। कान्तिभाई! कान्तिभाई कहते, ऐसा तुम्हारा सुना नहीं। कहते हैं, नहीं न कहीं। सब वाडा की बातें। सब हैं सब, हमने देखा हे न पूरा हिन्दुस्तान। बेगार। धर्म क्या चीज़ है, वह पूरी (बात) पड़ी रही। ऊपर के व्रत पालो और पूजा करो और भक्ति करो और यात्रा करो और यह करो। वह तो सब राग और विकल्प की क्रिया है। वह कहीं धार्मिक क्रिया नहीं। हसमुखभाई!

धार्मिक क्रिया तो अन्तर आत्मा वस्तु स्वयं, उसका जो त्रिकाली धर्म अर्थात् स्वभाव, उसके स्वभाव को स्पर्श कर जो दशा प्रगट हो, उसे धर्म की दशा प्रथम शुरुआत की कहते हैं। कि जिसे जन्म-मरण का अन्त आया अब। समझ में आया? वह दर्शनप्रतिमा। दूसरी व्रतप्रतिमा। वह है तो पंचम गुणस्थान यह भी वह, परन्तु पंचम गुणस्थान में भी कुछ शान्ति के अंश की वृद्धि होती है और बारह व्रत निरतिचार पालन करे, उसे पंचम गुणस्थानवाला व्रतधारी प्रतिमा कहा जाता है। पाठ चल गया है अपने।

तीसरी सामायिक प्रतिमा। यह लोग कहते हैं, वह सामायिक यह बाहर की सामायिक, वह सामायिक है ही नहीं। वह तो एक शुभराग है। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... करके दो घड़ी बैठे। बापू! सामायिक तो उसे कहते हैं कि जिसमें अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द की वीतरागता बढ़ गयी हो। सम् अर्थात् समता

का, आय अर्थात् लाभ। जिसे दूसरी प्रतिमा की अपेक्षा भी तीसरी में शान्ति का अंश अधिक और मोह तीसरी चौकड़ी के रस का थोड़ा मन्दपना, उसे निरतिचार सामायिक होती है। सामायिक तो प्रतिमाधारी में भी होती है पहले। पहली में भी होती है, दूसरी में भी होती है। क्योंकि पहली प्रतिमा (में) भी बारह व्रत तो होते हैं। उसमें सामायिक तो होती है। दूसरी प्रतिमा में बारह व्रत चुस्त होते हैं, वहाँ सामायिक आती है। तो यह सामायिक अन्तर का ध्यान करके अतीन्द्रिय आनन्द को शोधकर—खोलकर और अन्तर में रमता है। उसे तीसरी सामायिक प्रतिमा कहा जाता है। पण्डितजी! कहो, पोपटभाई!

चौथी प्रौषध प्रतिमा। पन्द्रह दिन या आठ दिन में चौबीस घण्टे (प्रौषध की स्थिति होती है)। सामायिक में दो घड़ी आत्मा के अन्तर आनन्द को शोधकर अन्तर में दो घड़ी रमे, उसका नाम सामायिक। चौथी प्रतिमा। ६३वाँ है न बोल। प्रौषध प्रतिमा। २४ घण्टे आत्मा के आनन्द का प्रयोग करे। आहाहा! अब आत्मा क्या है, उसका तो भान नहीं होता। ६३वाँ बोल है। प्रौषध प्रतिमा। **आठ पहर रहै प्रोसह प्रतिमा।** आठ पहर या चार पहर। आत्मा का सत् शुद्ध पवित्र स्वभाव, उसे अन्तर में अजमाइश करे कि मैं सिद्ध समान हूँ तो यहाँ ऐसे प्रौषध (स्थिति में) २४ घण्टे में कितना रह सकता हूँ। २४ घण्टे के आनन्द का प्रयोग, उसे प्रौषध कहते हैं। दो घड़ी के आनन्द का प्रयोग, उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! गजब व्याख्या, भाई! यह तो सब दुनिया से अलग।

पाँचवीं प्रतिमा। ६४ बोल है ६४। यह आ गया है यहाँ तक। हसमुखभाई! यह तो सब देखा न हो। यह रुपये ... बाहर ऐसे लगे मीठे। धूल जैसी चीज़ मिट्टी।

मुमुक्षु : मीठे लगे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम कहते थे एक बार उस किसी को। .... कौन था?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... लो। रुपये बहुत मीठे लगे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि मदिरा न ले यह। मदिरा में बादशाही विचार आवे। मूर्खाई के आवे। आहाहा!

पाँचवीं प्रतिमा। ६४ वाँ बोल लो फिर से।

जो सचित्त भोजन तजै, पीवै प्रासुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिग्यागीर॥६४॥

प्रौषध उपरान्त सचित का त्याग करे। सचित स्वयं मुख से सचित न खाये। ठण्डा पानी या हरितकाय मुख से विदारण करे, यह न करे। इतना तो अन्दर राग सहज मन्द पड़ गया होता है। यह हठ की बात नहीं। आत्मा के अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में ऐसी मिठास बढ़ गयी है कि जिसे अकेला राग या सचित का सीधा खाना, ऐसा राग उसे घट गया है। मात्र सचित नहीं खाता, उसकी यहाँ बात नहीं, परन्तु सचेत आत्मा के भानवाला ऐसा सचित नहीं खाता, ऐसा राग घट गया होता है, उसे सचित (त्याग) प्रतिमा कहा जाता है। अरे, अरे! कहो, भीखाभाई! आहाहा! ऐसी गजब बातें, भाई! अरे, अनन्त काल भटका चौरासी के अवतार में, परन्तु इसे सच्ची चीज़—वस्तु क्या, वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव किसे समकित कहते हैं, किसे धर्म कहते हैं, यह बात इसे बेचारे को सुनने को मिलती नहीं। बाहर के ढोंग। आहाहा! ऐसे तो ढोंग अनन्त बार किये। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु यह आत्मा का आनन्दस्वभाव, उस पाताल कुएँ में यह नहीं पहुँचा। समझ में आया?

सचित के भोजन का त्यागी। **पीवै प्रासुक नीर।** पानी अचित पीवे। ऐसा उसे सहज राग मन्द पड़ गया है। ऐसे भानसहितवाले की बात है। आहाहा! **सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिग्यागीर।** लो। यहाँ तक आ गया था अपने। अब यह छठवीं प्रतिमा है। ६५।

★ ★ ★

काव्य - ६५

छट्ठी प्रतिमा का स्वरूप (चौपाई)

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालै।
तिथि आये निसि दिवस संभालै।।
गहि नौ वाड़ि करै व्रत रख्या।
सो षट् प्रतिमा श्रावक अख्या।।६५।।

अर्थः–नव वाड़ सहित दिन में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना और पर्व–तिथियों में दिन–रात ब्रह्मचर्य सम्हालना दिवामैथुनव्रत प्रतिमा है।।६५।।

काव्य-६५ पर प्रवचन

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालै।
तिथि आये निसि दिवस संभालै॥
गहि नौ वाड़ि करै व्रत रख्या।
सो षट् प्रतिमा श्रावक अख्या॥६५॥

जितनी प्रतिमा पहले की, उस सहित वृद्धि में जाये, उसे प्रतिमा कहते हैं। पहली छोड़ दे और दूसरी का आदर करे, ऐसा नहीं। **जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालै।** आत्मा के ब्रह्मानन्दस्वरूप के आनन्द की जिसे वृद्धि हुई है, वह दिन में ब्रह्मचर्य पालन करे। रात्रि का त्याग न हो, इस छठी प्रतिमा में। **तिथि आये।** चौदस, अष्टमी तिथि आवे, रात्रि और दिन ब्रह्मचर्य पालन करे। ब्रह्म अर्थात् आत्मा, आनन्द भगवान प्रभु आत्मा में चरना, रमना। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में रहना, उसे यहाँ ब्रह्मचर्य प्रतिमा कहते हैं। आहाहा! अकेले शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे, वह तो कहीं मूल ब्रह्मचर्य नहीं है। वह तो अभव्य भी अनन्त बार पालन करता है। समझ में आया? वह तो एक पुण्यभाव— शुभराग है। यहाँ तो भगवान आत्मा जैसे सिद्ध भगवान हुए, वह अन्तर का स्वभाव था, उसमें से हुए। कहीं बाहर से हुए नहीं। ऐसा जिसे अन्तर में ब्रह्म अर्थात् आनन्द है,

उसका चरना, उसमें रमना विशेष बढ़ गया है। इसलिए छठी प्रतिमा में दिन में ब्रह्मचर्य पाले, तिथि आवे तो रात्रि और दिन सम्हाले।

नव वाड से ब्रह्मचर्य पाले। आहाहा! देखो, नव वाड तो यहाँ आयी। यह छठवीं प्रतिमा में। नौ के नाम देंगे नीचे। आत्मा के भान सम्यग्दर्शनसहित और पाँच प्रतिमा जो है, उस भावसहित छठवीं प्रतिमा में राग का अंश घट जाता है। इतना आत्मा के आश्रय से आत्मा का दृढ़ आश्रय ध्रुव का लिया है। उसे यह छठवीं प्रतिमा होती है। अटपटा जैसा लगता है इसमें। ऐई, हसमुखभाई! जवान व्यक्ति यह कमाने में खड़े हुए। पैसे इकट्ठे हुए, वहीं के वहीं फिर फँस जाये, मानों कि अपने ऐसा... आहाहा! उसमें फिर ४०-५०-६० लाख रुपये हों और जवानी हो। बस, अब यह हुआ। करना सही, भाई! अपने पिता करते हैं, थोड़ा अपने करो, थोड़ा करो। आहाहा!

भाई! धर्म का मुख बड़ा है। अपूर्व जो अनन्त काल में एक सेकेण्ड मात्र भी किया नहीं। वैसे तो अनन्त बार जैन का साधु हुआ। पंच महाव्रत पालन किये। वह सब राग की क्रिया थी। अन्तर भगवान आत्मा की स्वाभाविक धार्मिक क्रिया का उसे विरह था। उस विरह का जिसने समीपपना किया। आहाहा! जिसे अन्दर ब्रह्मचर्य का रस लगा है, आत्मा के ब्रह्म का, हों! काया द्वारा, मन-वचन से ब्रह्मचर्य पालन करे, वह कुछ वस्तु नहीं। वह तो एक पुण्य का भाव है। इससे यह स्वर्ग आदि या यह धूल पैसा आदि धूल मिले। यहाँ तो धूल है यहाँ। पोपटभाई!

मुमुक्षु : धूल का बँगला हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : बँगला तो अपने आप होता है। किसने किया था? यह धूल से पैसा दिखता है? आहाहा!

तेरा नाथ अन्दर चैतन्य है। जागती ज्योति अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उछलता है अन्दर। लहरें मारता है आत्मा आनन्द से, कहते हैं। आहाहा! भाई! तूने उसे कभी देखा नहीं। उसे तूने कभी खोजा नहीं, शोधा नहीं और शोधकर उसका अनुभव किया नहीं। और उसे शोधकर अनुभव किये बिना जितने क्रियाकाण्ड सब किये जायें, वे सब रण में शोर मचाने जैसे हैं। चार गति में भटकने का है, उसमें भवबन्धन का नाश नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **गहि नौ वाड़ि करै व्रत रख्या।** कहो, छठवीं प्रतिमावाला नौ वाड़ से ब्रह्मचर्य पाले। ऐसा उसे राग घट ही गया होता है सहज। अरेरे! हमारे यह पालना पड़ता है, हों, ऐसा नहीं। वह तो गुलाममार्गी है, राजमार्गी नहीं।

मुमुक्षु : यह कहाँ से निकाला आपने?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे यह वाडीलाल मोतीलाल थे। स्थानकवासी में वाडीलाल मोतीलाल थे। वे पहले यह कहते। गुलाममार्गी और राजमार्गी का एक बड़ा लेख लिखा था। परन्तु वह तो बहुत वर्ष की बात, हों! ६४-६५-६६। संवत् १९६४-६५-६६। गुलाममार्गी और राजमार्गी। साधु! तेरे पास कमण्डल में पानी हो। मुनि तो जंगल में रहते हैं न, और नग्न ही मुनि होते हैं। कमण्डल में पानी और कोई आवे प्यासा और तुझे पानी देने का मन हो, सुख से देना। तू राजमार्गी नहीं। अरे! भगवान की आज्ञा नहीं, हों! कैसे दिया जाए?

उसमें कुछ पाठ है। लेख लिखा था। जैन समाचार। वहाँ दुकान पर मैं तो मँगाता था न वहाँ जैन समाचार और पत्र। अरे, भगवान की आज्ञा नहीं, हों! बेचारा पानी के लिये तरसता है। मेरे पास पानी है। भगवान की आज्ञा... अरे गुलाममार्गी, भगवान को गाली न दे। भगवान ने इनकार किया, ऐसा नहीं। भगवान ने तो बतलाया है कि तेरी दशा में ऐसा हो इतना। ऐसी विकल्प की दशा तुझे उत्पन्न होती ही नहीं। उसे कहा है राजमार्गी को कहा है। आहाहा! गुलाममार्गी के भाँति भगवान की आज्ञा नहीं, वरना मैं उसे देता। चल... तू मार्ग में नहीं अब। वाडीलाल मोतीलाल अहमदाबाद। आहाहा! सातवीं प्रतिमा का स्वरूप।

★ ★ ★

काव्य - ६६

सातवीं प्रतिमा का स्वरूप (चौपाई)

जो नौ वाड़ि सहित विधि साधै।
निसि दिन ब्रह्मचर्य आराधै।।
सो सप्तम प्रतिमा धर ग्याता।
सील-सिरोमनि जग विख्याता।।६६।।

अर्थः-जो नव वाड़ सहित सदाकाल ब्रह्मचर्य व्रत पालन करता है, वह ब्रह्मचर्य नामक सातवीं प्रतिमा का धारी ज्ञानी जगत् विख्यात शील-शिरोमणि है।।६।।

काव्य-६६ पर प्रवचन

जो नौ वाड़ि सहित विधि साधै।
निसि दिन ब्रह्मचर्य आराधै॥

उसमें अकेला दिन का था। यह रात्रि और दिन दोनों पालन करे। **सो सप्तम प्रतिमा धर ग्याता।** जो यहाँ आया **ग्याता**—जाननेवाला हो वह। ज्ञाता दृष्टा हो। उसे दूसरा होता नहीं। आहाहा! **सो सप्तम प्रतिमा धर ग्याता, सील-सिरोमनि जग विख्याता।** ब्रह्मचर्य में शील शिरोमणी है वह। आहाहा! यह सातवीं प्रतिमा। अभी तो सातवीं प्रतिमा तो बहुतों को है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहुत। मध्यम में गिना जाये न मध्यम में। छठवें तक जघन्य। मध्यम में आओ तो सात लेनी पड़े यहाँ। आहाहा! मार्ग को पराधीन बना दिया। मार्ग में हैं, ऐसा खतौनी करना है। आहाहा! यहाँ तो सातवीं प्रतिमाधारी ज्ञानी जगत विख्याता, शील शिरोमणी, आहाहा! जिसे स्वस्त्री का भी त्याग है, ऐसा उसे राग घट गया है। अरे! मुझे त्याग करना पड़ता है। मुझे हठ से सहन करना पड़ता है, ऐसा नहीं। सहजदशा की यह क्रीड़ा है। आहाहा! उसकी स्वरूप की क्या स्थिति है, उसकी जिसे

खबर नहीं, उसे कहाँ यह (प्रतिमा) ?

अब नौ वाड के नाम। देखो, नौ वाड दोनों में से आयी है। छठवीं और सातवीं दोनों में। यह साधु का ठिकाना नहीं होता। महिलाओं के झुण्ड में बैठे और बातें और हँसी और जाति परिचय करे न। आहाहा! यह तो छठवीं-सातवीं प्रतिमावाला नौ वाड से ब्रह्मचर्य पालन करे। पण्डितजी! गृहस्थाश्रमवाला। उन नौ वाड के नाम।

★ ★ ★

काव्य - ६७

नव वाड़ के नाम (कवित्त)

तियथल वास प्रेम रुचि निरखन,
जे परीछ भाखै मधु वैन।
पूरव भोग केलि रस चिंतन,
गुरु आहार लेत चित चैन।
करि सुचि तन सिंगार बनावत,
तिय परजंक मध्य सुख सैन।
मनमथ-कथा उदर भरि भोजन,
ये नौवाड़ि [१]कहै जिन बैन।।६७।।

शब्दार्थ:-तियथल वास=स्त्रियों के समुदाय में रहना। निरखन=देखना। परीछ (परोक्ष)=अप्रत्यक्ष। गुरु आहार=गरिष्ट भोजन। सुचि=पवित्र। परजंक=पलंग। मनमथ=काम। उदर=पेट।

अर्थ:-स्त्रियों के समागम में रहना, स्त्रियों की रागभरी दृष्टि से देखना, स्त्रियों से परोक्ष[२] में सराग सम्भाषण करना, पूर्वकाल में भोगे हुए भोग-विलासों का स्मरण करना, आनन्ददायक गरिष्ट भोजन करना, स्नान मंजन आदि के द्वारा शरीर को

१. 'कहै मत जैन' ऐसा भी पाठ है।

२. दृष्टि-दोष बचाने के लिये पर्दा आदि की ओट में संभाषण करना, अथवा पत्रव्यवहार करना।

आवश्यकता से अधिक सजाना, स्त्रियों के पलंग आसन आदि पर सोना बैठना, कामकथा या कामोत्पादक कथा गीतों का सुनना, भूख से अधिक अथवा खूब पेट भरकर भोजन करना। इनके त्याग को जैनमत में ब्रह्मचर्य की नव वाड़ कहा है।।६७।।

काव्य-६७ पर प्रवचन

तियथल वास प्रेम रुचि निरखन,
जो परीछ भाखै मधु वैन।
पूरव भोग केलि रस चिंतन,
गुरु आहार लेत चित चैन॥
करि सुचि तन सिंगार बनावत,
तिय परजंक मध्य सुख सैन।
मनमथ-कथा उदर भरि भोजन,
ये नौवाड़ि कहै जिन बैन॥६७॥

वीतराग की वाणी में नौ वाड वर्णन की है। पहले समझण तो करे (कि) क्या चीज़ है। आहाहा! कहते हैं कि छठी प्रतिमा से उसे इतना राग घट जाता है कि उसे स्त्री के परिचय का भाव होता नहीं। भाव होता नहीं, उसका नाम नौ वाड से, हों! अरे! मुझे पालना पड़ता है, ऐसा नहीं। हठ नहीं। क्या करें? भगवान ने तो इनकार किया है। अधिक स्त्रियों में बैठना नहीं, इसलिए हमारे क्या हो? मूर्ख, तुझे कहाँ कहा है यह? वह तो जिसकी दशा में यह राग घट गया है, उसकी बात वर्णन की है यह तो। समझ में आया? कठिन मार्ग भाई यह! दुनिया से तो उल्टा मार्ग है।

स्त्रियों के समागम में रहना। पहला है न। **तियथल वास**—स्त्रियों के स्थल में स्थान के बीच रहना, उसे छोड़ दे। उसे होता नहीं। **प्रेम रुचि निरखन। स्त्रियों को रागभरी दृष्टि से देखना।** देखने का तो सहज स्वभाव है उसका, परन्तु प्रेमभरी दृष्टि से देखना, यह भाव उसे होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! आगे जाकर उसे मुनि होना है। आहाहा! और मुनि होकर भगवान होना है वापस। आहाहा! और एक इसके

अतिरिक्त उसे कहीं सुख की प्राप्ति नहीं है। कहते हैं, स्त्री के प्रति प्रेम से देखना उसे नहीं होता।

परीछ भाखै मधु वैन। स्त्रियों से परोक्ष में सराग सम्भाषण करना,.... लो! पर्दा आड़े रखे परन्तु भाषा एक-दूसरे करे मिठास से—राग से, हों! उसकी यह बात है। स्त्रियों से परोक्ष में... नीचे लिखा है थोड़ा। **दृष्टि दोष बचाने के लिये परदा आदि की ओट में संभाषण करना अथवा पत्रव्यवहार करना।** यह प्रेम से की बात है, हों! समझ में आया? उसे छोड़ दे। आहाहा! मुनि को तो कुछ पैर का संचार हो, वहाँ रहना सुहावे नहीं। जंगल में बसते हैं। आहाहा! पैर का आना-जाना न हो, ऐसे ध्यान में (होते हैं) तो उनका तो यह उपासक है अब। आगे जाने का अभिलाषी है। आत्मा के आनन्द के आगे पहली बात तो यह है कि धर्मी की पहली दृष्टि में आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त कहीं उसे पैसे में, स्त्री में, परिवार में, कीर्ति में, शरीर में सुख भासित नहीं होता। पाप के भाव में, पुण्य के भाव में सुख भासित नहीं होता। आत्मा में आनन्द भासित हो, तब तो उसे सम्यक् दृष्टि होती है। अब कितने ही ऐसा कहते हैं कि शास्त्र में उत्कृष्ट बात आती है परन्तु ऐसा नहीं पलता, परन्तु इससे कहीं वस्तु ऐसी .....

मुमुक्षु : न पले तो प्रतिमाधारी न कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

पूर्वकाल में भोगे हुए भोग,.... लो, है न? **पूरव भोग केलि रस चिंतन।** ओहो! पूर्व में ऐसी स्त्री थी और वह ऐसे बनाती थी। फलाना हलुवा बनाकर देती और फलाना करती और यह.... अरे रे, प्रभु! परन्तु क्या याद करता है। जहर को याद करता है, जहर पीया था उसे (याद करता है)। आहाहा! समझ में आया? हमारे नारायणभाई की माँ थी। मस्तिष्क घूमा तब ऐसा बोलने लगी थी। अरे, घर की महिलायें ऐसी कढ़ी और ऐसा हलुवा बनाती कि वह क्या करता है परन्तु तू यह? घूमा था।

मुमुक्षु : साधु होने के बाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। हमारे नारायणभाई थे न वे। फिर से यह सब। स्त्रियाँ बहुत अच्छा करे। हलुवा ऐसा कर देती कि .... क्या है परन्तु यह? यहाँ कहते हैं कि

पूर्व के भोग का स्मरण जहर का स्मरण है। वह यह वाड़वाले को होता नहीं। आहाहा! यह तो सात प्रतिमा की बात है, हों यह। छह और सात प्रतिमावाले को नहीं होता, ऐसा कहते हैं। मुनि को और आगे तो भविष्य में ऐसा राग सहज ही घट गया होता है। सहज ज्ञाता-दृष्टा में वृद्धि होकर अरागी परिणाम की दशा सहज ऐसी वर्तती होती है, उसे प्रतिमा कहा जाता है। आहाहा! **पूरव भोग केलि रस चिंतन। विलासों का स्मरण करना।** ठीक।

गुरु आहार। भारी आहार। गरिष्ट भोजन। मैसूर, सालमपाक और मूसलीपाक और ऐसा था, आहाहा! ऐसा भारी आहार, उसका राग मुनि को नहीं होता। प्रतिमाधारी को नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह कहीं दिखाव करना है? आहाहा! भाव में इस जाति की दशा होती है। दिखाव करना नहीं यह दुनिया को कि यह देखो, भाई! आहाहा! गरिष्ट भोजन नहीं होता। **लेत चित चैन,** लो। स्नान.... स्नान। **करि सुचि।** यह स्नान नहीं होता। **स्नान, मंजन आदि के द्वारा शरीर को आवश्यकता से अधिक सजाना।** अधिक शृंगार टीपटॉप करे, ऐसा श्रावक को छठवीं-सातवीं प्रतिमा में नहीं होता। कहो, समझ में आया? यह तो राग घटाने के मार्ग की बात है। आहाहा! यह किसी को कुछ दिखलाने कि कोई पसन्द करे कि आहा! भारी तुम्हारी बात, हों! इससे कहीं सत्य हो जाये। उसमें सत् में भारी हो तो सत्य हो। आहाहा!

करि सुचि तन सिंगार बनावत, तिय परजंक... स्त्रियों के पलंग आसन आदि पर सोना बैठना। सोने बैठने से याद आ जाये। यहाँ स्त्री सोती थी और ऐसा था और वैसा था। आहाहा! **मध्य सुख सैन**—सुख से बैठना। कामकथा—काम। **मनमथ कथा**—जिसके मन में मंथन हो जाये राग के कारण, ऐसी स्त्री की कथा आदि करे नहीं। समझ में आया? **मनमथ-कथा उदर भरि भोजन,** पेट को दबा-दबाकर आहार करे। समझ में आया? **भूख से अधिक अथवा खूब पेट भरकर भोजन करना।** एक बार खाना है, फिर २४ घण्टे में मिलेगा। इसलिए अभी पेट भरो। आहाहा! यह मार्ग ऐसा है, बापू! वीतरागमार्ग उसके अन्दर है। श्रावक की दशा में छठवीं-सातवीं प्रतिमावाले को ऐसा होता नहीं। आहाहा! जिसका फल मुक्ति है, वह मार्ग कोई अलग प्रकार का होता है न! जगत के साथ मिलान नहीं खाये, ऐसा मार्ग है। आहाहा!

ये नौवाड़ि कहै जिन बैन। लो। यह उसका त्याग करना। ऐसे जैनमत में ब्रह्मचर्य की नौ वाड कही है। आहाहा! यह सात प्रतिमा हुई। श्वेताम्बर में तो यह प्रतिमा की बातें ही नहीं। एकदम साधु हो जये।

मुमुक्षु : एक प्रतिमा एक महीने के लिये, दो प्रतिमा दो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ दो आते हैं न। आते हैं। ग्यारह (प्रतिमा) ग्यारह महीने के लिये।

मुमुक्षु : साधु होना सरल पड़ता है, इसलिए साधु पहले हो जाये। प्रतिमा पहले हो बहुत कठोर।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर। कहो, यह कठोर और साधु होना सरल। वहाँ सब रास्ता उल्टा है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले प्रतिमा धारण करना बहुत कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए मुनिपना ले लेना। नेमिदासभाई आये थे न दीक्षा लेने के लिये वहाँ। यह नेमीदास दिल्लीवाले। (संवत्) ९० में दीक्षा लेने आये थे। हम किसी को दीक्षा नहीं देते। नेमीदासभाई। तब पाँच-पच्चीस हजार होंगे। बहुत पैसा नहीं था तब। ४८ वर्ष की उम्र। मैंने कहा, ब्रह्मचर्य लो पहले। कहे, नहीं ब्रह्मचर्य नहीं पलता। इसलिए ऐसा कि मैं यहाँ आ जाऊँ, तब तो सब पालना पड़े। अकेला मुझे... फिर यह विवाह किया। कंचन से विवाह किया और कंचन पैसे हुए। आठ-दस लाख। आहाहा! आनेवाले हैं तुम्हारे यह। महासुखभाई आये थे न आज.....

जिन वैन। आहाहा! वीतरागी वाणी में जिसने आत्मा को सही राह पर चढ़ाया है। भेदज्ञान की राह पर चढ़ाया है नाथ। उसकी दशा शुद्धता की वृद्धि होती है। उसमें यह सहज उसका त्याग होता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा मार्ग वीतराग का—श्रावक के लिये भी ऐसा कहा। मुनि की तो बात ही क्या करना! आठवीं प्रतिमा।

★ ★ ★

काव्य - ६८

आठवीं प्रतिमा का स्वरूप (दोहा)

जो विवेक विधि आदरै करै न पापारंभ।
सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजै रनथंभ।।६८।।

अर्थः–जो विवेकपूर्वक धर्म में सावधान रहता है और सेवा कृषि वाणिज्य आदि का पापारम्भ नहीं करता, वह कुगति के रणथंभ को जीतनेवाली आठवीं प्रतिमा का स्वामी है।।६८।।

काव्य-६८ पर प्रवचन

आठवीं प्रतिमा—

जो विवेक विधि आदरै करै न पापारंभ।
सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजै रनथंभ॥६८॥

जो विवेक विधि आदरै,.... जो विवेकपूर्वक धर्म में सावधान रहता है। करै न पापारंभ—सेवा, कृषि, खेती ऐसे वाणिज्य आदि का व्यापार न करे। आठवीं प्रतिमावाला यह न करे। **वह कुगति के रणथंभ को जीतनेवाली आठवीं प्रतिमा का स्वामी है।** रणथंभ रोपा। अब हम मुक्ति के मार्ग में जाते हैं। हमारे कुगति होती नहीं, ऐसा। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ६९

नववीं प्रतिमा का स्वरूप (चौपाई)

जो दसधा परिग्रहकौ त्यागी।
सुख संतोष सहित वैरागी।।
समरस संचित किंचित ग्राही।
सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही।।६९।।

अर्थः–जो वैराग्य और सन्तोष का आनन्द प्राप्त करता है तथा दस प्रकार के परिग्रहों में से थोड़े से वस्त्र व पात्र मात्र रखता है, वह साम्यभाव का धारक नववीं प्रतिमा का स्वामी है।।६९।।

काव्य-६९ पर प्रवचन

नौवीं प्रतिमा—

जो दसधा परिग्रहकौ त्यागी।
सुख संतोष सहित वैरागी॥
समरस संचित किंचित ग्राही।
सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही॥६९॥

जो दसधा परिग्रह—धन, धान्य, सोना, चाँदी इन सबका उनका उसे त्याग होता है। यहाँ परिग्रह का त्याग होता है। पैसा-बैसा नहीं रखे नौवीं प्रतिमावाला, ऐसा कहते हैं। टिकिट के पैसे या यह रेल में बैठने के या.....

मुमुक्षु : यह न हो तो रेलवाला बैठने किसमें दे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जाये किसलिए वहाँ? बैठने का काम क्या है उसे? वास्तव में तो दूसरी प्रतिमा में समयसर सामायिक उसे ऐसी चाहिए ध्यान में। वह चलती रेल में सामायिक कहाँ से होगी? यह सब गड़बड़ हो गयी, सब गड़बड़। बेचारा एक व्यक्ति तो कहता था। बात सच्ची, दूसरी प्रतिमा हो परन्तु कहीं रेल में नहीं पलती

रेल में जानेवाले को। क्योंकि शान्त वातावरण में एकान्त में रहकर बादशाह भगवान आत्मा की जहाँ भेंट करनी है, उसे ऐसी अशान्ति में कैसे हो वह?

दस प्रकार परिग्रह कहा, देखा? दस प्रकार परिग्रह आता है न! धन, धान्य, सोना, चौदी आदि सबका उसे त्याग होता है। नौवीं प्रतिमावाला पैसा दे, दे और ले, यह पुस्तक के लिये पैसा माँगे न! समझ में आया? ऐसा नहीं होता। यह पुस्तक बेचना है। इसका ऐसा करो, वैसा करो। यहाँ पैसे रखो। ले जायेगा अभी दूसरा आयेगा वह। यह सब मायापिण्ड ठगने के रास्ते हैं। आहाहा! नौवीं प्रतिमावाला परिग्रह का त्यागी होता है। जेठाभाई! अब साधु को २-२ लाख, ५-५ लाख रुपये अलग।

मुमुक्षु : श्रावक के पास नहीं होते।

पूज्य गुरुदेवश्री : पास में वह जेब में कहाँ उसे रखता था? आहाहा! .... थे न यह दरबार। जेसंग दरबार। .... एक आये संघ के साधु उपदेश देने। कि ऐसा राजा है। मूल तो रबारी थे। परन्तु यह तो फिर दत्तक लिये हुए। उपदेश देने लगे, तब उसे कहे, महाराज! पैसा-बैसा रखते हो? नहीं। तब तुमको चरण में रखे उसे क्या करे? वह कहो। कहे, मेरे साथ वह व्यक्ति ले लेता है। फिर चाहिए हो तो क्या करो? कहे, यह टिकिट-बिकिट लेकर दे। ..... कामदार था कौन भाई, नहीं?

मुमुक्षु : भगवानजी।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवानजी! लो यह। भगवानजी! लो यह। कामदार। तब ३० रुपये वेतन महीने का। तब अधिक नहीं मिलते। ..... नहीं पैसा, यह सब गुप्तरूप से करते थे।

भगवानजी! यह महाराज को मेरे जितना त्याग है, हों! कारण कि मैं भी पैसा नहीं रखता। जेब में कौन रखे यहाँ मुफ्त में। भगवानजी को कहा, ले ले। चाहिए हो तो उसे कहूँ। यह ऐसा त्याग है इन्हें। ऐ प्रेमचन्दभाई! यह प्रेमचन्दभाई को खबर है।

मुमुक्षु : दरबार....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, थे न यह। दरबार के साथ उसे अधिक सम्बन्ध, लो। यह

पूछा फिर ऐसा। परिग्रह ऐसा हो तो ऐसा हो तो कैसे? तब कहीं तुम्हारे चरण करावे और पैसा रखे, वह क्या करते हो? साथ का व्यक्ति हो वह ले लेता है। टिकिट चाहिए हो तो? वह दे। भगवानजी! यह राज का पैसा तू रखता है, हों! मैं रखता हूँ जेब में? और मुझे चाहिए हो तो मैं तुझे कहता हूँ। तू रखता है। उनको तो .... मेरे जितना त्याग लगता है उन्हें। आहाहा!

दसधा परिग्रह का त्यागी नौ वाडवाला। आहाहा! गजब बात है न! वह श्रावक है। यह तो साधु नाम से पैसा गिने। पैसे की थप्पियाँ करे। आगे एक बार वहाँ गये थे। तब पैसे गिनते थे साधु स्थानकवासी, हों! पचास रखे पाँच सौ हजार रुपये में। अरे भगवान! बापू! यह मार्ग कहीं बाहर में कुछ दिखाव का करना है? भाई! यह नहीं पलता हो, न पल सकता हो तो मैं नहीं श्रावक। आहाहा! जघन्य श्रेणी का रखना। कहते हैं, दस प्रकार के परिग्रह का त्यागी। **सुख संतोष सहित वैरागी।** आहाहा! सुख और सन्तोषसहित **जो वैराग्य और सन्तोष का आनन्द प्राप्त करता है।** देखो! सन्तोष अर्थात् आनन्द। सुख और आनन्द की प्राप्तिसहित वैरागी है। सन्तोष का आनन्द प्राप्त करता है। वैरागी होता है।

समरस संचित किंचित ग्राही। साम्यभाव का धारक होता है। वीतरागता जिसे बढ़ गयी है। श्रावक के योग्य जो कुछ भाव है, उसमें शुद्धि बढ़ गयी है। **संचित किंचित ग्राही।** यह चाहिए थोड़ा वस्त्र आदि हो, पात्र आदि इतना रखे। वस्त्र, पात्र। वह साम्यभाव का धारक नौवीं प्रतिमावाला कहलाता है, लो। यह स्वरूप पहले जानना तो (पड़ेगा) इसे, जानकर निर्णय तो करना पड़ेगा न! समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ७०

दसवीं प्रतिमा का स्वरूप (दोहा)

परकौं पापारंभकौ, जो न देइ उपदेस।
सो दसमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेस।।७०।।

अर्थः–जो कुटुम्बी व अन्य जनों को विवाह, वाणिज्य आदि पापारम्भ करने के उपदेश नहीं देता, वह पापरहित दसवीं प्रतिमा का धारक है।।७०।।

काव्य-७० पर प्रवचन

दसवीं प्रतिमा —

परकौं पापारंभकौ, जो न देइ उपदेस।
सो दसमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेस॥७०॥

कुटुम्बी और अन्य जनों के विवाह, वाणिज्य, व्यापार आदि पापारम्भ उपदेश न दे। ऐसा व्यापार करना, फलाना करना—ऐसा वह न कहे। आहाहा! पापारम्भ न ले, लो। **प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेस।** पापरहित दसवीं प्रतिमा है। यहाँ तो बात यह है कि जिसका स्वभाव ध्रुव, उसका पहला आश्रय लेता है, तब तो जघन्य आश्रय में से उसे समकित होता है। उससे किंचित् अंश में अधिक आश्रय ले, तब पाँचवाँ (गुणस्थान) होता है और उसमें भी आश्रय का भाग बढ़े थोड़े अंश में, तब उसे ११ प्रतिमा के अंश शुद्धता के बढ़ें। ऐसी बात है। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ७१

ग्यारहवीं प्रतिमा का स्वरूप (चौपाई)

जो सुछंद वरतै तजि डेरा।
मठ मंडपमैं करै बसेरा।।
उचित आहार उदंड विहारी।
सो एकादश प्रतिमा धारी।।७१।।

अर्थः–जो घर छोड़कर मठ मण्डप में निवास करता है, और स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब आदि से विरक्त होकर स्वतन्त्र वर्तता है, तथा कृत कारित अनुमोदना रहित योग्य आहार ग्रहण करता है, वह ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है।।७१।।

काव्य-७१ पर प्रवचन

ग्यारहवीं प्रतिमा का स्वरूप। लो!

जो सुछंद वरतै तजि डेरा।
मठ मंडपमैं करै बसेरा॥
उचित आहार उदंड विहारी।
सो एकादश प्रतिमा धारी॥७१॥

यह लोगों को अभी खटकता है, लो। **जो सुछंद वरतै**—स्वच्छन्द वर्ते। घर छोड़कर मठ—मण्डप में निवास करे, घर में न रहे। आहाहा! यह तो द्रव्य—भगवान ध्रुव के आश्रय से परिणति शुद्ध बढ़े, वहाँ यह दशा होती है, ऐसा बतलाते हैं। आहाहा! व्यवहार के विकल्प की मर्यादा तो होवे वह आवे। परन्तु मूल तो यह चीज़ है। आहाहा! अन्तर्मुख चैतन्य भगवान आनन्दकन्द प्रभु का जितने जोर से आश्रय करे, उतने जोर की परिणति शुद्धि बढ़े। **मठ मंडपमैं करै बसेरा, उचित आहार....** लो। अर्थ अच्छा किया है। **कृत कारित अनुमोदना रहित योग्य आहार ग्रहण करता है,...** लो। यहाँ तो यह स्पष्टीकरण किया है। किया हुआ नहीं, कराया हुआ नहीं, किया हो उसे

अनुमोदन नहीं। उचित—उसके योग्य हो। अब इसके बदले विवाद उठे, लो। ग्यारहवीं प्रतिमा का स्पष्टीकरण करो, कहे। गृहस्थों ने आहार बनाया हो, वह यह ले आवे, स्वयं न कहे तो उसमें इसे यह उद्दिष्ट कहाँ लगा? परन्तु उसने बनाया है इसके लिये न, इसके लिये बनाया, यह अनुमोदना ही है लेता है वह। समझ में आया?

यह प्रश्न किया न (संवत्) १९६९ में उठा था। संवत् १९६९। ५९ वर्ष हुए। कहा, भाई! यह साधु के लिये किया हो, कराया हो, अनुमोदन किया हो, वह आहार-पानी, वस्त्र, मकान नहीं चलता। तो उसके लिये मकान बनाया हो और प्रयोग करे तो नौ कोटि में कौन सी कोटि टूटती है? ऐसा प्रश्न था ६९ में। समझ में आया? नवकोटि समझे? मन-वचन-काया। किया—कराया—अनुमोदन। मुनि के लिये उपाश्रय बनाया हो और प्रयोग करे तो उसमें नौ कोटि में कौन सी कोटि टूटे?

मुमुक्षु : नौ की नौ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ (रहती) नहीं। उसमें अनुमोदन है। हमारे गुरु बेचारे बहुत भद्रिक थे। .... इसे स्पष्ट कहूँगा.... इसे खोटा कहूँगा, ऐसा भी नहीं था। ऐसा नहीं था। उन्हें ऐसा कि दृष्टान्त। बस ऐसा दृष्टान्त। राणपर में पूछा था। राणपर। संवत् १९६९। दीक्षा लेने से बारह महीने पहले की बात है।

यह प्रश्न पूछा था वहाँ मारवाड—जोधपुर में। शिवलालजी को। यह शिवलालजी है न बड़े। उन लोगों में बहुत बड़े। शिवलालजी के शिष्य श्यामलालजी और श्यामलालजी के शिष्य गणेशलालजी और गणेशलालजी के शिष्य अभी यह नानालालजी हैं। ६९ के वर्ष में यह वहाँ पूछा था मारवाड—जोधपुर। कहे, दोष लगेगा। अब उसमें पाठ शास्त्र में है कि उसके लिये बनाया हुआ ले तो वह अनुमोदन ही है। अनुमोदन की कोटि टूट जाती है उसकी। नौ कोटि रहती नहीं। पोपटभाई! आहाहा! वे बेचारे थे, बेचारे सरल। परन्तु इस प्रकार के प्रयोग करते थे न। सम्प्रदाय के गुरु हीराजी महाराज, परन्तु बहुत सरल बाह्य वैरागी। तत्त्व की कुछ खबर नहीं होती। मार्ग की कुछ खबर नहीं होती। बाह्य के आचरण, कषाय मन्द।

मुमुक्षु : मन्द कषाय....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धीरुभाई ने देखे हुए हैं, नहीं ? नहीं देखे। आहाहा! उसके लिये किया हुआ प्रयोग करे तो अनुमोदन कोटि टूटती है। ऐसा पाठ दसवैकालिक में पाठ है। उस दिन तो यह मुखाग्र किया हुआ था।

उचित आहार। ग्यारहवीं प्रतिमा श्रावक को भी उसके लिये बनायाा हुआ आहार नहीं ले सकता। समझ में आया ? कहा न अभी यह। वहाँ जयपुर में प्रश्न किया था न भाई ने। मनोहरलालजी (ने)। आये थे न। एकान्त में पूछा एकान्त में। भाई के मकान में। यह उद्दिष्ट आहार का स्पष्टीकरण हो तो बहुत प्रेम हो जाये लोगों को। ऐसा कुछ होता नहीं। अभी तो कोई द्रव्यलिंगी क्षुल्लक कोई नहीं है, कहा। यहाँ कोई दूसरा हो , ऐसा नहीं। जो है, वह है। परन्तु बेचारे नरम व्यक्ति। नरम व्यक्ति। ऐसे खीझ जाए ऐसे नहीं। मनोहरलालजी हैं न। वर्णीजी के शिष्य। परन्तु उतावल से ले लिया है और अब उसमें किसी के हाथ की बात है नहीं। अब कोई बचाव करना, यह कहीं मार्ग है ? बापू! कहते हैं, भाई! मार्ग नहीं, भाई!

अरे, भगवान का विरह पड़ा, इसलिए यह ऐसे अर्थ करना कि गृहस्थ ने बनाया हुआ आहार ले और उसने किया हुआ अनुमोद नहीं, इसलिए उसे दिक्कत नहीं। ऐसा अर्थ नहीं होता। भाई! भगवान का विरह पड़ा है, प्रभु! विरह में ऐसे अर्थ नहीं होते, कहा। मार्ग तो जो है, वह रहेगा, भाई! वस्तु तो जैसी है, वैसी रखना। कुछ फेरफार करना नहीं। स्वयं से पालन न हो, इसलिए उसका बचाव कर डालना, यह कहीं मार्ग है ? आहाहा! अरेरे! कहाँ जाना है देह छोड़कर। कोई शरण नहीं। कहाँ जाना कहाँ ? अरे, शरणभूत भगवान आत्मा की शरण में जाकर जो निर्मलता हो, उसमें कुछ भी गड़बड़ करना, (ऐसा) नहीं होता। भाई! आहाहा! अरे, अनन्त काल में हित का रास्ता आया। अहित में तो मुठ्ठियाँ बाँधकर दौड़ा था न! आहाहा!

कहते हैं कि **उचित आहार उदंड विहारी।** प्रतिबन्धरहित विहार करे। कहीं रुके। अनुकूल विशेष है, यह अनुकूल है, इस श्रावक को फलाना-ढीकणा। **सो एकादश प्रतिमा धारी।** लो। ग्यारह प्रतिमा इसे कहते हैं। ऐसा वर्णन दिगम्बर में स्पष्ट ऐसा कथन है। ऐसा स्पष्ट कथन दूसरे में नहीं। यह तो सनातन मार्ग है, भाई! दिगम्बर

कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु की—धर्म की शुद्धि के वृद्धि के पहलू कैसे हों, उसे बतलानेवाला यह दिगम्बर धर्म है। समझ में आया? कहो, नवलचन्दभाई! ऐसा मार्ग है, बापू!

वह अभी एक आये थे। आगम की वह बात हुई, तब कहे कि आगम तो मानते नहीं दिगम्बर। यहाँ बैठे थे न, नहीं यहाँ, उठ गये, नहीं? यहाँ बैठे थे यहाँ। उठ गये। नवलचन्दभाई के पास बैठे नहीं थे एक? गये। वे अन्दर आये।

मुमुक्षु : उन्हें ठीक नहीं लगा इसलिए कहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे ऐसा कहते थे। आगम तो यह कहलाता है। उसे तो दिगम्बर मानते नहीं। भाई! आगम किसे कहना! इसलिए यहाँ परमागम की... वह होता है। अर्थात् कि तो आगम मानते नहीं दिगम्बर। बापू! आत्मा के अध्यात्म के कहनेवाले शास्त्र, वे परमागम ही हैं। भगवान की वाणी है, सन्तों के कथन हैं। सन्तों ने सुनहरी जाल ही डाली है उसमें। उसमें सुखशैय्या करके सत्य का मार्ग सुख का .... भरा है, वह मार्ग है यह तो। उसमें यह कहा था, उन परमागम में। लोगों को कठिन पड़ता है। आहाहा! योग्य आहार—उचित आहार की यह व्याख्या। उसके योग्य आहार होना चाहिए। समझ में आया? ऐसे ११ प्रतिमाधारी श्रावक, लो।

★ ★ ★

काव्य - ७२

प्रतिमा के सम्बन्ध में मुख्य उल्लेख (दोहा)

एकादश प्रतिमा दसा, कहीं देसव्रत मांहि।
वही अनुक्रम मूलसौं, गहौ सु छूटै नाहि।।७२।।

अर्थ:–देशव्रत गुणस्थान में ग्यारह प्रतिमाएँ ग्रहण करने का उपदेश है। सो शुरु से उत्तरोत्तर अंगीकार करना चाहिए और नीचे की प्रतिमाओं की क्रिया छोड़ना नहीं चाहिए।।७२।।

काव्य-७२ पर प्रवचन

एकादश प्रतिमा दसा, कहीं देसव्रत मांहि। पाँचवें गुणस्थान की यह दशा है। अर्थात् मुनि होने से पहले। कोई सीधे भी मुनि हों। ऐसा कुछ नहीं। **वही अनुक्रम मूलसौं,....** देखो! श्वेताम्बर में तो ऐसा है। ले और छोड़े। आठ प्रतिमा ले और छोड़ दे। ११ प्रतिमा ले और छोड़ दे, ऐसा है। अब यह है ११ गुने ११। यहाँ तो **वही अनुक्रम मूलसौं, गहौ सु छूटै नाहि।** जो प्रतिमा ली है, छूटे नहीं। ठेठ तक उसे (पालन करे)। आगे जाकर मुनि हो। ऐसी प्रतिमा का स्वभाव—दशा। वह पंचम गुणस्थान के देशव्रत की यह व्याख्या हुई, लो। अब इसके जघन्य की बात।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९१, कार्तिक शुक्ल ७, मंगलवार, दिनांक २६-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ७३ से ८१

७३वाँ बोल है। श्रावक की ग्यारह प्रतिमा। अधिकार आ गया। **प्रतिमाओं की अपेक्षा श्रावकों के भेद।**

★ ★ ★

काव्य - ७३

प्रतिमाओं की अपेक्षा श्रावकों के भेद (दोहा)

षट प्रतिमा तांई जघन, मध्यम नौ परजंत।
उत्तम दसमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत।।७३।।

अर्थः-छठवीं प्रतिमा तक जघन्य श्रावक, नववीं प्रतिमा तक मध्यम श्रावक और दसवीं ग्यारहवीं प्रतिमा धारण करनेवालों को उत्कृष्ट श्रावक कहते हैं। यह प्रतिमाओं का वर्णन पूरा हुआ।।७३।।

काव्य-७३ पर प्रवचन

षट प्रतिमा तांई जघन, मध्यम नौ परजंत।
उत्तम दसमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत॥७३॥

प्रतिमा अर्थात् यह मूर्ति नहीं, हों! प्रतिमा अर्थात् गुणस्थान की मर्यादा के अंश विशेष। बढ़े पंचम गुणस्थान में आत्मा के अनुभव सहित... सवेरे आया था न! परद्रव्य के साथ तुझे क्या सम्बन्ध है ?

मुमुक्षु : पहले .... है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले। कहा न **ततज्** कहा है न **ततज्** 'ते'। कहीं अलग तुझसे रहे। उनके साथ तुझे क्या सम्बन्ध है ? उनसे तुझे क्या फल की प्राप्ति है ? ऐसा है। उनसे

लाभ क्या है ? आहा ! जिसे शुभभाव से लाभ नहीं। जिसे परद्रव्य—तीर्थंकर, देव, गुरु, शास्त्र या स्वजन, दुश्मन, परिवार आदि से तुझे क्या फल ? क्योंकि उस ओर का आश्रय रहेगा तो तुझे राग होगा, बन्धन होगा। आहाहा ! ऐसी सत्य बात वीतरागमार्ग में होती है। वीतराग ऐसा कहें। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हों, इन्द्र के पूजनीक। कहते हैं कि मुझे पूजने के कारण से तुझे क्या लाभ है ? आहाहा ! गजब बात है न !

मुमुक्षु : प्रतिमा को नहीं माननेवाले ऐसा ही कहते हैं न !

पूज्य गुरुदेवश्री : अरेरे ! उसे कहाँ क्या खबर ? कि पहले प्रतिमा मानते नहीं थे। अब यहाँ आये तब अभी वह की वह गन्ध रह गयी है, ऐसा (वे) कहते हैं। अरे, प्रतिमा तो एक शुभभाव हो, तब उसमें निमित्तरूप से कही जाती है। परन्तु उससे आत्मा को धर्म का फल आवे, यह नहीं। ऐसा मार्ग है। यह गजब बात है। समझ में आया ? और उसकी मर्यादा में ऐसा भाव न ही हो, यह झूठ है। जब तक पूर्ण वीतरागदशा हुई नहीं, तब तक उसे ऐसा भाव होता है, परन्तु उससे आत्मा के शान्ति का फल, धर्म का फल उसमें नहीं। आहाहा ! ऐसा मार्ग ऐसा है परन्तु क्या हो ? अनन्त काल में निराधार अशरण होकर अनाथ होकर भटकता है। आहाहा !

प्रतिमा, मूल तो सम्यग्दर्शन जिसे अन्तर आत्मा पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, ऐसा जिसे स्व के आश्रय से स्वसन्मुख होकर जिसे राग से पृथक् होकर स्वभाव की अनुभव दशा होकर जो प्रतीति हो, तब उसे सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में कहा जाता है। आहाहा ! धर्म की शुरुआत की वह भूमिका कही जाती है। तदुपरान्त यहाँ तो बात है। आहाहा ! दूसरी चौकड़ी कषाय (का नाश है)। जिसने स्व का आश्रय उग्ररूप से लेकर, चौथे में जो स्व का आश्रय था, उसकी अपेक्षा पंचम गुणस्थान श्रावक की सच्ची दशा में उसने भगवान अन्तर्मुख का विशेष आश्रय लिया है, और उससे प्रगट हुई निर्मल शान्तदशा जिसे चौथे की अपेक्षा बढ़ गयी है। आहाहा ! ऐसे पंचम गुणस्थान में ऐसी ग्यारह दशायें होती हैं, उनका वर्णन है न ! कहा न !

कही देसव्रत मांहि। अकेले व्रत विकल्प, ऐसा नहीं। चैतन्य भगवान पूर्ण शान्त... शान्त पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसकी अन्तर शरण में जाने से जो शान्ति

निर्विकारी निर्विकल्पदशा चौथे की अपेक्षा पाँचवें में विशेष बढ़े, उसे श्रावक कहा जाता है। कहो, पोपटभाई! या यह वाडा में हो गये श्रावक, इसलिए श्रावक हुए, ऐसा है नहीं। उसे ग्यारह प्रतिमा, चौथे से पाँचवें में आने पर गुण की दशा मोक्ष के सन्मुख के अंश बढ़े हैं। उसे प्रतिमा के ग्यारह भेद होते हैं।

षट प्रतिमा जघन—छह प्रतिमा तक प्रतिमा के अंश हैं, उसे जघन्यदशा कही जाती है। प्रतिमा की जघन्यदशा, धर्म की दूसरे नम्बर की दशा। परन्तु जब तक प्रतिमा का—छह प्रतिमा का भाव हो, शुद्धता के अंश निर्विकल्पदशा की परिणति, उसे जघन्य अर्थात् जघन्य श्रेणी की प्रतिमा कही जाती है।

मध्यम नौ—सात से नौ। सात, आठ और नौ—तीन जो है, वह विशेष विशेष अंश शुद्धि बढ़ी है, इससे उसे मध्यम गिना जाता है। और उत्तम दस तथा ग्यारहवीं। १० और ११वीं प्रतिमा को उत्तम कहा जाता है। स्त्री के आत्मा को होती है यह। समझ में आया? आत्मा है न! उसे छठवाँ गुणस्थान नहीं होता। जिसका शरीर स्त्री का है, उसे छठवाँ गुणस्थान मुनिपने का तीन काल में कभी आता नहीं, ऐसी उसकी मर्यादा है। परन्तु यह दशा आ सकती है। हाँ, ११वीं प्रतिमा तक भी आवे। गुणस्थान की मर्यादा पाँचवें की है।

पाँचवें गुणस्थान का काल। काल कितना उसका काल?

★ ★ ★

काव्य - ७४

पाँचवें गुणस्थान का काल (चौपाई)

एक कोडि पूरव गिनि लीजै।
तामैं आठ बरस घटि कीजै।।
यह उत्कृष्ट काल थिति जाकी।
अंतरमुहूरत जघन दशाकी।।७४।।

अर्थः–पाँचवें गुणस्थान का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्व और जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है।।७४।।

काव्य-७४ पर प्रवचन

पाँचवें गुणस्थान का काल।

एक कोडि पूरव गिनि लीजै।
तामैं आठ बरस घटि कीजै॥
यह उत्कृष्ट काल थिति जाकी।
अंतरमुहूरत जघन दशाकी॥७४॥

पाँचवें गुणस्थान की अवधि प्रतिमाधारी की और पाँचवें गुणस्थान की अवधि। उत्कृष्ट काल—आठ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व। करोड़ पूर्व में आठ वर्ष कम। आठ वर्ष से कोई पाँचवें गुणस्थान में प्रतिमा धारण करे। पंचम गुणस्थान। आठ वर्ष घट-कम। क्योंकि आठ वर्ष पहले उसे पंचम गुणस्थान आता नहीं। आठ वर्ष के पश्चात् सम्यग्दर्शन होकर ऐसी निर्मलदशा उसकी होती है। उत्कृष्ट काल। **अंतरमुहूरत जघन—**अन्तिम अन्तर्मुहूर्त रहे और एकदम सम्यग्दर्शन हो और प्रतिमा भी हो। अन्तर्मुहूर्त भी हो सकता है। अब इसका एक क्रोड़ पूर्व का माप कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ७५

एक पूर्व का प्रमाण

(दोहा)

सत्तर लाख किरोर मित, छप्पन सहस किरोड़।
ऐते बरस मिलाइके, पूरव संख्या जोड़।।७५।।

अर्थः–सत्तर लाख छप्पन हजार को एक करोड़ का गुणा करने से जो संख्या प्राप्त होती है, उतने वर्ष का एक पूर्व[१] होता है।।७५।।

काव्य-७५ पर प्रवचन

सत्ता लाख किरोर मित, छप्पन सहस किरोड़।
ऐते बरस मिलाइके, पूरव संख्या जोड़॥७५॥

क्रोड़ पूर्व का आयुष्य हो, उसमें आठ वर्ष कम, ११ प्रतिमा हो उसे। वह क्रोड़ पूर्व किसे कहते हैं ? कि एक क्रोड उसमें पूर्व जो है, वह सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़, इतने वर्ष का एक पूर्व होता है। सत्तर लाख करोड़, छप्पन हजार करोड़, इतने वर्ष का एक पूर्व। ऐसे ऐसे करोड़ पूर्व। संख्यात है। उसमें कहीं असंख्य नहीं। अनन्त तो है ही नहीं। अब अन्तर्मुहूर्त का माप। वह करोड़ पूर्व का माप कहा।

★ ★ ★

काव्य - ७६

अन्तर्मुहूर्त का मान (दोहा)

अंतर्मुहूरत द्वै घरी, कछुक घाटि उतकिष्ट।
एक समय एकावली, अंतरमुहूर्त कनिष्ट।।७६।।

अर्थः–दो घड़ी में से एक समय कम अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट काल है और एक समय अधिक एक आवली[२] अंतर्मुहूर्त का जघन्य काल है तथा बीच के असंख्यात भेद हैं।।७६।।

१. चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है, और चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है।
२. असंख्यात समय की एक आवली होती है।

काव्य-७६ पर प्रवचन

अंतर्मुहूरत द्वै घरी, कछुक घाटि उतकिष्ट।
एक समय एकावली, अंतरमुहूर्त कनिष्ट॥७६॥

अंतर्मुहूरत द्वै घरी,... दो घड़ी। **कछुक घाटि उतकिष्ट**—कुछ कम। **एक समय एकावली।** जघन्य। वह उत्कृष्ट कहा। अन्तर्मुहूर्त में भी उत्कृष्ट और जघन्य दो। अन्तर्मुहूर्त में **कछुक घाटि....** उत्कृष्ट उसे कहते हैं अन्तर्मुहूर्त। **एक समय एकावली, अंतरमुहूर्त कनिष्ट।** जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। यह तो गिनती का विषय है। यह तो सब साधारण लड़कों को आता है।

अब, **छट्ठे गुणस्थान का वर्णन।** अब मुनि कैसे होते हैं, उसका वर्णन। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ७७

छट्ठे गुणस्थान का वर्णन–प्रतिज्ञा (दोहा)

यह पंचम गुनथानकी, रचना कही विचित्र।
अब छट्ठे गुनथानकी, दसा कहूं सुन मित्र।।७७।।

अर्थः–पाँचवें गुणस्थान का यह विचित्र वर्णन किया, अब हे मित्र, छट्ठे गुणस्थान का स्वरूप सुनो।।७७।।

काव्य-७७ पर प्रवचन

यह पंचम गुनथानकी, रचना कही विचित्र।
अब छट्ठे गुनथानकी, दसा कहूं सुन मित्र॥७७॥

मुनि कैसे होते हैं छठवें गुणस्थान में, उनकी दशा अब कहता हूँ। हे मित्र! ऐसा करके कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ७८

छट्ठे गुणस्थान का स्वरूप (दोहा)

पंच प्रमाद दशा धरै, अट्ठाइस गुनवान।
थविरकल्पि जिनकल्पि जुत, है प्रमत्तगुनथान।।७८।।

अर्थः–जो मुनि अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं, परन्तु पाँच प्रकार के प्रमादों में किंचित् वर्तते हैं, वे मुनि प्रमत्गुणस्थानी हैं। इस गुणस्थान में स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दोनों प्रकार के साधु रहते हैं।।७८।।

काव्य-७८ पर प्रवचन

पंच प्रमाद दशा धरै, अट्ठाइस गुनवान।
थविरकल्पि जिनकल्पि जुत, है प्रमत्तगुनथान।।७८।।

छठवें गुणस्थान में उसे तीन कषाय (चौकड़ी) का नाश हो गया होता है। आत्मा की शान्ति पंचम गुणस्थान के श्रावक से उनकी शान्ति... शान्ति... प्रशान्त रस बढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया? यह वे मुनि ऐरे-गेरे हो गये साधु। आहाहा! अभी तो समकित किसे कहना, उसकी खबर नहीं होती और साधु हो जाओ। भाई! साधु हुआ तो सिद्ध हुआ। आहाहा! जिसे पंच प्रमाद हों जरा, कहते हैं। छठवें गुणस्थान में है न। आनन्द बहुत होता है। प्रचुर स्वसंवेदन होता है। ओहो! वह आनन्द की दशा में झूलता होता है। जैसे झूले में झूलते हैं, वैसे जिन्हें क्षण में और पल में, क्षण में और पल में सातवीं भूमिका आनन्द की आवे, उसके पहले आवे छठवीं प्रमत्तदशा की। परन्तु अन्तर हो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उसका उसे पाँचवें गुणस्थान की अपेक्षा भी आनन्द की शान्ति की अवस्था उसे बढ़ गयी है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा छठवाँ गुणस्थान।

अट्ठाइस गुनवान। विकल्प हो, उसे २८ मूलगुण का हो, छठवें गुणस्थान में। नाम देंगे नीचे। २८ गुण के नाम देंगे। **थविरकल्पि जिनकल्पि जुत।** स्थविरकल्पी बहुत

साधुओं की संख्या में इकट्ठा रहे, उपदेश करे परन्तु हो वह वनवासी और नग्न। समझ में आया? आहाहा! गजब! आगे कहेंगे। **दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहतु हैं।** ८४ (पद) में कहेंगे। मुनि को अन्तर में बहुत आनन्द आता है। उस आनन्द के समक्ष उन्हें कहीं लोगों के नगर में, गाँव में रहने की उनकी लाभवृत्ति स्थिर नहीं होती। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह स्थविरकल्पी बहुत साधुओं में इकट्ठे रहते हैं, इतना। जिनकल्पी अकेले रहते हैं। वन में तो दोनों रहते हैं। दोनों नग्न होते हैं। आहा! परन्तु अकेले नग्न नहीं, अन्दर में राग की वृत्तियाँ बहुत काट डाली हैं। जरा प्रमाद का विकल्प आदि है, यह कहेंगे। वह प्रमत्त गुणस्थान उसे कहा जाता है। आहाहा! जो परमेश्वरदशा में सम्मिलित हैं। समझ में आया? उसे प्रमाद का नाम देते हैं। पंच प्रमाद कहे थे न, २८ मूलगुण कहे थे ऊपर। दोनों का विस्तार।

★ ★ ★

काव्य - ७९

पाँच प्रमादों के नाम (दोहा)

धर्मराग विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय।
पंच प्रमाद दसा सहित, परमादी मुनिराय।।७९।।

अर्थः–धर्म में अनुराग, विकथावचन, निद्रा, विषय[१], कषाय[२] ऐसे पाँच प्रमाद –सहित साधु छट्ठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्तमुनि होते हैं।।७९।।

१–२. यहाँ अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान इन तीन चौकड़ी की बारह कषायों का अनोदय और संज्वलन कषाय का तीव्र उदय रहता है, इससे वे साधु किंचित् प्रमाद के वश में होते हैं और शुभाचार में विशेषतया वर्तते हैं। यहाँ विषय सेवन वा स्थूलरूप से कषाय में वर्तने का प्रयोजन नहीं है। हाँ, शिष्यों को ताड़ना आदि का विकल्प तो भी है।

काव्य-७९ पर प्रवचन

धर्मराग विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय।
पंच प्रमाद दसा सहित, परमादी मुनिराय॥७९॥

धर्म में अनुराग। धर्मी को धर्म के प्रति उसे जरा राग—शुभराग आवे। है बन्ध का कारण, है प्रमाद। यह गुणस्थान का वर्णन है न! आहाहा! धर्म का राग, वह भी प्रमाद है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय धाम में बसा हुआ तत्त्व है। उसमें से जरा भी बाहर निकलना, वह प्रमाद है। आहाहा! अब यह धर्म का अनुराग, वह प्रमाद है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! इससे उसे प्रमत्त गुणस्थान कहा जाता है न! आहाहा!

विकथावचन। किंचित् राग का वचन निकले। राग है न जरा, ऐसा वचन हो। इससे प्रमाद गिनना है न। निद्रा हो। छठवें गुणस्थान में निद्रा होती है। सातवें में नहीं होती। एक पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा आवे। यहाँ आठ-नौ बजे सोवे, वह सवेरे छह बजे उठे, ऐसा नहीं। आहाहा! अरे, परमेश्वर के पक्ष में चढ़ा और परमेश्वर का पद लेने के लिये प्रयासरत है, उसे निद्रा कैसी? आहाहा! पूर्ण परमेश्वर होना चाहता है न! परन्तु अभी प्रमत्तदशा है। जरा निद्रा, रात्रि के पिछले भाग में—पिछली रयनी।

मुमुक्षु : भू माहिं पिछली रयनि में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह जरा। एक करवट से सहज निद्रा। आहाहा! उसे यहाँ प्रमत्त गुणस्थान कहा जाता है।

साधुपद और छठवाँ गुणस्थान कैसा होता है, उसकी जिसे अभी श्रद्धा के ज्ञान की खबर नहीं और ऐसा माने कि हम देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं। समझ में आया? चारित्रवन्त मुनि। आहाहा! स्त्री का देह हो जिसे, उसे तो चारित्र और मुनिपना तो तीन काल में नहीं हो सकता। यह जो मुनि है, ऐसा माने वह तो मिथ्यादृष्टि—गृहीत मिथ्यादृष्टि है। कहो, मिलान खाना कठिन, जगत के साथ, हों! समझ में आया? जरा निद्रा आवे, कहते हैं। यह छठवें गुणस्थान तक निद्रा का अल्पकाल होता है, इतना बतलाना है। पश्चात् होता नहीं। ध्यान आनन्ददशा। अप्रमत्तदशा सातवाँ गुणस्थान, वहाँ निद्रा होती नहीं। यह धर्मराग नहीं, विकथा नहीं।

जरा विषय का राग जरा सूक्ष्म आ जाये, परसन्मुख का राग, कषाय का भाग, वह आ जाये, उसे यहाँ प्रमाद कहा जाता है। परन्तु उसके साथ अन्दर निर्विकल्प स्वसंवेदन वीतराग परिणति खड़ी हुई है, उसे वास्तविक गुणस्थान कहा जाता है। उसकी मर्यादा में ऐसा होता है, इतना बताते हैं। आहाहा! कहो, जादवजीभाई! यह तो जय नारायण था सर्वत्र।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकथा एक रागभाव। वचन निकला, वही विकथा।

मुमुक्षु : उपदेश भी रागवाला ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रागवाला ही है। वास्तव में तो वह राग, उपदेश वह विकथा है वास्तव में तो। आहाहा! गजब बात है भाई यह तो! यह तो वीतरागमार्ग की बातें हैं। समझ में आया? राग। यह वाणी निकलती है न! वाणी तो वाणी के कारण से, परन्तु उसमें थोड़ा राग है। छद्मस्थ है न, इसलिए अकेली कथा, ऐसा नहीं। कथा तो वीतराग को भी होती है परन्तु रागवाली जो है, ऐसा। आहाहा!

पंच प्रमाद दसा सहित, परमादी मुनिराय। लो। उन्हें इतना थोड़ा प्रमाद थोड़ा होता है परन्तु अन्तर निर्मलता तीन कषाय के अभाव की (होती है)। ओहोहो! जिन्हें शान्ति की लहरें उठती हैं अन्दर से। शान्ति... शान्ति... शान्ति। उपशम रस जम गया है। जैसे बर्फ जमता है, उसी प्रकार मुनि को अन्तर में उपशम रस तो जम गया है। आहाहा! धन्य अवतार है न यह! भले प्रमाद का विकल्प है, परन्तु दशा ऐसी गुण की है, कहते हैं। समझ में आया? अब अभी छठवें गुणस्थानवाले कैसे होते हैं, गुरु चारित्रवन्त कैसे होते हैं, उसकी खबर नहीं होती और उसे धर्म हो जाये, लो। बाहर की क्रिया करते हों, हो गये नग्न, यह साधु। भाई! ऐसा तो अनन्त बार नग्नपना धारण किया। आत्मा के भान बिना ग्यारह प्रतिमायें भी अनन्त बार (धारण) की, वह सब संसार खाते—भटकने खाते है। आहाहा!

अब २८ गुण की बात। २८ मूलगुण कहे थे न!

★ ★ ★

काव्य - ८०

साधु के अट्ठाईस मूलगुण (सवैया इकतीसा)

पंच महाव्रत पालै पंच समिति संभालै,
पंच इंद्री जीति भयौ भोगी चित चैनको।
षट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधै,
प्रासुक धरामैं एक आसन है सैनकौ।।
मंजन न करै केश लुंचै तन वस्त्र मुंचै,
त्यागै दंतवन पै सुगंध स्वास वैनकौ।
ठाड़ौ करसे आहार लघुभुंजी एक बार,
अट्ठाइस मूलगुनधारी जती जैनकौ।।८०।।

शब्दार्थ:–पंचमहाव्रत=पंच पापों का सर्वथा त्याग। प्रासुक=जीव रहित। सैन (शयन)=सोना। मंजन=स्नान। केश=बाल। लुंचै=उखाड़े। मुंचे=छोड़े। करसे=हाथ से। लघु=थोड़ा। जती=साधु।

अर्थ:–पंच महाव्रत पालते हैं, पाँचों समितिपूर्वक वर्तते हैं, पाँचों इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर प्रसन्न होते हैं, द्रव्य और भाव छह आवश्यक साधते हैं, त्रस जीव रहित भूमि पर करवटरहित शयन करते हैं, यावज्जीवन स्नान नहीं करते, हाथों से केशलोंच करते हैं, नग्न रहते हैं, दन्तवन नहीं करते, तो भी वचन और श्वास में सुगंध ही निकलती है, खड़े भोजन लेते हैं, थोड़ा भोजन लेते हैं, भोजन दिन में एक बार लेते हैं। ऐसे अट्ठाईस मूलगुणों के धारक जैन साधु होते हैं।।८०।।

काव्य-८० पर प्रवचन

पंच महाव्रत पालै पंच समिति संभालै,
पंच इंद्री जीति भयौ भोगी चित चैनको।
षट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधै,
प्रासुक धरामैं एक आसन है सैनकौ॥

मंजन न करै केश लुंचै तन वस्त्र मुंचै,
त्यागै दंतवन पै सुगंध स्वास वैनकौ।
ठाड़ौ करसे आहार लघुभुंजी एक बार,
अट्ठास मूलगुनधारी जती जैनकौ॥८०॥

यह जैन के यति ऐसे होते हैं। वे यति हैं, वे जतडा नहीं, हों! वे भी यति कहलाते हैं न। यति अर्थात् आत्मा के आनन्द की जतना—रक्षा करे, उसे यति कहते हैं। आहाहा! आत्मा का रक्षक। आत्मा का रक्षक है। पूर्णानन्द का नाथ आत्मा। सिद्धधाम ही अपना स्वरूप है। उसकी स्वयं स्थिर होकर रक्षा करते हैं, यत्न करते हैं, जयणा करते हैं, उसका नाम यति। पर की जयणा करे दया की, इसलिए यति, यह भी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पंच महाव्रत पालै। भाषा तो व्यवहारनय के कथन में ऐसी आवे न! लो, पंच महाव्रत है तो विकल्प, राग-शुभराग है वह। समझ में आया? **पंच महाव्रत पालै।** पाठ ऐसा है न। उसका अर्थ है कि आत्मा के आनन्द के स्वाद की उग्र दशा के काल में भी छठवीं भूमिका में उसे पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं, बस। उसे व्यवहारनय से 'पालते हैं' ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? अरे, अरे! बात-बात में अन्तर। यहाँ कहे पालते हैं, तब यहाँ कहे होते हैं। होते अवश्य हैं। इतना भाव वहाँ होता है, उसे व्यवहारनय से, पालते हैं—ऐसा कहा जाता है। राग को—आस्रव को पाले? पंच महाव्रत के परिणाम तो आस्रव हैं। आहाहा! वह कहीं मुनिपना नहीं। मुनिपना तो अन्दर में आनन्द की दशा ऐसे उग्र वेदन है, वह है। परन्तु उस भूमिका में ऐसे भाव होते हैं, उसे पालते हैं—ऐसा कहा जाता है, लो। नीचे स्पष्टीकरण किया है।

यहाँ अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान इन तीन चौकड़ी की बारह कषायों का अनुदय ....होता है। उदय नहीं होता **और संज्वलन कषाय का तीव्र उदय रहता है।** ऐसा जरा प्रमाद है न। **इससे वे साधु किंचित् प्रमाद के वश में होते हैं। और शुभाचार में विशेषतया वर्तते हैं।** देखो, शुभ आचार पंच महाव्रत आदि।

यहाँ विषयसेवन वा स्थूलरूप से कषाय में वर्तने का प्रयोजन नहीं है। हाँ शिष्यों को ताड़ना आदि विकल्प तो भी हैं। अभी उलहाना दे कोई भूल हो तो। इतना

भी राग है न! है इतना राग (वह), दोष है। होता है। **पंच महाव्रत पालै—**अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ऐसे पाँच प्रकार के शुभराग का उसे आचरणभाव होता है। समझ में आया? नियमसार में निश्चय की बात में तो व्यवहार को स्मरण नहीं किया था। परन्तु यहाँ तो गुणस्थान की मर्यादा बतलानी है न? आहाहा! राग का अंश उदय हो तो इस प्रकार का होता है। आहाहा!

पंच महाव्रत पालै पंच समिति संभालै,... देखकर चलना इत्यादि। विचारकर बोलना। ऐषणा—निर्दोष आहार-पानी, उसके लिये नहीं बनाया हुआ ऐसा ऐषणा से लेना। लेना, वह तो एक शब्द की कथनी है, परन्तु उस प्रकार से ऐषणा का भाव निर्दोष आहार-पानी लेने का विकल्प होता है। वस्तु को देखकर रखना—लेना—छोड़ना और पठनी विचारकर, यह पाँच समिति होती है। सम्हाले कहा, लो। है तो विकल्प-राग। निश्चय में ऐसे विकल्प हों, उसको ज्ञानी-धर्मात्मा जानते हैं। जानते हैं। वास्तव में तो स्थिरता की अपेक्षा से, इससे अस्थिरता से तो मुक्त है। दृष्टि की अपेक्षा से तो मुक्त हैं। हाँ, चारित्र की अपेक्षा से इस विकल्प से मुक्त है यहाँ। जितनी स्थिरता है, उसे चारित्र कहते हैं। यह (राग) है अचारित्र। अरे! समझ में आया? यह सब ही ऐसे जैन के साधु होते हैं। परन्तु कोई ऐसे और कोई कैसे, ऐसा नहीं। समझ में आया?

अब एक व्यक्ति वह है न सुशील स्थानकवासी साधु। वह कहे, णमो लोए सव्व साहूणं। उसमें कहाँ कहा है कि जैन के साधु ऐसे होते हैं? तो सब लोक में जितने साधु हैं जयनारायण। णमो लोए सव्व साहूणं आता है, उसमें है णमो लोए जैन साधु? परन्तु साधु जैन के ऐसे ही होते हैं। सुन न, ऐसे के ऐसे ....! ऐसे वेशधारी पके हैं न! वीतरागमार्ग की पेढी को....

मुमुक्षु : दिवालिया में ले जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : णमो लोए सव्व साहूणं। जयभगवान

ऐसे वे ताराचन्दभाई थे, वे भी थोड़ा कहते थे। बड़ी संख्या नहीं थी इसलिए। यह वीरजीभाई के पिता। वीरजी वकील थे न, उनके पिता। बहुत जानते थे। बहुत पढ़ा हुआ यह स्थानकवासी में। साधु-साध्वी की बात। वे ऐसा अर्थ करते कि इतने सब

साधु शास्त्र में कहे हैं, वे अपने साधु न मिले तो अन्य के भी उसमें इकट्ठे लेना। कान्तिभाई! देखा था तुमने ताराचन्दभाई को? वीरजीभाई के पिता। आहाहा! व्यक्ति बहुत ठेठ.... (संवत्) १९७४ में। लाठी में चातुर्मास था। प्रौषध करने आये। स्वयं वृद्ध लाठी के। ऐसे व्यक्ति बहुत नरम। अभिमान नहीं, परन्तु इस वस्तु की खबर नहीं न, इसलिए बेचारे पढ़े हुए बहुत। परन्तु ऐसा बोले कि यहाँ साधु भी भाई सबको गिनना पड़ेगा। गिना, कहा, साधु थे कब? आहाहा! जिसे अभी गुण की कितनी दशावाले को साधु कहते हैं, उसकी खबर नहीं होती, उसे आत्मा की खबर हो किसकी? आहाहा! समझ में आया?

पंच इंद्री जीति... अणीन्द्रिय भगवान आत्मा की क्रीड़ा में रमते हैं, उन्हें पाँच इन्द्रिय के विषय का जीतना होता है। स्थिरता में, हों! समझ में आया? वैसे तो समकिती ही पाँच इन्द्रियों का जीतनेवाला है। किस अपेक्षा से? कि जितनी इन्द्रियाँ यह जड़, भाव इन्द्रिय खण्ड-खण्ड ज्ञान करावे वह और (इन्द्रियों के) विषय सबसे अधिक (अर्थात्) भिन्न आत्मा का भान होता है, उसने इन्द्रियों को जीता, ऐसा समकिती को कहा जाता है, परन्तु यह उसके उपरान्त अस्थिरता को जीते, उसके लिये ऐसी बात कही। पाँच इन्द्रियों का जो अस्थिरता का जो विकल्प हो, उसे जीतते हैं।

भयौ भोगी चित चैनको। लो। **पाँचों इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होते हैं।** आनन्द.... आनन्द.... आनन्द.... आनन्द.... अतीन्द्रिय आनन्द। उस अतीन्द्रिय आनन्द को मुनि चूसते हैं। आहाहा! यह लड़के लकड़े को चूसते नहीं। क्या कहलाता है चूसणियां। छोटे बालक को नहीं देते? वरना अंगूठा। बड़ा हो फिर यह आईसक्रीम, कुल्फी। यह धर्म में बड़ा हो, वह आत्मा को चूसता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह आत्मा का चूसणियां ऐसा है कि चक्रवर्ती के छह खण्ड के राज को छुड़ाकर चूसणियां में जाये। ९६ हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ, उनके प्रति आसक्ति का राग, उसे छोड़कर भगवान के आनन्द के चूसणियां में अन्दर जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी पाँच इन्द्रियाँ जीतकर **भयौ भोगी चित चैनको**—आत्मा के आनन्द में भोगी हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द का भोगी है।

षट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधै, यह सामायिक, चउविसंतो, वन्दना—

छह आते हैं न। वह द्रव्य से भी विकल्प हो ऐसा और भाव से भी उसकी निर्मलता हो। उसे छह आवश्यक अवश्य होते हैं। आहाहा! आवश्यक आदर्श होते हैं उसे।

प्रासुक धरामैं एक आसन है सैनकौ... यह प्रासुक धरा में। धरा... धरा में। प्रासुक अर्थात् अचित। धरा अर्थात् जमीन। आहाहा! **एक आसन है सैनकौ...** थोड़ा एकासन। एकासन। **जीव रहित भूमि पर करवट रहित शयन करते हैं।** करवट नहीं बदलते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे से ऐसे बदलते हैं न नींद में यह रात्रि में। नींद न आवे तब। दायें से बायें और बायें से दायें ऐसे से ऐसे। उन्हें नहीं होता, कहते हैं, मुनि की दशा में। आहाहा! गजब करते हैं, यह दशा की तो! अकेला राग घट गया है और इतनी शान्ति बढ़ गयी है कि एक करवट, इस एक ओर एक करवट ली अभी, तो बस हो गया। पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा। आहाहा!

ऐसा मुनिपना होता है, ऐसा तो सुना भी नहीं होगा वाडा में। शान्तिभाई! हमारे शान्तिभाई बच गये। रह गये, वरना ये.... आहाहा! स्त्री ने आज्ञा दे दी। ..... फिर कहे जाओ फिर। हमारे .... उदास... उदास हो जाते हैं। नग्न मुनि होना है। भाई! बापू! नग्न मुनि तो किसकी, जिसे दशा अन्दर हो, वह नग्न हो। आहाहा! अरे, उसकी गुण की मर्यादा की अधिकता कितनी होती है उसे, इसकी खबर नहीं, वहाँ प्रगट तो कहाँ हो उसे? आहाहा! यह सबको सुनकर कठिन लगे, हों! यह कहते हैं, यह सबका मार्ग का कल्याण उड़ जाता है। ऐसा करे तो उसका कल्याण होता है।

वहाँ आये थे न जामनगर यह। रामजीभाई ने भेजा था न १०-१५ व्यक्तियों को। यह व्यक्ति कौन भाई, नहीं? वह वैष्णव था और स्थानकवासी हुआ।

मुमुक्षु : रतिलाल मास्टर।

पूज्य गुरुदेवश्री : रतिलाल मास्टर। हाँ, वे आये थे। स्थानकवासी थे। पहले वैष्णव थे। हाँ, वे। यहाँ आये थे। उसे फौज लेकर आये वहाँ। हमारे महाराज कहते हैं कि सब तुम्हारा कल्याण का मार्ग रुक जाता है यह। ऐसा मार्ग है। .....थे लालुभाई उस समय? परन्तु यह व्यक्ति पका धीरुभाई के काका का पुत्र। हिम्मत। सज्जन बहुत हों! सज्जन व्यक्ति जरा। हिम्मतभाई। महाराज के साथ जो बात करनी हो, वह करो। आड़ी-टेढ़ी रहने दो। व्यक्ति सज्जन। वरना यह प्रमुख है।

अब मैं तुम्हारे साथ बात करना नहीं चाहता, और तुम्हारे क्या है, कहा। महाराज ऐसा कहते हैं और फिर ऊपर से.... यह एक ही मार्ग हम कहते हैं, यह सच्चा है। बाकी तुम्हारे सब मार्ग खोटे-झूठे हैं। गप्पा हैं। यह एक ही मार्ग वीतराग का जो हम कहते हैं, वही मार्ग है। बाकी सब मार्ग झूठे-झूठा मार्ग है। प्रमुख कहे। यह तो वे मानो चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसी बात है। मार्ग यह है, कहा। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ का कहा हुआ एक मार्ग यह हम कहते हैं, वह ही है। इसके अतिरिक्त सब तुम्हारे मार्ग झूठे-झूठे हैं। अब किसके साथ तुम्हारे चर्चा करनी है? ऐई! आहाहा! अरे, सुना नहीं। गृहीत मिथ्यादृष्टि अनन्त निगोद और नरक में जानेवाले हैं और मानते हैं कि हम धर्मी हैं। आहाहा! बापू! इसका फल कठोर है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, **एक बार आसन सैनकौ।** आहाहा! गजब है न! यहाँ तो आठ-आठ घण्टे तक सोवे। सवेरे उठे, फिर चाय ले आओ, मंजन करो, ढींकणा। सेठिया के जैसी पद्धतियाँ और मानो साधु। आहाहा! **मंजन न करै**—स्नान न करे। **केश लुंचै तन वस्त्र मुंचै।** वस्त्र न रखे। मुनि को वस्त्र होता नहीं। तीन काल में एक टुकड़ा भी (नहीं रखते)। एक वस्त्र का टुकड़ा भी रखकर मुनिपना माने, मनावे, निगोद में जानेवाले हैं। समझ में आया? मार्ग यह है। वीतराग के मुख से निकला पंथ यह है। बाकी सब वाडा बाँधकर बैठे हैं, वे उल्टे मार्ग में हैं। चन्दुभाई! गजब मार्ग भाई ऐसा! आहाहा! **तन वस्त्र मुंचै।** अर्थात् वस्त्र नहीं रखते वहाँ। आहाहा!

त्यागै दंतवन—दाँतुन करे नहीं। मुख सवेरे कुल्ला क्या कहलाता है कुल्ला क्या कहलाता है? कुल्ला करना। कुल्ला करना और घिसकर ऐसा करना। मुनि को तो, कहते हैं, ऐसी दशा अन्दर होती है कि जिसे **सुगंध स्वास वैनकौ**—दाँत और श्वास में सुगन्ध आवे। ऐसी गुणदशा प्रगट हुई है, वह पुण्य ऐसा हो जाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? दाँत धोवे नहीं, कुल्ला करे नहीं तो भी उसके श्वास में और दाँत में सुगन्ध आवे। आहाहा! ऐसा शरीर का मुख ऐसा हो जाये, कहते हैं। गजब, देखो न! देखो, इन्होंने डाला देखो। **दंतवन नहीं करते, तो भी** उसके साथ डाला है, **वचन और श्वास में सुगंध ही निकलती है।** आहाहा! ऐसी दशा को छठवें गुणस्थान की

मुनिदशा कहा जाता है, फिर स्थविरकल्पी हो या जिनकल्पी। ऐसा है बापू! उससे विपरीत माने तो उसे मिथ्यादृष्टि का पाप लगेगा। आहाहा!

ठाड़ौ करसे आहार... यह खड़े-खड़े आहार ले। आहाहा! शरीर में रोग आदि हो तो लोग पकड़कर खड़ा रखे...

मुमुक्षु : ऐसा चले?

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता है न अभी। मार्ग में चलता नहीं। आहाहा! **आहार लघुभुंजी—** थोड़ा आहार, एकबार आहार। समझ में आया? सवेरे चाय के पात्र फिरे और दोपहर में आहार और दो बजे फिर नाश्ता, बादाम-पिस्ता, शाम को खिंचड़ी और पापड़। आहाहा! भोगी है, वह योगी नहीं। भोगी है। आहाहा! धर्म की खबर नहीं होती और धर्मी बड़ा पद नाम धरावे। आहाहा! वापस एक बार आहार, हों! आहार भी एक बार थोड़ा।

ऐसे अट्ठाईस मूलगुणों के धारक जैन साधु होते हैं। वीतरागमार्ग के साधु तीनों काल में ऐसे होते हैं। उसमें कोई फेरफार माने, वह जैन के यति नहीं। वह जैन को माननेवाले नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब जरा यह २८ का वर्णन करते हैं। यह समुच्चय नाम दिये थे न! नाम दिये थे।

पाँच अणुव्रत और पाँच महाव्रत का स्वरूप। यह कहीं सम्प्रदाय की पद्धति की बात नहीं। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो आहाहा! पुकार... पुकार... कोई भी साधु एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर, 'हम साधु हैं' ऐसा माने, मनावे, वह निगोद के घर में जायेगा। उसे भगवान का घर नहीं मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! किस उपाश्रय में जाते थे तुम? दरियापरे?

मुमुक्षु : दरियापरे। नजदीक था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नजदीक थे अर्थात्। परन्तु सुन्दरवळा के थे?

मुमुक्षु : ऐसे सुन्दरवळा के।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ ठीक। ठीक। नजदीक हो वहाँ जाये।

★ ★ ★

काव्य - ८१

पंच अणुव्रत और पंच महाव्रत का स्वरूप (दोहा)

हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिगह साज।
किंचित त्यागी अनुव्रती, सब त्यागी मुनिराज।।८१।।

शब्दार्थ:–मृषा=झूठ। अदत्त=बिना दिया हुआ।

अर्थ:–हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पाँचों पापों के किंचित् त्यागी अणुव्रती श्रावक और सर्वथा त्यागी महाव्रती साधु होते हैं।।८१।।

काव्य-८१ पर प्रवचन

हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिगह साज।
किंचित त्यागी अनुव्रती, सब त्यागी मुनिराज॥८१॥

आत्मा के अनुभव सम्यग्दर्शनसहित निर्विकल्प आनन्द की भूमिका प्रगट हुई है, उसे (यह व्रत होते हैं)। अकेला यह अणुव्रत और व्रत धारे, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? जिसे आत्मा, जैसे हथेली में आंवला दिखाई दे, वैसे श्रद्धा में-ज्ञान में (आत्मा दिखाई दे)। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा जिसे अन्तर... आत्मा अर्थात् मानो कुछ नहीं अब सब यह... यह... यह सब। अरे, अरे! गजब है न! वर छोड़कर बारात जोड़ दी। पाँच सौ व्यक्ति और गहने और वस्त्र, ओहोहो! बाजा और गाजा। साथ में वर है या नहीं? कहे, भूल गये। आहाहा!

इसी प्रकार यह सब व्रत और यह तप, यह और यह, बड़ी शोभायात्रा निकालना, ... परन्तु आत्मा है या नहीं वहाँ कहीं? कहे, आत्मा की कुछ खबर नहीं। अब आत्मा का क्या काम है अपने?

मुमुक्षु : बाजा बजाये तो जगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाजा बजाये। बड़ी शोभायात्रा निकाले। ऐई! बैठे फलाणी बग्गियाँ शोभायात्रा में दो सौ, बग्गियाँ कहलाये, क्या कहलाये? घोड़ागाड़ी। सौ मोटरें

और यह बड़ी शोभायात्रा एक मील तक की थी। क्या परन्तु अब ? वहाँ कहाँ आत्मा था ? आहाहा! फजीता की शोभायात्रा है वह तो सब।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके ऊपर जो आरूढ हो, वह समकित की शोभायात्रा में चढ़ा कहलाये। इसके बिना सब थोथे थोथा है। जो शुभक्रिया करे और व्रत पालन करे तथा अपवास-बपवास करे। हाँ, मिथ्यात्वसहित राग की मन्दता हो तो पुण्य बाँधे, परन्तु मिथ्यात्वसहित, हों! वह बड़ा पाप मिथ्यात्व का। इन शुभ के परिणाम से धर्म होगा और धर्म करते हैं न, यह शुभ परिणाम करते-करते निश्चय धर्म होगा। ऐसा मिथ्यात्वभाव का बड़ा पुतला तो साथ में लगा है। उसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य बाँधे। समझ में आया ? यहाँ तो पाँच व्रत को एकदेश त्यागकर पाले, वह श्रावक और पाँचों पाप को सर्वथा त्यागे, वह महाव्रती साधु।

पाँच समिति का स्वरूप। २८ (मूलगुण) की व्याख्या है न!

★ ★ ★

काव्य - ८२

पंच समिति का स्वरूप (दोहा)

चलै निरखि भाखै उचित, भखै अदोष अहार।
लेइ निरखि डारै निरखि, समिति पंच परकार।।८२।।

अर्थः-जीवजन्तु की रक्षा के लिये देखकर चलना ईर्यासमिति है, हित मित प्रिय वचन बोलना भाषासमिति है, अन्तराय रहित निर्दोष आहार लेना एषणासमिति है, शरीर, पुस्तक, पींछी, कमण्डलु आदि को देख शोधकर उठाना-रखना आदाननिक्षेपण समिति है, त्रस जीव रहित प्रासुक भूमि पर मल-मूत्रादिक छोड़ना प्रतिष्ठापनसमिति है-ऐसी ये पाँच समिति हैं।।८२।।

काव्य-८२ पर प्रवचन

चलै निरखि भाखै उचित, भखै अदोष अहार।
लेइ निरखि डारै निरखि, समिति पंच परकार॥८२॥

जीव-जन्तु को निरखे। निरखकर चले, ऐसा कहते हैं। किसी जीव को दुःख न हो। रक्षा की व्याख्या तो—किसी जीव को दुःख न हो। ऐसा प्रमाद का भाव उसे नहीं होता, ऐसा कहते हैं। **भाखै उचित—**हित, मित, प्रिय वचन बोले। यह भाषासमिति। **भखै अदोष अहार—**अन्तरायरहित निर्दोष आहार ले। ऐषणा समिति। अन्तराय पड़े, ऐसा आहार न ले। अन्तरायरहित ४२, ४६, ४७ संगमदोषरहित, ऐसा ऐषणा समिति से हाथ में आहार ले। उन्हें—मुनि को पात्र नहीं होता। पात्र रखें, वे मुनि नहीं और मुनि हों, वे पात्र रखते नहीं। ऐसे तीन काल के यति-मुनि की पद्धति है। अरे, गजब!

लेइ निरखि डारै... आता है न। शरीर, पुस्तक, पिच्छी, कमण्डल बस इतना होता है। **देख शोधकर उठाना रखना आदाननिक्षेपण समिति।** चौथी। **त्रस जीव रहित प्रासुक भूमि पर मल-मूत्रादिक छोड़ना।** जीवरहित भूमि पर, अकेला ऐसा जिसका भाव ऐसा सहज होता है। हठ से नहीं। समझ में आया? अरेरे! क्या करें, हमारे पाँच समिति पालनी पड़ती है, भाई! ऐसा नहीं। आहाहा! वहाँ सहज का धन्धा है। अरे! मुनिपना तो नहीं, परन्तु मुनिपना किसे कहना, उसकी भी खबर नहीं होती। मुनि बड़े आचार्य, गणिवर्य के नाम धरावे। क्या हो? भाई! तुझे नुकसान है। तुझे अनादर करके कहा जाता है, ऐसा नहीं। वस्तु की स्थिति की मर्यादा से उल्लंघन हो गया है। ऐसी बात है, बापू! तू भगवान है। भाई! तेरी परिपूर्णता तो पड़ी ही है तुझमें। आहाहा! परन्तु पर्याय में तुझे खबर नहीं दशा की। और जहाँ-तहाँ मानकर कुगुरु को गुरु माने, कुशास्त्र को शास्त्र माने, कुसाधु को साधु माने। बड़ा मिथ्यात्व पाप है।

उसमें कहा है न कि अरेरे! काले नाग को छोड़े तो लोग प्रसन्न होते हैं कि ठीक छोड़ा, परन्तु कुगुरु को छोड़े तो लोग डर पाते हैं। अरे! इसे छोड़ दिया तुमने? मोक्षमार्गप्रकाशक में है न! अरेरे! दुनिया की पद्धति तो देखो, कहे। काला नाग छोड़े तब तो ठीक कहे, परन्तु उस काले नाग से (भी) कुगुरु तो महा पाप में निमित्त, उसे

छोड़े, उसे हम मानते नहीं। अरे! आहाहा! महाराज और साधु को नहीं मानना? अनन्त भव के बढ़ाने में निमित्त है वह तो। उसे साधु माने तो अनन्तभव बढ़े। उसे छोड़े तो लोग कहते हैं कि यह नहीं... नहीं.... नहीं। दुनिया की पद्धति से तो भगवान का मार्ग कोई अलग प्रकार का है। हसमुखभाई! गजब यह बात ऐसी है एक-एक बात। बात बात में बहुत अन्तर! विवाद करे इसमें तो। आहाहा! समिति पाँच प्रकार की देखी।

★ ★ ★

काव्य - ८३

छह आवश्यक (दोहा)

समता वंदन थुति करन, पड़कौना सज्झाव।
काउसग्ग मुद्रा धरन, षडावसिक ये भाव।।८३।।

शब्दार्थ:-समता=सामायिक करना। वंदन=चौबीस तीर्थंकरों वा गुरु आदि की वन्दना करना। पड़कौना (प्रतिक्रमण)=लगे हुए दोषों पर पश्चात्ताप करना। सज्झाव= स्वाध्याय। काउसग्ग (कायोत्सर्ग)=खड्गासन होकर ध्यान करना। षडावसिक=छह आवश्यक।

अर्थ:-सामायिक, वन्दना, स्तवन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग ये साधु के छह आवश्यक कर्म हैं।।८३।।

काव्य-८३ पर प्रवचन

छह आवश्यक, मुनि के छह आवश्यक होते हैं। **समता।** विकल्पवाली है, हों! २८ मूलगुण में यही है न वह। अन्तर समता तो प्रगट हुई होती है। शान्त... शान्त... शान्त। तीन कषाय के अभाव की समता तो होती है परन्तु जरा शाम-सवेरे विकल्प सामायिक करने का भाव उठता है, वह प्रयोग है जरा अन्दर। **वंदन।** है न? गुरु को वन्दन करना। **थुति करन**—भगवान की स्तुति करना। **पड़कौना** अर्थात् प्रतिक्रमण।

प्रतिक्रमण। **सज्झाव**—सज्झाय करना। **काउसग्ग मुद्रा धरन।** देखो, यहाँ आयी। है न? ध्यान करना। यह मुद्रा का अर्थ ऐसा किया। **षडावसिक ये भाव**—छह आवश्यक का ऐसा भाव, २८ मूलगुण के, निर्विकल्पदशा की भूमिका में ऐसे विकल्प की मर्यादा होती है। दूसरे उसे राग की तीव्रता होती नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग, भाई! बहुत अन्तर परन्तु यह। साधारण को तो ऐसा लगे यह। बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! तुझे खबर नहीं। सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर अनन्त हो गये। अभी लाखों केवली और तीर्थंकर विचरते हैं। अनन्त होंगे। वह यही मार्ग कहते आये हैं। बीच में सब यह गड़बड़ उठी। उल्टे रास्ते चले और मनाया कि सच्चा (मार्ग है)। समझ में आया? आहाहा! षट् आवश्यक भाव, लो।

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधुओं का स्वरूप।

★ ★ ★

काव्य - ८४

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधुओं का स्वरूप

(सवैया इकतीसा)

थविरकलपि जिनकलपि दुविधि मुनि,
दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहतु हैं।
दोऊ अठाईस मूलगुनके धरैया दोऊ,
सरव त्यागी ह्वै विरागता गहतु हैं।।
थविरकलपि ते जिनकै शिष्य साखा होइ,
बैठिकै सभामैं धर्मदेसना कहतु हैं।
एकाकी सहज जिनकलपि तपस्वी घोर,
उदैकी मरोरसौं परीसह सहतु हैं।।८४।।

अर्थः–स्थविरकल्पी और जिनकल्पी ऐसे दो प्रकार के जैन साधु होते हैं। दोनों वनवासी हैं, दोनों नग्न रहते हैं, दोनों अट्ठाईस मूलगुण के धारक होते हैं, दोनों सर्व

परिग्रह के त्यागी वैरागी होते हैं। परन्तु स्थविरकल्पी साधु शिष्य-समुदाय के साथ में रहते हैं, तथा सभा में बैठकर धर्मोपदेश देते और सुनते हैं, पर जिनकल्पी साधु शिष्य छोड़कर निर्भय अकेले विचरते हैं और महा तपश्चरण करते हैं, तथा कर्म के उदय से आई हुई बाईस परीषह सहते हैं।।८४।।

काव्य-८४ पर प्रवचन

थविरकलपि जिनकलपि दुविधि मुनि, दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहतु हैं। लो। एक बार वहाँ थे न यहाँ ८७। (संवत्) १९८६, ८६। भावनगर। वहाँ साधु आये थे वे एक दिगम्बर। कैसे मुनि कहलाते हैं? मुनिन्द्रसागर। यह हम वहाँ थे। हमारे वहाँ बड़ी सभा भरे। फिर कहा, भाई! यह साधु इनके आये हैं। चलो अपने व्याख्यान बन्द रखो। जाते हैं। गये थे। वह अब उन्होंने मक्खन लगाया कि यह स्थविरकल्पी साधु कहलाते हैं और हम जिनकल्पी कहलाते हैं। कहा, इसे कुछ खबर नहीं। मुनिन्द्रसागर थे। आहाहा!

क्या कहलाये नहीं भावनगर में वह यह दशाश्रीमाली की जाति? वाडी। अपने वहाँ व्याख्यान रखा था। वे वहाँ उतरे थे, वहाँ व्याख्यान था। दो प्रकार के साधु होते हैं। स्थविरकल्पी और जिनकल्पी। स्थविरकल्पी यह कहलाते हैं, ऐसा। अब, कहा, यह गप्प मारते हैं। स्थविरकल्पी नग्न साधु होते हैं। आनन्द में रहनेवाले होते हैं। अधिक साधुओं के बीच में रहे, इसका नाम स्थविरकल्पी। जिनकल्पी अकेले रहते हैं। वे भी दोनों (वनवासी)। है? **दोऊ वनवासी।** यह तो गाँव में पड़े रहे वर्षों के वर्ष और हम साधु हैं। भाई! प्रभु का मार्ग अलग है। यह तो दया का मार्ग है, भाई! आहाहा!

दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहतु हैं। स्थविरकल्पी को वस्त्र होते हैं और पात्र होते हैं और जिनकल्पी को वस्त्र-पात्र नहीं होते, ऐसा नहीं है। वीतराग के मार्ग के मुनि स्थविरकल्पी और जिनकल्पी सब नग्न और वनवास में रहनेवाले होते हैं। आहाहा! यहाँ तो वनवासी ही ठहराया है। ऐई!

मुमुक्षु : उपाश्रय में न रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाश्रय कैसा? गाँव में न रहे न! यहाँ तो तुम्हारे मकान चार-चार लाख के मकान और साधु, आचार्य। अरे, भाई! दुःख होगा प्रभु तुझे! भाई! इसका योगफल-परिणाम आयेगा। वह किसी के रोकने से रुकेगा नहीं, ऐसा कुछ। आहाहा!

देह छूटे, श्वास चले, यह रोग की क्रिया, जगत यहाँ खलबलाहट करे। वहाँ उल्टी श्रद्धावाले को कहाँ शरण वहाँ? वहाँ जाकर धारा था कि यह साधुपना नाम का है। अन्तर में जाने का अवसर तो इसे है नहीं। आहाहा! अरे! अभी कौन शरण? यह यों ही तीनों काल में कौन शरण? निरोग के समय भी शरण तो भगवान आत्मा है अन्दर। आहाहा! उसकी शरण ली नहीं और बाहर से मनाया। धर्म, समकित, श्रावक और व्रत। बापू! यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं कि तुझे वहाँ पोलमपोल चले। आहाहा!

तुमको हुआ था न रोग का रोग? हसमुखभाई को। हम वहाँ थे न। नहीं कहते थे कि यह मारता है और ऐसा होता है? भाई को रोग हुआ था। फिर गये थे प्रमोद में बाद में। वह तो शरीर की ऐसी स्थिति है, लो। आहाहा! यह तो अनन्त परमाणु के दुश्मनों के बीच में रहना इसे। अब इसे कैसे परिणमना, वह इसके स्वयं के आधीन है। दुश्मन का अर्थ विपरीत तत्त्व, ऐसा। यहाँ घर पता उसका कुछ नहीं, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! अरे, चैतन्य भगवान! कहते हैं, मुनि स्थविरकल्पी हो या जिनकल्पी हो, अपने आत्मा की शरण में स्थित हैं। आहाहा! भिक्षा (आहार) के लिये गाँव में आये, चले जाते हैं। और कोई व्यक्ति-व्यक्ति इकट्ठे हों और उपदेश देने का प्रसंग हो तो.... अपने कुछ लेना-देना नहीं। परद्रव्य के साथ मुझे क्या सम्बन्ध है? उसके परिणमन को वह परिणमता है, मुझे परिणम कर क्या करना है? आहाहा! ऐसी छठवें गुणस्थान की—मुनि की दशा होती है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९२, कार्तिक शुक्ल ९, गुरुवार, दिनांक २८-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ८४ से ८९

यह समयसार नाटक चलता है। ८४वाँ बोल चलता है। १४ गुणस्थान का अधिकार है। १४ गुणस्थान वह गुण की श्रेणी होती है। उसमें छठवाँ गुणस्थान मुनि का होता है। वह कैसा होता है, उसकी बात है। सम्यग्दर्शन की तो बात आ गयी। पहले धर्मी को अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द का अन्तर अनुभव होकर अन्तर में यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसी प्रतीति होना, वह धर्म की पहली सीढ़ी है। यहाँ से धर्म शुरु होता है। क्रियाकाण्ड, व्रत, नियम अकेला राग है, उससे धर्म शुरु नहीं होता।

धर्म तो अपना धर्मी ऐसा आत्मा अखण्ड आनन्द चैतन्यदल का अन्तर्मुख स्पर्श करके भान होकर प्रतीति होना कि यह आत्मा है, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म कहा जाता है। उससे आगे बढ़कर श्रावक होते हैं, सच्चे, हों! वाडा की बात यहाँ है नहीं। अन्दर में उसकी शान्ति बढ़ती है। स्वभाव के आश्रय से शान्ति अर्थात् अकषाय भाव होता है, उसे पंचम गुणस्थान श्रावक की दशा कहा जाता है। अब छठवें गुणस्थान की बात चलती है। छठवाँ गुणस्थान मुनि (का) तो अलौकिक होता है। धर्मी को मुनिपना कैसा है, ऐसा समझना तो पड़ेगा या नहीं? विपरीत को मानना, वह तो अपना दोष आता है उसमें। तो यथार्थ मुनिपना कैसा है, उसे उसको जानना चाहिए। तो कहते हैं। ८४वाँ बोल है।

थविरकलपि जिनकलपि दुविधि मुनि,
दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहतु हैं।
दोऊ अठाईस मूलगुनके धरैया दोऊ,
सरव त्यागी ह्वै विरागता गहतु हैं॥
थविरकलपि ते जिनकै शिष्य साखा होइ,
बैठिकै सभामैं धर्मदेसना कहतु हैं।
एकाकी सहज जिनकलपि तपस्वी घोर,
उदैकी मरोरसौं परीसह सहतु हैं॥८४॥

स्थविरकल्पी। मुनि होते हैं, वे नग्न ही होते हैं और वे तो वनवास में ही रहते थे। समझ में आया? मुनि गाँव में नहीं रहते। गाँव के समीप भी नहीं रहते। आहाहा! जिनकी वीतरागता इतनी अन्दर में बढ़ गयी हो कि वनवास में ही रहने की उनकी भावना होती है। तो स्थविरकल्पी, वे भी वनवासी। अन्तर कितना, वह कहेंगे। जिनकल्पी, वे भी वनवासी। आहाहा!

दोऊ नगन रहतु हैं। अकेले नग्न नहीं, अन्तर में जिसे आत्मा के आनन्द वीतरागभाव की वृद्धि हुई हो, उसे वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प भी नहीं होता। ऐसी दशा हो जाती है। ऐसी दशा को मुनिपना कहते हैं। तो कहते हैं कि **दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहतु हैं।** लो, पण्डितजी! मुनि तो वनवासी हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : शहरवासी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शहरवासी, गाँववासी नहीं। मार्ग तो ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

दोऊ अठाईस मूलगुनके धरैया.... स्थविरकल्पी सन्त हो या जिनकल्पी हो। वनवासी हो, नग्न हो, परन्तु २८ मूलगुण—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और उनके लिये भोजन बनाया हो तो कभी ले नहीं, प्राण जाये तो (भी ले नहीं)। समझ में आया? यह चौका बनाकर लेते हैं न, यह मुनिपने का मार्ग ही नहीं है। आहाहा! उसे मुनि मानते हैं, वह दृष्टि में मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? **अठाईस मूलगुनके धरैया....** व्यवहार की बात है न? विकल्प है ऐसा। छह आवश्यक का व्यवहार। छह आवश्यक—सामायिक, चउविसंथो, वन्दन आदि, पंच महाव्रत आदि, अदन्तधोवन, खड़े (खड़े) आहार, एक बार आहार आदि शुभ विकल्प धारे। ऐसा व्यवहारनय में तो कथन ऐसा ही आवे न? है तो आस्रव। समझ में आया?

मुमुक्षु : सवेरे की अपेक्षा अभी अलग मुनि आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : और सवेरे कैसे आये थे? सवेरे तो अकेले निश्चय की स्थिरतावाले लिये थे। यहाँ निश्चयसहित व्यवहार कैसा होता है, ऐसा लेते हैं। सुबह तो (आया कि) निश्चय सत्य, परम जिन योगीश्वर—जिसमें आत्मा का अन्तर तत्त्व में

बहुत गहरे-गहरे घुसकर शान्ति और आनन्द की जिनकी पर्याय में वृद्धि हुई है, ऐसे परम जिन योगीश्वर को मुनि कहा जाता है। परन्तु उनको व्यवहार कैसा होता है, वह यहाँ बताते हैं। समझ में आया? वह तो निश्चय आवश्यक का अधिकार था।

अपना भगवान वीतरागस्वरूपी चैतन्यदल का अन्तर में आश्रय लेकर वीतरागी दशा प्रगट हो, उसका नाम सच्चा मुनिपना और सच्चा समकिती इसे कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाह्य क्रियाकाण्ड का जो राग है, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! अपना सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव जैसा अन्तरआत्मा चैतन्य स्फटिक रत्न निर्मलानन्द देखा है, ऐसा अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प अर्थात् राग की मिश्रितदशा छोड़कर वीतरागी निर्विकल्पदशा प्रगट करना, वह तो पहला सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यह तो चौथे गुणस्थान में ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टि ऐसे होते हैं। यह तो मुनिपने की बात है। उसमें भी आगे बढ़कर वीतरागी पर्याय से भीगा हुआ आत्मा है। आहाहा! उसे अन्तर के आनन्द की वेदन दशा में व्यवहार कैसा है, उसकी बात चलती है। आहाहा! **अठाईस मूलगुनके धरैया....**

सर्व त्यागी। उसे बिल्कुल कोई वस्त्र का टुकड़ा नहीं। बाहर की कोई पुस्तक उसकी नहीं। राग के भी त्यागी। आहाहा! समझ में आया? **सरव त्यागी ह्वै विरागता गहतु हैं।** उदास... उदास... सारे जगत से उदास। विकल्प जो व्यवहाररत्नत्रय है, उससे भी उदास। आहाहा! **थविरकलपि ते जिनकै शिष्य साखा होइ।** अन्तर कितना है? स्थविरकल्पी को शिष्य होते हैं, **बैठिकै सभामैं धर्मदेसना कहतु हैं।** इतना अन्तर। जिनकल्पी जंगल में रहते हैं। शिष्य में धर्मदेशना शिष्य का समुदाय और बैठकर (उपदेश), ऐसा नहीं। महा वैरागी... वैरागी। है तो छठवाँ गुणस्थान दोनों ही का। परन्तु जिनकल्पी वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य। बिल्कुल पर की उपेक्षा। ऐसे जिनकल्पी वैरागी आत्मा के आनन्द में वेदन करनेवाले सच्चे मुनि जिनकल्पी, ऐसे होते हैं। स्थविरकल्पी आनन्द तो उनको है। परन्तु थोड़ा राग की मन्दता का भाव उन्हें है कि जिससे **शिष्य साखा होइ।** और बैठकर सभा में धर्मदेशना। यह राग की मन्दता है।

एकाकी सहज जिनकलपि... जिनकल्पी जंगल में अकेले रहते हैं। जिन जैसी

दशा जिनकी। **एकाकी सहज जिनकलपि तपस्वी घोर...** आनन्द में रहनेवाले। आहाहा! अपनी पर्याय अर्थात् वर्तमानदशा में उग्र आनन्द की बाढ़ आती है उन्हें। आहाहा! मुनिपना किसे कहते हैं, धर्म किसे (कहते हैं), लोगों को खबर नहीं। बाहर से मुँडा लिया और नग्न हो गये, हो गये मुनि। अरे, भाई! मुनि के तो दर्शन मिलना, वह महा कठिन है। समझ में आया? मुनिपना तो कठिन है परन्तु मुनिपना मिलना, वह कठिन है। समझ में आया?

एकाकी सहज जिनकलपि तपस्वी घोर,... निर्भय अकेले विचरते हैं। महा अंतर में... जैसे स्वर्ण गेरु से ओपता है, शोभता है; उसी प्रकार आनन्द का प्रभु आनन्द की डली—डली आत्मा है, वह शुद्धता से ऐसा शोभता है कि जैसे सोना गेरु से शोभता है। ऐसी अन्दर तपस्या आनन्द की, ऐसा घोर तपस्वी, **उदैकी मरोरसौं परीसह सहतु हैं।** कोई पूर्व का उदय ऐसे आये तो उसमें आनन्द... आनन्द से सहन करते हैं। आहाहा! जिसे गणधर का नमस्कार पहुँचे, उसे साधु कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन अलौकिक चीज़ है तो मुनिपना तो ऐसे ही अलौकिक चीज़ है।

कहते हैं कि कर्म के उदय से आये हुए बाईस परीषह सहते हैं, लो। फिर बाईस परीषह कहने हैं न। परीषह सहन अर्थात् शान्ति... शान्ति... शान्ति। अपना निजस्वरूप ही साधते हैं अकेले। समझ में आया? उसे मुनि कहते हैं। समझ में आया? श्वेताम्बर कहते हैं न कि वस्त्रसहित भी मुनि होते हैं और जिनकल्पी नग्न होते हैं। ऐसी बात है नहीं। जैनदर्शन वीतरागमार्ग में ऐसा नहीं है। अनादि तीर्थंकर परमात्मा जैनदर्शन में तो आत्मज्ञानी मुनि और वीतरागदशावाले नग्न वनवासी को मुनि कहा जाता है। वस्त्र का टुकड़ा भी रखे और मुनिपना माने, वह तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। समझ में आया? शान्तिभाई! आहाहा!

अकेला नग्नपना करे और अट्ठाईस मूलगुण राग आदि को पाले, वह भी मुनि नहीं। वह तो विकल्प से रहित अखण्ड आनन्द प्रभु आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा का अनुभव वेदन आनन्द की वीतरागीदशा हो, उसे यहाँ आचार्यदेव तीर्थंकर मुनिपना कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐसे मुनिपने बिना उसकी मुक्ति नहीं होगी।

ऐसी दशा बिना, हों! अकेले सम्यग्दर्शन से भी मुक्ति नहीं होगी। सम्यग्दर्शन है कारण, परन्तु बाद में धर्म—वीतरागीदशा अन्तर (में) प्रगट हो, वह चारित्र मुक्ति का कारण है। आहाहा!

वेदनीय कर्मजनित ग्यारह परीषह। बाईस परीषह की बात करेंगे। यह बनारसीदास। समयसार नाटक। है गृहस्थाश्रम में बनारसीदास, परन्तु आत्मज्ञानी थे। पहले शृंगारी थे, व्यभिचारी थे। बाद में सत् समागम में अपने स्वभाव का आश्रय लेकर आत्मज्ञान प्राप्त किया। बाद में यह ग्रन्थ बनाया। समयसार नाटक बाद में बनाया। समझ में आया? कोई कहे कि हमारे इस साधुपने का क्या काम है? भैया! साधु अर्थात् चारित्रवन्त। चारित्रवन्त अर्थात् संवर-निर्जरावन्त। तो संवर और निर्जरा का क्या स्वरूप है, उसे जाने बिना साधु को पहिचान कैसे सकते हैं? समझ में आया? संवर-निर्जरा नौ तत्त्व में तत्त्व है या नहीं? तो उसकी संवर-निर्जरा की दशा मुनि की कैसी होती है, ऐसी श्रद्धा बिना उसे सम्यग्दर्शन कैसे होगा? समझ में आया? आहाहा!

वेदनीय कर्मजनित ग्यारह परीषह। बाईस परीषह है न।

★ ★ ★

काव्य - ८५

वेदनीय कर्मजनित ग्यारह परीषह (सवैया इकतीसा)

ग्रीषममैं धूपथित सीतमैं अकंपचित,
भूखै धरैं धीर प्यासै नीर न चहतु हैं।
डंस मसकादिसौं न डरैं भूमि सैन करैं,
बध बंध विथामैं अडौल ह्वै रहतु हैं।।
चर्या दुख भरै तिन फाससौं न थरहरै,
मल दुरगंधकी गिलानी न गहतु हैं।
रोगनिकौ न करैं इलाज ऐसे मुनिराज,
वेदनीके उदै ये परीसह सहतु हैं।।८५।।

अर्थः–गर्मी के दिनों में धूप में खड़े रहते हैं, यह उष्ण परीषहजय है, शीत ऋतु में जाड़े से नहीं डरते, यह शीतपरीषहजय है, भूख लगे तब धीरज रखते हैं, यह भूखपरीषहजय है, प्यास से पानी नहीं चाहते यह तृषापरीषहजय है, डांस मच्छर का भय नहीं करते, यह दंसमशकपरीषह का जीतना है, धरती पर सोते हैं यह शय्यापरीषहजय है, मारने बाँधने के कष्ट में अचल रहते हैं, यह बंधपरीषहजय है, चलने का कष्ट सहते हैं, वह चर्यापरीषहजय है, तिनका काँटा लग जावे तो घबराते नहीं यह तृणस्पर्शपरीषह का जीतना है, मल और दुर्गंधित पदार्थों से ग्लानि नहीं करते यह मलपरीषहजय है, रोगजनित कष्ट सहते हैं, पर उसके निवारण का उपाय नहीं करते, यह रोगपरीषहजय है। इस प्रकार वेदनीयकर्म के उदयजनित ग्यारह परीषह मुनिराज सहते हैं।।८५।।

काव्य-८५ पर प्रवचन

ग्रीषममैं धूपथित सीतमैं अकंपचित,
भूखै धरैं धीर प्यासै नीर न चहतु हैं।
डंस मसकादिसौं न डरैं भूमि सैन करैं,
बध बंध विथामैं अडौल ह्वै रहतु हैं॥
चर्या दुख भरै तिन फाससौं न थरहरै,
मल दुरगंधकी गिलानी न गहतु हैं।
रोगनिकौ न करैं इलाज ऐसे मुनिराज,
वेदनीके उदै ये परीसह सहतु हैं॥८५॥

कवि है न। एक-एक शब्द ऐसे। **भूखै धरैं धीर प्यासै नीर... धीर-नीर।** उसमें। **थित** और **अकंपचित।** आहाहा! भाषा तो... अध्यात्मकवि हैं न। कवि ने सब शब्द-शब्द रचे हैं न।

आहाहा! **ग्रीषममैं धूपथित।** गर्मी के दिनों में धूप में खड़े रहते हैं। आहाहा! राजकुमार हो, मुनि हुए हों आत्मध्यान में मस्त, अपने आनन्द का स्वाद लेने में, अपने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेने में तल्लीन हैं, उन्हें जैन के मुनि कहते हैं। अन्य में तो

है नहीं। समझ में आया? अपने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिष्ट स्वाद लेने में स्वाद का रसिक हैं। धर्मी राग का रसिक नहीं। पुण्य के परिणाम का भी रसिक नहीं। आहाहा!

ऐसे साधु **ग्रीषममैं धूपथित.... गर्मी के दिनों में धूप में खड़े रहते हैं।** और अन्तर के आनन्द का उजाला प्रगट करते हैं। आहाहा! चारित्र चुस्त। समझ में आया? ऐसा चारित्र अभी किसे कहना, लोगों को यह सुनना मुश्किल पड़ता है। आहाहा! मात्र वस्त्र बदले और साधु हुए, वे नग्न। भाई! सम्यग्दर्शन की बात भी महादुर्लभ है तो साधुपने की तो बात क्या कहना? वह तो अलौकिक परमेश्वर पद है। उसका उसे पहिचान और ज्ञान तो बराबर होना चाहिए। शान्तिभाई!

सीतमैं अकंपचित। शीत ऋतु में जाड़े के दिन में, लो। जाड़े से नहीं डरते। चाहे जितनी हवा और सर्दी जाड़े के दिनों में हो, अपने आनन्द में रहते हैं। आहाहा! शीत का स्पर्श भी जिसे नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द के स्पर्श में शीत का स्पर्श नहीं। समझ में आया? क्या बड़ा प्रतिकूल शीत है आदि। बाद में दूसरे समय में उसे सहन करे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे सहन करना। पहले समय प्रतिकूलता आवे, पहले समय जरा दुःख लगे। दूसरे समय जानकर छोड़ना, उसका नाम परीषह।

मुमुक्षु : ....नयी पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परीषह की व्याख्या ही नहीं ऐसी। उस पर चर्चा हुई है। अब परीषह किसे कहना? कि प्रतिकूलता आने पर पहले ग्लानि हो जाये, यह परीषह। और उसे जीतना वह परीषहजय। अब किसे जीते? वस्तु की खबर नहीं।

मुमुक्षु : भारी आकुलता हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ आकुलता तो हो गयी। परीषहजय कहाँ रहा?

यहाँ तो प्रतिकूलता के संयोग के काल में अपने स्वभाव के आश्रय से आनन्द में रहना, उसका नाम परीषहजय कहा जाता है। समझ में आया? पहले खटक आ गयी अन्दर, बाद में दूसरे समय उसे जीतना, ऐसा नहीं। ऐसा है ही नहीं। पहले समय आ गया तो परीषह हो गया अन्दर। सहन तो हुआ नहीं। समझ में आया? आहा! जिस

काल में प्रतिकूलता का संयोग निमित्तरूप हो, उसी काल में आनन्द की दशा प्रगट होना, उसे परीषह जीता कहा जाता है।

पहले राग हुआ। अरेरे, यह राग नहीं। फिर दूसरे समय में राग को जीतना। पहले समय राग आया तो दूसरे समय चला जायेगा। न जीते तो भी चला जायेगा। परीषहजय की व्याख्या.....

मुमुक्षु : दूसरे समय पर्याय का नाश ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो होता है। पहली पर्याय तो गयी। अब किसे जीतना? आहाहा! सूक्ष्म बात है। थोड़ी चर्चा हुई थी, हों! किसी के साथ हुई थी, नहीं? फूलचन्द के साथ। फूलचन्दजी ऐसा कहते पहले कि पहले परीषह आवे, फिर ऐसा हो। बिल्कुल नहीं। परीषह का अर्थ।

(परीषहजय) का अर्थ, प्रतिकूलता का जो समय है, उसी समय शान्ति के—आनन्द के झलक के अनुभव में रहना, उसका नाम परीषहजय कहा जाता है। व्याख्या ही पूरी अलग है।

मुमुक्षु : होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही नहीं। विकल्प नहीं उठता। इतना अन्तर निर्विकल्प आनन्द और प्रतिकूलता के संयोग के समय तो वीर्य की स्फुरणा स्वभाव-सन्मुख उग्र होती है। आहाहा! इसका नाम परीषहजय। अथवा सम्यग्दर्शन तो है ही। अनुभव तो है कि मैं आत्मा आनन्द और ज्ञायक हूँ। वह परीषह की निमित्तता भी मुझमें नहीं और जो विकल्प उठते हैं, वह भी मुझमें नहीं। मैं तो अखण्डानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, मेरी चीज़ में तो परमात्मपद ही पड़ा है। आहाहा! ऐसी दृष्टि उपरान्त स्वरूप में रमणता की जमावट जमी है। आहाहा! उस समय प्रतिकूलता का लक्ष्य ही नहीं। अपने आश्रय से आनन्द की दशा का वेदन करना, उसका नाम परीषहजय कहा जाता है। अरे, अरे! व्याख्या में अन्तर। समझ में आया?

भूख लगे तो धीरज रखते हैं। शरीर में क्षुधा हो, वह तो ज्ञेय—जड़ की दशा है। आहाहा! क्षुधा मुझमें नहीं और क्षुधा में मैं नहीं। मैं तो अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु हूँ।

आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में धीरज रखते हैं धीरज। यह भूख परीषहजय है। प्यास में पानी नहीं चाहते हैं, लो। **प्यासै नीर न चहतु हैं।** ज्येष्ठ महीने की धूप हो, तृषा लगी हो। आत्मा के पिपासु, तृषा के परीषह में हार नहीं जाते। आत्मा के आनन्द की पिपासावाले उसमें घुस जाते हैं। समझ में आया? वे आत्मा का निर्विकल्प आनन्द पीते हैं। आहाहा!

एक हमारे यहाँ था। प्रौषध करे न प्रौषध। फिर प्यास बहुत लगे। धूप में बैठे। धूप में, धूप में। धूप में बोटाद में थे वे। प्रौषध समझे न प्रौषध?

मुमुक्षु : उपवास।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपवास। प्रौषध उपवास करे। थे सब अज्ञानी। वहाँ प्रौषध कब था? भान नहीं होता। परन्तु जब तृषा लगे, धूप में बैठे। क्या करते हो? पानी पिलाता हूँ प्रौषध को। ऐसे के ऐसे। भान नहीं होता अन्दर। आहाहा! अन्त में संथारा किया था संथारा। सम्बन्ध किया था सम्बन्ध—सगाई। फिर कन्या बहिनरूप से... और किया चौविहारा। रोटी और आम का रस खाकर आजीवन का रात्रिभोजन का त्याग। जहाँ आठ और नौ और दस उपवास हुए, वहाँ अग्नि... अग्नि। भान बिना हठ से करे। उपाश्रय में दर्शन करने आवे। डालकर क्या? रेकडी में डालकर। इतनी पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा।

आहार पानी करके, रस—रोटी खाकर चतुर्विध आहार त्याग संथारा आजीवन का। ऐसे हठग्राही, जिसे भान नहीं होता कि आत्मा क्या चीज़ है। वह तो हठीला क्रियाकाण्डी मिथ्यात्व का पोषक है। यह तो सहज प्रतिकूलता तृषा के काल में भी सहज आनन्द की पिपासावाला आनन्द को पीता है। आहाहा! समझ में आया? धर्म चीज़, बापू! लोगों ने मानी है ऐसी नहीं है। वीतराग धर्म, हों! बाकी दूसरा तो है कहाँ? सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की आज्ञा में जो धर्म आया। अलौकिक बात है।

प्यासै नीर न चहतु हैं। आहाहा! अपने पास आनन्द का खजाना पड़ा है। समकिती धर्मी के तो अपना खजाना आनन्द का पड़ा है। आनन्द के खजाने को खोलते हैं। उनके परीषह, परीषह होता नहीं। ऐसा कहते हैं, भाई! अरेरे! हमारे यह सहन

करना पड़े, हमें लोंच करना पड़े, हमारे यह करना पड़े। अरेरे! बापू! तू साधु नहीं। तुझे शान्ति और आनन्द की दशावाला किसे चारित्र कहते हैं, उसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

डंस मसकादिसौं न डरैं... लो। डांस और मच्छर आदि भय नहीं करे। बिच्छू और सर्प इकट्ठा आया उसमें। जंगल में हो, काला नाग ऐसे निकलता हो और आकर एकदम बटका भरे। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द। मुझे यह सर्प छूता ही नहीं। मैं हूँ, वहाँ सर्प का छूना होता ही नहीं। समझ में आया? ऐसे धर्मी आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के रसिया ऐसे सन्त अपने आनन्द को वेदते हैं। भय नहीं करते हैं। दंशमशकपरीषह का जीतना है, लो।

धरती पर सोते हैं। है न? **भूमि सैन करैं।** आहाहा! उन्हें कोई शैय्या-बैय्या नहीं होती कपड़े की। भूमिशयन करे। **मारने बांधने के कष्ट में अचल रहते हैं।** कोई शरीर को मारे, कोई काटे, आनन्द... आनन्द... आनन्द। उनकों तो अतीन्द्रिय आनन्द ही है, उनको प्रतिकूलता है ही नहीं। प्रतिकूलता कहना किसे? वह तो जगत की चीज़ ज्ञेय है। ज्ञेय में यह प्रतिकूल, यह अनुकूल—ऐसे भाग से राग-द्वेष ही करते हैं। वस्तु में ऐसा भाग है नहीं। आहाहा!

चलने का कष्ट, लो। अचल रहते हैं। वधपरीषहजय है। आहाहा! शरीर में छुरी द्वारा काटे। अतीन्द्रिय आनन्द में जहाँ लवलीन हैं। मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द में आरूढ़ हैं। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, ऐसे आत्मा में आरूढ़ होकर स्थिर हैं। उनकी वीतरागदशा को यहाँ चारित्र कहते हैं। उनको शान्ति... शान्ति... शान्ति। वध के समय भी शान्ति है, यह कहते हैं। चलने का कष्ट। राजकुमार है। नवदीक्षित हो। नीचे कंकर... काँटे। चले, कष्ट न गिने। आहाहा! शान्ति... शान्ति। उपशमरस में झूलते, जिन्हें गणधर भी नमस्कार करे। ऐसी चीज़ में जो रमते हैं, उन्हें परीषहजय सहज हो जाता है। चर्यापरीषहजय। तिनका, काँटा। तिनका इतना इतना। तृण... तृण। तृण—तिनका अर्थात् तृण। तिनका। तृण... तृण। बारीक तिनका होता है, तृण। **तिनका काँटा लग जावे तो घबराते नहीं।** घबराये क्या? आहाहा!

मल, दुर्गन्धित पदार्थ से ग्लानि नहीं करते हैं। **मल दुरगंधकी गिलानी न गहतु हैं।** शरीर में मैल हो, दुर्गन्ध हो, पसीना हो। स्नान तो होता नहीं। आहाहा! अदंतधोवन आदि परम प्रसिद्ध ऐसे गुण में रहते हैं। उन्हें दुर्गन्ध की ग्लानि नहीं होती। **रोगनिकौ न करैं....** क्या न करे? इलाज। शरीर में रोग आवे, उसका इलाज न करे। आहाहा! सनतकुमार मुनि, लो। चक्रवर्ती। आत्मा के आनन्द में झूलते मुनिपना हुआ अन्तर आनन्द से। शरीर में रोग आया। क्या? गलित कोढ़। कुष्ठ—कोढ़ आया। शान्ति... शान्ति... शान्ति। अकषायभाव। अनाकुल आनन्द की दशा में उसे गिनते नहीं, रोग का इलाज करते नहीं।

देव आये। रोग मिटा दूँ। क्या है? भैया! उदय है, कौन मिटा सके? उनको लब्धि थी। थूँक लगाया वहाँ मिट गया। ऐसा है। परन्तु जो उदय है, उसे क्या मिटाना? वह तो हो, हम हमारे आनन्द में हैं। आहाहा! गजब बात है न! श्वासरोग हो, दमरोग हो, कफ का रोग हो, शूल का रोग हो, आहाहा! बिच्छू का डंस हो। वे पट्टी नहीं लगाते हैं। अन्तर के आनन्द की लहर में बाहर के विकल्प भी उन्हें उठते नहीं। ऐसी दशा मुक्ति का कारण है। समझ में आया? **चारित्तं खलु धम्मो।** यह चारित्र, धर्म है। ऐसे मुनिराज। **रोगनिकौ न करैं इलाज ऐसे मुनिराज,...** ऐसा। इलाज के साथ राज डाला है।

वेदनीके उदै ये परीसह सहतु हैं। असाता के उदय में ऐसा संयोग हो। आहाहा! आनन्द का आहार उग्ररूप से लेते हैं, यह कहते हैं, समझ में आया? समकिती जीव वह भी आनन्द का ही भोजन करते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करते हैं समकिती। तो मुनि को तो उग्र अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन है। आहाहा! अरे, ऐसी बात! कहे, यह तो बहुत ऊँची बात करते हैं। उसका स्वरूप ही ऐसा है। ऊँचा कहो या नीचा कहो। समझ में आया? वीतराग मार्ग में चारित्र की दशा सन्तों की ऐसी होती है। उसमें फेरफार करे तो यह हो नहीं सकता। आहाहा!

चारित्रमोहजनित सात परीषह।

★ ★ ★

काव्य - ८६

चारित्रमोहजनित सात परीषह (कुण्डलिया)

ऐते संकट मुनि सहै, चारितमोह उदोत।
लज्जा संकुच दुख धरै, नगन दिगंबर होत।।
नगन दिगंबर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवै।
तिय सनमुख दृग रोकि, मान अपमान न बेवै।।
थिर ह्वै निरभै रहै, सहै कुवचन जग जेते।
भिच्छुकपद संग्रहै, लहै मुनि संकट ऐते।।८६।।

शब्दार्थ:–संकट=दु:ख। उदोत=उदय से। श्रोत=कान। दृग=नेत्र। बैवे (वेदै)=भोगे। कुवचन=गाली। मिच्छुक=याचना।

अर्थ:–चारित्रमोह के उदय से मुनिराज निम्नलिखित सात परीषह सहते हैं अर्थात् जीतते हैं।

(१) नग्न दिगम्बर रहने से लज्जा और संकोचजनित दु:ख सहते हैं, यह नग्नपरीषहजय है, (२) कर्ण आदि इन्द्रियों के विषयों का अनुराग नहीं करना सो अरतिपरीषहजय है। (३) स्त्रियों के हावभाव में मोहित नहीं होना, स्त्रीपरीषहजय है। (४) मान–अपमान की परवाह नहीं करते यह सत्कारपुरस्कारपरीषहजय है। (५) भय का निमित्त मिलने पर भी आसन ध्यान से नहीं हटना, सो निषद्यापरीषहजय है। (६) मूर्खों के कटु वचन सह लेना, आक्रोशपरीषहजय का जीतना है। (७) प्राण जावे तो भी आहारादिक के लिये दीनतारूप प्रवृत्ति नहीं करना, यह याचनापरीषहजय है। ये सात परीषह चारित्रमोह के उदय से होते हैं।।८६।।

काव्य-८६ पर प्रवचन

ऐते संकट मुनि सहै, चारितमोह उदोत।
लज्जा संकुच दुख धरै, नगन दिगंबर होत॥

नगन दिगंबर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवै।
तिय सनमुख दृग रोकि, मान अपमान न बेवै॥
थिर ह्वै निरभै रहै, सहै कुवचन जग जेते।
भिच्छुकपद संग्रहै, लहै मुनि संकट ऐते॥८६॥

नग्न दिगम्बर रहने से लज्जा और संकोचजनित दुःख सहते हैं, यह नग्नपरीषहजय है। आहाहा! नग्न दिगम्बर, आत्मा के आनन्द में रहनेवाले शरीर में दिगम्बर दशा सहज हो जाती है। लज्जा और संकोच दुःख सहते हैं। लज्जा आवे। अरेरे! मैं ऐसा राजकुमार और ऐसी नग्नदशा। उनको दुःख नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? संकोच। लज्जा और संकोचजनित दुःख। अरे, इसमें कैसे रहना? इतनी सभा में मनुष्य वृन्द में नग्नरूप से चलना, संकोच ऐसा दुःख नहीं होता। आहाहा!

कर्ण आदि इन्द्रियों के विषयों का अनुराग नहीं करना, सो अरतिपरीषहजय है। यह चारित्रमोह के निमित्त से होता है। पाँच इन्द्रियों के विषयों का अनुराग नहीं करना। कोई प्रशंसा करे, कोई निन्दा करे, उसमें राग और द्वेष नहीं करना। प्रशंसा करने से कोई मेरे गुण बढ़ नहीं जाते हैं और निन्दा करने से मेरी हानि होती नहीं। मेरी दशा मेरे पास है। आहाहा!

स्त्रियों के हावभाव में मोहित नहीं होना, स्त्रीपरीषहजय है। स्त्री की हावभाव की चेष्टायें देखकर मोहित नहीं होना। उस ओर का राग सावधानपने नहीं करना। स्वरूप की सावधानी छोड़ना नहीं। आहाहा! यद्यपि समकिती जीव स्वयं बाह्य की किसी भी अनुकूल चीज़ में उत्साहित वीर्य हो, ऐसा उसे नहीं हो सकता। धर्मी जीव चौथे गुणस्थान में अपने स्वरूप में आनन्द है, ऐसा जो अनुभव हुआ, तो पर में कुछ भी आनन्द है, ऐसा उल्लसित वीर्य होता नहीं। पर में कुछ भी सुख माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। आहाहा!

चक्रवर्ती छह खण्ड का राज। भरत को ९६ हजार स्त्रियाँ। सुखबुद्धि उड़ गयी है सबमें से। समझ में आया? आहाहा! १६-१६ हजार देव सेवा करे। बड़े बँगले अरबों रुपये के हों। अरे, मैं कहीं नहीं। मेरा सुख कहीं नहीं। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में। आहाहा! मेरा सुख का स्थान तो मैं आत्मा हूँ। मेरा सुख नहीं विकल्प में, नहीं शरीर में,

नहीं स्त्री में, नहीं इज्जत में, नहीं कीर्ति में। आहाहा! ऐसी दृष्टि जिसकी पलट गयी है, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि धर्मी पहली शुरुआतवाला कहा जाता है। आहाहा! कठिन भाई यह तो! समझ में आया? इन्द्राणी ऐसे अनुकूल हाव-भाव चेष्टा करे, शरीर की अनुकूलता देखकर, उसकी अधिकता शरीर की कोमलता और कोमल आदि देखकर हावभाव करे। अरेरे! यह शरीर मेरी चीज़ ही कहाँ है? और हावभाव करे कौन? यह चीज़ मुझे कहाँ है? आहाहा! अपना निजानन्द भगवान पर आरूढ़ होकर आनन्द को वेदते हैं। स्त्री के हावभाव में मोह नहीं करते। आहाहा!

मान-अपमान की परवाह नहीं करते। कोई मान दे, कुछ दरकार नहीं। अपमान करे तो भी दरकार नहीं। मेरा अपमान होता नहीं। मुझे तो वह जानते नहीं। तो किसका अपमान करे? मैं क्या हूँ और कहाँ हूँ, उसे जानते नहीं तो कहाँ मेरा मान करे? समझ में आया? मेरी चीज़ में क्या है और मैं क्या हूँ, ऐसी जिसे खबर नहीं, वह मान-अपमान करे, उसका दुःख उसे (-ज्ञानी को) होता नहीं। आहाहा! मान में अधिकपना नहीं मानते हैं और अपमान में तिरस्कार—ग्लानि नहीं होती है। आहाहा! बाहर से चारित्र लेना... सत्कार पुरस्कार, लो।

भय का निमित्त मिलने पर भी आसन ध्यान से नहीं हटना। बाघ, सिंह का संयोग होने पर भी अपने आनन्द की शैय्या में पड़ा है, उससे हटता नहीं। आहाहा! सुखशैय्या। भारी कठिन मार्ग, भाई! वीतराग मार्ग, बापू! यह तो सर्वज्ञ ने कहा हुआ पंथ। उसकी प्रतीति होना, वह भी अलौकिक बात है। तो चारित्र तो कहाँ बात रही? आहाहा! समझ में आया? अरे, ऐसा जन्म मिलने पर भी जो ऐसी चीज़ है, ऐसा जो अनुभव और दृष्टि न हुई, कुछ नहीं किया, धूल किया। आहाहा!

व्रत, नियम, पूजा, भक्ति लाख-करोड़ करे तो भी यह सब शुभभाव राग है, धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन काम जगत को। वीतरागमार्ग तीर्थंकर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने कहा, यह मार्ग पहिचान होकर अन्दर जँचना, अपूर्व बात है। अनन्त काल में कभी सुना नहीं, किया नहीं, करते नहीं, खबर नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, ऐसे मुनि भय का निमित्त मिलने पर भी आसन ध्यान से नहीं चलते, यह निषद्यापरीषहजय है।

मूर्खों के कटु वचन सह लेना। आक्रोश वचन। चल निकले ऐसे के ऐसे नग्न, ऐसा कोई कहे। हमारी बहिन—पुत्रियाँ यहाँ बैठी हैं और यह चल निकला है ऐसा। आक्रोश वचन। मूर्खों के वचनों (को) लक्ष्य न देकर शान्ति रखे। समझ में आया?

प्राण जावे तो भी आहारादिक के लिये दीनतारूप प्रवृत्ति नहीं करना। इतनी क्षुधा लगी हो, प्राण जाने का काल हो। अरे, कोई आहार दो, आहार। मर जाता है यह शरीर। उन्हें दीनता नहीं होती। वे तो बादशाह हैं। मुनि आत्मधर्मी सिंह है। सिंह... सिंह। वन का सिंह जैसे वन में निडर फिरता है, वैसे आत्मध्यानी धर्मात्मा आनन्द में रहनेवाले निडररूप से आनन्द में रहते हैं। समझ में आया? यह मुनिपना ऐसा है, उसकी पहिचान कराते हैं। जैसे-तैसे मान लेना कि यह मुनि है, अमुनि को मुनि मानना, मुनि को अमुनि मानना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। जैनदृष्टि से विरोध है। आहाहा! याचनापरीषह उसे कहते हैं। याचना नहीं। माँगने की वृत्ति। याचक... याचक। लाओ थोड़ा आहार। थोड़ा पानी। सुविधा करो। हमारे लिए चौका बनाओ। तुम्हें लाभ होगा। अरेरे! यह वह कहीं (मुनि)? मुनिमार्ग से अत्यन्त विरुद्ध है। यह सात परीषह चारित्रमोह से होते हैं, लो। चारित्रमोह के उदय से।

ज्ञानावरणीयजनित दो परीषह।

★ ★ ★

काव्य - ८७

ज्ञानावरणीयजनित दो परीषह (दोहा)

अलप ग्यान लघुता लखै, मति उतकरष विलोइ।
ज्ञानावरन उदोत मुनि, सहै परीषह दोइ।।८७।।

अर्थः-ज्ञानावरणीयजनित दो परीषह हैं। अल्पज्ञान होने से लोग छोटा गिनते हैं, इससे जो दुख होता है, उसे साधु सहते हैं, यह अज्ञानपरीषहजय है। ज्ञानी की विशालता होने पर गर्व नहीं करते, यह प्रज्ञापरीषहजय है। ऐसी ये दो परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जैन साधु सहते हैं।।८७।।

काव्य-८७ पर प्रवचन

अलप ग्यान लघुता लखै, मति उतकरष विलोइ।
ज्ञानावरन उदोत मुनि, सहै परीषह दोइ॥८७॥

मुनि हो, आत्मध्यानी हो और ज्ञान का विकास अल्प हो, समझ में आया? लोक छोटा गिने। अरे रे, इसे कुछ भान भी नहीं। छोटा गिने। ऐसा करे। चाहे क्षयोपशम कम हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। अपनी दृष्टि का अनुभव और स्थिरता के साथ सम्बन्ध है। समझ में आया? ज्ञान का क्षयोपशम अल्प हो, समझाने की भी शक्ति न हो और सभा में ऐसा लगे, यह तो कोई मूढ़ जैसा है। कहो, दुनिया बोले, उसमें क्या? और उसे सभा में ऐसे ५०-५० हजार लोग, ऐसे रंजन करने की शक्ति। अब वह तो बाहर की बात। उसमें आत्मा कहाँ आया? समझ में आया? पण्डितजी!

मुमुक्षु : यह कला न्यारी है महाराज।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कला न्यारी है। यह तो आत्मा के आनन्द की कला की बात है। समझाने में न आवे, ज्ञान का क्षयोपशम कम हो—अल्प हो। (परन्तु) अपना आत्मा पूर्णानन्द का भान—अनुभव है और स्वरूप में लीनता है। लघुता नहीं करते। लघु नहीं हैं। समझ में आया? आहाहा!

अल्पज्ञान होने से लोग छोटा गिनते हैं, इससे जो दुख होता है, उसे साधु सहते हैं। ज्ञान का क्षयोपशम कम—अल्प हो, इससे कहीं वह कुछ दोष नहीं। वह कुछ दोष नहीं। आहाहा! बारहवें गुणस्थान में भी अल्पज्ञान होता है, लो। आहाहा! मिथ्यादृष्टि अभव्य को विभंग अज्ञान होता है, उससे क्या? सात द्वीप, समुद्र देखता है, उससे क्या? अरे, पंचम गुणस्थान, चौथे गुणस्थान में अवधिज्ञान हो, बहुत देखते हैं अवधिज्ञान में। इससे अवधिज्ञान है तो गुणदशा बढ़ी है, ऐसा नहीं है। छठवीं भूमिका में मुनि को अवधिज्ञान न हो। इससे कोई हीन दशा है, ऐसा नहीं है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति। चारित्र की रमणता में भले ज्ञान अल्प हो, यह कोई लघु नहीं, बड़ा है। परमेश्वर पद में है। भारी कठिन! अरे, इतनी-इतनी साधना की। इतनी साधना की, परन्तु ज्ञान खिलता नहीं, बढ़ता नहीं। इसका खेद मुनि को नहीं होता। आहाहा!

हमें क्षयोपशम बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं। लिखा है ? भाई सोगानी (में आता है)। आता है न अपने प्रवचनसार में, नहीं आता ? ३४ गाथा। ज्ञान का विशेष क्षयोपशम हो, न हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका अनुभव और उसकी स्थिरता, बस हो गया साधु।

मुमुक्षु : क्षयोपशम नहीं चाहिए, आनन्द चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द का भोगना चाहिए। हमें तो सुख का स्वाद आना चाहिए। आहाहा! मार्ग कठिन!

सोगानी... सोगानी कैसे ? निहालचन्दभाई। वे अजमेर के थे न अजमेर। निहालचंद सोगानी। अभी दुकान वहाँ कलकत्ता। वे लिखते हैं, 'हमें क्षयोपशम की जरूरत नहीं।' आहाहा! 'हमें तो आत्मा के आनन्द के अनुभव की जरूरत है।' है ? विशेष धारकर कुछ कहना है दूसरे को। सुनाना है, ऐसी क्या चीज़, उसमें क्या है ? समझ में आया ? यहाँ धारणा भी उड़ा दी है। धारणा का बोझा कौन करे ? यह तो पर्याय में योग्यता है, ऐसी हो जाती है। ऐसी धारणा करूँ तो दूसरे को जवाब दे सकूँ, यह तो बड़ा (मिथ्यात्व)। अरेरे! यह तो विकल्प में... आहाहा!

मुनिराज छठवें गुणस्थान में विराजते हैं। गणधर जैसी जिनकी दशा है। उनका ज्ञान अल्प हो। गणधर बारह अंग और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करे। इन्हें अन्तर्मुहूर्त में अल्प पाँच समिति या तीन गुप्ति का अन्तर के भाव का ज्ञान हो, भाव का ज्ञान हों, लघुता नहीं मानते। हम भी अल्पकाल में केवलज्ञान लेंगे। समझ में आया ? अवधिज्ञानी हो, चौथे गुणस्थान में, परन्तु उसे चारित्र बिना केवलज्ञान नहीं होगा। आहाहा! आनन्द में रमे बिना कोई केवलज्ञान होता नहीं। बाहर का क्षयोपशम बहुत हो तो केवलज्ञान शीघ्र हो, ऐसा नहीं। कठिन मार्ग, भाई! ऐसा मार्ग गजब।

यहाँ तो दृष्टि और चारित्र दोनों का काम है, कहते हैं। ज्ञान तो स्व को अनुभव का होने पर ही छुटकारा है। आहाहा! ऐसे अल्पज्ञानी को लोग छोटा गिनते हैं। दुःख होता है, ऐसा नहीं। शान्ति रखे। यह अज्ञानपरीषह। ज्ञान की विशालता का गर्व नहीं। आहाहा! चौदह पूर्व का ज्ञान हो जाये। हो, उसका गर्व नहीं। समझ में आया ? ऐसे

विशेष क्षयोपशम में अभिमान नहीं, अल्प क्षयोपशम में दीनता नहीं। हमने इतनी पुस्तकें बनायीं। ढाई लाख पुस्तकें बनायीं, पाँच लाख बनायीं। धूल भी नहीं, सुन तो सही! आहाहा! जगत के साथ मिलान करना... मींढवणी क्या कहते हैं? मिलान करना। नहीं होता, भाई! यह तो आत्मा का मार्ग तो दूसरा है। आहाहा! प्रज्ञापरीषहजय। ऐसे दो परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होते हैं। अब दर्शनमोहनीयजनित एक और अन्तरायजनित एक परीषह।

★ ★ ★

काव्य - ८८

दर्शनमोहनीयजनित एक और अंतरायजनित एक परीषह (दोहा)

सहै अदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत।
रोकै उमग अलाभकी अंतरायके होत।।८८।।

अर्थः–दर्शनमोहनीय के उदय से सम्यग्दर्शन में कदाचित् दोष उपजे तो वे सावधान रहते हैं–चलायमान नहीं होते, यह दर्शनपरीषहजय है। अन्तरायकर्म के उदय से वांछित पदार्थ की प्राप्ति न हो, तो जैनमुनि खेदखिन्न नहीं होते, यह अलाभपरीषहजय है।।८८।।

काव्य-८८ पर प्रवचन

सहै अदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत।
रोकै उमग अलाभकी अंतरायके होत॥८८॥

दर्शनमोहनीय के उदय से सम्यग्दर्शन में कदाचित दोष उपजे तो वे सावधान रहते हैं—चलायमान नहीं होते। इन्द्रों के इन्द्रासन चलित हों परन्तु यह चलित नहीं होते। आहाहा! मेरी चीज़ आनन्दस्वरूप है, ऐसा रहे। ऐसा अन्दर में भान है। यह प्रतिकूलता परीषह आये दर्शन का, चलित नहीं। क्या हुआ तुझे? हमें समकित है और

तुम्हें चारित्र है। चारित्र है तो क्षयोपशम क्यों नहीं बढ़ता तेरा? समझ में आया? तुम तो कहते हो कि हमें तो गुणवृद्धि हुई है। तो क्षयोपशम क्यों नहीं बढ़ता? ऐसा यह दर्शन से चलित नहीं होता। समझ में आया? दर्शनपरीषह है।

अन्तरायकर्म के उदय से वांछित पदार्थ की प्राप्ति न हो। इच्छा अनुसार बाह्य पदार्थ न हो। पहले यथार्थ में तो समकिती को इच्छा ही नहीं होती। परन्तु अस्थिरता की इच्छा होती है, उसके अनुसार संयोग न हो, समता रखे। समझ में आया? **वांछित पदार्थ की प्राप्ति न हो, तो जैनमुनि खेदखिन्न नहीं होते, यह अलाभपरीषहजय है।** शिष्य का लाभ, पुस्तक का लाभ, क्षयोपशम का लाभ इत्यादि-इत्यादि।

ऐसे बाईस भाव। अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन प्रभु आत्मा को चारित्रवन्त कहते हैं। ऐसे चारित्रवन्त मुनि छठवें गुणस्थान में ऐसे परीषह को समभाव से सहते हैं, सहन करते हैं। फिर इसका स्पष्टीकरण।

★ ★ ★

काव्य - ८९

बाईस परीषहों का वर्णन (सवैया इकतीसा)

एकादस वेदनीकी, चारितमोहकी सात,
ग्यानावरनीकी दोइ, एक अंतरायकी।
दर्सनमोहकी एक, द्वाविंसति बाधा सबै,
केई मनसाकी, केई वाकी, केई कायकी।।
काहूकौ अलप काहूकौ बहुत उनीस तांई,
एक ही समैमैं उदै आवै असहायकी।
चर्या थित सज्जामांहि एक सीत उस्न मांहि,
एक दोइ होहिं तीन नांहि समुदायकी।।८९।।

शब्दार्थ:-मनसाकी=मन की। वाकी (वाक्यकी)=वचन की। काय=शरीर। सज्जा=शय्या। समुदाय=एक साथ।

अर्थः–वेदनीय की ग्यारह, चारित्रमोहनीय की सात, ज्ञानावरणी की दो, अन्तराय की एक और दर्शनमोहनीय की एक–ऐसी सब बाईस परीषह हैं। उनमें से कोई मनजनित, कोई वचनजनित और कोई कायजनित हैं। इन बाईस परीषहों में से एक समय में एक साधु को अधिक से अधिक उन्नीस तक परीषह उदय आती हैं। क्योंकि चर्या, आसन और शय्या इन तीन में से कोई एक और शीत उष्ण में से कोई एक, इस तरह पाँच में दो का उदय होता है, शेष तीन का उदय नहीं होता।।८९।।

काव्य-८९ पर प्रवचन

एकादस वेदनीकी, चारितमोहकी सात, ग्यानावरनीकी दोइ, एक अंतरायकी। इसका स्पष्टीकरण किया। **दर्सनमोहकी एक, द्वाविंसति बाधा सबै, केई मनसाकी,...** कोई मन का परीषह, कोई वाणी का, कोई काया का, ऐसा। **काहूकौ अलप काहूकौ बहुत....** किसी को एकाध परीषह और किसी को १९ (परीषह)। बाईस में से १९ तक एक साथ होते हैं। **एक ही समैमैं उदै आवै असहायकी।** कोई सहाय नहीं उसमें। आहाहा! **चर्या थित सज्जामांहि एक सीत उस्न मांहि,...** चर्या, आसन, शैय्या में से एक और शीत-उष्ण में से एक, इसलिए उन्नीस, ऐसा।

एक दोइ होहिं तीन नांहि समुदायकी। लो। एक हो शीत-उष्ण में कोई एक। **इस तरह पाँच में दो का उदय होता है, शेष तीन का उदय नहीं होता।** आहाहा! 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में, अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब, अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो, परम मित्र का मानो पाया योग जब।' ऐसी दशा धन्य अवतार! चारित्रवन्त का मोक्ष का मार्ग निर्मल हो गया, निर्मल हुआ। मोक्ष तो जिसकी हथेली में है। लिया या अभी लिया केवलज्ञान, ऐसी दशा चारित्रवन्त की होती है। ऐसे चारित्र को ऐसा परीषह हो तो समभाव से सहन होता है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९३, कार्तिक शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनांक २९-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ९० से ९४

चौदह गुणस्थान का वर्णन चलता है। अन्तिम अधिकार है न आखिर का। अधिकार तो अभी स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधु की तुलना करते हैं। जैनमार्ग में तीर्थंकर परमात्मा ने कहा हुआ जो साधुपंथ, वह कैसा होता है और किसे साधुपद होता है, किसे साधु कहना, उसका वर्णन है। साधु होने से पहले तो सम्यग्दर्शन होना चाहिए। सम्यग्दर्शन में आत्मा आनन्दस्वरूप का उसे भान हुआ, प्रतीति में आया हुआ आत्मा, उसे समकित होता है। अभी तो धर्म की पहली (दशा), फिर साधु तो कहीं रहे। वह तो कुछ दूसरी दशा। वर्तमान लोग मानते हैं, ऐसा वह पद है नहीं। समकित पद ऐसा है कि जो अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र भी इसने किया नहीं। ऐसा यह आत्मा केवली तीर्थंकर परमात्मा ने जो देखा, ऐसा यह आत्मा है अन्दर शुद्ध सच्चिदानन्द मूर्ति सिद्धस्वरूपी उसका स्वरूप है। उसे राग आदि दिखते हैं परन्तु वह उसकी चीज़ में नहीं। समझ में आया?

शरीर, वाणी, मन वह तो जड़ है, वह तो मिट्टी है। वह कहीं आत्मा नहीं। तथा अन्दर कर्म जो है आठ, सूक्ष्म रजकण धूल, वह कहीं आत्मा नहीं। वह तो मिट्टी अजीवतत्त्व, जगत के जड़तत्त्व हैं। उसमें जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम-क्रोध के भाव हों, वह तो आस्रवतत्त्व, विकारी तत्त्व है, मैल तत्त्व है। आहाहा! उससे भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु अत्यन्त शुद्ध आनन्द का धाम... लड़के कल गाते थे। आनन्द का धाम। वे लड़के नहीं आये थे साथ में एक उसके। यहाँ गाया था। चम्पक सेठ के साथ। उसके साथ तीन लड़के थे। उन्हें सब कल जाना था। तो ऐसा गाते थे। वहाँ गाते होंगे कुछ। एक तो आज मेरा गाया था, बहिन का गाया था। मांगलिक, उसमें पधारना, ऐसा गायन। वहाँ खिखाते होंगे। चम्पक सेठ थे। आहाहा!

भगवान आत्मा जिसमें अनन्त... अनन्त बेहद अपरिमित ज्ञान स्वभाव भरा है। जिसमें अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना है। ऐसा आत्मा उसने अनन्त काल में उसका भान किया नहीं। यह व्रत, नियम, अपवास, पूजा और भक्तियाँ कीं, वह सब

शुभराग है। अरे! यह तो जगत को भारी पड़ता है। पण्डितजी! सत्य तो सत्य ही है यह। परन्तु लोगों ने ऐसा नोंच डाला है सत् का स्वरूप कि सच्चे को खोटा ठहराया और खोटे को सच्चा ठहराया है। होता है, राग होता है। शुभराग और अशुभराग, परन्तु वह कुछ चीज़—वस्तु नहीं, आत्मा नहीं। आहाहा! परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने उसे आत्मा कहा।

'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता।' स्तुति में आता है न। प्रभु तुम जाणग रीति। हे सर्वज्ञ परमात्मा! सीमन्धर भगवान तो विराजते हैं महाविदेह में तीर्थंकरपद। महावीर आदि तो मुक्ति को पधारे। सिद्धपद को प्राप्त हुए। तो भगवान की स्तुति करते हुए भक्त ऐसा कहे, हे प्रभु! तुम्हारी जानने की पद्धति, 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता।' प्रभु! यह तीन काल-तीन लोक आप देखते हो। उसमें 'निजसत्ता से शुद्ध।' यह आत्मा का अस्तित्व निज सत्ता से अस्तित्व, उसे तो—आत्मा को तो आपने शुद्ध देखा है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव हों, वह भी राग है। वह आत्मा नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व है। आहाहा! लोगों को भारी कठिन काम। अभी तो उसमें ही सब मनवा दिया है और उससे यह सच्चा कहे, उन्हें खोटा ठहराया। आहाहा!

बापू! तू कहे ऐसा रहेगा? जैसा होगा वैसा रहेगा। तू सच्चे को खोटा ठहरावे, खोटा हो ऐसा नहीं और खोटे (को) सच्चा ठहराना चाहे तो वह सच्चा हो, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर निजसत्ता अपने अस्तित्वरूप चैतन्य का समुद्र है, आनन्द का सागर है, वीर्य की मूर्ति है, पुरुषार्थ की तो वह मूर्ति आत्मा है तू। अनन्त स्वच्छता और प्रभुता का प्रभु वह स्वयं पिण्ड है। आहाहा! ऐसे आत्मा के प्रति प्रथम अनुभव में उसे आना चाहिए। भाई! दूसरी क्रिया और व्रत, यह मुनिपना और वह बाद में, परन्तु यह पहले न हो, उसे कुछ मुनिपना आदि हो नहीं सकता। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु स्वयं पूर्णानन्द सिद्धस्वरूपी आत्मा का अन्तर में ज्ञान होकर प्रतीति होना और आत्मा में आनन्द का वेदन आना, इसका नाम तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? अभी धर्म की पहली छोटी में छोटी जघन्य जीवकाल है। तत्पश्चात् मुनि कैसे होते हैं, उसका यहाँ वर्णन है। आहाहा! लोगों को भारी कठिन लगे, हों! पुराना सुना हो और उसके साथ टकराये यह।

वहाँ दुकान में सुनते थे। यह एक दिगम्बर धर्म है। इसके साधु नग्न होते हैं न, ऐसा पहले सुनते थे। वहाँ तो नहीं कोई दिगम्बर धर्म है नहीं उसमें। श्वेताम्बर। पालेज में। वह तो एक पुराना हिन्दुस्तानी वह भानरहित। हमारे लोग तीसेक-पचासेक इकट्ठे हों, बैठे। उसमें सुनते थे कि दिगम्बर धर्म है और उनके साधु नग्न होते हैं। होगा कोई कहा और अपने को तो क्या। आहाहा! भाई! परमात्मा का मार्ग तो यह है, हों!

यह आत्मा के भान, ज्ञान, अनुभव होने के पश्चात् स्वरूप में जितनी लीनता हो कि जिसे आसक्ति की अस्थिरता टल जाये। सम्यग्दर्शन में अभी आसक्ति होती है, उसे राग की आसक्ति होती है। परन्तु जब वह आसक्ति टलकर आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की लहरें मारे अन्दर, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार उसकी दशा में आवे, तब उसे साधु कहा जाता है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? वीतरागमार्ग में ऐसा है। अन्यत्र तो कहीं है ही नहीं। ऐसा मार्ग वीतराग का है, भाई! वह यहाँ वर्णन करते हैं, देखो!

तब कहे, यह साधुपने में दो प्रकार है न! एक स्थविरकल्पी और एक जिनकल्पी। उसका क्या स्वरूप? और दो में तुलना क्या और अन्तर क्या? स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधु की तुलना। **नाना विधि संकट-दसा,** भाषा क्या समझावे? संकट दशा, लो। क्या करे? मुनि को संकट होते ही नहीं। मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द जो पूरी दुनिया से बेपरवाह हैं। महा वीतरागी स्वभाव में केलि करते होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ९०

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधु की तुलना (दोहा)

नाना विधि संकट-दसा, सहि साधै सिवपंथ।
थविरकल्पि जिनकल्पि धर, दोऊ सम निगरंथ।।९०।।

अर्थः-स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दोनों प्रकार के साधु एक से निर्ग्रन्थ होते हैं और अनेक प्रकार की परीषह जीतकर मोक्षमार्ग साधते हैं।।९०।।

काव्य-९० पर प्रवचन

नाना विधि संकट-दसा, सहि साधै सिवपंथ।
थविरकल्पि जिनकल्पि धर, दोऊ सम निगरंथ॥९०॥

कहते हैं, ओहो! जो साधु आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादिया। आहाहा! अज्ञानी दु:ख के स्वादिया हैं। समझ में आया? आहाहा! अनादि के अज्ञानी पुण्य-पाप के भाव करे, उनका वेदन करे, वे तो दु:ख के रसीले दु:ख के स्वादिया हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि आनन्द के रसीले हैं। धर्मी होने पर, पहली श्रेणी के धर्मी होने पर उन्हें अन्तर आनन्द का रसीला वह जीव होता है। अतीन्द्रिय आनन्द का रसीला होता है। और मुनि होने पर तो अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे उफान होता है। आहाहा! बापू! मुनिपना तो अलौकिक चीज़ है। यह ऐरे-गैरे सब मान बैठे हैं कि हम साधु हैं। भाई! ऐसा नहीं है, बापू! भगवान! तेरे मार्ग की पद्धति कोई अलग है। आहाहा!

कहते हैं, अनेक प्रकार की प्रतिकूलता हो, उसे धर्मी ज्ञेयरूप से जानकर आनन्द की लहर में ज्ञाता-दृष्टा धर्मी रहते हैं। **सहि साधै सिवपंथ।** यहाँ परीषह की बात है न भाई! परीषह सहन करना, वह पाँचवें और छठवें से शुरु होता है। चौथे में परीषह सहन करने का नहीं है। वहाँ अविरति है न! आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र के साथ सम्बन्ध रखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र के साथ परीषह का सम्बन्ध है। इसलिए चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को परीषह नहीं होता। वह दर्शनपरीषह का कहा, उसे तो जीतते हैं इसलिए। वास्तव में उसे परीषह है नहीं।

परन्तु पंचम गुणस्थान श्रावक का सच्चा गुणस्थान, श्रावक का अर्थात् यह वाडा में, उसे कहीं श्रावक नहीं कहते। यह तो भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर ने जिन्हें श्रावक कहा, वे तो पंचम गुणस्थान की आनन्ददशा में होते हैं। आहाहा! कठिन भाई यह! ऐसे गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी, ऐसा कहा जाये गृहस्थाश्रम में; वास्तव में तो समकिती अपने भाव में है। वह राग में भी नहीं और स्त्री,

पुत्र, परिवार और राग में भी नहीं। आहाहा! ऐसी गजब बात, बापू! समझ में आया?

जिसे पंचम गुणस्थानवाला श्रावक कहते हैं, उसे तो सर्वार्थसिद्धि के देव एकावतारी चरमशरीरी हैं, समकिती हैं, बाहर के जाननेवाले हैं, उन्हें जो शान्ति है, उनसे भी श्रावक को, जिन्हें सच्चे (श्रावक) कहते हैं, उन्हें आत्मा के आश्रय से बहुत शान्ति बढ़ गयी होती है। आहाहा! जिसे दो—अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानी कषाय का जिसमें नाश हुआ है। आहाहा! जिसे शान्तरस के स्वादिया (कहते हैं)। उन्हें शान्तरस बहुत प्रगट हुआ है देव की अपेक्षा भी। और मुनि की तो अलौकिक बात, बापू! वह तो साधु हुआ तो सिद्ध हुआ। जिसे अन्तर में.... **सहि** शब्द पड़ा है न! परीषह सहन करे, भाई!

मुमुक्षु : ऐसा जो ज्ञान करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए इसका अर्थ यह। उसे प्रतिकूलता होती है। परन्तु उसमें ज्ञाता-दृष्टा आनन्द में रहकर उसे सहता है। दुःख करके सहता है कि अरेरे! मुझे यह सहन करना पड़ता है, ऐसा नहीं। वह तो राग है। आहाहा!

बापू! वीतरागमार्ग कोई अलग प्रकार है, भाई! दुनिया के पास वीतरागमार्ग को दूसरे प्रकार से रखा गया है। जिस प्रकार से चाहिए, उस प्रकार से उसे रखा नहीं। क्या हो! पूरी दुनिया का बड़ा भाग अज्ञान के झूले में चढ़ा है। उसमें इस मार्ग को समझना। राग हो, गृहस्थाश्रम में समकिती हो, उसे राग भी हो, अशुभ राग भी हो, शुभराग भी हो, परन्तु उसे उसका आदर नहीं। उसका वह स्वामी नहीं। समझ में आया? और छठवें गुणस्थान में तो राग ही अल्प हो गया है। आहाहा! नियमसार में तो कहते हैं न, एक श्लोक में आता है न। अब ही आयेगा इसमें तो। भगवान और मुनिपने में कुछ अन्तर माने, वह जड़ जैसा है। आवश्यक (अधिकार) में आयेगा यह। आवश्यक (अधिकार) में है मेरे ख्याल से। कलश है एक। आहाहा!

साधु अर्थात् क्या, भाई! वह तो संसार के किनारे आ गया। अब वह मोक्ष में कदम रखना, इतनी देर है। आहाहा! ऐसा साधुपना कैसा, इसने सुना नहीं। आहाहा! कहते हैं, **सहि साधै सिवपंथ।** कोई प्रतिकूलता आवे, उसे मोक्ष का पंथ अर्थात् निर्मल को साधते हुए सहन अर्थात् वह तो ज्ञाता-दृष्टा रहता है। आहाहा! **थविरकल्पि जिनकल्पि**

धर, दोऊ सम निगरंथ। दोनों साधु बाहर में तो अत्यन्त नग्न दिगम्बर होते हैं। वीतरागमार्ग की तो यह पद्धति है। समझ में आया?

निगरंथ कहा न। आहाहा! **सम निगरंथ।** जैसा माता से जन्मा, वैसी जिसके शरीर की नग्नदशा, जिनकी वीतरागमुद्रा अतीन्द्रिय आनन्द की छाप जिसके ऊपर ऐसे शरीर में दिखाई दे। आहाहा! समझ में आया? वे दोनों, कहते हैं, समान निर्ग्रंथ होते हैं। स्थविरकल्पी अर्थात् वस्त्र-पात्र रखे और जिनकल्पी अर्थात् जंगल में रहे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : निषेद्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेद्य कहते हैं न, सब खबर है न। अरे, भगवान! बापू! भाई! यह वीतराग का मार्ग तो जो अनादि का है, वह है। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ९१

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधु की तुलना (दोहा)

जो मुनि संगतिमैं रहै, थविरकल्पि सो जान।
एकाकी जाकी दसा, सो जिनकल्पि बखान।।९१।।

अर्थः-जो साधु संघ में रहते हैं, वे स्थविरकल्पधारी हैं और जो एकलविहारी हैं, वे जिनकल्पधारी हैं।।९१।।

काव्य-९१ पर प्रवचन

जो मुनि संगतिमैं रहै, थविरकल्पि सो जान। इतना अन्तर। स्थविर मुनि नग्न दिगम्बर, परन्तु साधु के—नग्न मुनियों के साधर्मी में साथ में रहे, इतना अन्तर। सभा में उपदेश निकले। इच्छा बिना वाणी। आहाहा! ऐसा साधुपद, जिसे परमेश्वरपद कहते हैं 'णमो लोए सव्व साहूण' आहाहा! अरे, पद की इसे खबर भी नहीं होती। और उस पद

की चीज़ क्या है, उसका भान नहीं और उसे पद प्रगट हो जाये, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? अनादि से भ्रमणा में ऐसा का ऐसा भव गँवाया है। **जो मुनि संगतिमैं रहै, थविरकल्पि सो जान।** इतना अन्तर।

एकाकी जाकी दसा.... जंगल में अकेला मुनि आत्मध्यान में मस्त रहे। **सो जिनकल्पि बखान।** लो। शान्तिभाई! आहाहा! एकलविहारी जंगल में अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त, ऐसी अन्तर की वीतरागी मौज मनाता हुआ अकेला रहे, उसे नग्न दिगम्बर, उसे जिनकल्पी कहते हैं। बाकी नग्न दिगम्बर भी बहुत साधु सम्प्रदाय में इकट्ठा रहे, उसे स्थविरकल्पी कहते हैं। बाकी दोनों में कोई अन्तर है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कहे उसमें कि साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व, कुसाधु को साधु माने तो (मिथ्यात्व)। परन्तु कुसाधु और साधु किसे कहना, इसकी खबर नहीं। आहाहा! अपने सम्प्रदाय के बाहर के हों, वे सब कुसाधु। अपने सम्प्रदाय के साधु। अरे, भगवान! भाई! जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं। वह तो वस्तु का स्वरूप है। वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसकी वीतरागता शक्ति में से प्रगट करके लीनता में आनन्द में रहना, उसका नाम जैनधर्म और साधुपंथ है। आहाहा! **एकाकी जाकी दसा, सो जिनकल्पि बखान।**

★ ★ ★

काव्य - ९२

(चौपाई)

थविरकलपि धर कछुक सरागी।
जिनकलपी महान वैरागी।।
इति प्रमत्तगुनथानक धरनी।
पूरन भई जथारथ वरनी।।९२।।

अर्थः–स्थविरकल्पी साधु किंचित् सरागी होते हैं, और जिनकल्पी साधु अत्यन्त वैरागी होते हैं। यह छट्ठे गुणस्थान का यथार्थ स्वरूप वर्णन किया।।९२।।

काव्य-९२ पर प्रवचन

थविरकलपि धर कछुक सरागी।
जिनकलपी महान वैरागी॥
इति प्रमत्तगुनथानक धरनी।
पूरन भई जथारथ वरनी॥९२॥

इतना अन्तर है। स्थविरकल्पी मुनि, सहज राग होता है उपदेश करने का। वह भी राग है न! साधु-सन्त के बीच में रहना, वह भी एक राग-विकल्प राग है। आहाहा! इतना राग होता है। बाकी तो दिगम्बर मुनि, नग्नदशा, आनन्दकन्द में झूलते हुए। **जिनकलपी महान वैरागी।** हैं तो दोनों छठवें (में)। निर्ग्रन्थ, नग्न। परन्तु जरा राग का भाग आंशिक स्थविरकल्पी को होता है। जिनकल्पी महा वैरागी। समझ में आया? पर की सब उपेक्षा। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : कैसा राग?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपदेश, ज्येष्ठ के पास रहना, वह भी राग का अंश है न! प्रमत्त, उपदेश देना, वह भी राग का अंश है न। राग का अंश है। आहाहा! वीतरागमार्ग कहीं, बापू! एक राग का कण हो तो भी उसे दोष है, ऐसा बताता है। आहाहा! उपदेश देने में भी विकल्प की वृत्ति-राग है। वाणी तो वाणी के कारण से परन्तु वृत्ति उठती है कि यह समझाना, वह भी राग है। आहाहा! समझ में आया? उन जिनकल्पी को वह नहीं होता। महान वैरागी (होते हैं)। आहाहा! दूसरा आया था मन में भी, वह कहा जाये ऐसा नहीं। ऐसी बात है यह। आहाहा!

इति प्रमत्तगुनथानक धरनी।
पूरन भई जथारथ वरनी॥

आहाहा! कहते हैं कि जैनदर्शन का मुनिपना अर्थात् वीतरागमार्ग का (मुनिपना) ऐसा होता है। ऐसा स्वरूप अन्यत्र वीतराग परमेश्वर के सिवाय कहीं होता नहीं। और ऐसा ही मार्ग हो, उसे यहाँ साधु-सन्त कहते हैं। आहाहा! आनन्द के झूले में झूलते होते

हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का रसिक है। पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, उसे दोषरूप जानते हैं। आहाहा! भीखाभाई!

यहाँ तो अभी महाव्रत पाले, वह उसे—अज्ञानी को धर्म हो गया। पर के ऊपर लक्ष्य करके अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के भाव, वह सब राग विकल्प है। शुभराग है। वह चारित्र नहीं, वह धर्म नहीं। आहाहा! अरे! बात बदलना कठिन पड़े न! अब यह तो एकान्त है, एकान्त है, ऐसा कहे उल्टे, हों! कहे। बापू! भाई! तेरे पक्ष की बात क्या है, इसकी तुझे खबर नहीं। पर के पक्ष में चढ़कर बातें करनेवाला राग की बातें और राग में लाभ मनानेवाला, वह वीतराग की श्रद्धावाला नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

अब सप्तम गुणस्थान का वर्णन। जिसे छठवाँ गुणस्थान सच्चा हो, उसे क्षण में सातवाँ आये बिना रहता नहीं। शान्तिभाई! आहाहा! हमारे शान्तिभाई दिगम्बर साधु होनेवाले थे न! वैरागी व्यक्ति है। वैरागी व्यक्ति है न! इन्हें ख्याल में आ गया, भाई! मार्ग कोई दूसरा है। दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। माता-पिता हैं, स्त्री है, पुत्र है, पैसेवाले हैं। दिल्ली, दिल्ली न? दिल्ली के हैं। दीक्षा की आज्ञा दे दी है स्त्री ने। नग्न दिगम्बर मुनि होने के लिये। उसमें से मिल गये। ज्ञानचन्दजी या कोई मिला। कौन मिला? पुस्तक। यहाँ से समागम हुआ।

अरे, बापू! मुनिपना, बापू! यह मुनि... 'मनुष्य होना मुश्किल है, साधु कहाँ से होय।' अभी सम्यग्दर्शन होना, वह महामुश्किल है तो साधु कहाँ से हो? 'साधु हुआ तो सिद्ध हुआ।' वह तो अब परमात्मा हो गया। आहाहा! है न इसमें कुछ नहीं उस नियमसार में, नहीं? आवश्यक (अधिकार) में है न। पहले थोड़ा अन्तर किया, बाद में उसमें अन्तर निकाल डाला न! आवश्यक (अधिकार) में है न आवश्यक में। कितना? कितना आता है? आहाहा! आता है, देखो! श्लोक आता है। यह २५३। भाई! यह निमयसार में अपने २५३ कलश है, हों! अपने चलता है हिन्दी में। १४६ (गाथा के बाद) है।

'सर्वज्ञ वीतराग में इन स्ववश योगी में कभी भी कुछ भेद नहीं है, तथापि अरेरे! हम जड़ हैं कि उनमें भेद गिनते हैं।' अन्तर में निर्विकल्प आनन्द की दशायें जहाँ वीतरागपना प्रगट हुआ है, आहाहा! कहते हैं, सर्वज्ञ वीतराग में... ऐई, जेठाभाई! है न?

सर्वज्ञवीतरागस्य स्ववशस्यास्य योगिनः।
न कामपि भिदां क्वापि तां विद्मो हा जडा वयम्॥२५३॥

पण्डितजी! यह मुनिराज कहते हैं। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले सन्त जगत को कहते हैं। अरे, भाई! तुझे चारित्रवन्त गुरु की दशा कैसी होती है, यह तुझे खबर नहीं। आहाहा! कहते हैं कि सर्वज्ञ वीतराग में... पहले थोड़ा अन्तर है, यह आया कहीं। आ गया यह? थोड़ा-सा अन्तर है, यह आया है कहीं। जरा सा अन्तर है और यहाँ अन्तर निकाल दिया है। ऐसा है कहीं। यह अपने आ गया है। इसके पश्चात् २८८। पृष्ठ २८८ में लिखा है। इसमें लिखा है सही अब परन्तु... आ गया है लो। यह अपने अभी आयेगा २४३ (कलश) के उसमें। देखो, २४३ में है, हों!

'जो जीव अन्यवश है।' राग और पुण्य के आधीन हुआ है, 'वह मुनि वेशधारी हो तो भी संसारी है।' आहाहा! 'नित्य दुःख का भोगनेवाला है।' आनन्दप्रभु आत्मा के अन्तर में या निजनिधान में तो गया नहीं। निजनिधान भगवान आत्मा का, उसमें तो गया नहीं और क्रिया, दया, दान, व्रत के परिणाम में रुकता है, वह तो दुःख का भोगनेवाला है। आहाहा! भारी कठिन काम लगे, हों! लोगों को तो ऐसा लगे न! नये लोगों को तो अटपटा जैसा लगे और फिर यह वह कुछ क्या होगा ऐसा! ऐसा वह कोई नया मार्ग होगा यह? बापू! मार्ग तो वीतराग का यही है, भाई! समझ में आया?

कहते हैं, 'जो जीव स्ववश है।' अपने आनन्द के आधीन हुआ है। राग के विकल्प की आधीनता से छूट गया है। 'वह जीवन्मुक्त है।' वह इसमें ही है सब। परमावश्यक (निश्चय परमावश्यक अधिकार-नियमसार) १४३। (गाथा १४३, श्लोक २४३)। 'जिनेश्वर से किंचित् न्यून हैं।' सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा तीर्थंकरदेव केवली अरिहन्त से मुनि ही थोड़ा एक जरा न्यून है। ऐसा पहले कहा। यहाँ निकाल दिया।

सर्वज्ञ वीतराग में और इन स्ववश योगी में आनन्दस्वरूप प्रभु के आधीन हुए अन्तर स्वरूप ऐसा जो धर्मात्मा सन्त कहीं कभी भी दोनों में भेद नहीं, तथापि अरे रे! हम जड़ हैं कि उनमें भेद गिनते हैं। समझ में आया? चारित्र की जहाँ रमणता अन्तर आनन्द में जमी, उसमें और वीतराग में क्या अन्तर रहता है? आहाहा! एक कदम ऐसे जहाँ रखा स्थिर होने का सातिशय गुणस्थान होकर, अन्तर्मुहूर्त में केवली। आहाहा!

समझ में आया ? वह निजनिधान खुल गये वहाँ। आनन्द का धाम भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, आहाहा! कहते हैं, उनमें भेद गिनते हैं, वे जड़ हैं, लो! ऐसा स्वयं ने कहा। स्वयं मुनि हैं। परन्तु जरा इतनी विनयता बताते हैं। आहाहा!

धन्य जिसके अवतार! जिसने चारित्र की रमणता अन्दर से प्रगट की, आनन्द के झूले में झूलनेवाला छठवें गुणस्थान में और क्षण में उसे सातवाँ आवे। एक क्षण में अप्रमत्त आनन्द के धाम में निर्विकल्प हो जाये। आहाहा! दूसरे क्षण में फिर विकल्पवृत्ति उठे, कुछ समझाना या कहूँ या पढ़ूँ, वह भी राग है। वह छठवीं भूमिका में होता है। वहाँ से हटकर दूसरे क्षण में सातवाँ (गुणस्थान) अप्रमत्तदशा आती है। आहाहा! इसलिए अप्रमत्तदशा हुई तो हो गया। अब उसमें अन्तर किसलिए मानता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसको छठवें में रखकर जरा न्यूनता बताई। यहाँ सातवें में रखकर अन्तर निकाल दिया। आहाहा! अरे! यह चीज़ क्या है, उसे पहले समझण में तो लेना पड़ेगी या नहीं ? समझ में आया ?

★ ★ ★

काव्य - ९३

सप्तम गुणस्थान का वर्णन (चौपाई)

अब वरनौं सप्तम विसरामा।
अपरमत्त गुनथानक नामा।।
जहां प्रमाद क्रिया विधि नासै।
धरम ध्यान थिरता परगासै।।९३।।

अर्थः–अब स्थिरता के स्थान अप्रमत्तगुणस्थान का वर्णन करते हैं, जहाँ धर्मध्यान में चंचलता लानेवाली पंच प्रकार की प्रमाद–क्रिया नहीं है और मन धर्मध्यान में स्थिर होता है।।९३।।

काव्य-९३ पर प्रवचन

यहाँ कहते हैं, **अब वरनौं सप्तम विसरामा।** जिसे आत्मज्ञान का आत्मभान अनुभवसहित जिसे चारित्रदशा—स्वरूप में चरना, जमना, आनन्द का आहार लेना। आहाहा! मुनि तो नित्यानन्द भोजी, नित्य अतीन्द्रिय आनन्द का भोजी है। समझ में आया? आहाहा! जरा सा विकल्प आदि आवे, वह उसे खिर जाता है। अरे! उसकी दशा आत्मा के पंथ में चढ़नेवाला, शिवपंथ में चढ़नेवाला, उसका पंथ ऐसा है, कहते हैं। समझ में आया?

अब वरनौं सप्तम विसरामा। जहाँ धर्मध्यान में चंचलता लानेवाली पंच प्रकार की प्रमाद-क्रिया नहीं है। विश्राम अर्थात् स्थिरता के स्थान, लो। मुनि जिसे अप्रत्याख्यानी, अनन्तानुबन्धी और प्रत्याख्यानी तीन कषाय (चौकड़ी) तो नाश हो गये होते हैं। एक संज्वलन का चौथा कषाय जरा उदय हो व्यक्तरूप से, उसे छठवाँ गुणस्थान कहते हैं। वह भी व्यक्तपना हटकर दूसरे क्षण में आनन्द में आ जाये, यह उसे सातवाँ गुणस्थान कहते हैं। सच्चे मुनि को छठवाँ और सातवाँ अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार आता है। आहाहा! समझ में आया?

अकेला छठवाँ गुणस्थान रहे, ऐसा नहीं है। मुनि को छठवें गुणस्थान एक निद्रा भी एक पौन सेकेण्ड के अन्दर की निद्रा होती है, इतनी तो जिसे अप्रमत्तदशा अन्दर वीतरागी दशा प्रगट हुई है। उन्हें निद्रा सेकेण्ड की नहीं होती। यहाँ तो चार-चार, छह-छह घण्टे सोये और हम साधु हैं। आहाहा! बापू! यह मार्ग की पद्धतियाँ दूसरी हैं, भाई! आहाहा! बहुत विकल्पोंवाले को निद्रा बहुत होती है। भाई ने डाला है एक जगह, सोगानी ने। निद्रा, बहुत विकल्प करे, उसे निद्रा बहुत होती है। जिसे अल्प ही विकल्प आवे, उसे निद्रा बहुत ही कम होती है, (ऐसा कहा)। सिद्धान्त रूप से। समझ में आया? उसमें आता है। आता है। ... इसलिए। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **अपरमत्त गुनथानक नामा।** जिसे सातवीं भूमिका—सातवाँ गुणस्थान कहते हैं। उस मुनि को छठवीं भूमिका छूटकर तुरन्त सातवाँ आता है। एक दिन में हजारों बार अप्रमत्तदशा आती है और हजारों बार छठवाँ प्रमत्त होता है, उन्हें सच्चे सन्त

वीतरागमार्ग में कहा जाता है। बाकी सब द्रव्यलिंगी भी नहीं। आहाहा! ऐई, पण्डितजी! आहाहा! कठिन लगे मार्ग। स्वयं ने माना हो न आचार्य, उपाध्याय और आचार्य भगवन्त.... हे भगवान! बापू! आचार्य भगवान किसे कहते हैं? बापू!

भाई! जिनके अन्तर में तीन कषाय टलकर वीतरागता प्रगटी होती है, उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद तो (अप्रमत्त) के काल में होता है। परन्तु जब विकल्प हो तब वह प्रमत्त भूमिका कहलाती है। टलती है तब आत्मा में सावधान होकर स्थिर हैं। तो ध्याता-ध्यान और ध्येय तीन भेद भी जहाँ रहते नहीं, ऐसी दशा को मुनिपने की सप्तमदशा कहा जाता है। यह तो गुणस्थान का वर्णन है न! चौदह गुणस्थान का वर्णन है न! एक-एक गुणस्थान की दशा कैसी होती है, ऐसा उसे जानना चाहिए न! वस्तुरूप से दृष्टि में तो गुणस्थान भेद है ही नहीं। आहाहा!

अरे, ऐसा अनन्त काल गया कुछ तेरे सिर पर। बापू! नौवें ग्रैवेयक में जैन का दिगम्बर साधु आत्मा के आत्मज्ञान और अनुभव बिना ऐसा अनन्त बार दिगम्बर साधु हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' परन्तु आत्मज्ञान सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के भाव बिना उसे एक भी भव घटा नहीं। आहाहा! अरे, भाई! इसमें वाद-विवाद को प्रश्न कहाँ है? सहज आत्मस्वरूप ऐसा सहजात्मस्वरूप अनादि का अनन्त पड़ा है, उसका अनुभव करके स्थिर होना और अन्तर चारित्र अर्थात् स्वरूप के आनन्द में चरना, रमना, जमना—ऐसी दशा में विकल्प हो तो उसे छठवें गुणस्थान की प्रमत्तदशा कहते हैं। दूसरे क्षण में विकल्प टलकर विश्राम... कहा है न, विसरामा। वह विश्राम है। धूल में बाहर में विश्राम नहीं। वह विकल्प का राग छूटकर स्वरूप में विश्राम पाया। मुनि को तो आहार-पानी (लेते हुए), हिलते और चलते ऐसी अप्रमत्तदशा अनेक बार आ जाती है, सच्चे हों उन्हें। समझ में आया? आहाहा!

जहां प्रमाद क्रिया विधि नासै। कहते हैं कि वह विकल्प जो है उपदेश देने का या सुनने का या पढ़ने का, वह सब विकल्प है, राग है। वह क्रिया सातवें गुणस्थान में नहीं रहती। वहाँ तो ध्यान में मस्त, भले थोड़ा काल। समझ में आया? **जहाँ धर्मध्यान में चंचलता लानेवाली पंच प्रकार की प्रमाद-क्रिया नहीं है।** परन्तु कहा था न वहाँ पहले में आया था। पंच प्रमाद और नहीं थे? धर्मानुराग। धर्मानुराग, विकथावचन,

निद्रा, विषय, कषाय—पंच प्रमाद। ७९ नम्बर। आहाहा! परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा स्वरूप सभा में और इन्द्रों के मध्य में कहते थे, वह यह मुनिराज कहते हैं। समझ में आया?

जहां प्रमाद क्रिया विधि नासै। क्रिया और विधि। ऐसे पालना और ऐसे करना, ऐसा विकल्प प्रमाद है, कहते हैं। आहाहा! उपदेश देने का विकल्प, वह प्रमाद है। गजब है न बात! यह कहे, उपदेश देने से हमको धर्म होता है। दूसरे धर्म प्राप्त करें, उसका हमको लाभ मिलता है। धूल भी नहीं मिलता, सुन न। आहाहा! ९३। ९३ है न।

जहां प्रमाद क्रिया विधि नासै। यह पंच प्रकार की प्रमाद क्रिया, वहाँ होती नहीं, इसलिए वहाँ निद्रा भी होती नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहा था न पाँच विधि। धर्म राग नहीं होता, कथा नहीं होती, वचन, निद्रा, विषयकषाय का अंश जो था, वह भी वहाँ पर को देखने-जानने में विकल्प उठता है। आहाहा! ऐसा उसे प्रगट किये बिना कभी मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! अभी तो सम्यग्दर्शन ही अपूर्व चीज़ है, उसे प्रगट हुए बिना, इसके संसार का अभाव नहीं होता और यह प्रगट हुए बिना इसे मुक्ति नजदीक में नहीं आती। चारित्र बिना मुक्ति नहीं। परन्तु चारित्र कैसा? यह। समझ में आया? आहाहा!

अब स्थिरता के स्थान अप्रमत्तगुणस्थान का वर्णन करते हैं। जहाँ धर्मध्यान में चंचलता लानेवाली.... स्वरूप में स्थिरता में चंचलता लानेवाली **प्रमाद क्रिया नहीं है। मन धर्मध्यान में स्थिर होता है।** आनन्दस्वरूप में अभेद होकर स्थिर होता है। जिसमें यह आत्मा द्रव्य है और आनन्दगुण है और पर्याय में स्वाद है न—ऐसे भेद भी जहाँ विकल्प रहता नहीं। आहाहा! बहुत ऊँची बातें भाई ऐसी!

वह तो ऐसा कहे, भाई! भक्ति करना, पूजा करना। जाओ। पाँच लाख खर्च करो, मन्दिर बनाओ और धर्म होगा। यहाँ कहे, धूल भी नहीं होगा। सुन न! तेरे पाँच लाख तेरे कहाँ? वह तो जड़ है। मन्दिर बनावे तो कल्याण हो जाये। यहाँ कहे, तीन काल में नहीं होता। मन्दिर तो परवस्तु है। और उसका भाव हो कदाचित् तो वह शुभराग है और शुभराग है, वह तो पुण्य है, बन्धन का कारण है। आहाहा! कठिन काम, भाई! वाडा में तो रहने न दे यदि ऐसा कहने जाये तो निकालो बाहर, कहे। आहाहा! भाई! बापू! तेरे

हित की बात है भाई! सत् की पद्धति और सत् का पंथ तो ऐसा है, हों! उसमें वाद-विवाद को स्थान नहीं होता। 'सद्गुरु कहे सहज का धंधा, वाद-विवाद करे सो अंधा।' आहाहा! सहजात्म भगवान आत्मा का जहाँ भान और उसमें स्थिरता, उस सहज दशा में वाद-विवाद कहाँ? अब ९४।

★ ★ ★

काव्य - ९४

(दोहा)

प्रथम करन चारित्रकौ, जासु अंत पद होइ।
जहां अहार विहार नहिं, अपरमत्त है सोइ।।९४।।

अर्थ:-जिस गुणस्थान के अन्त तक चारित्रमोह के उपशम व क्षय का कारण अध:प्रवृत्तिकरण चारित्र रहता है और आहार विहार नहीं रहता, वह अप्रमत्तगुणस्थान है।

विशेष:-सातवें गुणस्थान के दो भेद हैं-पहला स्वस्थान और दूसरा सातिशय, सो जबतक छठ्ठे से सातवें और सातवें से छठ्ठे में अनेक बार चढ़ना-पड़ना रहता है, तबतक स्वस्थान गुणस्थान रहता है, और सातिशय गुणस्थान में अध:करण के परिणाम रहते हैं, वहाँ आहार विहार नहीं है।।९४।।

काव्य-९४ पर प्रवचन

प्रथम करन चारित्रकौ, जासु अंत पद होइ।
जहां अहार विहार नहिं, अपरमत्त है सोइ॥९४॥

जिस गुणस्थान में अन्तर चारित्रमोह का उपशम और क्षय का कारण अध:प्रवृत्तिकरण चारित्र। तीन बोल है न, अध:प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। अध:प्रवृत्तिकरण यहाँ शुरु होता है। सातिशय अप्रमत्तदशा में। अध:प्रवर्त। चारित्र का प्रकार। उस समकितपने के तीन बोल हैं, वे अलग। यह चारित्र के हैं।

चारित्रमोह के उपशम—क्षय का कारण चारित्र। आहार-विहार नहीं रहता। आहाहा! आहार-विहार का तो विकल्प है। वह अप्रमत्तदशा होने में वह विकल्प रहता नहीं। आहाहा! यह तो मुनि तो ऐसे जंगल में चलते हों, तथापि वहाँ अप्रमत्तदशा उन्हें चलते-चलते अन्दर में हो जाती है। आनन्द की लहर। उन्हें आहार और विहार का विकल्प होता नहीं। वहाँ आहार-विहार रुक जाते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुनि तो आहार हाथ में ले। सच्चे मुनि का स्वरूप तो यह है। पात्र-बात्र रखे, वे कहीं मुनि नहीं। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन पड़े, हों! वस्त्र और पात्र रखे और मुनि मनावे तो वीतराग तो कहते हैं कि वह निगोद के पंथ में है। आहाहा! सत् का यह स्वरूप है। भगवान! आहाहा! भाई! तेरे सत् का पंथ तो ऐसा है, नाथ! तुझे खबर नहीं और तू उसका अनादर कर बैठता है। यह ऐसा होगा? यह ऐसा होगा?

कहते हैं, उस सातवें गुणस्थान मुनि की दशा जहाँ अनुभवसहित की चारित्रदशा हुई और विकल्प है, वह छूट गया क्षण में। आहार-विहार नहीं। आहाहा! सप्तम गुणस्थान में आहार का विकल्प नहीं। आहार लूँ। निर्दोष आहार, उनके लिए बनाया हुआ नहीं। उनके लिये बिकता हुआ लेकर लेना, वह तो मुनिपने का व्यवहार भी नहीं। वह तो भ्रष्ट है। व्यवहार से भ्रष्ट और निश्चय से भ्रष्ट है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा गजब!

कहते हैं, यहाँ तो आत्मा के आनन्द की लहर में अन्दर जाने पर, क्षण में अन्दर जाने पर उन्हें आहार और विहार होता नहीं। तब उन्हें आहार तो ऐसा हो, लेते हों ऐसे। परन्तु वह विकल्प छूटकर अन्दर ध्यान में होते हैं, तब (आहार-विहार होता नहीं)। आहाहा! समझ में आया? विहार भी होता नहीं। चलना, ऐसा नहीं होता वहाँ। गजब मार्ग भाई ऐसा! तो जहाँ आहार और विकार सातवें में नहीं होता, उन केवली को आहार हो, यह बात अत्यन्त विरुद्ध है। समझ में आया? और केवली दूसरे को उपदेश देने के लिये विहार करे, होता नहीं। भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

अहार विहार नहीं। मुनि केवलज्ञान दशा को आहार कैसा? उन्हें क्षुधा कैसी? अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण दशा के भाव जहाँ प्रगट हुए, केवलज्ञानी परमात्मा अर्थात् अरिहन्त को आहार क्या, पानी क्या, क्षुधा क्या, तृषा क्या? भाई! ऐसा नहीं होता। यह

सब विकृत स्वरूप कर डाला है। समझ में आया? वीतरागमार्ग की पद्धति का यह पंथ नहीं। आहाहा! जमुभाई! ऐसा है सब। भारी कठिन लगे, भाई! क्या नाम? बाबूभाई! ऐसा मार्ग है, बापू! इसका प्रौषध में सब मान गये हों न, इसलिए जरा कठिन लगे। कहाँ गये दामोदरभाई, नहीं? दामोदरभाई के भानेज होते हैं न?

मुमुक्षु : जयाबेन के भतीजे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो खबर है न। पहले आये थे न। उनसे कहा था मैंने। मार्ग तो ऐसा है, बापू! तीन काल में सत्य यह है। बाकी इससे कुछ फेरफार—विरोध, वह सत्य मार्ग नहीं। आज मानो, कल मानो, बाद में मानो। यह माने उसका छुटकारा है। जेठभाई!

अहार विहार नहीं। आहाहा! तो भी केवली वन्दन करे दूसरे को, ऐसा होगा?

मुमुक्षु : वंद्य-वन्दक भाव नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। वन्द्य-वन्दक भाव, वह छठवें गुणस्थान तक होता है, विकल्प है तब। यह अप्रमत्त में आहार-विहार नहीं और उसे अप्रमत्त में—दूसरे को वन्दन करूँ और वन्दन करनेयोग्य है और मैं वन्दन करनेवाला हूँ, ऐसा अप्रमत्तदशा में होता नहीं। एक क्षण अन्दर अप्रमत्तदशा छठवें से सातवें में तुरन्त आवे, उसे सन्त कहते हैं, उसे वीतरागी मार्ग के साधु कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : केवली को तो प्रश्न ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अप्रमत्त में आहार-विहार, वन्द्य-वन्दक नहीं।

यह लड़के ने प्रश्न किया था। कहा था न। परेश। परेश है न लड़का। जामनगर। जयसुखभाई है न वकील जामनगर में एक। वरळिया के किस गाँव के? वेरथिया। वेरथिया के हैं न जयसुखभाई वकील। आते हैं। अभी रह गये पाँच-छह दिन। उसके भाई त्रम्बकभाई। उनके भाई का पुत्र है न परेश। परेश है लड़का। नाम है। अभी तो यह पन्द्रह वर्ष हुए। आठ वर्ष पहले प्रश्न किया था जामनगर में। महाराज! आप आत्मा देखो, आत्मा देखो, (ऐसा) कहते हो तो कहाँ देखना हमारे? ऐसे देखें तो यह दिखता है, आँखें बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है।

मुमुक्षु : कितनी हिम्मत बतायी उसने।

पूज्य गुरुदेवश्री : सात वर्ष की उम्र तब, हों! अब तो यह पन्द्रह हुए। आठ वर्ष पहले की बात है।

आत्मा अन्दर भगवान स्वरूप चिदानन्द प्रभु है। उसे पहिचानो, देखो, देखो। कहाँ देखना हमारे? ऐसे बाहर से तो यह सब दिखता है। आँखें बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है। शान्तिभाई! ऐसा प्रश्न किया था। भाई! अन्धेरा कौन देखता है? कहा। यह अन्धेरा है, यह जानता कौन है? यह जाननेवाला, वह आत्मा है। यह जाननेवाला उस अन्धेरेरूप है नहीं। बालक को तो क्या बेचारे को....!

वह यह प्रश्न अभी किया। १९ गाथा। १९ न? कि यह छद्मस्थ को केवली विनय करे, यह कैसे होगा? महाराज! 'आत्मसिद्धि' में है न। 'गुरु रहे छद्मस्थ पण विनय करे भगवान। ऐसा मार्ग विनय का भासित श्री वीतराग।' ऐसा होता नहीं। समझ में आया? वहाँ अप्रमत्तदशा... मुनि को छद्मस्थदशा में भी जहाँ वन्द्य-वन्दक भाव होता नहीं। वहाँ आहार और विहार भी होते नहीं, आहाहा!

मुमुक्षु : अरिहन्त भगवान को विहार तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विहार करने का विकल्प कहाँ है? वह तो देह की क्रिया है। वह तो उदय के कारण से है। उनके प्रयत्न से नहीं। यह तो विहार करना और ऐसा विकल्प, ऐसा। आहार लूँ और ऐसा विकल्प-राग अप्रमत्त में होता नहीं। वह अप्रमत्त गुणस्थान।

सातवें गुणस्थान के दो भेद हैं। अप्रमत्तदशा। **पहला स्वस्थान और दूसरा सातिशय।** सब सूक्ष्म बातें हैं। **सो जब तक छठ्ठे से सातवें और सातवें से छठ्ठे में अनेक बार चढ़ना-पड़ना रहता है, तब तक स्वस्थान गुणस्थान रहता है।** क्या कहते हैं? अन्तर आनन्द की लहर में चढ़ते हुए और वापस विकल्प आवे और नीचे उतरे छठवें में, फिर चढ़े और सातवाँ आवे, फिर सातवें से छठवें से आवे, यह चढ़ते-उतरते की दशावाले को स्वस्थान गुणस्थान कहते हैं। यह अभी अपना स्थान छोड़कर आठवें में नहीं जाता। अरे! समझ में आया?

छठवें गुणस्थान में प्रमत्तदशा में हो, तब सातवें में वापस अप्रमत्त होता है। और अप्रमत्त में से प्रमत्त आवे, ऐसा मुनि को हजारों बार अन्तर्मुहूर्त में भी आवे। मोक्ष जाने में अन्तर्मुहूर्त हो, केवल (ज्ञान) पाकर तुरन्त, उसके पहले भी छद्मस्थ का अन्तर्मुहूर्त हो तो उसे छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान हजारों बार आता है, ऐसा पाठ है धवल में। वह स्वस्थान। छठवें-सातवें में, छठवें-सातवें में अन्तर्मुहूर्त में।

सातिशय गुणस्थान में अधःकरण के परिणाम रहते हैं। अर्थात् सातवाँ गुणस्थान सातिशय अर्थात् एकदम आत्मा में जाये। वापस आवे नहीं। ऐसी भूमिका को सातिशय अप्रमत्तदशा कहते हैं। अप्रमत्त भी अतिशयवाली अर्थात् आठवें में जाये ऐसी, ऐसा। आहाहा! अन्दर ध्यान में गहरा उतर जाये। क्षपकश्रेणी। **वहाँ आहार विहार नहीं है,...** लो। **सातिशय गुणस्थान में अधःकरण के परिणाम रहते हैं।** तीन चारित्र के परिणाम हैं न—अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। यह सातवीं भूमिका की दशा का वर्णन भगवान ने जैसा देखा है, वैसा कहा। समझ में आया? आठवें गुणस्थान का वर्णन कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९४, कार्तिक शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक ३०-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ९५ से १०७

यह समयसार नाटक चलता है। चौदह गुणस्थान का अधिकार। जैसे मंजिल में चढ़ने में चौदह सौपान होते हैं सीढ़ियों के, इसी प्रकार आत्मा को मोक्ष की दशा प्राप्त होने से पहले उसे चौदह प्रकार गुणस्थान होते हैं। धर्म की दशा चौथे से शुरु होती है। चौदह सोपान में यह चौथा गुणस्थान कहलाता है। पश्चात् पाँच, छह, सात और आठ, नौ से चौदह। सात गुणस्थान की व्याख्या आ गयी। पहला तो सम्यग्दर्शन, यह सर्वज्ञ ने जो आत्मा का सर्वज्ञस्वभावरूप आत्मा, सर्वज्ञस्वभावस्वरूप रूप आत्मा का अन्तर में स्वभाव के सन्मुख होकर, राग की एकता टूटकर स्वभाव की एकता अन्तर में होना, उसका नाम धर्म की प्रथम शुरुआत सम्यग्दर्शन कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सम्यग्दर्शन बिना यह जो कुछ व्रत, तप और पूजा, भक्ति आदि करे, वह सब राग में जाता है और उसका स्वरूप बन्धनरूप है। समझ में आया? उसे चौथी भूमिका कहते हैं, जहाँ आत्मा पूर्ण ध्रुव अन्तर में प्रतीति में अनुभव में ज्ञान में ज्ञेयरूप से होकर आवे, तब उसे धर्म की पहली दशा सम्यग्दर्शन कहा जाता है। गजब!

फिर पाँचवाँ, इससे अधिक स्वस्वरूप पूर्णानन्द का आश्रय कुछ अधिक लेकर कुछ शान्ति विशेष अकषायभाव की प्रगट हो, उसे श्रावक का पाँचवाँ गुणस्थान कहते हैं। यह सच्चे की बात है, हों! वाडा की बात नहीं।

मुमुक्षु : वह तो ऐसा समझते हैं, श्रावक सब सुखी ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुखी हैं। श्रावक तो सुखी ही है। यदि श्रावक हो तो। सुखी अपने आत्मा के आनन्द से सुखी है। हरिभाई! पैसे से सुखी नहीं। कोई धूल भी नहीं। वह तो सब दुःखी के सरदार हैं...। आहाहा! आत्मा का आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव, जो अनादि से राग की एकता में मिथ्यात्वभाव में दुःख का वेदन था, वह जहाँ राग की एकता टूटकर स्वभाव की एकता होती है, तब दुःख के वेदन के स्थान में आनन्द का वेदन आता है। यह वहाँ से समकिती सुखी है। समझ में आया? बाकी वह आत्मा के निज स्वरूप के भान और आश्रय बिना अकेली पंच महाव्रत की दया, दान, भक्ति आदि के परिणाम करे, वह दुःखी है।

मुमुक्षु : अब वर्तमान में परिणाम का फल क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : फल है दु:ख का जहर। आहाहा! फल स्वर्गादि में सिंकता है वहाँ। शुभभाव के फलरूप से अंगारों में सिंकनेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि यह सम्यक् आत्मा के पूर्ण अखण्ड एकरूप अभेद स्वभाव की दृष्टि और अनुभव होने पर वह सुखी होता है, वह धर्मी होता है। धर्मी होता है कहो या सुखी होता है कहो (एकार्थ है)। समझ में आया? बाहर में साधन हो तो सुखी है, ऐसा कुछ है नहीं। वह तो दु:खी है। यह राजा महाराजा, करोड़ोंपति, वे सब दु:खी हैं बेचारे। समझ में आया? क्योंकि उनके आत्मा के आनन्द में से हट गये हैं और पर में ठीक है, ऐसी मान्यता में खड़े हैं, वे दु:खी हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि पंचम गुणस्थान की दशा तो शान्ति की विशेष होती है और मुनि होता है छठवें में, उसे तो सुख की दशा बढ़ गयी होती है। आत्मा के आनन्द की सुख की दशा, हों! आहाहा! उसे मुनि और उसे साधु का छठवाँ गुणस्थान कहा जाता है। भारी कठिन काम! फिर सातवाँ गुणस्थान, उसमें तो अकेली निर्विकल्पदशा का आनन्द ही होता है। बुद्धिपूर्वक जिसे राग हटकर आत्मा के अवलम्बन में निर्विकल्पपने में स्थित होता है। वह शान्ति की धारा में आगे बढ़ा है। उसे सातवाँ गुणस्थान कहते हैं। अरे, यह गजब!

और एक ओर कहना कि तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं। ऐई! जीव में चौदह गुणस्थान भी नहीं। ले, वह तो पर्याय—उसकी दशा के भेद हैं। दशा कैसी होती है धर्मी की, समकिती की, श्रावक की, मुनि की कैसी होती है, उसका वर्णन करते हैं, बतलाते हैं। बाकी वह दशा, वह कहीं त्रिकाल वस्तु में नहीं। आहाहा! महाप्रभु अन्तर्मुख तत्त्व में वह कुछ भेद नहीं। वह भेद पर्याय में खड़े होते हैं, वे जाननेयोग्य हैं। वह-वह भूमिका कैसी होती है, किस प्रकार से होती है, ऐसा जाननेयोग्य है। सातवें गुणस्थान की बात हो गयी। अब आठवीं है आज। अष्टम गुणस्थान का वर्णन। सातवें के बाद अन्दर आनन्द की धारा में आगे बढ़ता है। अरे! आहाहा! समझ में आया? सातवें गुणस्थान के पश्चात् आठवीं भूमिका अन्दर धर्म की दशा, वह अन्तर के आनन्द की धारा और शान्ति की धारा आंशिक बढ़ती है, तब उसे आठवाँ गुणस्थान कहा जाता है। अरे, अरे! गजब किया। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ९५

अष्टम गुणस्थान का वर्णन (चौपाई)

अब वरनौं अष्टम गुनथाना।
नाम अपूरवकरन बखाना।।
कछुक मोह उपशम करि राखै।
अथवा किंचित छय करि नाखै।।९५।।

अर्थः–अब अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान का वर्णन करता हूँ, जहाँ मोह का किंचित् उपशम[१] अथवा किंचित् क्षय[२] होता है।।९५।।

काव्य-९५ पर प्रवचन

अब वरनौं अष्टम गुनथाना।
नाम अपूरवकरन बखाना॥
कछुक मोह उपशम करि राखै।
अथवा किंचित छय करि नाखै॥९५॥

आहाहा! अपने आनन्दस्वभाव में झूलता हुआ धर्मी अन्तर्मुख में विशेष आश्रय लेता हुआ जो आठवीं भूमिका में किंचित् मोह उपशम करे और या मोह का क्षय करे। दो धारा है न—उपशम और क्षपक। अपूर्वकरण नामक गुणस्थान का वर्णन जहाँ मोह का किंचित् उपशम अथवा किंचित् क्षय। यह धारा होती है वहाँ। राग आदि को दबाता जाये और या राग को क्षय करता जाये। समझ में आया? उसे आठवाँ गुणस्थान कहते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

१–२. उपशमश्रेणी में उपशम और क्षपकश्रेणी में क्षय होता है।

काव्य - ९६

जे परिनाम भए नहिं कबही।
तिनकौ उदै देखिये जबही।।
तब अष्टम गुनथानक होई।
चारित करन दूसरौ सोई।।९६।।

अर्थः–इस गुणस्थान में ऐसे विशुद्ध परिणाम होते हैं, जैसे पूर्व में कभी नहीं हुए थे, इसीलिए इस आठवें गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण हैं। यहाँ चारित्र के तीन करणों में से अपूर्वकरण नामक दूसरा करण होता है।।९६।।

काव्य-९६ पर प्रवचन

जे परिनाम भए नहिं कबही।
तिनकौ उदै देखिये जबही॥
तब अष्टम गुनथानक होई।
चारित करन दूसरौ सोई॥९६॥

अधःकरण, अपूर्वकरण, यह दूसरा। कुछ ज्ञान न हो, उसे तो यह क्या कहते हैं, कुछ समझ में आये नहीं। जानपना नहीं हो। जैनदर्शन क्या कहता है, वीतराग परमात्मा क्या कहते हैं, कौन सा तत्त्व किस स्थान में कैसे होता है, उसकी खबर न हो जहाँ, अब उसे यह बात कहेंगे क्या यह वह बात? और मार्ग तो अकेला ज्ञान का ही मार्ग है आत्मा। तो राग आदि क्रिया करना, वह कहीं मार्ग नहीं। समझ में आया? क्योंकि वह तो ज्ञानस्वरूप प्रभु है। चैतन्य का पुंज पिण्ड है। उसमें ज्ञानस्वभावी में ज्ञान की क्रिया की स्थिरता आगे बढ़े, उसे धर्म की दशा आगे बढ़ी हुई (दशा) कहा जाता है।

जे परिनाम भए नहिं कबही। आठवीं भूमिका में ऐसे भाव हों शुद्ध कि अनन्त काल में कभी हुए न हों। आहाहा! **तिनकौ उदै देखिये...** ऐसे भाव को प्रगट दिखाई दे वहाँ कि होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है न, भगवान! अरे, जन्म-मरण

का फेरा फिरता हुआ भटकता हुआ दु:खी प्राणी है। समझ में आया? उसे मोक्ष के मार्ग में आना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है। वह कहीं बाहर की क्रिया का पुरुषार्थ नहीं। आहाहा! पूरी दिशा पलट जाये जहाँ। 'मैं एक आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य प्रभु हूँ। मेरी प्रभुता को न्यूनता और विपरीतता प्रभुता में है नहीं। आहाहा! ऐसा मैं साक्षात् अन्दर परमेश्वर ही हूँ।' ऐसी अन्तर में दृष्टि होने पर उसे धर्म की पहली सीढ़ी समकित होता है। आहाहा! यह तो कहे, यह करो, व्रत पालो और उपवास करो, पूजा करो और भक्ति करो, तुम्हारे धर्म होगा। भगवान कहते हैं कि उनसे धर्म होगा नहीं। आहाहा!

जिस गुणस्थान के परिणाम में **भए नहिं कबही। तिनकौ उदै देखिये....** प्रगट दिखता है वहाँ। ज्ञान की निर्मलदशा धारावाही, जैसे दूध की धारा बहे, वैसे अन्दर आनन्द की धारा बहे। समझ में आया? श्रीमद् में आता है न! 'यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान में। यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान में, गजा बिना अरु हाल मनोरथरूप जो। तो भी निश्चय राजचन्द्र मन में रहा, प्रभु आज्ञा से होऊँगा वही स्वरूप जब।' इस स्वरूप को माडूंगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! वर्तमान में यह हैसियत हमारे में नहीं है। यह गुणस्थान की शरीर की धारा में। समझ में आया? आठवें और नौवें का। परन्तु हमने जिसे ध्यान में पकड़ा है, ऐसे भगवान को हम ध्यान में लेकर ध्यान करते हैं, परन्तु पूर्ण की ऐसी धारा का तो मनोरथ है। समझ में आया? कब यह धारा बहे और कब हम केवलज्ञान लें। आहाहा!

आठ-आठ वर्ष के राजकुमार, जो अभी कुँवारे। कुछ खबर भी नहीं कि स्त्री क्या और फलाना क्या। ऐसे आठ-चौदह-सोलह वर्ष के। मणिरत्न की पुतलियाँ हो शरीर। उसे अन्तर में आत्मा का ज्ञान होने पर वह आनन्द के स्वाद में आया। वह विशेष आनन्द की धारा को प्रगट करने के लिये, आहाहा! धन्य अवतार न! आठ-आठ वर्ष के बालक राजकुमार। आहा! माता! हमारा आनन्द हमको भासित हुआ है। हमारी अनुभूति, वह हमको प्रगट हुई है। आहाहा! माता! अब विशेष अनुभव करने के लिये अकेले वन में चले जायेंगे। आहाहा! धन्य अवतार है न! आहाहा! वह अन्दर श्रेणी मांडने वन में एकान्त में आनन्द में रहने (के लिये)। अरे, बालक का शरीर कौन सम्हाले? उसे ताजा

गर्म धूप की, अरे! समय-समय पर आहार, पानी मिलने में किसे मिलेंगे? भाई! उसे तो चाहिए है आनन्द का भोजन। आहाहा! समझ में आया? उसे तो अन्तर निर्विकल्प पेय पीना है। आहार और पानी की भी दरकार नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दिखाव कैसा होगा वह! छोटी पिच्छी—मोरपिच्छी, एक कमण्डल और मणिरत्न की पुतली जैसी पुतली हो। वे अन्तर के आनन्द की धारा में बहते हुए, कहते हैं कि यह धारा जब क्षपकश्रेणी आवे, तब कुछ मोह का क्षय करे और या मोह को उपशम करे थोड़ा वह। आहाहा! समझ में आया? भले कहते हैं कि वह धारा अभी हमको नहीं। समझ में आया? परन्तु वह धारा कैसी होती है, उसका हमको ज्ञान तो है और उस धारा को हम पकड़नेवाले हैं। समझ में आया? एकाध-दो भव के अन्तर से भी हम तो यह होनेवाले हैं अब। दूसरी धारा अब बीच में होगी नहीं। आहाहा!

धर्म के धोरी, धर्म के स्तम्भ, धर्म के धारक। आहाहा! बापू! धर्म, वह कहीं यह क्रिया करना, व्रत पालना और अपवास करना, वह कहीं धर्म नहीं। भाई! तुझे धर्म की खबर नहीं। जिसे कहते हैं कि ऐसे परिणाम होते हैं कि जो उसे कभी हुए नहीं। अष्टम गुणस्थान। चारित्रकरण का दूसरा। वह आत्मा का पहला करण था न अध:करण। यह अपूर्वकरण—अपूर्व परिणाम। करण अर्थात् परिणाम। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने से पहले एक अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण होता है, वह दूसरी बात। यह तो चारित्र की धारा में आगे बढ़ते हुए ऐसे वे परिणाम होते हैं। समझ में आया? आहाहा! एक मौसम पकता है वहाँ, कहते हैं। धर्मी अपने स्वभाव के धन्धे चढ़ा, उसकी अब मौसम पकी है यह क्षपकश्रेणी में। समझ में आया? अब तो अन्तर्मुहूर्त में फल आने की तैयारी है। ऐसी दशा को आठवें गुणस्थान की धारा कही जाती है। आहाहा! **चारित करन दूसरौ सोई।** अपूर्वकरण। अब, नौवाँ गुणस्थान। नौवीं भूमिका।

★ ★ ★

काव्य - ९७

नववें गुणस्थान का वर्णन (चौपाई)

अब अनिवृत्तिकरन सुनु भाई।
जहां भाव थिरता अधिकाई।।
पूरव भाव चलाचल जेते।
सहज अडोल भए सब तेते।।९७।।

अर्थः–हे भाई, अब अनिवृत्तिकरन नामक नववें गुणस्थान का स्वरूप सुनो। जहाँ परिणामों की अधिक स्थिरता है, इससे पहले आठवें गुणस्थान में जो परिणाम किंचित् चपल थे, वे यहाँ अचल हो जाते हैं।।९७।।

काव्य-९७ पर प्रवचन

अब अनिवृत्तिकरन सुनु भाई।
जहां भाव थिरता अधिकाई॥
पूरव भाव चलाचल जेते।
सहज अडोल भए सब तेते॥९७॥

कहते हैं कि अनिवृत्तिकरण, भाई! सुन नौवाँ गुणस्थान। जिसमें **थिरता अधिकाई**—स्थिरता बढ़ गयी। आठवें की अपेक्षा भी नौवें में अन्दर स्थिरता की वृद्धि के अंशों के यह गुणस्थान भेद हैं। रत्न का दीपक जैसे चमके, उसे पवन हिला नहीं सकता। लाख-करोड़ रुपये का एक हीरा हो हीरा, तो चमक-चमक होती है परन्तु वह कहीं क्षेत्र बदलता है? उसकी चमकाई को पवन की झपट बुझा सकती है? इसी प्रकार चैतन्य हीरा अन्तर की धारा से बहा, कहते हैं कि ऐसे परिणाम होते हैं, वहाँ स्थिरता बढ़ गयी है। अब उस स्थिरता में अस्थिरता आती नहीं। आहाहा! समझ में आया? **पूरव भाव चलाचल...** जो पूर्व में जरा सा चलाचल—अस्थिर भाव था, वह **सहज अडोल** हो गया। ऐसी नौवीं गुणस्थान की दशा धर्मी को केवलज्ञान होने से पहले ऐसी होती है, ऐसा। **सहज अडोल भए सब तेते**

★ ★ ★

काव्य - ९८

पुनः (चौपाई)

जहां न भाव उलटि अध आवै।
सो नवमो गुनथान कहावै।।
चारितमोह जहां बहु छीजा।
सो है चरन करन पद तीजा।।९८।।

शब्दार्थः–उलटि=लौटकर। अध=नीचे। छीजा=नष्ट हुआ।

अर्थः–जहाँ चढ़े हुए परिणाम फिर नहीं गिरते, वह नववाँ गुणस्थान कहलाता है। इस नववें गुणस्थान में चारित्रमोहनीय का बहु[१] अंश नष्ट हो जाता है, यह चारित्र का तीसरा करण है।।९८।।

काव्य-९८ पर प्रवचन

जहां न भाव उलटि अध आवै। कहते हैं कि जो परिणाम हुए निर्मल धारा, वह अब उलटकर वापस नीचे आवे नहीं। आहाहा! लाभ का ही धन्धा सर्वत्र, ऐसा कहते हैं। नुकसान तो जाये नहीं, ब्याज भरना पड़े नहीं और लाभ बढ़े अन्दर। वह स्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, ऐसा आत्मा, उसके आश्रय में उग्ररूप से जाये, उसे ऐसे परिणाम होते हैं। समझ में आया? **चारितमोह जहां बहु छीजा।** चारित्रमोह बहुत ही क्षय हो जाता है वहाँ नौवें में। **सो है चरन करन पर तीजा।** तीसरा अनिवृत्तिकरण। अधःकरण सातवें में, अपूर्वकरण आठवें में, अनिवृत्तिकरण नौवें में। नाम भी सुने न हों धन्धे के कारण। कहाँ यह लगाये? अकेला पाप का धन्धा पूरे दिन, उसमें धर्म का क्या रूप और स्वरूप (है वह) सुनने को मिले नहीं। जादवजीभाई!

अरे, परन्तु वहाँ धीकती पेढी चलती हो, लो। रोकड़ा ही दिखाई दे। ऐ नटु! पालेज की दुकान में यह कर्ता-हर्ता है। कहो, समझ में आया इसमें? दो-दो लाख,

१. सूक्ष्मलोभ को छोड़कर।

ढाई-ढाई लाख पैदा हो, सिर घूम जाये न ऐसे। नुकसान जाता है, कहते हैं वहाँ तो। बापू! चोट पड़ती है वह, हों! वह भाव है न कमाने का, वह तो आत्मा की शान्ति के ऊपर चोट मारनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! अरे! तूने आत्मा के स्वभाव को साधे बिना बहुत बिगाड़ा है। भाई! आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं कि जहाँ आत्मा के स्वभाव का साधक जीव आगे सन्त होकर आगे धारा से जाता है, तब उसके परिणाम अनिवृत्ति नामक तीसरे परिणाम कि जो परिणाम वापस फिरे नहीं। अब, दसवाँ गुणस्थान।

★ ★ ★

काव्य - ९९

दसवें गुणस्थान का वर्णन (चौपाई)

कहौं दसम गुनथान दुसाखा।
जहँ सूछम सिवकी अभिलाखा।।
सूछमलोभ दसा जहँ लहिये।
सूछमसांपराय सो कहिये।।९९।।

अर्थः-अब दसवें गुणस्थान का वर्णन करता हूँ, जिसमें आठवें और नववें गुणस्थान के समान उपशम और क्षायिकश्रेणी के भेद हैं। जहाँ मोक्ष की अत्यन्त सूक्ष्म अभिलाषा मात्र है, यहाँ सूक्ष्म लोभ का उदय है, इससे इसे सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं।।९९।।

काव्य-९९ पर प्रवचन

कहौं दसम गुनथान दुसाखा।
जहँ सूछम सिवकी अभिलाखा॥
सूछमलोभ दसा जहँ लहिये।
सूछमसांपराय सो कहिये॥९९॥

इतना विकल्प है न?

दसम गुणस्थान का स्वरूप, आठवें और नौवें गुणस्थान में समान उपशम और क्षायिक श्रेणी के भेद होते हैं। **दुसाखा।** उपशम श्रेणी भी माँडे और क्षपक भी माँडे। जहाँ मोक्ष की अत्यन्त सूक्ष्म अभिलाषा हो, अन्दर इतना लोभ बाकी हो। आहाहा! वह मोक्ष की अभिलाषा, वह भी राग। इतना भी आगे जाने में विघ्न करता है। समझ में आया? **सूछम सिवकी अभिलाखा...** लो। मोक्ष की अत्यन्त सूक्ष्म अभिलाषा। **सिव** अर्थात् निरुपद्रव आत्म-मुक्ति। उसकी अव्यक्तरूप से विकल्प की दशा, उसे ऐसा नहीं कि मैं मोक्ष लूँ और ऐसा प्रगट नहीं परन्तु वह यह राग इतना है, इसलिए वह स्वरूप सन्मुख ढलने में मोक्ष की अभिलाषा इतनी है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

यह **सूछमलोभ दसा जहँ लहिये, सूछमसांपराय सो कहिये।** लो। यह सूक्ष्म साम्पराय, इतना राग है न? इतना संसार है अभी, कहते हैं। राग का अंश है, वह साम्पराय है। भगवान निर्मलानन्द प्रभु पूर्ण स्वच्छ निर्मल शुद्ध, उसमें इतना एक विकल्प अबुद्धिपूर्वक भी लोभ है, कहते हैं। समझ में आया? उसे टालेगा, तब आगे बढ़ेगा। इसके बिना बढ़ेगा नहीं। ऐसा कठिन मार्ग, भाई! ग्यारहवें गुणस्थान का वर्णन।

★ ★ ★

काव्य - १००

ग्यारहवें गुणस्थान का वर्णन (चौपाई)

अब उपशांतमोह गुनथाना।
कहौं तासु प्रभुता परवांना।।
जहां मोह उपशमै न भासै।
यथाख्यातचारित परगासै।।१००।।

अर्थः-अब ग्यारहवें गुणस्थान उपशान्तमोह की सामर्थ्य कहता हूँ, यहाँ मोह का सर्वथा उपशम है-बिलकुल उदय नहीं दिखता और जीव का यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है।।१००।।

काव्य-१०० पर प्रवचन

अब उपशांतमोह गुनथाना।
कहौं तासु प्रभुता परवांना॥
जहां मोह उपशमै न भासै।
यथाख्यातचारित परगासै॥१००॥

ग्यारहवीं भूमिका की धर्म की दशा, वह कहते हैं। जहाँ मोह का सर्वथा उपशम—बिल्कुल उदय नहीं। राग का अंश जो था दसवें में, वह ग्यारहवें में नहीं होता। जीव का यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है। जैसा उसका अकषायस्वरूप है, वैसा ग्यारहवें गुणस्थान में प्रसिद्धतारूप पाता है। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - १०१

पुनः (दोहा)

जाहि फरसकै जीव गिर, परै करै गुन रद्द।
सो एकादसमी दसा, उपसमकी सरहद।।१०१।।

अर्थः–जिस गुणस्थान को प्राप्त होकर जीव अवश्य ही गिरता है, और प्राप्त हुए गुणों को नियम से नष्ट करता है, वह उपशम चारित्र की चरम सीमा प्राप्त करनेवाला ग्यारहवाँ गुणस्थान है।।१०१।।

काव्य-१०१ पर प्रवचन

जाहि फरसकै जीव गिर, परै करै गुन रद्द।
सो एकादसमी दसा, उपसमकी सरहद॥१०१॥

आहाहा! ग्यारहवें गुणस्थान में जाये, वह तो नीचे गिरता ही है, ऐसा कहते हैं।

समझ में आया ? राग को दबाते हुए आगे गया है। उपशम करता हुआ वापस फिरनेवाला ही है वह। ग्यारहवें गुणस्थान को रद्द कर डालता है। ऐसी पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण। समझ में आया ? उसकी हद होती है न यह ? यह रेल में नहीं आता वह ? ऐसे खड़े ऐसे रखे। डिब्बा करे न स्टेशन हो न उसका।

मुमुक्षु : सिग्नल।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिग्नल नहीं। वह... पटरी। अन्तिम (स्टेशन हो), ऐसे ऊँचा खड़ा हो। वहाँ तक डिब्बे जाये। अन्तिम होता है। यह है न हमारे। हमारे पालेज में सब नजदीक था न। वहाँ तो सब माल-बाल आता, लेने जाते थे। सब परिचित हों न वहाँ तो। सब जाये। पूरा स्टेशन सब देखा सब।

साठ वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९६८ में वैशाख में देखा है। पालेज। ६० हुए न ६०। वे सब डिब्बे वहाँ रुकते हैं न। शंटिंग करे न। ऐसा कहते हैं न ? पण्डितजी ! यह डाले वहाँ तक जाये। बस फिर आगे चलने का हो नहीं।

मुमुक्षु : फिर वापस फिरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वापस ही मुड़े। इसी प्रकार यह भूमिका ऐसी है कि वहाँ तक जाकर वापस ही मुड़े। समझ में आया ? ऐसी एक दशा जीव में होती है, ऐसा बताते हैं। चरमसीमा प्राप्त करनेवाला, लो। उपशम चारित्र शान्त... शान्त... मैल नीचे हो, परन्तु ऊपर से पानी नितर गया हो न, इसी प्रकार जरा राग का भाग अन्दर हो, परन्तु ऊपर शान्ति और अकषाय भाव अकेला तैरता होता है, उसे यहाँ ग्यारहवीं भूमिका, ग्यारहवाँ गुणस्थान कहते हैं। बारहवें गुणस्थान का वर्णन।

★ ★ ★

काव्य - १०२

बारहवें गुणस्थान का वर्णन (चौपाई)

केवलग्यान निकट जहँ आवै।
तहां जीव सब मोह खिपावै।।
प्रगटै यथाख्यात परधाना।
सो द्वादसम खीनगुनठाना।।१०२।।

अर्थः–जहाँ जीव मोह को सर्वथा क्षय करता है, वा केवलज्ञान बिलकुल समीप रह जाता है और यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है, वह क्षीणमोह नामक बारहवाँ गुणस्थान है।।१०२।।

काव्य-१०२ पर प्रवचन

केवलग्यान निकट जहँ आवै।
तहां जीव सब मोह खिपावै॥
प्रगटै यथाख्यात परधाना।
सो द्वादसम खीनगुनठाना॥१०२॥

आहाहा! भाषा देखो! **केवलग्यान निकट जहँ आवै।** एक अन्तर्मुहूर्त में तो अब केवलज्ञान प्रगट होनेवाला है अरिहन्तपद–सर्वज्ञपद परमेश्वर णमो लोए सव्व अरिहंताणं। अरिहन्त पद, वह तेरहवें गुणस्थान में होता है। समझ में आया? सीमन्धर भगवान वर्तमान में महाविदेह में विराजते हैं। वे तेरहवें गुणस्थान में हैं। महावीर भगवान आदि यहाँ से मोक्ष पधारे। वे तो सिद्ध में हैं। उन्हें अब गुणस्थान है नहीं। आहाहा! परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। वे तेरहवें गुणस्थान में भगवान वर्तमान में हैं। करोड़ों वर्ष से है और करोड़ों-अरबों वर्ष अभी रहेंगे। लम्बा आयुष्य है।

कहते हैं कि **केवलग्यान निकट जहँ आवै, तहां जीव सब मोह खिपावै।** मोह का कण—अंश भी हो, उसे नाश करे। **प्रगटै यथाख्यात परधाना।** क्षायिक यथाख्यात।

वह उपशम था ग्यारहवें (गुणस्थान) में। **प्रगटै यथाख्यात।** अकषाय परिणाम, अकषाय परिणाम—यथाख्यातचारित्र। जैसा स्वरूप है, ऐसी प्रसिद्धि हो गयी पर्याय में चारित्र की। **सो द्वादसम खीन गुनठाना।** लो। यह बारहवाँ गुणस्थान कहते हैं। केवलज्ञान होने से पहले अन्तर्मुहूर्त पहली दशा हो, उसे यहाँ बारहवाँ गुणस्थान कहते हैं।

यह तो बनारसीदास ने विशेष जानने के लिये समयसार में गुणस्थान की वर्णन दशा भिन्न-भिन्न नहीं, इसलिए अधिक स्पष्टता के लिये यह वर्णन किया है। भाव जानना चाहिए, उसे किस भूमिका में कितनी पवित्रता (आवे)। समझ में आया? ऐसी दशा और ऐसा स्वरूप सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होता। तीर्थंकरदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने जो सर्वज्ञ ज्ञान में देखा—जाना, वैसा दूसरे ने देखा और जाना नहीं। वे सब भगवान के अतिरिक्त, लोगों ने सब कल्पित बातें की हैं। आहाहा! तब कोई कहे कि परन्तु यह सब खोटे है, ऐसा तुम दूसरे को कैसे कहते हो? तुम्हारे पास क्या माप है? और ऐसा कहते हैं कितने ही। अरे, भगवान! ऐई! यह तो स्पष्ट है कि वास्तविक तत्त्व जो भगवान ने कहा, उससे विरुद्ध प्ररूपित करे, विरुद्ध माने, वह मिथ्यादृष्टि है। उसमें माप निकालने की दूसरी आवश्यकता क्या है वहाँ? आहाहा!

समयसार में तो कहा नहीं सर्वविशुद्ध अधिकार में? कि यदि कोई ईश्वर को जगत का कर्ता माने; जगत स्वतन्त्र पदार्थ है, छह द्रव्य अनादि, उसका कोई कर्ता-बर्ता नहीं। परन्तु कर्ता माने, वह जैसे मिथ्यादृष्टि है, ऐसे हमारे जैन में साधु नाम धरावे, श्रावक नाम धरावे और पर की छह काय की क्रिया कर सकूँ, दया पाल सकूँ, उन्हें रख सकूँ, यह मान्यता उन मिथ्यादृष्टि जैसी इनकी मान्यता है। कहो, समझ में आया? आये हैं? नहीं आये? कैसे तुम्हारे कहलाते हैं यह? छापखाना (प्रिंटिंग प्रेस)। मगनलाल। मगनलालजी आये? आये थे अभी दोपहर में। यह सब उन्होंने इन्दौर की बहुत बात की। वे गये होंगे अभी। सब लौकिक बातें, कहे, कुछ यह बात धर्म की, वीतराग क्या और कुछ नहीं होता। लोगों में भी खलबलाहट होती है कि इसमें क्या, परन्तु यह तो दोनों की बातें किया करे ऐसा है न, यह वह ऐसा है न हमारे। परन्तु लोगों को बहुतों को फिर पसन्द आये, लोग बहुत इकट्ठे हों न। आहाहा!

यह मार्ग वीतराग का कहीं दूसरे के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं। दो न हो तो

भी फिर यह सच्चा और यह खोटा, दो न हो तो उसमें दो—अस्ति-नास्ति किस प्रकार होगी? ३६३ पाखण्ड कहे हैं भगवान ने तो, लो। एकान्त माननेवाले के सब भेद हैं। यह मार्ग वीतराग का—सर्वज्ञ का एक ही अनेकान्त मार्ग है। समझ में आया? सबका समन्वय करके समान मनाना—मानना, ऐसा यह वस्तु में नहीं कहीं।

मुमुक्षु : बन सके?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! किस प्रकार बने? एक पुण्य में धर्म मनावे, दूसरा पुण्य में धर्म न मनावे, अब इन दो का मिलान किस प्रकार करना इसमें? समझ में आया? बारहवें गुणस्थान में। अब इसकी जरा अवधि देते हैं।

★ ★ ★

काव्य - १०३

उपशमश्रेणी की अपेक्षा गुणस्थानों का काल (दोहा)

षट सातैं आठैं नवैं, दस एकादस थान।
अंतरमुहूरत एक वा, एक समै थिति जान।।१०३।।

अर्थ:-उपशम श्रेणी की अपेक्षा छट्ठे, सातवें, आठवें, नववें, दसवें और ग्यारहवें गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त वा जघन्य काल एक समय है।।१०३।।

काव्य-१०३ पर प्रवचन

षट सातैं आठैं नवैं, दस एकादस थान।
अंतरमुहूरत एक वा, एक समै थिति जान॥१०३॥

छठवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक अन्तर्मुहूर्त की स्थिति है। जघन्य एक समय की स्थिति है। यह जरा जानने जैसी बात है। क्षपकश्रेणी का काल।

★ ★ ★

काव्य - १०४

क्षपकश्रेणी में गुणस्थानों का काल (दोहा)

छपकश्रेनि आठैं नवैं, दस अर वलि [१]बार।
थिति उत्कृष्ट जघन्य भी, अंतरमुहूरत [२]काल।।१०४।।

अर्थ:–क्षपकश्रेणी में आठवें, नववें, दसवें और बारहवें गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त तथा जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त है।।१०४।।

काव्य-१०४ पर प्रवचन

छपकश्रेनि आठैं नवैं, दस अर वलि [१]बार।
थिति उत्कृष्ट जघन्य भी, अंतरमुहूरत [२]काल॥१०४॥

जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त।

★ ★ ★

काव्य - १०५

तेरहवें गुणस्थान का वर्णन (दोहा)

छीनमोह पूरन भयौ, करि चूरन चित–चाल।
अब सजोगगुनथानकी, वरनौं दसा रसाल।।१०५।।

अर्थ:–चित्त की वृत्ति को चूर्ण करनेवाले क्षीणमोह गुणस्थान का कथन समाप्त हुआ, अब परमानन्दमय सयोगगुणस्थान की अवस्था वर्णन करता हूँ।।१०५।।

१–२. यह प्राप्त र और ल की कहीं कहीं सवर्णता की नीति से निर्दोष है – 'रलयो: सावर्ण्यं वा वक्तव्यं' सारस्वत व्याकरण।

काव्य-१०५ पर प्रवचन

छीनमोह पूरन भयौ, करि चूरन चित-चाल। आहाहा! चित्त की चाल। ज्ञान जो राग में रुकता था, उसे चूरण कर दिया। **अब सजोगगुनथानकी, वरनौं दसा रसाल।** अब केवली भगवान सर्वज्ञदेव अरिहन्त का तेरहवाँ गुणस्थान होता है, उसका वर्णन करता हूँ। सयोगी गुणस्थान है न। सयोग—जिन्हें अभी मन-वचन और काया का कम्पन होता है, परन्तु केवली होते हैं। तीन काल-तीन लोक को जाने अरिहन्त। णमो अरिहंताणं अर्थात् ऐसा पद, वह तेरहवें गुणस्थान का पद है। णमो सिद्धाणं, वह तो गुणस्थानातीत हो गये परमात्मा अशरीरी सिद्ध भगवान। यह तेरहवें गुणस्थान का वर्णन करते हैं, कहते हैं।

संस्कृत में एक बार प्रश्न किया था। (संवत्) १९८० की बात है। एक पण्डित आये थे पण्डित। भाई! हम तो संस्कृत-बंस्कृत कोई कुछ जानते नहीं, परन्तु तुम बड़े पण्डित हो न, कहा, इस शब्द का अर्थ कहो। ८० की बात है। **संजोगी भवस्थ केवली।** ऐसा शब्द रखा पण्डित के निकट। **संजोगी भवस्थ केवली।** वे कहे, संयोगवाले भव में रहे हुए केवली। उन्हें कहा, यह संयोगी भवस्थ केवली हो सकते ही नहीं। सयोगी भवस्थ केवली, ऐसा इसका शब्द है। सयोगी—उन्हें योग का कम्पन होता है, परन्तु है केवलज्ञानी परमात्मा, उन्हें सयोगी केवली कहा जाता है।

मुमुक्षु : जैन था?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पण्डित था। जैन था। काशी में पढ़ा हुआ था। कहा कि यह एक **संजोगी भवस्थ केवली** का अर्थ करो तुम। सब पढ़े हुए बड़े पण्डित हो न!

मुमुक्षु : अशुद्ध बताया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्ध। परन्तु उसे समझना चाहिए या नहीं कि **संजोगी भवस्थ केवली** होते ही नहीं। योगवाले केवली होते हैं, परन्तु कहीं संयोगवाले केवली होते हैं, ऐसा कहाँ से आया? वह बहुत व्याकरण पढ़ा हुआ, इसलिए बेचारा... कहा, व्याकरण-ब्याकरण हम जानते नहीं। तुम्हारे केवली तेरहवें गुणस्थान में सयोगी कैसे

होते हैं, इसकी खबर नहीं, तुम सीधे अर्थ करने लगो संयोगी भव में रहे हुए केवली। अर्थात् क्या, इसकी व्याख्या कहा अर्थ? यह शब्द ही झूठा है।

यहाँ है न उसमें। सयोगगुणस्थान। आया न **सजोगगुनथानकी।** आहा! अरिहन्त भगवान सीतन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। तेरहवें गुणस्थान में हैं परन्तु अभी योग का कम्पन है। समझ में आया? इसलिए उन्हें सयोगी केवली कहा जाता है और आगे जाये और चौदहवाँ (गुणस्थान) आवे, तब अयोगी केवली। फिर उन्हें योग होता नहीं। समझ में आया? परन्तु किसे निवृत्ति है यह समझने की? जाकर जरा दो घड़ी सुन आये, जो ऊपर कहे (वह) जय नारायण। आसन झटककर चले गये वापस, लो।

मुमुक्षु : युवक प्रश्न पूछते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब थोड़ा-थोड़ा चला है अब थोड़ा। बाकी तो ऐसा का ऐसा भेड़ पड़े थे सो पड़े थे (भेड़चाल)। बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है, इसे पहिचानना पड़ेगा, ऐसी अन्धी दौड़ से कुछ मार्ग हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! **तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप।** लो।

★ ★ ★

काव्य - १०६

तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

जाकी दुखदाता-घाती चौकरी विनसि गई,
चौकरी अघाती जरी जेवरी समान है।
प्रगट भयौ अनंतदंसन अनंतग्यान,
बीरजअनंत सुख सत्ता समाधान है।।
जामैं आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति अस्सी,
इक्यासी चौरासी वा पचासी परवांन है।
सो है जिन केवली जगतवासी भगवान,
ताकी जो अवस्था सो सजोगीगुनथान है।।१०६।।

शब्दार्थ:–चौकरी=चार। विनसि गई=नष्ट हो गई। अनंतदंसन=अनन्त दर्शन। समाधान=सम्यक्त्व। जगतवासी=संसारी, शरीर सहित।

अर्थ:–जिस मुनि के दु:खदायक घातिया चतुष्क अर्थात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय नष्ट हो गये हैं और अघातिया चतुष्क जरी जेवरी के समान शक्तिहीन हुए हैं, जिसको अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख सत्ता और परमावगाढ़–सम्यक्त्व प्रगट हुए हैं। जिसकी आयु नाम गोत्र और वेदनीय कर्मों की मात्र अस्सी, इक्यासी, चौरासी वा पचास प्रकृतियों की सत्ता रह गई है, वह केवलज्ञानी प्रभु संसार में सुशोभित होता है, और उसी की अवस्था को [1]सयोगकेवली गुणस्थान कहते हैं।

विशेष:–तेरहवें गुणस्थान में जो [2]पचासी प्रकृतियों की सत्ता कही गई है, सो यह सामान्य कथन है। किसी किसी को तो तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग, आहारक बंधन, आहारक संघात सहित पचासी प्रकृतियों की सत्ता रहती है, पर किसी को तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता, तो चौरासी प्रकृतियों की सत्ता रहती है, और किसी को आहारक चतुष्क का सत्त्व नहीं रहता और तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व रहता है, तो इक्यासी प्रकृतियों की सत्ता रहती है, तथा किसी को तीर्थंकर प्रकृति का और आहारक चतुष्क पाँचों का सत्त्व नहीं रहता, मात्र अस्सी प्रकृतियों की सत्ता रहती है।।१०६।।

काव्य-१०६ पर प्रवचन

जाकी दुखदाता-घाती चौकरी विनसि गई,
चौकरी अघाती जरी जेवरी समान है।
प्रगट भयौ अनंतदंसन अनंतग्यान,
बीरजअनंत सुख सत्ता समाधान है॥

१. यहाँ मन, वचन, काय के सात योग होते हैं, इससे इस गुणस्थान का नाम सयोगकेवली है।
२. पंचासी प्रकृतियों के नाम पहले अधिकार में कह आये हैं।

जामैं आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति अस्सी,
इक्यासी चौरासी वा पचासी परवांन है।
सो है जिन केवली जगतवासी भगवान,
ताकी जो अवस्था सो सजोगीगुनथान है॥१०६॥

अभी संसार है न इसलिए। देखो, उन्हें जगतवासी कहा।

अभी केवली संसारी शरीरसहित है न। शरीररहित तो सिद्ध भगवान होते हैं। णमो लोए सव्व सिद्धाणं। उन्हें शरीर नहीं होता। अकेला आत्मा निर्मलानन्द प्रभु सिद्ध। तीर्थंकर शरीरसहित केवली होते हैं, उन्हें शरीर होता है। कहते हैं, **जाकी दुखदाता-घाती चौकरी विनसि गई,...** वह घातिकर्म—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, वह घाति कर्म-दु:खदाता। निमित्त से बात है दु:खदाता। क्योंकि उसके कर्म का फल दु:ख है। कर्म स्वयं, उसका फल। आठ कर्म दु:ख, आता है न! दु:ख का बीज। आठों कर्म दु:ख का बीज है। तीन बातें। यह कर्म ही है न। भाव, वह कर्म है और विकार अर्थात् वह दु:ख है यह। कर्म का फल है।

जाकी दुखदाता-घाती चौकरी विनसि गई, अरिहन्त को चार कर्म का नाश हुआ। उन खामणा में आता है। उन्होंने चार घनघाती कर्मों का नाश किया, चार कर्म जिन्हें बाकी रहे। लिखा है उसमें। आहाहा! **जाकी चौकरी अघाती।** चार कर्म बाकी परन्तु कैसे? **जरी जेवरी समान है।** अघाति जली हुई डोरी के समान रहे अब। काथी सुलगी हो काथी... काथी (रस्सी)। वह कहीं बाँधने में काम नहीं आती। इसी प्रकार भगवान को—अरिहन्त को चार कर्म बाकी हैं, वे जली हुई डोरी के समान हैं। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् में आता है न। 'जली रस्सी वत्।' आकृतिमात्र। यह दिगम्बर का वचन है। श्वेताम्बर में यह ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में विवाद निकाला हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाद निकाला है यशोविजय ने निकाला है। आहाहा! अरे, जली रस्सी के समान हैं, सुन न! वळ डाली हुई डोरी सुलगी हो, वह कहीं बाँधने में काम आवे। दिखे सही, दिखे ऐसे। इसी प्रकार चार अघाति कर्म भगवान अरिहन्त को

बाकी है—जली हुई रस्सी जैसे बाकी रह गये हैं, कहते हैं। आहाहा!

प्रगट भयौ अनंतदंसन—जिन्हें अनन्तदर्शन प्रगट हुआ है। **जरी जेवरी के समान शक्तिहीन हुए हैं।** ऐसा यहाँ लिखा है न? शक्तिहीन हो गये, देखो। केवली परमात्मा अरिहन्त को अनन्त दर्शन प्रगट हुआ। दर्शनावरणीय का नाश होकर अनन्त दर्शन हुआ, ज्ञानावरणीय का नाश होकर अनन्त केवलज्ञान हुआ। इसका नाम देव और इसका नाम अरिहन्त कहलाता है। समझ में आया? **बीरज अनंत**—भगवान अरिहन्त परमात्मा को अनन्त बल प्रगट हुआ है। वह अनन्त बल किसी का करने के लिये नहीं। अपने पूर्ण आनन्द आदि गुण की रचना में अनन्त वीर्य जिन्हें प्रगट हुआ है। **सुख सत्ता समाधान है**—अनन्त सुख है भगवान को, लो। सुख की अनन्त सुख सत्ता। आहाहा! केवलज्ञानी अरिहन्त परमात्मा को पूर्ण सुख है। अब उन्हें आहार और पानी और रोग नहीं होता। उन अरिहन्त को रोग नहीं होता, ऐसा कहते हैं। पूर्ण सुख होता है, ऐसा कहते हैं।

कहते हैं न, भगवान को रोग हुआ छह महीने, इसलिए साधु आहार लेने गये और गौशाल ने वह किया। आती है न बातें। सब कल्पित बात है। केवली को आहार होता नहीं, पानी होता नहीं। कुछ नहीं होता। रोग भी नहीं होता। अठारह आयेंगे, १८ दोष आयेंगे। आहाहा! भगवान की अनन्त सुख सत्ता आदि अनन्त सब प्रगट हो गया है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान-दर्शन, अनन्त समाधि। 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में', आता है न श्रीमद् में। 'अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त सहित जो।' ऐसी दशा अन्तर के वीतरागभाव की परिणति के कारण से ऐसी कार्यदशा प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया?

जामैं आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति अस्सी,... यह प्रकृति जानने की बात है जरा। किसी को अस्सी हो, किसी को इक्यासी, किसी को चौरासी और किसी का पिच्यासी। **सो है जिन केवली जगतवासी भगवान।** अभी शरीर में रहे हैं, इतना दिखता है; इसलिए उन्हें जगतवासी भगवान कहा गया है। **ताकी जो अवस्था सो सजोगीगुनथान।** लो। उसे सयोगी गुणस्थान कहा जाता है। नीचे लिखा है। **यहाँ मन-वचन-काय के सात**

योग होते हैं। केवली को भी अभी मन, वचन और काया। है न? मन के दो, वचन के दो और काया के तीन, ऐसे सात योग होते हैं। पन्द्रह योग हैं, उसमें से सात होते हैं। **इससे इस गुणस्थान का नाम सयोगी केवली है।** सयोग—योग / कम्पनसहित केवली। ऐसा केवली का स्वरूप है। उन्हें क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होता। समझ में आया? उन्हें वस्त्र नहीं होते, पात्र नहीं होते, आहार लेने नहीं जाते।

मुमुक्षु : स्वयं न जाये, शिष्य को भेजे।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्य को... आता है। .....अणगार को भेजा। रोग हुआ न भगवान को। वह गौशाला आया। तेजोलेश्या मारी। रोग हुआ तो गौशाला को... अणगार को भेजा। जाओ आहार लेकर आओ वहाँ से—रेवती के घर से। मेरे लिये किया हुआ लाना नहीं, परन्तु उसके घोड़े के लिये बनाया, वह लाना। वचन आता है न। अरे, गजब बातें की हैं, हों! अरे, अरिहन्त को रोग होता नहीं, भाई! आहाहा! उन्हें—परमात्मा को जहाँ अनन्त आनन्द का अनुभव होता है। उनका शरीर स्फटिक रत्न जैसा होता है। समझ में आया? ऐसा भगवतीसूत्र में आता है। आहार लेने भेजा और फिर आहार लाये, आहार खाया। शरीर पुष्ट हो गया। देव-देवियाँ प्रसन्न हुए। भठ्ठा।

मुमुक्षु : आहार से बीमारी ठीक हो गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार से बीमारी..... भगवन की बीमारी (ठीक) हो गयी। सब कल्पित बातें हैं। अब यह किस प्रकार मिलान करना इसका?

मुमुक्षु : सर्वज्ञ का शिष्य ही न हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही नहीं।

अरे! जहाँ आत्मा की केवलदशा—परमात्मदशा... आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक हस्तामल की भाँति ज्ञात हों। उसके साथ अनन्त आनन्द का वेदन अकेली आनन्द की अनुभूति, ऐसे परमात्मा अरिहन्त होते हैं। भले शरीर हो, परन्तु यह दूसरा आहार या रोग आदि होता नहीं। कहो, तलकचन्दभाई! वहाँ भगवान फिर घोड़ी पर बैठे। मानसी, मानसी घोड़ी आती है न। अरे, बापू! भगवान कैसे होते हैं, तुझे खबर नहीं, भाई! आत्मा भगवानस्वरूप ही है आनन्द। उसकी दशा में

अन्दर में एकाग्र होकर हो अर्थात् वह तो समाप्त हो गया—पूर्ण अमृत का सागर जहाँ उछला, आहाहा! भले शरीर हो, परन्तु अन्तर के अनन्त आनन्द का वेदन उछलकर अनुभूति पूर्ण आनन्द की हो गयी। आहाहा! मुनि को अनुभूति होती है, परन्तु पूर्ण आनन्द की नहीं होती। समझ में आया? वस्तु ही ऐसी है, उसमें दूसरा हो क्या? आड़ा-टेढ़ा डाले वहाँ चले अन्दर? भाई! उसे सयोगी गुणस्थान कहा जाता है, लो। विशेष स्पष्टीकरण किया है। किसी को तीर्थंकर प्रकृति आदि होती है और किसी को होती नहीं। आहारकशरीर किसी को होता है और किसी को होता नहीं। यह विशेष जानने जैसा है। **केवलज्ञानी की मुद्रा और स्थिति।**

★ ★ ★

काव्य - १०७

केवलज्ञानी की मुद्रा और स्थिति

(सवैया इकतीसा)

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा,
अथवा सु काउसग्ग मुद्रा थिरपाल है।
खेत सपरस कर्म प्रकृतिकै उदै आयै,
बिना डग भरै अंतरीच्छ जाकी चाल है।।
जाकी थित पूरव करोड़ आठ वर्ष घाटि,
अंतरमुहूरत जघन्य जग-जाल है।
सो है देव अठारह दूषन रहित ताकौं,
बानारसि कहै मेरी वंदना त्रिकाल है।।१०७।।

शब्दार्थ:-अडोल=अचल। परजंक मुद्रा=पद्मासन। आउसग्गा=(कायोत्सर्ग) खड़े आसन। अंतरीच्छ=अधर। त्रिकाल=सदैव।

अर्थ:-जो केवलज्ञानी भगवान पद्मासन अथवा कायोत्सर्ग मुद्रा धारण किये हुए हैं, जो क्षेत्र-स्पर्श नामकर्म की प्रकृति के उदय से बिना कदम रखे अधर गमन करते हैं,

जिनकी संसार स्थिति उत्कृष्ट आठ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, वे सर्वज्ञदेव अठारह दोष रहित हैं। पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि उन्हें मेरी त्रिकाल वन्दना है।।१०७।।

काव्य-१०७ पर प्रवचन

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा,
अथवा सु काउसग्ग मुद्रा थिरपाल है।
खेत सपरस कर्म प्रकृतिकै उदै आयै,
बिना डग भरै अंतरीच्छ जाकी चाल है॥
जाकी थित पूरव करोड़ आठ वर्ष घाटि,
अंतरमुहूरत जघन्य जग-जाल है।
सो है देव अठारह दूषन रहित ताकौं,
बानारसि कहै मेरी वंदना त्रिकाल है॥१०७॥

अरिहन्त कैसे होते हैं, उन्हें पहिचानकर वन्दन करते हैं। यहाँ तो णमो अरिहंताणं। हे भगवान! आपकी कृपा होओ। परमेश्वर की कृपा। भगवान देना। भगवान के पास माँगे। भगवान! मुझे कुछ देना। भगवान (कहते हैं), परन्तु मेरे पास कहाँ है कि मैं तुझे दूँ? समझ में आया? उसमें एक व्यक्ति ने लिखा था, एक शब्द आया नहीं था? नवनीतभाई का लिखा था उसमें। बलुभाई का आया था। एक अक्षर आया था। परमात्मा! अच्छा रखना, ऐसी कुछ भाषा। पुराने व्यक्ति है न! यह बलुभाई डॉक्टर। अभी एक पत्र आया था न? उसमें एक शब्द था। उसमें यह शब्द था। ईश्वर अच्छा रखे और हमको अच्छा रखना, ऐसी कुछ भाषा थी। लोगों को जैन में जन्मे परन्तु ईश्वर कोई कर्ता है, यह गन्ध अन्दर से हटती नहीं। ईश्वर मानो कुछ करे, ईश्वर की मेहरबानी हो। ईश्वर सबके वाना अच्छे रखे। ईश्वर कौन सा अच्छा वाना रखे? भगवान परमात्मा, वे तो अरिहन्त केवली तीर्थंकर हैं। इस जगत के अच्छे वाना रखे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा,....** केवलज्ञानी को दो

आसन होते हैं। एक पद्मासन और एक कायोत्सर्ग (खड्गासन)। दो आसन होते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त तेरहवें गुणस्थान में होते हैं, वे या पद्मासन में होते हैं और या खड्गासन होता है—कायोत्सर्ग में। समझ में आया? उन्हें आहार नहीं, पानी नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, चिन्ता नहीं, कल्पना नहीं। शरीर में परमौदारिक दशा जिनकी, परमाणु स्फटिक जैसे हो जाये जिनके। जिसमें नजर डाले कि सात भव देखे दूसरा जीव, इतना तो उनका स्फटिक शरीर हो जाता है। अरे, केवली अरिहन्त परमात्मा किसे कहें! समझ में आया?

खेत सपरस कर्म प्रकृतिकै उदै आयै,... कहते हैं कि भगवान चलते हैं न? कहे, प्रकृति के कारण से शरीर गति करता है। उसे गति-बति का कुछ है नहीं। वह तो केवलज्ञानी परमात्मा है। आहाहा! यह स्थानकवासी बहुत मानते हैं क्षेत्र स्पर्शना। क्षेत्र स्पर्शना आती है न, ऐसा आता है। परदेशी राजा का अधिकार आता है। उसमें से निकाला है उन लोगों ने। क्षेत्र स्पर्शना अर्थात् मुनि को प्रार्थना करे, तब (मुनि) ऐसा कहे कि क्षेत्र स्पर्शना होगी तो आऊँगा। आता है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। क्षेत्र स्पर्शना। बोलने में मैं करूँ तो चले, करूँ तो विहार हो ....करे। ....मान्यता ऐसी हो। यहाँ तो कहते हैं, वीतराग के केवलज्ञान की दशा परमात्मा को हुई, उन्हें पूर्व की कोई प्रकृति के कारण से **बिना डग भरै**—ऐसे डग न भरे। **अंतरीच्छ जाकी चाल**—ऐसे अद्धर चले। पाँच हजार धनुष ऊँचे। हाँ, पाँच सौ धनुष ऊँचे। परन्तु ऊँचे चले, नीचे नहीं। अद्धर चले, लो न! **बिना डग भरै अंतरीच्छ जाकी चाल है,....** लो।

जाकी थिति पूरव करोड़ आठ वर्ष घाटि। एक करोड़ पूर्व में आठ वर्ष कम स्थिति होती है अरिहन्त की। आठ वर्ष में केवल (ज्ञान) हो। करोड़ (पूर्व) तक रहे। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसे-ऐसे करोड़ पूर्व। अरिहन्त का आयुष्य इतना होता है। तीर्थंकर की बात नहीं। यह तो समुच्चय आदि की बात है न! **पूरव**

करोड़ आठ वर्ष घाटि। एक करोड़ पूर्व में आठ वर्ष कम। जघन्य अन्तर्मुहूर्त। जघन्य अन्तर्मुहूर्त भाई! आठ वर्ष में केवल (ज्ञान) पावे। अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष जाये। आहाहा! समझ में आया? **सो है देव अठारह दूषन रहित**—यह अठारह दोष नहीं होते, ऐसे अरिहन्त को। **बानारसि कहै मेरी वंदना त्रिकाल है।** ऐसे अरिहन्त को तीनों काल मैं वन्दन करता हूँ। अठारह दोष का वर्णन आयेगा। अठारह दोष का वर्णन।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९५, कार्तिक शुक्ल १२, रविवार, दिनांक ३१-१०-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद १०८ से ११४

यह समयसार नाटक है। इसमें बनारसीदास ने चौदह गुणस्थान का स्वरूप समयसार में नहीं, इसलिए विस्तार से समझाया है। वास्तविक गुणस्थान चौदह गुण को कहा जाता है। है वह व्यवहार। अन्तर के स्वरूप में तो वे चौदह भेद हैं नहीं। ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्ण अभेद एकरूप चैतन्य पदार्थ, उसमें तो यह चौदह गुणस्थान व्यवहाररूप से हैं, परन्तु अन्तर (में) है नहीं। परन्तु व्यवहाररूप से है, उन्हें बराबर जानना चाहिए न! उसमें भी विरोध है, देव-गुरु और शास्त्र की लाईन में, इसलिए यह उसका स्पष्टीकरण किया है।

केवली भगवान को अठारह दोष नहीं होते। पृष्ठ ४०४। जो यह सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त देव अनन्त हुए, हैं और होंगे। वे सब आत्मा के अन्तर स्वभाव में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान-दर्शन और वीर्य, ऐसा उसका स्वरूप चतुष्टय स्वभाव में त्रिकाली पड़ा है। उसका आश्रय लेकर प्रथम जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेकर, उसका आश्रय लेकर अन्तर में उग्ररूप से चारित्र प्रगट किया, वह अन्तर की क्रिया। और आगे जाकर पूर्ण आश्रय किया तो केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान के अन्दर उसे अठारह दोष नहीं होते।

★ ★ ★

काव्य - १०८

केवली भगवान को अठारह दोष नहीं होते (कुण्डलिया)

दूषन अट्ठारह रहित, सो केवलि संजोग।
जनम मरन जाकै नहीं, नहिं निद्रा भय रोग।।
नहिं निद्रा भय रोग, सोग विस्मय न मोह मति।
जरा खेद परस्वेद, नांहि मद बैर विषै रति।।

चिंता नांहि सनेह, नांहि जहँ प्यास न भूखन।
थिर समाधि सुख सहित, रहित अट्ठारह दूषन।।१०८।।

शब्दार्थ:-सोग=शोक। विस्मय=आश्चर्य। जरा=बुढ़ापा। परस्वेद (प्रश्वेद)= पसीना। सनेह=राग।

अर्थ:-जन्म, मृत्यु, निद्रा, भय, रोग, शोक, आश्चर्य, मोह, बुढ़ापा, खेद, पसीना, गर्व, द्वेष, रति, चिंता, राग, प्यास, भूख ये अठारह दोष सयोगकेवली जिनराज को नहीं होते, और निर्विकल्प आनन्द में सदा लीन रहते हैं।।१०८।।

काव्य-१०८ पर प्रवचन

दूषन अट्ठारह रहित, सो केवलि संजोग।
जनम मरन जाकै नहीं, नहिं निद्रा भय रोग॥
नहिं निद्रा भय रोग, सोग विस्मय न मोह मति।
जरा खेद परस्वेद, नांहि मद बैर विषै रति॥
चिंता नांहि सनेह, नांहि जहँ प्यास न भूखन।
थिर समाधि सुख सहित, रहित अट्ठारह दूषन॥१०८॥

कहते हैं कि भगवान को अठारह दोष नहीं होते। उन्हें फिर जन्म नहीं होता। आहाहा! पूर्ण दशा जहाँ केवलज्ञान दशा प्रगट हुई, उन्हें वहाँ जन्म किसका? जन्म नहीं होता। कोई कहे कि भाई! भगवान जन्मे। मोक्ष होता है, अरिहन्त केवली हों, परन्तु दुनिया के दु:खों का उद्धार करने के लिए भगवान भी जन्मते हैं। कहते हैं न कितने ही? राक्षस का नाश करने और भक्तों का उद्धार करने (के लिए जन्मते हैं)। यह बात खोटी है, कहते हैं। यह बात कल्पित है। जहाँ पूर्ण दशा प्राप्त हुई, उसे कहाँ अब राग और भव का कोई कारण रहा है कि जिससे जन्मे? समझ में आया?

उन्हें मृत्यु नहीं होती। मृत्यु तो उसे कहते हैं कि फिर जिसे अवतार धारण करना हो। ऐसा कुछ है नहीं। केवलज्ञान होकर समाधि—आनन्द में देह छूटती है, तब मुक्ति होती है। उन्हें मरण नहीं। आहाहा! निद्रा नहीं। मुनि को, ज्ञानी को आत्मध्यानी को सन्त

को जरा निद्रा थी। सच्चे सन्त नग्न दिगम्बर मुनि वनवासी रहनेवाले, उन्हें जैनदर्शन में साधु कहते हैं। उन्हें साधु कहा जाता है। उन्हें भी एक पौन सैकेण्ड के अन्दर निद्रा होती है। तो यह तो रागरहित अकेली दशा पूर्ण स्वरूप अनन्त आनन्द-अनन्त ज्ञान-दर्शन प्रगट हो गये, उन्हें निद्रा नहीं होती। उन्हें भय नहीं होता। है न?

नहिं निद्रा भय रोग। भय नहीं होता। उन्हें भय किसका हो? पूर्ण निर्भय दशा अरिहन्त की केवलज्ञान की प्रगट हुई, उन्हें भय नहीं होता। समझ में आया? उन्हें रोग नहीं होता। यह विवाद। केवलज्ञान परमात्मदशा जहाँ आत्मा को हो, उनके शरीर में रोग नहीं होता। समझ में आया? श्वेताम्बर में कहते हैं न, भगवान को रोग हुआ। छह महीने खूनी दस्त हुए। गौशाला ने (तेजो) लेश्या डाली। सब कल्पित बातें हैं। ऐसा है ही नहीं। उसमें यह डाला है, उसका कारण है कि यह जो है न खतरगच्छ के, उन्होंने यह बनाया है इसलिए। क्योंकि यह बात दिगम्बर सम्प्रदाय की धारा में ली है। उसमें डाला परन्तु यह किसलिए परन्तु यह? ऐसा है। फिर प्रश्न हुआ। कोई खतरगच्छीय रूपचन्दजी हैं, हों! यह रूपचन्दजी दूसरा है। उन्होंने डाला थोड़ा। जहाँ पूर्ण रागरहित अनन्त आनन्द की दशा जहाँ प्रगट हो, ऐसा जो अरिहन्तपद, उनके शरीर को भी रोग होते नहीं। आहाहा! यह तो कहे रोग हुआ और दवा-औषधि लेने का कहा। ऐसा भगवतीसूत्र में आता है। श्वेताम्बर में आता है।....अणगार को कहा, देखो, यह आहार ले आओ। भाई! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। समझ में आया?

रोग के लिये औषध और औषध लावे और रोग मिटे न, यह सब दशा तो अल्पज्ञ छद्मस्थ की होती है। केवली को नहीं होती। बड़ा फेरफार है न! पण्डितजी! इसलिए अठारह दोष, इसमें लिखा है कि यह अठारह दोष दिगम्बर सम्प्रदाय में है, ऐसा लिखा है। अन्य में दूसरे हैं, ऐसा कहा। इसमें लिखा। अब बाहर से यह पढ़ा। परन्तु यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। दिगम्बर सम्प्रदाय कोई वाडा है? आहाहा!

यह तो भगवान हों, वे खाये और भगवान हों वे पानी पीवें और भगवान को रोग हो, गुलाबचन्दभाई! भगवान घोड़ी पर चढ़े न, नहीं? अरे, भगवान किसे कहते हैं? बापू! तुझे मिथ्यात्व लगेगा। ऐई! गये, जयन्तीभाई गये? बोटाद। समझ में आया? आहाहा! रोग शरीर में उसके रजकण तो, जहाँ केवलदशा जहाँ आत्मा में हो और उसी

भव में देह छूटकर सिद्ध होनेवाले हैं, उनके शरीर को रोग के रजकण हों, ऐसा नहीं होता। आहाहा! जहाँ निरोगी आत्मदशा पूर्ण हुई, उसे शरीर में भी रोग नहीं हो सकता।

उसे शोक नहीं होता। शोक कैसा? वीतरागदशा जहाँ प्रगट हुई। आश्चर्य नहीं होता। केवलज्ञान जहाँ पूर्णदशा, उसे आश्चर्य क्या? आहाहा! ऐसा तो उन्हें होता नहीं। तीन काल-तीन लोक जानते हैं। समझ में आया? आश्चर्य नहीं होता। मोह नहीं होता। मोह का तो नाश होकर केवलज्ञान हुआ है। उन्हें—सर्वज्ञ परमात्मा को मोह नहीं होता। जिन्हें अरिहन्तदेव परमात्मा कहते हैं, देव कहते हैं, उन्हें मोह नहीं होता। बुढ़ापा नहीं होता। उनके शरीर की वृद्धावस्था नहीं होती। शरीर ऐसा का ऐसा लगे। आठ वर्ष में केवल (ज्ञान) हो और आठ वर्ष कम करोड़ पूर्व तक रहे। शरीर ऐसा का ऐसा होता है। उन्हें बुढ़ापा लागू नहीं पड़ता। आहाहा!

खेद नहीं होता। खेद किसका? पूर्ण दशा जहाँ प्रगटी हो। शरीर में पसीना न हो। बहुत मेहनत करे, तब पसीना चढ़ता है न! भगवान को पसीना नहीं होता। वे तो अत्यन्त निरोगता आत्मआनन्द की दशा पूर्ण अनुभूति सहजानन्द की दशा में रमते हुए उन्हें पसीना नहीं होता। गर्व नहीं होता। वहाँ अभिमान कैसा? द्वेष नहीं होता। रति नहीं होती, लो। **मद वैर विषै रति।** चिन्ता नहीं होती। उन्हें राग नहीं होता। उन्हें प्यास और भूख नहीं होती। तृषा लगे और पानी पीवे, भूख लगे और आहार ले। बहुत फेरफार। अब इन सबको समान कैसे कहा जाये? समझ में आया?

एक बार कहा था, नहीं? (संवत्) १९८३ में प्रश्न हुआ था, ८३। चातुर्मास में दामनगर में ८३ में। कितने वर्ष हुए? ४५। एक थे वांकानेर के वनेचन्द सेठ। उन्होंने प्रश्न किया कि महाराज! एक कहता है कि मेरा बाप स्त्री थी और एक कहता है कि मेरा बाप आदमी था, उसका क्या करना? कहे। ऐसा प्रश्न किया। समझ में आया? एक कहे, मेरा बाप स्त्री थी। दूसरा कहे कि मेरा बाप आदमी था। अब इसका क्या करना? ऐसा प्रश्न किया था। क्योंकि श्वेताम्बर कहते हैं कि मल्लिनाथ स्त्री थे। तीर्थंकर स्त्री थे। तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? यह ८३ में प्रश्न किया था। मैंने कहा, अभी रखो। अभी वाडा में रहकर छनावट करने जाये तो यह सब विवाद होंगे। स्त्री का शरीर तीर्थंकर का। मल्लिनाथ स्त्री थे और केवल (ज्ञान) प्राप्त हुए। सब बात झूठी—

असत्य है। समझ में आया? जयन्तीभाई! आता है न मल्लिनाथ? आता है। सर्वत्र आता है।

उसे कहते हैं कि क्या कहा? प्यास और भूख नहीं होती। अनाहार आनन्द का आहार होता है। मुनिदशा प्रगट हो आत्मा की शान्ति की, उन्हें भी आहार अल्प रह जाता है। तो जहाँ आत्मा केवलज्ञान परमात्मा उन्हें आहार? साधु को भेजे कि आहार ले आओ और पानी ले आवे और स्वयं पीवे और खाये। सब स्वरूप सच्चे देव से विकृत किया है। समझ में आया? तब कहे कि दोनों को अब समान मानो, लो। ऐसा एक अभी अब समन्वय निकला है। किसे समान माने? भाई! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है वहाँ। देव के स्वरूप की विपरीतता, वह श्रद्धा मिथ्यात्व है। आहाहा! भूख न प्यास। पानी कैसा? जहाँ निर्विकल्प आनन्द के पूर्ण पेय पीते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति थी, इतनी व्यक्त पूर्ण हो गयी। ऐसे परमात्मा शरीर सहित होने पर भी उन्हें तृषा और भूख नहीं होती। आहाहा! देव के स्वरूप को भी विकृत कर डाला है। समझ में आया? वस्तु तो जैसी हो, वैसी होगी। उससे जहाँ खोटी हो, उसे सच्ची स्थापित करना, वह कहीं समन्वय है? वह सत्य है?

थिर समाधि सुख सहित। पूर्ण आनन्द में स्थिर हो। समझ में आया? **थिर समाधि सुख सहित।** श्वेताम्बर में आता है। वह त्रिशला नहीं, पहले देवानन्दा के गर्भ में थे न? ऐसा कहते हैं न? देवानन्दा के गर्भ में थे, फिर त्रिशला के गर्भ में। फिर भगवान को केवलज्ञान हुआ, तब उनकी माँ देवानन्दा दर्शन करने आयीं। ऐसे पुत्र का प्रेम, इसलिए एकदम स्तन में से दूध झरा। इसलिए प्रश्न हुआ कि यह क्या? तो भगवान कहते हैं कि यह मेरी अम्मा। यह मेरी माता है। अरे, ऐसा होता है? समझ में आया? जयन्तीभाई! सुना है या नहीं परन्तु यह? यह मेरी अम्मा। यह तो मेरी माता है। अरे, उन्हें ऐसा विकल्प कैसा और ऐसी वाणी कैसी? समझ में आया?

देवानन्द के गर्भ में ७२, कितनी? ८२ रात्रि रहे। आता है कल्पसूत्र में बहुत आता है। ८२ रात्रि। फिर त्रिशला के गर्भ में। सब बात कल्पित है, हों! देव के स्वरूप को बिगाड़ दिया। जिनके देव के स्वरूप का ठिकाना नहीं, उनके आत्मा की श्रद्धा का ठिकाना होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा सब बनावट करने का हेतु क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब सम्प्रदाय अलग करने के लिये। यह है या नहीं? है और यह एकदम न्याय से विरुद्ध है। मात्र अपना सम्प्रदाय चलाने के लिये यह कल्पित शास्त्र बनाये हैं। यह ३२ सूत्र, ४५ सूत्र सब कल्पित। वीतराग के कहे हुए वे नहीं हैं। भीखाभाई!

वीतराग के कहे हुए तो यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा के श्रीमुख से आये हुए। समझ में आया? जो यह परमागम (मन्दिर) होता है तीन लाख का। देरी लगती है। चींटी के वेग से होता है धीरे-धीरे। अब कब होगा? यह सब रहे दो ही। ऐई, परषोत्तमभाई! यह दो व्यक्ति तुम थे उसमें .... यह तो परम आगम। आहाहा! वीतराग की वाणी। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा के मुख से निकली हुई वाणी, वह सन्तों ने झेली और वापस सन्तों ने कही। ऐसी बात है, बापू! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, भगवान तो आनन्द की लहर—सुख की शान्ति में विराजते हैं। वाणी, वाणी के कारण से निकलती है। शरीर, शरीर के कारण से गति करता है। विहार होता है। आहाहा! केवली किसे कहें! जिसे चार कर्म बाकी है, उसका उसे ज्ञान तो हो गया है कि इतना होगा और यह इस समय टलेंगे। वह सब ज्ञान हो गया है। उन्हें कुछ बाकी है नहीं। ऐसे देवाधिदेव अरिहन्त के अठारह दोषरहितरूप से है, उन्हें कोई ऐसा दोष ठहरावे तो वह अरिहन्त को पहिचानते नहीं। तो अरिहन्त का स्वरूप भी अभी जिसका सच्चा नहीं, उसे आत्मा का सच्चा स्वरूप प्रगट नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : मूल तो उसे आत्मा का स्वरूप ही नहीं मिलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो की हो कोई परन्तु अब ऐसी यह जाति कहाँ? बापू! क्या कहें! किसी पक्ष को दुःख लगे, ऐसी बात नहीं। यह तो सत्य ऐसा है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजते हैं, उनका ऐसा स्वरूप है। अरिहन्तपद में जब तक हों, तब तक शरीर होता है, वाणी होती है। परन्तु क्षुधा, तृषा और रोग हो, यह तीन काल में नहीं होता। कलंक है। यह देव को ऐसा कहना, वह

कलंक है। अरेरे! उसे ऐसा कहना कि महावीर को दो माँ और दो पिता, कलंक है। भाई! समझ में आया? यों भी दुनिया में नहीं कहते कि ... दो बाप का है? ऐसा कहते हैं न? यह तीन लोक के नाथ, जिन्हें सौ-सौ इन्द्र जिनके तलिया चाटे, जिनकी रज सिर पर चढ़ाये, ऐसे भगवान को ऐसा कहना कि उन्हें दो माँ और दो पिता थे। वस्तु एकदम कल्पित है। समझ में आया? यह लोगों को कठिन लगता है।

वे सब समान मानो, ऐसा कहे। अपने को क्या हक है कि श्वेताम्बर मिथ्यादृष्टि है, (ऐसा कहना)? और ऐसा कहते हैं। लो, बापू! वस्तु की स्थिति तो ऐसी है, भाई! किसी के तिरस्कार के लिये नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है, ऐसा धर्मी को अरिहन्तपद को इस प्रकार से पहिचानना चाहिए। जिनके यह देव-गुरु-शास्त्र में अन्तर है, उनके आत्मा में अन्तर होता है, होता है और होता है। भारी कठिन काम, हों! वीरचन्दभाई!

मुमुक्षु : अपनी....

पूज्य गुरुदेवश्री : न सके। आहाहा! **निर्विकल्प आनन्द में सदा लीन रहते हैं।** अरेरे!ऐसा पुण्य उनका कम हो कि उन्हें दो पिता हो? ऐसा पुण्य कम हो कि वे स्त्री हों? भाई! तीन लोक के नाथ को वे कलंक लगाते हैं। समझ में आया? परमेश्वर के स्वरूप को दाग देते हैं। इसके लिये यह वर्णन किया है।

अब, **केवलज्ञानी प्रभु के परमौदारिकशरीर का अतिशय।** उनका शरीर ही परमौदारिक होता है। तीर्थंकर को तो जन्म से ही परम औदारिक होता है। तीर्थंकरदेव का आत्मा जहाँ जन्मे तो शरीर के संहनन में वह पहले से परम औदारिक शरीर होता है। उन्हें मल-मूत्र पहले से नहीं होते, ऐसा जिन्हें शरीर होता है। समझ में आया? अरे! कीमती रत्न तो ऊँची डिब्बी में रहे न? कहीं थैली में रहता होगा? इसी प्रकार उत्तम परमात्मा तीर्थंकरदेव का आत्मा तीन ज्ञान लेकर आवे। उनका शरीर ही, कहते हैं कि परम औदारिक पहले से होता है। और दूसरे केवली हों, उन्हें केवल (ज्ञान) हो, तब परमौदारिक शरीर हो जाता है। समझ में आया? यह केवलज्ञानी प्रभु के परमौदारिक शरीर का अतिशय।

★ ★ ★

काव्य - १०९

केवलज्ञानी प्रभु के परमौदारिक शरीर का अतिशय (कुण्डलिया)

वानी जहां निरच्छरी, सप्त धातु मल नांहि।
केस रोम नख नहिं बढ़ैं, परम उदारिक मांहि।।
परम उदारिक मांहि, जांहि इंद्रिय विकार नसि।
यथाख्यातचारित्र, प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि।।
लोकालोक प्रकास-करन केवल रजधानी।
सो तेरम गुनथान, जहां अतिशयमय वानी।।१०९।।

शब्दार्थ:-निरच्छरी=अक्षर रहित। केस (केश)=बाल। नख=नाखून। उदारिक (औदारिक)=स्थूल। ससि (शशि)=चन्द्रमा।

अर्थ:-तेरहवें गुणस्थान में भगवान की अतिशयमय निरक्षरी दिव्यध्वनि खिरती है। उनका परमौदारिकशरीर सप्त धातु और मल-मूत्र रहित होता है। केश रोम और नाखून नहीं बढ़ते, इन्द्रियों के विषय नष्ट हो जाते हैं, पवित्र यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है, स्थिर शुक्लध्यानरूप चन्द्रमा का उदय होता है, लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञान पर उनका साम्राज्य रहता है।।१०९।।

काव्य-१०९ पर प्रवचन

वानी जहां निरच्छरी, सप्त धातु मल नांहि।
केस रोम नख नहिं बढ़ैं, परम उदारिक मांहि॥
परम उदारिक मांहि, जांहि इंद्रिय विकार नसि।
यथाख्यातचारित्र, प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि॥
लोकालोक प्रकास-करन केवल रजधानी।
सो तेरम गुनथान, जहां अतिशयमय वानी॥१०९॥

रामजीभाई! यह अरिहन्त के स्वरूप का भी ठिकाना नहीं होता। कुछ का कुछ

कल्पित करते हैं। आहाहा! **वानी जहां निरच्छरी,...** उन्हें ओम ध्वनि उठती है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव। आहाहा! समझ में आया? ऐसी वाणी नहीं होती अपने यह बोलते हैं भेदवाली भाषा, वैसी उन्हें नहीं होती। पूर्ण सर्वज्ञ और वीतराग को तो पूरे शरीर में से ओम ध्वनि उठती है। समझ में आया? **वानी जहां निरच्छरी,...** फिर उस अतिशय में लेकर लोगों को सब ज्ञात हो उसमें। सात सौ भाषा का ज्ञान उसमें होता है। वाणी तो ओम धारा निकले। 'ओम ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' बनारसीदास में आता है। अपने पम्पलेट प्रकाशित किये थे पहले। (संवत्) १९९५, ९५। यहाँ से जब विहार किया था न, फाल्गुन शुक्ल एकम् को किया था न, यह ओम। ओम। यह इटली का पत्थर है ओम (जिस पर लिखा गया है)।

यह इटली की मशीन आनेवाली है। तब कुछ सुना था। इटली का पत्थर है यह संगमरमर। कीमती होता है। वह मशीन आनेवाली है, वह इटली की। छत्तीस हजार की। अक्षर लिखने की। वहाण में—जहाज में चढ़ गयी है। अपने अक्षर लिखने की मशीन आवे और अक्षर समान हो तो कोई भाग्य जगत का, हों! ऐसे समान अक्षर लिखे न मशीन... यह सहज ही हिन्दुस्तान में पहली-पहली है। बहुत मेहनत की है भाई ने, हों! अपने पोपटभाई। उनका पुत्र हसमुख। वहाँ ठेठ इटली था। बीस दिन रहकर मशीन, सब सामग्री-बामग्री चढ़ाकर मेहनत बहुत की लड़के ने। उसे बहुत प्रेम था। अपने पोपटभाई नहीं टाईल्सवाले? मुम्बई। उनके छह पुत्र। बड़े पुत्र को (प्रेम) बहुत। बीस दिन अकेला इटली गया। बड़ी मशीन न... परमागम को.... कुछ पुण्य कम, इसलिए यह जरा देरी लगती है। उसके विकल्प बहुत आते हैं। रात्रि में नींद उड़ जाये तब वे विकल्प आवे वापस।

मुमुक्षु : विकल्प आवे ऐसा स्वरूप नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। ऐसा न होता हो तो कुछ नहीं था। किसने कहा कि बनाओ? कहा बनाओ। परन्तु हुआ है न अब उसे।

बेचारे कितने ही चले जाते हैं, देखो न! जवान भी। कितने ही आकर कहते हैं, कि महाराज! कब होगा? अब भाई! मेरे हाथ में है? रात्रि में कितनी बार तो नींद उड़ जाती है अभी, हों! फिर अब भाई! सब होता है। वह परपदार्थ का समूह उसमें कुछ

नहीं होता, उसके साथ आत्मा को क्या है ? आहाहा ! ऐई ! यह बहिन को हो जाये कि आहाहा ! कैसे बेचारे देखो न अपने मोहनभाई तुरखिया चले गये। नानाभाई गये राणपर। यह बहिन गयी कंचनबेन। उन्हें बेचारे को बहुत प्रेम था। परन्तु बेचारी को थोड़ी व्याधि हुई। यह कैंसर और चली गयी बेचारी। ऐसे तो बहुत ही अभी। परन्तु (समय) लम्बा होता जाता है उसमें .... हमको .... कुछ अन्तर है थोड़ा इसमें। यहाँ तो निरक्षरी वाणी भगवान की थी, वह यहाँ परमागम में उत्कीर्ण होनेवाली है। उसमें से यह शास्त्र आये और उसमें से यह उत्कीर्ण होना है। हाँ, ऐसी बात है। बापू ! आहाहा !

सप्त धातु मल नांहि। भगवान के शरीर में सात धातु नहीं होती। चरबी, माँस वह नहीं होता। आहाहा ! **केस रोम नख नहिं बढ़ैं,...** भगवान को केश बढ़ते नहीं। ऐसा का ऐसा रहे। यहाँ तो आठ दिन में यह हजामत न करे तो दाढ़ी बढ़े। रविवार को नाई को खोजे। नाई कहाँ है। वह दाढ़ी करे। यह तो कहे, करोड़ों वर्ष तक भगवान रहें, परन्तु उनके केश और नख बढ़ते नहीं। इतना पुण्य है। पवित्रता की तो बात क्या करना ? परन्तु उनका पुण्य इतना अधिक है। **केश रोम नख।** रोम बढ़े नहीं यह सब, हों ! कितनों के बढ़ते हैं न ऐसे यहाँ बढ़े कोई छाती में हो, यहाँ हो। हाँ। बड़े-बड़े हों कितनों के छाती में अन्दर। ऐसे रोम उन्हें बढ़ते नहीं। केश बढ़ते नहीं सिर आदि के, रोम बढ़ते नहीं शरीर आदि के, नख बढ़ते नहीं अँगुली के। इतने के इतने रहते हैं। आहाहा ! यह वह कहीं ! ऐसा स्वरूप परमात्मा तीर्थंकर का ऐसा स्वरूप होता है। केवली का ऐसा होता है।

परम उदारिक मांहि। परम औदारिक शरीर। रजकण-रजकण स्फटिक जैसे। जिसमें दूसरा व्यक्ति नजर करे तो सात भव देखे, ऐसा तो शरीर निर्मल हो जाता है। आहाहा ! देखो, उनका एक पुण्य तो देखो ! पवित्रता और पुण्य ऐसे दोनों साथ में बढ़ गये हैं। उन्हें भगवान कहते हैं। यह तो ऐरे-गैरे नाम धरावे और हम भगवान हैं, लो। हम परमेश्वर हैं। समझ में आया ?

स्वामी नारायण और गजानन्द थे न, एक बार लीमड़ी में आये थे। लीमड़ी के उपाश्रय में रहने। स्थानकवासी के उपाश्रय में। उनकी मौजूदगी में—सजानन्द की मौजूदगी में। स्थानकवासी के साधू के पास रहे हुए। लीमड़ी में जरा स्थानकवासी का

बहुत है। फिर साधु ने कहा उसे, तुम प्रभु नाम—भगवान नाम धराते हो? उससे पूछा साधु ने। हाँ, वह प्रभु का पेट बड़ा, सब उसमें समाये, कहे। ऐसा जवाब दिया। अब ऐसा समाये? प्रभु का पेट बड़ा है, कहे। उसमें सब समाये, कहे। लीमड़ी के उपाश्रय की बात है। बापू! यह भगवान नहीं होता। भाई! आहाहा! जिसे शरीर अकेला नग्न रह गया हो। जिसे क्षुधा-तृषा का नाश हो गया हो और जिसे परमौदारिक के रजकण स्फटिक जैसे हो जायें। आत्मा तो स्फटिक जैसा चैतन्य केवलज्ञानी हुआ, शरीर भी हो जाये। समझ में आया?

परम उदारिक मांहि, जांहि इंद्रिय विकार नसि। इन्द्रिय का विकार नहीं होता। विकार कैसा? अणीन्द्रिय शान्त इन्द्रियाँ सब उन्हें शान्त हो गयी है जड़पने की पर्याय में। **यथाख्यातचारित।** जैसा स्वरूप है, वैसा स्थिर हो गया। **प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि।** उसे शुक्लध्यान... देखो, शुक्लध्यानरूपी चन्द्र खिल गया है। आहाहा! किसका ध्यान करे? आता है न प्रवचनसार में। केवली किसका ध्यान करे? कहे, करे आनन्द का। प्रवचनसार में (आता है)। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव। आहाहा! 'यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान में, गजा बगर अरु हाल मनोरथरूप जो, तो भी निश्चय राजचन्द्र मन में रहा, प्रभु आज्ञा से होऊँगा वही स्वरूप जब।' यह सर्वज्ञ हम होंगे, ऐसा कोलकरार आत्मा की अनुभव अर्थात् दृष्टि में से आता है। समझ में आया? आहाहा!

थिर सुकल ध्यान ससि, लोकालोक प्रकास-करन केवल रजधानी। उसे तो केवलज्ञानरूपी राजधानी है। केवलज्ञान साम्राज्य है। कहो, समझ में आया? तीन काल के राजाओं और चक्रवर्ती का भी ज्ञान उनके ज्ञान में आ जाता है। आहाहा! परमेश्वर किसे कहें? अरिहन्त किसे कहें? आहाहा! और जिसने ऐसा.... **जो जाणदि अरहंतं,** आता है न? जो कोई अरिहन्त के पद को जाने कि ऐसा अरिहन्तपद सर्वज्ञ का देह में रहा होने पर भी, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, वह आत्मा को जाने और उसका मोह नाश पाये, ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? फिर और वहाँ ऐसा भी प्रश्न उठे कि परद्रव्य को जानने से मोह का नाश होगा? परन्तु वह परद्रव्य ऐसा है सर्वज्ञ परमात्मा, ऐसा विकल्प में जो ज्ञान हुआ, उसे तोड़कर अन्तर्मुख में जाये, तब आत्मा का ज्ञान होता है, तब अरिहन्त को जानने से हुआ, ऐसा कहा जाता है। अन्तर में सर्वज्ञपद

में डोलता भगवान विराजता है अन्दर, उसमें जाकर उसे सम्यग्दर्शन हो, तब अरिहन्त को जानने से हुआ, ऐसा कहा जाता है। अरे!

केवल रजधानी, सो तेरम गुनथान, जहां अतिशयमय वानी। आहाहा! जिनकी ओमध्वनि अतिशय वाणी। अमृतधारा छूटे। इन्द्र भी जहाँ पिल्ले की भाँति ऐसे बैठे हों ऐसे। आहाहा! अर्धलोक के स्वामी। बत्तीस-बत्तीस लाख विमान का साहेब। अर्धलोक के राजा शकेन्द्र और ईशान इन्द्र। वह भी जहाँ भगवान की वाणी ऐसी... ऐसी जिनकी अतिशय वाणी होती है, उन्हें अरिहन्त और परमेश्वर और तेरहवाँ गुणस्थान कहा जाता है। बाकी सब बातें करे और पूरी बात का अन्तर है। विपरीत मान्यता है। आहाहा! जेठाभाई कहे, परन्तु ऐसा किया किसलिए? तब ऐसा कहते हैं, लो। यह अपना सम्प्रदाय चलाने के लिये अनेक प्रकार से जगत चलता है, आहाहा! चौदहवें गुणस्थान का वर्णन।

★ ★ ★

काव्य - ११०

चौदहवें गुणस्थान का वर्णन-प्रतिज्ञा (दोहा)

यह सयोगगुनथानकी, रचना कही अनूप।
अब अयोगकेवल दसा, कहूं जथारथ रूप।।११०।।

अर्थः-यह सयोगी गुणस्थान का वर्णन किया, अब अयोगकेवली गुणस्थान का वास्तविक वर्णन करता हूँ।।११०।।

काव्य-११० पर प्रवचन

यह सयोगगुनथानकी, रचना कही अनूप।
अब अयोगकेवल दसा, कहूं जथारथ रूप॥११०॥

तेरहवें गुणस्थान के पश्चात् पाँच अक्षर (बोले जायें इतने काल) में यह चौदहवाँ

गुणस्थान आता है। पूरा हुआ तो सिद्ध हो जाते हैं। समझ में आया? **कहूं जथारथ रूप।** उसका स्वरूप।

★ ★ ★

काव्य - १११

चौदहवें गुणस्थान का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

जहां काहू जीवकौं असाता उदै साता नाहिं,
काहूकौं असाता नाहिं, साता उदै पाइयै।
मन वच कायसौं अतीत भयौ जहां जीव,
जाकौ जसगीत जगजीतरूप गाइयै।।
जामैं कर्मप्रकृतिकी सत्ता जोगी जिनकीनी,
अंतकाल द्वै समैमैं सकल खिपाइयै।
जाकी थिति पंच लघु अच्छर प्रमान सोई,
चौदहौं अजोगीगुनठाना ठहराइयै।।१११।।

शब्दार्थ:–अतीत=रहित। खिपाइयै=क्षय करते हैं। लघु=ह्रस्व।

अर्थ:–जहाँ पर किसी जीव को असाता[१] का उदय रहता है, साता का नहीं रहता, और किसी जीव को साता का उदय रहता है, असाता का नहीं रहता, जहाँ जीव के मन, वचन, काय के योगों की प्रवृत्ति सर्वथा शून्य हो जाती है, जिसके जगज्जयी होने के गीत गाये जाते हैं, जिसको सयोगी जिनके समान अघातिया कर्म–प्रकृतियों की सत्ता रहती है, सो उन्हें अन्त के दो समयों में सर्वथा क्षय[२] करते हैं, जिस गुणस्थान का काल ह्रस्व पंच अक्षर प्रमाण है, वह अयोगी जिन चौदहवाँ गुणस्थान है।।१११।।

---

१. केवलज्ञानी भगवान को असाता का उदय बाँचकर विस्मित नहीं होना चाहिए। वहाँ असाता कर्म, उदय में सातारूप परिणमता है।

२. पुनि चौदहवें चौथे सुकलबल बहत्तर तेरह हतीं, (जिनेन्द्र पंचकल्याणक)

काव्य-१११ पर प्रवचन

जहां काहू जीवकौं असाता उदै साता नाहिं,
काहूकौं असाता नाहिं, साता उदै पाइयै।
मन वच कायसौं अतीत भयौ जहां जीव,
जाकौ जसगीत जगजीतरूप गाइयै॥
जामैं कर्मप्रकृतिकी सत्ता जोगी जिनकीनी,
अंतकाल द्वै समैमैं सकल खिपाइयै।
जाकी थिति पंच लघु अच्छर प्रमान सोई,
चौदहौं अजोगीगुनठाना ठहराइयै॥१११॥

सर्वज्ञ परमेश्वर तेरहवें गुणस्थान में होते हैं। पश्चात् चौदहवाँ (गुणस्थान) एक पाँच अक्षर वार। समझ में आया? रहते हैं। ऐसी गुणस्थान की दशा। **असाता उदै साता नाहिं,...** किसी केवली को असाता का उदय अन्दर हो अनन्तवें भाग रस, परन्तु वह असाता का साता हो जाता है। असाता का उदय, इसलिए उन्हें रोग हों, ऐसा नहीं। अन्दर नीचे लिखा है, देखो। **केवलज्ञानी भगवान को असाता का उदय वाँचकर विस्मित नहीं होना चाहिए। वह असाता कर्म उदय में सातारूप परिणमता है।** वह तो अनन्तवें भाग में कोई अन्दर असाता का उदय आवे, रजकण में अन्तर हो, वह सातारूप हो जाये, लो। असाता का उदय हो और साता की सत्ता पड़ी हो। और किसी को साता का उदय हो और असाता की (सत्ता) हो।

दो प्रकार। उन्हें असाता सत्ता में पड़ी हो और साता का उदय हो केवली को। देखो, उदय उदय में केवली को भी उसमें अन्तर होता है। समझ में आया? असाता सुनकर कोई रोग होता है या क्षुधा लगती है या तृषा लगती है—ऐसी असाता उन्हें नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : असाता का सातारूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : सातारूप संक्रमण हो जाता है। वस्तु है न ऐसी।

मुमुक्षु : दो बात कैसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : साता का उदय हो, असाता सत्ता में पड़ी हो, ऐसा भी होता है। किसी को साता का उदय हो और असाता सत्ता में पड़ी हो। दो प्रकृति है न! अभी वह कहीं गयी नहीं। समझ में आया? जानने की बात बहुत चर्चित नहीं करते यहाँ तो।

मन वच कायसौं अतीत भयौ जहां जीव,... आनन्दस्वरूप में स्थिर होने पर जहाँ कम्पन मन-वचन और काया के निमित्त से था, वह कम्पन छूट गया। अकम्प मेरु की भाँति स्थिर बिम्ब हो गया ऐसा। **जाकौ जसगीत जगजीतरूप गाइयै। जहाँ जीव के मन, वचन, काय के योगों की प्रवृत्ति सर्वथा शून्य हो जाती है, जिसके जगज्जयी होने के गीत गाये जाते हैं।** उसने संसार को जीता। उसे संसार का नाश हो गया। समझ में आया? **जामैं कर्मप्रकृतिकी सत्ता जोगी जिनकीनी।** तेरहवें गुणस्थान में जो सत्ता थी न, इतनी की इतनी वहाँ होती है, ऐसा कहते हैं।

अंतकाल द्वै समैमैं सकल खिपाइयै। अन्तिम दो समय में सब प्रकृति नाश हो जाती है। **जाकी थिति पंच लघु अच्छर...** अ, ई, उ, ऋ, लृ इतने पाँच अक्षर (जितना काल) रहे। मेरु पर्वत की भाँति अकम्परूप से देह छूट जाती है। सिद्ध हो जाते हैं। **चौदहौं अजोगीगुनठाना ठहराइयै।** लो। यह चौदह व्याख्या हो गयी। **बन्ध का मूल आस्रव और मोक्ष का मूल संवर है।** अब विशेष स्पष्ट करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ११२

बंध का मूल आस्रव और मोक्ष का मूल संवर है (दोहा)

चौदह गुनथानक दसा, जगवासी जिय भूल।
आस्रव संवर भाव द्वै, बंध मोखके मूल।।११२।।

अर्थः-गुणस्थानों की ये चौदह अवस्थाएँ संसारी अशुद्ध जीवों की हैं। आस्रव और संवर भाव बंध और मोक्ष की जड़ हैं; अर्थात् आस्रव बंध की जड़ है और संवर मोक्ष की जड़ है।।११२।।

काव्य-११२ पर प्रवचन

चौदह गुनथानक दसा, जगवासी जिय भूल।
आस्त्रव संवर भाव द्वै, बंध मोखके मूल॥११२॥

वह अभी चौदहवें गुणस्थान तक जगवासी कहलाते हैं। है न इतना उदय। आहाहा!

अब कहते हैं, जितना अन्दर पुण्य और पाप का भाव, वह आस्त्रव, वह संसार के बन्ध का कारण। आस्त्रव बन्ध का कारण। पुण्य और पाप की वृत्तियाँ विकल्प जितने हैं, वे आस्त्रव हैं। नये आवरणों का कारण है। बन्ध, आस्त्रव-बन्ध। और **संवर मोखके मूल।** पुण्य-पाप के परिणामरहित स्वरूप की आनन्ददशा की स्थिरता और श्रद्धा-ज्ञान की स्थिरता, ऐसा जो संवरभाव अर्थात् राग का रुक जाना और संवर अर्थात् निर्मल अरागी दशा का प्रगट होना, वह मोक्ष का मूल है। संवर, वह मोक्ष का मूल और आस्त्रव, वह संसार का मूल। अरे! बहुत संक्षिप्त बात की। आस्त्रव—संवरभाव बन्ध और मोक्ष की जड़ है। मूल कहा न! आस्त्रव बन्ध की जड़ है, लो। आहाहा!

पंच महाव्रत के परिणाम, वह आस्त्रव है। साधु के २८ (मूल) गुण विकल्प, वह सब आस्त्रव है। समझ में आया? यह आस्त्रव है, वह बन्ध का मूल है। वह उदयभाव है न वह और संवर मोक्ष की जड़ है। वह पुण्य-पाप के विकल्प से रहित आत्मा के अन्तर में आश्रय करके जो अरागी परिणति शुद्ध प्रगट हो, उसे संवर कहते हैं। वह संवर मोक्ष का मूल है। लो, बन्ध का मूल आस्त्रव और मोक्ष का मूल संवर, दो संक्षिप्त में डाला। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी आस्त्रव है और वह बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

सोलह कारणभावना आती है न? श्वेताम्बर में बीस बोल आते हैं। बीस बोल से तीर्थंकरगोत्र बँधता है। दिगम्बर में सोलह आवे और सोलह तत्त्वार्थसूत्र में वापस सोलह रखे हैं। परन्तु है वह। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह बन्ध का कारण, वह आस्त्रव है तीर्थंकरपने के कारण से। वह अपराध है। वह शुभ उपयोग का अपराध

है। उससे तीर्थंकर प्रकृति बँधती है। आहाहा! और संवर, वह मोक्ष का मूल है।

भगवान आत्मा अपना निज स्वभाव, उसका आश्रय लेकर जितनी रागरहित अरागी दशा हो, वह अरागी दशा, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र होता है। वह संवर और वह मोक्ष का कारण है। कहो, अब यह प्रत्यक्ष प्रगट है, उसमें भी गड़बड़ करे कि महाव्रत से धर्म होता है, महाव्रत से संवर है न। समझ में आया? महाव्रत तो निर्जरा का कारण है, ऐसा तो यह श्वेताम्बर में ठाणांग में पाठ है। निर्जरा का कारण। लोगों को बेचारों को उलझाया। आगे चलना उसे। यह तो वृत्ति उठती है, यह पालना। दया पालना, झूठा नहीं बोलना, चोरी नहीं करना। विषय सेवन, वह सब विकल्प है, वह तो राग है। वह तो आस्रव है और आस्रव तो बन्ध का कारण है। उसे धर्म का कारण माने और उसे मोक्ष का कारण मानना, दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे झगड़े में एक व्यक्ति कहता था कि ऐसे झगड़े! झगड़े नहीं, भाई! हल है इसका। सत्य का स्वरूप ऐसा होता है और यह सत्यधर्म का निचोड़ है। उसे यह निर्णय करना चाहिए। माल लेने जाते हैं तो परीक्षा करके लेते हैं या नहीं? ऐसे के ऐसे ले लेते होंगे? इसमें देव कैसे होते हैं, गुरु कैसे होते हैं, सिद्धान्तशास्त्र कैसे होते हैं, उसकी परीक्षा करके मानना चाहिए। परीक्षा बिना माने, वह बात सच्ची नहीं। **संवरको नमस्कार।**

★ ★ ★

काव्य - ११३-११४

संवर को नमस्कार (चौपाई)

आस्रव संवर परनति जौलौं।
जगतनिवासी चेतन तौलौं।।
आस्रव संवर विधि विवहारा।
दोऊ भव-पथ सिव-पथ धारा।।११३।।

आस्रवरूप बंध उतपाता।
संवर ग्यान मोख-पद-दाता।।
जा संवरसौं आस्रव छीजै।
ताकौं नमस्कार अब कीजै।।११४।।

अर्थः-जब तक आस्रव और संवर के परिणाम हैं, तब तक जीव का संसार में निवास है। उन दोनों में आस्रव-विधि का व्यवहार संसार-मार्ग की परिणति है, और संवर-विधि का व्यवहार मोक्षमार्ग की परिणति है।।११३।। आस्रव बंध का उत्पादक है और संवर ज्ञान का रूप है, मोक्षपद का देनेवाला है। जिस संवर से आस्रव का अभाव होता है, उसे नमस्कार करता हूँ।।११४।।

काव्य-११३-११४ पर प्रवचन

आस्रव संवर परनति जौलौं।
जगतनिवासी चेतन तौलौं।
आस्रव संवर विधि विवहारा।
दोऊ भव-पथ सिव-पथ धारा॥११३॥
आस्रवरूप बंध उतपाता।
संवर ग्यान मोख-पद-दाता॥
जा संवरसौं आस्रव छीजै।
ताकौं नमस्कार अब कीजै॥११४॥

बनारसीदास स्पष्ट करते हैं। **आस्रव संवर परनति जौलौं।** जब तक पुण्य-पाप की परिणति अवस्था है और जब तक उसके साथ संवर की दशा है। **जगतनिवासी चेतन तौलौं।** वहाँ तक जगत का संसारी प्राणी है। भले संवर की धारा हो, परन्तु पूर्णदशा नहीं है, इसलिए तब तक वह संसारी जीव कहलाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आस्रव संवर विधि विवहारा। निश्चय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव आनन्दमूर्ति, वह

निश्चय। उसके पुण्य और पाप का राग होता है, वह व्यवहार, वह बन्ध का कारण और आत्मा के आश्रय से पर्याय संवर वीतरागीदशा प्रगट हो मोक्षधर्म, वह भी व्यवहार है। त्रिकाली की अपेक्षा से वह पर्याय है, इसलिए व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा! अब यह कहाँ निवृत्त हो? ऐसा मेल कहाँ होगा? एक तो कमावे के लिये रुके, उसमें फुरसत नहीं मिलती। उसमें से निवृत्त हो तो ऐसा सुनने को मिलता नहीं। उल्टा सुनने को मिले, उसमें उसे कब निर्णय करना? आहाहा!

आस्त्रव संवर विधि विवहारा। यह संवर विधि व्यवहार है। पर्याय है न! धर्म की दशा, वह व्यवहार है। पर्याय है न! आस्त्रव अधर्मदशा है, वह भी व्यवहार है। आहाहा! अन्तर तत्त्व त्रिकाली भगवान की अपेक्षा से संवर भी बहिर्तत्त्व है। समझ में आया? आस्त्रव—पुण्य-पाप का भाव, मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत आदि, वह तो बहिर्तत्त्व है ही, मलिन बहिर्तत्त्व है, परन्तु अन्तरतत्त्व त्रिकाली भगवान की अपेक्षा से वह संवर-निर्जरा अर्थात् मोक्ष के मार्ग की परिणति, वह भी एक बहिर्तत्त्व है। आहाहा! इसलिए उसे व्यवहार कहा है।

दोऊ भव-पथ सिव-पथ धारा। जितना पुण्य-पाप का राग, वह भव पंथ है और संवर, वह शिवपंथ धारा। दो धारा धर्मी को बहती है। सम्यग्दृष्टि को पूर्ण दशा न हो, तब तक दो धारा होती है। एक आत्मा के आश्रय से होती धर्मधारा और अपूर्णता के कारण होती एक विकार की कर्मधारा। दो धारा। उसमें शिवपंथ धारा मोक्ष का मार्ग और राग आदि का भाव, वह बन्ध की धारा कर्मधारा। समझ में आया? यह एक-एक पर्याय की सम्हाल ली है। ऐसा स्वरूप अन्यत्र नहीं हो सकता। आहाहा! कहते हैं, **दोऊ भव-पथ सिव-पथ धारा।** आत्मा के आनन्द के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति—संवरधारा, वह मोक्षस्वरूप शिवपंथ की धारा। उसमें बाकी राग की धारा हो तो दया, दान, व्रत, विकल्प उठे, वह भवपंथ की धारा। संसार के बन्ध की धारा। आहाहा! समझ में आया?

आस्त्रवरूप बंध उतपाता। आहाहा! जितना पुण्य-पाप का भाव, वह तो बन्ध का उत्पात है। समझ में आया? अर्थात् बन्ध का उत्पादक है। यह सब विवाद बहुत

चढ़े। नहीं, पुण्य आस्रव है, वह संवर का कारण होता है। उसमें आंशिक शुद्धता, वह संवर है, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। अरे, परन्तु क्या करता है तू? भाई! मुश्किल से मार्ग हाथ आया। मनुष्यदेह मिला, उसमें से निकलने का प्रसंग, उसमें ऐसी विपरीतता करेगा तो कहीं अन्त है नहीं। जितना आत्मा वस्तु के आश्रय से परिणति निर्मल धारा हो, उतना उसे मोक्ष का मार्ग गिना जाता है। जितना निमित्त के आश्रय से पुण्य और पाप का विकल्प उठे, चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव और चाहे तो आहारकशरीर के बन्धन का भाव और चाहे तो सर्वार्थसिद्धि के आयुष्य का भाव, वह सब बन्धरूप उत्पात है। बन्ध की उत्पत्ति करनेवाला है। आहाहा!

संवर ग्यान मोख-पद-दाता। कहते हैं, **संवर ज्ञान का रूप है।** अर्थात्? आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है, उसमें एकाग्र होने से जो रागरहित ज्ञान और शान्ति प्रगट होती है, वह ज्ञान का रूप है। वह आस्रव का रूप नहीं। समझ में आया? एक समय की पर्याय में दो भाग; एक भाग संवरधारा और एक भाग आस्रवधारा। ऐसी बात यह कहीं! आहाहा! समय एक, पर्याय एक, पर्याय दो नहीं। उस एक के दो भाग। जितना आत्मा भगवान के आश्रय से जो पर्याय निर्मल हो, उतना मोक्ष का पंथ—छूटने का मार्ग और जितना अन्दर पर्याय में राग की उत्पत्ति सूक्ष्म हो, वह भी बन्ध का उत्पादक है।

संवर ग्यान मोख-पद-दाता। मोक्ष पद की दाता संवरधारा है, कहते हैं। और वह संवर ज्ञानरूप है, ऐसा कहते हैं। स्वयं चिद्घन है और ज्ञानस्वरूप अर्थात् उसकी परिणति भी ज्ञानस्वरूप जो हो रागरहित, वह मोक्ष की दाता है। **ज्ञान संवरसौ।** संवर ज्ञान का अर्थ यह कि जो आत्मा ध्रुव नित्यानन्द का आश्रय करके जो निर्मलधारा शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति हो, वे तीनों ज्ञानधारा कही जाती है। क्योंकि ज्ञान अर्थात् आत्मा का वह अंश है, वह राग का अंश नहीं। सम्यग्दर्शन भी ज्ञानधारा कही जाती है। क्योंकि सम्यग्दर्शन, वह ज्ञान की प्रतीति और वह ज्ञान का अंश है। समझ में आया? चारित्र, वह भी ज्ञान का अर्थात् आत्मा का अंश है वह। आत्मा ज्ञानस्वरूपी में स्थिर हुआ, वह ज्ञान की स्थिरता, वह ज्ञानरूप है। समझ में आया?

द्रव्य और गुण तो त्रिकाल है। परन्तु भगवान त्रिकाली परमात्मा स्वयं का आश्रय

ले पर्याय में उसका, इतनी पर्याय, वह शिवपंथ की अंश है। और उस अंश में जितना राग भाग परलक्ष्यी है, वह बन्ध का कारण है। एक पर्याय के दो भाग; दो पर्याय नहीं। समझ में आया? अब ऐसा सूक्ष्म लोगों को कठिन पड़े। अब एक समय की पर्याय। आँख बन्द करके उघाड़े, उसमें असंख्य समय जाते हैं। अब एक समय की पर्याय के वापस दो भाग। अब एक समय की पर्याय, उसके दो भाग। समझ में आया? जितना परमात्मा स्वयं अपना आश्रय लेकर जो दशा प्रगट हो, वह अंश शिवधारा—मोक्षधारा—ज्ञानरूपधारा कहते हैं। उसमें बाकी रहा हुआ विकल्प उठे, उसे बन्धधारा—आस्रवधारा कहते हैं। **संवर ग्यान मोख-पद दाता,....** लो। ज्ञान, वह मोक्षपद का दाता है, ऐसा कहते हैं। अकेला ज्ञान? परन्तु उस ज्ञान का अर्थ ही ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति तीनों को ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान अर्थात् आत्मा के अंश हैं। राग का भाग नहीं। समझ में आया?

जा संवरसौं आस्रव छीजै। भगवान आत्मा जितना आत्मा का आश्रय लेकर शुद्धता प्रगट करे, उससे आस्रव का नाश होता है। यह संवर और आस्रव, हाथ जोड़कर कहे, मुझे पाँच आस्रव के प्रत्याख्यान कराओ, वह नहीं। समझ में आया? अन्तर में एकाग्र हो। ज्ञानस्वभावी भगवान में एकाग्र हो, वह संवरधारा, उससे आस्रव का नाश होता है। कहो, समझ में आया? बनारसीदास कहते हैं कि **ताकौं नमस्कार अब कीजै।** ओहो! धन्य संवरधारा। संवर अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति की धारा। ऐसे संवर को **अब नमस्कार** नमन करते हैं। समझ में आया? ऐसे संवर को नमस्कार करके संवर का माहात्म्य बतलाया। क्योंकि संवर मोक्ष का कारण है। दूसरा कोई कारण है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९६, कार्तिक शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक ०१-११-१९७१
चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, पद ११५ तथा सार

यह समयसार नाटक है। समयसार अर्थात् आत्मा। उसका परिभ्रमण कैसे हुआ और परिभ्रमण कैसे मिटे, उसका नाम समयसार नाटक कहा जाता है। उसमें यह तो अपने पूरा हुआ है।

ग्रन्थ के अन्त में संवरस्वरूप ज्ञान को नमस्कार। है न ११५। सार लिया है अब इन्होंने।

★ ★ ★

काव्य - ११५

ग्रंथ के अंत में संवरस्वरूप ज्ञान को नमस्कार (सवैया इकतीसा)

जगतके प्रानी जीति ह्वै रह्यौ गुमानी ऐसौ,
आस्रव असुर दुखदानी महाभीम है।
ताकौ परताप खंडिवैकौं प्रगट भयौ,
धर्मकौ धरैया कर्म-रोगकौ हकीम है।।
जाकै परभाव आगै भागैं परभाव सब,
नागर नवल सुखसागरकी सीम है।
संवरकौ रूप धरै साधै सिवराह ऐसौ,
ग्यान पातसाह ताकौं मेरी तसलीम है।।११५।।

शब्दार्थ:-गुमानी=अभिमानी। असुर=राक्षस। महाभीम=बड़ा भयानक। परताप (प्रताप)=तेज। खंडिवैको=नष्ट करने के लिये। हकीम=वैद्य। परभाव (प्रभाव)=पराक्रम। परभाव=पुद्गलजनित विकार। नागर=चतुर। नवल=नवीन। सीम=मर्यादा। पातशाह=बादशाह। तसलीम=वन्दना।

अर्थ:-आस्रवरूप राक्षस जगत के जीवों को अपने वश में करके अभिमानी हो

रहा है, जो अत्यन्त दु:खदायक और महा भयानक है, उसका वैभव नष्ट करने के लिये जो उत्पन्न हुआ है, जो धर्म का धारक है, कर्मरूप रोग के लिये वैद्य के समान है, जिसके प्रभाव के आगे परद्रव्यजनित राग द्वेष आदि विभाव दूर भागते हैं, जो अत्यन्त प्रवीन और अनादिकाल से नहीं पाया था, इसलिए नवीन है, जो सुख के समुद्र की सीमा को प्राप्त हुआ है, जिसने संवर का रूप धारण किया है, जो मोक्षमार्ग का साधक है, ऐसे ज्ञानरूप बादशाह को मेरा प्रणाम है।।११५।।

काव्य-११५ पर प्रवचन

जगतके प्रानी जीति ह्वै रह्यौ गुमानी ऐसौ,
आस्रव असुर दुखदानी महाभीम है।
ताकौ परताप खंडिवैकौं प्रगट भयौ,
धर्मकौ धरैया कर्म-रोगकौ हकीम है॥
जाकै परभाव आगै भागैं परभाव सब,
नागर नवल सुखसागरकी सीम है।
संवरकौ रूप धरै साधै सिवराह ऐसौ,
ग्यान पातसाह ताकौं मेरी तसलीम है॥११५॥

कहते हैं, **जगतके प्रानी जीति ह्वै रह्यौ गुमानी ऐसौ आस्रव।** अर्थात्? आत्मा सच्चिदानन्द सत् स्वरूप है। आत्मा आनन्द और ज्ञान के सागर से भरपूर स्वभाव है उसमें। आत्मा; वह इस देह से भिन्न है, वाणी से भिन्न-पृथक् है, पुण्य-पाप के परिणाम जो आस्रव, उनसे भिन्न तत्त्व है। उसमें तो अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द आत्मा में भरा हुआ है। आहाहा! ऐसे आत्मा की जिसे खबर नहीं, उसे आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध मैं पुण्य हूँ, पाप हूँ, शरीर हूँ, मैं एक समय की अवस्था जितना हूँ—ऐसी जो मान्यता, वह मिथ्यात्व मान्यता है और वह आस्रव है। समझ में आया? वह मिथ्यात्व, वह आस्रव है। अरे, अरे! आत्मा परिपूर्ण चैतन्य वस्तु है न, वस्तु आत्मतत्त्व, तो उसमें परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द भरा है। उसका जिसे अनादि से भान नहीं, वह राग, दया-

दान-व्रत-काम-क्रोध के भाव, वह मैं—ऐसा जो माना है, वह महाभ्रमणा अज्ञान और मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व, वह आस्रव है। आस्रव अर्थात् नये आवरण का कारण। अनादि से आस्रव की जीत है।

जगतके प्रानी जीति ह्वै रह्यौ गुमानी... अभिमानी होकर। बड़े मानधाता को भी मैंने फँसाया है। साधु हो, त्यागी हो तो भी वह शुभराग है न दया, दान, व्रत का, वह मेरे परिणाम हैं और वह मैं हूँ—ऐसा मिथ्यादृष्टि ने मिथ्यात्वरूपी आस्रव ने ऐसे मानधाता को भी नीचे किया है, कहते हैं। समझ में आया? पण्डितजी! **जगतके प्रानी जीति ह्वै रह्यौ गुमानी...** अभिमानी हुआ है। मेरे आधीन कोई भी प्राणी न हो, ऐसा नहीं। बड़े सन्त महन्त नाम धरावे, परन्तु आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका उन्हें भान नहीं, इसलिए यह कोई विकल्प जो उठे दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का, वह मेरी चीज़ है, वह मैं हूँ—ऐसी जो मान्यता, वह मिथ्यात्वरूपी आस्रव है। वाह रे! समझ में आया?

जगतके प्रानी जीति ह्वै रह्यौ गुमानी.... आस्रव, वह विपरीत मान्यता जो स्वरूप से विपरीत, उस मान्यता को ही यहाँ आस्रव कहते हैं। शरीर, वाणी, मन तो यह जड़ है, मिट्टी है। वह तो अजीव-जड़ भिन्न चीज़ है। कर्म, वह भिन्न चीज़ है। परन्तु उसमें राग से भिन्न, ऐसा भान नहीं, इसलिए रागवाला हूँ। आहाहा! ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह गुमानी है, अभिमानी है, कहते हैं। मैंने तो बड़े मानधाता को नीचे गिराया है। समझ में आया? धर्म का जिसे भान नहीं, ऐसे साधु हुए, त्यागी हुए, परन्तु अन्तर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्द का—शान्ति का रस का कन्द है, ऐसी जिसे दृष्टि अनादि से नहीं। आहाहा! मैं तो यह पुण्य के परिणाम करूँ और वह मेरा धर्म और वह मेरा साधुपना, ऐसा अज्ञानी मिथ्यात्व में इस प्रकार मशगूल हो गया है, कहते हैं। आस्रव को अभिमान हुआ है कि ऐसे को भी मैंने नीचे गिराया है। समझ में आया?

असुर है वह तो, कहते हैं। आहाहा! अत्यन्त दुःखदायक है। **आस्रव असुर** ऐसा लिया है न! अभिमानी हो रहा है, लो। वह राक्षस के समान है। आहाहा! भगवान आत्मा की अस्ति मौजूदगीवाला शाश्वत् तत्त्व, वह तो आनन्द और ज्ञान और शान्ति से स्वभाव से भरपूर अविनाशी त्रिकाल है। उसे न मानकर, यह राग, वह मैं —ऐसा मिथ्यात्वरूपी राक्षस आस्रव, वह आत्मा को निगल गया है। आत्मा को माना नहीं।

आहाहा! असुर है। वह दुःखदानी है। समझ में आया? आहाहा! यह दुनिया देखो न, धर्म के नाम से दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि करे और यह माने धर्म; हो वह राग। है वह विकल्प तो राग है। समझ में आया? वह दुःखदानी है। वह राग का विकल्प, वह मेरा—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह दुःखदाता है, दुःखरूप है, वह दुःख का कारण है। समझ में आया?

यह प्रतिकूल संयोग हो, वह दुःख नहीं यहाँ। यह तो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का अनादर करके और राग के कण को भी अपना माने, वह दुःखस्वरूप दशा है। समझ में आया? आहाहा! वह दुःखी प्राणी है। भारी काम, भाई! सब पैसेवाले दिखाई दें, त्यागी दिखाई दें, बड़े महन्त सन्त। कहते हैं, सब मिथ्यादृष्टि राग को धर्म माननेवाले, वह पुण्य की क्रिया उस धर्म को माननेवाले सब मिथ्यादृष्टि दुःखदाता आस्रव का सेवन करते हैं। कठिन काम। समझ में आया? आहाहा! महाभीम (अर्थात्) भयानक है।

अपना आनन्दस्वभाव, ज्ञानस्वभाव जानन... जानन चैतन्यस्वभाव से विरुद्ध जो यह मिथ्यात्वभाव महाभय का देनेवाला है। नरक और निगोद का देनेवाला है वह तो। आहाहा! समझ में आया? बड़े साधु आचार्य नाम धरानेवाले भी माने कि यह राग की क्रिया, वह मेरा धर्म है। वह मिथ्यात्वभाव महाभयानक है, कहते हैं। आहाहा! उसे नरक और निगोद में ले जायेगा मिथ्यात्वभाव। समझ में आया?

ताकौ परताप खंडिवैकौं प्रगट भयौ,... अब ज्ञान बादशाह जागता है। राग और विकल्प, वह मेरा—ऐसा मिथ्यात्वभाव और अज्ञानभाव, वह आस्रवभाव, वह दुःखदायक भाव, भयानक भाव। आहाहा! अग्नि का दावानल सुलगता है, उसके ज्ञान में। **ताकौ परताप खंडिवैकौं प्रगट भयौ,...** परन्तु वह राग की एकता, वह मैं नहीं, वह मेरा स्वरूप नहीं। मैं तो आनन्द और ज्ञान का (बादशाह हूँ)। यहाँ तो ज्ञान की प्रधानता से बात ली है। जानना... जानना... ऐसा आत्मा का स्वभाव, उस स्वभाव की एकता करके, राग की एकता का जो मिथ्यात्वभाव, उसका प्रताप जिसने खण्ड कर दिया। आहाहा! देखो, विधि भी बतायी कि धर्म कैसे होता है। समझ में आया?

लो, यहाँ तो पहले से यह लिया। अभी प्रश्न चला वहाँ सिवनी में गये थे न वह

मक्खनलालजी। मक्खनलालजी गये थे। वहाँ अपने है न वह उत्तमचन्दभाई, नहीं? जवान नहीं था? मास्टर है। होशियार है, बहुत होशियार। वाँचते थे।

मुमुक्षु : देवचन्द?

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्तमचन्द। दशरथ क्या दूसरे मास्टर? यह उत्तमचन्द होशियार जवान। है २५-३० वर्ष का भाई। वाँचता होगा अपने मुमुक्षुमण्डल में। वहाँ प्रवचन देने आये मक्खनलालजी। यह दस दिन (दशलक्षण पर्व के)। उसमें यह बाहुबली के दर्शन करने गये, वहाँ यह वाँचते होंगे, वहाँ कान में बात पड़ गयी। उसने कहा उसमें। इसलिए सीधे प्रश्न किया मक्खनलाल ने उत्तमचन्द को कि निश्चय पहला या व्यवहार? यह निश्चय। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, ऐसा अनुभव और निर्णय हो, तब उसे रागादि का भाव हो, उसे व्यवहार कहा जाता है। ऐसा जवाब दिया उसने। निश्चय का व्यवहार होता है। निश्चय न हो, उसे व्यवहार कैसा? शादी करनी हो, उसकी बारात जुड़ती है। शादी नहीं करनी, उसकी बारात कहाँ जोड़कर रखनी है तुझे? ऐई!

२५-३० वर्ष का जवान। वे ६०-७० वर्ष के पढ़े हुए। अब ऐसे पके हैं बनिये।

मुमुक्षु : नया....

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी पीढ़ी। कि शादी करनी नहीं, उसकी बारात जोड़ना। किसे परन्तु? कहाँ रखनी है बारात? इसी प्रकार जिसे यह निश्चय नहीं आत्मा आनन्दमूर्ति है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वभावी है। ऐसा जहाँ निश्चय नहीं, वहाँ आगे विकल्प का व्यवहार कहना किसे? ऐसा कहा। भाई ने ऐसा जवाब दिया। जवाब ऐसा दिया। दूसरा जवाब कहा कि मिट्टी का घड़ा मिट्टीरूप से वस्तु न हो तो उसे घी का घड़ा व्यवहार कहना किसे? होशियार है, बहुत होशियार है। मास्टर है। मिट्टी का घड़ा... मिट्टी भले वस्तु हो तो फिर उसे घी का घड़ा व्यवहार लागू पड़ता है।

इसी प्रकार आत्मा अखण्डानन्द प्रभु निश्चय निर्णय अनुभव हो तो फिर उसे दया, दान के परिणाम को व्यवहार कहा जाता है। सौ सिर फोड़कर (उत्तर होने में हराकर) .... वे ६०-६० वर्ष के पढ़े हुए बड़े पूंछड़ा लम्बे। दो बोले में तोड़ दिया। कहीं उसने इतना कहा कि हाँ, निश्चय का लक्ष्य तो, ज्ञान तो होना चाहिए पहले। भले

इतना तो स्वीकार किया। मिट्टी का घड़ा मिट्टीरूप से वस्तु नहीं, उसे घी के घड़े का व्यवहार कहना किसे? इसी प्रकार आत्मा ज्ञानस्वरूप से भगवान आनन्दमूर्ति है, ऐसा चौथे गुणस्थान में उसका अनुभव हो, ऐसे निश्चयवाले को फिर जो राग का विकल्प उठे, उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! शान्तिभाई! सब लोग उलझन में हैं बड़े पढ़े-गुने, काशी के, गोता खाते हैं।

यहाँ कहते हैं कि **ताकौ परताप खंडिवैकौं प्रगट भयौ,...** ज्ञान बादशाह जागृत हुआ पहला। जो राग और पुण्य के परिणाम मेरे और वह धर्म, ऐसा मानता है, उस मिथ्यात्वभाव को तोड़ने के लिये, मैं तो ज्ञानस्वरूपी चिदानन्द प्रभु हूँ। आत्मा आनन्द का सागर और ज्ञानस्वभावी वस्तु, ऐसा जहाँ भान हुआ, उसने मिथ्यात्व के आस्रव के अभिमान को गला दिया। समझ में आया? फिर तो प्रश्न बहुत करे यह सब कि यह केवलज्ञान, वह गुण है या पर्याय? ऐसा प्रश्न किया। कहे, पर्याय। नहीं, गुण। तेरे अन्दर रहता है। ऐसे के ऐसे! ....परन्तु केवलज्ञान तो एक समय की पर्याय है। एक समय में उत्पन्न होकर, वह दूसरे समय रहती नहीं। गुण की व्याख्या तो द्रव्य के सर्व भाग में और सर्व हालतों में रहे, ऐसा जवाब दिया। लड़कों ने समझाया। खबर नहीं। तत्त्व की कुछ खबर नहीं होती। अकेले प्रवृत्ति के क्रियाकाण्ड में अज्ञानी चढ़ गये, मिथ्यात्व के भाव में फँस गये हैं। समझ में आया?

पण्डितजी! यह तुम्हारे वह बड़े वे....

मुमुक्षु : अभी बातचीत हुई थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हुई थी। बहुत अच्छे जवाब दिये।

मुमुक्षु : सोनगढ़वाले पुण्य को .... बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... बताते हैं। जहर बताते हैं। सोनगढ़वाले नहीं, भगवान कहते हैं। विष्टा नहीं परन्तु यह तो जहर। शुभभाव, वह जहर है। आत्मा के अमृत से विरुद्ध भाव है। भगवान आनन्द का सागर चैतन्य प्रभु है। उससे विरुद्ध पुण्य का भाव, वह तो जहर है। वह अमृत के सागर का भान होने से फिर जो निश्चयसहित का जो राग आवे, उसे व्यवहार कहा जाता है। निश्चय बिना का व्यवहार किसका? वस्तु बिना का

भेद किसका? वस्तु बिना राग किसका? आहाहा! भारी जगत ऐसा उलझा है न! उसे धर्मगुरु भी ऐसे मिले, फँस गये।

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा मिथ्यात्व का भान, उसे **ताकौ परताप खंडिवैकौं प्रगट भयौ,...** कौन? ज्ञान बादशाह। अन्त में है न। **ग्यान पातसाह।** मैं ज्ञानस्वरूपी क्रिया हूँ। मेरी क्रिया ज्ञान की है। वह राग और पुण्य की क्रिया, वह मेरी नहीं, आहाहा! कहो, कान्तिभाई! किसे पड़ी है? कहाँ जन्म-मरण के गोते खाता हुआ ऐसा का ऐसा अनादि से दु:खी हो रहा है। यहाँ तो कहते हैं, ज्ञान बादशाह जगा। मैं एक जाननेवाला-देखनेवाला चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा हूँ, ऐसा जहाँ जिसे भान अन्तर सन्मुख होकर हुआ, उसे परसन्मुख की एकता के मिथ्यात्वभाव का उसने खण्ड कर दिया, नाश कर दिया। इसके बिना मिथ्यात्व का नाश नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! ऐसे व्रत पालन करो और अपवास करो और यह वर्षीतप करो और ओळी करो और होली करो, सब राग है। आहाहा!

भगवान आत्मा, कहते हैं कि यह राग को ही अपना स्वरूप क्रियाकाण्ड में मानता था, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव प्रसिद्ध हुआ आस्रव उसे, आत्मा ज्ञानानन्द मैं हूँ। त्रिकाली मेरा स्वरूप तो सच्चिदानन्द प्रभु है। मैं तो ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ, ऐसी ज्ञान की एकतारूपी श्रद्धा और अनुभव हुआ, उसने मिथ्यात्व के खण्ड-खण्ड करके नाश कर दिया। लो, यह उसकी क्रिया। अरे, अरे! भारी कठिन! समझ में आया?

धर्मकौ धरैया। मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा। विकल्प का जो राग, वह मेरे स्वरूप में नहीं। वस्तु यह है। समझ में आया? यह मिट्टी का घड़ा वस्तु हो तो फिर घी का घड़ा और कैरोसीन का घड़ा या अमुक, ऐसा कहा जाता है। ऐसी वस्तु जब निर्णय करे (कि) मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसे निश्चय में फिर अस्थिरता बाकी रह गयी राग आदि की, उसे निश्चय का व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बहुत काम, सूक्ष्म काम ऐसा। अपना स्वभाव चैतन्यस्वरूप आत्मा वस्तु और वस्तु का स्वभाव आनन्द और ज्ञान, उसके सन्मुख होकर भान किये बिना अकेली दया, दान, व्रत, भक्ति की क्रिया के परिणाम (करना) और वे मेरे हैं, वह तो मिथ्यात्वभाव है। गिरधरभाई! भारी कठिन काम! आहाहा! पण्डित गोते खाये, वे काशी के पढ़े हुए सब।

कोथला में थोथा खोजा करे और यहाँ ऐसा है और यहाँ... अब छोड़ न थोथा। आत्मा को समझे बिना सब तेरा थोथा है। समझ में आया?

धर्मकौ धरैया। यह राग के विकल्प से मेरी चीज तो भिन्न है। चैतन्यस्वभावी पूर्णानन्द का नाथ वह मैं, ऐसा भान हुआ, उसने धर्म को धारण किया, उसे संवर और निर्जरारूपी दशा हुई। आस्रव के सामने संवर और निर्जरा हुई। समझ में आया? अरे, गजब! अभी तो कहे मुश्किल प्रविष्ट होना कठिन। अभ्यास नहीं कभी। यह जगत के अज्ञान का अनादि का अभ्यास। इसी प्रकार यह जो जरा सा फिर धर्म के नाम से आया तो वह राग का अभ्यास। कहते हैं।

धर्मकौ धरैया। भगवान आत्मा मैं तो ज्ञानस्वरूप, ज्ञाता-दृष्टा वह मेरी चीज़, ऐसे राग के विकल्प से भिन्न पड़कर स्वभाव की एकता का भान हुआ, उसने धर्म को धारण किया। उसने संवर और निर्जरारूपी दशा धारण की। कहो, समझ में आया? आहाहा! **धर्मकौ धरैया कर्म-रोगकौ हकीम है।** यह राग और कर्म को तो नाश करने के लिये, वह वैद्य है। ज्ञान बादशाह। मैं तो ज्ञानस्वरूपी चैतन्य हूँ। मेरी क्रिया ज्ञान की एकाग्र होना, वह मेरी क्रिया है। शुभाशुभ विकल्प, वह मेरी क्रिया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कर्म-रोगकौ। यह कर्मरोग है। आहाहा! यह तो श्रीमद् में तो ऐसा कहा है न, 'आत्मभ्रांति सम रोग नहीं।' आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, उसे रागवाला और अपूर्ण और एक समय की दशावाला मानना, वह भ्रान्ति और उसके जैसा कोई रोग जगत में नहीं। जेठाभाई! गजब बात भाई यह! ऐसा धर्म का संवर में। आहाहा! अरे, आठ-आठ वर्ष के बालक भी यह समझकर अनुभव करते हैं। भाई! समझ में आया?

अरे, मेंढ़क! आत्मा है न। यह जड़ तो भिन्न है, यह देह / शरीर तो यह। अन्दर आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, जिसमें भगवान का स्मरण करना, भक्ति आदि का राग (का) जिसमें अभाव है और जिसमें पूर्ण ज्ञान और आनन्द की सद्भाव दशा है, सद्भावपना है। ऐसा जो ज्ञान स्वभाव के सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-अनुभव किया, उसने धर्म को धारण किया। आहाहा! गजब व्याख्या भाई धर्म की! समझ में आया? यह कर्मरोग का वैद्य है। ज्ञानानन्दस्वभाव मैं, ऐसा भान, ऐसी एकाग्रता वह कर्म के रोग को टालने को वैद्य है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

जाकै परभाव आगै भागैं परभाव सब। चैतन्यसूर्य प्रभु आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द-स्वरूप आत्मा है। ऐसा जहाँ अन्दर भान हुआ, उसके प्रभाव के समक्ष, उसके प्रभाव के समक्ष, **भागैं परभाव—**पुण्य और पाप के विकल्प राग, वह तो भागे। उसके प्रभाव के समक्ष परभाव भागे। कवि है न! समझ में आया? आहाहा! **जाकै परभाव आगै।** वापस **आगै** तब **भागैं। जाकै परभाव आगै भागैं परभाव सब,....** मैं तो ज्ञानानन्द चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव से भरपूर ऐसा जो भान, ऐसा जो उसका प्रभाव, उस प्रभाव के कारण पुण्य और पाप के परभाव नाश हो जाते हैं। भागे... भागे। भाषा ली है न भागे—दौड़े। नाश होने को दौड़े, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

नागर नवल सुखसागरकी सीम है। यह ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु की एकाग्रता होना, वह तो कहते हैं कि चतुर पुरुष का काम है यह तो। आहाहा! जिसने पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न चैतन्य प्रभु पकड़ा, ऐसा जो ज्ञान बादशाह चतुर है, नवल है। अनन्त काल में वह दशा कभी हुई नहीं। आहाहा! पुण्य और पाप के शुभ-अशुभराग की क्रिया से मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा जो भान, वह नवीनदशा है, ऐसा कहते हैं, वह कहीं अनादिकाल में वह था नहीं। काल तो बहुत थोड़ा है। परन्तु भाव का भान होना, वह भारी पुरुषार्थ चाहिए। समझ में आया?

कहते हैं कि **नागर नवल सुखसागरकी सीम है।** यह आत्मा राग से भिन्न पड़कर आत्मा का भान किया। सम्यग्ज्ञान-दर्शन हुआ, वह तो सुखसागर की मर्यादा की चीज़ है। उसमें तो आनन्द होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? शुभ-अशुभराग, वह तो दुःखरूप है। उससे भिन्न पड़कर चैतन्य का अन्तर सम्यग्ज्ञान होना, वह तो सुखसागर की मर्यादा है। सुखसागर जहाँ सुख का सागर डोलता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! समकिती धर्मी जीव को पहले चतुर्थ गुणस्थान में भले गृहस्थाश्रम में हो, जहाँ अनेक विषय राग आदि, परन्तु भान हुआ वहाँ कहते हैं कि उसे अमृत की डकार आयी आनन्द की, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **सुखसागरकी सीम है।** उसकी मर्यादा वहाँ है। समझ में आया? **जो अत्यन्त प्रवीन और अनादिकाल से नहीं पाया था, इसलिए नवीन है।**

संवरदशा, वह चैतन्य के अनुभव की प्रतीति दशा। राग और पुण्य की प्रतीति दशा, वह तो मिथ्यात्वभाव था, दु:खभाव था। उसने जहाँ आत्मा के स्वभाव की सम्हाल लेकर आनन्द में एकत्व हुआ, तो कहते हैं कि सुखसागर की मर्यादा प्रगट हुई अन्दर। है मर्यादित अभी, पूर्ण हो तब केवल (ज्ञान) होगा, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! उसे धर्म कहते हैं। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, तो धर्म कहते हैं। ऐसा का ऐसा यह व्रत और ढोंग करे मरकर अपवास और वर्षीतप। हमारे हो गयी तपस्या। उसका करे महोत्सव दु:ख का। समझ में आया?

उसका महोत्सव करे। पाँच-पच्चीस हजार खर्च करे। सब अकेला पाप है। ऐ गिरधरभाई! भारी कठिन काम! लाखोंपति की पुत्रियाँ ऐसे अपवास करे, बारह महीना एक बार खाना, एक दिन खाना और दूसरे दिन अपवास। ऐसे-ऐसे बारह महीने—छह महीने अपवास और छह महीने खाना, लो। लंघन है, कहते हैं, तेरा सब। आहाहा! वह तो अन्दर परलक्षी राग की मन्दता की हो तो पुण्य है और पुण्य है, वह दु:खरूप है। आहाहा! कठिन बात भाई! ऐसी बात कान में पड़ना कठिन पड़े और वापस झेलना कठिन पड़े। आहाहा!

अनन्त काल का दु:खी प्राणी बेचारा। एक जरा सी प्रतिकूलता आवे तो ऐसे शरीर में सहन होता नहीं, ऐसा कहे। यह तो अनन्त प्रतिकूलता विपरीत मान्यता की। आहाहा! उसे छेदने को भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव—सन्मुख होकर, ज्ञान और आनन्द, ऐसा चैतन्यस्वभाव, उसमें जिसने एकता की, वह सुखसागर की मर्यादा से उछला, कहते हैं। उसका सुखसागर डोला अन्दर से। उसके निधान—खजाने खुल गये। अज्ञानी जो राग और पुण्य को अपना माननेवाला, उसने आनन्द के खजाने को—निधि को ताला लगाया था उसने। समझ में आया?

परन्तु जिसने पुण्य और पाप के राग से भिन्न भगवान आत्मा की एकता की, उसके सुखसागर के खजाने खुल गये। आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, खुल गया। आहाहा! मैं अल्पज्ञ हूँ, राग हूँ, यह तो उसने

मिथ्यात्व का ताला लगाया है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि भगवान! एक बार तू जाग न, भाई! यह राग और पुण्य के विकल्प से भिन्न तेरे तत्त्व को सम्हाल। तेरा खजाना तुझे ख्याल में आयेगा। आहाहा! मैं तो ज्ञान और आनन्द से भरपूर हूँ। मुझमें तो कोई पुण्य-पाप, संसार-फंसार की गन्ध भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

संवरकौ रूप धरै... आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह ज्ञान में एकाग्र हुआ तो संवर का रूप धारण हो, उसे संवर कहते हैं। उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष रुक गये हैं। आहाहा! यह हाथ जोड़कर कहे संवर पाँच आस्रव के, प्रत्याख्यान सेवन किये। जामनगर में बहुत संवर होता है।

मुमुक्षु : मन्दिरमार्गी में?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिरमार्गी में। यहाँ स्थानकवासी में कम। परन्तु वहाँ जामनगर में अधिक हमेशा, हों! अष्टमी और पांखी के बहुत प्रौषध हों, संवर हों, बहुत हों। बारह महीने। ऐसा वहाँ रिवाज है। सब लंघन। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **संवरकौ रूप धरै....** यह ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, ऐसा भान होने पर दशा में संवर अर्थात् मिथ्यात्व और अव्रत रुक जाता है। आहाहा! और आत्मा में आस्रवरहित दशा प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई! यह तो अभी पुराने लोग जहाँ दूसरा सुना हो, उसमें यह बात कान में सुने, वह यह कहीं अपने जैनधर्म होगा ऐसा! अब जैनधर्म तो अपने ऐसा सुना हो—रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना, छह परबी पालना। ऐई, जेठाभाई! दूज, पंचमी, अष्टमी, ग्यारस, चौदस, अमावस्या। ऐसा धर्म सुना था। परन्तु यह और किस प्रकार का धर्म? भाई! प्याज नहीं खाना, लहसुन नहीं खाना। अब ऐसी क्रिया तो, सुन न, अनन्त बार की है। वह तो राग का परिणाम है। आहाहा!

संवरकौ रूप धरै.... शुभ-अशुभभाव आस्रव, उसकी एकताबुद्धि मिथ्यात्व, उसे ज्ञान में एकता होने से जो टाला, उसको संवरदशा प्रगट हुई। इसका नाम संवर कहा जाता है। कहो, समझ में आया? **साधै सिवराह ऐसौ,... संवरकौ रूप धरै। साधै सिवराह...** यह मोक्ष का पंथ साधता है। अन्दर आनन्द में-ज्ञान में एकाग्र होना, वह मोक्ष का पंथ

साधता है। राग में एकाग्र होना, वह संसार को साधता है। ऐसा भारी कठिन! .... यह जवाब ऐसे आये। निश्चय और व्यवहार। निश्चय का व्यवहार हो वह। वस्तु हो, उसका व्यवहार होता है। मिट्टी का घड़ा हो तो उसे घी का घड़ा कहा जाता है। यह जवाब ऐसा दिया न! होशियार लड़का है। छोटी उम्र का है अभी तो, हों! २५-३० वर्ष की छोटी उम्र होगी। मास्टर है न कहीं गाँव का। दूसरे गाँव में है। आया है अखबार में, उसमें है। एक पृष्ठ रह गया है, हों! अब ऐसे भी जगे हैं। युवक जगे हैं, लो।

मुमुक्षु : सब आपका .... है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग इतनी योग्यतावाले, उन्हें न्याय से बैठना चाहिए न, पहली बात कि मार्ग तो यह है। अन्तर के अनुभव के निश्चय बिना तेरा व्यवहार किसे? समझ में आया?

उसमें भी बाबूभाई ने और दूसरा जवाब निकाला। भाई! वर हो तो अणवर हो। वर बिना अणवर किसका? अणवर समझते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विनायक, हों। वह दूल्हे के पास रहता है। वह वर हो तो अणवर कहलाये। वर अकेला नहीं और अणवर। यह अणवर। परन्तु हो वर के साथ अणवर तो भी कुछ अणवर को कन्या दे? कन्या तो उसको दे। ऐसे निश्चय आत्मा का भान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह वर है। और बीच में राग दया आदि का विकल्प आवे, वह अणवर है। उससे कहीं मोक्ष नहीं मिलता। आहाहा! समझ में आया?

संवरकौ रूप धरै साधै सिवराह ऐसौ, ग्यान पातसाह... ज्ञानरूपी बादशाह। ऐसा चैतन्यस्वरूप का भान सम्यग्ज्ञान, वह बादशाह है, कहते हैं। आहाहा! **ताकौं मेरी तसलीम है।** बनारसीदास कहते हैं कि ऐसे ज्ञानस्वभावी दशा, उसे मेरा नमस्कार है। आहाहा! समझ में आया? **ग्यान पातसाह ताकौं मेरी तसलीम है** समझे न? तसलीम अर्थात् वन्दना। लिखा है न वहाँ। आदर करे। आहाहा! लो, इस अधिकार का सार। यह अधिकार पूरा हुआ। अब इसका सार कहते हैं।

★ ★ ★

तेरहवें अधिकार का सार

जिस प्रकार सफेद वस्त्र पर नाना रंगों का निमित्त लगने से वह अनेकाकार होता है, उसी प्रकार शुद्ध बुद्ध आत्मा पर अनादि काल से मोह और योगों का सम्बन्ध होने से उसकी संसारी दशा में अनेक अवस्थाएँ होती हैं, उन्हीं का नाम गुणस्थान है। यद्यपि वे अनेक हैं, पर शिष्यों के सम्बोधनार्थ श्रीगुरु ने १४ बतलाये हैं। ये गुणस्थान जीव के स्वभाव नहीं हैं, पर अजीव में नहीं पाये जाते, जीव में ही होते हैं, इसलिए जीव के विभाव हैं, अथवा यों कहना चाहिए कि, व्यवहारनय से गुणस्थानों की अपेक्षा संसारी जीवों के चौदह भेद हैं।

पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व, दूसरे में अनन्तानुबन्धी, तीसरे में मिश्रमोहनीय का उदय मुख्यतया रहता है, और चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी और मिश्रमोहनीय का, पाँचवें में अप्रत्याख्यानावरणीय का, छट्ठे में प्रत्याख्यानावरणीय का अनोदय रहता है। सातवें, आठवें और नववें में संज्वलन का क्रमशः मन्द, मन्दतर, मन्दतम उदय रहता है, दसवें में संज्वलन सूक्ष्मलोभ मात्र का उदय और सर्वमोह का क्षय है। ग्यारहवें में सर्वमोह का उपशम और बारहवें में सर्वमोह का क्षय है। यहाँ तक छद्मस्थ अवस्था रहती है, केवलज्ञान का विकास नहीं है। तेरहवें में पूर्णज्ञान है, परन्तु योगों के द्वारा आत्मप्रदेश सकम्प होते हैं, और चौदहवें गुणस्थान में केवलज्ञानी प्रभु के आत्मप्रदेश भी स्थिर हो जाते हैं। सभी गुणस्थानों में जीव सदेह[१] रहता है, सिद्ध भगवान गुणस्थानों की कल्पना से रहित हैं, इसलिए गुणस्थान जीव के निज-स्वरूप नहीं हैं, पर हैं, परजनित हैं, ऐसा जानकर गुणस्थानों के विकल्पों से रहित शुद्ध बुद्ध आत्मा का अनुभव करना चाहिए।

सार पर प्रवचन

जिस प्रकार सफेद वस्त्र पर रंगों का निमित्त लगने से अनेकाकार होता है। दृष्टान्त। जैसे सफेद वस्त्र—श्वेत, उसे अनेक प्रकार के रंग के निमित्त से वह वस्त्र रंग से अनेकाकाररूप होता है। वास्तविक रंग का अनेकाकारपना, उसका स्वभाव नहीं। वह वस्त्र तो सफेद है। श्वेत—सफेद, उसे रंग के निमित्त से अनेक प्रकार के रंग की यह अनेक झांईं दिखती है। **उसी प्रकार शुद्ध बुद्ध आत्मा पर।** भगवान तो शुद्ध-बुद्ध

१. विग्रह गति में कार्माण तैजस शरीर का सम्बन्ध रहता है।

पवित्र आनन्द शुद्ध है। आहाहा! जैसे वस्त्र शुद्ध है। सफेद है, वैसे यह भगवान आत्मा अनादि का शुद्ध चैतन्य ध्रुव निर्मल निर्मलानन्द है। वस्तु। उसे अनादिकाल से मोह और योगों का सम्बन्ध है। मोह और योग सम्बन्ध से है न चौदह गुणस्थान। मोह और योग। योग—कम्पन और मोह—पर में सावधानी।

अनादिकाल से मोह और योगों का सम्बन्ध होने से उसकी संसारी दशा में अनेक अवस्थाएँ होती हैं। आहाहा! सफेद वस्त्र को रंग के निमित्त से अनेक रंग की झांईं होती है, इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन ज्ञान की मूर्ति सफेद शुद्ध है। परन्तु मोह और योग के सम्बन्ध से उसे, जैसे उसको (वस्त्र को) रंग के सम्बन्ध से, उसी प्रकार इसे (आत्मा को) मोह और राग के—योग के सम्बन्ध से अनेक प्रकार की संसारीदशा होती है। आहाहा! एकेन्द्रिय और दो इन्द्रिय और त्रीन्द्रिय और चौन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, मूर्ख और पण्डित—ऐसी दशायें, वे सभी आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध है। उस आत्मा के स्वभाव में वे हैं नहीं। आहाहा!

उन्हीं का नाम गुणस्थान है,.... लो। इसका नाम गुणस्थान। उस रंग के निमित्त से वस्त्र की अनेकता रंगवाली दिखती है, उसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन है, उसे कम्पन और राग के सम्बन्ध से संसारी दशा अनेक प्रकार की होती है। आहाहा! उसे गुणस्थान कहते हैं। व्यवहार है न वह चौदह। वास्तव में उस गुणस्थान का स्वरूप आत्मा में नहीं, त्रिकाल में नहीं। सिद्ध हो, वह कहीं गुणस्थान कोई रहता नहीं।

यद्यपि वे अनेक हैं। गुणस्थान अनेक हैं। चौदह अथवा अनन्त उनके भेद हैं। **पर शिष्यों के सम्बोधनार्थ श्रीगुरु ने १४ बतलाये हैं।** भगवान के मुख में चौदह गुणस्थान की व्याख्या आयी। है तो इसकी जितनी पर्याय में विकारी दशा और अविकारी के भेद, उतने अनन्त पड़ते हैं। परन्तु अनन्त को इतना अधिक समझाने की अपेक्षा संक्षेप में सामान्य रीति से चौदह गुणस्थानरूप से उसकी दशा को वर्णन किया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके भी भेद पड़ते हैं। समकित के भी बहुत। नहीं था, सुना नहीं था? आ गया है यह। अन्तर्मुहूर्त से लेकर अर्धपुद्गलपरावर्तन के जितने भेद हैं,

उतने ऐसे समकित के इतने भेद हैं। निर्मलता के। आहाहा!

समुच्चय चौथे गुणस्थान की आत्मा की दृष्टि होने पर सम्यग्दर्शन, परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय की निर्मलता के अनन्त अंश हैं। बहुत भाग हैं। उन्हें इतने सब न बताकर समुच्चय सामान्यरूप से (बतलाये हैं)। **ये गुणस्थान जीव के स्वभाव नहीं हैं।** त्रिकाल में वे भेद नहीं हैं। आहाहा! **पर अजीव में नहीं पाये जाते।** गुणस्थान कहीं अजीव में नहीं। **जीव में ही होते हैं।** चौदह भेद। आहाहा! **इसलिए जीव के विभाव हैं।** यह चौदहवाँ गुणस्थान भी अभी विभाव है। **अथवा यों कहना चाहिए कि व्यवहारनय से गुणस्थानों की अपेक्षा संसारी जीवों के चौदह भेद हैं।** व्यवहारनय से गुणस्थान की अपेक्षा से संसारी जीवों के चौदह भेद हैं। निश्चय में तो वस्तु है, वह एकरूप है। ऐसे निश्चय का भान हो, उसे ऐसा चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ का व्यवहार जानने में आता है। समझ में आया?

अरे, वीतराग का मार्ग अलग! दुनिया में किस प्रकार से मानकर बैठे, उसे यह मार्ग सुनते हुए ऐसा हो जाता है, अरर्र! यह ऐसा? प्रेक्टीकल, ऐसा कहता था भाई— हमारे प्रेमचन्दभाई का पुत्र। लाठीवाला। कहे, यह प्रेक्टीकल करना भारी कठिन, हों! कहे। यह बाहर का सब करते हैं न। हो सकता है, (ऐसा) माना है न? यह तो यही स्वभाव है और यही हो सकने का उसका स्वरूप है। आहाहा! अन्तर्मुख होना, वही उसकी प्रेक्टीकल दशा है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन और एक समय का राग तथा एक समय की पर्याय से भी लक्ष्य छोड़कर अन्तर्मुख होना, वह उसकी क्रिया है। वह उसकी धार्मिक क्रिया है। परन्तु गजब! व्यवहारनय से गुणस्थान, वह संसारी के चौदह भेद कहे जाते हैं।

पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व। पहला मिथ्यात्व गुणस्थान है कि जो राग को और अल्पज्ञपने को आत्मस्वरूप मानता है, वह मिथ्यात्व है। उस गुणस्थान के स्वरूप की पहली दशा ऐसी है। **दूसरे में अनन्तानुबन्धी।** दूसरा गुणस्थान अनन्तानुबन्धी कषाय। ऐसा उदय है वहाँ विकार का। तीसरे में मिश्रमोहनीय का उदय है। जरा सा जानपना विशेष हो, उसे मुख्यत्व आता है।

चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी और मिश्रमोहनीय... का पाक (उदय)

जाता है। सम्यग्दर्शन होने पर धर्म की पहली दशा होने पर आत्मा अखण्ड आनन्द और अभेदस्वरूप है, ऐसी अनुभवदशा होने पर उसे मिथ्यात्व जाता है। अनन्तानुबन्धी और मिश्रमोहनीय नहीं होती। कहो, समझ में आया? सम्यग्दृष्टि धर्मी, चौथे गुणस्थान में उसे राग की एकताबुद्धि उसकी टूट गयी है और अस्थिरता भी आंशिक गयी और स्थिरता हुई है। अनन्तानुबन्धी गयी, उतनी स्थिरता हुई। उसे मिश्रमोहनीय भी है नहीं प्रकृति से।

पाँचवें गुणस्थान में श्रावक को, सच्चे श्रावक को अप्रत्याख्यानावरणीय का उदय नहीं। दूसरी कषाय (चौकड़ी) का उसे उदय होता नहीं। शान्ति... शान्ति... शान्ति। पंचम गुणस्थान की दशा श्रावक की सच्ची... सच्ची। यह सब वाडावाले श्रावक, वे श्रावक-बावक हैं नहीं कहीं। गिरधरभाई! वह तो सब तो ऐसा कहते हैं कि भाई! हम श्रावक हैं। यह तुम्हारे श्राविकाशाला, यह फलाना है, यह सब नाम निक्षेप से। नाम, नाम। सच्चा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : श्राविकाशाला नाम न रखे?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्राविकाशाला नाम तो रखे न। नाम में क्या है? धनवंत का क्या कहा? लक्ष्मीवन्त। बेचता हो लकड़िया। आता है न? नाम था लक्ष्मी और बेचती थी लकड़ियाँ। नाम था धनपाल और भीख माँगता था। आता है न यह आता है। .... ऐसा आता है। याद नहीं। आहाहा! नाम दिया उसमें क्या हुआ? वह तो अभी वह भी वहाँ कहते हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, वह जो हो वह बराबर है। चारों ही बराबर हैं। ठीक। आहाहा! गजब करते हैं। जगत को स्वयं को ठगते हैं और किस प्रकार जगत को प्रसन्न रखते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जिसे सम्यग्दर्शन—आत्मा का भान चौथे में सम्यक्त्व होता है। श्रेणिक राजा को समकित चौथा गुणस्थान था। राग का त्याग नहीं था। आसक्ति थी। तीन कषाय (चौकड़ी) का भाव था। तथापि चौथे गुणस्थान में तीर्थंकरगोत्र बाँधा था। श्रेणिक राजा। आत्मा का भान है अन्दर। ज्ञाता-दृष्टा हूँ, मैं आनन्द हूँ, उन्होंने ऐसा शुभभाव बाँधा। परन्तु नरक का आयु बँध गया था, इसलिए नरक में हैं, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। वास्तव में तो धर्मी अपने द्रव्य-गुण-पर्याय शुद्ध में ही है। आहाहा!

समझ में आया? अशुद्धता से धर्मी जीव सम्यग्दर्शन के जोर के कारण भिन्न है। पाँचवें में उससे अधिक शान्ति बढ़ी। अन्तर के आनन्द का आश्रय त्रिकाली का विशेष लिया, तब शान्ति अधिक बढ़ी। ऐसे पंचम गुणस्थान सच्चे श्रावक को अप्रत्याख्यानावरणीय का उदय नहीं होता। उसे दूसरी कषाय का भी उदय नहीं होता।

छठवें में प्रत्याख्यान का उदय नहीं होता। यह सच्चे मुनि सन्त दिगम्बर, जिन्हें वीतराग स्वीकार करे, ऐसे सन्त, जिन्हें आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द अत्यन्त प्रगट हुआ है। समझ में आया? ऐसे बाह्य में नग्न होते हैं। अभ्यन्तर में तीसरी कषाय का भी उन्हें अभाव होता है। इतनी शान्ति प्रगट हुई है। आहाहा! उन्हें जैनशासन में मुनि कहा जाता है। वीतरागमार्ग में उन्हें मुनि कहा जाता है। समझ में आया? ऐसे मुनि का नमूना भी देखना कठिन पड़े, ऐसा है, कहते हैं। एक, एक, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वचन है वह है। वह हो तब हो। यह दिखते हैं, उनमें कोई नहीं। कहो, समझ में आया? खुल्ला पड़ गया है यह तो, कहे। आहाहा! अभी समकित का ठिकाना नहीं और मुनिपना तो ऐसा कहाँ से लावे? आहाहा! अभी तो ऐसी तो प्ररूपणा करे कि यह पालन करो, व्रत पालन करो, दिगम्बर नग्न हो जाओ, यह मुक्ति का कारण है। अब धूल भी नहीं मुक्ति का कारण। आहाहा! समझ में आया?

आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर से जागे, निर्मलदशा का धारण करनेवाला आत्मा, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम बीच में आवे, वह भी बन्ध का कारण है। और उसे—महाव्रत को तो धर्म मनवाते हैं। माने, मनावे, मानते हुए को भला जाने—तीनों ही मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? आहाहा! कठिन काम, भाई! जैनशासन, वह वीतरागभाव, वह जैनशासन है। रागभाव, वह जैनशासन है? यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

'**पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' नहीं आता १४-१५ गाथा में? जिसने आत्मा को अबद्धस्पृष्ट—राग से और कर्म से बँधा हुआ नहीं, ऐसा जिसने आत्मा को अन्दर में जाना, अनुभव किया, उसका जो उपयोग, वह जैनशासन है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प, वह कहीं जैनशासन नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब इसे तो सब मान बैठे हैं

अभी। अब कितने ही श्रावक ऐसा कहे कि अपने से तो अच्छे हैं। इसलिए वह तो खराब में खराब है श्रावक उसका, ऐसा। ऐई, गिरधरभाई! तू मिथ्यादृष्टि हो तो तुझसे अच्छा वह भी मिथ्यादृष्टि। समझ में आया?

छठवें गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरणीय का अनुदय रहता है। उसे तीसरे कषाय (चौकड़ी) का उदय नहीं होता। शान्ति... शान्ति... शान्ति। तुरन्त एक क्षण में सातवें में जाये और एक क्षण में छठवें में आये। ऐसी भूमिकावन्त को सच्चे सन्त जैनदर्शन में कहा जाता है। और फिर कितने ही ऐसा कहते हैं कि वह तो कुछ अपने को खबर नहीं पड़ती। वह यह खबर न पड़े, वही तेरा अज्ञान झूठा है, सुन न! समझ में आया? सातवें में, आठवें में, नौवें में संज्वलन का चौथा कषाय है। उसमें **क्रमशः मन्द, मन्दतर, मन्दतम उदय रहता है।** लो। अप्रमत्तदशा मुनि को क्षण में आवे, वहाँ चौथे कषाय का मन्दभाव उदय होता है। आठवें में मन्दतर अर्थात् बहुत कम। उससे मन्दतम अर्थात् बहुत कम। यह सात-आठ-नौ (गुणस्थान) की व्याख्या की, लो संक्षिप्त में। चौदह गुणस्थान का वर्णन।

दसवें में संज्वलन सूक्ष्मलोभ मात्र का उदय। दसवें गुणस्थान में एक संज्वलन का सूक्ष्म लोभ। सर्व मोह का क्षय। बाकी सबका क्षय। **ग्यारहवें में सर्वमोह का उपशम और बारहवें में सर्वमोह का क्षय है, यहाँ तक छद्मस्थ अवस्था रहती है,...** लो।

अब केवली भगवान अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा। **केवलज्ञान का विकास नहीं है...** छद्मस्थ हो तब तक। **तेरहवें में पूर्णज्ञान है।** परमात्मा अरिहन्त हो, उन्हें पूर्ण ज्ञान केवलज्ञान। तीन काल-तीन लोक जाने। आहाहा! **परन्तु योगों के द्वारा आत्मप्रदेश सकम्प होते हैं।** प्रदेश कम्पते हैं न, इतना अभी वहाँ कम्पन है। इसलिए उन्हें सयोगकेवली कहा जाता है। वह कहीं संयोग शब्द आया था अपने, हों! संयोग आया था, देखो। वह १०८। **दूषन अठारह रहित सो केवलि संजोग।** वहाँ लिया केवली। है न? भाषा ऐसी है, नहीं तो सयोग है, ऐसा। परन्तु इतना....

दूषन अठारह रहित, सो केवलि संजोग।
जनम मरन जाकै नहीं, नहिं निद्रा भय रोग॥

यह तो संयोगकेवली प्रश्न था न। (संवत्) १९८० में प्रश्न हुआ पण्डित के

साथ। अरे! भगवान केवली को तेरहवाँ गुणस्थान होता है। जब महावीर भगवान यहाँ थे, तब तेरहवाँ था। अभी तो सिद्ध हैं। उन्हें गुणस्थान होता नहीं। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, उन्हें तेरहवाँ गुणस्थान है। महाविदेह में विराजते हैं। तीर्थंकरदेव केवली तीन काल-तीन लोक का ज्ञान। **परन्तु योगों के द्वारा आत्मप्रदेश सकम्प होते हैं, और चौदहवें गुणस्थान में केवलज्ञानी प्रभु के आत्मप्रदेश भी स्थिर हो जाते हैं।** वे अयोगी। **सभी गुणस्थानों में जीव सदेह रहता है।** चौदह गुणस्थान में देह निमित्तरूप से होती है। चौदहवें में भी देह है न अभी। विग्रहगति में कार्मण, तेजसशरीर का सम्बन्ध रहता है। ऐसा कि फिर सभी गुणस्थान में अर्थात् फिर मार्ग में? कि मार्ग में भी है न।

सिद्ध भगवान गुणस्थानों की कल्पना से रहित हैं। भगवान परमात्मा णमो सिद्धाणं। उन्हें अब गुणस्थान होता नहीं। आहाहा! अभी तो णमो अरिहंताणं किसे कहना, णमो सिद्धाणं किसे (कहना), भान नहीं होता। णमो, पहाड़ा हाँके जाये। समझ में आया? और बोले लोगस्स में 'सिद्धासिद्धि मम दिसंतु।' हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपद दिखलाना। परन्तु कैसे सिद्ध हैं, ऐसी तब खबर भी उसे नहीं होती। गुणस्थान क्या और गुणस्थान से पार क्या? आहाहा! ऐसा उल्टा चला है न अभी।

इसलिए गुणस्थान जीव के निज-स्वरूप नहीं हैं। भेद है न। व्यवहार है न वह। अपना स्वरूप नहीं। स्वरूप हो तो सिद्ध में भी रहना चाहिए। **पर हैं। परजनित हैं।** भेद है न। मोह और राग के कारण से भेद है। योग के कारण से। तेरहवें में मोह नहीं परन्तु योग के कारण से तेरह और चौदह दो (भेद) हैं। पहले से दस तक मोह का कारण है। बारह तक। भले मोह का अभाव है परन्तु इतना निमित्त। और तेरह तथा चौदह योग का कारण है। **परजनित हैं, ऐसा जानकर गुणस्थानों के विकल्पों से रहित....** आहाहा!

शुद्ध बुद्ध आत्मा का अनुभव करना चाहिए.... लो। मैं शुद्ध पवित्र और बुद्ध अकेला ज्ञान का पिण्ड हूँ। ऐसा आत्मा का अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उसे अभी धर्म की पहली भूमिका कही जाती है। उसका सार कहा। यह सब समझकर करना क्या परन्तु वापस? यह तो भेद है गुणस्थान। अभेद चिदानन्दस्वरूप शुद्ध बुद्ध आनन्दघन का अनुभव, उसके सन्मुख की दशा करना, वह यह कहने का सब सार है। इससे विभाव का नाश होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति

प्रवचन नं. १९७, कार्तिक कृष्ण १, बुधवार, दिनांक ०३-११-१९७१
ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति पद १ से ११

समयसार नाटक। ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति। ग्रन्थ पूरा होता है और अन्तिम कथन करते हैं थोड़ा।

★ ★ ★

काव्य - १

(चौपाई)

भयौ ग्रंथ संपूरन भाखा।
वरनी गनथानककी साखा।।
वरनन और कहांलौं कहियै।
जथा सकति कहि चुप ह्वै रहियै।।१।।

अर्थः–भाषा का समयसार ग्रंथ समाप्त हुआ और गुणस्थान अधिकार का वर्णन किया। इसका और कहाँ तक वर्णन करें, शक्ति अनुसार कहकर चुप हो रहना उचित है।।१।।

काव्य-१ पर प्रवचन

भयौ ग्रंथ संपूरन भाखा।
वरनी गनथानककी साखा॥
वरनन और कहांलौं कहियै।
जथा सकति कहि चुप ह्वै रहियै॥१॥

यहाँ आत्मा की बात भगवान आत्मा तो अनन्तगुण और अनन्त उसकी पर्याय, ऐसी अनन्त अनन्त शक्ति का वह महा भण्डार आत्मा है। उसका यह नाटक है न वर्णन। आहाहा! देह में देह से भिन्न तत्त्व, उसमें अनन्त सामर्थ्य है। एक-एक गुण में अनन्त सामर्थ्य और एक-एक गुण की अनन्त पर्याय और एक-एक पर्याय की अनन्त सामर्थ्यता। ऐसा आत्मा उसे, कहते हैं कि कब तक वर्णन करें? **संपूरन भयौ ग्रंथ संपूरन भाखा, वरनी गुनथानक।** चौदह गुणस्थान का वर्णन किया। भेदरूपी पर्याय होती है न। है, वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं परन्तु भेद में पर्याय में वह होता है।

वरनन और कहांलौं कहियै। कहते हैं कि कितना वर्णन करें! परमात्मा अपना निज स्वभाव अपार अगम्य ऐसी चीज़ का वर्णन कितना करूँ? **जथा सकति कहि।** शक्ति प्रमाण कहकर चुप रहेंगे, ऐसा कहते हैं। अपनी शक्ति प्रमाण कही जाये अगम्य वस्तु। केवली के ज्ञान से भी जानने में आयी, तथापि कहने में उसकी पूर्ण बात आ नहीं सकती। ऐसा आत्मा उसे जानना, उसे अनुभव करना, उसका नाम धर्म है। कहते हैं कि बहुत बात उसमें की। यथाशक्ति से कही। हमारी शक्ति प्रमाण कहा, बाकी चुप।

★ ★ ★

काव्य - २

(चौपाई)

लहिये ओर न ग्रंथ उदधिका।
ज्यौं ज्यौं कहियै त्यौं त्यौं अधिका।।
तातैं नाटक अगम अपारा।
अलप कवीसुरकी मतिधारा।।२।।

अर्थः-ग्रन्थरूप समुद्र का पार नहीं पा सकते, ज्यों ज्यों कथन किया जावे त्यों त्यों बढ़ता ही जाता है, क्योंकि नाटक अपरम्पार है और कवि की बुद्धि तुच्छ है।।२।।

विशेषः-यहाँ ग्रन्थ को समुद्र की उपमा दी है और कवि की बुद्धि को छोटी नदी की उपमा है।

काव्य-२ पर प्रवचन

लहिये ओर न ग्रंथ उदधिका।
ज्यौं-ज्यौं कहियै त्यौं त्यौं अधिका॥
तातैं नाटक अगम अपारा।
अलप कवीसुरकी मतिधारा॥२॥

बनारसीदास महाकवि कहते हैं कि यह ग्रन्थ तो उदधि—समुद्र है। भगवान आत्मा का वर्णन करना, ऐसा जो आगम, वह तो समुद्र समान है। **ज्यौं-ज्यौं कहियै त्यौं त्यौं अधिका।** जैसे-जैसे कहें, वैसे-वैसे आगे बात अधिक बाकी रह जाती है, इतनी चीज़ है यह आत्मा! **तातैं नाटक अगम अपारा—** भगवान आत्मा की चीज़ को बतलानेवाला शास्त्र यह आगम नाटक अगम्य अपारा—पार न आवे, ऐसी चीज़ है। **अलप कवीसुरकी मति।** बनारसीदास स्वयं कहते हैं कि मेरी मति तो अल्प है। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ३

(दोहा)

समयसार नटक अकथ, कविकी मति लघु होइ।
तातैं कहत बनारसी, पूरन कथै न कोइ।।३।।

अर्थः-समयसार नाटक का वर्णन महान है, और कवि की बुद्धि थोड़ी है, इससे पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं, कि उसे कोई पूरा पूरा नहीं कह सकता।।३।।

काव्य-३ पर प्रवचन

समयसार नाटक अकथ। उदधि का दृष्टान्त दिया न। ग्रन्थ उदधि है। कवि की बुद्धि छोटी नदी जैसी है, ऐसा कहते हैं। **समयसार नाटक अकथ।** वचनातीत, रागातीत

ऐसी चीज़ आत्मा, उसका वर्णन कितना करे, कहते हैं। अकथ्य है। भगवान आत्मा की शक्तियाँ और उसके गुण और उसकी दशा वह सब पूर्ण तो अकथ्य है, कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी बात शक्तिप्रमाण कही। क्योंकि मेरी मति लघु है। लो, बनारसीदास जैसे कवि (कहते हैं), मति लघु। **तातैं कहत बनारसी, पूरन कथै न कोई।** उसका पार कोई कह नहीं सकता। आहाहा! 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वे भी...' अनन्त आनन्द का धाम भगवान अनन्त शक्ति के सामर्थ्यवाला भगवान तत्त्व और वह राग तथा शरीर और कर्म से निराला और पूर्ण स्वभाव से सहित उसकी कथनी में क्या आवे, कहते हैं। सर्वज्ञ ने देखा, परन्तु कह सके नहीं। उस वाणी को अल्पज्ञ प्राणी क्या कहे! **पूरन कथै न कोई....** ऐसा।

ग्रन्थ—महिमा। समयसार अर्थात् चौदह ब्रह्माण्ड का और बारह अंग का सार। समय अर्थात् आत्मा। सार—राग और पुण्य-पाप की क्रिया के विकल्प से रहित ऐसी महाप्रभु चैतन्य चीज़, उसे कहते हैं कि कितना क्या कहें हम!

★ ★ ★

काव्य - ४

ग्रंथ-महिमा (सवैया इकतीसा)

जैसैं कोऊ एकाकी सुभट पराक्रम करि,
जीतै किहि भांति चक्री कटकसौं लरनौ।
जैसैं कोऊ परवीन तारू भुजभारू नर,
तैरै कैसै स्वयंभूरमन सिंधु तरनौ।।
जैसै कोऊ उद्दमी उछाह मनमांहि धरै,
करै कैसै कारज विधाता कैसौ करनौ।
तैसैं तुच्छ मति मोरी तामैं कविकला थोरी,
नाटक अपार मैं कहांलौं याहि वरनौ।।४।।

अर्थः-यदि कोई अकेला योद्धा अपने बाहुबल के द्वारा चक्रवर्ती के दल से

लड़े, तो वह कैसे जीत सकता है? अथवा कोई जलतारिणी विद्या में कुशल मनुष्य स्वयंभूरमण समुद्र को तैरना चाहे, तो कैसे पार पा सकता है? अथवा कोई उद्योगी मनुष्य मन में उत्साहित होकर विधाता जैसा काम करना चाहे, तो कैसे कर सकता है? उसी प्रकार मेरी बुद्धि अल्प है वा काव्य-कौशल कम है और नाटक महान् है, इसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।।४।।

काव्य-४ पर प्रवचन

जैसैं कोऊ एकाकी सुभट पराक्रम करि,
जीतै किहि भांति चक्री कटकसौं लरनौ।

आहाहा! कोई एकाकी सुभट अपने बल द्वारा चक्रवर्ती की सेना के साथ युद्ध करे। चक्रवर्ती की सेना के साथ। छियानवें करोड़ सैनिकों के साथ एकाकी सुभट युद्ध करे, कहते हैं। **जैसैं कोऊ परवीन तारु भुजभारू नर,...** जल का कुशल, जलतरण में—जल के तैरने में कुशल ऐसा **तारु, तरै कैसे स्वयंभूरमन सिंधु तरनौ।** स्वयंभूरमण समुद्र तिरना, आहाहा! जैसे वह बहुत ही अशक्य है। **जैसैं कोऊ उद्दमी उछाह मनमांहि धरै**—कोई पुरुषार्थ से मन में उत्साह धरकर, **करै कैसै कारज विधाता कैसौ करनौ।** दृष्टान्त लिये हैं। कौन करे? विधाता कौन? यह आत्मा की बात कितनी क्या करे! कहते हैं। समझ में आया?

तैसैं तुच्छ मति मोरी तामैं कविकला थोरी। मेरी मति थोड़ी है। मैंने समयसार नाटक का वर्णन किया। मेरी कविकला भी थोड़ी है। **नाटक अपार**—भगवान आत्मा का स्वभाव अगम्य अपार, **मैं कहांलौं याहि वरनौ**—कितना उसका वर्णन करूँ, कहते हैं।

अब उसकी बात जरा सूक्ष्म आयी अब। जीव नट की महिमा। भगवान आत्मा एक-एक आत्मा, शरीर के रजकण और पुण्य-पाप के विकल्पों से पार—भिन्न, आहाहा! ऐसा जो आत्मा स्वयं स्वरूप.... कैसा है उस जीव नट का स्वरूप?

★ ★ ★

काव्य - ५

जीव-नट की महिमा (सवैया इकतीसा)

जैसे वट वृच्छ एक, तामैं फल हैं अनेक,
फल फल बहु बीज, बीज बीज वट है।
वटमांहि फल, फल मांहि बीज तामैं वट,
कीजै जो विचार, तौ अनंतता अघट है।।
तैसै एक सत्तामैं, अनंत गुन परजाय,
पर्जैमैं अनंत नृत्य तामैंऽनंत ठट है।
ठटमैं अनंतकला, कलामैं अनंतरूप,
रूपमैं अनंत सत्ता, ऐसौ जीव नट है।।५।।

अर्थ:-जिस प्रकार एक वट के वृक्ष में अनेक फल होते हैं, प्रत्येक फल में बहुत से बीज तथा प्रत्येक बीज में फिर वट वृक्ष का अस्तित्व रहता है, और बुद्धि से काम लिया जावे तो फिर उस वट वृक्ष में बहुत से फल और प्रत्येक फल में बहुत से बीज और प्रत्येक बीज में वट वृक्ष की सत्ता प्रतीत होती है, इस प्रकार वट वृक्ष के अनन्तपने की थाह नहीं मिलती। उसी प्रकार जीवरूपी नट की एक सत्ता में अनन्त गुण हैं, प्रत्येक गुण में अनन्त पर्यायें हैं, प्रत्येक पर्याय में अनन्त नृत्य हैं, प्रत्येक नृत्य में अनन्त खेल हैं, प्रत्येक खेल में अनन्त कलाएँ हैं, और प्रत्येक कला की अनन्त आकृतियाँ हैं, इस प्रकार जीव बहुत ही विलक्षण नाटक करनेवाला है।।५।।

काव्य-५ पर प्रवचन

जैसै वट वृच्छ एक—जैसे वड़ का वृक्ष एक, **तामैं फल है अनेक।** वृक्ष एक और फल अनेक। **फल फल बहु बीज**—फल फल में वड़ के बहुत बीज। **बीज बीज वट है।** बीज... बीज। एक पूरा वड़। आहाहा! **वटमांहि फल।** वापस उस वड़ में वापस फल, उस फल में भी और बीज। **तामैं पाछा वट**—वड़। **कीजै जो विचार, तौ अनंतता**

अघट है। अघट कहीं उसका अन्त आता नहीं। इतने एक वड़, उसके बीज, उसके एक-एक बीज में वड़ और एक-एक वड़ में वापस बीज और एक-एक बीज में वापस वड़। आहाहा! इतनी शक्ति, एक-एक वड़ में और उसके एक-एक बीज में।

तैसै एक सत्ता— भगवान आत्मा। अब यहाँ घटित करते हैं। आत्मा का अस्तित्व भगवान चैतन्यप्रभु एक सत्ता और अनन्त गुण। आत्मा है एक सत्ता, एकरूप, एक अस्तित्वरूप पदार्थ। परन्तु उसकी गुण की—शक्ति की संख्या अनन्त है और उसके एक-एक गुण की अनन्त पर्याय है। आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था। **पर्जैमैं अनंत नृत्य।** बहुत लम्बी बात है। एक-एक पर्याय में अनन्त नृत्य। ज्ञान की एक पर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी एक समय की पर्याय में अनन्त नाच है। समझ में आया? **पर्जैमैं अनंत नृत्य तामैंऽनंत ठट।** उस ज्ञान की एक पर्याय में अनन्त नाच और नाच में एक-एक में अनन्त थाट भरे हैं।

स्वभाव का सागर भगवान चैतन्य स्वयंभूरमण समुद्र, वह तो क्षेत्र से असंख्य योजन में है। यह तो अनन्त भाव से भरपूर ऐसा भगवान आत्मा है। अब ऐसे आत्मा की इसे माहात्म्य की खबर नहीं। राग जैसा गिन डाला है उसे। समझ में आया? भिखारी जैसा। पैसा लाओ, इज्जत लाओ, दिखाव से हमको बड़ा कहो। अरेरे! ऐसा तू नहीं भगवान! महाप्रभु है! तुझे तेरी खबर नहीं। आहाहा! आत्मसत्ता एक, जैसे वड एक, वैसे सत्ता एक। उसमें बीज अनेक, वैसे गुण अनेक और एक-एक गुण की वापस अनन्त अवस्थायें—दशा अनादि-अनन्त। और एक-एक अवस्था में अनन्त-अनन्त जानने का नृत्य है। आहाहा! एक पर्याय में द्रव्य ज्ञात हो, गुण ज्ञात हो, पर्याय ज्ञात हो, तीन काल ज्ञात हो, वह सब एक पर्याय में ऐसा नृत्य हो रहा है। और उस नृत्य में थट है। उस पर्याय में अनन्त सम्पदा का ठाठ भरा है। उसमें लिखा है—विस्तार किया है भाई ने—दीपचन्दजी ने। अध्यात्म तरंगिणी (पंचसंग्रह) में किया है उन्होंने। उसमें बहुत लम्बी बात है।

ठटमैं अनंतकला। आहाहा! एक-एक पर्याय में अनन्त गुण और अनन्त पर्याय ज्ञात हो और एक-एक पर्याय में अनन्त ठाठ भरा है और एक-एक ठाठ में उसकी

अनन्त कला है। आहाहा! द्रव्य की कला, गुण की कला, पर्याय की कला, उसके अविभाग प्रतिच्छेद की कला भरी हुई है। **कलामैं अनंतरूप।** एक-एक कला में उसका अनन्त स्वरूप है। और स्वरूप में अनन्त सत्ता। एक-एक स्वरूप में अनन्त अस्तित्व है। आहाहा! **ऐसौ जीव नट है।** ऐसा भगवान नट! अपनी जाति को जाने बिना अज्ञान से चौरासी के अवतार में भटक रहा है। डूबकर मर गया है बेचारा अनादि से, कहते हैं। ऐसा बादशाह और ऐसा उसका स्वरूप होने पर भी, उस चीज़ को जाने बिना, उसकी कीमत किये बिना और यह पर की कीमत उसे अधिक हुई। मेरी अपेक्षा शरीर अच्छा। यह पैसे अच्छे, इज्जत अच्छी, पुण्य और पाप के भाव ठीक—अधिक, ऐसी पर की कीमत करने से वह अपनी कीमत हार गया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसो जीव नट बहुत विलक्षण नाटक करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

चौरासी के अवतार में कहाँ-कहाँ अवतार वेश, राग और द्वेष और विकल्प की धारा। कितने वेश किये नरक में, निगोद में। आहाहा! ऐसा नाटक, स्वरूप के अन्तर के भान बिना, मैं कौन हूँ, इसकी कीमत किये बिना, अपनी चीज़ की महत्ता और माहात्म्य और महिमा जाने बिना। आहाहा! इसने अपने में स्वभाव नहीं, ऐसा विभाव नया उत्पन्न करके चौरासी के अवतार के नाटक में रमता है। आहाहा! चौरासी लाख का नागरिक—नट, चौरासी लाख का नागरिक वहाँ भटकनेवाला। आहाहा! परन्तु है ऐसा, तथापि उसका इसे भान नहीं।

★ ★ ★

काव्य - ६

(दोहा)

ब्रह्मग्यान आकासमैं, उड़ै सुमति खग होइ।
यथा सकति उद्दिम करै, पार न पावै कोइ।।६।।

अर्थः-ब्रह्मग्यानरूपी आकाश में यदि श्रुतज्ञानरूपी पक्षी शक्ति अनुसार उड़ने का प्रयत्न करे, तो कभी अन्त नहीं पा सकता।।६।।

काव्य-६ पर प्रवचन

ब्रह्मग्यान आकासमैं, उड़ै सुमति खग होइ।
यथा सकति उद्दिम करै, पार न पावै कोइ॥६॥

आहाहा! भगवान आत्मा जो पुण्य के—दया, दान, व्रत के विकल्प से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! जो इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं; काया और वाणी से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! अगम बात है, भाई! **ब्रह्मग्यान आकासमैं**—यह आत्मा के ज्ञानरूपी आकाश में, **उड़ै सुमति खग होई**—सुमतिरूपी पक्षी कोई उड़े उसमें, परन्तु उस आकाश का जैसे पार नहीं आता। आवे पार? पक्षी ऐसे उड़कर जाये, आकाश तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त है। आकाश अरूपी, उसमें पाररहित अनन्त चीज़ आकाश लोक और अलोक में व्यापक है। पक्षी उड़कर चाहे जहाँ तक जाये, परन्तु उस आकाश का अन्त वह पा नहीं सकता। आहाहा!

इसी प्रकार सुमतिरूपी खग—साक्षात् सम्यग्ज्ञानरूपी पक्षी, उस आत्मा की बात करना चाहे, **ब्रह्मग्यान आकासमैं, यथा सकति उद्दिम करै।** अपनी शक्ति प्रमाण पुरुषार्थ करे, परन्तु कोई पार न पावे। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञानी पार पावे। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा का स्वरूप गहरा-गहरा अनन्त सामर्थ्यवाला और अनन्त ध्रुवता से भरपूर अनन्त ध्रुव गुण.... ऐसा जो तत्त्व, उसे कहते हैं, उसे कहने के लिए सुमतिरूपी पक्षी उड़े तो भी पार आवे नहीं। आहाहा! कुमति की तो बात क्या करना? आहाहा!

ऐसा आत्मा इसने कभी सुना नहीं। और यह क्रिया करो और यह करो और यह व्रत करो, तप करो, यात्रा करो, पूजा करो और अपवास करो। धूल में भी नहीं वहाँ आत्मा। वह तो सब कर-करके मरता है। राग करे और मरता है चार गति में भटकता है। आहाहा! भीखाभाई! यह बेचारे बहुत से करते हैं न। आहाहा! रस को छोड़कर बड़ी करोड़पति की बहुएँ, लो, वर्षीतप करे बेचारी। लंघन है। यह आत्मा कौन है, इसके भान बिना की वे सभी क्रियाएँ बिना एक के शून्य है। समझ में आया? आहाहा! जिसे यथाशक्ति उद्यम करके कहा जाये, परन्तु पार क्या विकल्पातीत चीज़ है वहाँ। उस

विकल्प द्वारा कितना लक्ष्य में लावे—आवे और वाणी द्वारा कितना कहा जाये, कहते हैं। ऐसा भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव ने देखा—जाना, ऐसा इस देह में भगवान, उसका वाणी द्वारा पार नहीं आता, कहते हैं। आहाहा!

ब्रह्मग्यान—नभ अंत न पावै। ब्रह्मज्ञान—आत्मा का ज्ञानरूपी आकाश, उसका अन्त न पावे, कहते हैं। **सुमति परोछ कहांलौं धावै।** आहाहा! कहते हैं कि मतिज्ञान है, परन्तु परोक्ष है। समझ में आया? ऐसा ब्रह्म भगवान आत्मा, तीर्थंकरों ने, केवलियों ने भी जिसे जानकर देखा और अनुभव किया, वे भी वाणी द्वारा पूरा नहीं कह सकते। आहाहा! ऐसा आत्मा का ज्ञान **अंत न पावै।** यह कहने में उसका अन्त आता नहीं। **सुमति परोछ कहांलौं धावै।** पूर्ण स्वरूप प्रत्यक्ष हुआ नहीं, वहाँ तक सुमति की अपेक्षा से यहाँ पूर्णस्वरूप प्रत्यक्ष नहीं, इस अपेक्षा से उसे परोक्ष कहा जाता है।

★ ★ ★

काव्य - ७

(चौपाई)

ब्रह्मग्यान-नभ अंत न पावै।
सुमति परोछ कहांलौं धावै।।
जिहि विधि समयसार जिनि कीनौं।
तिनके नाम कहौं अब तीनौं।।७।।

अर्थः-ब्रह्मज्ञानरूप आकाश अनन्त है और श्रुतज्ञान परोक्ष है, कहाँ तक दौड़ लगावेगा? अब जिन्होंने समयसार की जैसी रचना की है, उन तीनों के नाम कहता हूँ।।७।।

काव्य-७ पर प्रवचन

कहते हैं कि आत्मा वस्तु पूर्ण आनन्द और शान्ति का धाम, ऐसा ज्ञान में भान आया। सम्यग्ज्ञान हुआ तो भी परोक्ष ज्ञान है, वह पूर्ण को पहुँच नहीं सका। ऐसी **सुमति परोछ कहांलौं धावै, जिहि विधि समयसार जिनि कीनौं।** ऐसे समयसार को जिसने कहा, किया और कहा, **तिनके नाम कहौं अब तीनौं।** आहाहा! है ऐसा तो भी उसे आचार्यों ने कहा, कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ८

त्रय कवियों के नाम (सवैया इकतीसा)

कुंदकुंदाचारिज प्रथम गाथाबद्ध करि,
समैसार नाटक विचारि नाम दयौ है।
ताहीकी परंपरा अमृतचंद्र भये तिन,
संसकृत कलस सम्हारि सुख लयौ है।।
प्रगट्यौ बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब,
किये हैं कवित्त हियै बोधिबीज बयौ है।
सबद अनादि तामैं अरथ अनादि जीव,
नाटक अनादि यौं अनादि ही कौ भयौ है।।८।।

अर्थः–इसे पहले स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य ने प्राकृत गाथा छन्द में रचा और समयसार नाम रक्खा। उन्हीं की कृति पर उन्हीं के आम्नायी स्वामी अमृतचन्द्रसूरि संस्कृत भाषा के कलशा रचकर प्रसन्न हुए। पश्चात् श्रीमाल जाति में पण्डित बनारसीदासजी श्रावकधर्म प्रतिपालक हुए, उन्होंने कवित्त रचना करके हृदय में ज्ञान का बीज बोया। यों तो शब्द अनादि है, उसका पदार्थ अनादि है, जीव अनादि है, नाटक अनादि है, इसलिए नाटक समयसार अनादि काल से ही है।।८।।

काव्य-८ पर प्रवचन

कुंदकुंदाचारिज प्रथम गाथाबद्ध करि,
समैसार नाटक विचारि नाम दयौ है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि दिगम्बर सन्त संवत् ४९ में लगभग, भरतक्षेत्र में नग्न दिगम्बर मुनिराज थे, आचार्य थे। वे भगवान सीमन्धर परमात्मा के पास गये थे। अभी परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। तीन काल और तीन लोक का ज्ञान और सौ इन्द्रों से पूजनीक। पुण्य इतना और ज्ञान भी पूरा, ऐसा। ऐसे परमात्मा अभी शरीरसहित केवलज्ञानी परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में ५०० धनुष का देह है। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य मुनि गये थे। आठ दिन रहे थे। आहाहा! उन्होंने गाथाबद्ध यह समयसार बनाया। कहो, समझ में आया? और उनका नाम विचारकर **समैसार नाटक विचारी नाम दयौ।** समयसार—सम-सम्यक् प्रकार से परिणमना और जानना ऐसा जो आत्मा का स्वरूप, उसे समय कहते हैं और सार अर्थात् पुण्य और पाप के रागरहित, ऐसा समयसार विचारकर उसका नाम दिया है।

यह प्रश्न किया था विद्यानन्दजी ने वहाँ दिल्ली में कि यह समयसार नाम क्यों दिया, कहा खबर है? यह मैं शोधता हूँ। विद्यानन्दजी है न इन्दौर। वहाँ उन्हें प्रश्न चला था अन्दर एकान्त में बैठे दिल्ली में चार लोग। कि यह समयसार नाम क्यों दिया? समय तो वस्तु सम्यक् ज्ञान और परिणमन, ऐसा उसका स्वरूप है। जो ज्ञानरूप से रहकर ज्ञानरूप से परिणमे। सम्यक् प्रकार से आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञानस्वरूप चैतन्य का पुंज, वह आत्मा; उस ज्ञान का परिणमना और ज्ञानरूप रहना, ऐसा उसका स्वरूप समयसार नाम दिया।

गाथा में है न, एकत्व निश्चयगत। आहाहा! अर्थ ही ऐसा है न! सम्यक् प्रकार से एकसाथ एक समय में परिणमना हो और एक समय में जानना हो, ऐसा जो होता है, वह आत्मा पदार्थ है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में जानता भी है और परिणमता भी है। जड़ इन रजकणों में जानना नहीं, परिणमना है।

समझ में आया? इनमें जड़ की अवस्था होती है। देखो न, यह शरीर की अनेक प्रकार की अवस्था होती है। वह तो मिट्टी के कारण जड़ की अवस्था है। वह कहीं आत्मा की नहीं। आहाहा!

शिथिल पड़ गया हूँ वह जरा सा.... वे भाई मिले थे हरगोविन्दभाई डॉक्टर। कि शिथिल पड़ गया हूँ, यह जरा सर्दी में ऐसा। मैंने कहा, शिथिल पड़ गया परन्तु कौन इसमें?

मुमुक्षु : शरीर से एकता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि शिथिल पड़ गया हूँ, वह थोड़ा यह सर्दी की हवा खा लूँ। अच्छा है। अरे, शिथिल कौन पड़ गया इसमें? शरीर शिथिल पड़ा, आत्मा शिथिल पड़ा या कौन शिथिल पड़ा? आहाहा! शरीर की अवस्था उस प्रकार से ही वहाँ है, उसे शिथिल कैसे कहना? वह तो है ही उस प्रकार से होने की है। पक्षघात हो, हाथ रुक जाये। वह तो जड़ की अवस्था है, तत्प्रमाण ही होती है। उसमें तेरी रखी रहे नहीं और तेरी टाले टले नहीं। उसी प्रमाण हो, यह तुझे खबर नहीं। आहाहा! ऐसा कि अपने शिथिल पड़ा हूँ इसलिए.... कहा, भाई! शिथिल कौन पड़ा? कहा, शरीर, उसे ही अपना माना है। शरीर वही मैं। वह शिथिल पड़ा तो मैं शिथिल पड़ गया। वह मिट्टी— जगत के तत्त्व जड़ की-पुद्गल की, उसमें शक्ति कुछ घट गयी अर्थात् कि मैं शिथिल पड़ गया। अरे! अब मार डाला है न! शरीर की दृष्टि से मैं, उसकी अस्ति से मेरी अस्ति, उसकी अनुकूलता से मुझे अनुकूलता और प्रतिकूलता से मुझे प्रतिकूलता। गजब किया है न!

मुमुक्षु : यही स्थिति।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्थिति है। भाई के कुछ वहाँ गये थे नवनीतभाई के। महाराज! अभी तो पर्यायबुद्धि है, ऐसा बोले पहले। पर्यायबुद्धि यह शरीर में कैसे होता है, यह वह लक्ष्य वहाँ जाता है। आहाहा! क्या हो? बापू! वह तो जड़ परमाणु एक-एक रजकण उसका पॉईन्ट। यह (शरीर) तो बहुत रजकणों का दल है। एक नहीं। बहुत रजकणों का पिण्ड है। एक-एक रजकण की अवस्था परिणमन उसके काल में

उस समय की उसके कारण से होता है। वह आत्मा में नहीं और आत्मा से नहीं। आत्मा में नहीं और आत्मा से नहीं। कैसे बैठे? एकमेक कर रखा है न ऐसे मानो। आहाहा! उसे रोग, तो कहे मुझे रोग। उसे निरोगता शरीर में तो मैं निरोग हुआ। अरे! अरे भगवान! तू तो अन्दर चीज़ ही तेरी भिन्न है न। यह रजकण रजकण मिट्टी के धूल से तेरा तत्त्व भिन्न है।

कहते हैं, ऐसे स्वरूप को कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार बनाकर समयसार नाटक का नाम दिया। वाचक शब्द है न यह सभी। वाच्य तो भगवान आत्मा है। ऐसा आत्मा। **समैसार नाटक विचारी नाम दयौ।** ऐसा लिखा है बनारसीदास ने। क्योंकि समय— सम्यक् प्रकार से अय। अय अर्थात् गमन और अय अर्थात् ज्ञान। गमन और ज्ञान। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह जाने और परिणमे, ऐसा वह तत्त्व है। वह रागरूप से परिणमे या शरीर का कुछ करे, ऐसा वह तत्त्व है ही नहीं। समझ में आया? यह वस्तु भगवान आत्मा वह जाननेरूप हो। और हो और उसका परिणमन भी उसी काल में, ऐसी चीज़ हो, वह आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा को शास्त्र शब्द द्वारा बनाया, लिखा और उसका नाम दिया समयसार नाटक, लो। यहाँ तो ऐसा समयसार नाटक स्वयं ने (नाम दिया), ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्द आचार्य ने विचार कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार कर।

ताहीकी परंपरा अमृतचंद्र भयै तिन। उनकी परम्परा में अमृतचन्द्राचार्य मुनि दिगम्बर सन्त वनवासी हुए। आहाहा! ऐसा स्वरूप कहा, उनकी परम्परा में कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य हुए। यह शास्त्र के कर्ता की व्याख्या। वह (अन्यमत) कहता है न, द्वैत है वह ईश्वर की वाणी है। इसलिए कोई ईश्वर ऐसा... है इतना। अपुरुष कर्ता। कोई पुरुष नहीं, ऐसा करके। ऐसा नहीं है। इस शास्त्र के कर्ता निमित्तरूप से होते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि, तीर्थंकर के मार्गानुसारी, सर्वज्ञ परमेश्वर के पथ पर चलनेवाले आचार्य, उन्होंने यह समयसार नाटक बनाया। अलौकिक बात! इस भरतक्षेत्र का अद्वैत चक्षु! अजोड़ शास्त्र! जिसकी तुलना में अभी कोई दूसरा शास्त्र नहीं, ऐसा यह शास्त्र है।

अरे! इसे सुनाने से उसे मोक्ष नहीं मिले। तू कौन है? कहाँ है कितना, इसे बतलाया। उसे जानने का मोक्ष, सुनने का मोक्ष नहीं मिले। आहाहा! और सुनकर फिर वह इस प्रकार से है। ज्ञान और ज्ञान का परिणमन होनेवाला वह आत्मा, रागरूप होना या रागरूप परिणमना, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? वह तो जाननेरूप हो और परिणमे, वह उसका कार्य, वही आत्मा। आहाहा! ऐसा आत्मा जब तक दृष्टि में, अनुभव में न आवे, तब तक उसे धर्म किंचित् होता नहीं। व्रत पाले, तप करे, मर जाये सूखकर, दान करे करोड़ों के, मन्दिर बनाये लाखों और करोड़ों के। उसमें उसे कुछ धर्म जैसी गन्ध नहीं। वह तो परवस्तु है। उसमें कदाचित् राग की मन्दता का विकल्प हो तो वह पुण्य है, वह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने विचारकर इस ग्रन्थ का नाम समयसार दिया। उनकी परम्परा में सन्त पके अमृतचन्द्राचार्य। उन्होंने **संसकृत कलस सम्हारि।** संस्कृत कलश बनाये। यह उनका है न इसलिए। टीका बनाकर व्याख्या की। यह तो कलश बनाये। जैसे मन्दिर के ऊपर कलश होता है, उसी प्रकार टीका के ऊपर कलश बनाये। **कलस सम्हारि सुख लयौ है।** यह कलश बनाये और आनन्द को पाये हैं। उन्होंने कहा है कि यह टीका करते हुए मुझे पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति हो। विकल्प हो भले, परन्तु अन्तर आत्मा की ओर का घोलन है, इसलिए उसे कहते हैं कि कलश बनाये, उसमें सुख को प्राप्त हुए। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसका अनुभव तो था। मुनि थे, सन्त थे, दिगम्बर थे, वनवासी थे। परन्तु जब यह कलश बनाया तो अधिक अन्दर घोलन में शान्ति और आनन्द को प्राप्त हुए।

प्रगट्यौ बनारसी गृहस्थ। उसमें कहते हैं कि मैं एक बनारसी नाम का गृहस्थ काशी में पका। स्पष्टीकरण करना पड़ा। गृहस्थ। वे दोनों मुनि थे, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? **प्रगट्यौ बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब।** श्रीमाल जाति में... श्रीमाल जाति थी। **पण्डित बनारसीदासजी श्रावकधर्म प्रतिपालक हुए,...** लो। **किये हैं कवित्त हियै बोधिबीज बयौ है।** उन्होंने यह कविता बनायी। **किये हैं कवित्त हियै बोधिबीज बयौ है।** अन्दर सम्यग्ज्ञानरूपी बोधबीज प्रगट हुआ है। आहाहा! हम आनन्द है, शुद्ध

चैतन्यमूर्ति हैं। ऐसा राग से भिन्न पड़कर स्वसंवेदन का ज्ञान बोधबीज प्रगट हुआ है। समझ में आया? वे दो मुनि थे सही न, इसलिए हम गृहस्थ और बोधिबीजवाले हैं, इतना सिद्ध किया। समझ में आया? आहाहा!

किये हैं कवित्त.... भाषा तो ऐसी बोली जाती है न! कवित्त किया। समझाना कैसे? निमित्तरूप से कर्ता बतलाना है न! कथन में क्या आवे? वहाँ सब चिपटते हैं कि देखो, इन्होंने किया। तो समयसार नाटक कुन्दकुन्द आचार्य ने किया है। यह कहा है तो क्या अर्थ? कलश अकेले अमृतचन्द्राचार्य ने किये, यह तो निमित्त का कथन है। उसमें कथन की पद्धति के समय निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराया है। निमित्त से हुआ नहीं, आहाहा! वाणी की रचना, आगे कहेंगे यह, वाणी के कारण से हुई है। यह वाणी तो अनादि की.... बात कहेंगे। शब्द से शब्द अनादि वाणी जगतमांहि पड़ी है। उस वाणी से परिणमन होता है। आत्मा उसका—वाणी का कर्ता नहीं। आहाहा! गजब वाणी भाई! आवाज उठती है। यह तो जड़ है। भगवान तो अरूपी चैतन्यघन आत्मा है। ज्ञान का सागर, आनन्द का भरपूर भरा हुआ भगवान है। आहाहा! ऐसा आत्मा इन्होंने यह कवितारूप से रचा, ऐसा यह निमित्त का कथन है। समझ में आया?

गृहस्थ सिरीमाल अब, किये हैं कवित्त हियै। ज्ञान में अन्तर में बोधबीज उगा है, कहते हैं। आहाहा! बोधिबीज। ज्ञान का बीज बोया है। बोया है, वह प्रस्फुटित होकर केवलज्ञान होनेवाला है, ऐसा कहते हैं। हम चैतन्य हैं, आनन्द हैं। और दया, दान, व्रत के विकल्प के भी हम कर्ता नहीं, वह हमारी चीज़ नहीं। ऐसा आत्मा में सम्यग्ज्ञानरूपी बीज बोया है, कहते हैं। कहो, समझ में आया? **सबद अनादि तामैं अरथ अनादि।** कहते हैं, शब्द तो अनादि के हैं। भाई!

'**सिद्धा वर्णसमाम्नायः।**' आता है न यह उसमें—मोक्षमार्गप्रकाशक में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वह पहले क्षयोपशम में आता था। पहले जब पढ़ने गये न पहले हम छोटे बालक थे। तब मास्टर थे नथु मास्टर। यह तो पिचहत्तर वर्ष पहले की बात है। छह वर्ष की उम्र में यह ६-७ की। तब पिचहत्तर (वर्ष) पहले। यह वह पहला

सूत्र दिया, वह धूलीशाला होती है धूली। धूलीशाला अर्थात् समझे न? धूल में लिखावट लिखावे। पहले यह सूत्र दिया।

मुमुक्षु : स्लेट पर गेरु....

पूज्य गुरुदेवश्री : गेरु नहीं... यों ही बुलवाते थे यह। तो धूल में लिखे। '**सिद्धा वर्णसमाम्नायः।**' यह शब्द दिया था पहला, लो। पिचहत्तर वर्ष पहले की बात है। तुम्हारे समय यह सब नहीं था। अब सब बदल गया यह तो। वह शब्द मोक्षमार्गप्रकाशक में है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह हमारे पहला-पहला मुझे मिला था और खबर है। बराबर कण्ठस्थ कराया था। सिद्धो वर्ण... है न उसमें—मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में, नहीं? है न उसमें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। परम्परा वर्णन की है न, देखो। '**सिद्धा वर्णसमाम्नायः।**' शब्द है ११वें पृष्ठ पर। मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में। वर्ण उच्चार का सम्प्रदाय स्वयंसिद्ध है। अक्षरों की उत्पत्ति और बनाना, वह स्वयंसिद्ध है। उसका कोई आत्मा-बात्मा कर्ता है नहीं। आहाहा! यह पहले सिखाते थे। जेठाभाई! यह तुम्हारे तो यह शहर में दूसरा होगा। हमारे तो धूलीशाला पहले गये न, छह वर्ष की उम्र होगी, ऐसा लगता है। ७६ वर्ष पहले की बात है। पहले यह शब्द दिया। नथु मास्टर थे। दूसरा एक मणि था, मणिलाल भोला भोटियो। वह उस बेचारे को यह दे। यह पढ़ने जाये और वे सब आटा दे। उसमें आजीविका करे। तब तो आजीविका दूसरी फैलाव थी नहीं न! '**सिद्धा वर्णसमाम्नायः।**' वर्ण की सम्पदा अक्षर की अनादि है। स्वयंसिद्ध है।

यहाँ कहते हैं, शब्द अनादि, यह वाणी अनादि की है। क्षण-क्षण में उसका परिणमन होता है, वह परमाणु का परिणमन का उसका काल है, वे शब्द उठते हैं। **सबद अनादि तामैं अरथ अनादि।** उसमें कहने का जो भाव है, वह भी उसमें अनादि पड़ा ही है उसमें। आहाहा! कहो, समझ में आया? जीव अनादि। भगवान आत्मा भी

अनादि का है। है... है... है... है... है... है... है... है। वह तो अनादि का है। **नाटक अनादि,** लो। नाटक, उसका परिणमना, बदलना, भटकना, वह भी अनादि का है और मोक्ष का होना, वह भी अनादि का है, ऐसा कहते हैं जीव का। मोक्ष जानेवाले भी अनाादि के हैं या नहीं? साधक जीव भी अनादि के। बाधक भी भटकनेवाले अनादि के। सब अनादि के हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **नाटक अनादि यौं अनादि ही कौ भ्यौ है,...** लो। **इसलिए नाटक समयसार अनादि काल से ही है।** यह कर्ता निमित्तरूप से तीन कहे, परन्तु है यह अनादि का, ऐसा वापस सिद्ध किया। यह तो बीच में निमित्त की बात की। आहाहा! **सुकवि लक्षण** अब।

★ ★ ★

काव्य - ९-१०

सुकवि लक्षण (चौपाई)

अब कछु कहौं जथारथ वानी।
सुकवि कुकविकी कथा कहानी।।
प्रथमहिं सुकवि कहावै सोई।
परमारथ रस वरनै जोई।।९।।
कलपित बात हियै नहिं आनै।
गुरुपरंपरा रीति बखानै।।
सत्यारथ सैली नहिं छंडै।
मृषावादसौं प्रीति न मंडै।।१०।।

अर्थः–अब सुकवि कुकवि की थोड़ीसी वास्तविक चर्चा करता हूँ। उनमें सुकवि की प्रथम श्रेणी है। वे पारमार्थिक रस का वर्णन करते हैं, मन में कपोल–कल्पना नहीं करते और ऋषि–परम्परा के अनुसार कथन करते हैं। सत्यार्थ–मार्ग को नहीं छोड़ते और असत्य कथन से प्रीति नहीं जोड़ते।।९–१०।।

काव्य-९-१० पर प्रवचन

अब कछु कहौं जथारथ वानी।
सुकवि कुकविकी कथा कहानी॥
प्रथमहिं सुकवि कहावै सोई।
परमारथ रस वरनै जोई॥९॥
कलपित वात हियै नहिं आनै।
गुरुपरंपरा रीति बखानै॥
सत्यारथ सैली नहिं छंडै।
मृषावादसौं प्रीति न मंडै॥१०॥

देखो, यह सुकवि ऐसे होते हैं। समकिती सुकवि ऐसे होते हैं, उसका वर्णन है।

अब कहौं कछु जथारथ वानी। सुकवि यथार्थ वाणी में निमित्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। कुकवि की कथा और कुकवि कैसे होते हैं, उसका कहता हूँ। **प्रथमहिं सुकवि कहावै सोई परमारथ रस वरनै जोई।** जहाँ परमार्थ भगवान आत्मा के रस का वर्णन करे, आहाहा! उसे परमार्थ से सुकवि कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सब व्यंग और लिंग बनाते हैं न कवि। यह तो अपना आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रस और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर ऐसे परमार्थ रस को वर्णन करें, वे सुकवि कहलाते हैं। आहाहा! समझ में आया? है न? परमार्थ रस का ही वर्णन करे। परमार्थ रस। आत्मा के ज्ञान में एकाकार होना, वह परमार्थ रस है। आहाहा! वह धर्म है। उसका वर्णन सुकवि करे। **परमारथ रस वरनै जोई।**

सुकवि तो उसे कहते हैं कि जो कविता में भगवान आत्मा के आनन्द का एकत्व हो, शुद्धता में एकता हो, ऐसे रस का वर्णन सुकवि करे। समझ में आया? रस की व्याख्या—एक ज्ञेय में लीन होना और दूसरे ज्ञेय का विकल्प न होना, इसका नाम रस। स्वज्ञेय भगवान आत्मा, वर्तमान ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय अर्थात् ध्रुव तत्त्व, उसके रस का वर्णन करे, वह सुकवि कहलाता है। आहाहा! जिसके आत्मा का रस उत्पन्न, आनन्द रस उत्पन्न हो, अर्थात् वीतरागभाव उत्पन्न हो। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह भी वीतरागभाव

है। सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, वह वीतरागीदशा है। वह आत्मा में एकाकार की दशा है। स्वभाव के रस की दशा है। आहाहा! यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्प, वे तो विकारी जहर रस है। आहाहा! समझ में आया? धर्मी सुकवि ऐसे होते हैं कि जो आत्मा का आनन्द और ज्ञानस्वरूप भगवान में एकाकार हों और एक ज्ञेय को पकड़कर लीन हों, ऐसे रस की बात सुकवि कहे। आहाहा!

धर्मी का उपदेश ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। यह तो कवि की बात करते हैं, परन्तु कवि भी उपदेश करता है न इस प्रकार का कवि। ऐसे उपदेशक का—धर्म उपदेशक का उपदेश ऐसा होता है कि जो भगवान आत्मा में एकाकार करावे। ऐसा बोले कि इस आत्मा में एकाकार होना और राग तथा पुण्य की विकल्प की वृत्ति को छोड़ना। आहाहा! उसका रस जो तुझे अनादि का जहर का चढ़ा है, उस जहर के रस को उतारकर आनन्द के रस में चढ़ावे, उसका नाम उपदेशक और कवि कहा जाता है। आहाहा! कहो, गिरधरभाई! तुम्हारे सब बातें कैसी आवे, देखो।

मुमुक्षु : एकदम खोटी।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी? कार्यवाहक सब होशियार कहलाते हो न तुम तो? गिरधरभाई तो कार्यवाहक कहलाते हैं ढींकणा में, गाँव में और फलाना में। यह तो सब गप्प मारनेवाले हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

जिनेन्द्र वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के उपदेशक या कविता रचनेवाले कैसे होते हैं, यह साथ में इकट्ठा वर्णन किया है। आहाहा! **परमारथ रस वरनै।** वे तो। भगवान आत्मा आनन्द का सागर प्रभु है, उसमें एकाकार हो। उसका रस ले। उसका नाम धर्म। उसका नाम वीतरागता। ऐसी बात कवि और उपदेशक, परमेश्वर के उपदेशक, जैन के सच्चे उपदेशक, ऐसी बात करे। कहो, समझ में आया? यह तो यह करो और यह राग करो, पुण्य करो, करते-करते होगा। वे जैन के उपदेशक ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! .... बात वापस कहते हैं, पुण्य करो, पुण्य करो, पुण्य करो। पुण्य अर्थात् राग। राग अर्थात् जहर। आहाहा! खून करो, खून करो आत्मा का, ऐसा। चन्दुभाई! राग अर्थात्... वीतरागमार्ग ऐसा है। भाई! लोगों को सुनने को मिला नहीं। ऊपर से ऊपर से पकड़कर

चलो। यह धर्म हो गया हमारे। यह व्रत पालन किये और अपवास किये और भक्ति की और पूजा की और यात्रा की। हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं, सुन न, भाई! धर्म तो उसे कहते हैं कि राग के एकत्व से छूटकर आनन्द की एकत्वदशा करे, उसे धर्म कहा जाता है। कहो, समझ में आया? **प्रथमहिं सुकवि कहावैं सोई।** उसे सुकवि कहते हैं कि **परमारथ रस वरनै जोई।** आहाहा! जिसके ढलन और झुकाव आत्मा की ओर हो, ऐसी बात करे, कहते हैं। समझ में आया?

कलपित वात हियै नहिं आनै। आहाहा! अज्ञानियों ने कल्पित मार्ग को वे लक्ष्य में लेते ही नहीं, कहते हैं। सच्चे कवि और सच्चे उपदेशक, जगत कैसे प्रसन्न हो, इस बात को कल्पित बात को हृदय में लेते ही नहीं। समझ में आया? दुनिया प्रसन्न हो। ऐसा हो कि ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। संगठन करो, इकट्ठे होकर ऐसा करो। ऐई! दया की मण्डली स्थापित करो। अरे भगवान! कौन स्थापित करे? भाई! द्रव्य भिन्न-भिन्न, उसमें एक कब हो? आहाहा! यहाँ तो पर्याय की एकता करावे द्रव्य के साथ। इसके अतिरिक्त की कल्पित बात हृदय में नहीं लावे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

गुरुपरंपरा रीति बखानै। आहाहा! भाषा देखो न! समझ में आया? अनादि से सन्त, वीतरागी मुनि, केवली जो अनन्त काल से चले आये हैं, उन्होंने जो मार्ग कहा, वह गुरु की परम्परा की रीति बखाने। उसकी महिमा करे। घर की कल्पित बात उसमें जरा भी रखे नहीं। आहाहा! जगत को भारी कठिन। यह बाहर से समेटकर अन्दर में आना, यह बात करे, कहते हैं। जेठाभाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के मार्ग में उपदेशक और कवि ऐसे होते हैं, ऐसा भी डाल दिया साथ में। आहाहा! **गुरुपरंपरा रीति बखानै।** अनादि की सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर और सन्त आत्मा के आराधक, आत्मा के आराधक—सेवन करनेवाले सन्तों ने जो बात की, वह परम्परा बखाने। आहाहा!

सत्यारथ सैली नहिं छंडै। स्वभाव के आश्रय से धर्म होता है, ऐसा जो सत्यार्थ पंथ, ऐसी जो शैली, उसे न छंडे। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बात तो लोगों को अभी ऐसा पकड़ना, क्या कहते हैं यह वह? ऐसा धर्म कैसा होगा? कहते हैं। बापू!

धर्म तो यह तो अपूर्व है यह। अनन्त काल में इसने यह धर्म क्या है और कहाँ से होता है, यह इसने सुना नहीं। धर्म की वीतरागीदशा का धाम—स्थान तो प्रभु स्वयं है। समझ में आया? ऐसी सत्यार्थ शैली को न छंडे। आहाहा! तुम्हारे ऐसा व्यवहार करते-करते होगा। पहला कदम व्यवहार का होता है और दूसरा कदम निश्चय का होता है, ऐसी कल्पना की बात सच्चे कवि और उपदेशक करते नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पण्डितजी! देखो, यह गृहस्थ कवि ऐसा कहते हैं।

सत्यारथ सैली नहिं छंडै। सत्यार्थ सच्ची शैली जो भगवान परमानन्द की मूर्ति के आश्रय से धर्म होता है, यह शैली सच्ची। समझ में आया? यह शैली न छंडे—छोड़े नहीं। **मृषावादसौं प्रीति न मंडै।** झूठे की प्रीति रहे नहीं। यह कल्पना से झूठा करके लोगों को प्रसन्न रखना। दुनिया कहे, आहाहा! यह मेरा धर्म। यह ठीक कहते हैं, हों! लोक को सुधारो, गाँव को सुधारो, संघ को सुधारो। ऐई, गिरधरभाई! यह तो धर्म के नाम से इसे सुधारो, सुधारो। किसे सुधारे? सुन न! सब्जी सुधारते हैं न, सब्जी सुधारते हैं न। क्या कहे, सब्जी सुधारे उसे?

मुमुक्षु : सब्जी सुधारना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुधार कहते हैं? पूरा हो और उसे सुधारो अर्थात् जो पके ऐसे टुकड़े करो, ऐसा। पूरा-पूरा नहीं पकता, इसलिए सब्जी को सुधारो। यह क्या कहलाता है? लौकी या करेला, उसे सुधारो अर्थात् पूरा का पूरा नहीं पकता, उसके टुकड़े करके जैसे पके वैसा करो। इसी प्रकार आत्मा को सुधारो। यहाँ तो यह बात है। आहाहा! समझ में आया?

सत्यारथ सैली नहिं छंडै। आहा! वीतरागभाव से धर्म होता है। यह शैली कभी उपदेशक और सुकवि छोड़ते नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम! जैन परमेश्वर वीतरागदेव ने जो सच्चा धर्म वीतरागभाव (अर्थात्) पर की उपेक्षा और त्रिकाल स्वभाव भगवान के आश्रय से अपेक्षा—ऐसी शैली सुकवि ज्ञानी और उपदेश कभी छोड़ते नहीं। दुनिया को ठीक पड़े या नहीं। समाज उसे तौल रखे या नहीं, समाज को यह ठीक पड़ेगा या नहीं, ऐसा ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? समाज इससे प्रसन्न रहेगी और यह

हमारा पक्ष करेगी, ऐसा ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! **मृषावादसौं प्रीति न मंडै।** असत् वचन से प्रीति बिल्कुल नहीं। प्राण जाये तो भी झूठ बोलने की दूसरी बात करे नहीं ज्ञानी धर्मात्मा, उसे कवि और उसे उपदेशक कहा जाता है। वापस और कैसा कहते हैं? उसकी बात सच्ची। मुनि सब शास्त्र में जो शब्द हैं न, वह बात ही रखते हैं। देखो!

★ ★ ★

काव्य - ११

(दोहा)

छंद सबद अच्छर अरथ, कहै सिद्धांत प्रवांन।
जो इहि विधि रचना रचै, सो है सुकवि सुजान।।११।।

अर्थः–जो छन्द, शब्द, अक्षर, अर्थ की रचना सिद्धान्त के अनुसार करते हैं, वे ज्ञानी सुकवि हैं।।११।।

काव्य-११ पर प्रवचन

छंद सबद अच्छर अरथ, कहै सिद्धांत प्रवांन। सिद्धान्त में जो शब्द हो, उसी प्रमाण जो सब यह आचार्यों ने, कवियों सबने, उस प्रमाण ही मार्ग कहा है। यह भाई कैसे? बनारसीदास नहीं, यह टोडरमलजी इत्यादि। सिद्धान्त में जो है, उस शैली से ही सब बात की है। समझ में आया? एक छन्द करे तो वह सिद्धान्त प्रमाण, शब्द बने तो सिद्धान्त प्रमाण, अक्षर और अर्थ तो यह सिद्धान्त प्रमाण, जो भगवान ने और सन्तों ने कहा, वे ही वाक्य-वाक्य, भी ऐसे ही रचे, कहते हैं, ऐसा कहते हैं।

उसमें आता है, नहीं? यह १४४। तब उसे समकित नाम पावे। भाई! आता है न! नामसंज्ञा। वह शैली ही यह वहाँ टोडरमलजी ने ली है उसमें। हाँ यह शब्द लिये हैं। कोई ऐसी शैली कोई! दिगम्बर के यह पण्डित और सन्तों की ऐसी कोई शैली है कि उन्होंने शास्त्र के जो शब्द हैं, उस जाति के ही शब्द रखे। समझ में आया? वहाँ ऐसा

कहा है कि व्यवहार समकिती निश्चय समकित नाम पावे नहीं। ऐसा लिखा है। देव-गुरु की श्रद्धा, नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, वह श्रद्धा व्यवहार समकित, वह (निश्चय समकित बिना) समकित नाम पावे नहीं। आहाहा! यह ठेठ गाथा १४४ की बात लेकर रखी है। बनारसीदास, टोडरमलजी आदि महा! समझ में आया?

छंद सबद अच्छर अरथ, कहै सिद्धांत प्रवांन। जो सिद्धान्त में सिद्ध हुए भाव और शब्द, वह बात स्वयं करे, कहते हैं। आड़ा-टेढ़ा घर का यह कि कल्पना का अक्षर (होता ही नहीं)। आहाहा! टोडरमलजी ने लिखा है न ऐसा। सिद्धान्त में सामान्यरूप से जो बात है, उसका विशेष करूँगा। कोई मेरा इसमें कुछ कल्पना का कुछ है नहीं। आहाहा! **जो इहि विधि रचना रचै।** इस विधि से रचना रचे, सिद्धान्त प्रमाण और सम्यक् जैसा है, वैसा और परमार्थ रस का वर्णन (करे)। **सो है सुकवि सुजान।** वह सुकवि और सु-जान—बराबर जाननेवाला वह सच्चा है। घर की कल्पना से कुछ करे नहीं। वह उसे सुकवि कहते हैं। उसे धर्म का उपदेशक कहते हैं। अर्थात् उपदेशक कैसे और उपदेश कैसा, यह भी उसमें आ गया। अब कुकवि की बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९८, कार्तिक कृष्ण २, गुरुवार, दिनांक ४-११-१९७१
ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति पद १२, १३, १४

समयसार नाटक पूरा होता है अभी। आखिर की बात है। पहले तो यह बात की। सुकवि होते हैं सुकवि, वे तो **गुरुपरंपरा रीति बखानै।** अपने घर की बात कोई न कहे। यह बात आ गयी है। गयी है न? **परमारथ रस वरनै जोई।** सच्चे कवि और सच्चे उपदेशक कैसे होते हैं कि वे परमार्थ की बात करे। आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वरूप का आश्रय लेना और आनन्द की दशा प्रगट करना, वह बात करे। सच्चे कवि और सच्चे उपदेशक तो वह है। क्योंकि वीतरागमार्ग है तो वीतरागमार्ग में तो वीतरागमार्ग के पोषक होना चाहिए। राग का पोषक, वह वीतरागमार्ग नहीं। समझ में आया? अर्थात् व्यवहार का पोषक, वह जैनमार्ग नहीं। आहाहा! राग हो, व्यवहार हो। यथास्थान में पाप से बचने को ऐसा भाव दया-दान-भक्ति-पूजा-व्रत आदि का विकल्प—राग होता है, परन्तु वह धर्म नहीं। ऐसे उपदेशक और सुकवि यथार्थ हों, वे ऐसा कहें। कुकवि और कुउपदेशक उससे विरुद्ध कहे। यह बात कहते हैं। समझ में आया?

परमार्थमार्ग पोषण... क्योंकि सारे सिद्धान्त शास्त्र का सार तो वीतरागता है। पण्डितजी! पंचास्तिकाय में आया है न? पंचास्तिकाय, १७२ गाथा। चारों अनुयोग भगवान की वाणी का सार तो वीतरागभाव है। तो वीतरागभाव कैसे प्रगट हो और वीतरागभाव का स्वरूप क्या है, उसका वर्णन धर्मी सुकवि और उपदेशक करे। तो वीतरागभाव जिससे प्रगट हो, वह तो पर की अपेक्षा छोड़कर निमित्त, राग का विकल्प और एक समय की पर्याय की भी अपेक्षा छोड़कर त्रिकाली भगवान परमानन्द मूर्ति की अपेक्षा करावे, पर की उपेक्षा करावे, ऐसा उपदेश सुकवि का—उपदेशक का होता है। उससे विरोध कहे, वह कुकवि और कुउपदेशक है। आहाहा! पण्डितजी! यह बनारसीदास। वे कहते हैं, देखो, ऊपर आ गया है।

अब कछु कहौ जथारथ वानी। १०वें बोल में आ गया है। दसवाँ बोल है न? **सुकवि कुकविकी कथा कहानी। प्रथमहिं सुकवि कहावै सोई। परमारथ रस वरनै**

जोई। यह नवाँ बोल। आहाहा! बनारसीदास कवि थे। परन्तु कवि सुकवि थे। यह कहते हैं। यथार्थ वीतराग मार्ग जो है, उसके पोषण करने की कथा बनावे, कवित्त बनावे, वह सुकवि। परन्तु जिसमें राग का पोषण हो, समझ में आया? राग करते-करते कल्याण हो जायेगा, ऐसा पोषक हो, वह सुकवि और सुउपदेशक नहीं। वह कुकवि और कुउपदेशक है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! जगत को राग की क्रिया बाहर की है न, तो वह जँचती है। परन्तु अन्तर भगवान आत्मा चिदानन्द ज्ञायकस्वरूप ध्रुव चैतन्य के अवलम्बन से—आश्रय से जो वीतरागीपर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, वह लोगों को रुचता नहीं। क्योंकि सूक्ष्म है, अन्तर की बात है। बाहर की बात जँच जाती है ऐसा करो, पूजा करो, भक्ति करो, व्रत पालो, तप करे, अपवास करो, कल्याण हो जायेगा। यह वीतराग का उपदेश नहीं। पण्डितजी! समझ में आया?

परमारथ रस वरनै जोई, कलपित बात हिये नहिं आनै। सुकवि और सुउपदेशक कल्पित बात करते नहीं। अनादि गुरु परम्परा... **गुरुपरंपरा रीति बखानै।** आहाहा! सर्वज्ञ भगवान परमात्मा, कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्र आचार्य आदि परम्परा जो बात कहते हैं, यही बात कहनेवाले (को) सुकवि और सुउपदेशक कहते हैं। उससे विरुद्ध कहे, वह कुउपदेशक है। आहाहा! समझ में आया?

गुरुपरंपरा रीति बखानै, सत्यारथ सैली नहिं छंड़ै। सत्यपंथ है, उसे छोड़े नहीं। भले कड़क लगे, दुष्कर लगे परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! अपना वस्तु स्वभाव चैतन्य द्रव्यस्वभाव, ज्ञान-आनन्द स्वभाव का आश्रय लेने से धर्म होता है, यह शैली अनादि की जैनधर्म की है। समझ में आया? पर का आश्रय लेकर, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो परन्तु पर के आश्रय में राग उत्पन्न होता है। निश्चय स्वआश्रित है, व्यवहार परआश्रित है। तो व्यवहार हो, परन्तु वह पोषण करने की चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह विवाद बड़ा है। अभी सत्य निश्चय और व्यवहार उपचार क्या है, उसमें बड़ी गड़बड़ है। तो कहते हैं, **सत्यारथ सैली नहिं छंड़ै, मृषावादसौं प्रीति न मंडै।** कल्पित बात अपने घर की एक अंश भी न कहे। समझ में आया?

बनारसीदास, टोडरमलजी, दौलतरामजी आदि पण्डित हुए, परन्तु सत्यार्थ सर्वज्ञ

का पंथ था, उस रीति की प्रशंसा की है। उस रीति का स्थापन किया है। अपने घर की बात कोई कही नहीं। लो, अपने चलता है १२-१३ (पद)। ११ (पद) आ गया है। छन्द, शब्द, अक्षर और उसकी रचना, सिद्धान्त के अनुसार करते हैं ज्ञानी-सुकवि। सिद्धान्त जो वीतराग का मार्ग है, उसके अनुसार उसका छन्द बनावे, शब्द रचे, अक्षर अर्थ की रचना सिद्धान्त के अनुसार करते हैं। वह **सुकवि सुजान।** वह सुकवि और सुउपदेशक यथार्थ ज्ञान करनेवाला कहा जाता है। अब कुकवि। यहाँ तक तो कल आ गया था।

★ ★ ★

काव्य - १२-१३

अब सुनु कुकवि कहौं है जैसा।
अपराधी हिय अंध अनेसा।।
मृषाभाव रस वरनै हितसौं।
नई उकति उपजावैं चितसौं।।१२।।
ख्याति लाभ पूजा मन आनै।
परमारथ-पथ भेद न जानै।।
वानी जीव एक करि बूझै।
जाकौ चित जड़ ग्रंथ न सूझै।।१३।।

अर्थ:-अब जैसा कुकवि होता है सो कहता हूँ, उसे सुनो, वह पापी हृदय का अन्धा हठाग्रही होता है। उसके मन में जो नई कल्पनाएँ उपजती हैं, उनका और सांसारिक रस का वर्णन बड़े प्रेम से करता है। वह मोक्षमार्ग का मर्म नहीं जानता और मन में ख्याति लाभ पूजा आदि की चाह रखता है। वह वचन को आत्मा जानता है, हृदय का मूर्ख होता है, उसे शास्त्रज्ञान नहीं है।।१२-१३।।

काव्य-१२-१३ पर प्रवचन

अब सुनु कुकवि कहौं है जैसा।
अपराधी हिय अंध अनेसा॥
मृषाभाव रस वरनै हितसौं।
नई उकति उपजावैं चितसौं॥१२॥
ख्याति लाभ पूजा मन आनै।
परमारथ-पथ भेद न जानै॥
वानी जीव एक करि बूझै।
जाकौ चित जड़ ग्रंथ न सूझै॥१३॥

कुकवि, सुनो कैसा होता है। कहते हैं। **अपराधी हिय अंध अनेसा।** आहाहा! वह तो पर से लाभ होता है, ऐसा माननेवाला अपराधी, पापी, हृदय का अन्धा, हठग्राही होता है। आहाहा! समझ में आया? अपना भगवान चिदानन्दस्वभाव ऐसा परमार्थ पंथ का तो भेद जाने नहीं। राग की क्रिया और निमित्त से लाभ होता है, ऐसी बात अज्ञानी कुकवि अन्ध हृदय का अन्ध, ऐसी रचना करता है। जेठाभाई! **अपराधी हिय अंध अनेसा।** लो। वह हठग्राही होता है अन्ध।

मृषाभाव रस वरनै हितसौं। प्रेम से झूठी बात बहुत कहे, कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार जो पुण्य परिणाम ध्रुव से विरुद्ध है। अपने चैतन्यस्वभाव से शुभभाव विरुद्ध है। उससे लाभ बताता है, वह मृषा धर्म का कहनेवाला है, **मृषाभाव रस वरनै....** पहले में ऐसा था, **परमारथ रस वरनै।** यहाँ **मृषाभाव वरनै।** आहाहा! ऐसे (मनावे) कवि और उपदेशक कि उसमें राग से लाभ मनावे, व्यवहार की क्रिया से धर्म मनावे। वह सुकवि नहीं, परन्तु कुकवि और कुउपदेशक है। समझ में आया?

बनारसीदास ने कहा न भाई! यह बन्ध अधिकार में, नहीं? वह आ गया है न उसमें। बन्ध अधिकार, नहीं?

मुमुक्षु : मोक्ष की कतरनी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कतरनी नहीं। उसमें बन्ध। अध्यवसाय, बन्ध अधिकार है न? बन्ध अधिकार। उसमें कौनसे पृष्ठ पर है?

मुमुक्षु : असंख्यात प्रमाण.... १९३।

पूज्य गुरुदेवश्री : १९३, लो। देखो! कैसा अर्थ किया देखो कवि ने। १९३ पृष्ठ है और ३२वाँ कलश (काव्य) है। **सम्यग्दृष्टि जीव आत्मस्वरूप में स्थिर होते हैं।** वह कलश का अर्थ किया। नीचे कलश है न ११।

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति संतो धृतिम्॥

क्या कहते हैं, देखो। अब उसका अर्थ करते हैं बनारसीदास स्वयं। **असंख्यात लोक परवांन जे मिथ्यात भाव, तेई विवहार भाव केवली उकत हैं।** जितना असंख्य प्रकार का दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा-यात्रा का विकल्प है शुभराग, वह धर्म है—ऐसी मान्यता व्यवहारभाव, वह तो व्यवहारभाव है और उसको धर्म मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। गजब! है? असंख्यात लोकप्रमाण मिथ्यात्वभाव **तेई विवहार भाव केवली उकत हैं।** जितना व्यवहार है राग का, विकल्प का, शुभभाव का, वह अपना है और उससे अपने को लाभ होगा, यह इतना मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? मृषावाद—झूठावाद कहते हैं कुकवि। सुकवि सत्य कहते हैं।

जिन्हकौ मिथ्यात गयौ सम्यक दरस भयौ। जिसकी भ्रान्ति व्यवहार मेरा, वह चीज़ नहीं। विकल्प उठते हैं, वह मेरी चीज़ ही नहीं। मेरी चीज में वह है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **जिन्हकौ मिथ्यात गयौ सम्यक दरस भयौ।** सम्यग्दर्शन आत्मा शुद्ध चिदानन्द अखण्ड आनन्द है, ऐसी दृष्टि, अनुभव हुआ, **ते नियत-लीन।** सम्यग्दृष्टि तो निश्चय में लीन है। आहाहा! गजब बात है! अपना ज्ञायकस्वभाव सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का धाम के आश्रय में लीन है। उसकी दृष्टि कहाँ पड़ी है? सम्यग्दृष्टि की दृष्टि निश्चय में है। **विवहारसौं मुकत है।** है? पण्डितजी! कहाँ है?

मुमुक्षु : १९३ पृष्ठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। **विवहारसौं मुकत है।** यह बनारसीदास अर्थ करते हैं। यह ११वें कलश का। **गुरुपरंपरा रीति बखानै।** भारी कठिन काम। जगत को व्यवहार ऐसी विपरीतता घुस गयी है न!

यहाँ तो कहते हैं, जितना व्यवहार का विकल्प जो है शुभराग, उतना मिथ्यात्वभाव है। जितना शुभभाव उसका है, उससे मुझे लाभ होता है, इतना मिथ्यात्वभाव है। कनुभाई! भारी कठिन काम जगत को, हों! यह सुकवि ऐसा अर्थ करते हैं। कुकवि उससे उल्टा अर्थ करते हैं। **जिन्हकौ मिथ्यात गयौ सम्यक दरस भयौ ते नियत-लीन।** ज्ञायक चैतन्य भगवान प्रभु उस ओर के आश्रय में ही उसकी एकता है और सम्यग्दृष्टि जीव व्यवहार के विकल्प से तो अन्तर में मुक्त है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार विकल्प आस्रव है, भावबन्ध है। भावबन्ध से निश्चय होता है? आस्रव से ही संवर होता है? सो विकल्प जितनी क्रिया है, सब आस्रव है। आहाहा! भारी कठिन काम! जगत को वीतराग का मार्ग सुनने में आया नहीं। अन्य के मार्ग को जैन का मार्ग समझ लिया। बनारसीदास अर्थ करते हैं ११वें कलश का।

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैः
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः॥

व्यवहार का त्याग भगवान ने कराया है। आहाहा! दृष्टि में, हों! आता है, तब तो निषेध किया न? समझ में आया? शुभभाव असंख्य प्रकार का होता है। दया-दान-व्रत-तप-पूजा-अनशन-विनय-भक्ति, यह सब भाव शुभराग है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। सम्यग्दृष्टि उस बन्ध के भाव से अन्तर में मुक्त है। बहुत कठिन काम! लोगों को ऐसा लगे झगड़ा... बाहर से माना है तो उसकी यह बात आती है तो सिर फोड़ते हैं। अन्दर से हाय... हाय! यह मार्ग? कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! तेरी सत्य चीज़।

जिन्हकौ मिथ्यात गयौ सम्यक दरस भयौ—मैं तो पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य आनन्द हूँ, ऐसी दृष्टि में जब आत्मा प्रतीति में—अनुभव में सम्यग्दृष्टि को आया तो जितने विकल्प उठते हैं, उनको वे त्याज्य समझते हैं। समझ में आया? ऐसा उपदेश सुकवि

और सुउपदेशक करते हैं। कुकवि और कुउपदेशक उससे उलटा उपदेश करते हैं। ऊंधा कहते हैं? ऊंधा क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ऊंधा ही कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊंधा। हमें बहुत हिन्दी नहीं आती तुम्हारे जैसी। ऐसी साधारण चले। समझ में आया? आहाहा!

निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सुगुन मोख पंथकौं ढुकत हैं। आहाहा! निर्विकल्प भगवान आत्मा, राग और शुभरहित चीज़, ऐसा आत्मा। क्योंकि शुभ तो आस्रव है। उससे रहित आत्मा जो है, ऐसा निर्विकल्प निरुपाधि भगवान आत्मा व्यवहार की उपाधि से रहित है। ऐसा आतम समाधि। ऐसे आत्मा की समाधि साधकर, शुद्ध चैतन्य का—स्वभाव का साधक होकर, **साधि सुगुन मोख पंथकौं ढुकत हैं।** ऐसा सुगुणी जीव अपना मोक्ष जो पंथ, उसमें ढुकत है। आहाहा! मोक्ष के पंथ को ढुकत है। बन्ध के पंथ से हट जाता है, यह कहते हैं। आहाहा! वीतराग परम्परा सत्य गुरुपरम्परा अनादि का मार्ग जो है, सुकवि और सुउपदेशक उसे चूकते नहीं। वही मार्ग कहते हैं। अज्ञानी अपनी कल्पना से मार्ग कहे और दुनिया को प्रसन्न रखे, दुनिया प्रसन्न हो जाये, आहाहा! यह बड़ी बात है, यह बड़ी बात। आहाहा!

मुमुक्षु : लोकरंजन।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकरंजन है।

तेई जीव परम दसामैं थिररूप ह्वैकै, धरममैं धुके न करमसौं रुकत हैं। आहाहा! इस पर तो बड़ी चर्चा हुई है श्वेताम्बर में उस समय। कैसे आचार्य कहे?

मुमुक्षु : मेघविजय।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेघविजय। बनारसीदास ने जब यह अर्थ लिखा, तब मेघविजय थे श्वेताम्बर में। तो उसने बड़ा विरोध किया। और एक पुस्तक बनायी। इस श्लोक के विरोध की। समझ में आया? पढ़ी है पुस्तक। सब पुस्तकें आयीं थी न हमारे पास। सब थी न। दामनगर में थे। विरोध किया कि अरे, व्यवहार, वह मिथ्यात्व? यह क्या? परन्तु

व्यवहार मिथ्यात्व का अर्थ क्या? उससे एकत्वपना मानना, उससे लाभ मानना, वह मिथ्यात्व। उस व्यवहार की बात है यहाँ।

सम्यग्दृष्टि मुनियों को भी व्यवहार तो आता तो है। पंचमहाव्रत का विकल्प आदि नियम नहीं होते हैं? हो, परन्तु उससे हटकर अपनी स्वभाव की दृष्टि रखकर एकता करते हैं। राग से सम्यग्दृष्टि धर्मी मुक्त है। रागसहित है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। समझ में आया? अरे, बात भारी कठिन भाई! जगत ने कुछ ऐसा मान लिया हो, उससे विरुद्ध आये तो ऐसे (विपरीत) लगे। बड़ी चर्चा हुई ३०० वर्ष पहले। बनारसीदास के समय। अरे! व्यवहार, वह मिथ्यात्वभाव? तो व्यवहार तो मुनि को भी होता है। सुन तो सही! क्या कहते हैं यहाँ?

आचार्य कहते हैं। वह आया न उसमें—कलश में। '**सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैः**' जिनेश्वर ने तो ऐसा कहा है कि मैं पर को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ—ऐसा भाव, सब अध्यवसाय मिथ्यात्व है। समझ में आया? पर को मैं जिला सकता हूँ, पर की दया मैं पाल सकता हूँ, परद्रव्य की ऐसी क्रिया मैं कर सकता हूँ—ऐसी मान्यता, वह मिथ्यादशा है। तो कहते हैं कि '**सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैस्तन्मन्ये**' आचार्य महाराज कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य सन्त (कहते हैं)। हम ऐसा मानते हैं, '**व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः**' तो जितने पर के आश्रय से विकल्प उठते हैं, सबको भगवान त्याज्य बताते हैं। उसको—व्यवहार को लाभ(रूप) बताते हैं, वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं। जैन को माननेवाला नहीं है। कठिन काम, भाई! पण्डितजी! पसीना उतर जाये ऐसा है। आहाहा! कहो, गिरधरभाई! समझ में आया इसमें? ऐसा समझ में आता है या नहीं, यह क्या कहते हैं यह? आहाहा!

'**सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति संतो।**' अरे, धर्मात्मा! तेरी चीज़ आनन्दघन है, उसमें क्यों एकाग्र नहीं होता? राग की क्रिया से तो भिन्न है तेरी चीज़। छोटुलालजी! कठिन बात परन्तु भाई यह, हों! पूरा बड़ा सम्प्रदाय जो चलता है। व्यवहार करो, व्यवहार करो, व्यवहार करो।

उसे करते-करते तुम्हें धर्म हो जाएगा। वह उपदेश मिथ्यादृष्टि का है। जैनधर्म का और समकिती का यह उपदेश है नहीं। समझ में आया? सुकवि ऐसा कहते हैं। और कुकवि—कुउपदेशक उससे विरुद्ध—व्यवहार से आत्मा का कल्याण होगा, परमार्थ निश्चय होगा, मुक्ति होगी—ऐसा उपदेश करनेवाला कुकवि मिथ्यादृष्टि कुउपदेशक है। वह कहीं अब गुप्त बात नहीं रही यह। समझ में आया? ११वें कलश का यह अर्थ है, देखो। आहाहा!

अरे, अकेला निश्चय ही मोक्ष का मार्ग है? क्या व्यवहार आता नहीं है? हो, आता है। कौन मना करता है? परन्तु वह मोक्ष का मार्ग नहीं। समझ में आया? कितने कहते हैं न कि मोक्ष के मार्ग दो हैं—निश्चय और व्यवहार। टोडरमलजी ने लिखा है कि मोक्षमार्ग दो कभी नहीं (हो सकते)। मोक्षमार्ग एक ही है। दो (मोक्षमार्ग) माननेवाला मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। टोडरमलजी, मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अध्याय, २५६ पृष्ठ है। समझ में आया? कितने कहते हैं कि मोक्षमार्ग दो हैं। दो माननेवाला भ्रम में पड़ा है। अभी तो कहते हैं कि दो न माननेवाला भ्रम में पड़ा है। यह कहते हैं। अरेरे! गजब किया है!

मुमुक्षु : चोर कोतवाल को दण्डे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चोर कोतवाल को दण्डे। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में है। सातवें अध्याय में। जहाँ दो नय के अवलम्बन की (चर्चा) ली है, वहाँ यह बात बतायी है कि दो नय के अवलम्बनरूप मोक्षमार्ग है ही नहीं। मोक्षमार्ग की प्ररूपणा—निरूपण (दो रूप से) चलती है। मार्ग तो एक ही है।

अपने आत्मा के आश्रय से, ध्रुव चैतन्य भगवान के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति होती है, वह एक ही मोक्षमार्ग है। बीच में जो विकल्प उठते हैं व्यवहार, वह बन्धमार्ग है। उसको आरोप से, निश्चय का आरोप देकर व्यवहार को मोक्षमार्ग का आरोप किया है। है नहीं। है नहीं, उसको कहना, उसका नाम व्यवहार का लक्षण है। लखण अर्थात् लक्षण। आनन्दघनजी ऐसा कहते हैं। सुनो, सुनो। ऐसा ही कहते हैं। ऐसा ही कहते हैं। यह कहे भले वह अन्दर का... व्यवहार से ही मानते हैं सब। आनन्दघनजी

का आया है थोड़ा-बहुत परन्तु तथापि वह आधारभूत नहीं। क्योंकि उन्होंने (श्वेताम्बर के) शास्त्र—टीका मान्य रखी है। यह बात है नहीं यहाँ। श्वेताम्बर के शास्त्र हैं, वह तो कल्पित है। वीतराग के कहे हुए नहीं। समझ में आया? यह तो मार्ग ऐसा है। माने—न माने, समझे—न समझे, उसकी स्वतन्त्रता। समझ में आया?

हमने तो सब श्वेताम्बर शास्त्र देखे या नहीं? श्वेताम्बर शास्त्र सब देखे हैं। हमने तो करोड़ों कलश, करोड़ टीका देखी है सब। श्वेताम्बर थे न हम तो। ४५ वर्ष तो उसमें रहे। हमारे पिताजी का धर्म वही था। स्थानकवासी धर्म था। हम दुकान में भी श्वेताम्बर शास्त्र पढ़ते थे। दुकान में श्वेताम्बर शास्त्र सब देखे सब। दुकान में गृहस्थाश्रम में। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सुयगडांग सब देखे थे। छोटी उम्र में रस था न हमें। छोटी उम्र से हम तो... १७ वर्ष। १७। सत्तर क्या कहते हैं? सत्तरा? सत्रह? नहीं, १ और ७।

मुमुक्षु : सत्रह।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्रह। १७ (वर्ष) की उम्र में। ६५ वर्ष पहले की बात है। अभी तो ८२ हुए देह को। ६५ वर्ष पहले। हम तो दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग सब पढ़ते थे। परन्तु यह चीज़ नहीं उसमें। समझ में आया? सब व्यवहार का पोषण है उसमें। यहाँ कहते हैं। यहाँ तो मार्ग ही ऐसा है। भगवान! किसी को दुःख लगे, न लगे। स्वतन्त्र (जीव) है। मार्ग तो ऐसा है, (ऐसा) कहने में आता है। भाई!

यहाँ तो कवि कहते हैं कि कुकवि तो **मृषाभाव रस वरनै हितसौं।** प्रेम से। है न? १२वीं। **नई उकति उपजावैं चितसौं।** नयी युक्ति उपजावे। नहीं, व्यवहार पहले होता है। व्यवहार बिना निश्चय कैसे होता है? ऐसी युक्ति अज्ञानी, कुकवि, कुउपदेशक चाहे तो साधु नाम धराकर ऐसा कहे तो सब मिथ्यादृष्टि है। उसे वीतरागमार्ग की खबर नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भगवान! ऐसा जगत को बहुत कठिन पड़े। पोषक ही सब बात। क्रियाकाण्ड के पोषने से धर्म होता है। यह तो तुम्हारे रामसूरी ने नहीं, कैसे? ११ उपदेश किये हैं। यहाँ का सुनकर बाद में। रामसूरी ने। व्यवहार के प्राण पोषो, व्यवहार की देशना दो। श्वेताम्बर का आचार्य है न? रामविजय। ऐसे ११ बोल लिखे हैं। यहाँ

की बात बाहर निकली। जँची नहीं। भाई! यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ कहते हैं, ऐसा बनारसीदास कहते हैं। उनके घर की बात एक भी है नहीं।

कहते हैं कि **मृषाभाव रस वरनै हितसौं।** अज्ञानी तो, झूठारस—राग का रस और राग में एकता से लाभ होता है, ऐसा वर्णन प्रेम से अज्ञानी करते हैं। कहो, समझ में आया? बनारसीदास गृहस्थ थे। पहले तो बड़े व्यभिचारी थे। पश्चात् सत्समागम हुआ, आत्मज्ञान हुआ, भान हुआ। आगे कहेंगे। है न? बोधिबीज बोया है। आगे है।

मुमुक्षु : आठवें बोल में।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या? आ गया? हाँ, बस आठवाँ। **किये हैं कवित्त हियै बोधिबीज बौये है।** आ गया, हों! आठवें बोल में आया, लो।

किये हैं कवित्त हियै बोधिबीज बौया है। सम्यग्ज्ञान का बीज बोया है। बोया है। उसमें से केवलज्ञान प्रगट होगा। आहाहा! अरे, भाई! पहले मार्ग की श्रद्धा यथार्थ अनुभव हो। यह मार्ग दूसरी चीज़ है, यह बात। सम्यग्दर्शन जिसे परमात्मा कहे, वह तो विकल्प के व्यवहार से भिन्न होकर अन्तर भगवान आनन्दकन्द प्रभु आत्मा के आश्रय से—एकत्व होने से जो अनुभव हो, उसमें प्रतीति हो, उसका नाम परमात्मा सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसके अतिरिक्त विपरीत रीति से कहते हैं कि राग करने से लाभ होगा, वह सम्यक् है। सब मिथ्यादृष्टि का कथन है। जैन परमेश्वर और जैन सन्तों का यह कथन नहीं। समझ में आया? **नई उकति उपजावैं चितसौं।** नयी युक्ति उपजावे और लोकरंजन (करे)।

ख्याति लाभ पूजा मन आनै। व्यवहार से लाभ होगा, रागक्रिया करते-करते होगा। समझ में आया? पहले आँगन में आये बिना घर में घुस जाते हैं? ऐसा दृष्टान्त देते हैं। व्यवहार बराबर शुद्ध हो तो आँगन में आया कहावे। परन्तु वह आँगन घर नहीं है। आँगन को छोड़कर घर में जाता है। भैया! मार्ग की दृष्टि होना, वह तो अपूर्व चीज़ है। सम्यग्दर्शन, वह तो अपूर्व चीज़ है। वह तो मुक्तदशा की प्रणालिका शुरु हो गयी है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप ही है। राग का जो बन्धन है, (वह) एक समय की पर्याय के साथ राग का सम्बन्ध है। वस्तु की जहाँ दृष्टि हुई, अबद्धस्पृष्ट

भगवान आत्मा (प्राप्त हुआ)। १४वीं, १५वीं गाथा में आया न, **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं। अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि। पस्सदि जिणसासणं सव्वं।'** जिसने अपना आत्मा कर्म और राग से बद्ध नहीं, अबद्ध है, शुद्ध है, मुक्त है—ऐसी प्रतीति अनुभव में की, वह अनुभव जैनशासन है। जैनशासन कोई राग और व्यवहार, वह जैनशासन नहीं। वह तो राग है। जैनशासन तो वीतरागीभाव, वह जैनशासन है। समझ में आया?

ख्याति लाभ पूजा मन आनै, परमारथ-पथ भेद न जानै। भेद न जाने। अभी तो परमार्थ वस्तु क्या है, उसे जाने नहीं। आहाहा! भाई! अनन्त काल... अनन्त काल हुआ। जैन साधु हुआ, जैन श्रावक हुआ व्यवहार से। मिथ्यादृष्टिरूप से बहुत पंच महाव्रत पाले अनन्त बार, परन्तु राग की क्रिया, वही धर्म है, ऐसा मानकर किया तो जन्म-मरण का अन्त आया नहीं। आहाहा! **परमारथ-पथ भेद न जानै।** भगवान आत्मा व्यवहार की क्रिया—राग से बिल्कुल भिन्न है। ऐसा परमार्थ का भेद—रहस्य अज्ञानी कुकवि और कुउपदेशक जानते नहीं।

वानी जीव एक करि बूझै। आहाहा! वह तो प्ररूपणा करे न वाणी, तो वाणी तो जड़ है। तो जड़ मैं करता हूँ, वाणी मैं करता हूँ, मैं उपदेशक हूँ—ऐसी मान्यता कुकवि का मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? वाणी जीव? यह वाणी तो अजीव है—जड़ है। भगवान तो अरूपी चैतन्य भिन्न है। **एक करि बूझै।** मैं वाणी करता हूँ, मैं दुनिया को उपदेश करता हूँ, यह उपदेश की क्रिया मेरी है—ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि कुकवि है। आहाहा! जैसे जगत का कर्ता ईश्वर नहीं परन्तु कर्ता मानते हैं, वैसे अज्ञानी वाणी की क्रिया का कर्ता माने, दोनों ही एकसरीखे मिथ्यादृष्टि हैं। बराबर है? पण्डितजी! मार्ग तो ऐसा है, भगवान! आहाहा! क्या हो? दुनिया को सत्य मिला नहीं और सत्य की दरकार ही नहीं। अपना पोषण जो भाव माना, उसका पोषण करे, वह अच्छी बात लगे उसे। यहाँ तो भगवान कहते हैं, वही बनारसीदास कहते हैं। अपना घर का नहीं। **वानी जीव एक करि बूझै।**

अमृतचन्द्र आचार्य ने कहा है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय,

सबमें। अरे भगवान! उपदेश की वाणी मेरी है और मैं करता हूँ, ऐसा न मानो। भगवान! वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! होंठ हिलते हैं, वह जड़ है और वाणी निकलती है, वह भाषा जड़ है। जड़ और आत्मा एक मानते हैं। मैं उपदेश करता हूँ। बराबर मैं उपदेश करता हूँ। भाई! तुम तो ज्ञान (रूप) हो न तुम। उपदेश की वाणी के कर्ता तुम कहाँ से हुए? अज्ञानी को खबर नहीं। उपदेश में ऐसा जोर लगावे, ऐसा है, ऐसा है। अरे, भगवान! सुन तो सही, प्रभु!

यह वाणी की क्रिया तो जड़ की क्रिया है। यह तो अजीव की क्रिया है। अज्ञानी, वाणी—जीव एक करी जाने। **बूझै,** है न? पण्डितजी! संस्कृत के प्रोफेसर। हमारे पण्डितजी प्रोफेसर हैं जयपुर के। अभी निवृत्ति ली है। क्या संस्कृत भाषा, यह तो जड़ है। आहाहा! बोलना, वह तो जड़ की दशा है; आत्मा की नहीं। आत्मा वाणी कर सकता नहीं। आहाहा! अरे, भगवान! अजीव को जीव माना। भाषा की क्रिया अजीव की, उसे मैंने की, वह तो अजीव को जीव माना। आहाहा! समझ में आया?

वानी जीव एक करि बूझै। भगवान तो वाणी की क्रिया से भिन्न चैतन्य है। वाणी रूपी है, आत्मा अरूपी है। वाणी जड़ है, आत्मा चेतन है। समझ में आया? वह तो परमाणु की पर्याय है। आत्मा तो ज्ञान की पर्याय करनेवाला है। राग का भी करना आत्मा नहीं। आहाहा! व्यवहाररूपी राग, वह मेरा कर्तव्य है, यह भी मिथ्यादृष्टि की मान्यता है। समझ में आया? भगवान आात्मा तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप में वाणी कैसी आयी? वाणी के रजकण पड़े हैं आत्मा में? भाषावर्गणा में से वाणी उठती है। अज्ञानी तो ऐसा मानते हैं कि हम बराबर उपदेश करते हैं, यह भाषा की क्रिया हमारी है और उससे लोगों को लाभ होता है। यह सब मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! मार्ग, बापू! मोक्ष का मार्ग और वह परमेश्वर ने कहा वह, हों! दूसरे में तो यह बात नहीं, है ही नहीं। सर्वज्ञ वीतराग और दिगम्बर सन्तों ने कहा, वही एक ही मार्ग है। दूसरे में ऐसा मार्ग है नहीं। मध्यस्थ से देखे तो उसकी समझ में आये। पक्षपात से देखे तो समझ में आता नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो भाई! वाणी को एक कर माने, इसका अर्थ पहला कि राग को और

व्यवहार को भी एक कर मानता है, वह वाणी को भी एक करके मानता है। आहाहा! भगवान अरूपी चैतन्य अरूपी घन ज्ञानघन है। उसमें से रजकण की आवाज (की अवस्था) कहाँ से आयी? और यह तो वीतरागमूर्ति... आगे आयेगा, यह शब्द है न? **घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन; मतमदिरा के पानसौं मतवाला समुझै न।** ३१ बोल। ३१ है न ३१? ३१ आयेगा। बाद में है ३१। तीस और एक। पृष्ठ ४१९।

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन; मतमदिरा के पानसौं मतवाला समुझै न। है जेठाभाई? कहाँ? घट-घट अन्तर जिन बसे। प्रत्येक हृदय में जिनराज आत्मा विराजते हैं। आत्मा तो जिनराज है। आहाहा! समझ में आया? घट-घट अन्तर जिन बसे। रागवाला नहीं, व्यवहारवाला नहीं, यह कहते हैं। व्यवहार तो आस्रववाला है। आस्रववाला जीव है? घट-घट अन्तर जिन बसे। घट-घट अन्तर जैन। जैनधर्म का निवास भी अन्दर में है। वीतरागी पर्याय, वह जैनधर्म है। व्यवहार राग और निमित्त, वह कोई जैनधर्म है नहीं। आहाहा! कठिन लगे लोगों को, हों! फिर विवाद... विवाद... वाडा के पक्षकार विवाद करे। भगवान! यह वाद-विवाद का विषय नहीं, प्रभु! यह तो अन्तर की समझ का विषय है। 'सद्गुरु कहे, सहज का धन्धा। वाद-विवाद करे सो अन्धा।' बनारसीदास कह गये। समझ में आया?

देखो, कितनी बात की है। घट-घट अन्तर जिन बसे। भगवान विराजता है आत्मस्वरूप, वह आत्मस्वरूप, वही जिनस्वरूप है; 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही है कर्म। इसी वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' यह श्रीमद् कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र हुए न? उन्हें छोटी उम्र में जातिस्मरण हुआ। जिन सो ही आत्मा। भगवान आत्मा तो वीतरागमूर्ति है। (ऐसा) उसका स्वरूप ही है। राग और शरीर; शरीर आदि अजीव है, कर्म आदि अजीव है। राग, विकल्प, व्यवहार, वह तो आस्रव है।

घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन। वीतरागीस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय लेने से जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह अन्तर में है। कोई विकल्प और बाहर में वह पर्याय है नहीं। मत मन्दिरा के पानसौं। अपने मजहब... मजहब। हिन्दी तुम्हारी भाषा है न हिन्दी। अपने मजहब के पक्षरूपी मदिरा के पी लेने से अपने पक्ष की मदिरा

पी है। मदिरा पी है अपने पक्ष की, देखो! अपने मजहब के पक्षरूपी मदिरा के पी लेने से मतवाले लोग नहीं समझते हैं। अपने राग और अज्ञान के पक्ष में ज्ञानी की ऐसी बात, वे समझ नहीं सकते। उन्होंने बहुत लिया है। बनारसीदास ने तो बहुत लिया है।

टोडरमलजी, बनारसीदास आदि जो हुए महासमर्थ। समर्थ... उन्होंने तो भगवान के शास्त्र थे, उसी का स्पष्टीकरण किया है। अपने घर की कोई बात है ही नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि थे। धर्म की बात में सम्यग्दृष्टि और केवली दोनों की बात एक सी है, स्थिरता में अन्तर है। सम्यग्दृष्टि में स्थिरता चारित्र की नहीं। विशेष, हों! स्वरूपाचरण चारित्र तो होता है। अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर इतनी शान्ति की स्थिरता तो सम्यग्दृष्टि को होती है। परन्तु विशेष जो मुनि की स्थिरता है चारित्र वीतरागता, ऐसी सम्यग्दर्शन में नहीं।

चारित्रदशा तो अलौकिक दशा है। वीतरागदशा है। परमात्मपद को पाने का निकट भाव है। आहाहा! परन्तु धर्म की कथनशैली, श्रद्धा में कोई अन्तर नहीं। समझ में आया? मतवाले लोग नहीं समझते। अपने पक्ष के मत में पड़े, वे यह बात समझ में नहीं लेते। ऐसा कहा? ऐसा भगवान आत्मा है? अरे, भगवान है। सुन तो सही! वस्तुरूप से भगवान आत्मा है। ऐसी दृष्टि हो तो पर्याय में भगवान मैं हूँ, ऐसी प्रतीति आती है। और बाद में भगवान पर्याय में हो जाता है। भगवान न हो तो भगवान की केवलज्ञान पर्याय कहाँ से आती है? बाहर से आती है? समझ में आया?

छोटी पीपर का दृष्टान्त देते हैं न? छोटी पीपर नहीं होती है? छोटी पीपर— लींडी पीपर। घिसते हैं न ६४ पहर। चरपराहट प्रगट होती है न ६४ पहर। इतनी काली होती है न छोटी पीपर। छोटी पीपर। लेंडी पीपर कहते होंगे। परन्तु उसमें ६४ पहरी शक्ति पड़ी है। ६४ पैसा कहते थे न पहले? अभी १०० पैसे का रुपया हुआ। पहले तो ६४ पैसे का रुपया था न? तो ६४ पहरी जो शक्ति पड़ी है अन्दर। वह घूंटने से अन्तर है, (वह) बाहर आती है। कोई शक्ति बाहर से आती नहीं। पूर्ण एक छोटी पीपर इतनी बाहर में काली और कद में छोटी, परन्तु शक्ति में पूर्ण अन्दर चरपराई भरी है, चरपरी।

इसी प्रकार भगवान आत्मा शरीररूप से अवगाहन देखने में आता है और काली

पुण्य-पाप आदि विकार की पर्याय देखने में आती है, परन्तु वह यह नहीं। उसमें तो अनन्त ज्ञान-दर्शन अनन्त चौंसठ पहरा पूर्ण अनन्त आदि भरा है। वह तो वीतरागस्वरूप आत्मा है। शक्तिरूप से, सत्त्वरूप से, भावरूप से, द्रव्यस्वभावरूप से। समझ में आया? उसका आश्रय करने से यह मोक्ष का मार्ग जो उत्पन्न हो, उसका नाम मोक्षमार्ग कहते हैं। अज्ञानी मतवाला मानता नहीं। अपने मत का पक्षवाला यह बात लक्ष्य में लेता नहीं। आहाहा! **जाकौ चित जड़ ग्रंथ न सूझै।** हृदय का मूर्ख होता है कुकवि। और उसे शास्त्रज्ञान नहीं। शास्त्र में क्या कहना है, उसकी खबर नहीं।

★ ★ ★

काव्य - १४

(चौपाई)

वानी लीन भयौ डग डोलै।
वानी ममता त्यागि न बोलै।।
है अनादि वानी जगमांही।
कुकवि बात यह समझै नांही।।१४।।

अर्थः-वह वचन में लीन होकर संसार में भटकता है, वचन की ममता छोड़कर कथन नहीं करता। संसार में वचन अनादिकाल का है, यह तत्त्व कुकवि लोग नहीं समझते।।१४।।

काव्य-१४ पर प्रवचन

वानी लीन भयौ डग डोलै।
वानी ममता त्यागि न बोलै॥
है अनादि वानी जगमांही।
कुकवि बात यह समझै नांही॥१४॥

क्या कहते हैं, देखो। **वह वचन में लीन होकर संसार में भटकता है।** यह वाणी मैं करता हूँ, मैं उपदेशक हूँ, वाणी का रचनेवाला मैं हूँ। दीवार में से क्यों वाणी नहीं निकलती है? ऐसा तर्क करे। वाणी मुझसे हुई है, मैं उपदेशक हूँ। मैं वक्ता हूँ। जेठाभाई! ऐसे अज्ञानी वचन में लीन होकर वचन मेरा काम है, उपदेश वाणी मेरा काम है, ऐसा मानकर संसार में भटकता है। आहाहा! कठिन बात, भाई!

एक व्यक्ति, उसका कहा था न! यहाँ से सुनकर गये थे वहाँ अहमदाबाद। एक को पूछा कि महाराज! यह वाणी कौन बोलता है? तो उसने उत्तर दिया, तेरा बाप बोलता है? तुम बोलते हो। आहाहा! अरेरे, भगवान! अहमदाबाद का वह श्वेताम्बरी था। सुनने को आया। १५ दिन सुना। तो यहाँ आया कि वाणी आत्मा की क्रिया है नहीं। जड़ की क्रिया है, वह तो अजीव की (क्रिया है)। तो वहाँ जाकर पूछा, महाराज! वाणी कौन बोलता है? कहे, तेरा बाप बोलता है? तुम बोलते हो। अरे, अरे! क्या बात! आचार्य था, हों! बड़ा नाम धरावे। अरे भगवान! ऐसा अन्याय अन्दर से न चले, भगवान! वीतरागमार्ग में ऐसा अन्याय नहीं चलता। आहाहा! दुनिया माने।

तो कहते हैं, **वचन की ममता छोड़कर कथन नहीं करता।** वाणी की ममता करता है अज्ञानी। मैं जैसे बोलूँ, वैसे बोल सकता हूँ, जोर से बोलूँ तो बोल सकता हूँ, धीरे से बोलूँ तो मैं बोल सकता हूँ। कैलाशचन्दजी! धीरे से बोलो, जोर से बोलो। पहले आप बोलते थे न? जेठालालजी! भैया ऐसे बोलते थे। बोले कौन? बोले वह दूसरा जड़, आत्मा बोलता नहीं कभी। आहाहा! आत्मा न बोले तो लकड़ी में से क्यों आवाज नहीं निकलती है? अरे, भगवान! सुन तो सही! यह जड़ की अवस्था सम्बन्धी जिस समय होनेवाली है, वह होती है। केवलज्ञानी भी अपनी दिव्यध्वनि के कर्ता नहीं। आहाहा!

दिव्यध्वनि भगवान की निकलती है। परमात्मा ॐध्वनि। 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' परन्तु उस ओमध्वनि का कर्ता आत्मा केवली नहीं। शरीरवर्गणा नहीं करता तो फिर आत्मा कहाँ से करे? क्योंकि वह शरीरवर्गणा तो दूसरी वर्गणा— आहारवर्गणा है। भाषावर्गणा दूसरी है। भाषावर्गणा में से भाषा होती है। वह आहारवर्गणा में से नहीं होती है। तो आत्मा से होती है वाणी? वह तो मूढ़ मानते हैं। आहाहा!

वचन की ममता छोड़कर कथन नहीं करता। उसका अर्थ कि उसकी दृष्टि में वचन के ऊपर ही दृष्टि पड़ी है। राग के ऊपर ही अज्ञानी की दृष्टि है। परन्तु कथन और राग से हटकर अपने स्वभाव की दृष्टि रखकर बोलते नहीं। कठिन बातें भाई! ऐसा जैनधर्म! कहो, गिरधरभाई! यह वाणी ऊँचे बोले, कहते हैं, आत्मा नहीं बोलता। ऐसा कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि अरे, मैं उपदेशक, यह टीका मैंने की—(ऐसा) न मानो। और वाणी से तुम्हें समझ होगी—ऐसा न मानो। ऐसा मोह न करो। आहाहा!

संसार में वचन अनादि का है। यह कहा था कल, नहीं? '**सिद्धो वर्णसमाम्नायः**' मोक्षमार्गप्रकाशक में है यह शब्द। यह अनादि का है। कहा था न कल। हम भी पहले पाठशाला गये थे तो पहला शब्द हमको यही सिखया था। समझे? ७५ वर्ष पहले की बात है। पाठशाला में—धूली पाठशाला में गये तो पहले यह शब्द सीखे। '**सिद्धो वर्णसमाम्नायः**' वचन की आम्नाय अनादि की है। मोक्षमार्ग में आता है—मोक्षमार्गप्रकाशक। मैं वाणी का आत्मा कर्ता नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! राग का कर्ता होता है न, तो वाणी का कर्ता उसे मान लेते हैं। अज्ञानी की दृष्टि राग और वाणी पर है। ज्ञानी की दृष्टि राग और वाणी पर नहीं। आहाहा! मैं तो ज्ञान और शुद्ध चैतन्य हूँ। मुझमें राग का कर्तव्य भी नहीं। राग, वह मेरे ज्ञान का परज्ञेय है। वाणी भी मेरे ज्ञान का परज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया?

संसार में वचन अनादिकाल का है, यह तत्त्व कुकवि लोग नहीं समझते। अज्ञानी यह समझते नहीं। जोर देते हैं। नहीं, ऐसे बोलते हैं, हम बोलते हैं। भगवान! हम अर्थात् क्या? हम अर्थात् आत्मा। तो आत्मा बोलता है? अजीव की क्रिया आत्मा करता है? वह तो—भाषा तो अजीव की क्रिया है। आहाहा! अजीव का परिणमन है, जड़ का परिणमन है। उस परिणमन का आत्मा कर्ता है? अज्ञानी की सूझबूझ व्यवहार में और पर में है तो यह सूझ नहीं, यह कहते हैं। राग की ममता छोड़कर, वाणी की ममता छोड़कर....

अज्ञानी नहीं बोल सकते, यह कहते हैं। उसकी ममता तो वहाँ पड़ी है न? राग मैं हूँ, वाणी मैं हूँ। यह कहते हैं। क्योंकि आत्मा रागरहित चिदानन्द है, ऐसी दृष्टि की

खबर नहीं। तो राग मैं हूँ। यहाँ अपनी पूर्ण सत्ता है, उसके अस्तित्व की दृष्टि नहीं। तो कहीं अपना है, ऐसा अस्तित्व मान लेते हैं या नहीं? तो व्यवहार का बोलने का उपदेश का विकल्प मेरा है और वाणी भी मेरी है। ऐसे अजीव और आस्रव को अपना माननेवाला मिथ्यादृष्टि कुकवि सत्य का भेदज्ञान करता नहीं। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

बड़े-बड़े मंच के ऊपर ऐसे भाषण दे। लाखों लोग ऐसे... दो-दो घण्टे बोले। धारावाही वाणी निकले और कहे कि आत्मा उसका कर्ता नहीं। अरे, यह वे पागल हैं पागल? ऐई, गिरधरभाई! भाषण कैसा करते होंगे, नहीं? प्रमुख बनकर भाषण करे ऐसे बड़ी... बोले कि तुमने मुझे प्रमुखरूप से स्वीकार किया, यह तुम्हारा बड़प्पन है। मुझमें महत्ता... अन्दर तो गलगलिया हो। समझ में आया? और यह महत्ता तुम्हें निभानी, वह तुम्हारा काम है, ऐसा। ऐई, गिरधरभाई! आहाहा! अरे, तू चीज़ भगवान, राग से और वाणी से भिन्न है। नाथ! यह राग में तुम आते नहीं और वाणी में तुम जाते नहीं। परन्तु अज्ञानी को इसका पता नहीं। बाद में वाणी की व्याख्या करते हैं थोड़ी, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १९९, कार्तिक कृष्ण ३, शुक्रवार, दिनांक ५-११-१९७१
ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति पद १५ से ३१

समयसार नाटक। अन्तिम पद है न यह सब। वाणी की व्याख्या आयी है। यह १५, १५। वाणी निकलती है, वह स्वतन्त्र है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। वाणी का कर्ता आत्मा नहीं।

★ ★ ★

काव्य - १५

वाणी-व्याख्या (सवैया इकतीसा)

जैसै काहू देसमैं सलिल-धारा कारंजकी,
नदीसौं निकसि फिर नदीमैं समानी है।
नगरमैं ठौर ठौर फैलि रही चहुं ओर,
जाकै ढिग बहै सोइ कहै मेरौ पानी है।।
त्यौंही घट सदन सदनमैं अनादि ब्रह्म,
वदन वदनमैं अनादिहीकी वानी है।
करम कलोलसौं उसासकी बयारि बाजै,
तासौं कहै मेरी धुनि ऐसौ मूढ़ प्रानी है।।१५।।

अर्थ:-जिस प्रकार किसी स्थान से पानी की धारा शाखारूप होकर नदी से निकलती है और फिर उसी नदी में मिल जाती है, वह शाखा शहर में जहाँ-तहाँ होकर बह निकलती है, सो जिसके मकान के पास होकर बहती है, वही कहता है कि यह पानी मेरा है, उसी प्रकार हृदयरूप घर है और घर में अनादि ब्रह्म है और प्रत्येक के मुख में अनादि काल का वचन है, कर्म की लहरों से उच्छ्वासरूप हवा बहती है, इससे मूर्ख जीव उसे अपनी ध्वनि कहते हैं।।१५।।

काव्य-१५ पर प्रवचन

जैसै काहू देसमैं सलिल-धारा कारंजकी,
नदीसौं निकसि फिर नदीमैं समानी है।
नगरमैं ठौर ठौर फैलि रही चहुं ओर,
जाकै ढिग बहै सोइ कहै मेरौ पानी है॥
त्यौंही घट सदन सदनमैं अनादि ब्रह्म,
वदन वदनमैं अनादिहीकी वानी है।
करम कलोलसौं उसासकी बयारि बाजै,
तासौं कहै मेरी धुनि ऐसौ मूढ़ प्रानी है॥१५॥

जैसे किसी देश में सलिल—पानी प्रवाह धारा चले... पानी की धारा। उसका एक भाग वहाँ से **नदीसौं निकसि फिर नदीमैं...** समाये। आया है न, अपने कलश में आया है न! कलश में आया है न! पानी का पूर... पानी चलता है, उसमें से कोई भाग निकलकर फिर वापस नदी में समा जाये। वह पानी **नगरमैं ठौर ठौर फैलि रही।** गाँव में पानी गया। जाता है न! **जाकै ढिग बहै।** जहाँ पानी उसके घर के पास आवे, **सोइ कहै मेरौ पानी है।** ऐसा कहे। पानी तो पानी के कारण से प्रवाह से चलता है। उसका पानी नहीं और उसके कारण से पानी आया भी नहीं। आहाहा! **त्यौंही घट सदनमैं।** इसी प्रकार यह हृदय में ज्ञानसदन में अन्दर भगवान विराजता है अनादि ब्रह्म आनन्दस्वरूप परमात्मा स्वयं आत्मा अनादि ब्रह्म वस्तु है। हृदयरूपी घर है और घर में अनादि ब्रह्म। प्रत्येक के मुख में अनादिकाल का वचन। देखो, क्रमबद्ध को सिद्ध करते हैं। आहाहा! जैसे प्रत्येक घर में पानी जाये, वह पानी कहीं उसका नहीं और उसके कारण से गया नहीं। स्वतन्त्र पानी के कारण से (आया है)। इसी प्रकार मुख में वाणी स्वतन्त्र उसके परमाणु के प्रवाह के कारण से वह वाणी आयी है। कहो।

मुमुक्षु : उसका कर्ता जीव नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव तो नहीं परन्तु उसके क्रम से आयी है वाणी, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एक कदम आगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। आहाहा! अनादि ब्रह्म भगवान के समीप में मुख में अनादि काल का वचन है, कहते हैं। यह देखो भाषा तो देखो! यह वाणी का प्रवाह जो चलता है क्रम, वहाँ उस वाणी का प्रवाह उसके क्रम से अनादि का वह वहाँ वह आनेवाला ही था। उसके कारण से वह वाणी निकली है। आहाहा! समझ में आया? उस वाणी का आत्मा कर्ता (नहीं है)।

मुमुक्षु : व्यवहार से कर्ता?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कर्ता का अर्थ क्या? कर्ता ही नहीं। वह तो निमित्तपना किसका है, यह बतलाने के लिये वाणी भगवान ने कही, मुनियों ने रचना की, ऐसा कहा जाता है। कहा जाता है अर्थात् वह कर्ता है, ऐसा नहीं।

समयसार में आ गयी न १००वीं गाथा में कि यह शरीर, वाणी, मन का कर्ता आत्मा नहीं। जड़ की कर्म की क्रिया का आत्मा कर्ता नहीं। तब? कि अज्ञानी जो राग और योग का कर्ता होता है, उस समय में अज्ञानी, वह योग और राग वह कर्म की पर्याय में निमित्त होते हैं। शरीर की क्रिया में निमित्त तो उसमें वाणी की क्रिया में निमित्त होते हैं। समझ में आया? आहाहा! जिसके कम्पन—योग और इच्छा का जो कर्ता होता है अज्ञानी। क्योंकि वह कम्पन और इच्छा वह स्वरूप में है ही नहीं। तथापि जो इच्छा राग और कम्पन का कर्ता होता है, ऐसा पर्यायबुद्धिवाला अज्ञानी वाणी और शरीर और कर्म की पर्याय में निमित्तरूप से कहा जाता है। उससे हुई नहीं। आहाहा! यहाँ तो....

मुमुक्षु : दीवार कहीं बोले?

पूज्य गुरुदेवश्री : दीवार भी बोलती है, आवाज पड़े तब। आवाज नहीं होती? ऐसी बात है। आहाहा! तू तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। ज्ञान में वाणी का होना—करना, यह है कहाँ? निमित्तरूप से होना, ऐसा उसके स्वभाव में नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : वकालत का धन्धा किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वकालत का धन्धा सब किया। ऐई, सुमनभाई! यह भी तेल का धन्धा करता है न वहाँ। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि यह वाणी जो निकलती है और शरीर की क्रिया चलती है, वह उसके परमाणु के प्रवाह का काल ही ऐसा था कि वह वहाँ आकर वह क्रिया होती है। ऐसा कहते हैं। **वदन वदनमैं अनादिहीकी वानी है।** अनादि का अर्थ—यह वाणी का क्रम प्रवाह वहाँ आनेवाला ऐसा प्रवाह है अनादि का वह। आहाहा! अनादि का जैसे ब्रह्म आनन्दस्वरूप भगवान अनादि का है। उसी प्रकार यह वाणी और शरीर की पर्याय भी उस काल में होनेवाली, ऐसा अनादि का प्रवाह वहाँ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लोगों को वीतरागमार्ग कठोर (लगता है)। वाणी मैं करता हूँ, मैं हूँ तो वाणी बोली जाती है। कहते हैं कि वह परमाणु हैं तो उनकी पर्याय भाषा की होती है। आहाहा! समझ में आया? यह समाधिशतक में यह आता है न वह, वायु होती है न। वायु से यह शरीर की प्रेरणा चलती है। वायु से शरीर की प्रेरणा ऐसी होती है, ऐसा। इसका अर्थ यह। यह तो निमित्त की बात है। आहाहा!

भाई! तू तो आत्मा है न और आत्मा, वह ते ज्ञानस्वरूपी चैतन्यघन है। वह आत्मा, वह तो शरीर, वाणी के काल में जो पर्याय हो, उसका वह निमित्त भी नहीं। आहाहा! कठिन बता ऐसी! मात्र वह वाणी तो वाणी के ही काल में भाषा जिस प्रकार से निकलने की-होने की, उसी प्रकार से निकलती और होती है। वह तो जैसे पानी घर-घर जाये और वह माने कि पानी मेरा। नदी में से प्रवाह फटकर आया, वैसे पुद्गल के परमाणु का एक प्रवाह आकर उस समय भाषारूप हो। यह शरीर भी उस रूप से ऐसा होता है। उसे वह अज्ञानी मानता है कि यह मेरे कारण से भाषा होती है। आहाहा! समझ में आया?

वाणी और शरीर की जो पर्याय, उसका वास्तविक प्रवाह ही उसके पुद्गल का वही होनेवाला वहाँ था। समझ में आया? वहाँ उस काल में वह भाषा का परिणमन और शरीर का भी उस गति का उस समय में उसी काल में उस प्रकार से गमन ऐसा होने पर, आत्मा अन्दर है, वह ऐसा मानता है कि मेरे कारण यह भाषा हुई... कुकवि की बात है न! उपदेशक की बात है यहाँ। उपदेशक। कहो, उसमें यहाँ वकील आये या नहीं

इसमें? दलील करे, दलील की। बराबर दलील कर सकता है या नहीं? नहीं कर सकता? बराबर कर सकता है कि यह विलायत में इस किस्से में था, उसमें इस प्रमाण तुम्हारे यहाँ समाधान करना पड़ेगा, लो। यह भाषा बोले न? कहो, जेठाभाई!

मुमुक्षु : ....दृष्टान्त बताये?

पूज्य गुरुदेवश्री : बताये? तुम्हारे वहाँ वह ऑडीटर में भी ऐसा नामा लिखना है न बराबर व्यवस्थित। इस प्रमाण, इस प्रमाण है बराबर है। इस प्रमाण बराबर नहीं, लो।

यह लिखने की क्रिया जो भाषा एक-एक परमाणु उस समय में उसी प्रकार से परिणमने की क्रिया का प्रवाह था। आहाहा! समझ में आया? उसका आत्मा कर्ता नहीं। उसके कारण से भाषा और शरीर की पर्याय होती है। इसकी अस्ति है, इसलिए उसकी अस्ति इस प्रकार से होती है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म है इसलिए होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म है, इसलिए नहीं। कर्म की पर्याय कर्म के पुद्गल की पर्याय उस काल में उस प्रकार से होनेवाली उस प्रकार से होती है। भाषा को निमित्त है, ऐसा कहना, वह भी यह निमित्त है। भाषा की वर्गणा भाषा के कारण से उसी समय में उसी प्रकार से... आहाहा! यह भाषा तो ऐसी की है। अनादि की वाणी है, ऐसा कहा है। इसका अर्थ ही, वाणी का प्रवाह जो है उस काल में होने का, वह अनादि का ऐसा का ऐसा है। आहाहा! कहो, जेठाभाई! ऐसी भारी बातें जैनदर्शन की।

ईश्वर जगत का कर्ता तो नहीं, परन्तु यह वाणी और जड़ का कर्ता आत्मा नहीं। आहाहा! अरे, इसकी निर्मल पर्याय का भी कर्ता नहीं। अरे, इसकी राग और कम्पन की क्रिया भी उसकी कर्ता नहीं। मात्र राग और क्रिया के ऊपर जिसकी दृष्टि है, उसे उस काल में निमित्तरूप से कर्ता का आरोप देकर कहा जाता है। आहाहा! कठिन काम व्याख्या। जैनदर्शन को समझना। जैनदर्शन अर्थात् वस्तु का स्वरूप। समझ में आया? कहते हैं कि अरे, वाणी के काल में जोर से या धीरे से, धीरे से या थोड़े से या अधिक से जो भाषा निकलती है, वही उसका प्रवाह में उसी प्रकार का अनादि का क्रम है। कहो, समझ में आया? उसके बदले अज्ञानी **करम कलोलसौं उसासकी बयारि बाजै।**

वह तो निमित्त से कथन किया है। कर्म के निमित्त से उच्छ्वास हो श्वास, उसमें बहती भाषा, मूर्ख जीव उसे अपनी ध्वनि कहते हैं। आहाहा! कितने इसके? स्त्री इसकी, पुत्र इसका, दुकान इसकी, चूड़ियाँ इसकी, हीराभाई इसके। अरे, गजब है न! कहते हैं।

यहाँ तो कहे, वाणी के काल में वाणी निकली, वह उसकी। मूर्ख है। आहाहा! यह राग के काल में वास्तव में राग होता है और वह मेरे हैं, यह भी मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। मूढ़ है। समझ में आया? आहाहा! इच्छा के काल में इच्छा का प्रवाह उस काल में ही वह होनेवाला था, उसके बदले अज्ञानी अपने चैतन्यस्वभाव को भूलकर, राग मेरा कर्तव्य है, ऐसा अज्ञानी मानता है। मानता है, आहाहा! है नहीं। वे उपदेशक बहुत उत्साह में आकर फिर धड़ाका बोले न! हम ऐसा करते हैं, हम ऐसा करते हैं। भगवान! शान्त हो प्रभु! यह जगत के परमाणु के प्रवाह के काल में तू प्रविष्ट न हो। तू न जा, वहाँ। तू तुझमें रह। समझ में आया? मैं तो ज्ञान-आनन्दस्वरूप हूँ। मुझमें तो यह है। राग का और वाणी का कर्तव्य निमित्तरूप से भी मेरा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आज एक पत्र आया है एक। कोई चक्रवर्ती है न कोल्हापुर का। कुछ मँगाया है उन्होंने। आत्मधर्म लिखा होगा, है उसमें। कोई चक्रवर्ती है, नाम है। होगा कोई वहाँ कुन्दकुन्द का.... कुन्दकुन्दाचार्य की पीठ... पीठ बाँधी। और यहाँ के मँगाये हैं। पहले मँगाये होंगे, दूसरे मँगाये हैं। भाई! अब दो-तीन व्यक्ति कोई निन्दा करते हों तो इससे पूरा दिगम्बर धर्म तुम्हारी निन्दा करता है, ऐसा तुम्हें नहीं मानना। सिद्ध करते हैं। लिखा है। दो-तीन व्यक्ति कोई हों और उसकी गिनती क्या उनकी? ऐसे पाप के परिणाम करनेवाले को दूर रखो। उसने बहुत लिखा है। और ऐसा समझो, यह तो वह कहता है, इस प्रकार से अयशकीर्ति टल जाती है इस अपेक्षा से। अरे, अयशकीर्ति जाये... उसने अभी लिखा है। दो-तीन व्यक्ति... बाकी मार्ग तो है वह यह। ऐसा ही वहाँ लिखा है। आप सूर्य हो तो मैं दीपक हूँ। उसे बात बैठी है। वहाँ लिखा है। वह कहता था न वह चन्द्रशेखर, कि आप सिंह हो तो मैं सिंह का बच्चा हूँ। भाई! हम सिंह भी नहीं। तुम मुफ्त के... आहाहा! कौन कहता है भाई सिंह और कौन कहता है बच्चा? आहाहा! यह तो आत्मा है वह तो! चैतन्यसूर्य भगवान। वह तो जानने का ही अपना काम करे, यह एक ही उसका कार्य है। आहाहा! समझ में आया?

बनारसीदास ने बात कैसी डाली, देखो! और आचार्य भी पूज्यपादस्वामी। इच्छा और द्वेष हो, राग और द्वेष, इससे वायु हो, ऐसा कहे। वह तो निमित्त की बात और वायु की प्रेरणा से शरीर की क्रिया होती है, ऐसा कहा। यन्त्र चले ऐसा। वह व्यक्ति चलावे... यह तो निमित्त से बात है। यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी उसके आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। समझ में आया? वास्तव में तो भगवान आत्मा ज्ञान का भानवाला स्वरूप है, उसका स्वरूप। ऐसा भान हुआ, इससे उसे यह जो शरीर, वाणी की क्रिया जो होती है वह यहाँ ज्ञान में उसे निमित्त होती है। स्वयं तो उसे निमित्त नहीं होता, परन्तु ज्ञान में वह निमित्त होती है। समझ में आया? वाणी में निमित्त कर्ता तो नहीं। निमित्त कर्ता नहीं। धर्मी जीव अर्थात् आत्मा। आत्मा अर्थात् धर्मी जीव और धर्मी अर्थात् आत्मा। समझ में आया? जिसने राग अपना माना और देह, वह तो सब अनात्मा है। वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा जो है, वह सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञान और आनन्द का सागर। वह तो वाणी के काल में वाणी होती है। वहाँ ऐसा कहते हैं न, उसमें आता है न! वाणी का कर्ता... ज्ञान कर्ता और वाणी कर्म। आता है न खानियाचर्चा में आता है। ऐई! ऐसा आता है वहाँ। लो, यह याद आया वापस। ऐसा कि ज्ञान कर्ता है और वाणी उसका कर्म है। यह तो व्यवहार से कहा है। अब कर्म कैसा उसका? आता है? याद नहीं? ठीक। यह उसे याद करते हैं। आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु वह मानता है, परन्तु यह मार्ग है, ऐसा कहा। यहाँ तो ज्ञान कर्ता और वाणी उसका कर्म, वाणी कर सकता है। ऐसा उनका प्रश्न किया था न रतनचन्दजी ने। उसके उत्तर में दिया है उसमें। है वह ऐसा पाठ है। ज्ञान कर्ता और वाणी कार्य। समझ में आया? धवला में! ... भाई! परन्तु इसका अर्थ क्या? वह तो वाणी के काल में वाणी होती है तब वह ज्ञान की पर्याय को निमित्त कहा जाता है। निमित्त कहने में आता है। वह निमित्तरूप से भी कर्ता तो नहीं, परन्तु निमित्तरूप से कर्ता, ऐसा उसमें आरोप दिया जाता है। आहाहा! बड़ा प्रश्न उठा है उसमें—खानियाचर्चा में। आहाहा! तत्त्व भगवान अपने अस्तित्व में है। चैतन्य तो अपने अस्तित्व में है। वह

तो नहीं राग के अस्तित्व में, नहीं वाणी-शरीर की पर्याय की अस्ति में। समझ में आया?

ऐसा आत्मा! कहते हैं कि उसमें जो वाणी आवे, उसके प्रवाह योग से, **तासौं कहै मेरी धुनि।** यह मेरी आवाज, मेरी आवाज। मेरी आवाज मीठी है। मेरी आवाज कड़क कौवे जैसी है। ऐसा कहते हैं न! मेरी चाल गधे जैसी है। मेरी अर्थात् शरीर की। शरीर की चाल हाथी जैसी है मलपती है। अरे भगवान! वह तो सब शरीर और वाणी की क्रिया जड़ की है। उस समय में जड़ उस प्रकार से ही होने का उसका काल है। अज्ञानी उसे कहते हैं कि यह मेरी ध्वनि—आवाज, मैंने उपदेश दिया। आहाहा! कठिन बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उल्टी गाड़ी चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी गाड़ी चलती है वहाँ। आहाहा! बात तो भाई, प्रभु! तेरे अस्तित्व में से तू निकल जाये और दूसरे की सत्ता में तेरा प्रवेश है? प्रवेश तो नहीं, परन्तु निमित्तरूप से होना, वह भी तेरे स्वभाव में नहीं, ऐसा यहाँ तो है। आहाहा!

जहाँ आत्मा स्व-परप्रकाशक ऐसा जहाँ भान हुआ, तब तो वाणी और शरीर आदि की क्रिया हो, उस काल में होनेवाली थी, तब स्व-परप्रकाशक ज्ञान के कारण परप्रकाशक स्वयं के कारण से प्रकाशता है। उसमें वह वाणी आदि निमित्त कहे जाते हैं। ऐसा निमित्त नहीं, तथापि ऐसे निमित्त कहे जाते हैं। आहाहा! एक बात तो देखो! पण्डितजी! तो कहते हैं, यह कल्लोल उठे कर्म के निमित्त से वाणी, आवाज, मानो कि मुझसे हुई। भाई! तू कहाँ है वहाँ? जहाँ तू है, वहाँ तो राग भी नहीं और वहाँ तो वाणी की पर्याय में निमित्त होना, वह भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात! आत्मा को ऐसा है, ऐसा इस प्रकार जानना और मानना, वह कुछ ऊँची अपूर्व बात है। समझ में आया? आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - १६-१७

(दोहा)

ऐसे मूढ़ कुकवि कुधी, गहै मृषा मग दौर।
रहै मगन अभिमानमैं, कहैं औरकी और।।१६।।
वस्तु सरूप लखे नहीं, बाहिज द्रिष्टि प्रवांन।
मृषा विलास विलोकिकैं, करै मृषा गुन गान।।१७।।

अर्थः–इस प्रकार मिथ्यादृष्टि कुकवि उन्मार्ग पर चलते हैं और अभिमान में मस्त होकर अन्यथा कथन करते हैं। वे पदार्थ का असली स्वरूप नहीं देखते, बाह्यदृष्टि से असत्य परिणति देखकर झूठा वर्णन करते हैं।।१६–१७।।

काव्य-१६-१७ पर प्रवचन

ऐसे मूढ़ कुकवि कुधी, गहै मृषा मग दौर।
रहै मगन अभिमानमैं, कहैं औरकी और॥१६॥

मूढ़ कुकवि कुधी अज्ञानी गहै मृषा। झूठा मार्ग कहे। नहीं, नहीं, वाणी हम करते हैं। हम बोलते हैं, वैसा बोला जाता है। हम जैसा राग करते हैं, वैसा होता है। अरे, ऐसा नहीं होता भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। उपदेशक और कवि ऐसा रचे, कहते हैं। **मूढ़ कुकवि कुधी**—कुबुद्धि। **गहै मृषा**—झूठे मार्ग को कहे। क्या वाणी आत्मा बिना निकले? लो। अभी यह बहुत चर्चा चली है। इस शरीर की क्रिया में से सब... प्रश्न पहला उठा है। कि तो जीवित शरीर से धर्मक्रिया होती है या नहीं? लो। यह पण्डिततो थे वहाँ। अरे भगवन! यह शरीर की क्रिया का समय का जो हलन-चलन का पर्यायकाल है, स्वकाल उसका उसी प्रकार से होता है। उसमें उससे धर्म और पुण्य ऐसा है कहाँ? आहाहा! भारी काम, भाई! स्वाहा... भगवान की पूजा करे, तब करे न अष्टद्रव्य स्वाहा... वह क्रिया तो जड़ की है, भाई! तेरा भाव है अन्दर, वह जरा राग शुभ। वह शुभराग तेरे अस्तित्व में उसे माने तो है, न माने तो उस अस्तित्व में राग भी

है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान के अस्तित्व में तो ज्ञान और आनन्द है। उसकी सत्ता में—अस्तित्व में तो आनन्द और ज्ञान है। उसमें राग भी कहाँ उसकी सत्ता में था और वाणी की पर्याय तो है ही कहाँ? आहाहा!

परन्तु कुकवि मृषा (मार्ग) की ओर ले जाते हैं, **रहै मगन अभिमानमैं।** हम जैसा रचते हैं, वैसी भाषा रचती है। ऐसा करें तो ऐसा होता है और फलाना, लो। वह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं आता? सोना के मणका हों, उन्हें कहाँ लगाना, यह उसकी इच्छा प्रमाण लगावे, लो। ऐसा आता है वहाँ। आता है न?

मुमुक्षु : बोले परन्तु यह लगाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगावे-बगावे कुछ लगा सकता नहीं। यही यहाँ सिद्ध करना है यहाँ तो। यहाँ तो निमित्तरूप से ऐसी भाषा, उस काल में आती है, ऐसा कहना है। वरना कोई लगा सकता है कि इस जगह यह शब्द रखना? लो, मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा आता है। ऐई पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन रचे? उसके कारण से वह परमाणु की पर्याय, उस काल में उस क्रम में वह रच गयी है। आहाहा! कहो।

अभी तो वे कहे, शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न? मेरा तो सुई एक। छठवीं-सातवीं.... अरे भगवान! अरे बापू! क्या करता है तू यह! शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न करते हैं बातें। मेरा तो सुई एक। आहाहा! अरे भाई! सुई कौन मारे और सुई कौन लगावे? आहाहा! और शरीर में यह छिद्र पड़े, वह किसके कारण से पड़ते हैं? वह सुई के कारण से नहीं, आत्मा के कारण से नहीं और आत्मा में नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म! वीतरागमार्ग। जिसके फल भी अनन्त आनन्द और शान्ति। अनन्त आनन्द, आहाहा! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' अरे! यह दुःखी प्राणी अनादि का, उसे सादि-अनन्त अनन्त आनन्द प्रगट हो, उसका उपाय तो अलौकिक ही होगा न!

कहते हैं कि मगन, अज्ञनी तो मगन रहता है। बस ऐसी वाणी की। ऐसे शास्त्र रचे, पुस्तक ऐसी बनायी। कवित्त भी ऐसी देशी (राग) में बनाये हैं कि लोग रंजन हो

जायेंगे, लो। शार्दूल, वसन्तमालिका। वसन्तमालिका क्या कहलाता है? वसन्ततिलका। वसन्तमालिका तो वह दवा होती है। वसन्तमालिका तो धातु होती है, नहीं? आहाहा! अरे भगवान! आहाहा! तू तो प्रभु! ज्ञान है न! उस ज्ञान में वाणी का उत्पन्न होना, उठना, वह कहाँ है अन्दर? अज्ञनी को जोर चढ़ जाता है। **कहैं औरकी और।** होवे जड़ से और कहता है कि हमारे से (वाणी होती है)। तुम्हारी वहाँ यह भाषा-बाषा करना पड़ती होगी, वह नहीं जहाँ पोरबन्दर में थे न? प्रमुख, क्या थे?

मुमुक्षु : कलेक्टर।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलेक्टर थे, लो, पोरबन्दर में। कलेक्टर में भाषा-बाषा सब आनी चाहिए या नहीं? भाषा आये बिना कलेक्टरपना होता होगा? अरे भगवान! भाषा किसकी? आना किसकी? अरे! भाषा की जानकारी किसका? वह आत्मा की जानकारी नहीं। आहाहा!

वस्तु सरूप लखै नहीं। अज्ञानी वस्तु के स्वरूप की जाति को जानता नहीं। लखे नहीं अर्थात् जानता नहीं। आहाहा! कि राग की क्रिया भी स्वतन्त्र, वाणी की क्रिया स्वतन्त्र। यह राग आस्रव है, आस्रव की क्रिया के काल में आस्रव की पर्याय होती है, उसका आत्मा जाननेवाला और देखनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! भारी अटपटा मार्ग, इसलिए लोग बेचारे... उस बेचारे ने लिखा है कि दो-तीन व्यक्ति ऐसे हों, इससे कहीं पूरा दिगम्बर धर्म उसमें नहीं आ जाता। पूरा दिगम्बर धर्म विरोध नहीं करता, ऐसा समझना, कहे। यह दो-तीन गिनता कौन है परन्तु यहाँ? वह तुम्हारी अयशकीर्ति टल जाती है, ऐसा कहे। तथापि ऐसा बोलनेवाला... अब अयशकीर्ति ही कब थी यहाँ? आहाहा!

वस्तु सरूप लखै नहीं। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, वह वाणी का कर्ता नहीं, ऐसा वस्तु का स्वरूप है। ऐसा जानता नहीं अज्ञानी बाह्य दृष्टि। देखो न, हम बोलें तो बोला जाता है या नहीं? और खायें तो खाया जाता है, ऐसा बाह्य दृष्टि प्रमाण हाँक रखता है अज्ञानी, कहते हैं। आहाहा! निमित्त से हमारे से तुमको लाभ न हो तो हम नहीं बोलेंगे, लो। ऐसा कहता है। अरे भाई! कौन बोले? और तुझसे दूसरे को लाभ हो, ऐसी बात ही कहाँ है? आहाहा! **मृषा विलास विलोकिकैं।** झूठी गति देखकर, भाषा की,

वाणी की, यह शरीर की **करै मृषा गुन गान।** झूठे गुणगान करे, ओहोहो! तुम भारी उपदेशक हो। तुम्हारा व्याख्यान बढ़िया। व्याख्यान बढ़िया, परन्तु धूल में क्या? गोर महाराज गप्प मारे तो अच्छा। आहाहा! मृषा गुन गान, लो। कोई झूठा वर्णन करे। **मृषा गुन गान कथन।** यह कुकवि का वर्णन रखते हैं।

★ ★ ★

काव्य - १८

मृषा गुणगान कथन (सवैया इकतीसा)

मांसकी गरंथि कुच कंचन-कलस कहैं,
कहैं मुख चंद जो सलेषमाको घरु है।
हाड़के दसन आहि हीरा मोती कहैं ताहि,
मांसके अधर ओंठ कहैं बिंबफरु है।।
हाड़ दंड भुजा कहैं कौंलनाल कामधुजा,
हाड़हीकै थंभा जंघा कहे रंभातरु है।
योंही झूठी जुगति बनावैं और कहावैं कवि,
येतेपर कहैं हमैं सारदाको वरु है।।१८।।

शब्दार्थ:-गरंधि=डली। कुच=स्तन। सलेषमा (श्लेष्मा)=कफ। दसन=दाँत। आहि=हैं। बिंबफरु (बिंबाफल)=कुँदरू। कौंलनाल (कमलनाल)=कमल की डण्डी। रंभातरु=केले का वृक्ष।

अर्थ:-कुकवि माँस के पिण्डरूप कुचों को सुवर्णघट कहते हैं, कफ खकार आदि के घररूप मुख को चन्द्रमा कहते हैं, हड्डी के दाँतों को हीरा मोती कहते हैं, माँस के ओठों को कुँदरू कहते हैं, हाड़ के दण्डीरूप भुजाओं को कमल की दण्डी अथवा कामदेव की पताका कहते हैं, हड्डी के खम्भेरूप जाँघों को केले का वृक्ष कहते हैं। वे इस प्रकार झूठी झूठी युक्तियाँ गढ़ते हैं और कवि कहलाते हैं, इतने पर भी कहते हैं कि हमें सरस्वती का वरदान है।।१८।।

काव्य-१८ पर प्रवचन

मांसकी गरंथि कुच कंचन-कलस कहैं,
कहैं मुख चंद जो सलेषमाको घरु है।
हाड़के दसन आहि हीरा मोती कहैं ताहि,
मांसके अधर ओंठ कहैं बिंबफरु है॥
हाड़ दंड भुजा कहैं कौंलनाल कामधुजा,
हाड़हीकै थंभा जंघा कहे रंभातरु है।
योंही झूठी जुगति बनावैं और कहावैं कवि,
येतेपर कहैं हमैं सारदाको वरु है॥१८॥

हमने शारदा वरी है। सरस्वती वरी है। आहाहा! माँस के पिण्डरूप कुच, उन्हें स्वर्णघट कहता है। सोने के घड़े जैसे स्तन हैं इस स्त्री को। ऐसा कहे, सोना के घट। अरे, हड्डियाँ-माँस है। आहाहा! उसमें कैंसर हो। कैंसर होता है न? आहाहा! माँस के पिण्ड में कैंसर होता है, गाँठ होती है अन्दर, छूए और पीड़ा हो। अरे, माँस के पिण्ड स्तन, उन्हें सोना के कलश कहकर अज्ञानी महिमा करता है, कहते हैं। मूढ़ जीव आत्मा के भान बिना ऐसी रचना करे, कहते हैं। लो, **कंचन-कलस कहैं। कहैं मुख चंद जो सलेषमाको घरु है**—कफ और खखार का घर ऐसे मुख को चन्द्रमा की उपमा दे। चन्द्रमा जैसा रूप है। अरे, सड़कर ईयळ पड़ेगी अब वहाँ सुन न! आहाहा! कुकवि की रचना ऐसी होती है, ऐसा कहते हैं।

हड्डी के दाँतों को हीरा मोती कहते हैं... लो। दाँत, दाँत। **हाड़के दसन।** यह हड्डियों के दाँत हैं। मोती जैसा, बापू! अरे, हीरा जैसा, मोती जैसे दाँत नहीं कहते? सफेद हों वे मोती जैसे दाँत हैं। अरेरे! आहाहा! सफेद मोती। घिस-घिसकर साफ रखते हो न। और सोने की तथा चाँदी की वह रखते हों। क्या कहलाता है वह? जीभी जीभी। सोने की, चाँदी की रखे ऐसे। साफ। हड्डियाँ दाँत की उन्हें मोती और हीरे की उपमा दे मूढ़ जीव, कहते हैं। हड्डियों के टुकड़े हैं वे सब। आहाहा! **मांस के ओठों को**

कुंदरू कहते हैं। यह माँस के होंठ को बिम्बफल। बिम्बफल आता है न! उसे कहते हैं। लाल बिम्बफल नहीं आता क्या? लाल होता है और होंठ वह लाल बिम्ब जैसे हैं, ऐसा कहते हैं। **हाड़ के दण्डीरूप भुजाओं को कमल की दण्डी...** कहे। लो ठीक। हड्डियों का दण्ड है यह तो सब हड्डियों के दो भाग। भुजा, उसे कोमल... कमल की डण्डी कोमल है कि ऐसे कोमल है। अब कोमल है परन्तु हड्डियाँ हैं, वे तो जड़ हैं।

अथवा कामदेव की पताका कहते हैं,.... लो। कामदेव की कामध्वजा। कोमल शरीर हो, रूपवान हो, मक्खन जैसा हो, तब ऐसा.... **येतेपर कहैं हमैं सारदाको वरु है।** हमने सरस्वती वरी है। मर जायेगा .... ! आहाहा! ऐसे आत्मा के भान बिना ऐसे शरीर की महिमा करके दुनिया से कीर्ति प्राप्त करनी है और बड़े कवि हैं यह लोग। कैसे कवि कहलाते हैं वे दूसरे? शीघ्रकवि। शीघ्रकवि। ऐसे तुरन्त जोड़ दे, ऐसे बात को। आशुकवि। आशुकवि क्या? कौन जोड़े इस वाणी को, उस काल में पर्याय होनेवाली, वैसी हो, उसमें आशुकवि कहाँ से तू आया फिर उसका करनेवाला?

★ ★ ★

काव्य - १९

(चौपाई)

मिथ्यावंत कुकवि जे प्रानी।
मिथ्या तिनकी भाषित वानी।।
मिथ्यामती सुकवि जो होई।
वचन प्रवांन करै सब कोई।।१९।।

अर्थः–जो प्राणी मिथ्यादृष्टि और कुकवि होते हैं, उनका कहा हुआ वचन असत्य होता है, परन्तु जो सम्यग्दर्शन से सम्पन्न तो नहीं होते पर शास्त्रोक्त कविता करते हैं, उनका वचन श्रद्धान करनेयोग्य होता है।।१९।।

काव्य-१९ पर प्रवचन

मिथ्यावंत कुकवि जे प्रानी।
मिथ्या तिनकी भाषित वानी॥
मिथ्यामती सुकवि जो होई।
वचन प्रवांन करै सब कोई॥१९॥

कहते हैं कि **जो प्राणी मिथ्यादृष्टि और कुकवि होते हैं, उनका कहा हुआ वचन असत्य होता है।** झूठा। एक बात पहली। मिथ्यावन्त और कुकवि, वह तो **मिथ्या तिनकी भाषित वानी।** सब प्ररूपणा वचन—वाणी सब झूठा। परन्तु मिथ्यामति होने पर भी, श्रद्धावन्त होवे तो सुकवि है वह, ऐसा कहते हैं। **जो सम्यग्दर्शन से सम्पन्न तो नहीं होते पर शास्त्रोक्त कविता करते हैं, उनका वचन श्रद्धान करनेयोग्य होता है।** ऐसा कहते हैं। दृष्टि में अन्तर हो थोड़ा अन्दर में, अनुभव न हो, तथापि उसका कथन शास्त्र प्रमाण होवे तो वह वचन प्रमाण है। समझ में आया? शास्त्र प्रमाण बराबर हो तो वह वचन प्रमाण है।

★ ★ ★

काव्य - २०

(दोहा)

वचन प्रवांन करै सुकवि, पुरुष हिए परवांन।
दोऊ अंग प्रवांन जो, सो है सहज सुजान।।२०।।

अर्थः–जिनकी वाणी शास्त्रोक्त होती है और हृदय में तत्त्वश्रद्धान होता है, उनका मन और वचन दोनों प्रामाणिक हैं और वे ही सुकवि हैं।।२०।।

काव्य-२० पर प्रवचन

वचन प्रवांन करै सुकवि, पुरुष हिए परवांन।
दोऊ अंग प्रवांन जो, सो है सहज सुजान॥२०॥

जिनकी वाणी शास्त्रोक्त होती है,.... शास्त्र प्रमाण। निमित्त को निमित्तरूप से, उपादान को उपादानरूप से, व्यवहार को व्यवहाररूप से, निश्चय को निश्चयरूप से (कहे)। **शास्त्रोक्त होती है और हृदय में तत्त्वश्रद्धान होता है।** उन्हें हृदय में तत्त्व की श्रद्धा है। **उनका मन और वचन दोनों प्रामाणिक हैं और वे ही सुकवि हैं,** लो।

★ ★ ★

काव्य - २१

समयसार नाटक की व्यवस्था (चौपाई)

अब यह बात कहूं है जैसै।
नाटक भाषा भयौ सु ऐसै।।
कुंदकुंदमुनि मूल उधरता।
अमृतचंद्र टीकाके करता।।२१।।

अर्थः–अब यह बात कहता हूँ कि नाटक समयसार की काव्य–रचना किस प्रकार हुई है। इस ग्रन्थ के मूलकर्त्ता कुन्दकुन्दस्वामी और टीकाकार अमृतचन्द्रसूरि हैं।।२१।।

काव्य-२१ पर प्रवचन

अब यह बात कहूं है जैसै।
नाटक भाषा भयौ सु ऐसै॥
कुंदकुंदमुनि मूल उधरता।
अमृतचंद्र टीकाके करता॥२१॥

लो। और अब कहता हूँ, बनारसीदास कहते हैं। **बात कहूं है जैसे,...** लो। बात कहूँ। भाषा क्या आवे? **नाटक भाषा भयौ।** यह नाटक की भाषा कैसी हुई समयसार, इसकी बात अब करता हूँ। उसका इतिहास कहता हूँ। **कुंदकुंदमुनि मूल उधरता।** कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने समयसार उद्गार किया और जगत को भेंट दिया। आता है न पीछे। जयसेनाचार्य की टीका। **कुंदकुंदमुनि मूल उधरता।** आहाहा! बारह अंग के सार में से समयसार रचा उन्होंने। निमित्तरूप से समझाना है न! **अमृतचंद्र टीका के करता।** लो। और यहाँ इनकार किया कि वाणी का कर्ता नहीं। परन्तु अब निमित्तपना बतलाते हैं। जब टीका हुई वाणी के कारण से, उसमें निमित्त कौन था? कि अमृतचन्द्राचार्य। समझ में आया? निमित्तकर्ता रूप से नहीं। निमित्त थे बस इतना। समझ में आया? निमित्तकर्ता अलग और निमित्त अकेला, वह अलग बात है। यह उपादान की पर्याय वहाँ होनेवाली, उसमें यह निमित्त है, बस यह जानने के लिये बात है। **अमृतचंद्र टीका के करता।**

★ ★ ★

काव्य - २२

(चौपाई)

समैसार नाटक सुखदानी।
टीका सहित संस्कृत वानी।।
पंडित पढ़ै सु दिढ़मति बूझै।
अलपमतिकौं अरथ न सूझै।।२२।।

अर्थः–समयसार नाटक की सुखदायक संस्कृत टीका पण्डित लोग पढ़ते और विशेष ज्ञानी समझते हैं, परन्तु अल्पबुद्धि जीवों की समझ में नहीं आ सकती थी।।२२।।

काव्य-२२ पर प्रवचन

समैसार नाटक सुखदानी।
टीका सहित संस्कृत वानी॥
पंडित पढ़ै सु दिढ़मति बूझै।
अलपमतिकौं अरथ न सूझै॥२२॥

गम्भीर बात है। समयसार द्रव्य-गुण-पर्याय, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, भेद-अभेद, उपचार-अनुपचार के कथन समझने के लिये यह बहुत गूढ़ता है। **समैसार नाटक सुखदानी—**समयसार नाटक तो सुखदायक है। संस्कृत टीका, लो, सहित संस्कृत वाणी है इसकी। **पंडित पढै।** ज्ञानी यदि इसे पढ़े, वाँचे, समझे, **दिढ़मति बूझै,** लो। पण्डित लोग पढ़ते हैं और विशेष ज्ञानी समझते हैं। उसको विशेष ज्ञान होता है अन्दर। समझ में आया?

कोई कहे, शास्त्र के पढ़ने से ज्ञान नहीं होता। यहाँ तो... जो यह पढ़ता है, वहाँ व्यवहार से ज्ञात होता है, उसकी बात करनी है। फिर उसे यथार्थ ज्ञान तो स्व का आश्रय करे तब होता है। कथन की पद्धति ऐसी, शास्त्र में व्यवहार का ही कथन अधिक होता है। दूसरे प्रकार से कहना कैसे? इन्होंने कहा समयसार, इन्होंने उपदेश कहा, वह किस प्रकार कहना? अब कहना तो व्यवहार हो गया। आहाहा! **अलपमतीकौं अरथ न सूझै।** समयसार का अर्थ अल्पमतिवाले को सूझ नहीं पड़ता। कुछ का कुछ गड़बड़ करे। आहाहा! कहा या नहीं? '**वोच्छामि समयपाहुडं**' देखो! मैं समयप्राभृत को कहता हूँ। और एक ओर कहा कि वाणी की क्रिया का निमित्तरूप से भी आत्मा कर्ता नहीं। अब सब बात सच्ची रखकर है। समझ में आया? अब कहते हैं,

★ ★ ★

काव्य - २३-२४

(चौपाई)

पांडे राजमल्ल जिनधर्मी।
समैसार नाटकके मर्मी।।
तिन गिरंथकी टीका कीनी।
बालबोध सुगम कर दीनी।।२३।।
इहि विधि बोध-वचनिका फैली।
समै पाय अध्यातम सैली।।
प्रगटी जगमांही जिनवानी।
घर घर नाटक कथा बखानी।।२४।।

अर्थः-जैनधर्मी पांडे राजमलजी नाटक समयसार के ज्ञाता ने इस ग्रंथ की बालबोध सहज-टीका की। इस प्रकार समय पाकर इस आध्यात्मिक-विद्या की भाषा-वचनिका विस्तृत हुई, जगत में जिनवाणी का प्रचार हुआ और घर-घर नाटक की चर्चा होने लगी।।२३-२४।।

काव्य-२३-२४ पर प्रवचन

पांडे राजमल्ल जिनधर्मी... राजमल्ल हुए। मूल शास्त्र (कर्ता) कुन्दकुन्दाचार्य। उनकी टीका (कर्ता) अमृतचन्द्राचार्य। अब उसमें कलश जो बनाये अमृतचन्द्राचार्य ने। उसमें तो टीका भी ली। **टीका सहित संस्कृत वानी** ऐसा कहा है न! उसमें कलश आया था। कलश का अर्थ किया है न, इसलिए ऐसा आया था। **पांडे राजमल्ल जिनधर्मी...** गृहस्थाश्रम में जैनधर्मी राजमल्ल थे। ऐसे बनारसीदास उनकी साक्षी देते हैं। **समैसार नाटकके मर्मी।** यह कलश बनाये। कलश है न कलश। कलशटीका। हाँ, परन्तु हिन्दी में और गुजराती में दोनों कलशटीका है, वह इन्होंने—राजमल्ल ने बनायी है।

राजमल्ल गृहस्थाश्रम में **समैसार नाटकके मर्मी** थे। देखो, गृहस्थ होने पर भी,

गृहस्थाश्रम में दिखने पर भी वे समयसार नाटक के मर्मी थे। इसलिए मुनि ही मर्मी होते हैं, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गृहस्थाश्रम में भी ज्ञानी समयसार के मर्मी हो सकते हैं। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं कि पंच महाव्रतधारी के वचन हों, वे बराबर हैं। क्योंकि उन्हें झूठ बोलने का त्याग है, और ऐसा कहते हैं। रतनचन्दजी ऐसा लिखे न, बहुत लिखते हैं। आहाहा! अरे भगवान! क्या कहता है तू यह? यहाँ तो कहते हैं सम्यग्दृष्टि जीव हो, अरे, यथार्थ श्रद्धावान हो, आ गया पहले, वह भी शास्त्रोक्त ही वाणी कहे। आहाहा! समझ में आया?

तिन गिरंथकी टीका कीनी। राजमल्ल ने समयसार कलश की टीका बनायी। है न यह। उसमें है। यह रही कलशटीका। **बालबोध सुगम कर दीनी।** बहुत सादी भाषा में बालजीवों को समझ में आये ऐसा बालबोध। **सुगम कर दीनी।** लो। आहाहा! कलश की टीका बहुत हो गयी, हजारों आ गयी बाहर। पढ़ा है या नहीं पण्डितजी? कलशटीका पढ़ी नहीं है? कलशटीका।

मुमुक्षु : कलश तो वाँचे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले। कलशटीका। इस टीका से बनाया है। टीका में से बनाया है। **इहि विधि बोध वचनिका फैली....** देखो! इस प्रकार अध्यात्म की विद्या की भाषा विस्तृत हुई, लो। फैली। **समै पाय अध्यातम सैली।** आहाहा! अध्यात्म की विद्या की भाषा विस्तृत हुई।

प्रगटी जगमांही जिनवानी। वीतराग की वाणी कलशटीका के ऐसे अर्थ किये राजमल्ल ने। हिन्दी और गुजराती सर्वत्र हुई है यह। दोनों हुई है। यह गुजराती है। यह गुजराती में यह है कलश का अर्थ। उसमें से यह पहले हिन्दी की। पहले प्राचीन हिन्दी, फिर नयी हिन्दी, फिर गुजराती। ऐसे तीन हुए हैं। आहाहा! कहते हैं, **प्रगटी जगमांही जिनवानी।** वीतराग की वाणी जगत में प्रसिद्ध हुई। देखो, गृहस्थ ने—राजमल्ल ने बनायी। वीतराग का मार्ग निश्चय आत्मा के आश्रय से प्रगट होता है, व्यवहार के आश्रय से नहीं। उसकी तो बहुत झपट ली है। आहाहा! ऐसे मार्ग की वाणी जगत में प्रसिद्ध हुई।

घर घर नाटक कथा बखानी। तो (लोग) कहते हैं कि यह अध्यात्म की बात सर्वत्र नहीं पहुँचाना। यहाँ तो कहते हैं **घर घर नाटक कथा बखानी।** यह समयसार नाटक की कथा तो घर-घर। आहाहा! परम पवित्र जिसका मार्ग वीतराग का, उस मार्ग की कथा—नाटक कथा तो घर-घर बखानी है, लो। नाटक की कथा की चर्चा होने लगी। पहले कहा कि भाई पचास वर्ष पहले तो ऐसा नहीं था। अब यह सब समयसार का चला। बाकी देखो न, पचास वर्ष पहले तो यह पूजा, भक्ति, व्रत, यह तप करना, वह धर्म, जाओ। वह सब समाहित हो जाता था। यह पचास वर्ष से फिर यह बात समयसार की बाहर आयी। बात तो सच्ची न! थी कहाँ कोई? आहाहा! **घर घर नाटक कथा बखानी।** लो।

★ ★ ★

काव्य - २५

(चौपाई)

नगर आगरै मांहि विख्याता।
कारन पाइ भए बहु ग्याता।।
पंच पुरुष अति निपुन प्रवीने।
निसिदिन ग्यान-कथा रस-भीने।।२५।।

अर्थः-प्रसिद्ध शहर आगरे में [१]निमित्त मिलने पर इसके बहुत से जानकार हुए, उनमें पाँच मनुष्य अत्यन्त कुशल हुए, जो दिन-रात ज्ञान-चर्चा में लवलीन रहते थे।।२५।।

काव्य-२५ पर प्रवचन

नगर आगरे मांहि विख्याता कारन पाइ भए बहु ग्याता। पाँच पुरुष। पाँच पुरुष की बात करते हैं अब। आगरा नगर के अन्दर प्रसिद्ध पाँच पुरुष थे। **कारन पाइ भए बहु**

१. सत्संगति गुरुगम आदि का।

ग्याता। निमित्त मिलने पर इसके बहुत से जानकार हुए। सत्संग से, गुरुगम आदि से पाँच व्यक्ति ज्ञाता हुए। **पंच पुरुष अति निपुन प्रवीने निसिदिन ग्यान-कथा रस-भीने।** वे पाँच व्यक्ति निपुण प्रवीण रात और दिन.... **निसिदिन** है न। **ग्यान-कथा रस-भीने।** ज्ञानकथा के रस में भीने गृहस्थाश्रम में थे पाँच व्यक्ति। उनकी यह कथा—इतिहास बताते हैं उनका कैसे हो गया यह।

★ ★ ★

काव्य - २६-२७

(दोहा)

रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम।
तृतिय भगोतीदास नर, कौंरपाल गुन धाम।।२६।।
धर्मदास ये पंचजन, मिलि बैठैं इक ठौर।
परमारथ-चरचा करैं, इनके कथा न और।।२७।।

अर्थः-पहले पण्डित रूपचन्दजी, दूसरे पण्डित चतुर्भुजजी, तीसरे पण्डित भगोतीदासजी, चौथे पण्डित कुँवरपालजी और पाँचवें पण्डित धर्मदासजी। ये पाँचों सज्जन मिलकर एक स्थान में बैठते तथा मोक्षमार्ग की चर्चा करते थे और दूसरी बात नहीं करते थे।।२६-२७।।

काव्य-२६-२७ पर प्रवचन

रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम।
तृतिय भगोतीदास नर, कौंरपाल गुन धाम॥२६॥
धर्मदास ये पंचजन, मिलि बैठैं इक ठौर।
परमारथ-चरचा करैं, इनके कथा न और॥२७॥

इकट्ठे हों। यह आत्मा की धर्म की निश्चय की अध्यात्म की कथा करते थे।

आहाहा! देखो, आगरा में। **इनके कथा**—मोक्षमार्ग की चर्चा करते वे तो। मोक्षमार्ग निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र किसे कहना, किससे होता है, इत्यादि चर्चा करते थे और दूसरी वार्ता नहीं करते थे।

★ ★ ★

काव्य - २८

(दोहा)

कबहूं नाटक रस सुनैं, कबहूं और सिद्धंत।
कबहूं बिंग बनाइकै, कहैं बोध विरतंत।।२८।।

अर्थः–ये कभी नाटक का रहस्य सुनते, कभी और शास्त्र सुनते और कभी तर्क खड़ी करके ज्ञानचर्चा करते थे।।२८।।

काव्य-२८ पर प्रवचन

कबहूं नाटक रस सुनैं, कबहूं और सिद्धंत।
कबहूं बिंग बनाइकै, कहैं बोध विरतंत॥२८॥

ये कभी नाटक का रहस्य सुनते। समयसार नाटक का रहस्य सुनते थे पाँचों। किसी समय कभी शास्त्र सुनते थे। दूसरा भी शास्त्र सुनते थे और कभी तर्क खड़े करके **बिंग... बिंग...** तर्क खड़े करके ज्ञानचर्चा करते थे। तर्क बनावे अन्दर से, तर्क बनाकर यह क्या, इस प्रकार से चर्चा करते थे। समझ में आया? देखो, यह गृहस्थाश्रम में ऐसे पाँच पुरुष धर्मकथा में रसीले थे। अब इनकी बात करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - २९

(दोहा)

चित कौंरा करि धरमधर, सुमति भगोतीदास।
चतुरभाव थिरता भये, रूपचंद परगास।।२९।।

अर्थः–कुँवरपालजी का चित्त कौंरा अर्थात् कोमल था, धर्मदासजी धर्म के धारक थे, भगोतीदासजी सुमतिवान थे, चतुर्भुजजी के भाव स्थिर थे और रूपचन्दजी का प्रकाश चन्द्रमा के समान था।।२९।।

काव्य-२९ पर प्रवचन

चित कौंरा करि धरमधर, सुमति भगोतीदास।
चतुरभाव थिरता भये, रूपचंद परगास॥२९॥

कुँवरपालजी का चित्त कौंरा अर्थात् कोमल था। पाँच पुरुष में। **धर्मदासजी धर्म के धारक थे,...** लो। **चित कौंरा करि धरमधर।** धर्मदासजी धर्म के धारक थे। देखो, यह बनारसीदास के समय का इतिहास। **भगोतीदासजी सुमतिवान थे, चतुर्भुजजी के भाव स्थिर थे।** स्थिर था उनका भाव। बराबर जैसा है, वैसा मार्ग। **और रूपचन्दजी का प्रकाश चन्द्रमा के समान था,...** लो। रूपचन्दजी। बनारसीदास के गुरु थे और फिर रूपचन्दजी ने इसका बनाया। टीका बनायी।

★ ★ ★

काव्य - ३०

(चौपाई)

जहां तहां जिनवानी फैली।
लखै न सो जाकी मति मैली।।

जाकै सहज बोध उतपाता।
सो ततकाल लखै यह बाता।।३०।।

अर्थः–जहाँ–तहाँ जिनवाणी का प्रचार हुआ, पर जिसकी बुद्धि मलिन है, वह नहीं समझ सका। जिसके चित्त में स्वाभाविक ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह इसका रहस्य तुरन्त समझ जाता है।।३०।।

काव्य-३० पर प्रवचन

जहां तहां जिनवानी फैली, लखै न सो जाकी मति मैली। वीतराग की वाणी, निश्चय क्या, व्यवहार क्या, उपादन क्या, निमित्त क्या। वह वाणी **जहां तहां वानी फैली।** चर्चा–वार्ता बस, यही लगी वहाँ। **लखै न सो जाकी मति मैली।** जिसकी मति मैली है, वह इसे जान नहीं सके। जिनवाणी को क्या कहना है, निश्चय का व्यवहार में डाल दे और व्यवहार का निश्चय में डाल दे तथा निमित्त का उपादान में डाल दे और उपादान में निमित्त का (डाल दे)। आहाहा! ऐसी मति जिनकी मलिन है, वे **लखै न सो जाकी मति मैली।** स्वतन्त्र आत्मा की पर्याय अपने से होती है, ऐसा निकाल नहीं सकते। मति मैली।

जाकै सहज बोध उतपाता। जिसे ज्ञानबोध का सहज उत्पाद हुआ है। **सो ततकाल लखै यह बाता।** वह तत्काल इसका अर्थ समझे कि इसका अर्थ ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! गृहस्थाश्रम में ऐसे थे उस समय बनारसीदास और पाँच व्यक्ति। **जिसके चित्त में स्वाभाविक ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह इसका रहस्य तुरन्त समझ जाता है।** तुरन्त रहस्य समझे कि इसमें ऐसा कहा है और अध्यात्म से यह बात है, आगम से इसका यह कथन है। यह रहस्य समझ जाते हैं। अब यह सार आया।

★ ★ ★

काव्य - ३१

(दोहा)

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मत–मदिराके पानसौं, मतवाला समुझै न।।३१।।

अर्थः–प्रत्येक हृदय में जिनराज और जैनधर्म का निवास है, परन्तु मजहब के पक्षरूपी शराब के पी लेने से [१]मतवाले लोग नहीं समझतै।।३१।।

काव्य-३१ पर प्रवचन

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मत-मदिराके पानसौं, मतवाला समुझै न॥३१॥

प्रत्येक हृदय में जिनराज विराजते हैं। यहाँ तो आत्मा को ही जिनराज कहा है। आहाहा! 'जिन सो ही आत्मा।' श्रीमद् में आता है न! **घट घट अंतर जिन बसै,...** देह में—घट-घट में हृदय में भगवान आत्मा जिनराज ही बसता है। वह आत्मा उसे कहते हैं कि जो जिनराज का स्वरूप, वही आत्मा का स्वरूप। राग और व्यवहार और निमित्त का वह उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? **घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।** जैनधर्म का निवास भी घट-घट में अन्दर में है, कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा जिनराजस्वरूप ही है। उसका आश्रय करे, उसकी पर्याय उसकी पर्याय में बसती है। जैनशासन वहाँ पर्याय में बसता है, ऐसा कहते हैं। जैनशासन कोई निमित्त में, राग में, मन्दिर में, उपाश्रय में, स्वाध्यायमन्दिर में कहीं नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

स्वयं जिनस्वरूप है, वीतरागस्वरूप है, आस्रव और निमित्त से भिन्न स्वरूप है। इसलिए वह जिनराजस्वरूप है। उसका आश्रय करके जो पर्याय होती है, वह वीतरागी पर्याय होती है, वह जैनधर्म है। उस आत्मा की पर्याय में यह धर्म बसता है। धर्म कहीं

१. यहाँ मतवाले शब्द का दो अर्थ हैं – (१) मतवाले=नशे में चूर, (२) मतवाले जिनको–मजहब का पक्षपात है।

आत्मा की पर्याय से दूर नहीं। आहाहा! पर्याय स्वयं ही धर्म है। '**पस्सदि जिणसासणं**' आया न। शुद्ध उपयोग, पुण्य-पाप के रागरहित स्वभाव का शुद्ध उपयोग, वही जिसका स्वभाव है। वह शुद्ध उपयोग, वह जैनशासन है। समझ में आया?

अलिंगग्रहण में भी आया है न। जैसे सूर्य में मैल नहीं, उसी प्रकार भगवान आत्मा के उपयोग में मैल नहीं। वह तो शुद्ध उपयोग स्वभावी ही है। आहाहा! अलिंगग्रहण। समझ में आया? दसवाँ बोल है। बहुत बात की! मोक्षमार्ग भी आत्मा में बसता है, ऐसा कहते हैं और आत्मा स्वयं जिनराज है, ऐसा कहते हैं। सार डाल दिया। आत्मा उसे कहते हैं कि जो वीतरागस्वरूप से विराजमान आत्मा है। और धर्म—जैनशासन उसे कहते हैं कि उस वीतरागस्वभाव के आश्रय से जो पर्याय प्रगट हुई, उसे जैनशासन कहते हैं। उसे जिन कहें तो पर्याय को जैनशासन कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वस्तु स्वभाव भगवान आत्मा निर्विकारी अविकारी स्वभाव का पिण्ड प्रभु, वह जिनराज है। आहाहा! उसमें व्यवहार के विकल्प आदि हैं नहीं। कर्म है नहीं और कहीं पर में पर की चीज़ उसमें है नहीं। परिपूर्ण वीतरागस्वभाव से विराजमान आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। अब उस आत्मा के आश्रय से जो पर्याय राग रहित (होती है), क्योंकि वह वीतराग स्वरूप है। उसकी पर्याय में वीतरागता प्रगट होती है। शुद्धउपयोग स्वभाव आत्मा। वह शुद्धउपयोग स्वरूप, वह जैनशासन। वह जैनधर्म। आहाहा! समझ में आया?

मत-मदिराके पानसौं—परन्तु अपने मजहब के पक्ष से.... हमने ऐसा माना है, हम ऐसे हैं, हम ऐसे हैं, ऐसा माननेवाले हैं। अपने पक्ष की मदिरा—शराब पी है न, उसके कारण **पानसौं मतवाला समुझै न**—मतवाला समझे नहीं। नशे में चूर मतवाले अर्थात् जिनको मजहब का पक्षपात है। हम ऐसे हैं। वह कहे, हम श्वेताम्बर हैं, वह कहे, हम बीस पंथी हैं। समझ में आया? वह कहे, हम मूर्ति को नहीं माननेवाले स्थानकवासी हैं। ऐसे मत की मदिरा पी है, कहते हैं। मत की मदिरा पी है। उसे वीतराग का वास्तविक स्वरूप और उसका धर्म वह मतवाला समझे नहीं। मतवाला यह समझ नहीं सकता। पक्षपात छोड़कर वास्तविक तत्त्व समझना चाहे तो वह जिनराज और जिन का धर्म दोनों समझ सकता है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २००, कार्तिक कृष्ण ४, शनिवार, दिनांक ६-११-१९७१
ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति पद ३१ से ४०

यह ग्रन्थ की समाप्ति होती है। अन्तिम प्रशस्ति है न। ३१वाँ पद आ गया है, ३१।

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मत-मदिराके पानसौं, मतवाला समुझै न॥३१॥

कहते हैं कि इस हृदय में अन्दर आत्मा जिनराज विराजता है। आहाहा! उसका स्वरूप ही आत्मा का वीतरागस्वरूप ही है। पर्याय में प्रगट होना, यह तो बाद में उसकी दशा है। परन्तु यह तो उसका स्वरूप ही वीतरागस्वरूप है। 'जिन सो ही आत्मा।' ऐसी बात है। परम चैतन्य प्रभु पूर्ण स्वरूप वह जिनराजस्वरूप ही उसका है। पर्याय में नहीं, वस्तुरूप से। वस्तु का स्वभाव ही... यह जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। यह तो वस्तु का स्वभाव है, वही वीतराग है और वही जैन। आहाहा! समझ में आया?

कितने ही कहते हैं न! आज आया था, उसमें भी आया था। णमो लोए सव्वसाहूणं। णमो लोए सर्व साधु लेना इसमें दूसरे भी। इसमें कहाँ फलाना लिखा है? और ऐसा कि चार पद में क्यों नहीं लिखा, णमो लोए सव्व? परन्तु उसे खबर नहीं। सबमें लिया है। धवल में पाठ है कि णमो लोए सव्वसाहूणं, यह तो अन्तदीपक है। अन्त में कहा परन्तु पाँचों में उसे लागू करना। पाठ ऐसा है। अब यह भी खबर नहीं। वहाँ उसे कहे, चार में क्यों नहीं, इसलिए लोए और सव्व—सर्व काल और सर्व क्षेत्र के साधक जीव को इसमें लेना। यह वह बात सच्ची है साधक, परन्तु साधक कौन? यह वह आत्मा जिनस्वरूप है, वीतरागस्वरूप ही है। उसे अन्तर साधकर वीतरागदशा जो प्रगट हो, वह जैन है। वह कहीं सम्प्रदाय की चीज़ नहीं। यह तो वस्तु की चीज़ है। समझ में आया?

घट घट अंतर जिन बसै। भगवान आत्मा वीतराग की मूर्ति अकषायस्वभाव परमानन्द अकेला परम अतीन्द्रिय आनन्द उसके स्वभाव का स्वरूप पूरा वीतराग है। उसमें पुण्य-पाप, कर्म, शरीर आदि है नहीं। उसे आत्मा कहते हैं और उसे जिनराज कहते हैं। आहाहा! और **घट घट अंतर जैन।** जैनधर्म का निवास भी घट में-अन्तर में है। कहीं विकल्प में और बाह्यक्रिया के वेश में है नहीं। इन्होंने लिखा, वेश-बेश नहीं।

परन्तु वेश नहीं, यह बराबर है। वेश में नहीं परन्तु वेश तो जो हो वह हो वापस। वेश में धर्म नहीं। परन्तु वेश तो मुनि को जो हो, वह नग्न ही होता है। वापस उसमें लिखा है, पन्द्रहभेद से सिद्ध कहे हैं। गृहस्थलिंग से सिद्ध, स्त्रीलिंग से सिद्ध, अन्यमति में सिद्ध। खोटी बात है। किसी ने कपड़ा डाल दिया हो और फिर वह तो अलग बात है। परन्तु बुद्धिपूर्वक वस्त्र रखे और मुनि हो, यह तीन काल में नहीं हो सकता। मार्ग ऐसा है।

अमरचन्दजी ने बहुत लिखा है। पढ़ा? जैनप्रकाश में बहुत लिखा है। सब गड़बड़ की है। ऐसा कि, गृहस्थलिंग से सिद्ध, अन्यलिंग से सिद्ध। ऐसे .... लिंग हों तो सिद्ध हो। वहाँ कहाँ वेश... ? परन्तु ऐसा होता ही नहीं। जब आत्मा की मुक्तदशा होती है, तब उनकी दशा बाह्य में अत्यन्त नग्न ही होती है। समझ में आया? यह आगम का आग्रह नहीं, परन्तु यह आगम का स्वरूप ही ऐसा है। **घट घट अंतर जैन।** अन्तर में जिसे वीतरागता प्रगट हुई, उसे वेश ही उसका नग्न और बाह्य वस्त्ररहित लिंग उसे होता है। यह बात है, भाई! पक्ष की यह बात नहीं, परन्तु अब क्या हो? समझ में आया?

मत-मदिराके पानसौं... परन्तु अपने मजहब की—पक्ष की मान्यता के कारण, मदिरा पी लेने से। अपने मत की मदिरा पी हो, उसे यह समझ में नहीं आता। **मत-मदिराके पानसौं मतवाला समुझै न।** मतवाला, भाई कहते हैं और धर्मदासजी ने कहा है। हम जैन मतवाले, हम वैष्णव मतवाले। मतवाला है न? भाई धर्मदास क्षुल्लक हो गये हैं न दिगम्बर। संवत् १९४८। जिन्होंने सम्यग्ज्ञान दीपिका बनायी। स्वात्मानुभवमनन (बनाया)। वह कहे सब मतवाला है। वस्तु क्या है? वह वस्तु ही ऐसी है। अनन्त आत्मायें निगोद आदि के, वस्तु तो जिनस्वरूप ही वह आत्मा है। द्रव्य से। प्रगट करना, वह तो फिर पर्याय में उसका आश्रय लेकर प्रगट होता है। जो भाव है, उसका आश्रय लेकर वह भाव प्रगट होता है। **मत-मदिराके पानसौं मतवाला समुझै न।** मतवाला हो, वह इस बात को समझे नहीं।

बहुत बढ़ाई कहांलौं कीजै कारिजरूप बात कहि लीजै। अब कहते हैं कि इसमें इतिहास क्या है? यह कैसे बना यह कवित्त और यह सब? इस बात का इतिहास कहता हूँ।

★ ★ ★

काव्य - ३२-३३

(चौपाई)

बहुत बढ़ाई कहांलौं कीजै।
कारिजरूप बात कहि लीजै।।
नगर आगरे मांहि विख्याता।
बानारसी नाम लघु ग्याता।।३२।।
तामैं कवितकला चतुराई।
कृपा करैं ये पांचौं भाई।।
पंच प्रपंच रहित हिय खोलै।
ते बनारसीसौं हँसि बोलै।।३३।।

अर्थ:–अधिक महिमा कहाँ तक कहैं, मुद्दे की बात कह देना उचित है। प्रसिद्ध शहर आगरे में बनारसी नामक स्वल्प ज्ञानी हुए, उनमें काव्य–कौशल था और ऊपर कहे हुए पाँचों भाई उन पर कृपा रखते थे, उन्होंने निष्कपट होकर सरल चित्त से हँसकर कहा।।३२–३३।।

काव्य-३२-३३ पर प्रवचन

बहुत बढ़ाई कहांलौं कीजै।
कारिजरूप बात कहि लीजै॥
नगर आगरे मांहि विख्याता।
बानारसी नाम लघु ग्याता॥३२॥
तामैं कवितकला चतुराई।
कृपा करैं ये पांचौं भाई॥
पंच प्रपंच रहित हिय खोलै।
ते बनारसीसौं हँसि बोलै॥३३॥

कहते हैं कि इसमें कितनी बात की समयसार आदि (में)! **कहांलौं बढ़ाई कीजै।** महिमा कहाँ तक कहें आत्मा की, समयसार की! आत्मा कहो या समयसार कहो या जिनराज कहो। उसकी कहाँ तक बात कहें। **कारिजरूप**—मुद्दा की बात कहूँगा। मुद्दा की बात है, वह कहते हैं और कहाँ से शुरुआत हुई, यह बात इसमें कहते हैं, कहते हैं। **नगर आगरे मांहि विख्याता,....** लो। आगरा प्रसिद्ध शहर। उसमें **बनारसी नाम लघु ग्याता**—बनारसीदास कहते हैं, मैं एक थोड़ा जाननेवाला हुआ। **लघु ग्याता**—अल्पज्ञानी।

तामैं कवितकला चतुराई। कवित्त करने की चतुराई थी। इतना तो स्वीकार किया। **कवितकला चतुराई। कृपा करैं ये पांचौं भाई।** पाँच भाईयों ने कहा कि बनाओ। तुम कवि हो तो यह रचो। ऐसी उन्होंने कृपा करके बात की। **पंच प्रपंच रहित हिय खोलै**—प्रपंचरहित हृदय में जो बात थी, उसे रखी। **ते बनारसीसौं हँसि बोलै**—उसे निष्कपट होकर सर्व किसी ने हँसकर कहा। पाँच व्यक्तियों ने बनारसीदास को हँसकर कहा।

★ ★ ★

काव्य - ३४

(चौपाई)

नाटक समैसार हित जीका।
सुगमरूप राजमली टीका।।
कवितबद्ध रचना जो होई।
भाषा ग्रंथ पढ़ै सब कोई।।३४।।

अर्थः–जीव का कल्याण करनेवाला नाटक समयसार है। उसकी राजमलजी रचित सरल टीका है। भाषा में छंदबद्ध रचा जावे तो इस ग्रन्थ को सब पढ़ सकते हैं।।३४।।

काव्य-३४ पर प्रवचन

नाटक समैसार हित जीका। उन पाँचों ही व्यक्तियों ने इनसे कहा। ऐसा समयसार नाटक जिसमें जीव का कल्याण हो। हित... हित है न! जीव का जिसमें हित हो। दूसरी बातें लाख, करोड़ अनन्त हों, परन्तु जिसमें जीव का हित हो, जिसमें आत्मा को वीतरागता प्रगटे और जिसके फलरूप से मुक्ति हो, ऐसा समयसार हित—कल्याण का करनेवाला ऐसा! आहाहा! **सुगमरूप राजमली टीका।** यह कलशटीका सुगमरूप है। बहुत सरल भाषा में हिन्दी में। पुरानी ढुंढारी में बनायी थी पहली, परन्तु अब तो अपने चालू हिन्दी में हो गयी है। गुजराती में भी हो गयी है।

कहते हैं, **सुगमरूप राजमली टीका।** राजमल्ल हो गये गृहस्थाश्रम में। बहुत विद्वान। जिन्होंने यह पंचाध्यायी बनाया। पंचाध्यायी महातर्क से बहुत अलौकिक है उनका। (लगभग) पन्द्रह सौ (श्लोक) बनाये, वहाँ तो देह छूट गयी वापस। पंचाध्यायी लिखा है न? पण्डितजी! पंचाध्यायी इन राजमल्लजी ने बनाया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राजमल्लजी ने ही बनाया है।

मुमुक्षु : वह तो नहीं देखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं देखा? लो कहो। कलशटीका नहीं देखी, पंचाध्यायी नहीं देखी। पंचाध्यायी नहीं है? वह तो बहुत प्रचलित है।

मुमुक्षु : वह तो देखी है परन्तु राजमल्लजी ने अलग बनायी है या एक ही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कलशटीका वह तो। मैं तो पंचाध्यायी कहता हूँ। यह कलशटीका तो नहीं देखी होगी। कल बात की थी। पंचाध्यायी बनाया है। बहुत सरस है। उसमें तो दो हजार से ऊपर गाथायें हैं। बहुत सरस है। पंचाध्यायी। वह यह राजमल्लजी। पंचाध्यायी बनायी राजमल्लजी ने। वे कहते थे कि अमृतचन्द्राचार्य ने, ऐसा कुछ कहते हैं मक्खनलालजी। परन्तु यह राजमल्लजी ने बनाया है, ऐसा बाद में (पता पड़ा)।

कवितबद्ध रचना जो होई। कहते हैं कि यह कलश है, यह कलशटीका वह। उसमें कलश है, उसकी टीका राजमल्लजी ने बनायी है। एक-एक कलश के ऊपर बहुत सरल भाषा में (बनायी है)। वह पूरा ग्रन्थ है यह। उसमें से यह समयसार नाटक बनाया है। सुगमरूप, ऐसा कहते हैं। यह सरल भाषा है। एकदम प्रचलित भाषा में राजमल्लजी ने इसकी टीका हिन्दी में बनायी, हिन्दी में। यहाँ भी पहले-पहले उसे तो बहुत वर्ष पहले पढ़ी थी। बहुत वर्ष पहले। सूरत की ओर से भेंट थी न! सूरत की ओर से भेंट थी। यहाँ पुस्तक बहुत वर्ष हुए, पुरानी रखी है हमारे पास। बहुत वर्ष का। बहुत कितने वर्ष हो गये, नहीं?

परन्तु एक बार मैं जंगल से आता था, उसमें यह नवनीतभाई मिले, नवनीतभाई झवेरी। कहे, कोई एक पुस्तक बनवाने का भाव है मुझे। उस समय याद ही ऐसा आया। यह पुरानी पुस्तक है एक राजमल्लजी की टीका बहुत सरस है। अपने है न यहाँ? वह पुरानी है। ढूंढ़ारी भाषा। बहुत पुरानी ढूंढ़ारी। वह तो बहुत वर्षों से बात चलती है। कहा, एक यह पुस्तक है, प्रचलित भाषा में प्रकाशित करना हो तो। बहुत सरस पुस्तक है। यह कितने वर्ष हो गये, उसे इस बात को। जंगल से आता था और सामने आये। उन्होंने यह पूछा। मेरी बात हुई और उन्होंने तुरन्त शुरु किया। फिर यह कलश बनाये। यह पुस्तक, यह पुरानी पुस्तक। बहुत (पुरानी) ढूंढ़ारी भाषा है यह। बहुत वर्ष पहले। कौन सा वर्ष है? कितने वर्ष हुए? ४०।

मुमुक्षु : ४१।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४१। मूल्य रुपये ३, ठीक। चालीस वर्ष पहले का यह बना हुआ है। यह तो पहले बहुत बार देखा है। बहुत देखा है यह शास्त्र पूरा। हजारों श्लोक देखे हैं। यह... यह। परन्तु भाषा बहुत ऐसी कड़क है, बहुत कड़क है। तो उसमें यह है।

समजाए सन्ते इसी प्रकार भेद करके **समजाए सन्ते...** कहने से त्रिलोक में भी ऐसा कौन जीव है? कोणु जीव है? कोणु जीव है, यह भाषा है। जिन्हीं को बोध कहेतां ज्ञानशक्ति बोध कहता स्वस्वरूप पृथक्पणे अनुभवशील... कहेतां ....न कहेतां नहीं।

परिणमनशील हो। अवतरती कहेतां परिणमनशील हो। भावार्थ कहा। जो जीव कर्म को भिन्नपनो अति ही प्रगट करी दिखायो। ये स्व सुनतां जेहिं जीव कहूं ज्ञान उपजे नांही तिहीको अलग है। उसका (अर्थ) दिया है कि ऐसा स्वरूप सुनकर जिसे ज्ञान न हो, वह तो कोई अनन्त संसारी हो, उसे न हो। यह सब पुरानी भाषा है। उसमें से यह हिन्दी बनाई है। वह यहाँ कहते हैं देखो। **सुगमरूप राजमली टीका।** भाषा जरा है कड़क—कठोर है। **कवितबद्ध रचना जो होई।** इसकी यदि कविता बने तो **भाषा ग्रंथ पढ़ै सब कोई।** तो सब भाषा कवित्त हो तो कोई पढ़े, भणे, समझे—ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ३५

(चौपाई)

तब बनारसी मनमहिं आनी।
कीजै तो प्रगटै जिनवानी।।
पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी।
कवितबद्धकी रचना कीनी।।३५।।

अर्थः–तब बनारसीदासजी ने मन में सोचा कि यदि इसकी कविता में रचना करूँ, तो जिनवाणी का बड़ा प्रचार होगा। उन्होंने उन पाँचों सज्जनों की आज्ञा ली और कवित्तबद्ध रचना की।।३५।।

काव्य-३५ पर प्रवचन

तब बनारसी मनमहिं आनी—ऐसा सुनकर बनारसीदास के मन में विचार आया। सोचा-विचार किया। **कीजै तो प्रगटै जिनवानी।** यदि इसकी कविता हो तो लोग बोले, वाँचे, पढ़े, गाये। जगत में जिनवाणी प्रगट हो, लो। ऐसा ऐसाा विकल्प भी आता है। **कीजै तो प्रगटै जिनवानी।** वीतराग की वाणी वीतरागस्वरूप बतलानेवाली ऐसी वाणी

यदि यह कवित्त बनाये तो जगत में इसकी प्रसिद्धि हो। **पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी।** पाँच पुरुषों (के साथ) चर्चा से उनकी आज्ञा ली। सज्जनों की आज्ञा। पाँच सज्जनों की आज्ञा। **कवितबद्धकी रचना कीनी।** लो। बनारसीदास ने उसमें से कवित्त की रचना की। उसमें से—कलश में से।

★ ★ ★

काव्य - ३६

(चौपाई)

सोरहसौ तिरानवै बीतै।
आसौ मास सित पच्छ बितीतै।।
तिथि तेरस रविवार प्रवीना।
ता दिन ग्रंथ समापत कीना।।३६।।

अर्थः–विक्रम संवत् सोलह सौ तेरानवे, आश्विन मास, शुक्ल पक्ष, तेरस तिथि रविवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त किया।।३६।।

काव्य-३६ पर प्रवचन

सोरहसौ तिरानवै वीते। १६९३। **तिरानवै** अर्थात् ९३। **आसौ मास सित पच्छ बितीतै।** आसोज शुक्ल पक्ष तिथि १३ और रविवार, लो। आसोज शुक्ल तिथि तेरह और रविवार। **प्रवीना यह ग्रंथ समापन कीना,** लो। तब यह ग्रन्थ समाप्त किया। अपने भी कल रविवार आता है। रविवार को पूरा, वह अपने रविवार से शुरु कुछ करना है। सत्रहवीं बार समयसार कल शुरु होता है। सोलह बार तो हो गया है। पहले से ठेठ तक सोलह बार सभा में। अब १७वीं बार का कल शुरु है। अब कहते हैं, किसके राज में किया।

★ ★ ★

काव्य - ३७

(दोहा)

सुख-निधान सक बंध नर, साहिब साह किरान।
सहस-साह सिर-मुकुट-मनि, साहजहां सुलतान।।३७।।

अर्थः-उस समय हजारों बादशाहों में प्रधान महा प्रतापी और सुखदायक मुसलमान बादशाह शाहजहाँ थे।।३७।।

काव्य-३७ पर प्रवचन

सुख-निधान सक बंध नर, साहिब साह किरान।
सहस-साह सिर-मुकुट-मनि, साहजहां सुलतान॥३७॥

सुखदायक मुसलमान बादशाह शाहजहाँ था। उसका भी परिचय हुआ बनारसीदास को दरबार का। दरबार में जाते थे। प्रसिद्ध थे न कवि। बहुत प्रसिद्ध कवि थे। तुलसीदास को मिले थे न। तुलसीदास जो यह रामायण बनायी है न रामायण, उन्हें मिले थे। उन्होंने रामायण राम की कही। तो कहे, रामायण तो ऐसी होती है। आत्मारूपी राम ऐसा (गीत) बनाया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। कहते हैं, उस समय में हजारों बादशाह में प्रधान दिल्ली का बादशाह था न। महाप्रतापी, देखो। **सहस-साह सिर-मुकुट मनि।** शाहजहाँ मुसलमान बादशाह था। उसके राज में यह बनाया है, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ३८

(दोहा)

जाकै राज सुचैनसौं, कीनौं आगम सार।
ईति भीति व्यापी नहीं, यह उनकौ उपगार।।३८।।

अर्थः–उनके राज्य में आनन्द से इस ग्रन्थ की रचना की और कोई भय वा उपद्रव नहीं हुआ, यह उनकी कृपा का फल है।।३८।।

काव्य-३८ पर प्रवचन

जाकै राज सुचैनसौं—जिनके राज्य के अन्दर आनन्द से **कीनौं आगम सार**—इस ग्रन्थ की रचना आगम का सार बनाया। आगम का सार (अर्थात्) भगवान ने कहे हुए सिद्धान्त, उनका यह सार कलश, उसकी टीका बनायी। **इति भीति व्यापी नहीं।** व्यवहार बात करते हैं। **यह उनकौ उपगार**—यह उनकी—बादशाह की कृपा का फल है। ऐसा कि, इतने पुण्य का उनके योग कि हम उनके राज्य में पूर्ण कर सके, ऐसा। ऐसा आगम का सार कवित्त की रचना की। आधि-व्याधि-उपाधि शरीर में कुछ नहीं नहीं। बन गया, ऐसा कहते हैं। फिर तो इसका आँकड़ा है।

★ ★ ★

काव्य - ३९

ग्रन्थ के सब पद्यों की संख्या (सवैया इकतीसा)

तीनसै दसोत्तर सोरठा दोहा छंद दोउ,
युगलसै पैंतालीस इकतीसा आने हैं।
छ्यासी चौपाई, सैंतीस तेईसे सवैए,
बीस छप्पै अठारह कवित्त बखाने हैं।।
सात पुनि ही अडिल्ल, चारि कुंडलिए मिलि,
सकल सातसै सत्ताइस ठीक ठानै हैं।

बत्तीस अच्छरके सिलोक कीने लेखै,
ग्रंथ–संख्या सत्रह सै सात अधिकानै हैं।।३९।।

अर्थः–३१० सोरठे और दोहे, २४५ इकतीसे सवैये, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा सवैया, २० छप्पय, १८ अट्ठारह कवित्त (घनाक्षरी), ७ अडिल्ल, ४ कुन्डलिए – ऐसे ये सब मिलकर ७२७ (सात सौ सत्ताईस) नाटक समयसार के पद्यों की संख्या है, ३२ अक्षर के श्लोक के प्रमाण से ग्रंथ–संख्या १७०७ है।।३९।।

काव्य-३९ पर प्रवचन

तीनसै दसोत्तर सोरठा दोहा छंद दोउ,
युगलसै पैंतालीस इकतीसा आने हैं।
छ्यासी चौपाई, सैंतीस तेईसे सवैए,
बीस छप्पै अठारह कवित्त बखाने हैं॥
सात पुनि ही अडिल्ल, चारि कुंडलिए मिलि,
सकल सातसै सत्ताइस ठीक ठानै हैं।
बत्तीस अच्छरके सिलोक कीने लेखै,
ग्रंथ-संख्या सत्रह सै सात अधिकानै हैं॥३९॥

लो! ३१० सोरठा और दोहा, २४५ इकतीसा सवैया, ८६ चौपाई, ३७ तेवीसा सवैया, २० छप्पा, १८ घनाक्षरी कवित्त, ७ अडिल्ल। सबका योगफल किया है। ४ कुण्डलिया। ऐसे सब मिलकर ७२७ नाटक समयसार के पद्यों की रचना है। ७२७, लो। सात और दो=नौ और सात=सोलह। ७२७ है। ३२ अक्षर के श्लोक प्रमाण ग्रन्थ की रचना १७०७ है। १७०७ श्लोक का यह समयसार नाटक बना है, कहते हैं। यह तो पहले कह गये हैं कि वाणी वाणी से बनी है। कहीं हमारे से बनी नहीं। वाणी तो वाणी का कर्ता वाणी। आत्मा वाणी का कर्ता हो जड़ का? आहाहा! ऐसे अक्षरों की रचना जड़ शब्द से हुई है, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ४०

(दोहा)

समयसार आतम दरव, नाटक भाव अनंत।
सो है आगम नाममैं, परमारथ विरतंत।।४०।।

अर्थः–सब द्रव्यों में आत्मद्रव्य प्रधान है और नाटक के भाव अनन्त हैं, सो उसका आगम में सत्यार्थ कथन है।।४०।।

काव्य-४० पर प्रवचन

समयसार आतम दरव.... यह समयसार तो... **सब द्रव्यों में आत्मद्रव्य प्रधान है।** छह द्रव्य जगत में भगवान ने देखे। तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे। आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। उसमें आतम प्रधान है। पाँच तो सब जड़ हैं। **सब द्रव्यों में आत्मद्रव्य प्रधान है।** मुख्य है। चैतन्यमूर्ति चैतन्यसूर्य, विकार रहित चीज़, शरीररहित चीज़ और अकेले चैतन्यस्वभाव से भरपूर आत्मपदार्थ, वह छह द्रव्यों में मुख्य है। **नाटक भाव अनंत—**उसके भाव तो अनन्त हैं। गुण अनन्त, पर्याय अनन्त, एक-एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद, ऐसे अनन्त भाव एक आत्मा में भरे हैं। समझ में आया? वस्तु एक मुख्य—प्रधान आत्मद्रव्य, परन्तु उसके भाव अनन्त हैं। उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। समझ में आया?

कहा था एकबार, नहीं? बहुत बार कहा है। एक आत्मा में गुण की इतनी संख्या है कि छह महीने आठ समय में ६०८ मुक्ति को पाते हैं। भगवान के ज्ञान में ऐसा आया है। छह महीने आठ समय, ६०८ सिद्धपद को पाते हैं। यह आत्मा का आश्रय करके मुक्ति पाते हैं। तो इतने-इतने सिद्ध अभी तक हुए, उनकी जो संख्या अनन्त... अनन्त संख्या हुई। छह महीने आठ समय में ६०८। इतने कितने गये? अनन्त पुद्गलपरावर्तन गये। अनन्त-अनन्त सिद्ध हुए, उनसे निगोद के एक शरीर में अनन्तगुणे जीव हैं। बटाटा, शक्करकन्द, आलू कहलाता है न आलू। उसका एक राई जितना टुकड़ा लो,

उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर हैं और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीव हैं। समझ में आया? तो ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है? कि दूसरा साधु हो सकता है?

ऐसे अनन्त जीव, उनसे अनन्तगुणे तो परमाणु हैं। उनसे अनन्तगुण तीन काल के समय है। एक सेकेण्ड में असंख्य समय जाते हैं, ऐसे तीन काल के समय, वह पुद्गल के परमाणु की संख्या से अनन्तगुणे हैं। उनसे तो अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश हैं। आकाश है न सर्वव्यापक। अन्त है कहीं आकाश का? चला जाये, चला जाये, चला जाये, चला जाये। कहीं नहीं, ऐसा कहीं नहीं होता। ऐसा आकाश, उसमें जो परमाणु (जगह रोके) वह प्रदेश, उनकी संख्या तीन काल के समय से अनन्तगुणी है। और उनसे अनन्तगुणे एक आत्मा में गुण हैं। आहाहा! समझ में आया? अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश की संख्या का पार नहीं। अपार... अपार... अपार। इतनी संख्या की अपेक्षा एक जीव में भगवान ने अनन्तगुणे गुण देखे हैं। वस्तु एक और गुण इतने अनन्त... अनन्त।

यह कहते हैं, **सब द्रव्यों में आत्मद्रव्य प्रधान है और नाटक के भाव अनन्त हैं।** यह वर्णन किया है न, उसमें नहीं? परमात्मपुराण में बहुत वर्णन किया है। नट और थट और सब उसमें बहुत वर्णन किया है। एक-एक गुण और उसकी एक-एक पर्याय और उसकी पर्याय में अनन्त नृत्य और अनन्त थट और अनन्त कला और रूप, बहुत वर्णन किया है। यह अपने आ गया है इसमें। वटवृक्ष का नहीं आया? पाँचवाँ बोल है।

जैसे वट वृच्छ एक, तामैं फल हैं अनेक। पृष्ठ ४१० है न। **जैसे वट वृच्छ एक, तामैं फल हैं अनेक, फल फल बहु बीज, बीज बीज वट है।** एक वड़ में बहुत फल, फल में बहुत बीज। एक-एक बीज में वृक्ष वड़ होने की सामर्थ्य है। उस वड़ में भी वापस फल, और फल में भी **बीज तामैं वट, कीजै जो विचार, तौ अनंतता अघट है। तैसे एक सत्तामैं, अनंत गुन परजाय।** आहाहा! इसका नाटक देखो। **पर्जैमैं अनंत नृत्य तामैंऽनंत ठट है। ठटमैं अनंतकला, कलामै अनंतरूप, रूपमैं अनंत सत्ता, ऐसौ जीव नट है।** कहो, ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त परमात्मा वीतराग ने जो देखा, ऐसा देखा है। समझ में आया? आत्मा, आत्मा दूसरे कहें, परन्तु ऐसा स्वरूप जिन्होंने देखा नहीं, वे ऐसा आत्मा का कथन नहीं कर सकते।

कहते हैं कि समयसार आतमद्रव्य अर्थात् भगवान आत्मा वस्तु प्रधान पदार्थ है, छह द्रव्य में मुख्य चीज़ ही प्रभु स्वयं है। यदि वह न हो तो यह जगत है या जड़ है या स्वयं है, वह कौन कहनेवाला? जाननेवाला कौन? जाननेवाला भगवान आत्मा एक, उसकी शक्तियाँ अनन्त। उसके भाव (अनन्त)। **सो है आगम नाममैं।** वे भाव आगम में सत्यार्थ कथन है। यह सिद्धान्त सर्वज्ञ में कहे हुए आगम में उसका कथन है। अन्यत्र ऐसा कथन हो नहीं सकता। आहाहा! कहो, ऐसी बात को जहाँ अन्दर सम्यग्दर्शन में एक समय की पर्याय में इतने द्रव्य, अनन्तगुणे गुण, यह जानने की एक समय की पर्याय में सामर्थ्य है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड, वह गुण और ऐसे अनन्तगुण का पिण्ड एक आत्मद्रव्य। समझ में आया?

ऐसा आत्मा जाने और माने बिना, उसे अनुभव बिना समकित होता नहीं। आहाहा! बिना भान के आत्मा... आत्मा करे, वह तो सब करते हैं। बौद्ध भी आत्मा... आत्मा करता है। समाधि कही जाती है और फलाना कहा जाता है और सब बहुत करते हैं। वेदान्ती आत्मा करे और वह सर्वव्यापक आत्मा है और ऐसा है और वैसा है। यह सब कल्पित कहनेवाले हैं। भगवान ने ऐसा आत्मा कहा, उसका यह स्वरूप ऐसा है। **सो है आगम नाममैं।** यह कथन सब सिद्धान्त में सर्वज्ञ की परम्परा में कहे हुए शास्त्रों में है। **परमारथ विरतंत,** लो। आगम में सत्यार्थ कथन है। परमार्थ कथन है। भगवान ने कहे हुए सिद्धान्त में एक आत्मद्रव्य का अनन्त भावस्वरूप ऐसा उसमें कथन है। बहुत अन्यत्र से मिला है, उसकी बात करते हैं थोड़ी।

समयसार नाटक अकथ, अनुभव-रस-भंडार।
याको रस जो जानहीं सो पावें भव-पार॥१॥

आहाहा! समयसार ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका जो परिणमन आदि नाटक अकथ्य है, कहते हैं। क्या कहे! अनन्त गुण—अनन्त अवस्था, ऐसा भगवान परमात्मा वाणी से तो पार है। अकथ्य है, कहते हैं। कथन में आ सकता नहीं, ऐसा यह समयसार नाटक अपना है। उसमें तो कहा पाठ में, यह तो सब पूरा कहा है। पाठ की गाथा में कहा है न। यह अपेक्षा से सब कहा है, ऐसे अस्ति-नास्ति। यहाँ तो अकथ्य अर्थात् बहुत ही अगम्य है, ऐसा। महाप्रभु चैतन्य को जानना, उसे अनुभव करना, वह तो महा

वचनातीत, रागातीत वस्तु है। आहाहा! यह उसका अनुभव—यह आत्मा का अनुभव, वह सम्यग्दर्शन, आहाहा! ऐसा आत्मा एक, अनन्त गुण, उसे अनुसर होती वीतरागीदशा का वेदन, उसे अनुभव कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन में ऐसा अनुभव होता है। आहाहा! अभी चौथे गुणस्थान में, हों! श्रावक तो इससे आगे गये, सच्चे हों वे। मुनि तो अलौकिक बात! ऐसा यह अकथ्य कथन है।

अनुभव-रस-भण्डार। अनुभव के रस का तो भण्डार है आत्मा। यह समयसार नाटक ऐसा भण्डार, परन्तु उसमें आत्मा मुख्य है। **याकौ रस जो जानहीं।** भगवान आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का रस जो जाने, वह समकिती, वह ज्ञानी और वह धर्मी। आहाहा! **याकौ रस जो जानहीं।** ऐसा करे और क्रिया करे और फलाना करे न, ऐसा यहाँ कुछ नहीं लिया। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप, जिसमें अनन्त-अनन्त अनीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव भरपूर है, उसका जो रस जाने, उसे जो अनुभव करे, सम्यग्दर्शन में उसका वेदन आवे। पूरा आत्मा शान्त शुद्ध है, उसका वेदन होने पर पूरा आत्मा शुद्ध है, ऐसा वेदन आवे, **सो पावें भव-पार... सो पावें भव-पार।** उसे भव का अन्त आवे। आहाहा!

एक आत्मा अनन्त गुण का भण्डार सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा कहा, वैसा यदि इसे अनुभव में आवे तो इसके आनन्दरस को जाने। पुण्य-पाप की क्रिया के परिणाम तो दु:खरस है। इस आनन्दरस को जाने ही, यहाँ तो कहा। जाने अर्थात् उसे जाना। जाना—अनुभवकर स्थिर हुआ। समझ में आया? मनुभाई गये लगते हैं। गये होंगे। **सो पावें भव-पार।** यह आत्मा के आनन्द की दशा को अनुभव करे, वेदन करे, निर्विकल्प परिणमन प्रगट करे, वह भव का पार पावे। समझ में आया? आहाहा! देखो, यह मोक्षमार्ग भी साथ में बता दिया। कौन सी क्रिया मोक्षमार्ग की? कि, यह क्रिया।

अनुभव-रस-भंडार। रस का भण्डार है वह तो, कहते हैं। यह उसका आनन्द निकालो अनुभव में तो चाहे जितना आनन्द निकालो, तो भी आनन्द तो भरपूर ही है उसमें, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, सम्यग्दर्शन में से शुरु होने पर अनन्त-अनन्त आनन्द को वेदने पर केवलज्ञान होने से अनन्त आनन्द होता है, तो भी अनन्त आनन्द का वह आत्मा तो भण्डार है, उसमें से अनन्त आनन्द निकला ही करे। समझ में

आया? **याकौ रस जौ जानहीं, सो पावें भव-पार।** वह भव का पार पावे। लो, बहुत संक्षिप्त कहा। सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् अर्थात् शाश्वत् के स्वभाव के रस को जाने, वह शाश्वत् मुक्ति की दशा को पावे। समझ में आया? शाश्वत् वस्तु अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप सहित, ऐसा निज तत्त्व शाश्वत् है, उसे जाने, उसे वेदन करे, उसे अनुभव करे, उसकी श्रद्धा करे, उसका ज्ञान करे और उसमें स्थिर हो, वह भव पार पावे। उसे यह भव का अन्त आकर मुक्ति होती है। कहो, समझ में आया?

अनुभौ-रसके रसियानै।
तीन प्रकार एकत्र बखानै।
समयसार कलसा अति नीका।
राजमली सुगम यह टीका॥२॥
ताके अनुक्रम भाषा कीनी।
बनारसी ग्याता रसलीनी॥
ऐसा ग्रंथ अपूरब पाया।
तासैं सबका मनहिं लुभाया॥३॥

अनुभौ-रसके रसियानै, तीन प्रकार एकत्र बखानै। देखो! अनुभव के रस के रसिया। आहाहा! शास्त्र में आता है न अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव है रसकूप। 'अनुभव रत्नचिंतामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' आहाहा! अनुभव रत्नचिन्तामणि। आत्मा के आनन्द का अनुभव, वह सम्यक् रत्नत्रय— सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह रतन है। व्यवहार के विकल्प से रहित निश्चयस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव—अनुसरकर होना, आनन्दरूप से वेदन करना, वह अनुभव रत्नचिन्तामणि। यह धर्म और यह रत्नचिन्तामणि है। आहाहा! अनुभव रत्नचिन्तामणि, अनुभव है रसकूप। वह तो रस का कुआं है। आहाहा! आनन्दरस ही अनुभव धर्म में झरता है। धर्म उसे कहते हैं कि जिसमें आनन्दरस झरे और आनन्द का वेदन हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! कहो, समझ में आया?

अनुभौ-रसके रसियानै। सम्यग्दृष्टि अनुभव के रस के रसिया हैं। यह पुण्य-

पाप के विकार के रसिया नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा बहुत सूक्ष्म वीतराग का। लोगों को अन्दर बैठना कि यह... यह... परन्तु क्या? नहीं। भाई कहते थे न, प्रेमचन्दभाई का पुत्र। ... परन्तु प्रेक्टिस में क्या कुछ भाषा? प्रेक्टीकल। उसका प्रेक्टीकल कैसे करना? परन्तु प्रेक्टीकल अर्थात् यह अन्दर आत्मा की ओर जाकर वेदन करना, वह प्रेक्टीकल। क्या हो? महँगी चीज़, दुर्लभ चीज़। सुनने को मिले नहीं पहले तो वास्तविक चीज़। सुनने को मिले तो भी उसे फिर अन्दर बैठना और बैठने के पश्चात् अन्तर स्वरूप में अनुभव करना, वह तो अलौकिक बात है। समझ में आया? कहो, शान्तिभाई!

देखो, यह मार्ग है। यह समझे बिना नग्न होकर बाबा घूमे, वे साधु नहीं, ऐसा कहते हैं। बाबा तो अन्दर में भी नग्न ही घूमे, अन्यमति में बहुत से। हजारों नहीं आते वह मेला भरे वहाँ, क्या कहलाता है? नागा बाबा का मेला भरता है। कुम्भमेला। बहुत बाबा नागा। एक बार बहुत हजारों नग्न घूमे। महिलायें नग्न स्त्रियाँ। ऐसे पानी पीवे न उसे। वह पीते हैं ऐसे केले का रस पीते हैं। केला... केला होता है न केला। उसका रस पीवे तो सब इन्द्रियाँ शिथिल हो जायें। इन्द्रिय वश की न हो, परन्तु ऐसा है स्वभाव है।

एक अपने थे धांगध्रा में मोहनलाल। मोहनभाई थे। डुंगरपुर के दीवान थे। डुंगरपुर के दीवान थे अपने मोहनभाई थे स्थानकवासी। वह मास्टर थे उस राजा के। इसलिए फिर प्रेम हो गया, वह उसे दीवान बनाया। बहुत जानपना नहीं था ऐसा, परन्तु वह मास्टर थे, उसे दीवान बनाया। वह दीवान सामने। दूसरे काम करे परन्तु दीवान वह। फिर मोहनभाई हमारे पास बहुत बार आते थे। यह शरीर शिथिल दिखे। मोहनभाई ऐसा कैसे दिखता है? तुम बड़े दीवान थे न! कहे, केला का रस पेय पीया है। यह केला नहीं होता केला? केला। उसका रस पीवे तो यह इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। इन्द्रियाँ जागती नहीं।

मुमुक्षु : कृत्रिम उपाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : कृत्रिम उपाय। बस बात यह। वह कृत्रिम उपाय। वह सच्चा उपाय नहीं। ऐसे नग्न तो बहुत घूमते हैं। यहाँ तो आत्मा के आनन्द के रस में चढ़ने से प्याला—खुमारी चढ़ जाये और विषय की वृत्तियाँ उठे नहीं। विकल्प उठे नहीं। आहाहा!

ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, कहते हैं कि **अनुभौ-रसके रसियानै, तीन प्रकार एकत्र बखानै।** तीन प्रकार।

समयसार कलसा अति नीका। आहाहा! अमृतचन्द्र आचार्य के कलश अति नीका—बहुत ऊँचे। नीका—भला। **राजमली सुगम यह टीका।** वापस उसकी टीका यह राजमल्ल की। आहाहा! पूरी पुस्तक बनायी है। २७८ श्लोक की। **राजमली सुगम यह टीका।** बहुत सरल टीका है, कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? जेठाभाई! यह पढ़ा है या नहीं? जेठाभाई! राजमल्ल को पढ़ा है? कलशटीका। हुई है न, गुजराती हुई है। हजारों गुजराती हो गये। हजारों हिन्दी हो गये। लोग यह लड़के पढ़ते हैं न। छोटे-छोटे। चारों ओर प्रचार... प्रचार... प्रचार मार्ग वीतराग का यह है। समझ में आया?

ताके अनुक्रम भाषा कीनी। बनारसी ग्याता रसलीनी। लो। उसमें से बनाया कवित्त, ऐसा कहे। **बनारसी ग्याता रसलीनी।** लो, बनारसीदास ज्ञाता रस में लीनवाले थे। यह आनन्द के रसवाले थे, ऐसा कहते हैं। **बनारसी ग्याता रसलीनी, ऐसा ग्रंथ अपूरब पाया, तासैं सबका मनहिं लुभाया।** आहाहा! एक तो कलश, और उसकी टीका और उसका वापस यह कवित्त। यह सब इसमें लिखा है इस पुरानी में। इसमें पुरानी में है न अपने कवित्त नहीं डाला भाई! उसमें कवित्त और सब डाला है उसमें कवित्त भी है, कलश है और उसकी टीका है। यह तीनों उसमें है उस पुरानी में। अपने यह नहीं, क्योंकि बहुत बढ़ जाये न वापस। बड़े अक्षर। यह बहुत बारीक अक्षर। उसमें कवित्त भी है, उसमें।

बनारसी ग्याता रसलीनी। आहाहा! ईडर की प्रति में ऐसा निकला है। बनारसीदास ज्ञाता-दृष्टा हुए थे। सम्यग्दर्शन पाये थे। आत्मा के रस के रसीले थे। गृहस्थाश्रम में, तथापि सम्यग्दृष्टि थे। आत्मा के रस के रसिक थे। उनका नाम धर्मी कहते हैं। राग के रस के रसिक, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! होवे सही राग, परन्तु उसका रस नहीं होता। समझ में आया?

ऐसा ग्रंथ अपूरब पाया। तासैं सबका मनहिं लुभाया। सब पाँच भाई वाँचते थे न वे लोग। भारी ग्रन्थ भाई! ओहोहो! कहो, उस समय ऐसे सब बनारसीदास आदि पाँच पुरुषों को ऐसे... पूर्व। अब ऐसा ग्रन्थ तो बाहर अब आ गया। कितने हजारों बाहर

आये हैं। पण्डितजी! तो तुमने नहीं पढ़ा? कहो। हिन्दी नहीं मिली? यह तो अपने है या नहीं नहीं? ऐई! अधिक है? (इनको) दो एक (प्रति)। अपने भेंटरूप से है? भेंटरूप से नहीं? तब?

मुमुक्षु : विचारकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार करके बाद में दूँगा। मिलेगा। आहाहा!

(दोहा)

सोई ग्रंथके लिखनकौ, किए बहुत परकार।
वाँचनकौ देवे नहीं, ज्यौं कृपी रतन-भंडार॥४॥

कंजूस, जैसे रत्न के भण्डार भरे हों, पाई खर्च करे नहीं और दे नहीं। उसी प्रकार यह ग्रन्थ लिखन को, किये बहुत प्रकार। भाई! हमको लिखने दो हमको। वह कहे, नहीं। वाँचन को देवे नहीं। ऐसे भी थे न लोग उस समय। उसके रस के रसिक थे। कि भाई! आहाहा! ऐसा ग्रन्थ समयसार नाटक! अद्‌भुत बात है। ऐसी बात यदि अपने को वाँचने को मिले और समझने को मिले जगत में तो बहुत काम हो। परन्तु **लिखनकौ किए बहुत परकार, वाँचनकौ देवे नहीं।**

एक यह सूर्यपण्णत्ति और चन्द्रपण्णत्ति चाहिए थी हमको। सूर्यपण्णत्ति है बत्तीस सूत्र में है न, वह हमारे यहाँ नहीं थी वहाँ दामनगर। बत्तीस सूत्र में वह सूर्यपण्णत्ति, चन्द्रपण्णत्ति रखी है। वह यहाँ जैतपुर में थी। वह दामोदर सेठ के मामा के पुत्र अश्विनभाई (के पास), परन्तु ... दे नहीं। भाई! वाँचने तो दो अब यह। यह सब तुम्हारे शास्त्र में क्या लिखा है, सब देखा तो जाये पहले। दे नहीं ... परन्तु चाहे जहाँ से फिर प्राप्त हुई थी। एक आयी थी। पढ़ा था ७६ में। (संवत्) १९७६ के वर्ष की बात है, हों! २४ और २८=५२ वर्ष हुए। चन्द्रपण्णत्ति, सूर्यपण्णत्ति आयी थी। पूरा पढ़ा। एकबार पढ़ा। उसमें कहीं बहुत इतिहास का विषय ही। एकबार पूरा देख लिया। परन्तु उसके पास ग्रन्थ था। देते नहीं थे। परन्तु किसी प्रकार से फिर मँगा लिया।

मुमुक्षु : विश्वास नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। विश्वास नहीं। उसे (ऐसा) कि ऐसी ऊँची चीज़

है, बाहर कैसे निकालना, ऐसा। संकीर्णता। ऐसे आये, वह रतन का भण्डारवाला हो, कोई कंजूस हो, वह पाई भी दे नहीं। आहाहा!

मानसिंघ चिंतन कियो, क्यौं पावे यह ग्रंथ।
गोविंदसो इतनी कही, सरस सरस यह ग्रंथ॥५॥
तब गोविंद हरषित भयौ, मन विच धर उल्लास।
कलसा टीका अरु कवित, जे जेते तिहि पास॥६॥

मानसिंघ चिंतन कियो, क्यौं पावे यह ग्रंथ। मानसिंह। चिन्तवन विचार किया कैसे पावें यह ग्रन्थ? देखो, यह उस समय भी इस ग्रन्थ की कठिनाई थी। आहाहा! एक यह टोडरमलजी का है न अपने वह रहस्यपूर्ण चिट्ठी। वह हमको (संवत्) १९८३ में मिलती नहीं थी। ८३ के वर्ष में। संवत् १९८३। मिलती नहीं, इस कारण से एक बार फिर वीरजीभाई ने भेजी थी। ८३ की बात है। कितने वर्ष हुए? १७ और २८=४५। फिर तो अपने छपवा ली। बहुत मिली। यह मिलती नहीं थी। एक रुपये में चिट्ठी मिलती नहीं। रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न। पढ़ी है। बनारसीदास, टोडरमलजी, बहुत ऊँची चीज़ बहुत। दिगम्बरों में तो गृहस्थ, पण्डित पके हैं, वह सब बहुत अमूल्य रतन पके हैं। यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी मिलती नहीं थी। समझे न। है न यहाँ रहस्यपूर्ण चिट्ठी। कहीं थी उस समयसार में।

गोविंदसो इतनी कही, सरस सरस यह ग्रंथ। देखो। जेठाभाई! उस समय यह ग्रन्थ... अब इसकी अभी कीमत नहीं होती। अभी वे कितने हजारों बाहर प्रकाशित हो गये हैं।

मुमुक्षु : उस समय तो हाथ से लिखे जाते थे न....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ से लिखते थे.... **गोविंदसो इतनी कही, सरस सरस यह ग्रंथ।** आहाहा! सरस... सरस, ऐसा कहा। भारी टीका! भारी इसका अर्थ और भारी इसकी कविता।

तब गोविंद हरषित भयौ, मन विच धर उल्लास। मन और वचन से धर उल्लास हुआ उसे। **कलसा टीका अरु कवित, जे जेते तिहि पास।** जो-जो उसके पास था, वह ले लिया, कहते हैं। आहाहा! ऐसी चीज़ उस समय मिलती नहीं थी और अभी तो ऐसी सस्ती हो गयी है अब। सुमनभाई! पुस्तक सब सस्ती हो गयी हैं और फिर यहाँ तो सस्ता

है वापस। जो इसकी कीमत हो, उससे कम कीमत, तो भी पढ़ते नहीं। यह पण्डित जैसे कहे, मैंने पढ़ा नहीं। कहो, संस्कृत के प्रोफेसर हुए, वह यह नहीं। हम तो वहाँ स्थानकवासी में ढूंढ़िया में थे तो भी यह पहले पढ़ा था।

मुमुक्षु : ढूंढ़िया कहाँ थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में। पहले सब पढ़ा था अन्दर में। ..... टीका इसकी दी थी न भाई ने दी थी। जैनमित्र की ओर से भेंट दी थी। जैनमित्र निकलता है न सूरत से। सूरत। उसकी भेंटरूप से। **कलसा टीका अरु कवित, जे जेते तिहि पास।** जो वह हो उसके पास, लाओ। आहाहा!

(चौपाई)

जो पंडित जन बांचो सोइ।
अधिको उचो चौकस जोइ॥
आगे पीछे अधिकौ ओछो।
देखि विचार सुगुरुसौ पूंछौ॥७॥
अलप मती है यह मति मेरी।
मनमें धरहुं चाह घनेरी॥
ज्यौं निज भुजा समुद्रहि तरनौ।
**है अनादि * * *

जो पंडित जन बांचो सोइ। लो, पण्डित यह शिक्षा करते हैं। **जो पंडित जन बांचो सोइ, अधिको उचो चौकस जोइ।** कम, अधिक हो, बराबर निर्णय करो उसमें। क्या चीज़ है। यह कुछ ऐसे माननेवाली चीज़ है नहीं। बराबर तुलना करके विचार करो। समयसार नाटक देखो। कलश की टीका देखो। सुगम शैली है। पढ़ो और विचारो। **अधिको उचो चौकस जोइ, आगे पीछे अधिकौ ओछो।** कम और अधिक कहीं दिखाई दे, **देखि विचार सुगुरुसौ पूंछौ।** ज्ञानी से उसका अर्थ पूछो कि यह क्या है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा चैतन्य रत्न का भण्डार, उसे पढ़ने को भी नहीं मिले और होवे मिले तो भी

पढ़े नहीं। लिखा है न मोक्षमार्गप्रकाशक में, नहीं? नहीं वह कुछ। मिले और पढ़े नहीं। लिखा है। अध्यात्म वस्तु मिले, उसे पढ़े नहीं, उसे क्या कहना। ऐसा लिखा है कहीं, नहीं? उसके भाग्य की क्या बात करना? अभाग्य की... यही अभाग्य। लिखा है, हों इसमें। लो, यह निकली। लो, यह वह चिट्ठी। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। पहले यह मिलती नहीं थी। एक रुपये में भी यह (मिलती नहीं थी)। अब तो अपने सब प्रकाशित हो गयी है मोक्षमार्गप्रकाशक में। यह लिखते हैं नहीं? पहले भाग में न? व्याकरण आदि साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती, इसलिए इसके अभ्यास में अवश्य प्रवर्तो। ओहोहो!

उसमें लिखा है। उसके पहले कुछ लिखा है। वह पूरा हो गया। उसके पहले है वह। ऐसा यह कि जैसे किसी महान दरिद्री को अवलोकन मात्र चिन्तामणि की प्राप्ति हो, तथापि वह अवलोकन न करे तथा जैसे कोढ़ी को अमृतपान कराये, तथापि वह न करे; उसी प्रकार संसार पीड़ित जीव को सुगम मोक्षमार्ग के उपदेश का निमित्त बने। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। देखो, टोडरमलजी ने लिखा है। तथापि वह अभ्यास न करे तो उसके अभाग्य की महिमा कौन कह सकता है। टोडरमलजी ने लिखा है मोक्षमार्गप्रकाशक में (लिखा है)। उसकी होनहार विचारकर अपने को समता आती है, लो। आहाहा! स्वाधीन उपदेशदाता गुरु का योग मिलने पर भी जो जीव धर्मवाक्यों को नहीं सुनता, वह धीठ दुष्ट है। संसारभय से तीर्थंकर आदि डरे, उस संसारभय से जो रहित है, वह महा सुभट है। जिससे—संसार से तीर्थंकर डरे। आहाहा! चौरासी के अवतार। एक-एक अवतार के अनन्त दुःख उससे वे डरे। और उससे जो न डरे, महासुभट है, नरक में जानेवाला। कहते हैं। **देखि विचार सुगुरुसौ पूंछौ।**

अलप मती है यह मति मेरी। बनारसीदास कहते हैं, मेरी मति तो अल्प है, भाई! कहो, ऐसे बुद्धिवाले, तथापि अपनी मति अल्प है, ऐसा कहते हैं। **मनमें धरहुं चाह घनेरी।** मन में तो बहुत भावना आती है कि यह क्या बनाऊँ! क्या समयसार रचूँ, बाहर रखूँ। **ज्यौं निज भुजा समुद्रहि तरनौ।** जैसे दो हाथ से समुद्र तिरना, उसी प्रकार अनादि जैन की वाणी को यह पूरी करना, लिखना, महागम्भीर और दुर्लभ है। तथापि मेरी शक्ति प्रमाण लिखा है। इसे पढ़ना और विचारना ऐसी अन्त में शिक्षा करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

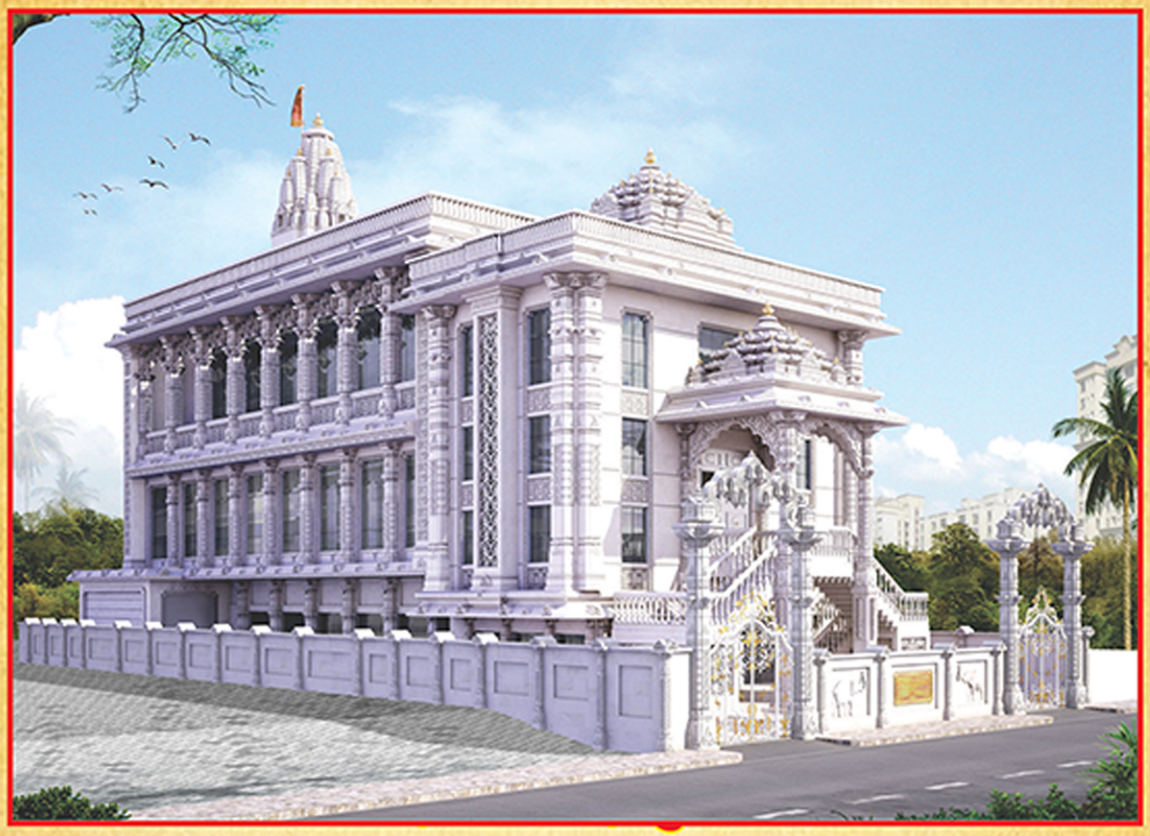

श्री सीमंधरस्वामी दिगंबर जिनमंदिर
विले पार्ला , मुंबई